आधुनिक संस्कृत-नाटक

[नये तथ्य : नया इतिहास]

भाग २

लेखक

रामजी उपाध्याय

एम० ए०, डी० फिल्०, डी० लिट्०

सीनियर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,

सागर-विश्वविद्यालय, सागर

प्रकाशक

संस्कृत-परिषद्, सागर-विश्वविद्यालय,

सागर

प्रथम संस्करण

भारत-सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय से प्राप्त आर्थिक अनुदान से प्रकाशित

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

88174

उन्नीसवीं शती के नाटक

रघुवीर-विजय

बाल-विग्रहपुरी के कस्तूरि-रंगनाथ ने समवकार कोटि के इस रूपक की रचना उन्नीसवीं शती के आरम्भ में की।[1] सूत्रधार ने कवि का परिचय देते हुए कहा है—अस्ति वाधूलकुलमूर्धन्यस्य कनकवल्लीनाम्ना तपोमयेन ज्योतिषा सहचरितधर्मणो वीरराघवकवेरात्मसम्भवः श्रीरंगनाथाभिधानः कवि-कुंजरः। इनके गुरु श्रीवत्सवंशोद्भव वेङ्कटकृष्णामार्य थे। सूत्रधार ने इनके अनेक शास्त्रों में पारगत होने का उल्लेख करते हुए लिखा है—

कर्कशतर्कपयोनिधिपाता शब्दप्रयोगनिर्माता।
कविता-सुदतीभर्ता किं न श्रोत्रंगतः कवीन्द्रोऽयम्॥

इस नाटक का प्रथम अभिनय शेषाद्रीश के महोत्सव में प्रातःकाल के समय शिविरपुर में हुआ था।[2] अभिनय आरम्भ होने के पहले रंगमंगल विधि होती थी—वीणा बजती थी, मृदंग पर ताल दिये जाते थे, मंजीर शब्द मनोहर होता था। भगवान् श्रीनिवास की फाल्गुन-यात्रा में आये हुए ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र—सबके लिए अभिनय हुआ था। रंगस्थल उत्पल से समलंकृत किया गया था।

इस नाटक के सूत्रधार ने ही आगे चलकर कस्तूरि-रंगनाथ के पुत्र सुन्दरवीर के रूपकों का भी अभिनय कराया था—ऐसी सम्भावना इन सब रूपकों की प्रस्तावनाओं की अंशतः समरूपता से स्पष्ट है।[3]

सूत्रधार ने नाटक की कथा का सार प्रस्तावना के अन्त में दिया है—

अहो सज्जनेपथ्या इव कुशला कुशीलवा यदुदाहरन्ति सीता-संगमंगलोत्सवे पशुपतिचापपौलस्त्यगर्वयोः प्रणमनम्।

कथावस्तु

वसिष्ठ ने दशरथ से कहा—

विलसति तया पताका राक्षसलोकाधिनाथस्य। १.२१

दशरथ ने कहा—अभी राक्षसों का अन्त करता हूँ। राम ने कहा—मेरे रहते आप क्यों कष्ट करें? देवताओं ने नेपथ्य से राम की सहायता राक्षसों के विनाश के लिए चाही। तभी विश्वामित्र पधारे। उन्हें ज्ञात था कि दशरथ राम का विवाह जानकी से करना चाहते हैं, पर रावण के विक्रम से डरते हैं। इसलिए शिशु राम को सीता-स्वयंवर के धनुर्यज्ञ में नहीं भेज रहे हैं। उन्होंने ऐसी स्थिति में अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम को माँगा। दशरथ ने कहा—बारह वर्ष का राम है। मुझे सेना

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति संस्कृत मैं० ला० मद्रास में २.२४४४ संख्यक है।

२. सूत्रधारः—उदितभूयिष्ठ एव भगवानम्भोजिनीवल्लभः।

३. इससे प्रमाणित होता है कि भूमिका लेखक सूत्रधार है।

सहित ले चलिए। दशरथ को राम से प्रेम और विश्वामित्र के शाप का भय था। उन्होंने वशिष्ठ से पूछा कि क्या करें? वशिष्ठ ने कहा—राम को जाने दें। विश्वामित्र के साथ मार्ग में ताडका दिखाई पड़ी—

वक्त्रेणोदधिवाडवं हिमगिरिं मूर्ध्ना च कादम्विनीं
केशौघां परिघेण सागरभुवं कल्लोलमालामपि।
घोषेणाशनिसन्निपातमुरसा भूमिं सशैलां क्रुवा
रुद्रं च त्रपयत्यहो कथमियं केनेयमुत्पादिता॥ १·५७

विश्वामित्र के आदेश से वह धर्मराजपुरी में भेज दी गई। उसका अन्त होते ही देवता हवि लेने के लिए

यागं विशन्ति रघुनन्दनकीर्तिभासा
स्वर्गादयो धवलिता विदिशो दिशश्च॥

इसके पश्चात् राक्षस लड़ने आये—सुवाहु और महामायी मारीच उनके नेता थे। अन्य सभी राक्षस ध्वस्त हुए।

वहीं जटायु आये यह विचार लेकर—

सीतां प्रदातुमधुना जनको नृपालः रामाय कल्पितमतिः खलु साम्प्रतं तत्।
आयाति पंक्तिवदनोऽपि च तां वरीतुं दद्यान्न चेदपहरिष्यति तां दुरात्मा॥

इधर विद्युज्जिह्व ने अपनी योजना वताई कि मैं राम का रूप धारण करके मिथिलोद्यान में आई सीता का अपहरण करूँगा। खर ने अपनी योजना वताई—

यद्राक्षसानविगणय्य निमिप्रवानः
भूकन्याकापरिणये पणवन्वनाय।
चक्रे शरासनमुमारमणस्य तस्मात्
शाठ्येन तस्य तनयामहमाहरामि॥ १·८२

मैंने अपनी वहिन को सीता की सखी वन कर उसे वाहर मनोविनोद के हेतु निकालने के लिए भेज दिया है। शूर्पणखा को सीता की सखी का रूप धारण करके विहार करने के लिए नगर से वाहर उद्यान में लाना है। वह इस उद्देश्य से सीता से मिली। वे राघव के प्रेम में शलाकावत् कृशाङ्गी वन गई थीं। शूर्पणखा के मन में विकल्प हुआ कि इसे हर कर खर को देने पर मेरा क्या होगा? मैं तो राम को आत्म-परितोष के लिए पाना चाहती हूँ। सीता का हरण न करके राम का हरण मुझे करना है। वे विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से आ ही रहे हैं। मार्ग में उनसे सीता का रूप धारण करके मिलती हूँ। उसे, दूर देखने पर लक्ष्मण दिखे। वे वन में राक्षसों को मारने के लिए घूम रहे थे। इस वीच विराध आ पहुँचा। उसने लक्ष्मण को देखा और आगे जाने पर सीता (शूर्पणखा) को देखा। शूर्पणखा लक्ष्मण को प्रेमभरी दृष्टि से देख रही थी। उसने समझा कि वे दोनों दम्पती हैं। उसने नकली सीता को कन्धे पर रखा। तव तो वह चिल्लाई कि मुझ जनकपुत्री

को राक्षस हर रहा है। खर ने सुना तो कहा कि इस जनकपुत्री को तो मैं अपने लिए चाहता था। इसे कौन लिये जा रहा है? इसे विराध कैसे ले जा रहा है? इसे मेरी बहिन मेरे लिए यहाँ लाई है। खर ने विराध से प्रस्ताव रखा कि यार, तरुणी तो मुझे दे दो और तरुण को तुम अपना भोजन बनाओ। यह सब सुनकर नकली सीता (वस्तुतः शूर्पणखा) चक्कर मे पड़ी कि अब मैं क्या करूँ। विद्युज्जिह्व ने देखा कि दो राक्षस सीता पर आक्रमण कर रहे हैं। तभी वहाँ कबन्ध आया। उसने सबको पकड कर खाने का उपक्रम किया। लक्ष्मण ने उसकी बाहो को काट गिराया।

विराध ने नकली सीता को पकड़ना चाहा। खर ने कहा—उस पर अधिकार करना हो तो लड़कर करो। विराध ने सीता और लक्ष्मण को भूमि पर पटक दिया। लक्ष्मण ने क्रोध से कहा—तुम राम की प्रेयसी को हथियाना चाहते हो। तुम दोनों को अभी मारता हूँ। लक्ष्मण ने खर और विराध को युद्ध मे ललकारा। परिणाम हुआ—

विराधस्य करौ छिन्नौ छिन्नग्रीवः खरश्शरैः।

विद्युज्जिह्व (राम का रूप बनाकर) सीता के निकट पहुँचा और बोला—

यातः कुत्र स मे भ्राता कान्तारेऽतिभयंकरे।

सीता (वस्तुतः शूर्पणखा) उस पर मोहित हो गई। उधर से लक्ष्मण निकले तो राम (वस्तुतः विद्युज्जिह्व) को देखकर पूछा कि विश्वामित्र का यज्ञ क्या समाप्त हो गया? विद्युज्जिह्व ने उनके प्रश्नों के उलटे-सीधे उत्तर दिये। फिर उसने लक्ष्मण से पूछा कि यह बाला कौन है? लक्ष्मण ने कहा—यह जानकी हैं। अब मैं चला। तभी जटायु ने आकर लक्ष्मण से कहा—जाओ मत। यह राक्षस वध्य है। यह सुनकर विद्युज्जिह्व पीछे मे भागा। जटायु ने कहा कि यह जो सीता बनी है, वस्तुतः निशाचरी है। शूर्पणखा ने कहा कि मेरा प्राण न लो। लक्ष्मण ने उसकी नाक और स्तन काट गिराये। वहाँ से लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचे और राम के साथ विश्वामित्र के नेतृत्व में वे मिथिला की ओर चल पड़े। स्वयंवर मे महेन्द्र, कार्तवीर्य, बाणासुर, काशीराज, लंकेश्वर और वानरवीर थे। वहाँ समय था—

सुरासुराणामपि वानराणां यक्षेश्वराणामपि राक्षसानाम्।
बध्नाति यः कोऽपि विनम्य चापं गृह्णाति पाणिं स महीसुतायाः॥[1]

अन्य वीर धनुष न उठा सके। तब राम उठे और लक्ष्मण के वर्णनानुसार—

ललितमधुना सज्यं कुर्वन् शरेण च योजयति।
अहह धनुषो मध्यं भग्नं प्रसर्पति हुंकृतिः॥

1. प्राचीन काल से ही यह धारणा चली आ रही है कि सीता के स्वयंवर मे मानवेतर भी अभ्यर्थी थे। क्या सीता किसी वानर को भी दी जा सकती थी? पर आश्चर्य है कि वाल्मीकि से लेकर परवर्ती अगणित कवियों ने यह गड़बड़ी अपनी रचनाओं में रखी है।

तब विश्वामित्र ने आँखों-देखा विवरण प्रस्तुत किया—

मन्दं-मन्दं मदनमहिषी कामनर्मोपचारा
स्थानोद्यानाकलिततटिनी राजहंसीव गत्वा।
चारुश्रीमद्वदनकमला पीनवक्षोज-कुम्भा
रामस्कन्धे कुवलयसरं संक्षिपत्यद्य सीता ॥[1]

फिर अनुराग संवर्धित हुआ। विवाह-विधि के पूर्व सीता सर्वमंगलाराधन करने के लिए चल पड़ी। राम ने सीता के जाने पर कहा—

अवमानवरीकृत्य या मया गृहिणीकृता।
सहिष्ये विरहं तस्याः कथं देव्यर्चनावधि ॥१·१२५

अन्य राजाओं को राम के द्वारा अधम कहा जाना मारीच को सह्य नहीं था। उसने कहा—

जातिषु सर्वेष्ववमो मनुष्य एको विनिर्मितो विधिना।

और भी—

किं कत्थनेन तव वालिश · बाहुवीर्यं
तीव्रं प्रदर्शय मया समरेऽतिघोरे।

राम उससे लड़ने के लिए निकल पड़े। वह जंगल में भागा। राम उसके पीछे दौड़े। वहाँ से सुनाई पड़ा—

हा लक्ष्मण, हा हतोऽस्मि।

लक्ष्मण राम को बचाने के लिए दौड़ पड़े। राम ने मारीच को मार डाला। लौटते हुए उन्हें लक्ष्मण मिले। फिर वे मिथिला की ओर साथ ही लौटे। वहाँ उन्हें सुनाई पड़ा कि रावण सीता का अपहरण करके ले गया, जब वे कात्यायनी देवी की पूजा करने गई थीं। यह मरते हुए जटायु ने बताया। राम ने कहा—अब तो मरना ही शरण है। राम सीता के वियोग में उन्मत्त हो गये। उन्होंने लक्ष्मण से कहा—

जानकीगतमानसदृशा मया सर्वत्रैव जानकी दृश्यते।

तभी भिक्षु रूप धारण करके उनसे हनुमान् मिले। उन्होंने बताया कि रावण के द्वारा हरी जाती हुई सीता ने अपना उत्तरीय और आभरण गिराकर मुझे दिया है। हनुमान् ने वानरवीर सुग्रीव का सचिव अपने को बताया। फिर वह उन्हें कन्धे पर लेकर सुग्रीव से मिलाने चला। सुग्रीव का अभिषेक हुआ, हनुमान् ने लङ्कादाह किया, सेतु से राम और उनकी सेना लंका पहुँची और अंगद ने रावण से कहा—

दीयते यदि सा सीता प्राणेन त्वं विमोक्ष्यसे।
नो चेद् राघवनाराचैर्न च प्राणैर्विमोक्ष्यसे ॥

१. विश्वामित्र ऋषि हैं, उनके मुख से सीता का पीनवक्षोजकुम्भा विशेषण मेरी दृष्टि में अशोभनीय है। पर यह परम्परानुसार ठीक ही है।

रावण के न मानने पर अंगद ने कारागार के रक्षकों को मारकर माता रुमा को लाकर सुग्रीव को दे दिया।[1] फिर तो वानर और राक्षसों का महासमर हुआ। सारी वानरसेना मारी गई। संजीवनी से वे पुनः जीवित हो गये। विभीषण रावण का मित्र नहीं रह गया था। क्यों ?

स्नुपारम्भोपभोगेन वृद्धसेवी विभीषणः।
रावणोऽतीव दुर्वृत्ते गुप्तवैरोऽभवत् परम्॥

रावण ने सबकी दुर्गति की थी। यथा, कुबेर की स्थिति है—

रावणापहृतसर्वस्वो धनदो दिगम्बरेण सह तत्साम्यमुपेत्यास्ते।

द्वितीय अङ्क में राम और रावण का युद्ध है। राम इन्द्र के रथ पर मातलि सारथि के साथ विराजमान हैं। रावण युद्ध में मारा गया। पुष्पक विमान से राम लंका से अयोध्या के लिए उड़ पड़े। मार्ग में उन्हें पहले मिथिला जाने का कार्यक्रम था।

तृतीय अङ्क के पहले प्रवेशक में सीता की अग्निपरीक्षा की चर्चा है। फिर सीता के ब्रह्मविधि से राजोचित धूमधाम से विवाह होने का वर्णन है।

तृतीय अंक में सीता के विवाह का विवरण है। वहीं जनक की इच्छानुसार राम का राज्याभिषेक हुआ। भरत युवराज बनाये गये। दशरथ ने इस अवसर पर आशीर्वाद राम को दिया—

चिरंजीव सुखं जीव प्रजा धर्मेण पालय।
नयेन्यथिन समयं पुरोधाय पुरोधसम्॥३·२६

कालान्तर में राम मिथिला से अयोध्या आ गये।

नाट्यशिल्प

प्रथम अङ्क के मध्य में विद्युज्जिह्व की एकोक्ति है, जिसमें वह भूत-भविष्य की योजनायें बताता है। इसी अंक में विद्युज्जिह्व और शूर्पणखा की एकोक्तियाँ हैं, जिनमें वे अपना भावी कार्यक्रम बताते हैं। शास्त्रीय नियमानुसार समवकार में विष्कम्भक और प्रवेशक का समावेश समीचीन नहीं है। द्वितीयाङ्क के पूर्व विष्कम्भक और तृतीय अंक के पूर्व प्रवेशक समाविष्ट है।

प्रथम अङ्क में अनेक पात्र रंगमंच पर परिक्रमण करते हुए एक दूसरे से असम्पृक्त बिना किसी काम में लगे वर्तमान रहते हैं। ऐसे पात्र हैं राम, विद्युज्जिह्व, खर, शूर्पणखा, लक्ष्मण और विराध। ऐसा होना नाट्योत्कर्ष में बाधक है।

छाया-तत्त्व की प्रकाम प्रचुरता इस नाटक में है। राम और सीता क्रमशः विद्युज्जिह्व और शूर्पणखा बने हुए हैं। इसको लक्ष्य करके लक्ष्मण ने प्रथम अंक में कहा है—

---

१. रुमा को रावण ने वालि की मृत्यु के पश्चात् बन्दी बना कर लङ्का में रखा था—यह संविधान इस नाटक में नवीन है।

राक्षसी राक्षसश्चापि माययैव परस्परम्।
मोहिता राक्षसास्तस्या हेतोर्याता यमालयम्॥ १·१००

स्थान-परिवर्तन के लिए 'परावृत्य किंचित्पदानि' पर्याप्त है। लक्ष्मण प्रथम अंक में सिद्धाश्रम से जनकपुरी इतने ही अभिनय से जा पहुँचते हैं। इस प्रकार अनेक सुदूरवर्ती स्थलों की कथाओं का दृश्य एक अंक में सम्पुटित हो जाता है।

कवि ने रामकथा में अद्भुत परिवर्तन किया है। स्वयंवर के अवसर पर ही रावण सीता का अपहरण करता है—यह इस प्रकार का अनूठा उदाहरण है। गद्योचित स्थलों को भी कवि ने पद्य में रखा है। यथा मिथिला का स्वयंवरोत्सवाकल्प है—

तत्र तत्र रचिता सुमप्रपा तालपल्लवसुमाम्बराचिता।
तोरणानि विविधानि कल्पितान्यद्भुतान्यपि च चत्वरादिपु॥

मनोरंजन के कार्यक्रम प्रेक्षकों के लिए ऊपर से भी रखे गये हैं। प्रथम अंक में 'नेपथ्ये दुन्दुभिध्वनिः' स्वयंवर के पहले होती है।

रंगमंच के पात्र रंगमंच से दूरस्थ घटनाओं को देखते हुए से उनके विवरण प्रस्तुत करें—यह रीति सूचना देने के लिए है। वस्तुतः यह अर्थोपक्षेपण है। कस्तूरि-रंगनाथ ने तदनुसार रंगमंच पर विराजमान विश्वामित्र से कहलवाया है—

रामभद्र-पश्य, पश्य।
अहमहमिकया महेश्वरस्य त्रिपुरहरं धनुरानमय्य सज्यम्।
द्रुतमिह कलयामि पश्यतेति क्षितिपतयस्त्वरया विशन्ति मंचान्॥

किं च पश्य

प्रीत्यावलोकयन् राज्ञः मृद्व्या वाचा विचारयन्।
दृशा सम्मानयन्नास्ते राजात्र मिथिलाधिपः॥१·१०७

शंखचूडवध

शंखचूड-वध के प्रणेता दीनद्विज का प्रादुर्भाव आसाम मे उन्नीसवी शती के प्रथम चरण में हुआ। दीनद्विज ने शखचूडवध की रचना १७२५ शक-सवत् तदनुसार १८०३ ई० मे की।[1] कवि सन्दिकै-वंशीय राजा बरफूकन के द्वारा सम्मानित था।[2]

नारायण के द्वारा आदिष्ट सूत्रधार ने इसका प्रयोग किया था। विष्णु की तीन पत्नियों—गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी का कलह हुआ। उनके परस्पर-शाप से गंगा और सरस्वती को नदी रूप मे मर्त्यलोक मे आना पडा और लक्ष्मी को तुलसी-पौधा बनना पड़ा।[3] पहले लक्ष्मी वेदवती बनी। तपस्या करती हुई प्रेमी रावण के घर्षण से भीत वह अग्नि मे जल मरी।

वृषभध्वज शिवभक्त था। शिवाराधनात्मक तप करते समय तीन युग तक शिव उसके आश्रम मे रहे।[4] एक बार सूर्य शिव से मिलने के लिए उस आश्रम मे आये। सूर्य वृषभध्वज पर बिगडे, क्योंकि उसने सत्कार नही किया। सूर्य ने उसे खोटी-खरी सुनाई तो शिव ने क्रोध करके त्रिशूल से सूर्य को मार डालना चाहा। तब तो आत्म-रक्षा के लिए सूर्य अपने पिता काश्यप को लेकर ब्रह्मा की शरण में पहुँचे। असमर्थ ब्रह्मा भी उनके साथ विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु ने कहा—मेरी शरण में *तुम निर्भय रहो। शिव वहाँ सूर्य को दण्ड देने आये तो विष्णु की स्तुति करने लगे।* विष्णु के पूछने पर शिव ने कहा कि मेरे आराधक को शाप देने वाले सूर्य को बस छोड देता हूँ, क्योकि वह आप की शरण में है। अब मेरे भक्त वृषभध्वज का क्या होगा? विष्णु ने कहा कि इस वैकुण्ठ के आधे दण्ड में पृथिवी के २० युग बीत गये। अब तो वृषभध्वज के कुल में धर्मध्वज और कुशध्वज हैं।

---

१. शाके तत्त्वमृनीन्दुभिर्विगणितेभापाविमिश्रैर्मुदा।
   याथर्यः संस्कृतकैरिमं रचितवान् भूदेववर्याग्रणीः॥ ३·४१

२. नान्दी मे कहा गया है—
   सन्दिकै-वंश-जन्मा जयति विमलधीः श्रीबृहत्फुक्कनोऽसौ।

३. शाप में सरस्वती ने कहा कि तुम्हारे स्नान से पापी पाप-विसर्जन करेंगे। वह तुम्ही में मिलेगा। तुम पापयुक्त बनोगी। हरि ने शाप का परिमार्जन किया—*यथा, सरस्वती एक कला से भारत की नदी हुई, दूसरी कला से सावित्री नामक* ब्रह्मा की पत्नी हुई और तीसरी कला से हरि की सन्निधि में रही। गंगा एकांश से शिव की जटा में गई, दूसरे अंश से हरि की सन्निधि में और तीसरे मे गंगा नदी बनी।

४. त्रियुगमवात्सीत्।

सूर्य के शाप से मुक्त होने के लिए वे वंशज महालक्ष्मी की आराधना करके समृद्धिशाली राजा हो चुके थे। कुशध्वज की पत्नी मालावती की पुत्री लक्ष्मी की कलारूपिणी वेदवती उत्पन्न हुई। वह सूतिका-गृह से नारायण-परायण बनकर तपोवन चली गई। उसे देववाणी सुनाई पड़ी कि अगले जन्म में विष्णु तुम्हारे पति होंगे। तब वेदवती ने वहाँ से हटकर गन्धमादन-पर्वत की गुहा में फिर घोर तप करना आरम्भ किया। वहाँ रावण आया और उससे प्रेम की बातें करने लगा। उसके न बोलने पर उसका हाथ पकड़ लिया। वेदवती ने क्रोध किया तो डरकर बोला कि देवि ! मेरे अपराध क्षमा करें। वेदवती ने उसे शाप दिया कि मेरे लिए तुम सपरिवार विध्वस्त हो जाओ। यह कह कर वह मर गई।

धर्मध्वज की पत्नी माधवी ने अतिसुन्दरी कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम तुलसी रखा गया, क्योंकि वह अतुल्य सुन्दरी थी। वह वर पाने के लिए ब्रह्मा की आराधना-हेतु बदरिकाश्रम जा पहुँची। उसने एक लाख वर्ष तप किया। ब्रह्मा उसे देखने आये। तुलसी ने अपने पूर्वजन्म की कथा बताई कि मैं तुलसी नामक कृष्ण की गोपी थी। मेरी प्रणयात्मक कृष्णासक्ति से क्रुद्ध राधा ने शाप दिया कि तुम मानुष योनि में चली जा। कृष्ण ने कहा कि फिर ब्रह्मा की आराधना से तुम मेरी बन जाओगी। ब्रह्मा ने कहा कि कृष्ण का पार्षद गोप सुदामा राधा के शाप से शंखचूड नामक दानव है। तुम तो उस मेरे आराधक की पत्नी कुछ दिनों के लिए बन जाओ।

तुम दोनों शाप से मुक्त होकर श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लोगे। तुम वृन्दावन में तुलसी नामक श्रेष्ठ वृक्ष बनोगी। तुम्हारे बिना भगवान् की पूजा पूरी न होगी। द्वितीयाङ्क के अनुसार तुलसी के यौवन-काल में एक दिन मकरध्वज ने उस पर पुष्पबाण का प्रहार किया। उसने स्वप्न में किसी सुन्दर वर का दर्शन किया था। वह शंखचूड था। उसे दूसरे दिन आश्रम के समीप साक्षात् देखा। शंख भी उस पर मोहित था। उन दोनों की प्रेमासक्त बातें हुईं। ब्रह्मा ने उनसे कहा कि गान्धर्व विवाह तुम दोनों कर लो। फिर तो—

स शंखचूडो विधिवाक्यमादरात् गृह्णन् तुलस्याङ्नो विधिवद् विवाहकम्।
चकार गन्धर्वमयुग्मबाणजां पीडां मना मनसा गृहीतवान्॥

शंखचूड तुलसी के साथ राजाधिराज बनकर वैभवशाली हुआ। उसने देवों का भी सर्वस्व अपहरण कर लिया। देव इन्द्र के पास पहुँचे। इन्द्र ने कहा कि इसकी दवा तो ब्रह्मा ही कर सकेंगे। ब्रह्मा ने कहा कि मैं कुछ नहीं कर सकता। शिव के पास जाओ। शिव ने कहा कि मैं भी असमर्थ हूँ। सभी हरि के पास चलें। वे वैकुण्ठ लोक में पहुँचे। देवों ने विष्णु की स्तुति की—

वयं हि शंखपीडिताः प्रपीडिताः क्षुधाबलात्
बलाहितैः सुतं सुतैः समं जहीहि दानवम्॥२·३४

विष्णु ने एक शूल उन्हें दिया और कहा कि इसी से शिव उसका वध करेंगे।

शिव ने अपने पार्षद पुष्पदन्त को शंखचूड के पास भेजा कि देवताओ पर अत्याचार बन्द करो, नही तो मैं उनकी ओर से आया हूँ, मुझसे लड़ो। शखचूड ने विनयपूर्वक प्रतिसन्देश शिव को भेजा कि युद्ध के डर से हम लोग नही घबराते। कल युद्ध कर लें।

शिव की बड़ी सेना युद्ध के लिए आ गई। शखचूड ने तुलसी से पूछा कि युद्ध का प्रकरण है। क्या कहती हो? तुलसी ने स्वप्न बताया कि मेरे स्वप्न के अनुसार शिव आप का वध करेंगे। आप मेरे द्वारा प्रस्तुत स्वादिष्ठ भोजन कर लें और मेरे लिए समाधान करें। शख ने कहा कि मृत्यु से क्या डरना? उसने अपने पुत्र सुचन्द्र को राज्यभार संभालने के लिए कहा। फिर वह लडने के लिए चल पड़ा।

तृतीय अङ्क के अनुसार शिव ने पुष्पभद्रा नदी के तटीय युद्धभूमि मे शंखचूड को समझाया कि तुम तो वैष्णव हो। तुम्हे राज्यभोग से क्या लाभ? तुम देवों का राज्य उन्हे दे दो। शंख ने कहा कि दानवो का देवो से आनुवंशिक वैर है, क्योंकि उनकी अपकार-परम्परा अगणित है। आप व्यर्थ इस पचड़े मे पड़े। यदि कहीं हम छोटों से हारे तो नाक कट जायेगी। तब तो—

दीन द्विज कहे सुन रसिकप्रवर
भैलेक प्रद्युन युद्ध देव-दानववर ॥३·६

घनघोर युद्ध हुआ। अकेले महाकाली ने सैकड़ों दानवो को धराशायी किया। इसका वर्णन है—

रणरसे नाचे दिगम्बरी
दिगम्बरी मुक्तकेशी उलंगट घोरवेशी
पदभरे ना सहे धरणी ।४·१२

अन्त मे शखचूड ही काली से लडने लगा। जब काली ने पाशुपतास्त्र से उसे मारना चाहा तो आकाशवाणी हुई—

हे कालिके, अस्य कण्ठे कृष्णकवच यावदस्त्येव पत्न्याः तुलस्याः पतिव्रता धर्मस्तावदस्य मृत्युर्नास्ति। अकारणं पाशुपतप्रहारं मा कुरु।

तब तो काली ने सभी दानवों का भक्षण कर लिया। शेष रहा शंखचूड और केवल एक लाख सेना। शिव स्वयं युद्ध करने चले—

समरे साजिल शूलपाणिः
वृषभवाहने चढि हाथन त्रिशूल धरि
विराजे माथात मन्दाकिनी ।३·१६

दो वर्षों तक शिव और शखचूड का युद्ध हुआ। एक दिन विष्णु वृद्ध भिक्षुक का रूप धारण करके शंखचूड से मिले और भिक्षा माँगी कि हमें कण्ठस्थित कवच दे दो, जिसे पहने रहने पर वह अजेय था। उसने यह जानकर भी कवच दे दिया कि इसके बिना मेरी मृत्यु हो जायेगी। तब तो हरि उसे पहन कर तुलसी का व्रतभंग करने के लिए राजधानी में आये। उन्होंने शंखचूड का रूप धारण कर रखा था। तुलसी के पूछने

पर झूठा युद्धवृत्त बताया कि ब्रह्मा ने सन्धि करा दी। तुलसी ने उनकी प्रणय-विधि से जान लिया कि ये शंखचूड नहीं है। तुलसी ने उन्हें डाँट कर कहा—

हे कपट वेशधर, कस्त्वं शीघ्रं कथय न चेत् शापं ददामि।

फिर तो हरि अपने रूप में प्रकट हुए। उन्हें देखकर तुलसी अपना धैर्य खो बैठी। उसने कहा कि मेरे पति को मरवाने के लिए तुमने मेरा पातिव्रत्य नष्ट किया। अब तुम्हें शाप देती हूँ—

त्वं शिलारूपो भव।

वह क्षोभ से विलाप करने लगी। तब हरि ने उसके पूर्वजन्मों की कथा सुनाई। उन्होंने तुलसी-पत्र के धार्मिक पुण्यात्मक महत्त्व की स्थापना कर दी। उसने भौतिक शरीर छोड़कर दिव्य देह से विष्णु के हृदय में स्थान कर लिया।

तुलसी का पातिव्रत्य नष्ट होने पर शिव ने शंखचूड को शूल से तत्काल मार डाला। शिव ने उसकी अस्थि समुद्र में फेंक दी, जिससे आज भी शंख समुद्र में मिलते हैं।

शैली

शंखचूडवध में संस्कृत भाषा नितान्त सरल, सुबोध और संवादोचित है। कहीं-कहीं संस्कृत-निष्ठ असमी संस्कृत से अभिन्न लगती है। यथा,

नवघनरुचिर - सुवेश श्यामराय।
पीतसस्त्रे प्रकाशय सौदामिनी-प्राय ॥ १·२२
त्रिवलिवलितगले कौस्तुभेर ज्वाला।
आजानु-लम्बित-वहि आछे वनमाला ॥ १·२३

कवि संस्कृत और असमी—दोनों भाषाओं में गीतों का संग्रन्थन करता है। सूत्रधार दूसरों का प्रतिनिधि बनकर कहीं संस्कृत और कहीं असमी बोलता है।

कवि की संस्कृत-भाषा अनेक स्थलों पर व्याकरण और छन्द के नियमों का वैसे ही अतिक्रमण करती है, जैसे मध्ययुग में अन्य भाषा-कवियों की संस्कृत-रचना में दिखाई पड़ता है।

गीत

गीत-प्रचुर इस नाटक में चालेङ्गो, बरारी, मुक्तावली, लेछारी, काफिर, तुर, देशाख, श्री, मालची, कल्याण आदि राग हैं। तदनुरूप विविध रागों का प्रयोग इनके गायन में है। गीतों के अन्त मे कवि ने अपना नाम भी कहीं-कहीं पिरोया है। यथा,

दीनद्विज बोले वाणी सुन माई ठकुराणी आत्मदोष विरह इमत ॥१·४३

स्तुतियों की प्रचुरता है। यथा वृषभध्वज के द्वारा शिव की स्तुति है—

ज्वलन्नागमालं शिरे गंगमालं
भजे विश्वनाथं च विश्वेशवन्द्यम्।
करे भालपात्रं भवानीकलत्रं
भजे लोकनाथ सुरेन्द्रैः प्रपद्यम् ॥ १५०

इस नाटक मे देववाणी का अर्थोपक्षेपक रूप मे उपयोग हुआ है। यथा,

देववाणी—हे वेदवति, जन्मान्तरे तव प्रार्थनीयो हरिर्भर्ता भविष्यति।
इदं दुःशक्यं तपः त्यज।

सूत्रधार

भाण के विट की भाँति अकेले सूत्रधार रंगमंच पर है। वह सभी पात्रों की बातें प्रेक्षकों को सुनाता है। जैसे भाण मे रंगमंच पर कोई कार्य होता नहीं दिखाई देता, वैसे ही इसमें भी कोरा मौखिक व्यापार सूत्रधार के द्वारा प्रस्तुत है।

शंखचूडवध श्रेष्ठ अंकिया-नाटो में अन्यतम है।[1]

---

१. इसका प्रकाशन १९६२ ई० मे आसाम साहित्य सभा, जोरहट (आसाम) से हो चुका है।

शृंगारलीला-तिलक भाण

भास्कर-प्रणीत शृङ्गारलीला-तिलक भाण का कालीकट के राजा विक्रमदेव के समाश्रय में प्रथम अभिनय हुआ था।[1] वे केरल के सुविख्यात नम्पूतिरि वंश में शोरनूर के निकट उत्पन्न हुए थे। वे कोचीन के महाराज के द्वारा भी सम्मानित थे। उन्होंने त्रिप्पनिथुर में वेदान्त और कूटल्लूर में व्याकरण का अध्ययन किया था। कवि की मृत्यु स्वल्पावस्था में १८३७ ई० में हो गई, जब वे लगभग ३२ वर्ष के थे।

सूत्रधार ने अपनी प्रस्तावना में भास्कर का वर्णन किया है—

वाग्देवताकेलिरङ्गभूमीकृतमुखाम्बुजः।
सोऽयं देव्या च मेदिन्या तिलकत्वेन धार्यते ॥४

भास्कर ने इस भाण की रचना की, जब वे केवल १६ वर्ष के थे। सूत्रधार ने कहा है—

अम्भोधिगम्भीरमतिरुपषोडशहायनः।
शृङ्गारलीलानुभवो यस्य प्राग्जन्मजः किल ॥५

स्वयं राजा विक्रमदेव ने अनेक कवियों के दिये हुए रूपकों में से इसको चुन कर सूत्रधार से कहा कि इसका अभिनय करो।[2]

प्रथम अभिनय करने वाला पात्र था सर्गदास, सूत्रधार की बहिन का पुत्र और उसका शिष्य। उसकी वेष-वर्णना है—

स्निग्धांगरागच्छुरिताङ्गयष्टिर्मुग्धाङ्गनापाङ्गचकोरचन्द्रः।
कौसुम्भवासाः कनकांशुकोद्यद् उष्णीषबन्धो धृतवेत्रदण्डः ॥

सूत्रधार और नटी स्वयं प्रेक्षक बनकर अभिनय देखते रहे कि शिष्य ने कहाँ तक सफलता पाई है।

कथावस्तु

सत्यकेतु का सारसिका से वियोग हो गया था। सारसिका पुरारातिपुर की अनुत्तम-लावण्य-मण्डिता सुन्दरी एक दिन शिव का उत्सव देखने के लिए सखियों के साथ गई। उसने सत्यकेतु नामक विट का मन बुरी तरह चुरा लिया। सत्यकेतु ने विट को सारसिका के विषय में बताया तो उसने कहा कि आज सन्ध्या तक सारसिका तुम्हारी होगी। सारसिका का पहले से ही प्रेमी कुलिश नामक विट था। विट ने चित्रसेन को

१. इसका प्रकाशन कलकत्ते से १९३५ ई० में हो चुका है। इसकी प्रति संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय में प्राप्तव्य है।

२. इससे प्रतीत होता है कि रूपक बिना प्रस्तावना के ही लिखा जाता था। सूत्रधार प्रस्तावना लिख देता था।

यह काम दिया कि तुम सारसिका के घर जाओ। मैं कुलिश को उससे दूर हटा ले जाऊँगा।

वेशवीथी मे सारसिका के घर के पास विट पहुँच गया। उसने देखा कि वहाँ कुलिश कुपित होकर अलिन्द मे पड़ा है। थोडी देर मे उसके अपने घर चले जाने पर विट भीतर घुसकर सारसिका से बातें करने लगा। उसने सारसिका से पूछा कि यह तुम्हारा प्राणप्रिय कुलिश कुपित क्यो है ? तुम विषण्ण क्यों हो ? उससे बात करने पर विट को ज्ञात हुआ कि चित्रसेन उससे मिलकर सत्यकेत की चर्चा कर चुका है। फिर तो विट आगे बढ़ा। वह मार्ग मे नवचन्द्रिका, चन्दनलता, पद्मिनी, नारायणी आदि से मिला, इनका समस्यायें सुनीं और समाधान प्रस्तुत किया।

इसके अनन्तर चित्रसेन उससे मिला। उसने बताया कि आपके काम से जा रहा था तो मार्ग में नवचन्द्रिका मिली। उसने मेरा काम बनाया था। फिर मैं वहाँ से कुलिश के यहाँ गया और उससे कहा कि मृगया के लिए रात्रि के समय चलें। इस प्रकार कुलिश के रात मे चले आने के कार्यक्रम से सत्यकेतु का सारसिका से निर्विघ्न मिलना सम्भव होगा।

कवि ने भाण की रचना करने का प्रायश्चित्त इन शब्दों में व्यक्त किया है—

निर्लज्जतायाः कस्याश्चिन् निर्बन्धाद् रचितं मया।
इदं हार्सैकसक्तानां विदुषामस्तु तुष्टये॥



सुन्दरवीर-रघूद्वह का नाट्यसाहित्य

सुन्दरवीर-रघूद्वह के पितामह वीरराघव सूरि कविराज थे और उनके पिता कस्तूरिरंगनाथ कविकुञ्जर और न्याय के महापण्डित थे। उनका जन्म तामिल प्रदेश के दक्षिण अर्काड् जिले में शिरुवलूर नामक अग्रहार में हुआ था।[1] वे भागवत सम्प्रदाय के थे। कवि ने भोजराज नामक अंक कोटि का रूपक, रम्भारावणीय नामक ईहामृग और अभिनवराघव नामक नाटक की रचना क की

भोजराजांक

सुन्दरवीर-रघुद्वह ने १९ वीं शती के प्रथम रणमें च भोजराज नामक अङ्क की रचना की।[2] इसका प्रथम अभिनय उस समय हुआ, जब रात्रि विरतप्राया थी। गोपनगरी या पुरी (तिरुक्कोवलूर) में दक्षिण पिनाकिनी (पेण्णार) नदी के तट पर देहलीश नामक विष्णु की यात्रा के उत्सव में प्रदर्शन के लिए इसे कवि ने लिखा था। यह उत्सव रामजन्मोत्सव के लिए चैत्र-रामनवमी को होता था।

सूत्रधार के अनुसार रसिकों का आदेश था कि कोई नया रूपक देखना है। सूत्रधार ने प्रस्तावना-कालिक रंगस्थल का वर्णन किया है—

सङ्कीर्णाः प्रसवाश्च मर्दलरवैस्तालध्वनिः श्रूयते
वीणागानरवेण गीतिनिपुणैस्संगीतमुद्गीयते ॥
कर्णानन्दकरं च तत्सुसुषिरं चेतः समाकर्षति
स्वच्छन्दं ललनाजनस्सकुतुकं नृत्ताय सज्जोऽधुना ॥

अर्थात् रंगपीठ पर स्त्रियों का नृत्त होता था, तबला और वीणा की संगति में गीत गाये जाते थे और इसके पश्चात् रमणियों का नृत्त होता था।

कथासार

भोज वन में विचरण करता है। मरते समय उसके पिता ने कहा था कि भोज का विवाह आदित्यवर्मा की कन्या लीलावती से होना है। उस कन्या को भोज के चाचा मुञ्ज ने भीलों के द्वारा कहीं उड़वा दिया। उसने अपनी बहिन की लड़की विलासवती को भोज के पीछे लगा दिया। मुंज ने अपने सेनापति वत्सराज से कहा कि वन में ले जाकर भोज की हत्या कर दो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा? वत्सराज ने कुमार भोज से कहा कि आप को कुछ समय तक वन में रहना है। भोज

१. श्रीवाल—र्किगृहपुरीविहरद्घनेश—पादाब्जरेणुपरिमण्डितमूर्वभागः
श्रीसात्वतामृतमहोदधिपूर्णचन्द्रः कस्तूरिरंगतनयो जयति सुमेधाः ॥

२. इसका प्रकाशन १९७१ ई० में मलयमारुत नामक पत्रिका के द्वितीय स्पन्द में हो चुका है।

ने एक श्लोक मुंज के लिए दिया और मिस्रवेष में वन में गया। वत्सराज ने वह श्लोक और पिशाचविद्या से निर्मित भोज का सिर मुञ्ज को अर्पित किया। भोज का श्लोक था—

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते
नैकेनापि समं गता वसुमती नूनं त्वया यास्यति॥

मुंज ने भोज की माता शशिप्रभा को और बहिन विलासा को बन्दी बना दिया—यही श्लोक का प्रभाव पड़ा।

बुद्धिसागर नामक मन्त्री से मुञ्ज का अत्याचार नहीं देखा गया। उसने आदित्य-वर्मा से मुंज पर आक्रमण कराने के लिए कालिदास को भेजा।

वन में भोज को अपनी प्रेयसी विलासवती की स्मृति सताती है। इसी समय उसे मुंज के द्वारा वन मे निर्वासित लीलावती सखियों के साथ मिलती है। वह लक्ष्मी से प्रार्थना करती है—

अयि भगवति सिन्धुराजकन्ये मुरहर-वक्षसि लक्षितस्तनार्द्रे।
नरपतितनयः करं मदीयं कुरु करुणां परिपीडयेद्यथा त्वम्॥३०

पहले तो भोज ने उसे विलासवती समझा था, पर यह श्लोक सुनने के पश्चात् उसने समझ लिया कि यह कोई विवाहार्थिनी कन्या है। यह सोचकर वह सो गया। तभी दैव प्रेरणा से पतिंवरा लीलावती उसके पास पहुँची। वहाँ भोज को देखकर उसके मुख से निकल पड़ा—

किं वैप मन्मथकरः किं वेणुधन्वा किं स एव भगवान् मदनाभिरामः।
किं गोपिका कुलकुचाचलमर्दितोराः किं फल्गुनः पृथुयशाः न च भिक्षुवेषः॥

उसने लक्षणों से समझ लिया कि ये भोज हैं। उसने भोज को सचेत करने का प्रयास किया, किन्तु कुछ देर तक भी प्रयास करने पर असमर्थ होने पर वह सखियों से मिलने चल पड़ी। जाने के पहले उसने वटपत्र पर ताम्बूल-रस से दो श्लोक लिखकर भोज की छाती पर रख दिया।

भोज को ताम्बूल-रस की सुगन्ध से प्रहर्ष हुआ। उसने समझा कि मरकर मोहिनी बन कर विलासवती ने निद्रा में मुझे यह पत्र दिया है। पत्र पढ़कर उसने समझ लिया कि यह विलासवती का पत्र नहीं है, अपितु किसी कान्तार्थिनी का है। पत्र का दूसरा पद्य है—

न हि ते विरहं भवामि सोढुं न हि गन्तुं यतते मनोऽधुना मे।
अयि नायक यामि नत्र ते मे गुरवस्सन्ति शुभाङ्ग देहमनुज्ञाम्॥

तब तो भोज उसे ढूँढने चला। थोड़ी दूर पर उसको पदवी मिली। वहाँ शैलाग्र से गुफा दिखाई दी। उधर से आते दो व्यक्ति दिखाई पड़े। उनकी बात-चीत से भोज को ज्ञात हुआ कि वे मेरी हत्या करने के लिए नियुक्त हैं। उनकी

अड़बड़ बातें सुनकर भोज ने कहा कि मैं अकेले तुम दोनों को मार डालूँगा। तब तो उनका होश ठिकाने आया। उनमें से एक ने जाकर गुहा के अरण्यराज जयपाल को बुलाकर भोज को दिखाया। जयपाल उनसे प्रभावित होकर बोला—इस महानुभाव की हम पूजा करेंगे। जानुक ने कहा कि यह राक्षस है। कहीं रूप-परिवर्तन करके हमारे घर पर रहने वाली लीलावती का अपहरण न करे।

जयपाल भिक्षु को राजोचित वेश धारण कराने के लिए अपनी गुहा से जिन अलंकारों को लाया, उन्हें भोज पहचान गया कि ये मेरे ही हैं। उसकी उद्विग्नता देखकर अरण्यराज ने अपना परिचय दिया—मैं जयपाल, मालवेश्वर सिन्धुलदेव का मित्र हूँ। तुम्हारे मारे जाने के समाचार से सन्तप्त होने पर मुझसे कमला ने कहा—

मा शुचो वत्स भोजं तं पालयाम्यत्र कानने ॥४८

मुझे अमात्य बुद्धिसागर का पत्र मिला है—

भोजस्त्रातो वत्सराजेन मुंजात् सर्वे मुंजं हन्तुमिच्छन्ति पौराः।
आयात्यद्यादित्यवर्मा नियोद्धुं सन्नद्धास्ते सापि भूपालराज्ञी॥

मैंने आपकी सम्पत्ति चुरवाकर इसी गुफा में रख छोड़ी है कि इसे मुञ्ज कहीं अपने अधिकार में न कर ले। मुंज को डराकर तुम्हारी माता और पत्नी को अन्तःपुर से निकालकर अपनी गुफा में रखा है। गुफा में भोज के आवास की व्यवस्था कर दी गई। वहाँ भोज को मानस-देवता विलासवती की स्मृति हो आई—

मल्लीकुसुमैः कीर्णा मर्दितकर्पूरकुंकुमरसार्द्रा।
मंजुलताम्बूलदला तव संश्लेषं प्रबोधयति ॥५३

थोड़ी देर में पहले दर्पण में दिखी लीलावती पश्चात् पास आ गई। भोज से उसने वटपत्र पर अपना मनोभाव व्यक्त किये जाने की घटना कही। भोज को उससे प्रेम हो गया, पर उसने सोचा कि कहीं यह भीलकन्या तो नहीं है, जिससे कामवशात् प्रेम करने लगा हूँ। लीलावती ने उसकी विचिकित्सा समझ ली और अपना परिचय दिया तो भोज ने समझ लिया कि बचपन में अपनी बहू बनाने के लिए इसे मेरी माता ने पाला था। इसकी हत्या करने के लिए मुंज ने भीलों को दिया था।

तभी हत्यारे भोज को मारने के लिए गुहाद्वार पर आये।[1] लीलावती ने योगेश्वर से प्राप्त मन्त्र भोज को दिया, जिससे वह अपने को अदृश्य रख सकता था। भोज ने कहा कि अब तो गुप्त भाव से यहीं तुम्हारे अनुराग-सौख्य से परितृप्त होकर रहूँगा।

जयपाल को यह सब ज्ञात हो गया था। इस स्थिति में अकृतज्ञता के शोक को न सह सकने के कारण पर्वत-शिखर से कूदकर वह आत्महत्या करने ही वाला था। लीलावती ने कहा कि मैं अपने पालक पिता को मरने न दूँगी। उसने कहा कि सभी

१. इन हत्यारों को शोणिताक्ष ने भेजा था। जयपाल की पत्नी दुर्मुखी ने कहा था कि भोज को मरवा दो तो लीलावती को तुम्हें दूँगी।

कुशल है और होगा। आप निश्चिन्त हों। मैंने सबको बचा लिया है। जयपाल ने जान लिया कि मेरा अभीष्ट पूरा हुआ कि भोज का लीलावती से गान्धर्व विवाह हो चुका। उसने कहा कि धारा में जाकर मुंज को जीत कर भोज का अभिषेक कराता हूँ। लीलावती भी साथ गई। उसने पुरुष-वेष धारण कर लिया था।

धारा में जयपाल ने देखा कि युद्ध की सज्जा हो रही है। भोजपक्षीय राजाओं ने धारा को घेर रखा था। गोपन-विद्या से लीलावती और जयपाल नगर के भीतर पहुँचे। वहाँ विलासवती चिता में जलने जा रही थी। वह भोज के लिए विलाप करती हुई कहती थी—

हा धारानगररत्नप्रदीप, कथं ते पादकमलमनालोक्य जीवितुमुत्सहे।

शशिप्रभा (सास) कहती थी कि तेरा ही मुख देखकर जीवित थी। अब मैं भी अग्निसात् हो जाऊँगी।

जयपाल और लीलावती प्रकट हुई। विलासवती को संरम्भ से रोका। शशिप्रभा ने कहा—

राजा गतः पितृवनं तनयोऽपि वालः प्राप्तो वनं श्रुतिपदाविषयः कठोरम्।
वत्सा स्नुषा मम चितामधिरोढुकामा हास्ये ततोऽहमपि जीवितमेतदेव ॥८५

तब जयपाल ने उन्हें बताया—

कुशली भोजकुमारः

इस बीच आदित्यवर्मा का धारा पर आक्रमण हो गया। उस पर मुंज के सैनिक प्रहार करने लगे, पर शीघ्र ही मुंज परास्त हुआ।

धारा जिताद्य युधि मालवराजधानी मुंजो गतो हिमगिरिं तपसे निराशः।
आनेतुमत्र विपिनात् स्वयमेव भोजं सेनापतिद्रुततरो नगरात् प्रयाति ॥

जयपाल ने आदित्यवर्मा और पद्मावती का परिचय लीलावती से कराया कि यह आपकी कन्या है। फिर भोज का अभिषेक हुआ।

नाट्यशिल्प

अङ्क के आरम्भ के पूर्व विष्कम्भक है। नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार विष्कम्भक इस कोटि के रूप में नहीं होना चाहिए था। परवर्ती युग में इस नियम की व्यर्थता जानकर इसे प्रायशः छोड़ दिया गया। सुदूरस्थित अनेक स्थलों की घटनायें बिना दृश्य परिवर्तन के ही अङ्क में दिखाई गई हैं। केवल इतना ही कहा जाता है—

(इति सत्वरं परिक्रम्य) अहो आगतावेव समीहित स्थलम्।

इतने मात्र से अरण्यभूमि से धारा की घटना-स्थली में पात्र आ जाता है। इस प्रकार एक अंक में अनेक दृश्यस्थली सम्भव हैं। भोज-राजाङ्क में छायानाट्य-तत्त्व महत्त्वपूर्ण है। इसमें रूपक के आरम्भ में ही भोज भिक्षु का वेष धारण करके उपस्थित होता है। अङ्क के मध्य में लीलावती को प्रतिबिम्ब में देखना भी छायातत्त्वानुसारी है। यथा,

किं नाम माया जगतो विधातुः किं वाप्सरो मोहनशक्तिरेषा।
कन्दर्पदेवोन्मथितान्मनोव्धेर्जाताथवा किं मम कामलक्ष्मीः ॥ ५९

एकोक्ति का उत्तम आदर्श विष्कम्भक के पश्चात् मिलता है। भिक्षुवेष में नायक अकेला रंगपीठ पर अरण्यवास-विषयक विचारणा प्रस्तुत करता है। उसे अपनी प्रेयसी विलासवती का स्मरण हो आता है—

मन्देनैव समीरणेन नितरां मां वीजयत्यन्तिके
मल्लीकुड्मलकैतवेन कुरुते मन्दस्मितं सादरम्।
सम्यग्दर्शयतीह तैस्सुरभिलैश्शोणाधरं पल्लवै-
र्गायन्ती मृदुपट्पदप्रियवधूनिस्वानगुम्फेन नः ॥

अयि विलासवति

नालोकितासि सरसं न च भाषितासि
नालिंगितासि च मुदा न च चुम्बितासि। इत्यादि

वह काम व्यथा को प्रकट करता है। यथा,

आवयोर्यौवनं भीरु जगाम विलयं स्वयम्।
यन्मे काम गजेन्द्रस्य समासीत् सचिवोऽङ्कुशः ॥

अङ्क के मध्य में गुफा में अकेला भोज एकोक्ति द्वारा पर्यङ्क का वर्णन, विलासवती की स्मृति, मुकुर-दर्शन, लीलावती का छाया-विषयक उद्गार प्रकट करता है।

एकोक्ति का एक अन्य स्वरूप है लीलावती को मूर्छित भोज के पास अकेले लाकर उसकी प्रतिक्रियाओं की वर्णना। वह कहती है—

आः कथं सुप्रार्थितोऽपि न मां विलोकयति। (विचिन्त्य) तादृशी निद्रा, भवतु उपचार-व्याजेन प्रबोधयामि। (इत्युशीर हिमोदकं संसिच्य, सुगन्धचन्दनेनानुलिप्य) कथं न बुध्यते, कान्तः। तद् व्याहारेण प्रबोधयामि। अयि कान्त,

कान्तार-संचार-परिश्रमेण क्लान्तं भवन्तं करुणाविहीना।
निद्रापि संक्रम्य हठेन भुंक्ते विमुच्य नाथं व्रज दूरदेशम् ॥

(निद्रामुद्दिश्य, सरोषहुंकारम्)

भोज के जागने पर उस पत्र को देख कर उसकी एकोक्ति इसी प्रकार की है।

हास्य के लिए हत्यारे जानुक और वाहुक तथा भोज की बातचीत का संविधान नाट्य-साहित्य में विरल है। भावात्मक वैषम्य का निदर्शन उस प्रकरण में मिलता है, जब भोज का लीलावती से प्रगाढ प्रणय चल रहा है और तभी भोज के दूत उसकी हत्या करने के लिए आ पहुँचते हैं।[1]

---

१. भोज ने इसका विवरण देते हुए कहा है—यदावयोस्समागम एव संजातो विरहावसरः।

रंगमंच पर *नायक भोज नायिका लीलावती का आलिंगन करता है।*[1]

इति गाढमालिंग्य। ......इति मुखमाघ्राय।

सुन्दरवीर-रघूद्वह को नानाविध सविधानों की सरचना मे अनुपम लाघव प्राप्त है। इसके बल पर उन्होने कथावस्तु मे सर्वत्र औत्सुक्य का बीज वपन किया है। उदाहरण के लिए लीलावती पुरुषवेष मे है। उसकी पालक माता उसे बहुत दिनों के पश्चात् पुरुष वेष में पाती है तो कहती है—

वत्स लीलाशुक (लीलावतीनाम) भोजप्रियवयस्य, आगच्छ (*इत्याहूय गाढमालिंग्य शिरस्समाघ्राय*)" ......(*अंगसौष्ठवं निर्वर्ण्य*) वत्स लीलाशुकरूपेण, वयसा, सौन्दर्येण च मे वत्सा लीलावतीव दृश्यसे।

अक कोटि के रूपक मे एक ही अंक होता है। इसमें अनेक दिनों की घटनायें दृश्य होती हैं। यह रीति अन्य कोटि के रूपकों में भी एक अंक मे अनेक दिनों की घटनाओं को सम्पुंजित करने के लिए मार्ग खोल देती है।

भोजराजाङ्क प्राचीन शास्त्रीय परिभाषा के अनुरूप उच्चकोटिक रूपक है। सूत्रधार ने अङ्क की परिभाषा दी है—

करुण-रसभूयिष्ठं शृङ्गाररसमेदुरम्।
कन्यारत्न-कथारम्यं रूपक तत्प्रयुज्यताम्॥ ८

रम्भारावणीय

रम्भारावणीय ईहामृग कोटि का रूपक है,[2] जिसका लक्षण नान्दी में इस प्रकार दिया गया है—

मृगीमिव मृगः पुमाननभिलाषिणीं संभ्रमान्।
प्रसह्यासुरसुन्दरीं भजति चित्तजन्मेहया॥

ईहामृग कोटि के रूपक दुर्लभप्राय हैं। इस दृष्टि से इस कृति का विशेष महत्त्व है।

रम्भारावणीय का अभिनय किसी उत्सव के उपलक्ष्य में नहीं हुआ, अपितु सामाजिकों की इच्छा से हुआ।

कथासार

रावण दिग्विजय करता हुआ हिमालय पर पहुँचा। वह कामपीडित था। उसे चराचर ऐसा ही प्रतीत होता था। तभी तो उसने शिव के विषय मे कहा—

ईश्वरोऽपि शिशिरर्तु वैभवान्मीनकेतनशराहतो भृशम्।
गह्वरं तुहिनभूभृतो विशन्नप्युमार्धवपुषाभिरक्ष्यते॥१९

वहीं उसे बिचारा नलकूबेर पत्नी-वियोग मे रोता हुआ मिला। किस सुन्दरी के लिए वह रो रहा है? यह जानते रावण को देर न लगी। उसकी प्रेयसी रम्भा कपिल

---

१. इति गाढमालिंग्य कपोलं जिघ्रति।

२. इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

योगी के आश्रम में अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर नाचने के लिए प्रयाग गई थी। रावण ने निर्णय लिया कि नलकूबेर तो सदा-सदा के लिए रोता रहे। रम्भा अब सदा मेरी काम-पिपासा की परितृप्ति के लिए होगी।

हिमालय से रावण नर्मदा-तट पर शिव की पूजा के लिए आया। निकट ही कार्तवीर्य का महोद्यान था, जहाँ से रावण की पूजा से लिए फूल लाने के लिए शार्दूल गया तो उसे कार्तवीर्य के योद्धाओं ने धमकाया। शार्दूल को फूल लेना था। उसने एक चाल चली। उसने यदुराज का रूप बनाया। यदु कार्तवीर्य का सतीर्थ था। उसे वाण के सचिव रत्नाङ्गद ने पकड़ लिया, क्योंकि वाण ने उससे कहा था कि कृष्णचतुर्दशी को भद्रकाली के लिए वलि समर्पण करने के लिए किसी रमणीय राजकुमार को ले जाना है। उसे ढूँढ़ कर लाओ। शार्दूल ने तब वनपालों से कहा—मैं यदु हूँ और यह (रत्नांगद) रावण का दूत है।

कृत्रिम यदुराज (वस्तुतः शार्दूल—रावण का दूत) कार्तवीर्य सहस्रार्जुन से मिला। मित्रदर्शन से वह प्रफुल्लित हो गया। उसने रत्नाङ्गद को देखा, जिसे शार्दूल ने रावण का दूत बताया था। अर्जुन ने कहा कि राक्षस नहीं है, कोई महापुरुष है। रत्नाङ्गद ने अपना परिचय दिया कि वाण के आदेशानुसार मैं यदु को लेने आया था।

शार्दूल की समझ में बात आ गई कि रत्नाङ्गद के साथ जाने में ही कल्याण है। वह यज्ञभूमि में राक्षस समझा जाकर छोड़ दिया गया। फिर तो वाण के अन्तःपुरीय रमणियों के निशार, चण्डातक, चोली आदि धोने के काम में लगाया हुआ शार्दूल रावण की दृष्टि में धन्य हो गया, क्योंकि उसके शब्दों में—

संभोगश्रमजन्मघर्मसलिलक्लिन्नांशुकैर्नैकदा
नारीणां युववक्त्रमार्जनमहो पुण्याहतुल्यं विदुः ।१·३७

विना रज्जुं विना शास्त्रं वध्यते हन्यते मनः
तादृशां सुदृशां सेवा स्वर्गभोगोपमा न किम् ॥

कलकण्ठसायुज्यादपि कनककण्ठीसायुज्यमेव प्रशस्तम् ।

इधर रावण की प्रेयसी गन्धोदरी को वाणासुर के कामपाश में बांध दिया गया था। नरकासुर उसे लङ्का से अपहृत करके लाया था। रावण की वहिन शूर्पणखा का मधु ने अपहरण किया। वाण ने गन्धोदरी को अपने लिए नरकासुर से जीत कर प्राप्त कर लिया है।

शार्दूल को सूली चढ़ा दिया गया, क्योंकि—

कात्यायनी महेज्यायां विघ्नाय यदुतां गतः ।
कारानीतोऽपि दौरात्म्याद्रक्षः शूले प्रमापितः ॥१·५५

चित्रांगद नामक वाणासुर के सेनापति को ज्ञात हो गया कि गन्धोदरी के चक्कर में रावण शोणितपुर में आया है। उसे जीवग्राह पकड़ने की योजना चित्राङ्गद की

थी। उसे भी सूली पर चढाना था। रावण ने चित्राङ्गद की अकड़ सुनी तो चन्द्रहास से उसका गला काटने चला। दोनों लड़ने के लिए चलते बने। चित्राङ्गद ने रावण को जीवित ही पकड़ लिया। उसे शूली पर चढाना था, पर प्राणभिक्षा माँगने पर उसे कारागार मे ठूँस दिया गया।

द्वितीयाङ्क में रावण ध्यान में देखी किसी सुन्दरी के लिए कामतप्त है। प्रहस्त ने उससे कहा कि हमारे गुरु कलविंक बुला रहे हैं कि आप उस यज्ञ मे दीक्षित हो जायें, जिससे सभी प्रकार की शान्ति हो। यज्ञवाट में नर्मदा का पानी घुस आया था, क्योंकि सहस्रार्जुन ने अपनी ५०० बाहों से धारा रोक दी थी। रावण बड़े आवेश मे आकर अर्जुन पर आक्रमण करने निकला। उसने देखा कि असंख्य नारियाँ उसे घेर कर क्रीडा कर रही हैं। तब तो उसके मन मे विकल्प उठा—

कथं हन्यामहं रिपुम्।

प्रहस्त ने जलक्रीडा की रमणीयता देखी—

अर्जुनहस्तविनिस्सरदब्जं कस्याश्चिदिन्दुवदनायाः।
चन्दनकर्दमसिक्तं तृतीयकुचतां बिभर्त्युरसि॥

रावण ने समझा कि उनमें से कोई रमणी अपने प्रियतम अर्जुन के साहचर्य मे होने पर भी मेरी ओर मृदु हास-पूर्वक स्निग्ध दृष्टि से देख रही है। प्रहस्त के स्वगत से स्पष्ट हो जाता है कि अर्जुन की स्त्रियाँ दशानन के विकार को देख कर हँस रही थीं। यथा,

मस्तकानि दशाप्यस्य बाहूनपि च विंशतिम्।
दृष्ट्वा विकाररूपाणि हसन्त्यर्जुनयोषितः॥२.३६

पर उसने प्रेम से रावण की योजना सुनी, जो इस प्रकार थी—मैं (पुलस्त्य) का रूप बनाकर कपिल का दर्शन कराने के लिए सहस्रार्जुन को ले जाऊँ। दूर ले जाकर उसे मार डालूँ, फिर अर्जुन का वेश बनाकर उसकी प्रमदाओं के सहवास का आनन्द रावण प्राप्त करेगा।

रावण ने रोदसी-विद्या से वसन्तलक्ष्मी को उत्पन्न किया और स्वयं कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का रूप धारण करने चला। उसे अर्जुन की कतिपय महिलाओं से मिलने का अवसर मिलने वाला था।

तृतीय अङ्क में कनकप्रभा और चम्पक-नासिका नामक अर्जुन की दो पत्नियाँ मंगल देवता के मन्दिर मे बैठी हुई किसी सरक्षक तपस्विनी की प्रतीक्षा कर रही हैं। रावण सहस्रार्जुन का रूप बनाकर उस समय उनके समीप आया, जब वे अपनी विरह-व्यथा पुष्पावचय करते समय दूर कर रही थी। उन्होंने उसे देखकर मान किया। रावण ने अर्जुन जैसी ही वाणी बनाकर उनसे प्रणय की बातें की तो शीघ्र ही उन्हें सन्देह हुआ कि हमारे पति सहस्रार्जुन के यज्ञदर्शन के लिए जाने पर हम लोगों का अपहरण करने के लिए यह कोई राक्षस प्रियतम का रूप धारण करके आया है।

वे अग्नि में जल मरने का विचार करने लगीं। कूदने के लिए उद्यत रावण (अर्जुन-रूप धारी) ने उनसे कहा कि पति को छोड़कर मरने वाली तुमको पुण्यलोक की प्राप्ति कैसे होगी?

प्रहस्त को परास्त कर सहस्रार्जुन वहाँ इसी बीच आ पहुँचा। उसने देखा कि कोई और ही सहस्रार्जुन बन बैठा है। चम्पकनासिका और कनकप्रभा ने इस असली सहस्रार्जुन को भी मायावी समझा और अपने को भस्मसात् करने के निर्णय पर अडिग रहीं। रावण ने उनको समझाया कि यह कोई मायावी राक्षस है। असली सहस्रार्जुन नहीं है। असली सहस्रार्जुन मैं हूँ। यथा,

अस्मद् वपुरुपासाद्य दुर्मेधा निर्भयोऽधुना।
आहर्तुं सान्त्वयन् युष्मान् माययास्तेऽत्र राक्षसः॥३·२१

रावण (नकली अर्जुन) ने उनसे कहा कि यदि तुम आग में कूदती हो तो मैं भी विरह सहने में असमर्थ तुम्हारे साथ ही जल मरूँगा। वह अग्नि की परिक्रमा करने लगा। नायिकाओं की धारणा हुई कि यह असली अर्जुन है, जो अनुमरण करने के लिए उद्यत है।

असली अर्जुन ने देखा कि नकली अर्जुन पर मेरी पत्नियों का विश्वास उत्पन्न हो गया है। उसकी आँखों से अश्रुप्रवाह होने लगा। हाथों से उन्हें पकड़ कर बोला कि मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो? रावण ने असली सहस्रार्जुन को डाँट बताई—मेरी पत्नियों को छूना मत। अर्जुन के विदूषक ने बताया कि एक ही अर्जुन ने परिहास के लिए अपने दो रूप बना लिए हैं।[1] यह विदूषक वस्तुतः प्रहस्त था, जिसने सहस्रार्जुन के विदूषक का रूप बना लिया था। नायिकाओं ने कहा कि यह शक्ति तो राक्षसों में ही होती हैं।

नायिकाओं की चेटी रावण के विरोध में कुछ-कुछ कह रही थी। रावण ने उससे कहा कि मैं तुम्हारा रहस्य-भर्ता हूँ। यह सुनकर चेटी ने उसे गाली देना आरम्भ किया—

अये रण्डापुत्र, शैलालिन् जायाजीव, किं कथितं त्वया। तव जिह्वां क्षुरिकया छित्वा क्षिपामि।

नकली विदूषक (वस्तुतः प्रहस्त) ने सुझाव दिया कि सामने दो रूप सहस्रार्जुन के हैं। दो नायिकाओं में एक-एक को चुन लें। रावण ने इस सुझाव का स्वागत किया और कहा कि सारे अन्तःपुर का भी द्विधा विभाजन प्रत्येक के लिए हो जाना चाहिए। इस प्रस्ताव से दोनों नायिकायें मूर्छित हो गईं। सहस्रार्जुन ने उद्विग्नता प्रकट की कि यह सब क्या गड़बड़-घोटाला है?

चेटी को सहस्रार्जुन ने अपने भाल पर दत्तात्रेय गुरुपादुकामुद्रा दिखा कर अपनी वास्तविकता प्रकट की। फिर चेटी रावण के पास पहुँची और उससे कहा कि मस्तक

---

१. उभयरूपं गृहीत्वा मोहयंस्तिष्ठति।

दिखाओ। वहाँ घाव दिखाई पड़ा। रावण ने बताया कि यह तुम्हारे क्रोध मे आकर मुष्टि-प्रहार करने से हुआ, जब तुम्हारी कामपूर्ति करने मे परिस्थिति वशात् मैं असमर्थ हो गया था। चेटी ने समझ लिया कि यह राक्षस है। चेटी ने कहा—यह सब तो ठीक है। यह कौन आप का रूप धारण करके आया है? रावण ने बताया—वही असली सहस्रार्जुन है। मैं तो रावण हूँ।

विदूषक ने एक नई उलझन रावण के सामने रखी। उसने कहा कि सामने खड़े जिसको देख रहे हो, वह सहस्रार्जुन-रूपधारी बाणासुर है। सहस्रार्जुन तो मेरे ऊपर प्रहार करके मेरी पत्नी पृथुनितम्बा का अपहरण करने के लिए लंका गया है। वह लंका मे क्या करता होगा, हमे ज्ञात नही। आप तो युद्ध छोड़कर अन्य उपाय से काम लें।

बाण का नाम सुनते ही रावण को वह सारा दृश्य सामने आ गया कि कैसे उस विक्रमार्क ने मेरी पत्नियों को लका मे लूटा था। रावण ने विदूषक से कहा कि मुझे अब कोई चिन्ता नही। मुझे तो अर्जुन की पत्नियो का सहवास चाहिए। आधा ही मिल जाय।

इधर सहस्रार्जुन को सन्देह होने लगा कि क्या ये मेरी पत्नियाँ हैं या कोई और हैं। उसने विष्णु का ध्यान लगाया। उसे ऐसा करते देख रावण ने समझा कि यह भी अवश्य ही बाणासुर है, जो सहस्रार्जुन के अन्तःपुर का आधा पाने की आशा में आँखें मूँद कर आनन्द का अनुभव कर रहा है।

रावण ने नायिकाओं से कहा कि सहस्रार्जुन बनने वाला प्रत्यर्थी मायात्मक है। आप मुझे राक्षस भी समझती हो तो क्या हुआ?

कपिल को प्रणाम करके तापसी इस बीच आ निकली। उसने रावण को पहचान कर उसे फटकारा और सहस्रार्जुन का अभिनन्दन किया। अर्जुन ने रावण से कहा कि अब तुम्हे मार डालूँगा।

> यासां पुरो मम वपुः परिगृह्य चौर्यात्
> शाठ्यं विहाय हरणार्थमिहागतोऽसि॥
> ताभ्यस्तवाद्य लघुनीक्ष्णपृषत्कजालै—
> र्हत्वा निजं वपुरहं युधि दर्शयामि॥३.५१

रावण ने अपना रूप धारण किया और सहस्रार्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। युद्ध मे अर्जुन ने रावण को पाशजाल से बन्दी बना लिया। वह कारागार में बन्द कर दिया गया।

चतुर्थ अंक के पूर्व प्रवेशक मे बताया गया है कि रावण वालि के पुत्र अङ्गद का खिलौना बना हुआ है। कैसे—

> बाहुभ्यां समुपादाय विस्तारयति तद्वपुः।
> पादबाहुमुखाकारो नराणामिव जायते॥४.४

वालि ने उसके शरीर को पीस दिया था। इस प्रकार रावण जलूका (जोंक) जैसा बन गया। एक बार ब्रह्मा ने उसे देखा तो उसे मुक्त करा दिया। फिर तो वालि और रावण में प्रगाढ मैत्री हो गई।

रावण को कुवेर की चिट्ठी मिली कि परस्त्री से सम्बन्ध की कामना मत करो। उसे नल-कूवर दिखाई पड़ा, जो अपनी प्रेयसी रम्भा के लिए विलाप कर रहा था। रावण स्वयं रम्भा के लिए उत्सुक था। छिपे-छिपे रावण ने कहा कि किसी दिन रम्भा स्पष्ट ही इनसे कह देगी कि मैं तो अब रावण की हूँ। इधर नलकूवर को हृदय-दर्पण में रम्भा दीख रही थी। रावण ने कहा—

. ते पितृव्यहृदयहारिण्यामीदृशो व्यामोहः।

इधर नलकुवर चन्द्रमा को बुरा-भला कह रहा था। नलकुवर वहाँ से चलता बना। उसे रम्भा के आने की ध्वनि सुनाई पड़ी। रावण ने रम्भा को देखा तो छः श्लोकों और एक बड़े गद्य भाग में उसकी प्रशंसा ही करता रह गया। रावण ने देखा कि उसके पीछे तो इन्द्र पड़ा हुआ है। रम्भा पतिगृह जाती हुई उससे मुक्ति चाहती थी। उसकी रक्षा करने के लिए और अपनाने के लिए रावण इन्द्र से भिड़ गया। दोनों में एक दूसरे के काम-दूषण को लेकर सापवाद बातें हुई। रावण ने इन्द्र के विषय में कहा—

तवास्ति मेषवृषणः साक्षी मारमहोत्सवे।
यष्टुं गौतमदारेषु समारोपितशेफसः।

फिर तो रम्भा के लिए दोनों लड़ पड़े। रावण की जीत हुई। वह जब रम्भा को बलात् पाने के लिए बढ़ा तो उसने कहा कि मैं तुम्हारे भतीजे की पत्नी हूँ। यह अशोभनीय होगा कि आज जब मैं उससे समागम के लिए जा रही हूँ तो आप मेरे पीछे पड़े हैं। रावण माना नहीं। उसने रम्भा को अपनी कामपिपासा की परितृप्ति का साधन बलपूर्वक बनाया। इसके पश्चात् रम्भा-समागम का वर्णन छः पद्यों में है। रम्भा को लज्जा लगती थी कि वह पति नलकूवर को कैसे मुँह दिखायेगी? वहीं नलकूवर आ गया। रावण को बिना देखे ही वह प्रलाप कर रहा था। रम्भा ने अपनी दशा का वर्णन किया—

अहं तु दुष्टराक्षसेन परिशेषितप्राणमात्रास्मि।

तब तो नलकूवर ने रावण को शाप दिया—

दशकन्धर हतोऽस्मि। यन्मे प्रेयसी-पातिव्रत्य-तन्तुरुच्छिन्ना त्वया।

रम्भा को उसने सन्देश दिया—यदि वह रावण किसी परदार के साथ रमण करेगा तो उसका सिर सहस्रधा फट जायेगा।

शिल्प

नायक का हिमालय से नर्मदा तक एक ही अंक में आना होता है।[1] कैसे? कतिचित्पदानि गत्वा। इसी प्रकार नर्मदातट से शोणितपुर जाने के लिए केवल 'परिक्रम्य' कहकर आगतावेव समीहितस्थलम् (शोणितपुरम्)

१. इस प्रकार के विधान अनेकशः इस रूपक में हैं।

रम्भारावणीय में मायात्मक प्रवृत्तियाँ निर्भर हैं। रूप बदल कर अनेकानेक नायक धोखाधडी में व्यापृत हैं। प्रथम अंक में शार्दूल यदुराज का रूप धारण कर लेता है। तृतीय अंक मे रावण सहस्रार्जुन बन जाता है और प्रहस्त उसका विदूषक बनता है।

नेपथ्य से ऐसी बातें भी कही गई हैं, जो रंगपीठ पर वर्तमान पात्र को उद्देश्य करके नही व्यक्त हैं। फिर भी रंगपीठ पर वर्तमान पात्र कान लगाकर उनकी बातें सुनता है और अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करता है। ऐसा प्रयोग बहुशः हुआ है। नेपथ्य से अधिकाधिक सूचनायें प्रेक्षकों और पात्रों को दी गई हैं। एकोक्ति के प्रयोग से भाव-वासना का चित्रण किया गया है। यथा रावण की एकोक्ति प्रहस्त की उपस्थिति में है—

रम्भोपमोरुरतिदीर्घविशालनेत्रा राजीवकुड्मलकुचा शरदिन्दुशोभा।
बिम्बाधरा घनतरातिबृहन्नितम्बा भात्यग्रतो मदनभूपति-वैजयन्ती ॥

यह उक्ति समन्तादवलोक्य होने से रंगपीठ के किसी पात्र को नही सम्बोधित है।

चतुर्थ अङ्क का आरम्भ रावण की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह प्रहस्त और चण्डसुरता (चेटी) की चिन्ता करता है और आगे की योजनायें बताता है। वह कुवेर की चिट्ठी पर टीका करता है। नलकुवर को दूर से देखकर टिप्पणी करती है।[1]

सुन्दरवीर को पशु-पक्षियो से विशेष प्रेम था। उन्होने पशु-पक्षियो को पात्र तो बनाया ही है। इसके अतिरिक्त अनेक मानव पात्रों को भी पशु-पक्षियों के नाम दिये हैं। उनके पत्री पात्र मल्लिकाक्ष तथा धार्तराष्ट्र द्वितीय अङ्क के पहले विष्कम्भक में हैं। पहले अङ्क के मानव पात्रों में दुर्दुरक (मेढक) रावण के पुरोहित का पुत्र है। टिट्टिभ-दम्पती भी अन्यत्र इसी अङ्क के पात्र हैं। शार्दूल रावण का चर है। एक पात्र भेकव्रत कलविंक का शिष्य है। कलविंक (पक्षी) रावण का पुरोहित है। अन्य ऐसे पात्र चतुर्थ अङ्क में नीलकण्ठ और कलकण्ठ पक्षी हैं। कवि को अन्तर्दृष्टि प्राप्त है, जिससे वह अमानव मे भी मानुषी-दर्शन करता है। यथा नर्मदा में नारी का—

वल्गत्-कोककुचा प्रफुल्लकमलश्रेणीकरास्येक्षणा।
भृङ्गालिध्वनिभाषणा दरगला शैवालवद्धालका ॥
कल्लोल-त्रिवलिस्फुरत्खरदः रक्ताब्जपत्राधरा।
कीलालभ्रमनाभिका द्रुतगतिः प्रत्येति हा नर्मदा ॥२·६

ऐसी नर्मदा को द्वितीय अङ्क में पात्र बनाकर रंगपीठ पर प्रस्तुत कर दिया गया है। अपनी कृति की रोचकता के लिए जलक्रीडा की शृङ्गारित भाववासना को कवि ने शिखरित किया है। यथा,

---

१. रावण की एकोक्ति के पश्चात् नलकूवर की एकोक्ति है, जिसे छिप कर रावण सुनता है और प्रासंगिक टिप्पणी करता है। अपनी एकोक्ति में नलकुवर रम्भा के वियोग में अपनी दुःस्थित मानसी वृत्ति का वर्णन करता है।

अहह नरदेवहस्तन्नस्ते चोले सुवर्णगिरिसदृशौ।
स्नेहादिव कुचकलशौ अभिषेकायेव जृम्भतः सुदृशः ॥

हास्य-रस-रंजन की दिशा में सुन्दरवीर पीछे नहीं हैं। वे अर्जुन की चेटी से नकली अर्जुन (वास्तविक रावण) को रङ्गपीठ पर गाली दिलाते हैं।

रण्डापुत्र, तव जिह्वां छुरिकया छित्त्वा क्षिपामि।

इसी अङ्क में आगे नकली सहस्रार्जुन चेटी से हास्य-सृष्टि के लिए कहता है।

चण्डशुरते—कस्यांचिद मावस्यायां निशीथे कर्णपद-व्यात्तेशयनागारमाविश्य व्यवायवेगेन पुरःस्खलितवीर्ये मयि संजातरोपायास्तव गाढमुष्टिकुट्टनोत्पन्नव्रणेन संजातमत्र लक्ष्म।

पौराणिक कालक्रम को विस्मरण करके लेखक ने रावण, वाणासुर और सहस्रार्जुन को समकालीन पात्र बनाकर इन ऐश्वर्यशाली पराक्रमियों के द्वारा नाटक को महिमान्वित किया गया है।

रघूद्वह की यह कृति अनेक दृष्टियों से पर्याप्त सफल है, यद्यपि इसमें कथानक की एकसूत्रता का अभाव कार्यावस्था की दृष्टि से प्रत्यक्ष है।

अभिनव राघव

सरलबद्ध-सुबोधिपदस्फुरत् सरसभाव-समग्रगुणं नवम्।
अखिलहृद्यमवद्य-विवर्जितं किमपि रूपय रूपकमुज्ज्वलम् ॥

अभिनव-राघव का प्रथम प्रयोग प्रभातकाल से रंगनगरी में रंगनाथ देवालय के मण्डप में आरम्भ हुआ था।[1] मन्दिर में उस समय भेरी, मर्दल, वीणा, मड्डुक, वंशी आदि का रमणीय निनाद हो रहा था। देवदासियाँ गीत गाकर नाच रही थीं। रंगनाथ के चैत्रयात्रा महोत्सव में महापुरुष जुटे थे, जिनके प्रीत्यर्थ नाटक का अभिनय हुआ। इसके अभिनय में सूत्रधार का भागिनेय दशरथ बना था और उसकी पत्नी कैकेयी की भूमिका में रंगपीठ पर अभिनय कर रही थी।

कथासार

कैकेयी और दशरथ प्रणयभावापन्न होकर राजोद्यान में परिभ्रमण कर रहे थे। उनकी उत्प्रेक्षा है—

तव कुचमभिवीक्ष्य चक्रवाकः स्वयमपि तत्समतामुपैतुका कामः।
अहह दयितया सहान्तरिक्षे कलयति चंक्रमणं नु किं ब्रवीमि ॥१·२५

ऐसे ही प्रेमिल क्षणों में उन्हें नेपथ्य से नारद-वाणी सुनाई पड़ती है कि देवताओं और दैत्यों के महायुद्ध में परास्त देवगण विजयश्री के हेतु दशरथ की सहायता के लिए आर्तनाद कर रहे हैं। दशरथ शम्बर से युद्ध करने के लिए जाने लगे तो कैकेयी भी साथ लग ही गई। युद्ध की भयंकर स्थिति में कैकेयी के पराक्रम से विजयश्री

१. इसकी हस्तलिखित प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

मिली। युद्ध के पश्चात् सनत्कुमार ने सान्तानिक वचन कहे थे। नारद ने आशीर्वाद कहे थे। तदनुसार यज्ञ कर लेने पर दशरथ को महापराक्रमी चार पुत्र होंगे।

दशरथ के चार पुत्र हुए। उन्हें विश्वामित्र ने अस्त्र विद्या दी। उनमें से राम का अवतार रावण के अत्याचार से संसार को विमुक्त करने के लिए है। रावण तत्काल दशरथ को पुत्रोंसहित नष्ट कर देने के लिए अयोध्या पर आक्रमण करने वाला था, किन्तु माल्यवान् के कहने से भेद नामक उपाय से अपना प्रयोजन सिद्ध करने का सुझाव मान गया। फिर उसने निर्णय लिया कि दशरथ के कुटुम्ब में फूट डाली जाय। सारण और दारण इस उद्देश्य को लेकर अयोध्या पहुँचे। सारण परिव्राजक के वेश में और दारण उसका शिष्य बना। चण्डोदरी और कुण्डोदरी राक्षसियाँ मानुषी रूप धारण करके अन्तःपुर में परिचारिकायें बन गईं। कैकेयी का उन पर स्नेह बढ़ चुका था। कैकेयी के वचन से दूषित कौसल्या के पुत्र राम विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने चले गये।

लङ्केश्वर के द्वारा नियुक्त राक्षस-राक्षसी अयोध्या में विघटनकारी प्रवृत्तियों में व्यापृत हैं। यह जानकर शत्रुघ्न उन्हें पकड़ने की योजना कार्यान्वित करते हैं।

शत्रुघ्न राम की सहायता के लिए उस वन प्रदेश में जा पहुँचते हैं, जहाँ पहले से ही राम ने असंख्य राक्षसों को मार डाला है। वहाँ भरत से लड़ने के लिए अनल नामक असुर आया।

उस समय वसिष्ठ और अरुन्धती का नाम लेकर किसी ने दूर से आर्तनाद किया कि मुझे सिंह मारने ही वाला है, बचाओ। शत्रुघ्न ने ध्वनि का अनुसरण करने पर देखा कि कहीं कुछ भी नहीं है। उनके मन में विकल्प हुआ—

मागेव राक्षसकृता किमिदं विचित्रम्। २·२७

उन्होंने बाण से उन्हें मारा तो दारण मर ही गया और सारण लम्बी सांस लेता लंका में जाकर रुका। इस युद्ध में लवणासुर मार डाला गया। इससे रावण की दाहिनी बाँह मानो कटी।

रावण ने तब विराध को भेजा। उसने अप्सरा बनी चण्डोदरी और कुण्डोदरी को शत्रुघ्न से यह कहते सुना—

आवाभ्यां गृहमेधी भव।

शत्रुघ्न ने कहा—कभी और इसके लिए समय निकालूँगा। लवणासुर ने स्वयं शत्रुघ्न का रूप धारण कर लिया और उन नकली अप्सराओं से प्रणयारम्भ प्रवर्तित कर रहा था तभी उधर से शुनःशेफ आ निकला। उसने देखा कि मेरे शत्रुघ्न तो अप्सराओं के चक्कर में पड़े हैं और सोचा कि काम के प्रभाव में आकर ऐसा ही बड़े-बड़े करते हैं—

सूकरी-योनिमासाद्य भूरियं हरिणा हृता॥२·६६

तभी वहां लक्ष्मण आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि शत्रुघ्न (वस्तुतः विराध) पिता और गुरु के रहते स्वयं संग्रह में व्यापृत है। इधर उससे नकली अप्सराओं ने कहा कि आप मेरे भर्ता हैं।

शीघ्र ही शुनःशेफ की मेखला के रत्न के स्पर्श मात्र से सबके मायावी रूप का अन्त हो गया और विराध और चण्डोदरी क्रमशः असुर और राक्षसी रूप में प्रकट हुई। विराध ने देखा कि यह सारा परिवर्तन और अवांछित स्थिति शुनःशेफ के कारण हुई है। वह उसे मारने को उद्यत हुआ तो उसने राम, लक्ष्मणादि को पुकारा। लक्ष्मण के चन्द्रहास से वह मारा गया। शत्रुघ्न भी आ गये।

तृतीय अंक में जनक का निमन्त्रण पाकर राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ मिथिला आये। वहाँ सीता के स्वयंवर में कोई रामवेषधारी नकली धनुष को तोड़ देता है और नकली सीता उसके गले में मन्दार-माला डाल देती है। यह बालकों का क्रीडात्मक नाट्य-प्रयोग था। वे दोनों मैथिली-उद्यान में पहुँचे। वहां सीता, ऊर्मिला और पद्मावती आईं। ऊर्मिला पुन्नाग वृक्ष के फूल तोड़ने लगी। थोड़ी दूर पर पद्मावती सीता को लेकर फूल तोड़ने के लिए चम्पकशाला में जा पहुँची। राम ने देखा कि ऊर्मिला के प्रति लक्ष्मण की अनुरागमयी दृष्टि पड़ रही है। राम भी फूल तोड़ने के लिए चम्पकशाला में पहुँचे और लक्ष्मण को कुश और समिधा लाने के लिए भेज दिया। वहां सीता के यह आशंका व्यक्त करने पर कि क्या मुझे रावण को दिया जायेगा, पद्मावती ने कहा कि नहीं, राम को दिया जायेगा। तभी दुन्दुभि बजी और सीता ने उसे अपने मनोरथ पूर्ण होने का शकुन समझा कि मुझे राम मिलेंगे। सीता ने पद्मावती को भेजा कि ऊर्मिला को बुला लायें। तब सीता और राम अकेले रह गये। सीता ने राम को देखा—

कामारामः कामिनीभागधेयं लक्ष्मीलीलाकेतनं कोमलाङ्गः।
पश्यन् मां प्रीतिपूर्णेक्षणाभ्यां क्वेदानीं दृष्टः प्राक्तनः पुण्यराशिः॥

फिर तो दोनों में प्रणयालाप हुआ। परिहास में बेतुकी अश्लील बातें हुईं। अन्त में सीता ने कहा—

संस्पृश्य पाणिकमलं पालय मम नाथ जनकनृपदत्ताम्।

फिर तो सीता ने ऊर्मिला के विवाह के लिए प्रस्ताव किया तो राम ने लक्ष्मण से उसका विवाह निश्चित कर दिया। इधर लक्ष्मण भी ऊर्मिला से गठबन्धन की पूर्व-भूमिका बना चुके थे। उर्मिला ने उनकी बातें सुनकर कहा—

एषां भ्रमरव्यपदेशेन ममावरपानाशयं सूचयति।

लक्ष्मण ने ऊर्मिला से कहा—

उपरिष्ठात् कुचगोत्री हन्तावस्ताद् बृहन्नितम्बगिरी।
स्थगयति तेऽत्र गमनं त्वं तनुमध्या कथं यासि॥३.५७

तब तक वहा पद्मावती आ गई। उसने ऊर्मिला से पूछा—यह कौन है? परिचय पाकर पद्मावती ने निर्णय सुना दिया—स्थाने युवयो र्दाम्पत्यम्। सीता ने समीप आकर जब ऊर्मिला से पूछा तो उसने कहा—

असम्यैर्नर्मवचनैर्मां वर्णयन्तमेनं पद्मावती तव सौभाग्यदेवतेति कथयित्वा तेन भाषमाणा तिष्ठति॥

सीता ने कहा—

ऊर्मिले त्वं धन्यासि लक्ष्मणेन।

स्वयंवर के लिए आये राजकुमारो को सीता ने प्रासादवातायन से देखा। कुछ देर बाद लीलाशुक से सीता और पद्मावती को ज्ञात हुआ कि राक्षसी-रमणिया सीता और ऊर्मिला का रूप धारण करके राम और लक्ष्मण के पीछे पड़ी हैं। पद्मावती ने बताया कि माया द्वारा शूर्पणखा सीता और अयोमुखी ऊर्मिला बनी हैं। कबन्ध नामक राक्षस केकड़ा बनाकर आया और उनको काटा। उसे रावण ने राम को मारने के लिए भेजा तो राम ने आकर केकड़े को छिन्न-भिन्न काट दिया। देवरूप धारण करके वह स्वर्ग चला गया। तब मायात्मक नायिकाओं ने राम लक्ष्मण का आलिंगन किया। पर थोड़ी देर उन्होने उन दोनो का व्युत्क्रम से आलिंगन किया तो राक्षसी बन गईं। यह उस मेखला का प्रभाव था, जिसे शुनःशेफ ने लक्ष्मण को उपहार दिया था। किसी चित्रकार ने इस घटना का चित्र बनाया था, पर राक्षसियों को देखकर उसे छोड़कर भाग चला। लक्ष्मण की छुरी से दोनों राक्षसियों के कान-नाक काटे गये। खरादि राक्षसों ने राम से युद्ध किया और मारे गये। शुक ने फिर बताया कि इस समय राम शंकर-शरासन देखने के लिए गये हैं।

चतुर्थाङ्क के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार परशुराम ने सीता स्वयवर के पश्चात् नारायण-धनुप राम को दिया कि इस पर बाण आरोपित करें। इससे प्रसन्न होकर परशुराम ने उनसे कहा कि मेरी कन्या पद्मावती जयमाल डाल कर आपकी पत्नी बने। राम ने पद्मावती को धिक्कारा। परशुराम ने राम को शाप दिया—तुमने मेरी कन्या को छोड़ा, तुम्हें सीता को भी छोड़ना पड़ेगा। उस समय पद्मावती ही आपकी सहचरी रहेगी। तब जनक ने पद्मावती को शाप दे डाला—तुम शिला हो जाओ। परशुराम ने शिला को देख कर कहा—

यदा हन्ति मुनिं रामः सीता त्यक्ष्यति राघवम्।
तदा त्वं जानकी भूत्वा रामं भोक्ष्यति सादरम्॥४७

जनक ने उस शिला को चूर्ण बनाने के लिए आज्ञा दी। पर भूतगण शिला को लेकर आकाश मे उड गये। राम के प्रार्थना करने पर परशुराम ने शापान्त बताया कि जब विश्वामित्र की दी हुई मेखला से शिला का अलंकरण होगा तो सबकी स्वस्ति होगी।

चतुर्थ अङ्क मे शूर्पणखा रावण से मिली। उसकी नाक कटने का वृत्तान्त रावण को ज्ञात हुआ। रावण ने देखा कि जितना प्रेम मुझे सीता के लिए है, उतना ही

शूर्पणखा का लक्ष्मण के लिए है। वह उन तीनों का एक चित्रपट लाई थी। उसे देखकर रावण कहता है—सर्वप्रकारेणाप्येषा मय्येवानुरागवतीव प्रतिभाति। यदिदानीम्

आलापाय मयाधुना मुखमिदं व्यादाय किंचित्स्मितम्
कुर्वन्तीव पुनः कटाक्षसरणैः संकेतयन्तीव माम्।
मध्यन्यस्तकरेण मन्मथगतं विज्ञापयन्तीव मे
कांचीबन्धनकल्पनेन नृपशुं संज्ञापयत्यर्गलम् ॥४.२०

लक्ष्मण को देखकर रावण उसके चित्र को फाड़ने लगा। शूर्पणखा ने कहा—फाड़ नहीं, इसमें हमारे और तुम्हारे प्राण हैं। इसे देखकर हम दोनों कृतार्थ होंगे।

शूर्पणखा सीता की वह मेखला लाई थी, जो उस समय उसकी कटि से गिर पड़ी थी, जब वह शूर्पणखा को देखकर त्रस्त थी। रावण ने उसे देखकर कहा—

तामेवाभ्यागतां सीतां मन्येऽहं मेखलामिमाम्। ४.२५

अकम्पन से राम का अयोध्या में अभिषेक होने का समाचार रावण को मिला। रावण ने शूर्पणखा से कहा—माया से और भेद उत्पन्न करके अभिषेक न होने दो। राम और सीता को दण्डकारण्य में भेजो। अकम्पन उसकी सहायता के लिए नियुक्त हुआ।

अकम्पन ने शूर्पणखा से परिहास किया कि दरजी से तुम्हारे कान-नाक सिलाने पड़ेंगे। शूर्पणखा ने तड़ाक से जवाब दिया कि पहले अपनी पत्नी अयोमुखी के स्तन सिलवाओ। दोनों अयोध्या आये।

शूर्पणखा ने राम के वनवास की योजना कार्यान्वित कर दी। कैकेयी ने दशरथ से कहा—राम का वनवास करें। भरत को राजा बनायें। और भी—

नास्ति खलु ते तादृशो विश्वासो भरते, यज्जारस्य जारिणी कुटुम्ब इवास्ति राघवेऽधिको व्यामोहः।

दशरथ के अनुनय-विनय करने पर उसने कहा—आपने मेरे भरत को मामा के यहाँ भेज रखा है। इस अभिषेकोत्सव में मेरे पिता को नहीं बुलाया। फिर तो दशरथ अचेत हो गये।

रामादि सभी उपस्थित थे। राम से कैकेयी ने कहा—शम्बरासुर से युद्ध के समय दशरथ ने दो वर दिये थे। तदनुसार भरत का राज्याभिषेक और आपका सीता के साथ चौदह वर्ष का वनवास होना है। राम ने कहा—

धन्योऽस्म्यहं यदधुना जननीपितृभ्यां।
कान्ताररराज्यमखिलं कृपया वितीर्णम् ॥
रत्नाकरं मकरवद्द्विपिनं विगाह्य।
स्वैरं विदेहसुतया विहरामि सार्धम् ॥४.३४

इस बीच लक्ष्मण क्रोध पूर्वक बारंबार अपने धनुष को देख रहे थे। सुमित्रा ने उन्हें राम के साथ वन जाने की अनुमति दे दी। उसने लक्ष्मण से कहा—

माता ते जनकात्मजा रघुपतिस्तातो यदाभ्यां वनं।
व्याप्तं तद्हृदये विचिन्त्य पितुः साकेतनाम्नीं पुरीम् ॥४.५२

पंचम अङ्क के पूर्व प्रवेशक में बताया गया है कि उपमा लक्ष्मी की बहिन थी। राज्य की रक्षा के लिए इन्द्र उसे अमरावती में ले गये थे। वहाँ कामी शम्बर उसे अपनाना चाहता था। तब इसकी रक्षा करने के लिए कैकेयी के साथ दशरथ ने अमरावती में शम्बर से युद्ध किया। उनकी विजय के पश्चात् कैकेयी चाहती थी कि उपमा दशरथ को मिले। उसके न तैयार होने पर कैकेयी ने शाप दिया—

शशाप देवी कैकेयी नरभार्या भविष्यसि।
यत्त्वं मे प्रियभर्तारं नर इत्यवधीरयः॥

तब उपमा ने कहा कि जो नर मेरा पति हो, वह अवतार हो। फिर वह परशुराम की कन्या-रूप में उत्पन्न हुई। उसे पुत्ररहित जनक ने पद्मावती नाम रख कर पाला। वह सीता की सखी बनी। जनक के शाप से वह चित्रकूट लाई गई।

एक बार राम मुनि की मृत्यु पर ब्राह्मण का आर्तनाद सुन कर दोहदवती सीता को छोडकर शम्बूक के आश्रम में गये। अपने विज्ञान-लोचन से एकाकिनी सीता को वन में देखकर उसे अपने आश्रम में ले गये। लक्ष्मण भी जटायु की प्रार्थनानुसार पंचवटी से राक्षसों को भगाने के लिए गये थे। उस समय यह शिला जानकी बन गई। यथा—

रूपलक्षणशीलस्य— सौशील्यकरुणादिभिः।
सौन्दर्येण च सामान्यं सीतयोपगतैव सा ॥५.६

राम ने उसे सीता ही समझा।

पंचम अंक में राम और पद्मावती क्रीडा कर रहे हैं। वे चित्रकूट से पंचवटी क्रीडा करते हुए जा पहुँचते हैं, जहाँ लक्ष्मण पहले से ही कुटी निर्माण करने के लिए गये थे। कवि को पंचवटी विहार स्थली जैसी रमणीय लग रही है। यथा,

कुसुमित कान्तारवती कादम्बवधूविहारपद्मवनी।
सुमति सुदतीव दयिते युवजनहृद्या विभाति पंचवटी ॥

वहीं गोदावरी रमणी की भाँति रमणीय थी—

पद्मेन वक्त्रमसिताम्बुरुहेण नेत्रं स्रोतोरवैः शुभगिरं च वर्मूमिजालैः।
कोकैः कुचौ कटभरानपि शैवलैस्ते रूपं समेत्य लसति क्षितिजे नदीयम् ॥५.२४

षष्ठ अंक में रावण और मारीच का संवाद होता है। रावण सीता के लिए उदग्र है। मारीच में राम का नाम आते ही स्पष्ट कहा—

शुष्यतीव हि मे जिह्वा मुह्यतीव मनोऽधुना।
स्मरणादेव रामस्य कम्पतीव कलेवरम् ॥६.७

रावण ने उसे समझाया कि मेरे राजा रहते हुए अनुपम सुन्दरी सीता उस शिकारी राम के साथ वन-वन घूमे—यह अनुचित है। यह तो मेरे मन को कचोट

रहा है। उस लीलाशुकी को तो रसास्वाद के लिए मेरे भुजपंजर में होना चाहिए। मारीच ने कहा कि आपके उसके देखने का अर्थ है आपकी यमपुरी-यात्रा। रावण ने कहा—वात नहीं मानते तो अभी यमपुरी तुम्हें तो पहुँचा ही देता हूँ। तव तो मारीच ने निश्चय किया कि राम के वाण से ही मरना ठीक रहेगा। मारीच को मायामृग वनकर राम-लक्ष्मण को दूर करना था। रावण को परिव्राजक वेप में सीता का अपहरण करना था।

सीता (पद्मावती) ने स्वर्णमृग को देखा तो राम से कहा कि इसका चर्म कौसल्या का आसन होगा और इसका मांस मुझे स्वादिष्ठ लगेगा। राम ने कहा कि यह राक्षसी माया है। कहीं स्वर्ण-मृग थोड़े ही होता है। लक्ष्मण ने कहा कि इसे मारने के लिए हाथ में खुजली हो रही है। सीता ने कहा मारें नहीं। अपनी राजकीय जन्तु-प्रदर्शनी में क्रीडा के लिए इसे रखेंगे। रावण यह सव वातें छिप कर सुन रहा था। उसने कहा कि मुझे ही क्रीडामृग वना लो।

अन्त में राम जीवित ही मृग को पकड़ने चले।

नेपथ्य से सुनाई पड़ता है—हा सीते, लक्ष्मण। लक्ष्मण को भी जाना पड़ा। परिव्राजक रावण ने अपना परिचय दिया कि मैं तो रावण हूँ। तुम राम से क्या करोगी?

किं करिष्यसि रामेण नरेणात्या युषामुना।
कामकर्मानभिज्ञेन यस्त्वां त्यक्त्वा गतोऽटवोम् ॥६·५३

सीता ने कहा—मेरा पति तुम्हारा सिर काट डालेगा। पर रावण अपनी शृङ्गार वार्ता चलाता रहा। फिर तो वह दशानन रूप में हो गया। उसने सीता को वलात् पकड़ा। रोती हुई अन्य वातों के साथ सीता ने विलाप किया—अयि कैकेयि सकामा भव। सीता को वह ले गया।

राम और लक्ष्मण कुटी पर आये। राम को चराचर समग्र वन सीता के लिए विपादमग्न प्रतीत हुआ। उन्होंने गोदावरी से पूछा—

नमस्ते गोदे मे हृदयदयिताभूमिदुहिता
तनुश्यामा क्ष्माभृद्घनकुचभरा नीलचिकुरा।
मृगीलीलालोका मृदुलवचना पीनजघना
त्वया दृष्टा वाष्टापदरसकृते वाति रुचिरा ॥६·७८

उन्होंने शैल, वंजुल-तरु आदि से सीता के विपय में पूछा। अन्त में उन्हें जटायु से ज्ञात हुआ कि दशानन ने सीता का अपहरण किया। फिर उन्हें शवरी से सीताहरण विपयक समाचार मिला।

राम और लक्ष्मण को एक भिक्षु मिला। उस भिक्षु ने सुग्रीव का समाचार उन्हें वताया। उसने अपने को सुग्रीव का अमात्य हनुमान् वताया। सुग्रीव ने हनुमान् को राम और लक्ष्मण का वृत्त जानने के लिए भेजा था। वे सुग्रीव से मिले। सुग्रीव ने उन्हें सीता का उत्तरीय, हार और केयूर दिया। राम ने सुग्रीव का अभिपेक

कर दिया और वाली को मार डाला। सातवें अंक के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार राम के प्रयास से सुग्रीव को पत्नी रुमा मिल गई और राज्य मिला। विनत ने चित्रकूट आकर सीता को देखा और सुग्रीव की नगरी में समाचार लाया। इसी बीच परशुराम ने पुरन्चूड को सुग्रीव की नगरी में भेजा कि तुम राम को लंका पर आक्रमण करने के लिए तैयार कराओ, जिससे उनका पद्मावती-मिलन हो। पुरन्चूड के पास एक पारमेश्वरी गुलिका थी, जो पुरन्चूड के अनुसार—

भूतभव्यभवत्कानि वृत्तानि सकलान्यपि
प्रत्यक्षं दर्शयत्येषा गुलिका पारमेश्वरी ॥७.१६

उसने रामादि से बताया—लंका में सीता रावण की अशोक-वनिका में है। विनत ने भी उसी समय बताया कि सीता चित्रकूट में है। लंका वाली सीता नहीं है। तब तो सुषेण चित्रकूट से समाचार लाया कि दो पुत्रों के साथ सीता वाल्मीकि के आश्रम में है। राम बड़े सन्देह में पड़े तो पुरन्चूड ने पारमेश्वरी-गुलिका में राम की सीता (पद्मावती) को लंका में दिखाया। सीता की दुःस्थिति देखकर राम विलाप करने लगे। गुलिका में राम ने देखा कि त्रिजटा ने वियोगिनी सीता को एक चित्रपट दिखाया, जिसमें राम और लक्ष्मण चित्रित थे। वह शूर्पणखा तब बनाकर लाई थी, जब वह अपहरण के प्रसंग में रामादि से मिली थी। रावण ने पंचवटी जाते समय इस चित्रपट को त्रिजटा के पिता के पास रख दिया था। तब तो सीता पूर्ववृत्तान्त कह-कह कर रोने लगी. पारमेश्वरी-गुलिका में यह सब देखकर राम भी पदे-पदे विलाप करने लगे। त्रिजटा ने सीता को समझाया कि घबराइये मत—

प्राप्तेऽनुकूलकाले सर्वमयत्नेन तीव्रमायाति।
कोरक-विकसनसमये स्वयमामोदो यथाऽचिरः ॥७.५४

तभी किसी मायावी राक्षस ने सीता को राम की वाणी में सुनाया—

सीता तदद्य निपतामि महाम्बुराशौ।

शूर्पणखा ने वहाँ आकर देखा कि राम आ गये हैं।[1] उसने झटपट अपने को सीता-रूप में उसके समक्ष प्रस्तुत किया। दोनों कपट-पात्रों का प्रणयालाप राम ने पारमेश्वरी-गुलिका के माध्यम से देखा। राम नकली सीता को असली सीता समझ रहे थे। तब सुग्रीव ने उन्हें समझाया—

नैष सीता, अपितु देवभोगार्थिनी काचनराक्षसी

शूर्पणखा के कहने पर रावण उसे कन्धे पर रखकर आकाश में उड़कर समुद्र पार करके महेन्द्र पर्वत पर शान्तिपूर्वक प्रणयवासना की सम्पूर्ति के लिए ले गया। वहाँ उसकी सम्पाति के पुत्र सुपार्श्व से मुठभेड़ हुई। रावण ने उसे भरमाया कि मैं राम हूँ और रावण के द्वारा अपहृत पत्नी को लाया हूँ। सुपार्श्व ने कहा—सर्वथा मिथ्यावादी हो। कहीं राक्षसेतर भी उड़ सकता है। यथा,

यत्त्वयोल्लंघ्यतेऽम्भोधिस्तद्रक्षो नास्ति राघवः।
नियुध्य यदि शूरोऽसि ततस्सीतामवाप्नुहि ॥७.६८

---

१. वह वस्तुतः रावण था। उसने राम का रूप माया से बना लिया था।

उसने रावण पर पक्षों से प्रहार करके सीता छीन ली और चलता बना। नकली सीता (शूर्पणखा) को अपने प्राणों की पड़ी। उसने अपने को पुनः वास्तविक राक्षसी-रूप में करके सुपार्श्व से युद्ध किया। दूर से रावण ने उसे देखा तो कहा कि यह तो मेरी बहिन है, जिसके प्रेमपाश में मैं पड़ा था।

इधर हनुमान् लंका पहुँचे। उन्होंने लंका जला दी। केवल सीता की कुटी और विभीषण के घर बचे। हनुमान् लंका से किष्किन्धा की ओर लौटे।

अष्टम अंक में राम के वियोग को सहने में असमर्थ सीता रावण के भय से अग्नि प्रवेश करना चाहती है। त्रिजटा ने कहा—मैं गोपन-विद्या जानती हूँ। इसके प्रभाव से कुसुमरथ पर बैठकर हम राम का दर्शन करने चलें। मेरी मायाशक्ति से यहाँ के सभी वनपाल तब तक सोये रहेंगे, जब तक हम लौटकर नहीं आते। दोनों राम के पास पहुँचीं। गोपन-विद्या के प्रभाव से उनका रूप ही नहीं, वाणी भी रामादि के लिए अज्ञेय थी।[1] राम ने सीता के वियोग में सुग्रीव से कहा—

अस्थाने जानकीं हित्वा सखे मे प्राणधारणम्।
तद्यास्ये यत्र मे सीता काष्ठमुज्ज्वलयाग्निना ॥७.२०

देवदूत ने आकर राम को समाश्वस्त किया कि आपकी आशंकायें निराधार हैं। विभिषण भी राम की शरण में आ गये। उसका अभिषेक राम ने किया। त्रिजटा ने सीता से कहा कि तुम तो राम का आलिंगन करो। मैं गोपन-विद्या का उपसंहार करती हूँ। सीता ने कहा कि ऐसा करने पर पापी रावण मारा नहीं जायेगा और तब आपके विभीषण का राज्याधिकार भी नहीं होगा।

समुद्र पर सेतु बना। सेना-सहित राम लंका पहुचे। युद्ध हुआ। राम के मोहनास्त्र के प्रभाव से राक्षस परस्पर लड़कर मरने लगे। रावण मारा गया। विभीषण का विधिवत् अभिषेक लंका में उत्सवपूर्वक हुआ। सीता शिविका पर रामाज्ञानुसार लाई गई। राम को सीता के चरित्र पर सन्देह हुआ। उन्होंने कहा—

इयं लक्ष्मीरियं गौरी सीता सेयं सरस्वती।
देवता सर्वदेवानां तन्मान्या तेऽपि मैथिली ॥८.७३

देवताओं ने राम की स्तुति की। राम विमान से पूर्वपरिचित विविध स्थानों को देखते हुए किष्किन्धा में उतरे। सीता ने सुग्रीव की पत्नियों से भेंट की। फिर वे साकेत में पहुँचे। भरत ने प्रत्युद्गमन किया। वहाँ राम का विधिवत् अभिषेक हुआ। रामचरित का काव्यप्रबन्ध-गायन करने वाले मुनिकुमारद्वय राम से मिले। उन्होंने अपना परिचय दिया—

माता नौ वरणीसुता गुरुवरौ वल्मीकजन्मा मुनिः
सन्त्राणादपि तातता मुनिवरे मातामहश्चापि सः।
किंचाहूमु नयस्तमेव सततं नौ मातुलं मातरं
नीतेत्याह्वयते स नौ कुशलवौ जानीम नेतः परम् ॥८.९६

---

१. न हि श्रूयन्तेऽपिच वचनानि।

राम उनको गोद में लेने के लिए और सीता उन्हे दूध पिलाने के लिए आतुर हो गई। उन बालको ने बताया कि सीता वाल्मीकि के आश्रम मे हैं। ध्यानमात्र से सीता लाई गई। उन्होंने पद्मावती का आलिंगन किया। वह अब सीता से पुनः पद्मावती बन गई थी।

राम को लज्जा हुई कि मेरा एकदार व्रत नष्ट हुआ। वाल्मीकि ने कहा कि ऐसा न सोचें। परशुराम भी आ गये। उन्होंने सबको आशीर्वाद दिया। विश्वामित्र भी आ पहुँचे। उन्होंने कहा—

सा जानकी जयति राघवकीर्तिमूर्तिः।८.१०५

सुन्दरवीर की शैली मे व्यंग्यात्मक कल्पना-प्रतान आनन्त्य की ओर अभिमुख है। दशरथ के मुख से कैकेयी का अभिनवराघव मे वर्णन है—

तनुरपि तडितां सारः कुन्तलभारः पयोमुचां निकरः।
मेरुः पयोधरस्ते मध्यं सर्वं नभश्शुभ्रम्॥१.२६

इसी कल्पना के बल पर कवि ने लक्ष्मण के मुख से कहलाया है—

'कथमार्यः सीतादर्शनसञ्जातमन्मथः कान्तारमेतत् स्त्रीमयं मन्यते।'

जब राम ने उद्यान-लक्ष्मी के विषय मे कहा था—

गायन्ती भ्रमरालिको मलगिरा वल्लीविशेषैः करैः
कुर्वाणाभिनयं कुतूहलवशान्नाटयागमाम्रेडितम्।
वातस्पर्शमिषेण पत्रनिचय कूर्पासकं पार्श्वतः
नीत्वा भाति फलच्छलं घनकुचं मन्दर्शयन्ती मुहुः॥२.७३

नाट्यशिल्प

प्रथम अङ्क के दो-चार पृष्ठो मे ही दशरथ का वन-विहार करना, इसके पश्चात् शम्बर से युद्ध करने के लिए जाना और फिर लौटकर रंगमंच पर आ जाना—यह सारा कार्यकलाप बिना दृश्य परिवर्तन के दिखाना असम्भव को मानस मे बिठाने का असफल सा प्रयास है।

सूचनायें अङ्क के बीच मे एकोक्ति द्वारा या संवाद के माध्यम से देने मे सुन्दर वीर को कोई हिचक नहीं है। द्वितीय अङ्क में शुनःशेफ अपनी एकोक्ति में सूचना देता है कि राक्षसी दासियों को कैकेयी पा जाय तो उनका मुण्डन कर दे। सारण को मैंने पकड़कर कारागार में डाल दिया है। भरत को मैं ढूँढ़ रहा हूँ। छिपे-छिपे शत्रुघ्न भी उन्हें ढूँढ रहे हैं। सुबाहु से राम का युद्ध होने वाला है। यह जानकर भरत राम की सहायता करने गये हैं।

रंगपीठ पर आलिंगन का दृश्य दिखाने का उपक्रम कवि के लिए अनिष्ट नही है। सातवें अङ्क मे नकली राम नकली सीता को 'गाढमालिङ्ग्य। श्लेषसुखं श्लाघयन्' कहते हैं कि आज तक अन्य अङ्गनाओं से इतना सुख नही मिला। ऐसी कवि की शृङ्गारित वृत्ति रचना को लोकप्रिय बनाने के लिए है। उसे प्रेक्षकों को रिझाना है। तभी

तो अनावश्यक होने पर भी वह मनचले प्रेमियों को संकेत देता है कि तुम भी ऐसा करो—

सौधस्थले संचरणप्रदेशात् कंचिद्युवानं कमनीयरूपम्।
पादाब्जभूपामणि-शिञ्जिताद्यैः संकेतयन्तीमिह पश्य कांचित्॥

उसकी दृष्टि में रामकालीन अयोध्या की वीथियों में विटों और वेश्याओं का मेला था। आधुनिकता भी उसके सामने झख मारती है। सुन्दरवीर का कहना है—

कान्तां भुजेन परिरभ्य समेति कश्चित्॥२·३१

हास्य-रस की सृष्टि के लिए कवि ने उन परिस्थितियों का संघटन किया है, जिसमें शुनःशेफ के पीछे राक्षसी अप्सरायें दौड़ रही हैं और वह आत्मरक्षा के लिए भागते हुए राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को पुकार रहा है। मायावियों से वह इतना डरा है कि वास्तविक शत्रुघ्न को देखकर भी डरकर भाग रहा है। शत्रुघ्न भी उसके पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। लक्ष्मण शत्रुघ्न को राक्षस समझ कर उन्हें मारने के लिए उद्यत हैं।

अभिनवराघव में माया-पात्रों की बहुलता है। द्वितीय अंक में सारण परिव्राजक बनता है और दारण उसका शिष्य। चण्डोदरी और कुण्डोदरी नामक राक्षसियाँ मानुषी रूप धारण करके अन्तःपुर में परिचारिका का काम करती हैं। इसी अङ्क में वे अप्सरायें बन कर शत्रुघ्न से कहती हैं कि हमें भोग की सामग्री बना लें। लवणासुर शत्रुघ्न का रूप धारण करके उन अप्सरा बनी राक्षसियों से प्रणयारम्भ करता है। तृतीय अङ्क में शूर्पणखा सीता और अयोमुखी ऊर्मिला बन कर राम लक्ष्मण को लुभाने में प्रवृत्त हैं। पंचम अंक में पद्मावती (शिला) का सीता बनना, जब वाल्मीकि सीता को अपने आश्रम में ले गये थे, छाया-तत्त्व का अनुपम अनुसन्धान है। तृतीय अङ्क में छायातत्त्व लीलाशुक के पात्रीकरण में भी स्पष्ट है।[1] वह सीता को राम का विरह-वृत्तान्त बताता है। चतुर्थ अङ्क में शूर्पणखा द्वारा लाये हुए सीता के चित्र को देखकर रावण का कामोन्मत्त होना छायातत्त्वानुसारी है। सप्तम अङ्क में शूर्पणखा द्वारा निर्मित राम और लक्ष्मण का चित्र देख कर कहती है—यद्भापसे न मम किन्नु तथापराधः॥७·४९

त्रिजटा उसे समझाती है—सखि सीते, एप चित्रपटलिखितः।

तब तो सीता ने कहा—परमार्थतः एप राघव इत्यनुलापितं मया।[2]

सुग्रीव ने उस शूर्पणखा के चित्र के विषय में कहा है—

चित्रं चित्रपटस्थितो रघुपतिश्चित्रत्वमिथ्याधियं
कुर्वन्नेव सजीववज्जनकजां व्यामोहयन् दृश्यते।
चित्रादप्यति चित्रमेतदुभयं यल्लक्ष्यते लक्ष्मणः
सीता चापि तयोरिह प्रतिकृतिः साक्षाद्यथाजीवितम्॥७·५०

१. ततः प्रविशति शुकः।
२. छायातत्त्व का यह उदाहरण है।

सुन्दरवीर ने चतुर्थ अंक में एक नये प्रकार का छायातत्त्व सन्निविष्ट किया है। इसमे शूर्पणखा कैकेयी के हृदय मे अनुप्रवेश करती है।[1]

एक ही अङ्क मे दूरस्थ अनेक स्थलों की घटनायें बिना किसी दृश्य-विधान के ही प्रवर्तित की गई हैं। द्वितीय अङ्क मे अयोध्या और वनप्रदेश दोनो की घटनायें दृश्य हैं। तारका का संहार-स्थल अयोध्या से सैकड़ो मील दूर है। इनको एक अंक में दिखाना ठीक नही है। चतुर्थ अङ्क में बिना दृश्य-परिवर्तन के लङ्का और साकेत दोनो महाद्दूरस्थ नगरो की घटनाओ को 'सत्वरं परिक्रम्य' मात्र कह कर पात्रो का स्थान-परिवर्तन दिखाया गया है। इसी अक के अन्त मे तीसरा घटनास्थल भागीरथी का तट दिखलाया गया है। अन्य अङ्को में भी अनेक परस्पर दूरस्थ स्थानों की घटनायें दिखलाई गई हैं। नाटक के अङ्कभाग में रंगपीठ पर सदा कोई न कोई उच्च कोटिक पात्र रहना ही चाहिए। ऐसे पात्र की कार्य-व्यापकता भी रहना चाहिए। इस नियम का पालन इस नाटक के द्वितीय अक मे नही किया गया है। इसके बीच मे कुण्डोदरी और चण्डोदरी नामक राक्षसियाँ अर्थोपक्षेपकोचित सवाद मात्र करती हैं। इसमे कुण्डोदरी बताती हैं कि कैसे मेरा मस्तक मुण्डित हो गया और चण्डोदरी बताती है कि मेरा धम्मिल्ल कैसे कटा।

निस्सन्देह सुन्दरवीर को नये-नये संविधानों की संरचना कराने के लिए अपेक्षित अनन्य कल्पनाशक्ति है। चण्डोदरी और कुण्डोदरी की कथा गढ कर कवि ने बताया है कि कैसे कुण्डोदरी ने दशरथ के भ्रम से द्वारपाल के साथ रात बिताई और अन्त मे दोनो का मुण्डन कराया गया।

रंगपीठ पर किसी नायक को तिरोहित रखकर उसे अन्य पात्रों के संवाद सुनने का अवसर देना—यह संविधान सुन्दरवीर का साधारण प्रयोग है। निःसन्देह इस प्रकार तिरोहित रहकर सुनने वाले नायक की प्रतिक्रियायें लोक में साधारणतः नहीं दिखाई देती, पर रंगमंच पर विशेष आवेश से सम्पृक्त होने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी स्थिति मे प्रेक्षक को रगपीठ के दो स्थलों पर साथ ही नाट्यप्रयोग दृश्य रहता है। नाट्यकला की दृष्टि से यह महादोष है कि जब तक एक पात्र द्वयी कुछ बातचीत करती हुई प्रेक्षक के समक्ष रहती है, तब तक दूसरी पात्रद्वयी चुपचाप पड़ी रहती है। ऐसा रंगमंच पर होना ठीक नही। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के नाटक विशेषतः पठनीय रह जाते हैं।

सुन्दरवीर ने स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा का समुन्नयन किया है। सुमित्रा वनगमनोद्यत सीता का आलिंगन करके कहती है—

लक्ष्मीं प्रापयराघवे रघुकुले श्रेयो दृढं स्थापय
स्त्रीधर्मं स्मृतिचोदितं सुचरितैः क्षित्यां व्यवस्थापय।
प्रीत्यालोकय लक्ष्मणं वनभुवं नाकश्रियं कारय
क्षेमेणानय मे सुतौ तव मुखं नेत्रे पुनर्दर्शय॥४·५०

1. भरतस्य राज्यभिषेकमपि प्रार्थयितुं कैकेय्या हृदयानुप्रवेशं करिष्यामि।

विशेषतायें

सुन्दरवीर ने इस नाटक में संस्कृत नाट्य-जगत् का प्रायः सर्वस्व चुन चुनकर पिरो दिया है। पूर्वकालीन रामकथा को प्रतिभा की कूँची से कवि ने एक अभिनव रूप दिया है। इसी कारण इसका अभिनव-राघवनाम सार्थक है।

इस नाटक के मायात्मक प्रयोगों के वैचित्र्य और कौशल की दृष्टि से सुन्दरवीर को मायाकवि की उपाधि समीचीन रहेगी।

कथानक को अभीष्ट नाट्योत्कृष्ट रूप देने के लिए उसमें नये-संविधानों को जोड़ना, कथा को नये मोड़ देना आदि कलात्मक रीति सुन्दरवीर की कृतियों में निश्चय ही अनन्य हैं। मायाविधान और कथानक-संकल्पन इन दोनों के लिए उन्हें अन्य कवियों की ओर देखना आवश्यक नहीं था। उनके पिता कस्तूरिरंगनाथ ने रघुवीरविजय नामक समवकार में इन दोनों तत्त्वों का प्रकाम आदर्श रख छोड़ा है।



अध्याय ७६

रससदन-भाण

केरल के युवराज गोदावर्मा ने रससदन भाण की रचना की। उनका जन्म १८०० ई० मे नम्पूतिरि-ब्राह्मण-वंश मे राजप्रासाद मे हुआ था, किन्तु उनका जीवन राजोचित-विलास-प्रवण नही था। गोदावर्मा ने व्याकरण, ज्योतिष, हस्तिशास्त्र, धर्मशास्त्रादि विद्याओ का गहन अध्ययन किया। उन्होने चौदह पुस्तको का प्रणयन किया, जिनमे से सर्वप्रथम स्थान महेन्द्र-विजय नामक महाकाव्य का है। इसका अपर नाम वाम्युद्ध भी है। त्रिपुरदहन युवराज का लघु काव्य है। दशावतार-दण्डक मे दण्डक छन्दो मे विष्णु के दस अवतारों की स्तुतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त भी युवराज के कतिपय अन्य स्तोत्र विभिन्न देवताओ के विषय मे हैं।

युवराज के द्वारा प्रणीत रामचरित नामक महाकाव्य अन्तिम रचना है। कवि ने अपनी सर्वोच्च प्रतिभा का विलास इसमे पल्लवित किया है। दुर्भाग्य से इसकी रचना करते समय उनकी मृत्यु हो गई। इसमें १३ सर्ग तथा ३१ पद्य हैं। इस महाकाव्य को युवराज के ही वंशज रामवर्मा ने ४० सर्गों मे पूरा किया।

रससदन भाण गोदावर्मा की लोकप्रिय रचना है।[1] इसका प्रथम अभिनय श्रीमद्रकाली की केलियात्रा मे आये हुए सभासदो के प्रीत्यर्थ हुआ था। इसी केलियात्रा महोत्सव के उपलक्ष्य मे इस भाण की रचना हुई थी। स्वयं युवराज ने अभिनय के दो दिन पहले इसकी प्रति सूत्रधार को प्रयोग के लिए दी थी। प्रस्तावना की इन सब सूचनाओ से लगता है कि इसका लेखक सूत्रधार है, युवराज नही।

कथावस्तु

विट का मित्र मन्दारक कहीं देशान्तर जा रहा था। उसने विट से कहा कि मेरी प्रेयसी चन्दनमाला को आज पार्वती के महोत्सव को दिखला लाना। विट उसके घर की ओर जाने वाला ही था कि सामुद्रिक नामक द्विजकुमार दिखाई पड़ा। वह सारसिका नामक वाराङ्गना के चक्कर मे अपना सर्वस्व व्यय करके निष्किचन बन कर उसके घर भृत्य बन गया था। उसने विट को बताया कि चन्दनलता को आप से कुछ काम है। आगे उसे जलाशय मिला। विट ने उसमे स्नान किया। उसके आगे बढ़ने पर नौकरानी ने घर पर छूटे हुए तालवृन्त को लाकर दिया, जिसका वर्णन है—

नानाधातुरसोपलेपललितं सौवर्णवन्योल्लसत्
तिर्यग्भावितवृन्तशिखर— प्रेङ्खत्कलापीगुणम्।
प्रत्यग्रस्फुरदभ्रविन्दुविगलज्ज्योत्स्नावलीभासुर—
हस्तस्य व्यजनं ममेदमधुना पुष्णाति लक्ष्मीं पराम्॥४१

वह चन्दनलता के घर जाने के लिए उसे पीछे-पीछे करके स्वयं आगे चला। चन्दलता की जीवन गाथा है—

१. इसका प्रकाशन काव्यमाला संख्यक ३७ मे हो चुका है।

आ षोडशं मम वयः कमिता स राजा नेतासि च प्रणयविश्वसनैकपात्रम् ।
ता रात्रयश्च तडिदुल्लसितप्रदीपा यत्राभवन् स खलु मे गत एव कालः ।।६०

वे दोनों अम्बिका-निलय पहुँचे। वहां प्रणयी और प्रणयिनी के युग्म अपने प्रणय-व्यापार में उन्मत्त थे। उनकी शृङ्गार-वृत्ति के दर्शक भी मनोरंजन प्राप्त करने के लिए एकत्र थे। वहीं कोई वैदेशिक व्यापारी देवी की मूर्ति उपहार में देने के लिए बाजे-गाजे के साथ आया। राजा भी देवी-दर्शन के लिए आया। वह देवी-मन्दिर में भीतर गया। लोग उसे उत्सुकता से देख रहे थे।

एक हाथी बिना वाहक के खलबली मचाता हुआ उधर से निकला। वाहक उसे किसी-किसी प्रकार बांध करके ले गया। तब लोग निर्भय हुए। इसके पश्चात् विट चन्दनलता के साथ घर के लिए लौट पड़ा।

मार्ग में उनको सबसे पहले मदनमंजरी नामक श्रेष्ठ वेशवनिता मिली। विट उससे यह कहने के लिए उत्सुक हुआ कि शिवदास शर्मा का असवर्णक्षेत्र-पुत्र सुकुमार इसके लिए मरा जा रहा है। उसने अपना काम बनाने के लिए मुझसे कहा है—यह विट ने चन्दनलता से कहा। मदनमंजरी की रूपश्री है—

कटौ ललाटे च सचित्रकाञ्चिता, करे कचे चोत्कटकालिमाश्रिता।
कुचे श्रुतौ च स्फुटगुच्छशोभिता, विभाति सर्वत्र गुणैर्विभूषिता ।।१२३

विट ने अपना काम बनाया। फिर वह चन्दलता के घर पहुँचा। वहां उसका बनाया हुआ पान खाया। पान का वर्णन है—

अमृतकिरणलेखारूपमूर्तं भवत्याः, सुमुखि करतलेन प्राप्तसंयोगमेतत्।
अमृतमिव बिभर्ति स्वादुतामत्युदारां, दलमुरगलतायाःपूगचूर्णानुविद्धम् ।।१३१

सन्ध्या को पुनः वहां आने का कार्यक्रम बना कर विट चलता बना। पहुँचा अपनी प्रिया मंजुलानना के घर। वहां खा-पीकर विलासमन्दिर में प्रवेश किया। विलासमन्दिर है—

कुन्दादिभिः सुरभिलैर्ऋतुजप्रसूनै-
रावासितं हिमपयःपरिषेक-शीतम्।

वहां प्रिया के ताम्बूल के साथ मुख-चुम्बन प्राप्त होता है। सन्ध्या के समय वह उसे लेकर देवीदर्शन के लिए जाने वाला था। वहां से निकला तो महाकेतु और महापताका के झगड़े का निपटारा करना पड़ा।

आगे विट को शृङ्गारलता मिली। उस सुन्दरी से विट ने अपने लिए कहलवा लिया—

अधीनं भवतो नित्यं मदीयं सकलं वपुः।
कमितानि यथाकामं तूर्णं पूर्णयता भवान् ।।१७५

उसे शृङ्गारलता की बहिन विस्मयलता का आलिंगन सहर्ष प्राप्त हुआ। आगे बालचन्द्रिका से कहलवाया कि जैसा अनुमान किया, मैं प्रियतम के द्वारा शमित हूँ। उसका पति बालचकोर घर में ही था, जब वहीं वह उपपति को परितोष प्रदान कर रही थी। बालचन्द्रिका ने अपनी योजना बताई—

पुष्पावचायस्य मिषाद्दिदानोमुत्पाद्य तस्यानुमतिं कथंचित्
तत्पादविन्यासनिनान्तधन्यमुद्यानवल्लीगृहमागतास्मि ॥१८७

उसने उससे कहलवा लिया—

मम त्वदायत्तमिदं कलेवरम् ॥१८९

आगे केरल की स्त्रियों ने विट को निमन्त्रण दिया कि आगामी फल्गुनी नक्षत्र में चन्द्रमा के होने पर मेष में सूर्य के होने पर पुरहरपुर में आप हम लोगो के साथ आनन्द-मनाने के लिए आयें।

आगे उसे खड़ाऊँ पहन कर रस्सी पर चलने का, खम्भों पर तनी रस्सी पर खड़ाऊँ पहन कर और सिर पर कलश रखकर चलने का तथा इन्द्रजाल का दृश्य देखने को मिला। इन्द्रजाल था बीज बोकर तत्काल फल-प्राप्ति कराना, नाचते हुए एक दूसरे की फेंकी तलवार को पकडना आदि। अन्यत्र नट अभिनय कर रहे थे। यथा,

मध्ये दीपज्वलनमधुरे पार्श्वतः पाणिघस्त्री
चित्रीभूते सरसहृदयैर्भूसुरैर्भासुराग्रे।
पृष्ठे मार्दङ्गिकविलसिते रंगदेशे प्रविष्टः
स्पष्टाकृतं नटयति नटः कोऽपि कंचित् प्रबन्धम् ॥२२०

दारिकवध का अभिनय अन्यत्र हो रहा था। यथा,

दृष्टं जपन्तं प्रति दारिकासुरं रुष्टस्य रुद्रस्य ललाटदृष्टिजा।
रेजे तदीयानलघूमसंनिभा काली करालोज्ज्वलसौम्यविग्रहा ॥२२२

किसी नटवधूटी को देखकर चन्द्रकन्दल ने विट से कहा—

तद्भवतात्र तत्संगमोपायो विचारणीयः।

विट ने कहा कि यह भी करूँगा।

सन्ध्या को चन्द्रमाला के घर पहुँचा। वहां मन्दारक मिला। उन सबका कार्यक्रम बना—

नेत्रानन्दं निखिलजगतामावहन्ती वहन्ती
गात्राभिख्यामखिलतरुणीगर्व— निर्वाणहेतुम्।
पश्यामि त्वां प्रियसखि पुरा पार्श्वसंस्थां प्रियस्य
प्राप्तामिन्दोर्भुवमिव कलामुत्सवे लोकमातुः ॥२.३७

वेश्या का स्वभाव

कवि ने स्थान-स्थान पर वेश्या का स्वभाव वर्णन किया है। यथा,

इष्टार्थसिद्धये पूर्वं कुर्वन्ति शपथान् बहून्।
सिद्धे पुनर्वि चेष्टन्ते विपरीतं हि योषितः ॥१३५

वित्तार्जनोपनिषदध्ययन—व्रतानामेतादृशां मृगदृशामपनिव्रतानाम्
पुत्री कथं नु भवितेति पुनर्विचारे नो सर्वथापि करणीयमिति प्रतीतिः।

इष्टं दातुमसंदिहानमखिलं विश्रम्भभाजं निजं
भर्तारं प्रति वंचनामनुदिनं तत्तादृशैः कैतवैः।

कर्त्तुं निर्दयमन्यकेन रमितुं निर्व्याजवद् वर्तितु-
मावाल्यादिव शीलिता मृगदृशः पाटव्यमाविभ्रति ॥१८८

सूक्ति-सौरभ

कवि ने लोकोक्तियों के प्रयोग से नाटक के संवादों में स्वाभाविकता निष्पन्न की है। यथा,

(१) अंगणस्थिताया मल्लिकायाः सौरभ्यं नास्ति।
(२) दम्पतीरोपो न चिरस्थायी।
(३) मधुररसास्वादनान्तरमम्लरसोऽपि मनागास्वादनीयः।

प्रासंगिक वर्णना

नाटक के अभिनेता बचपन से ही अभिनय की शिक्षा लेते थे, जैसा सूत्रधार ने प्रस्तावना में बताया है—

नाट्ये वयं परिचिताश्चिरमाशिशुत्वाद्
यूयं च नाट्यगुणदोषविवेकदक्षाः ॥११

दो दिन में ही पात्र भाण जैसे एकाङ्की का अभिनय तैयार कर लेता था।[1] इसका अभिनय विभाकर नामक अभिनेता ने किया था। विट का प्रसाधन वर्णन किया गया है। वहीं आई हुई किसी कैतव-तापसी का वर्णन है—

अन्तर्वनं वनमिति स्वहृदा जपन्ती वाचा बहिः शिवशिवेति च घोषयन्ती।
अन्त्ये वयस्यपि वर्नाजन-लोलुपत्वादालम्ब्य संचरति कैतवतापसीत्वम् ॥

नाट्यशिल्प

रंगमंच पर विट के कतिपय कार्य दृश्य हैं। यथा,

नाट्येनावगाह्य स्नानादिकं निर्वर्त्योत्तीर्य।

रंगमंच पर स्नान निषिद्ध है।

कवि का उद्देश्य है नारी-कलित विषमताओं को प्रकट करके लोगों को सावधान करना। विट स्पष्ट कहता है—

तदेतासु कदाचिदपि न विश्वसनीयं पुरुषेण।

संस्कृत के भाणों में रससदन पर्याप्त उच्चकोटिक है।

---

१. इस भाण की प्रति सूत्रधार को लेखक ने दो दिन पहले दी थी।

इन्दुमती-परिणय

तंजौर के शिवाजी महाराज (१८३३–१८५५ ई०) ने इन्दुमती-परिणय नामक नाटक का प्रणयन किया।[1] यह नाटक यक्षगानात्मक है। सूत्रधार ने स्वरचित प्रस्तावना में कवि का परिचय देते हुए लिखा है—

साहित्यादिकलानिधिः कुवलयामोदप्रदप्राभवः
श्रीमानिन्दुरिवानिदैन्यनिविडध्वान्तौघविध्वंसकः।
आप्तस्तोमचकोरपोषणकरः पूर्णोल्लसन्मण्डलः
श्रीतञ्जानगरेऽत्र सद्गुणवृतो राजा शिवाज्येधते॥

पारिपार्श्वक ने कवि को भोंसलावंश-मुक्तामणि, सुकवीन्दु, महीन्द्र आदि विशेषण दिया है।

प्रस्तावना के लेखक सूत्रधार आदि हैं, स्वयं नाटक कर्ता नहीं—यह प्रस्तावना की नीचे लिखी उक्ति से स्पष्ट है—

शिवाजी-महीन्द्र इति। येनैतदचिरप्रवृत्तमद्भुतसविधानं सरलपदनिबद्धं रूपकमस्माकं हस्ते विन्यस्तम्। उक्तं च—

सालंकारा सरसा मंजुपदन्याससराजमानार्या।
विमला सत्सूक्तिरिव श्रीरिव सततं त्वया सुरक्ष्येति॥११

इस नाटक का प्रथम अभिनय वसन्त ऋतु में हुआ था। बृहदीश्वर की चैत्रोत्सव-यात्रा में इकट्ठे हुए विद्वानों ने सूत्रधार से कहा था—

'तादृशं नूतनं प्रबन्धमभिनीयास्मन्मनो विनोदय' इति।

प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि प्रत्येक महानगर में भरतराज होते थे, जो नाटकों का प्रयोग कराते थे। अच्छे नट दूसरे नगरों में अपनी विद्या प्रकट करके यश प्राप्त करते थे।[2]

कथासार

रघुनन्दन (अज) सेना सहित इंदुमती के स्वयंवर के लिए विदर्भ जा रहे थे। मार्ग में मृगया करते हुए किसी मत्त हाथी को मारने पर गन्धर्व हो गया—

राज्ञः कुमारेण तरस्विनायं बाणेन सन्दानितमस्तकस्सन्।
वेगात् पतन् भूमितले पुनश्च गन्धर्व-रूपेण मुदोदतिष्ठन्॥२३

१. इसका प्रकाशन The Journal of the Tanjore Maharaja Serfoji's Sarasvati Mahal Library vol. XXII–XXIII में हो चुका है।

२. स तु विदर्भदेशे स्वविद्याप्रकटनेन तत्रत्यभरतराजं सन्तोष्य तत्सुतामुद्वाहयितुं गतवान्।

उसने रघुनन्दन को दिव्य अस्त्र प्रदान किए। वहाँ से विदर्भराज के अन्तःपुर के उपवन में पहुँचे। वहाँ वामन और कुटिलाङ्ग कुसुम-चयन कर रहे थे। दरुद्वारा सूत्रधार उनका वर्णन करता है, जिससे नाटक की पठनीयता प्रमाणित होती है।

वामनकुटिलावयवावेतावायातः पुरुषौ
काममखिल-जनहास्यतया विधिकल्पितनिजवेषौ ॥
परमपि नृपतेरन्तःपुरजनपरिचर्यानिरतौ।
करकल्पितसुमपात्रौ स्वप्रभुकार्येषु विनीतौ ॥

उनकी बातचीत से रघुनन्दन को ज्ञात होता है कि इन्दुमती मुझे वर रूप में पाने के लिए देवार्चन करने वाली है। स्वयंवर में मत्स्य-यन्त्रवेधन करने वाले को इन्दुमती मिलेगी।

उपर्युक्त उपवन में कोई चोर आया, जिसे पकड़ कर नायक के पास पुलिस ले आये। वह जब अपना वृत्त नहीं बता रहा था तो रंगमंच पर पुनः पुनः पीटा गया। तब तो उसने कहा—मैं वनवासी शबर हूँ। मुझे राजाओं ने विदर्भराज की मुद्रा चुरा लाने के लिए भेजा था। रघुनन्दन ने उसे ले लिया। विदूषक ने अन्तःपुर से लाकर इन्दुमती का प्रेमविषयक समाचार दिया—

अन्यत्र हीन्दुमत्या हृदयं नासक्तमेव च त्वयि तु।
दृढलग्नं कलयन्ती कलावती सैव साधयेत् सकलम् ॥३५

उसने बताया कि अन्य राजा इन्दुमती को चुराकर अपनाना चाहते हैं। इसलिए उसके पिता ने उसे अन्तर्गृह में छिपा कर रखा है। विदूषक ने कहा कि उसे बाहर निकालने के लिए राजकीय मुद्रा को वहाँ दिखाना पड़ेगा। नायक ने विदूषक को वह मुद्रा दिखाई, जो चोर से मिली थी। विदूषक ने फिर आकर रघुनन्दन से कहा कि आज इन्दुमती देवपूजा के बहाने उद्यान में आयेगी। दोनों नायिका की प्रतीक्षा में लिए चल पड़े। वहाँ पहुँच कर इन्दुमती के वियोग से नायक मूर्छित हो गया।

नायिका रंगमंच पर आती है। वह उसे देखकर कहता है—

सर्वस्वं कुसुमायुधस्य महतोऽखण्डं फलं श्रेयसः
शृङ्गारस्य च जीवितं हि विषयानन्दस्य कन्दं परम्।
सौन्दर्यातिशयस्य सार इह मे साम्राज्यचिह्नं दृशो-
रेषा गोचरतां प्रिया यदगमद् धन्यः कृतार्थोऽस्मि तत् ॥४४

थोड़ी देर में वियोगिनी नायिका की पद्यात्मक एकोक्ति सुनकर नायक उसके पास आ जाता है। वह कहता है

त्वद्गतचित्ततयाहं कामं विवशः प्रियेऽस्म्यनिशम्।

इन्दुमती को नारद को नमस्कार करने के लिए बुला लिया गया। शीघ्र ही रघुनन्दन को स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए जाना पड़ा। अन्य राजा बलप्रयोग

से इन्दुमती का अपहरण करना चाहते थे, किन्तु नारद ने कुछ ऐसा मन्त्र दे डाला, जिसके प्रभाव से इन्दुमती को कोई छू भी नहीं सकता था।

स्वयंवर मे नाना देश के राजा विराजमान थे। कीर्तिनिधि के साथ नायक का सभामण्डप मे प्रवेश हुआ। नायिका आई तो नायक ने कहा—

कान्ता भातितरां पयोदपटले विद्युल्लतेवोज्ज्वला ॥६८

वन्दी ने राजाओ को सम्बोधित किया—

यन्त्रं चात्र यथा नृपेप्सितमिद छिन्दत्विदानी ततः
प्रीत्या पार्श्वमुपागतां नृपसुतां सम्प्राप्य तुष्यत्वलम् ॥७०

सभी राजाओ ने यन्त्रदलन का प्रयास किया, पर वे असफल रहे। नायक ने—

सन्धायेषुमिहातिलोलमलुनत् तन्मरस्ययन्त्रं दिवि।

नायक के गले मे जयमाला डालने के लिए नायिका आई। नायिका का दय मे सूत्रधार वर्णन करता है—

सख्याम्येति सहितेन्दुमती साखिलशुभनिधिरत्र
सदलंकारा सरसाकारा सादरमम्बुज- वक्त्रा ॥
सकलगुणाढ्या साधुजनेड्या अकलित सुकृत-दुरापा
मदगजगमना महिमस्थानं मदनवधू समरूपा ॥

सभी गुरुजनों को प्रणाम करके उसने आशीर्वाद प्राप्त किया और माला नायक के गले में डाल दी। नारद ने अज के पक्ष के राजाओ से कहा—केवल अज ही युद्ध के लिए उद्यत राजाओ से लड़ने के लिए जायें। अज ने क्षणभर मे ही उन्हें परास्त किया। गोदान, ब्राह्मण-सम्मान, स्वस्तिवाचन (दरद्वारा) तार्किक-विवाद, शास्त्र-प्रसंग आदि के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। दाम्भिक, ईर्ष्यालु, अहंकारी, विद्वान् तार्किक, मूर्ख, कोपन, चपल आदि विशिष्ट ब्राह्मणो ने अपने अब्रह्मण्य का प्रदर्शन किया। राजा ने उन्हे दक्षिणा देकर विदा किया। बाजे बज उठे। पाणिग्रहण हो गया। वसिष्ठ, नारद आदि ने लम्बे आशीर्वाद दिये। सूत्रधार अन्त मे भरतवाक्य सुनाता है—

राजानो धरणी सुनीतिनिरता रक्षन्तु विद्वज्जना
लालयन्तां सरसोक्तयश्च कवयोऽप्येते रसज्ञैर्नृपैः।
वर्णाश्चाप्यखिलाः स्वधर्म-निरताः कामं भवन्त्वन्वहं
स्यादेतस्य कवेरितोऽपि विभवस्सत्पुत्रलाभो यशः ॥

नाट्यशिल्प

'यक्षगान' कोटि के नाटक के पूर्वरग की परिधि मे सर्वप्रथम जयगान हैं। यथा—

जय कृतानतभरण जयसर्वहितकरण।
जय सत्सु कृत-करुण जय भुवन-शरण ॥ इत्यादि

इसके पश्चात् शरणगान है। यथा,

शरणमाप्तकृपोघपूरित शरणमिन्द्रमुखार्चित।
शरणमर्पितविनमदीप्सित शरणमार्य भवाच्युत ॥ इत्यादि

इसके पश्चात् मंगलगान है।

उपर्युक्त गायन 'नाट्यारम्भ' कोटि में परिगणित होता था।

इसके पश्चात् विघ्नेश्वर गणेश, सरस्वती, परमेश्वर और विष्णु की स्तुति के पश्चात् कवीन्द्रों की प्रार्थना गद्य में है।

इतना तक भाग नान्दी के स्थान में है। इसके पश्चात् की प्रस्तावना-सामग्री साधारण रूपकों की भाँति है। मंच पर दरु के द्वारा पात्रों का रूप आदि का वर्णन उनके रंगमंच पर आने के पहले सूत्रधार करता है। पूरे नाटक में सूत्रधार इस प्रकार के दरु प्रस्तुत करता है। यथा,

दौवारिकः समायाति, द्रुतमायाति च
अत्रोज्ज्वलत्कनकवेत्रो विलोलतरनेत्रो-
भृशं कुटिलगात्रो भीपयन्निव
रावाधिराज सुरराजादिनुत—
रघुराजानुपम समाजान्मुदैव ॥[१]

एक ही पात्र के लिए विविध स्थलों पर परिस्थिति के अनुसार अनेक गेय दरु प्रस्तुत किये गये हैं। बच्चों के योग्य मनोरंजक तत्त्व भरे पड़े हैं। यथा जिस श्वास में दौवारिक सूत्रधार को 'वेत्रदण्डेन प्रहर्तमिच्छति' उसी श्वास में 'सूत्रधारं गाढमालिंगति' है। नायक और नायिका के मिलन के प्रथम क्षण में ही बीच में विदूषक को ठेलकर उससे यह वेतुकी बात कहलवाना कि 'किं न मां प्रणमसि' मनोरंजन के लिए हैं।

सूत्रधार आकाशभाषित के द्वारा गन्धर्वों के संवाद को प्रेक्षकों की सूचना के लिए प्रस्तुत करता है।

पात्रों को रंगपीठ पर लाने के पहले उनके नाम किसी अन्य प्रसंग में ला दिये जाते हैं। उस अन्य प्रसंग में प्रयुक्त अपने नाम को सुन कर पात्र पहले अपना नाम लेने वाले को भलाबुरा कहता हुआ रंगपीठ पर उपस्थित होता है। यथा—

सूत्रधारः—मे दौवारिकवत् सदैव निरताः कार्येषु चाज्ञाकराः। तभी दौवारिक यह कहते हुए आ टपकता है—

रे रे मूर्ख किमात्थ दौवारिकवत्

सूत्रधार ने इस विधान की ओर संकेत करते हुए कहा—कीर्तिनिधि नामक सेनापति के उसके अन्य प्रसंग में नाम लेने पर आ जाने पर कहता है—

कीर्तिनिधिर्नामायं युवराजरघुनन्दनप्रियसुहृत् प्रसंगादस्मदुक्तवचनं स्वस्मिन्नधिरोपयति।[२]

१. दरु गेयपद हैं। पूरी पुस्तक में बीसों दरु हैं।

२. सूत्रधार ने प्रस्तावना के अन्त में पारिपार्श्वक से कहा है—तुम तो आगे की अपनी भूमिका के लिए जाओ। अहमत्रैव स्थित्वा सर्वं साधयामि।

दरु वर्णनात्मक हैं। जो पात्र रंगपीठ पर आ ही रहा है, उसके रूप और अलकार का दरु में वर्णन देने से यह प्रमाणित होता है कि इस रूपक की रचना की सार्थकता प्रयोग के साथ ही पठन-मात्र में भी उद्दिष्ट है।

चरित्र-चित्रण की नवीन दिशा इसमे दिखलाई पड़ती है। नायिका के मुख से श्लोक सुनकर नायक कहता है—

अहो मधुरपद-निबन्धनचातुर्यमस्याः।
मरसार्या वाग् रुचिरा सरलपदविन्यासमंजुला च वरा।
अथवा किमीदृशेषु प्रभवनि नाकृतिविशेषेषु॥

एकोक्ति गेय पद के रूप में प्रस्तुत है। नायिका की एकोक्ति है—

क्षणमपि न सहे तमिमं खेद क्षपितातिविनोदम्।
भण सदुपायं किन्तु करोमि भद्रमयि सखि क्व नु वा यामि॥
मलयमरुन्मयि स किरति विदयो ज्वलनकणानिव यो।
जल इह विधुरपि तीव्रकरचयो दलति सदा मां काममविनयो॥

एक स्थायी पात्र सूत्रधार रंगमच पर आद्यन्त रहता है। अन्य पात्र आते जाते हैं। नायक-विहीन रंगमच प्रायः रहता है। किसी अन्य मुख्य पात्र का भी रंगमच पर रहना आवश्यक नही। दो वन्दी रंगमच पर हो—पर्याप्त है। उनकी बातचीत प्रेक्षकों के लिए है।

बिना किसी दृश्य या अङ्क परिवर्तन के अनेक स्थलों की घटनायें आद्यन्त लगातार रंगपीठ पर अभिनीत होती चलती है।

सभी पात्र संस्कृत बोलते हैं। प्राकृत या प्रचलित देशी भाषाओं का नाम भी यक्षगानात्मक नाटक मे नही है। संस्कृत मे व्याकरणात्मक अशुद्धियाँ अगणित हैं, किन्तु इन अशुद्धियों से रस निर्भरता की सान्द्रता में बाधा नही पड़ती।

दरु तथा पदों को छोड़कर १०२ पद्य इस यक्षगान में हैं।

०

अध्याय ७८

वल्लीपरिणय

वल्लीपरिणय के रचयिता वीरराघव का कुलपरिचय प्रस्तावना में कवि ने इस प्रकार दिया है—

यद्वंश्या भुवि पंक्तिपावनतमाः शास्त्राब्धिकूलंकषाः
सम्यक् प्रीणितदेवताः शिथिलितद्वैतान्धकारोत्कटाः।
कामाक्षीश्वरयोस्सतीमतिमतां कोटीरयोर्नन्दनः
साहेन्दोः पुरिवीरराघवसुधीः कौण्डिन्यगोत्रोद्भवः॥

वीरराघव तंजौरनरेश महाराज शिवाजी (१८३३–५५ ई०) की सभा को मण्डित करते थे। इनका जीवन काल १८२० से १८८२ ई० तक था। वीरराघव ने १० ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनमें से रामराज्याभिषेक नाटक, रामानुजाष्टक आदि काव्य हैं। रामराज्याभिषेक में रामायण की प्रसिद्ध कथा है।[1] वल्लीपरिणय पाँच अङ्कों का पूर्ण नाटक है।[2]

वल्लीपरिणय नाटक का प्रथम अभिनय सहजिपुर के भगवान् श्रीकुलीरेश्वर के महोत्सव को देखने के लिए आये हुए सभासदों के प्रीत्यर्थ हुआ था। सूत्रधार-विरचित प्रस्तावना में कहा गया है—

सभ्याः सारविदग्रियाः स समयो वासन्तिको नायकः
सेनानीः सदसोऽधिपो वसुमतीनाथः शिवेन्द्राह्वयः।
नव्यं भव्यगुणं च रूपकमिदं सोऽयं स्वतन्त्रः कविः
तन्त्रेष्वप्यखिलेषु नाट्यसरणौ कामं प्रवीणा वयम्॥

कथावस्तु

नारद ने शिव के पुत्र षडानन से कहा कि शिव के वर से प्राप्त हुई व्याधराज की पोषित कन्या वल्ली से आपका विवाह होना चाहिए। षडानन इस उद्देश्य से घूमते हुए रोमश ऋषि के आश्रम में पहुँचे। मुनि उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। षडानन ने बताया कि वल्ली से विवाह के लिए घूम रहा हूँ। रोमश ने नायिका के विषय में बताया कि वह मेरे आश्रम से एक कोस पर रहती है। नायिका का दर्शन होने पर वल्ली के लिए षडानन मदनार्त हैं। नायिका मधुकर को सम्बोधित करते हुए अपने मनोभाव व्यक्त करती है, जिसे सुनकर नायक सामने आकर कहता है—

विकसदसित — पाथोजन्मदामाभिरामै-
र्निशित- मदनबाणाकारभृङ्गैरपाङ्गैः।
हृदयमपहरन्ती मामकं वल्लि चित्रा-
लिखित—जनमिवेमान्नेक्षसे किं मृगाक्षि॥२·१६

---

१. तंजौर के सरफोजी पुस्तकालय में इसकी हस्तलिखित प्रति अपूर्ण मिलती है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास के गवर्नमेण्ट-हस्तलिखित-भण्डार में प्राप्तव्य है।

नायक और नायिका निकट से मिले। उनमें बातचीत हुई। नायिका षडानन को देखकर मुग्ध हो गई। उसने कहा—

पन्यान सकृदागते वपुषि ते दृष्ट्योः सुखं जायते
तादृक्प्रेमरसार्द्रमार्द्रयति चानन्दामृतैर्मानसम्।
जातानुस्मरणेन सर्वविषयेष्वेदेति सा भूयसी
शान्तिः श्रान्ति-विडम्बिनी भवजुषा का वा स्पृहेऽतः परम्॥

नायक ने नायिका का आलिंगन करना चाहा तो प्रणयनिर्भर भाव से उसने कहा कि मैं माता-पिता से परतन्त्र हूँ। षडानन ने समझाया कि इच्छापूर्ति के लिए स्वातन्त्र्यमेव भज—

नानो न कुप्यतितरां निजकन्यकार्ये।
कुप्येत् स चेन् किमु करिष्यति मय्यसौ त्वाम्॥२.३९

नायिका वाग्जाल में फँसी नहीं। वह खिसकने लगी। षडानन ने समझाया कि मैं कहाँ से कहाँ तुम्हारे लिए उतर आया हूँ। फिर तो नायिका कुछ आगे बढ़ी और षडानन ने बलात् उसका आलिंगन किया। इसके पश्चात् नायिका जाने लगी। नायक ने उसका पिण्ड न छोड़ा और कहा कि मुझे अकेले छोड़ कर कहाँ जा रही हो? फिर तो नायिका पूरे मन से अपने को समर्पित करती हुई नायक के चरणों में आश्रित हो गई। नायक ने आलिंगन करके अपनी कामना तृप्त की। नायिका अपने भवन की ओर चलती बनी।

दूसरे दिन नायक फिर उसी क्रीडास्थली में पहुँचे, जहाँ उन्हें नायिका मिली थी। वे वियोग में उन्मत्त हो गये। उन स्थानों को देखकर षडानन विह्वल थे, जहाँ नायिका से उन्होंने प्रेम किया था। विदूषक से उन्होंने अपनी मदनार्त स्थिति विस्तारपूर्वक बताई। विदूषक ने शिशिरोपचार किया। नायक काम को खोटी-खरी सुनाता है। वह विक्रमोर्वशीय के नायक की भाँति उन्मत्तवत्प्रलाप करता है कि नायिका का अपहरण पिक, मृग, चक्रवाक आदि ने कर लिया है। वन में परिभ्रमण करते हुए विदूषक के साथ नायक को नायिका की चेरी दिखाई पड़ी। वह वन में गिरे हुए नायिका के तालपत्र-वलय को ढूँढ रही थी। वह थक कर सो गई थी। उसे विदूषक ने पंखा झलकर जगाया। नायिका की मदन-व्यथा की चर्चा चेरी ने की। तालपत्र-वलय विदूषक को मिल चुका था। नायक ने चेटी से कहा कि नायिका को इस प्रकार मिलाओ कि उसका पिता व्याधराज न जान पाये। चेटी ने बताया कि राजसदन में छिपे-छिपे प्रवेशकर नायिका को अपनी बना लें। नायक ने ऐसा ही करने का वचन दिया। वह नायिका का अपहरण करने के लिए चल पड़ा।

चतुर्थ अङ्क में रात्रि के समय नायक राजसदन के पास वल्ली की चेटी से नायिका की स्थिति का वर्णन करती है और उसकी इच्छानुसार व्याधराज के भवन में ले जाकर उसे वल्ली को दिखा दिया। नायक ने उससे कहा कि यही समय है कि तुम मेरे साथ चल पड़ो। नायिका कुछ सोच ही रही थी कि नायक उसे भुजपंजर में पकड़ कर वन में चला गया।

व्याधराज ने कंचुकी से कन्यापहरण की बात सुनी तो मूर्छित हो गया। राजा ने अमात्य, सेनापति, सेनादि को वल्ली को ढूँढ़ निकालने के लिए भेजा। स्वयं व्याधराज रथ पर बैठकर निकल पड़ा। अकेले षडानन ने युद्ध में सबके छक्के छुड़ाये। युद्ध करते हुए रंगमंच पर ही षडानन ने व्याधराज को ललकारा। व्याधराज ने व्याघ्रास्त्र चलाया। षडानन ने गजास्त्र से प्रतीकार किया।[1] सिंहास्त्र का प्रतीकार-शरभास्त्र से किया गया। अन्त में व्याधराज को षडानन ने परास्त कर दिया। वह मारा गया।

पंचम अङ्क में युद्धभूमि में वल्ली का षडानन से विवाह हो रहा है। वल्ली समझती थी कि मैं व्याधराज की कन्या हूँ। उसकी माता व्याधराज के शव पर अश्रुधारा वहा रही थी। वल्ली के कहने से षडानन ने व्याधराज को पुनरुज्जीवित कर दिया। नायक ने फिर तो अन्य व्याधें भी जीवित किये। विवाह में सभी बड़े-बड़े देवता सपत्नीक सप्तर्षि हिमालय आदि आ पहुँचे। ब्रह्मा ने पौरोहित्य किया। रंगमंच पर विधिपूर्वक विवाह हुआ।

शिल्प

मधुकर को सम्बोधित करती हुई नायिका द्वितीय अंक में अपने स्निग्ध भावों को व्यक्त करती है।

इस नाटक में कवि ने सन्धियों और सन्ध्यङ्गों को प्रायशः निर्दिष्ट किया है।

अंक का नाम अंकान्त में देकर कवि ने यह भूल नहीं कि वे प्रवेशक और विष्कम्भक अंक के भाग बन जायें। यह वैसे ही किया गया है, जैसे प्रवेशक या निष्कम्भक के अन्त में उनका निर्देश किया गया है। चतुर्थ अंक में सभी पात्रों का चला जाना और फिर से नये पात्रों का आ जाना बिना दृश्य-परिवर्तन के दिखाया गया है। एक ही अङ्क में अनेक स्थानों की घटनाओं के दृश्य दिखाये गये हैं। यथा, षष्ठ अङ्क में पहले युद्धभूमि और पश्चात् व्याधराज का नगर तथा राजसदन में हुई घटनायें दिखाई गई हैं।

वल्ली-परिणय में संवाद लम्बे-लम्बे नहीं हैं। एकोक्तियों को छोड़कर कोई पात्र अपवाद रूप से ही दो वाक्य से अधिक एक साथ कहता है। इतने अच्छे अभिनयोचित संवाद अन्यत्र दुर्लभ हैं।

हास्य-रस की निष्पत्ति के लिए चतुर्थ अङ्क के पूर्व के प्रवेशक में ज्योतिषी और चिकित्सक का परस्पर परिहास करने की योजना स्पृहणीय है। संस्कृत के रूपकों में घिसी-पिटी हास्य-योजना के स्थान पर यह प्रवृत्ति अनुत्तम है। यथा ज्योतिषी का कहना है—

सुण्ठ्यादिपंचपपदार्थ—गुणं कुतश्चित्।
ज्ञात्वा मनस्यगद- मूलमिहाविदित्वा
दत्त्वौषधं किमपि रोगमथैवयित्वा
रुग्णं हिनस्ति धनमप्यहहा चिनोति॥

---

१. व्याघ्रास्त्र से बाघ निकले तो गजास्त्र से हाथी।

कल्पनाओं के द्वारा वीरराघव बड़े-बड़ों को मात देते हैं। नायिका के प्रत्यङ्गों की चर्चा करते हुए नायक कहता है—

त्वद्वक्त्रेण जितस्सुधांशुरयशोमुद्रां मृगव्याजतो।
धत्ते त्वन्नयनद्वयेन विजितं तोयेऽम्बुजं मज्जति।।
त्वद्वक्षोरुहमण्डलेन विजितं मेरुस्तमाङ्ग व्रज-
त्यश्मत्वं वपुषा तवेति विजिता विद्युत्क्षणश्रीकनाम ।।२.८५

कुछ कार्य भी इस नाटक में असाधारण हैं। यथा नायक का नायिका को लेकर राजसदन से वन में भागना। ऐसे दृश्यों से रंगमंच अधिक लोकरुचि को प्रीणित करता है।

अन्य नाटकों में कंचुकी संस्कृत में बोलता है, किन्तु इसमें चतुर्थ अङ्क में वह राजा से प्राकृत में बोलता है। अमात्य, सेनाधिप आदि भी प्राकृत में बोलते हैं।

रंगपीठ पर युद्ध का अभिनय चतुर्थ अङ्क में असाधारण है, किन्तु है रमणीय। यथा—

षडाननः—(सरोषं) धनुषि शरसन्धानमभिनयति।

कहीं-कहीं युद्ध का वर्णन नेपथ्य से कराया गया है।

पंचम अङ्क में रंगपीठ पर ही नायक और नायिका परस्पर आलिंगन-सुख प्राप्त करते हैं। तब तो नायक कहता है।

सुधाधारासारस्नपितमिव जातं मम वपुः ।।५.११

वहीं उसके माता-पिता भी खड़े हैं। यह आधुनिकता का अतिशय है।



अध्याय ७९

वल्लीसहाय का नाट्य साहित्य

उन्नीसवीं शती में वल्लिसहाय ने तीन नाटकों का प्रणयन किया—(१) ययाति-देवयानीचरित (२) ययातितरुणानन्द और (३) रोचनानन्द।[1] रोचनानन्द की प्रस्तावना में सूत्रधार ने लेखक का स्वल्प परिचय दिया है। यथा,

रोचनानन्दसंज्ञं तदस्ति नाटकमीदृशम्।
वल्लीसहायकविना वाधूलेन विनिर्मितम्॥

इस नाटक का प्रथम अभिनय विरंचिपुर (उत्तरी अर्काट जनपद में वेल्लौर के निकट) में हुआ था, जैसा सूत्रधार ने रोचनान्द की प्रस्तावना में नटी को बताया है—

आर्ये सम्प्रति पुनरुत्तरफल्गुन्युत्सवोत्तरे विरंचिनगरी-श्वरस्य भगवतो मार्गवन्धोः सेवासभागतैरादिष्टास्मि॥[2]

प्रधान्यमादिमरसस्य विभाति यत्र नेतात्युदात्त गुणसीरभलोभनीयः।
ख्यातं च पावनतरं तथेतिवृत्तं सन्दर्भ-सम्पदतुला च मनोहरा च॥

अन्य कृतियों में लेखक ने नवनीत कवि, विद्याशंकर और अरुण-गिरि नामक अपने पूर्वजों का उल्लेख किया है।

रोचनानन्द

रोचनानन्द की समीक्षा सूत्रधार के शब्दों में है—

अचुम्बितप्रयोगाढ्यमद्भुतं नाति विस्तरम्।
तादृशं रूपकं नव्यमभिनेयं त्वयास्त्विति॥

कथावस्तु

भगवान् वासुदेव कृष्ण की श्यालपौत्री और रुक्मवान् की कन्या रोचना थी। कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से विवाह कराने के उद्देश्य से उस नायिका का चित्र विदूषक ने नायक को दिया। अनिरुद्ध उसे देखकर मुग्ध हो गया। विदूषक ने उसे बताया कि रुक्मिणी ने आपके विवाह का प्रस्ताव रुक्मी के सामने जाकर रखा है। वे ही रोचना का चित्र फलक लाई थीं।

अनिरुद्ध का मामा रुक्मवान् था। वह अनिरुद्ध को अपने साथ भोजकट नामक अपनी नगरी में ले गया। रोचना के शुभचिन्तकों का मत था कि जैसे कृष्ण का

१. ययाति-देवयानी-चरित और रोचनानन्द (अपूर्ण) शासकीय संस्कृत हस्तलिखित-ग्रन्थागार, मद्रास में मिलते हैं। ययाति-तरुणानन्द का प्रकाशन इस ग्रन्थागार की पत्रिका के ६.१-२ में हो चुका है।

२. प्रस्तावना के अनुसार स्वयं वल्लीसहाय ने भी सूत्रधार से नाटक का अभिनय करने के लिए कहा था।

रुक्मिणी से विवाह हुआ, वैसे ही रोचना अनिरुद्ध के गले में जयमाल डाले। रुक्मवान् इसका विरोध करता था, क्योंकि कृष्ण से उसका वैर पुराना था।

भोजकट में नायक रोचना के लिए उत्कण्ठित है। वह क्रीडावन मे विरही बनकर घूम रहा है।

रुक्मवान् कलिङ्गराज जयत्सेन से मिल कर अनिरुद्ध और रोचना के विवाह मे बाधा डालने की योजना बनाने के सम्बन्ध मे चर्चा करता है। इसके आगे का नाटकांश अभी अप्राप्य है।

ययाति-देवयानी-चरित

कथावस्तु

मृगया करते हुए राजा ययाति वन में वापिका के समीप देवयानी और शर्मिष्ठा से मिलता है। वहीं देवयानी को स्मरण हो आता है कि नायक ने मुझे कूप से निकाला था। तभी शुक्राचार्य आ गये। उन्होंने अपनी कन्या देवयानी का ययाति से विवाह करा दिया।

शर्मिष्ठा देवयानी की परिचारिका बनी हुई तपस्विनी बनकर अपने भाग्य को रो रही थी। उसके सौन्दर्य ने ययाति को अपना दास बना लिया था। उन दोनों के गान्धर्व विवाह के द्वारा पुत्रोत्पत्ति हुई। शर्मिष्ठा क्रीडोपवन में रहने लगी थी।

एक दिन शर्मिष्ठा से प्रेमालाप करते हुए राजा के पास देवयानी आ पहुँची। उसने राजा को डाँटा-फटकारा। अन्त मे उसने उद्यान-पालिका को आदेश दिया कि मेरी मुद्रा दिखाये बिना इस उपवन में कोई न प्रवेश करे। विरहिणी शर्मिष्ठा को वासन्तिक उद्दीपकों ने जब जलाना आरम्भ किया तो नायक का चित्र बनाकर उसी से सम्भाषणादि का सुख पाने लगी। चित्र से उत्तर न पाकर वह मूर्छित हो जाती है। वह सखी के द्वारा कैतक पत्र पर अपना प्रणय सन्देश ययाति के पास भेजती है। ययाति भी उसके विरह में मूर्छित हो जाता है। सचेत होने पर उसे शर्मिष्ठा का पत्र मिलता है, जिसमें लिखा था—

त्वद्दर्शनेप्यभाग्याहं तथापि मदनानलः।
निर्दहत्यनिशं नाथ किंकरीमद्य पाहि माम्॥

चन्द्रिका-चर्चित वातावरण मे नायक नायिका से मिलता है।

नायिका के आँसू पोंछकर उसे ययाति प्रसन्न करता है। आकाशवाणी होती है कि आप दोनों विवाहित हों।

एक दिन देवयानी शर्मिष्ठा को देखने के लिए आयी। शर्मिष्ठा के पुत्रों को देखकर उसने पूछा कि ये कहाँ से? नायिका ने बताया कि महर्षि-तेज के प्रभाव से ये उत्पन्न हुए हैं। कलह आरम्भ हुआ। देवयानी शुक्राचार्य के पास राजा का अपराध बताने चली। वह क्षमा न कर सकी। शुक्राचार्य ने ययाति को शाप

दिया—बूढ़े हो। फिर अनुनय-विनय करने पर कहते हैं कि अपनी बुढ़ापा दूसरे को देकर तरुण बन सकते हो।

ऋग्वेद से महाभारत, हरिवंश और पुराणों में पल्लवित होती हुई यह मनोरंजक कथा नाटककारों को अतिशय प्रिय रही है। बारहवीं शती में रुद्रदेव ने ययाति-चरित नामक सफल नाटक का प्रणयन किया था।

ययाति-तरुणानन्द

कथावस्तु

प्रतिष्ठान के राजा ययाति ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को सरोवर से निकाल कर उनकी प्राणरक्षा की। देवयानी उनसे विवाह करना चाहती थी, पर प्रातिलोमिक सम्बन्ध होने के कारण नायक इसके विरुद्ध था। अन्त में शुक्राचार्य के कहने से उसने विवाह कर लिया। दासी बनकर उसे सरोवर में ढकेलने वाली असुरराज वृषपर्वा की कन्या गई। वह दम्पती की सेवा करती हुई राजप्रिया बन जाती है। शर्मिष्ठा और ययाति का गान्धर्व विवाह हो जाता है। उनके दो पुत्र उत्पन्न होते हैं। देवयानी के कहने से शुक्राचार्य ने राजा को वृद्ध होने का शाप दिया। इससे देवयानी की भी हानि हुई जानकर शुक्र ने उसे पुत्र से यौवन लेकर तारुण्य का सुख भोगने की सुविधा प्रदान कर दी। इस नाटक में स्त्रियों के असहिष्णु स्वभाव का परिचय मिलता है और अनेक विवाह से सुखशान्ति के व्यावृत होने का रोचक वर्णन है। कहीं-कहीं तो राजा सोचने लगता है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

वर्णन

वल्लीसहाय को वर्णना में नैपुण्य प्राप्त था। सरोवर में गिरी देवयानी है—

याता सत्वरमुद्धृता वरतनुः सन्ध्येव रक्ताम्बरा। इत्यादि

प्रथम अङ्क में राजा के द्वारा प्रकृति-परक लम्बे-लम्बे वर्णन नाट्योचित नहीं हैं, यद्यपि काव्य की दृष्टि से वे उच्चकोटिक हैं।

शिल्प

रोचनानन्द की प्रस्तावना के अनुसार नान्दी के पश्चात् सूत्रधार के द्वारा स्वरचित पद्य में आत्मपरिचय देने की रीति थी। यथा,

गुरुरिह भरतकुलस्य श्रीमान् पुनरुक्तमामकविबोधः।
भुजगनटनादिविद्या-विज्ञो नारायणो गुरुर्जयति॥

सूत्रधार का गुरु नारायण था। प्रस्तावना से विदित होता है कि वह सूत्रधार-विरचित है। इसमें उसने अपने अनेक सम्बन्धियों की चर्चा की है।

चित्र के द्वारा अनिरुद्ध और रोचना के प्रणय-संवर्धन की प्रक्रिया छायात्मक व्यापार है।[1] नायक का कहना है—

---

१. ऐसा ही छायात्मक व्यापार ययाति-देवयानी-चरित में नायिका द्वारा नायक के चित्र से सम्भाषण के प्रकरण में है। शर्मिष्ठा दर्पण में प्रतिफलित नायक की छाया से भी अनुराग-पूर्ण बातें करती है।

असमग्रविलिखितापि प्रतिमा यस्याः सकृद्विलोकनतः।
मम हृदि किमपि वितेने चित्राकृतिरद्य सा मया दृष्टा॥

ययाति-देवयानी-चरित के आरम्भ में ही २४ पद्यो मे विष्णु और कृष्ण की स्तुति से और भक्तिपरक गीतों से समकालीन मैथिली किरतनिया नाटक और असमप्रदेश के अङ्किया नाट की स्मृति होती है। अन्यत्र भी कवि ने शृंगारित गीतों का प्रचुर प्रयोग जयदेव के समान किया है। आकाश-वाणी द्वारा तृतीय अङ्क में अर्थोपक्षेप है कि शर्मिष्ठा और ययाति दम्पती बनें।

ययाति-देवयानी-चरित में कवि ने प्रकृति मे कहा-कही नायिका का रूप निरूपित किया है। यथा,

प्रसन्नपङ्केरुहचारुवक्त्रा पुंस्कोकिलारावशुभानुलापा।
मन्दानिला कपिलनाभुजाग्रा त्वामाह्वयत्यत्र वसन्तलक्ष्मीः॥

संवाद और एकोक्तियाँ कही-कही बहुत लम्बी हैं। ययाति-देवयानी-चरित मे आहितुण्डिक की एकोक्ति में अर्थोपक्षेपक तत्त्व है। उसकी यह एकोक्ति बहुत दूर तक चलती है।

भाषा

वल्लीसहाय ने रोचनानन्द मे प्राकृत का यथोचित प्रयोग किया है, किन्तु ययाति-देवयानी-चरित में प्राकृत कही भी नही है। कवि ने सर्वत्र नाट्योचित सरल भाषा का प्रयोग किया है। कुछ पात्र संस्कृत और प्राकृत दोनो बोलते हैं।



अध्याय ८०

नरसिंहाचार्य स्वामी का नाट्यसाहित्य

नरसिंहाचार्य ने वासवीपाराशरीय, राजहंसीय और गजेन्द्र-व्यायोग नामक तीन रूपकों की रचना की है।[1] नरसिंह का जन्म १८४२ ई० में विजयनगर के समीप सिंहाचल में हुआ था। इनके पिता वीरराघव और पितामह नृसिंहार्य थे। इनको विजयनगर (विजगापट्टम् जिला) के राजा आनन्द-गजपतिनाथ (१८५१–१८९७ ई०) का आश्रय प्राप्त था।

नाटकों के अतिरिक्त नरसिंह ने रामचन्द्रकथामृत, भागवत, उज्ज्वलानंद (उपन्यास), अलङ्कारसार-संग्रह, नीतिरहस्य आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया। कहते हैं कि उन्होंने ११ ग्रन्थों की रचना की थी।

वासवीपाराशरीय

नरसिंहाचार्य ने वासवीपाराशरीय को रूपक और नाटक नाम दिया है। इसमें १२ अङ्क हैं। इसका सर्वप्रथम अभिनय विजयनगर में वराह-नरहरि की सेवा में आये हुए यात्रियों के प्रीत्यर्थ हुआ था। अभिनय के पूर्व नटों से इसका साक्षात् अभ्यास कराया गया था। अभिनय वसन्त और ग्रीष्म के सन्धि काल में रात्रि के समय कृष्ण-पक्ष में मन्दिर के बाहर आयतन में हुआ था। स्वयं राजा ने अपने परिवार के सभी सदस्यों के साथ अभिनय को देखकर नाट्य-मण्डली को अनुगृहीत किया था।[2]

कथावस्तु

अकाल पड़ने पर सभी ब्राह्मण गौतम के द्वारा आर्षकृपि से उत्पन्न अन्न का भोजन करते रहे। अकाल समाप्त हो जाने पर भी गौतम ने उन्हें जाने की अनुमति न दी। उन्हें भोजन देने का आनन्द प्राप्त करते रहे। इधर ब्राह्मणों की अनुपस्थिति में गृहस्थों के यज्ञ बन्द हो गये। देवताओं को हवि आदि न मिलने से कष्ट हुआ। उन्होंने एक उपाय किया। एक मायामयी गौ को गौतम का खेत चरने के लिये छोड़ दिया। गौतम ने उसे कुश से हांका तो वह मर ही गई। गोहत्या करने वाले गौतम का अन्न हम ब्राह्मण कैसे खायें—यह विचार करके वे चलते बने। गौतम ने योगदृष्टि से देवों का षड्यन्त्र जान लिया और उन्हें शाप दे डाला कि भूः, भुवः

१. तीनों रूपक तेलुगु लिपि में प्रकाशित हो चुके हैं। राजहंसीय और वासवीपाराशरीय विजयनगर से १८८६ ई० तथा १९०८ ई० में प्रकाशित हुए। गजेन्द्र-व्यायोग का प्रकाशन विशाखापट्टन से हुआ है। तीनों की प्रकाशित प्रतियाँ अडयार लाइब्रेरी और शासकीय-ओरियण्टल-हस्तलिखित-पुस्तकालय, मद्रास में सुरक्षित हैं।

२. अतः बहिरेव क्रियमाणमस्मन्नाट्यमिदानीं सपरिवारस्य देवस्य चक्षुषो विषयी-भवेत्।

और स्वः--सर्वत्र विषमता हो जाय। इस शाप से उन्हें लेने के देने पड़े। घबड़ा कर वे ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने कहा कि मेरे वश के बाहर की बात है। चलो, विष्णु के यहाँ चलें। विष्णु ने शाप दूर करने का उपाय बताया कि मैं स्वयं पराशर और सत्यवती के पुत्र रूप में अवतार लेकर आप लोगों का शाप मिटा दूँगा।

शापापनोदनमहं करवाणि शीघ्रं
जातः पराशरमुनेर्भुवि सत्यवत्याम् ॥

नौका से नदी पार कराती हुई दाशराज कन्या वासवी को पराशर ने देखा और प्रणय-याचना की। पहले तो वह नहीं तैयार हुई, किन्तु ऋषि के सौन्दर्य से प्रभावित होकर गान्धर्व विवाह के लिए सहमत हो गई। मिलन की वेला दूसरे दिन थी। इस बीच मुनि साधारण कामुक की भाँति आपा खो बैठे। उन्होंने रात्रि में चन्द्र से प्रार्थना की कि मुझे चन्द्रमुखी वासवी से मिला दें। षष्ठ अङ्क में वे वासवी के आस-पास आने पर उसकी रमणीयता से वासित चित्त का उद्रेक अपने वर्णनात्मक गीतों से करते हैं। उसके कचकुच का दर्शन करते हैं। दासकन्या वासवी उनसे बढ़कर बातें करने लगी--

वपुर्मत्स्यात्दुच्छादभवदपि दासस्य दुहिता
सपक्षौ कक्षौ मे जलचरसमपुच्छमपि च। इत्यादि

पराशर ने कहा कि यह सब अब नहीं रहेगा। तप के प्रभाव से मुनि ने यह सब कर दिया। उसके शरीर से मत्स्यगन्ध के स्थान पर पद्मगन्ध निस्सृत होने लगी। उसे चक्रवर्तिनी होने का वरदान दिया। मुझसे पुत्र प्राप्त करके तुम पुनः कन्या भाव प्राप्त कर लोगी--यह दूसरा वरदान उसको दिया। मुनि को सुन्दरी वासवी मिल ही गई। नौका पर दम्पती ने प्रथम मिलन का उत्सव मनाया। नौका को सखियाँ बदरी आश्रम की ओर रात्रि के समय खेकर ले जा रही थीं।

रात्रिकालिक आनन्द को कभी न छोड़ने की इच्छा से वासवी ने सखियों से कहा कि ऐसा प्रयत्न करें कि यह मुनि सदा-सदा के लिए मेरा बना रहे। मुनि ने मुझसे कहा है--मेरे लिए पुत्र उत्पन्न करके कन्या बन जाओगी और फिर चक्रवर्ती वर प्राप्त करोगी। वे आज मुझे यहीं छोड़ कर चल देंगे। दस मास के स्थान पर १० घड़ी में ही उसे पुत्र उत्पन्न करने की सम्भावना थी।

दसवें अङ्क में बदरी द्वीप में नौका से तट पर नायिका का हाथ पकड़े हुए नायक उतरता है। सभी वनभूमि में परिहास का आनन्द लेते हैं। पश्चात् सखियाँ हरिण पकड़ने के लिए चल देती हैं। नायक और नायिका अकेले विहार करने के लिए रह जाते हैं। द्वीप नीहार-यवनिका से चारों ओर से आच्छादित हो गया। दिवस-कालिक प्रणय-लीला आरम्भ हुई। मुनि ने कामक्रीडा के लिए दिन को रात्रि में परिणत कर दिया।

दशम अंक में ही दूसरे दृश्य में ब्रह्मा आते हैं। वे यवनिका हटाते हैं तो वेदव्यास का दर्शन होता है। वासवी और पराशर हाथ जोड़े खड़े हैं। विद्या और अविद्या

परिचारिकायें हैं। वासवी व्यास-शिशु का ममतापूर्वक पोषण करती है। उसे अपना दूध पिलाती है, चूमती है, गोद में लेती है। शिशु को लेकर वासवी सखियों के साथ माता-पिता के घर जाती है। सबको यही बताया जाता है कि पुष्पकुंज में वासवी को यह मुनिशावक मिला है।

एक दिन आकाश-वाणी से सार्वजनिक घोषणा हुई कि पराशर और सत्यवती के पुत्र रूप में भगवान् व्यास ने गौतम के शाप से देवताओं को मुक्त किया।

समीक्षा

सूत्रधार के शब्दों में इस रूपक का इतिवृत्त पवित्र है, बहुत बड़ा नहीं है। और भी—

कविरनुपमितरसोक्तिः कनकाम्बरचरणनिम्नहृद्वृत्तिः।
कल्पयति नूत्नचित्रा कथामुषा नैकमक्षरं पतति॥

वासवपाराशरीय धर्मप्रचारात्मक नाटक है। इसके द्वितीय अंक में पराशर और जैन, बौद्ध, चार्वाक आदि के आख्यानों में उनके साम्प्रदायिक उद्बोधनों की लम्बी-लम्बी चर्चायें हैं। इस नाटक को रूपक और आख्यान-बन्ध के बीच में रखा जा सकता है।

शिल्प

इस रूपक में सभी पात्र संस्कृत बोलते हैं—प्राकृत में कोई पात्र नहीं बोलता।

अङ्कों में यवनिका के प्रयोग से अनेक दृश्यों का समावेश किया गया है। यथा, प्रथम अङ्क में देवता ब्रह्मा से मिलते हैं। यह प्रथम दृश्य है। इसके पश्चात् द्वितीय दृश्य में ब्रह्मादि देवता विष्णु से मिलते हैं। दशम अङ्क में पहले दृश्य में पराशर और वासवी की कामक्रीडा और यवनिका-पतन से दूसरे अङ्क में ब्रह्मा की स्तुति का दृश्य है। रंगपीठ से ब्रह्मा-और विष्णु आदि पात्र अन्तर्धान हो जाते हैं।

इस रूपक में संवादों के समान ही कहीं-कहीं लम्बे-लम्बे आख्यान पौराणिक शैली में प्रस्तुत किया गये हैं। प्रथम अङ्क में मत्स्य की सन्तानोत्पत्ति का आख्यान अकेले नारद ने सुनाया है। यह चार पृष्ठ लम्बा है। इसके पश्चात् उन्होंने मैनाक-पुत्र कोलाहल और शुक्तिमती नदी के प्रणय का अतिदीर्घ आख्यान सुनाया है। कोलाहल ने अपनी कन्या राजा वसु को दे दी। माया और अविद्या नामक दो पात्र द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक में प्रतीक-तत्त्व के उद्भावक हैं। पंचम अङ्क में विद्या, अविद्या, धर्म, बोध, विराग और विधि प्रतीक-तत्त्व के उद्भावक हैं। कुछ मनगढ़न्त कहानियाँ भी कही गई हैं। शची ने सीता के वक्षोज सौन्दर्य को देखा तो उसने चकोरदम्पती को बनाकर उनसे तुलना के लिए भेजा। राम ने उनका मन्तव्य जानकर शाप दिया—

युवामा प्रभातं वियोगव्यथां प्राप्नुतम्। भगवान् रविरुदितस्संयोजयिष्यति।

रंगमंच पर नौकावाहन का अभिनय असाधारण संविधान है। लोकप्रियता के चक्कर में कवि ने प्रणयि-युग्म के शृङ्गार-कर्म का आद्यन्त वर्णन अभिधा में किया

है। यह अश्लीलता भाणों को भी पछाड़ती है। नायिका की सखियों का शृङ्गारित परिहास भी सप्तम अङ्क में लोकप्रियता की दृष्टि से कवि ने सन्निवेशित किया है।

लघुतम अष्टम अङ्क में कार्यपरक-दृश्य तो कुछ है ही नहीं, केवल बातचीत के द्वारा सूचनायें दी गई हैं।

रंगपीठ पर दूध पिलाती हुई माता का दृश्य इस नाटक में असाधारण ही है। वात्सल्यरस-निर्भरता इसके द्वारा होती है। शिशु ने कहा कि मुझे छोड़ दें। मैं अन्तर्धान हो जाऊँ। माता वासवी ने कहा—नहीं वत्स, तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं प्राणधारण कर सकती। सखियाँ आईं। उन्हें मृगशावक मिला था। सखियों को वासवी ने संकेत कर दिया—कहीं यह न कहा जाय कि मुझे यह पुत्र हुआ है। अपितु यह घोषणा कर दी जाय कि पुष्पकुंज में मुनिशावक वासवी को मिला है।

वासवीपाराशरीय वस्तुतः प्रकरण है, यद्यपि नृसिंह ने इसे रूपक और नाटक कहा है। पराशर ब्राह्मण का नायक होना मन्दगोत्र की वासवी का नायिका होना, वृत्त का महाभारतादि पर आश्रित होने पर भी बहुशः कल्पित होना, धर्म, काम और अर्थ की अतिशयता इसे प्रकरण कोटि में रखने के लिए पर्याप्त आधार हैं।

गजेन्द्र व्यायोग

गजेन्द्र-व्यायोग का प्रथम अभिनय सिंह गिरिनाथ के चन्दन-महोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसकी रचना चित्रभानु संवत्सर में १८६९ ई० में हुई थी।[1]

कथावस्तु

विष्णु भगवान् लक्ष्मी के साथ हैं। तभी त्राहि-त्राहि की ध्वनि सुनाई पड़ती है। गरुड़ बताता है कि त्रिकूट गिरि की उपत्यका से आर्तनाद आ रहा है। नक्र ने गज को पकड़ लिया है। विष्णु ने नक्र का वध सुदर्शन-चक्र के द्वारा कर दिया। विष्वक्सेन विष्णु के आदेशानुसार गज को लाता है। नारद विष्णु के पास आकर गज का पूर्ववृत्त सुनाते हैं। वे अपनी वीणा पर शङ्कराभरण-राग में गायन करते हैं। वे नाचते भी हैं। पूर्वजन्म के इन्द्रद्युम्न गज हैं। उन्होंने विष्णु की पूजा में त्रुटि की थी। गजेन्द्र भगवान् की स्तुति पन्तुराली राग में करता है। गजेन्द्र तत्काल मोक्ष देने के लिए विष्णु का भाव न देखकर लक्ष्मी की लम्बी स्तुति करता है। लक्ष्मी नासिका से गजेन्द्र का जीव खींच कर उसे अनेक रूप देकर अन्त में विष्णु का पार्षद बना देती हैं। नक्र हूहू नामक गन्धर्व था। वह भी विष्णु की स्तुति करता है। वह देवल के शाप से नक्र बना था। मृत गज के शरीर को सप्राण करके उसकी प्रेयसी हथिनियों को विपत्ति से विष्णु ने बचा दिया।

प्रस्तुत व्यायोग में १४ रागों और ६ तालों का प्रयोग विविध स्तोत्रात्मक गीतों में किया गया है। यह व्यायोग तो है, किन्तु व्यायोग के तत्त्वों का इसमें अभाव-सा है।

नृत्य और संगीत की अतिशयता से इस रूपक का अभिनय वैष्णवों के बीच विशेष प्रिय रहा होगा।

१. चित्रभानु-संवत्सरे श्रावणे निर्माणम्

राजहंसीय-प्रकरण

राजहंसीय प्रकरण की रचना १८८२ ई० के पहले हुई थी।[1] इसका प्रथम अभिनय गोविन्द के कल्याण-महोत्सव के अवसर पर हुआ था। सूत्रधार ने इस रूपक में नई कविता को नवयुवती के समान रसप्रदायिनी बताकर उसके प्रति उन्नीसवीं शती की धारणा की एक अज्ञात झाँकी प्रस्तुत की है। सूत्रधार का कहना है—

कविता वनितेति हि समे वनितां जरतीं तु ये जुगुप्सन्ति।
कवितां जरतीमभिगृध्यन्ति कथं बहूपभोग-हताम्।

विदूषक का कहना था तंडुलः कवनं चेति प्राचीनं शिष्यते द्वयम्।

कथावस्तु

काकुलेश्वर का पुत्र युववर्मा ब्राह्मण-युवक का रूप धारण करके कर्णाटेश्वर कृष्ण सेन की राजधानी माहिष्मती में उसकी कन्या से प्रणय-प्रसंग के लिए आता है। वह राजोद्यान में प्रवेश करता है, जहाँ राजकन्या हंसी के समान आती हुई दिखाई पड़ी। राजहंसी विधाता की सौन्दर्य-सृष्टि का प्रमाण थी। नायक और नायिका परस्पर दर्शन के प्रथम क्षण में ही एक दूसरे के हो गये। विदूषक से नायिका ने नायक-विषयक अपनी जिज्ञासा परितृप्त कर ली। शीघ्र ही राजमहिषी के आगमन के समाचार से नवप्रणय का अस्थायी विघटन हो गया।

द्वितीय अंक में नायिका नायक और विदूषक को अपनी सहायिकाओं से आमन्त्रित कराती है। नायक उनकी बातें सुनकर जान लेता है कि नायिका मेरे लिए मदनातङ्कित है। सहेलियाँ नायक से मिलकर उसे अन्तःपुर में नायिका के साथ रहने के लिए ले जाती हैं। दोनों का वहाँ प्रासादाग्र पर परस्पर दर्शन होता है। इसके पूर्व सैरन्ध्री के द्वारा नायक का प्रेमपत्र नायिका को मिलता है।

चतुर्थ अङ्क में नायक सौधाग्र में पर्यङ्क पर विराजमान है। वहाँ रत्नकला उसे प्रेमपरायणा नायिका का विवरण देती है और स्वयं छिपकर पता लगाती है कि राजपुत्र नायक का आभिजात्य कितना उदात्त है। नायिका नायक का चित्रदर्शन करके कामानल-विदग्ध होती है। रत्नकला नायिका को नायक की स्थिति और कुलशील का परिचय देती है।

पंचम अंक में नायक नायिका से मिलता है। नायक के मूर्छित हो जाने पर ही नायिकादि उसके प्राणों की रक्षा के लिए वहाँ पहुँचते हैं। प्रणयोन्मुख एकान्त मिलन

---

१. वेङ्कटराम स्वामी ने इसे १८०४ शक संवत् में लिखा था। यह १८८२ ई० हुआ। प्रतिलिपि बनाने वाले के अनुसार यह चित्रभानु-संवत्सर था। यह ठीक नहीं प्रतीत होता। गणनानुसार १८८२ ई० में चित्रभानु संवत्सर नहीं हो सकता।

में नायक अपनी आकांक्षाओ का परितर्पण करता है।

षष्ठाङ्क में राजहंसी की पुत्रोत्पत्ति का संवाद है। युववर्मा वहाँ से एक मास के लिए अन्तर्धान रहता है। कालिन्दी नामक नायिका की सहेली सारा समाचार नायिका के पिता के पास लिखकर भेजती हैं। कर्णाटेश्वर नायिका का पिता पुत्रोत्सव मनाने का आयोजन कराता है। अन्त मे युववर्मा के पिता सन्देश पाकर कर्णाटेश्वर से मिलते हैं। विवाह-संस्कार सम्पन्न होता है।

शिल्प

नायक का विप्रवेष-धारण छायातत्त्वानुसारी है। वह अपने को कूटविप्र कहता हैं।

रंगमंच पर नायक और विदूषक का स्नान और भोजन तृतीय अंक मे दिखाया गया है, जो अभारतीय है।

प्रकरण में गीत द्वारा प्रेक्षको के विशेष मनोरंजन की व्यवस्था है। पंचम अंक मे चन्द्रोदय का वर्णन तीन गीतो मे किया गया है।

अङ्को मे अनेक दृश्य यवनिका-पात के द्वारा आयोजित हैं।

नृसिंह स्वामी ने शीतसूर्य नाटक भी लिखा था।



अध्याय ८१

कौमुदीसोम

कौमुदीसोम नाटक के रचयिता कृष्णशास्त्री का पूरा नाम ब्रह्मश्री परितियोकृष्णशास्त्री है।[1] उनका जन्म चोल देश के कलगमवडी गाँव में हुआ था। लेखक ने अपने परिचय में लिखा है कि १६ वर्ष की अवस्था में इस नाटक का प्रणयन मैंने किया है। कवि के जीवन काल में उसके पुत्र ने नाटक का प्रकाशन किया था। केरल के राजा रामवर्मा के अभिषेक के समय १८६० ई० में यह नाटक कवि के द्वारा उन्हें समर्पित किया गया। कवि ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथा में लिखा है कि मैं राम का भक्त हूँ, यज्ञादि करता हूँ तथा काव्य, दर्शन, व्याकरण, धर्मशास्त्र आदि विषयों में निष्णात हूँ। कृष्णशास्त्री ने विद्यानाथ दीक्षित से शिक्षा पाई थी। कवि का आश्रयदाता राजा रामवर्मा केरल-नरेश था।

कौमुदीसोम का प्रथम अभिनय राजा रामवर्मा के आदेशानुसार हुआ था। प्रस्तावना में सूत्रधार ने कहा है—

'तेन मूर्धाभिषिक्तेन स्वयमाहूय समादिष्टोऽस्मि—यथा अद्य त्वयास्मदीयकवेः कृतिरभिनवं कौमुदीसोमं नाम नाटकमभिनेतव्यम्।[2]

स्वयं महाराज रामवर्मा नाटक का अभिनय देखने के लिए उपस्थित थे।

कथावस्तु

ज्योत्स्नावती के राजा सोम और पुष्करपुरीश्वर शरदारम्भ की कन्या कौमुदी के विवाह की कथा इस नाटक में कहीं गई है। कौमुदी का जन्म अशुभ मुहूर्त में हुआ था। उसके पिता ने उसके दुष्प्रभाव से बचने के लिए उसका लालन-पालन करने के लिए उसको कस्तूरिका नामक गणिका को दे दिया। गणिका ने उसका नाम ज्योत्स्नामंजरी रखा। सोम की पत्नी तारावली ने वसन्तोत्सव किया. जिसमें कस्तूरिका कौमुदी के साथ सम्मिलित हुई। वहाँ सोम ने उसे देखा और मोहित होकर उसके साथ गन्धर्व-विवाह के पथ पर अग्रसर हुआ। पहले तो उसका चित्र बनवाया और उसे देखकर परितृप्ति का अनुभव करता रहा, फिर अनङ्गक द्वारा पत्र भेजने लगा। एक दिन तारावली ने उससे कहा कि मेरी मौसेरी बहन कौमुदी मिल नहीं रही है। राजा सोम ने उसे ढूँढ़ निकालने के लिए वनापाय नामक अपने सेनापति को नियुक्त किया।

---

१. इस नाटक का प्रकाशन मद्रास से तेलुगु-लिपि में १८९६ ई० में हो चुका है। इसके पूर्व ग्रन्थार्थ का प्रकाशन १८८१ ई० में ग्रन्थ-लिपि में हुआ था।

२. सूत्रधार के इस वक्तव्य से प्रमाणित होता है कि प्रस्तावना का लेखक स्वयं सूत्रधार होता था, नाटक का रचयिता नहीं।

द्वितीय अंक मे नायक और नायिका एक दूसरे से मिलने के लिए तड़प रहे हैं। वे चेटियो की सहायता से लुक-छिप कर इधर-उधर मिलते हैं। उसी समय तारावली ने सोम को बुला लिया कि क्रीडामहोत्सव मे आपको मेरे साथ रहना है। इस पर नायक नायिका से कुछ समय के लिए वियुक्त हुआ।

विदूषक और चेटी प्रकाशमंजरी ने पुनः नायक और नायिका को मिला दिया। इधर अन्धकार ने सोम की राजधानी ज्योत्स्नावती को घेर लिया। अन्धक ने कौमुदी का हरण कर लिया। तब तो इन सबके विरुद्ध सोम को सचेष्ट होना पड़ा। जीमूत नामक प्रतिनायक राक्षस कौमुदी के पीछे पड़ा था। उसी ने उसका अपहरण कराया था। चतुर्थ अक मे सोम कौमुदी के विरह मे विक्रमोर्वशीय के आदर्श पर मेघ, कुज, गजराज, शिखण्डी आदि से नायिका के विषय मे पूछता है। शरदारम्भ को जब ज्ञात हुआ कि जीमूत मेरी कन्या का अपहरण कराये हुए है तो उसने उसका सर्वनाश कर डाला।

पचम अक मे कस्तूरिका ज्योत्स्नामंजरी (कौमुदी) के वियोग मे आत्महत्या करने के लिए उद्यत है। उसे ज्ञात होता है कि गभस्तिदेवी ने कौमुदी को सुरक्षित बचा रखा है। गभस्ति उसे अपनी गोद मे लेकर आती है। वह नायक को नायिका से मिलाकर उन्हें आशीर्वाद देती है। शरदारम्भ इनके विवाह की अनुमति देते हैं। कस्तूरिका कौमुदी के जन्म और लालन-पालन का वृत्त सबको बताती है। अन्त मे दोनो का विवाह सम्पन्न होने से चारो ओर प्रसन्नता छा जाती है।

शिल्प

प्रतीक नाटक की परम्परा में भावात्मक भूमिका उतनी रोचक नही होती, जितनी प्रकृति से चुनी हुई भूमिका। कवि ने इस नाटक मे प्रकृति के विविध तत्त्वों और व्यवहारो को रूपकख्याति द्वारा मानवीय व्यापार और प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत व्यक्त किया हैं। यह सारा छायात्मक व्यापार वस्तुतः छायानाट्य की सुदृढ भूमिका उपन्यस्त करता है। इस कोटि के अनेक नाटक मध्य युग और अर्वाचीन युग मे लिखे गये हैं।

सुन्दरराज का नाट्य-साहित्य

वरदराज के पुत्र सुन्दरराज केरल के १९ वीं शती के महाकवियों में से हैं। उनका प्रादुर्भाव रामानुज के श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के वैखानस कुल में इलत्तुर अग्रहार में हुआ था। इनकी शिक्षा का समारम्भ रामस्वामी शास्त्री के चरणों में हुआ। इनसे व्याकरण, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र और काव्यों का अध्ययन करके सुन्दर ने एट्टियपुरम् के स्वामी दीक्षित से विशेष अध्ययन किया। इनके दोनों गुरु स्वयं उच्च-कोटि के काव्य-प्रणेता थे। गुरुओं के समान ही सुन्दरराज को राजसम्मान मिला। वे एट्टियपुरम् और त्रावनकोर के राजाओं के द्वारा प्रतिष्ठापित हुए।

सुन्दराराज का जन्म १८४१ ई० में और मृत्यु १९०५ ई० में हुई। वे संस्कृत के साधारण मनीषियों की भाँति जीवन भर अध्ययन करते हुए अपने ज्ञानाम्बुधि में शिष्यों का अवगाहन कराते रहे।

सुन्दरराज की बहुविध रचनाओं से संस्कृत-साहित्य समलंकृत है। उनके रूपक हैं—स्नुषा-विजय[1], हनुमद्विजय-नाटक, वैदर्भी-वासुदेव-नाटक और पद्मिनीपरिणय-नाटक।[2] इनके अतिरिक्त उन्होंने रामभद्रचम्पू, रामभद्रस्तुतिशतक, कृष्णार्याशतक और नीति-रामायण आदि काव्यों का निर्माण किया।

स्नुषाविजय

संस्कृत-नाट्य-साहित्य की अभिनव प्रवृत्तियों का निदर्शन जिन कृतियों से होता है, उनमें स्नुषा-विजय को स्थान दिया जा सकता है। कलही सास को अच्छी वधू के प्रति विमनस्कता और अपनी दुष्ट कन्या के लिए विशेषानुराग निरूपित करके प्रक्षकों का मनोरंजन करने में सुन्दरराज को सफलता मिली है।[3] इसका प्रथम अभिनय स्यानन्दूरपुर में पद्मनाभ के वासन्तिक महोत्सव में विराजमान पण्डित-परिषद् के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

दुराशा नामक दुष्ट सास सच्चरित्रा नामक वधू के पीछे पड़ी हुई है। दुराशा का पति सुशील उससे स्पष्ट कह देता है कि तुम्हें अब आगे वधू के वश में रहना है।

---

१. स्नुषा-विजय का प्रकाशन Annals of Oriental Research, मद्रास के ७.१ में हो चुका है। इसकी प्रति सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

२. कृष्णमाचार्य के अनुसार सुन्दरराज ने रसिकरंजन नामक रूपक का भी प्रणयन किया था।

३. रूपक की प्रस्तावना में इसकी कथावस्तु का सार इस प्रकार दिया गया है—

सुगुणास्नुषया योगं सुतस्योद्वीक्ष्य दुर्धियः।
न सहन्ते परं नार्यो न तथार्याः कुलस्त्रियः॥

सास ने पति से कहा कि जब मैं तुम्हारे वश में न रही तो वह किस खेत की मूली है। सुशील (पति) ने कहा कि वृद्ध माता-पिता का पुत्र और वधू के वश में रहने में ही कल्याण है। दुराशा ने कहा कि आप वश में रहें। मैं गृहस्वामिनी रही हूँ और रहूँगी। पिता ने अपनी स्थिति को डाँवाडोल ही समझा। वह कहता है—

भार्यावशो यदि भवामि वधूविरोधी
पुत्रो गुणी स विमुखो मयि तेन हि स्यात्।
वध्वां भजामि यदि वत्सलता दुराशा
मिथ्यापवादमपि मे जपयेदतीव ॥९

मैं तटस्थ रह कर देखूँ। मैंने इसकी सखी चारुवृत्ता से प्रार्थना की है कि मेरी पत्नी की बुद्धि शुद्ध कर दो।

चारुवृत्ता दुराशा से मिलने आई। दुराशा ने बताया कि ऐसी बहू आ गई, जो काँटे की भाँति चुभ रही है। वह क्या गड़बड़ करती है, इसका उत्तर दुराशा देती है कि छिपा कर तेल रखती हूँ, उसे चुपड़ लेती है, बन-ठन कर शाम को पति के सामने विलास-पूर्वक जाती है। इस प्रकार वह मेरे बेटे को वश में कर लेना चाहती है। मैं यह देख नहीं सकती। मेरा दामाद तो अपनी माँ के वश में है, मेरी कन्या को कुछ नहीं समझता। एक दिन दामाद मेरे घर आया तो उसके लिए जो दही आया, उसे बिना मुझसे पूछे अपने पति को भी परोस दिया। मैंने दामाद और अपनी कन्या के लिए जो अच्छा कमरा नियत किया, वहाँ वह पहले से ही पति के साथ सोने के लिए पहुँच गई। चारुवृत्ता ने उसे समझाया—

स्नुषा यदि सुखं भर्त्रा शयीत रुचिरे गृहे।
पौत्रो भवेद् गुणग्राही कश्चिद्यस्ववंशं समुद्धरेत् ॥

दुराशा ने झट से मनोव्यथा कही—बिना नाती का मुंह देखे पोते से भरी वधू की गोद मेरे लिए असह्य है। वह अपने पिता के घर से आये हुए लोगों का बहुविध भोज्य से सत्कार करती है। उनके चले जाने पर व्यथित होती है।

दुराशा की बेटी दुर्ललिता भी महादुष्टा थी। वह भी दुराशा की विद्वेषाग्नि में आहुति करती हुई जीवन काटती थी। दुराशा का पुत्र और सच्चरित्रा का देवर लम्पट था। उससे सुगुणा कुछ कटी-कटी रहती थी। यह भी दुराशा के लिए असह्य था। उसने मन्तव्य बताया कि अब तो इस बहू को भगाना है और फिर दूसरी बहू लाऊँगी। भले ही वह वेश्या हो। चारुदत्ता की सीख थी—

त्यज दुर्गुण-सम्पत्तिं भज साधुगुणान् द्रुतम्।
इतः परं ते कर्तव्यं केवलं कुक्षिपूरणम् ॥

चारुदत्ता के चले जाने पर दुराशा से उसका पुत्र सुगुण मिला। उसके सामने वह बहू का रोना रोने लगी।। पुत्र ने समझाया कि अब तो माता-पिता को अपने विश्राम के लिए सारा भार पुत्र और वधू पर छोड़ देना चाहिए। दुराशा ने कहा

कि तब तो सारा धन वह वधू अपने भाई को दे देगी और हमलोगों को खोखला कर देगी। तुम भी उसी के वश में हो। उसने कोई मन्त्र-तन्त्र तुम्हारे ऊपर कर दिया है। अपनी पत्नी का कुल परिचय सुन लो—

तस्याः पिता विदित एव पुरातिदुष्टः
माता च दुर्मतिरिति प्रथिता पृथिव्याम्।
भ्राता विटोऽथभगिनी व्यभिचारिणीति
ख्याता न वेत्सि खलु तत्कुलमर्भक त्वम्॥

पुत्र मां के चरणों में गिर पड़ा कि वधू को भी पुत्री समझो। मां के न मानने पर पुत्र ने कहा कि उपाय बताओ कि क्या किया जाय? माता ने कहा—

तव क्वचित् संकुचिते निकेते निवाय दारानुदरान्नभृत्यै।
धान्यं प्रदेयं प्रतिवासरं मे हस्तेन यद्वा मम पुत्रिकायाः॥ ४१

अब मेरी लड़की दामाद के साथ मेरे घर में आकर रहेगी और माता-पिता की सेवा करेगी। नहीं तो विष खाकर मर जाऊँगी।

सच्चरित्रा वधू को समझ में आ गया था कि मेरे पति मेरे प्रति दृढ अनुराग रखते हैं, पर साथ ही मातृभक्ति भी उनमें है। उसने एक दिन अपने पति से कहा कि सास जी तो आपके कमरे में आने के द्वार पर सिर रखकर सोती हैं। मैं आप से कैसे कब तक छिप-छिप कर मिलती रहूँ? दिन भर जिन कामों से मुझे रोकती रहती है, उन्हीं में रात में मुझे लगाती है, जब मुझे आप से मिलना रहता है। पति ने पहले से ही समझ रखा था कि—

श्वश्रूजनः कांक्षति दुष्टचित्तो गर्भं स्नुषायास्सुरतं विनैव।
आहार-सम्पत्तिमहो विनैव शरीरपुष्टिं गृहकृत्ययोग्याम्॥५१

वे अपने दामाद और लड़की का परस्पर मिलन और सुख अत्यधिक चाहती हैं, किन्तु हम दोनों का मिलना उन्हें नहीं सुहाता।

पति ने कहा—सब कुछ सहो। पत्नी ने कहा कि तुम्हारा प्रेम बना रहे। सब कुछ सहूँगी।

इधर ससुर सुशील भी अपनी पत्नी का वहू के प्रति दुर्व्यवहार देख कर खिन्न थे। पुत्र ने निर्णय किया कि इस घर में माता जी बनी रहें, हम दो अन्यत्र चले जायें। श्वशुर ने कहा कि नहीं, वह बुढ़िया ही दूसरे घर में जायेगी।

इस बीच सुगुण की बहिन दुर्ललिता भी आ गई। उसने सुशील और सुगुण पर दोषारोपण किया कि आप दोनों हमारी मां की उपेक्षा करते हैं। वहू के कारण कहीं वह मर ही जायेगी। मेरी भी स्थिति बुरी है। मुझे मेरी सास ने मेरे दोष कह कर पति के घर से निर्वासित करा दिया है। पिता ने अपनी कन्या से स्पष्ट कहा कि कन्याजाति पितृकुल को किस प्रकार खाती है। यथा,

वसनायेदं वित्तं दातव्य भूषणायेदम् ।
भाजनकृते ममेद देयमिति स्व हरत्यहो दुहिता ॥६८

अच्छी कन्या के विषय मे कहा गया है—

सुगुणा तनया निजेन पित्रा मितमर्थ गमितापि तृप्तिमेति ।
सुगुणो रमणश्च पुत्रिकायाः श्वशुरौ तृप्तमना धिनोति वाक्यैः ॥

दुर्ललिता ने बताया कि मा वहू के साथ कही रहना चाहती । बहू कही दूसरे घर मे जाकर रहे । सुशील ने कहा कि नही । तुम्हारी मा को ही कही दूसरे घर मे जाकर रहना होगा । उसे प्रतिमास भोजन आदि मैं दे दूँगा ।

दुर्ललिता इस प्रस्ताव से प्रसन्न हो गई कि अब अन्यत्र रहना होगा । वह अपनी माँ को बुला लाई । उसने कहा कि तुम्हारी पत्नी ने तुमको और तुम्हारे पिता को अपने वश मे कर लिया है । हमारी कन्या के लिए गहने बनवा दो । अब तो मैं अलग बसूँगी ही । पिता ने कहा—

पुत्री नामा मूषिका जन्मगेहात् ।
किंचित् किंचित् वस्तु गूढं हरेत् किम् ॥

सुशील ने अपनी पत्नी के दुर्वचनो से खिन्न होकर उसे मारने के लिए डण्डा उठा लिया । दुराशा अपनी कन्या के गहने के लिए सुगुण से आग्रह करने लगी । सुगुण ने कहा कि लो, पर्याप्त धन । गहने बनवा लो ।

यह एक समस्या-नाटक है । कुटुम्ब मे स्त्रियो को लेकर जो विघटन होते है और निर्दोष बहुओं की कलही सास के द्वारा जो यातनायें दी जाती हैं—इसका रुचिकर शब्दों और रमणीय सवादो के द्वारा मनोहर चित्रण इस अङ्क मे किया गया है । इस रूपक मे अच्छे लोगों के प्रति सहानुभूति और दुष्ट व्यक्तियो के प्रति सहानुभूति-पूर्वक घृणा उत्पन्न कराना कवि का उद्देश्य है, जिसमे उसको सफलता मिली है ।

सच्चरित्रा को रंगमच पर ही पर्दे की आड मे रखकर विविध व्यक्तियो के संवादो के प्रसंग मे उसकी शाब्दिक और मानसिक प्रतिक्रियायें प्रेक्षको के समक्ष ला देना सफल रंगमचीय व्यवस्था है । इसकी प्रतिक्रियोक्ति नितान्त सुरुचिपूर्ण है ।

स्नुषा-विजय रूपक को डॉ० राघवन् ने प्रहसन कहा है । वास्तव मे इसमे हास्य तनिक भी नही है । हास्य तो वहाँ होता है, जहाँ कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करता है, जैसा उसे नही करना चाहिए । इसमे दुराशा और दुर्ललिता ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिनके कार्यकलाप से राघवन् की दृष्टि मे हास्य की प्रसूति होती हैं । सच तो यह है कि दुराशा और दुर्ललिता अपने पद और वृत्ति के सर्वथा अनुरूप कार्य करती है । तब कहाँ से हास्य और प्रहसन होगा ? स्नुषा-विजय विशुद्ध एकाङ्की है । नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे प्रहसन और उत्सृष्टिकाङ्क की परिभाषाओ के परिशीलन से स्पष्ट होगा कि यह अङ्क कोटि का रूपक है न कि प्रहसन । साहित्यदर्पण मे अङ्क की परिभाषा है—

उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः
रसोऽत्र करुणः स्थायी वहुस्त्रीपरिदेवितम् ।
प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपंचयेत् ॥
भाणवत् संविवृत्त्यङ्गान्यस्मिञ्जयपरोजयौ ।
युद्धं च वाचा कर्तव्यं निर्वेदवचनं वहु ॥

उपर्युक्त लक्षण स्नुषा-विजय पर पर्याप्त घटते हैं ।

वैदर्भी-वासुदेव

वैदर्भी-वासुदेव नाटक में सुन्दरराज ने कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह को एक अभिनव धारा में प्रवाहित किया है ।[1] संस्कृत कवियों को यह कथानक पूरे भारत में अतिशय रुचिकर रहा है और उन्नीसवीं शती में भी इस पर अगणित नाटकों की रचना हुई ।

कथावस्तु

रुक्मिणी का विवाह उसके पिता भीष्म कृष्ण से और उसका भाई रुक्मी शिशुपाल से करना चाहते हैं । दीपनिर्णय के अनुसार कृष्ण से विवाह होना चाहिए था । फिर भी भीष्म ने रुक्मी की वात ऊपर से मान ली कि शिशुपाल से विवाह करो । अस्वस्थ होने के कारण शिशुपाल के न आने पर उसे बुलाने के लिए स्वयं रुक्मी गया । इधर रुक्मिणी ने कृष्ण के पास किसी ब्राह्मण से सन्देश भेजा कि मैं आपकी ही हूँ ।

द्वितीय अङ्क में शिशुपाल और कृष्ण दोनों विवाह के लिए आ पहुँचते हैं । रंगमंच पर कृष्ण नायिका का आलिंगन करते हैं, जिसे दूर से ही देखकर शिशुपाल क्षुभित होता है । इसके पहले से ही वह कृष्ण का चित्र बनाकर उससे अपना मनोरंजन करती थी । शिशुपाल नायिका का आलिंगन करने के लिए उसके निकट आकर तृतीय अंक में सुयोधन कृष्ण का रूप धारण करके वैदर्भी का आलिंगन पाने के लिए उत्कण्ठित है । विदूषक की धूर्तता से उसे ऐसा करने में सफलता नहीं मिल पाती ।

चतुर्थ अङ्क में वैदर्भी अम्बिका-पूजन के लिए जाती है । इस बीच रुक्मी कृष्ण को वन्दी बनाकर रखना चाहता है । पर वन्दी बनता है कृष्ण-रूपधारी विदूषक और वास्तविक कृष्ण रुक्मिणी का अपहरण करके द्वारका जा पहुँचते हैं ।

रुक्मिणी के कृष्ण द्वारा अपहृत होने से भीष्म को महती प्रसन्नता हुई । सभी विरोधी पुनः कपट करके रुक्मिणी को कृष्ण के पास से मँगा लेना चाहते हैं । इसके लिए पंचम अङ्क में शिशुपाल भीष्म का रूप बनाकर द्वारका पहुँचते हैं, जहाँ विवाह की सज्जा हो रही थी । सबने कपटी शिशुपाल (भीष्म) का स्वागत किया । पर उसकी बातें सुनकर जान गये कि यह तो भीष्म नहीं हैं । स्वयं रुक्मिणी ने कहा—

१. वैदर्भी-वासुदेव नाटक का प्रकाशन् १८८८ ई० में तिन्नेवल्ली-जनपद में कैलाशपुर में हुआ था । इसकी प्रति अडयार की थियासोफिकल सोसाइटी की लाइब्रेरी में मिलती है ।

न त्वं जनकोऽसि यतो वदसि असदृशम्।
वचनं यदुनाथं तं विना को मम वल्लभः ॥

तभी वास्तविक भीष्म के आ जाने पर मायावी भीष्म (शिशुपाल) का रहस्य खुलता है। नारद स्वयं इसका स्पष्टीकरण करते हैं। बलराम तो उसे मार ही डालना चाहते थे, किन्तु कृष्ण ने मुण्डन कराकर उसे छुड़वा दिया। वासुदेव और वैदर्भी के विवाह-संस्कार के पश्चात् नाटक समाप्त होता है।

समीक्षा

वैदर्भी-वासुदेव नाटक में सुसयत शृङ्गार और वीर का सामञ्जस्य है, जैसा कवि ने स्वयं बताया है—

देवो यदूनां पतिरेकमक्षि-प्रेम्णा सुशीलं सुदृशि प्रहिण्वन्।
शौर्यं रुपान्यद्विमतावलीषु शृङ्गारवीरौ युगपद् भुनक्ति ॥

विदूषकों के द्वारा स्थान-स्थान पर हास्य का सर्जन किया गया है। उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का नायिका-नायक रूप दर्शन कराया गया है। भाषा वैदर्भी-रीति-मण्डित होने के कारण सर्वथा अभिनयोचित है। कवि अलकार-बोझिल भाषा से अपने को दूर रखता है। लघु वाक्यों से संवाद सुबोध और स्वाभाविक है। किसी भी एक पात्र का सवाद दो-चार वाक्यों से बड़ा नहीं है।

उन्नीसवीं शती के भारतीय समाज के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सास्कृतिक सूचनायें वैदर्भी-वासुदेव-नाटक में मिलती हैं।

शिल्प

वैदर्भी-वासुदेव-नाटक में छायातत्त्व का विशेष प्राधान्य है। आरम्भ में वासुदेव का चित्र बनाकर वैदर्भी का उससे प्रार्थना करना, फिर तृतीय अङ्क में सुयोधन का वासुदेव का रूप धारण करके रुक्मिणी के आलिगन का प्रयास करना, सुयोधन के विदूषक का कृष्ण का रूप धारण करके जरासन्ध और सुयोधन की योजनानुसार बाँधा जाना और अन्तिम पंचम अङ्क में शिशुपाल का भीष्म का रूप धारण करके द्वारका में जाकर रुक्मिणी को अपने साथ लाने का प्रयास करना—ये सभी कार्य-व्यापार छायात्मक हैं। कवि छायानाट्य की लोकप्रियता से विशेष प्रभावित होकर इतने छायातत्त्वों को एकत्र ही सुसहित करने में सफल है।

सामवत

सामवत नाटक के प्रणेता अम्बिकादत्त व्यास उन्नीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत-साहित्यकारों में से हैं।[1] उन्होंने मिथिला के राजा लक्ष्मीश्वर सिंह द्वारा प्रोत्साहित होकर इसका प्रणयन उसके राज्याभिषेक के अवसर पर काशी में रहते समय किया था। कवि के शब्दों में—दर्श दर्श प्रसीदतितरां पण्डिताखण्डल-मण्डली-मण्डितः श्रीमान् महाराजः। तत्प्रसादासादनतुन्दलीभूतामन्दोत्साहप्रवाहश्चाहमपि सपद्येव समाप्य ग्रन्थमिमं कृतार्थता-सुखमन्वभवम्।

स्वयं महाराज की आज्ञा से इसका प्रथम प्रकाशन हुआ था।

सामवत की रचना १९३७ वि० सं० तदनुसार १८८० ई० में हो चुकी थी, जब अम्बिकादत्त की अवस्था २२ वर्ष की थी। लेखक को समग्र भारत, राजस्थान और मिथिला पर गर्व था। उसे काल की विक्रान्ति का प्रभाव लगा कि असख्य नाटकों का सदा-सदा के लिए प्रणाश हो गया। इस युग में नाट्य-मण्डलियाँ एक ही नाटक का अनेक वार भी अभिनय करती थीं।[2]

कवि-परिचय

जयपुर से लगभग १० कोस दूर धूलिलय नामक गाँव रम्य पर्वतों से घिरा हुआ था। इस सुन्दर गाँव में महापराक्रमी वीरों की वसति है। यहीं अम्बिकादत्त के पूर्वजों की आवास-भूमि थी। कवि का जन्म वि० संवत् १९१५ में हुआ था। उन्होंने अपने पिता दुर्गादत्त से काव्यों का अध्ययन किया था। दुर्गादत्त काशी में सुप्रसिद्ध कवि और आचार्य थे। पढ़ाते समय वे अम्बिकादत्त को गोद में रख लेते थे। पिता उनके लिए विद्या-सम्बन्धी खिलौने प्रस्तुत करते थे। पिता से पौराणिक कथाओं को सुनते-सुनते वाल्यावस्था से ही वे पौराणिक हो गये थे। अमरकोष पढ़ा और छन्दःशास्त्र का अभ्यास किया। कविता करने लगे। वेदों का अध्ययन किया। ज्योतिष पढ़ा। षड्दर्शन पढ़ा। कवि ने दोषैक-दर्शन-प्रवीण आलोचकों की भर्त्सना की है और स्नेही प्रज्ञों के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा है—

क्षणमपि चेत् पंक्तिमपि प्रीत्या कश्चित् पठिष्यति प्रज्ञः।
कृतकृत्यतां तदासौ कलयिष्यत्यम्बिकादत्तः॥

अम्बिकादत्त ठोस व्यक्तित्व के महापुरुष थे। १७ वीं से १९ वीं शती के महामनीषियों ने भी भाणों की रचना करके जो अपना पतन किया है, उस पर कवि का कटाक्षपात सूत्रधार के शब्दों में है—

न हि, अलमसभ्यवाचां विस्तरैः।

---

१. सामवत का प्रकाशन द्वितीय वार १९४७ ई० में व्यास-पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी से हो चुका है।

२. इस नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार ने कहा है कि हमने अनेक वार रत्नावली का अभिनय किया है। निश्चय ही सूत्रधार ने इसे लिखा है।

सूत्रधार के शब्दों में कवि का परिचय है—

जातो जयपुरनगरे वाराणस्यां तथा कलितविद्यः।
सत्वरकविनासविता गौडः कोऽप्यम्बिकादत्तः॥

कथावस्तु

सुमेधा और सामवान् इन दो स्नातकों को अपने पिता वेदमित्र और सारस्वत के निर्देशानुसार विदर्भराज से धन प्राप्त करना है, जिससे उनका विवाह हो सके। विदर्भराज से मिलन के लिए जाते समय वेदमित्र ने अपने जटाजूट से वेल के दो पत्ते दिये और कहा कि शिखाग्र में धारण कर लो। इनके द्वारा वीरभद्र तुम्हारी रक्षा करेंगे।

सुमेधा और सामवान् को विदर्भ के निकट पहुँचने पर ऋषियों के वन में माधवी लताकुंज में संगीत सुनाई पड़ा। वहाँ स्वर्ग-लोक से आई हुई मदालसा नामक अप्सरा गा रही थी। उसके सौन्दर्य से दोनों शृङ्गारित हो कर उसका वर्णन करने लगे और माधवीलता से अन्तर्हित होकर संगीत का रसास्वादन करने लगे।

निकटवर्ती आश्रम में रहनेवाले दुर्वासा ने सामवान् को बुलाया, किन्तु संगीत-रसास्वादन में डूबे हुए उसने सुना नहीं। दुर्वासा ने निकट आकर उससे कहा कि तुम मेरे मित्र सारस्वत के पुत्र हो। तुम्हारा सत्कार करना चाहता था, किन्तु तुम अनसुनी करके शाप के योग्य बन गये। अतः

स्त्रियं विलोकयन् तत् त्वं मामवज्ञातवानसि।
स्त्रीरूपमचिरादेव तस्मात् त्वं कलयिष्यसि॥ १.६४

सामवान् को यह सब कुछ प्रतीत नहीं हुआ, क्योंकि वह सौन्दर्य-दर्शन में निमग्न था।

सामवान् और सुमेधा राजसभा में जब पहुँचे तो वहाँ नाचगान हो रहा था। आधी रात तक कलावती का नृत्य सभी देखते रहे।

वार्षिक योगिनी-पूजा-महोत्सव में नृत्य-संगीत के समय राजपुरोहित देवशर्मा को सुमेधा और सामवान् के साथ राजा से मिलना था। वसन्त को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने निर्णय किया कि वहीं कुछ ऐसी गड़बड़ी करना है कि राजा उनसे अप्रसन्न हो जाय।

देवशर्मा नामक राजपुरोहित के साथ सुमेधा और सामवान् राजसभा में पहुँचे। उन्होंने राजा की प्रशंसा करके उन्हें पुष्प अर्पित किये। इसके पश्चात् स्त्री-रूपधारी नर्तक का नृत्य मनोरञ्जन के लिए हुआ, जिसे देखकर वसन्तक ने सामवान् को चिढ़ाया—

सैवाकृतिस्तच्च मनोहरत्वं तदेव माधुर्यमथेङ्गितानाम्।
विभाति भूत्वा वनिता स्वरूपं श्रीसामवान् नृत्यति मंजुमूर्तिः॥ ३.२८

सामवान् के क्रुद्ध होने पर उसने कहा कि केवल बातों से क्या? बताइये, क्या कभी आपने स्त्रीवेष धारण किया है?

राजा ने वसन्तक से कहा कि तुम तो महाराज चन्द्राङ्गद की पत्नी के साथ कुछ वसन्त-क्रीडा करो। वह मेरी भाभी लगती है। वसन्तक ने उन मुनिकुमारों से

कहा कि कल चलें परिमलोद्यान में, जहाँ चन्द्राङ्गद की पत्नी सोमवार के दिन प्रति-सप्ताह की भाँति दान करेंगी। केवल सपत्नीक ब्राह्मण उसमें दानग्राही होते हैं। सामवान् पत्नी वनें और सुमेधा पति। बस, काम बन जायेगा। राजा ने उनके कपट का विरोध करने पर आज्ञा दी कि ऐसा करें ही।

चन्द्राङ्गद की पत्नी ने सामवान् को स्त्री देखकर उसे दुर्गा मान कर जो पूजा की तो उसके भक्तिभाव के प्रभाव से सामवान् स्त्री हो गया। यथा,

विप्रस्त्रीणां मण्डलीमध्यसंस्थे दुर्गावुद्ध्या पूजितः पूज्यरीत्या।
सीमन्तिन्या भक्तिभावप्रभावात् चित्रं चित्रं सामवान् स्त्रीत्वमाप ॥४.१२

दोनों स्नातक रानी से धन पाकर अपने पिता के घर की ओर जंगल से होकर चले। एकान्त पाकर मार्ग में सामवान् सुमेधा की प्रेयसी की भाँति आचरण करने लगा। सुमेधा ने उसकी प्रवृत्तियों को देखकर कहा—

कथमयं मम प्रिय सखा सामवान् साधारण सुन्दरीव भाषते।

सामवान् ने उत्तर दिया—मुझे स्त्री समझें—मां तरुणीमवेहि।

सुमेधा ने देखा की वस्तुतः सामवान् रमणी ही है। लताकुंज में ले जाकर उसने उसके अंगों का परीक्षण किया और देखा कि वह पूर्णतया स्त्री है। वह भी वलादिव नियोजितः' उसके सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गया। सुमेधा ने सारा खेल समझ लिया कि कब-कब, क्या-क्या, कैसे-कैसे हुआ। सामवान् से सामवती बना वह मदन-ताप से रोने लगा और मूर्छित हो गया। सुमेधा ने उसे वहका कर कहा कि घने जंगल में चलो तो तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। घूमते-घुमाते वह उसे पिता के आश्रम के समीप ले गया।

सपने में सारस्वत ने अपने पुत्र के स्त्रीत्व की घटना देख ली थी। उसने वेदमित्र को सब कुछ बताया। तभी आकर किसी ब्रह्मचारी ने स्त्रीत्व की घटना की पुष्टि कर दी। राजा के इस परिहास का परिणाम हुआ कि सभी तपस्वियों ने विदर्भराज को ध्वस्त करना आरम्भ किया।

विदर्भराज ने स्वप्न में क्रुद्ध मुनि का दर्शन किया। उनके पुरोहित ने कहा कि यह सब सामवत-प्रकरण से उत्पन्न विपत्तियाँ हैं। आप मेरे बताये एक मन्त्र का जप करें, जिससे सद्यः प्रसन्न होकर देवी आपकी रक्षा का वर दें। राजा को सेनापति का पत्र मिला कि सेना कष्ट में पड़ी है। अमात्य का पत्र मिला कि डाकुओं ने मेरी सेना लूट ली है। इधर सारस्वत भूत, प्रेत, पिशाचों की सेना के साथ राजा का ध्वंस करने आ पहुँचा। इस अवसर पर योगी के द्वारा दिये हुए पुष्प को शिखा में धारण करके राजा ने अपनी रक्षा की।

तभी दुर्वासा प्रतीत होने वाला सारस्वत आ पहुँचा। राजा उसके चरणों में गिर पड़ा। सारस्वत ने डपट कर कहा कि तुमने मेरे कुलाधार पुत्र को स्त्री बना दिया। मैं तुम्हें जलाता हूँ।

राजा ने कहा कि उसे पुरुष बनाने के लिए देवी से आराधनापूर्वक प्रार्थना करता हूँ। देवी प्रकट हुई। भगवती जगदम्बिका ने कहा—वर माँगो। राजा ने कहा—सामवती पुनः पुरुष हो जाये। भगवती ने कहा कि भक्तिपूर्वक महारानी ने जिस रूप में उसे समझा है, उसे मैं बदल नहीं सकती। कुछ और माँगो। राजा ने अपने लिए अभय, हृदय की स्वच्छता, प्रजा की प्रसन्नता आदि माँगी। सारस्वत के तप से प्रसन्न भगवती ने उन्हें वर दिया कि तुम्हें एक और पुत्र हो, जिससे तुम सपुत्र बन जाओ। सामवती तुम्हारी कन्या और सुमेधा दामाद हो गये—यह तुम्हारा पुण्य ही है।

भगवती के अन्तर्धान हो जाने पर सारस्वत ने राजा को अपने व्यक्तित्व में औदात्य लाने की सीख दी। सारस्वत को सामवती के विवाह के लिए धन चाहिए था। वह राजा ने दिया। अन्तिम अङ्क में सुमेधा सामवती के लिए तड़प रहा है। सारिका (पक्षी) के मुख से सामवती की तड़पन का परिचय सुमेधा को मिलता है। यह जानकर सुमेधा कहता है—

सामवति, मदर्थमियं वेदना ते। आः कथमद्यापि न भिद्यते मम वज्रहृदयम्।

वह अतिशय उत्सुक है। तभी विवाह की सारी सामग्री प्रस्तुत होने का समाचार मिलता है और वह भावी कार्यक्रम के लिए चल देता है।

सामवती अपनी सखी मधुरवचना के साथ रंगमंच पर आ जाती है। वह अपना स्वप्न उसे सुनाती है कि मैंने देखा है कि मेरा सुमेधा से पाणिग्रहण विधिपूर्वक हो रहा है। फिर तो वह विमनस्क हो गई। उसे विवाह के लिए तभी मधुरवचना से बुलवाया गया। विवाह की सज्जा हुई। सामवती सजाई गई। गोदान का समय आया। स्वाहा-पूर्वक हवन हुआ। विवाह हो गया।

समीक्षा

सामवत की कथावस्तु स्कन्द-पुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड के सोमव्रत प्रकरण से मूलतः ली गई है। लेखक ने उस छोटी आख्यायिका को बृहत्तम रूप कैसे दिया, यह उसी के शब्दों में परिज्ञेय है—

सैव समूलेति पवित्रेति मनोहरेति अद्भुतेति शिक्षा-भिक्षा-प्रदायिनीति भक्ति-पर्यवसायिनीति च मया तामेवाश्रित्य बहूनि सहायकानि रसोज्जृम्भ-कारिणि कौतुकोत्पादकानि कार्यनिर्वहणक्षमाणि बिन्दु-प्रकरी-पताका स्थानका-दिसंघटकानि पात्राणि प्रकल्प्य विषयममुमङ्कपट्के विभज्य नाटकमिदं घटितम्।

लेखक के अनुसार सामवत-नाटक अभिनय के लिए है। उसका कहना है—

नाटक-पठनानन्दो लक्षणगुणो भवति नाटकाभिनयैः।
करसंस्पृष्टा तन्त्री: कूणिता पीयूषवर्षमातनुते॥

नाट्यशास्त्रीय विधान

सामवत में प्रत्येक अंक का विभाजन दृश्यों में पटीक्षेप के द्वारा किया गया है। अम्बिकादत्त ने प्रकाशित नाटक के उपोद्घात में बताया है कि 'रंगपीठ की अग्रतम सीमा पर जवनिका नामक पर्दा होता है, जो अङ्कारम्भ के पहले गिरा कर फैलाया हुआ रहता है और अङ्कान्त में गिरा दिया जाता है। इसके पीछे एक दूसरा पर्दा पटी या चित्रपटी नामक होता है, जिस पर अभिनेय विषय के अनुरूप गिरि, वन, नगर, सागर आदि के चित्र बने होते हैं। इसके दो खण्ड होते हैं। इसे ऊपर से नीचे की ओर फैलाया जा सकता है, दाहिने से बायें और दोनों ओर से भी फैलाया जा सकता है। लेखक ने मुद्राराक्षस, वेणीसंहार, अभिज्ञान-शाकुन्तल, रत्नावली आदि में पटी के प्रयोग का सोदाहरण उल्लेख इस नाटक के उपोद्घात में किया है।

नाटक के अभिनय के लिए क्रीडा शब्द का प्रयोग होता था। नटी ने कहा है—तर्हि एतत् क्रीडितं भवतु।

विष्कम्भक में केवल सूच्य ही नहीं, दृश्य की विशेषता है। पंचम अंक के पूर्व के विष्कम्भक में नौकावाहन करते हैं, झंझावात से नौका की रक्षा करते हैं। नौका डूबती है। मूर्छित अमात्य को ब्रह्मचारी सचेत करता है। इस विष्कम्भक में पटीक्षेप के द्वारा दो दृश्य कर दिये गये हैं। इस प्रकार का विष्कम्भक लघु अंक बन गया है।

भूमिका-निदर्शन

सामवत-नाटक का नायक राजा नहीं, अपितु ऋषिपुत्र ब्राह्मण है। यह लेखक की नई विधा है। नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार नाटक का नायक राजा ही हो सकता है।[1]

तृतीय अङ्क में भूत-प्रेत आदि की भूमिका है। वे सियारिन की भाँति फेंकरते हैं। पंचम अङ्क में भगवती देवकोटि की भूमिका का प्रतिनिधित्व करती है।

प्रस्तावना

नाटक की प्रस्तावना, जो प्रकाशित पुस्तक में वर्त्तमान है, मूल नाटक में नहीं थी, जैसा नीचे लिखे वाक्य से प्रकट होता है—स च महाराजो राज्यं प्रशास्त्येवाधुना। यद्राज्याभिषेकोत्सवे एतन्नाटकमभ्युदियाय।

शैली

अम्बिकादत्त की कल्पना उद्दाम है। चन्द्रमा का कलङ्क क्या है, इस सम्बन्ध में उनकी अतिशयोक्ति है—

---

१. अभिगम्य गुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान्।
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः॥ द० रू० ३.२३

जग्राह भ्रमरानिन्दुः स्वकान्तारससंगतान्।
तदीयश्यामतायुक्तः कलङ्की गीयते परैः॥
और भी— संसारतमसां स्तोमं हन्ति धावन् कलाधरः।
न तु स्वाङ्कं समालग्नं यतो विज्ञा विपर्यायिनः॥२·२१

कवि कहीं-कहीं बाण की शैली पर प्रशंसात्मक और परिचयात्मक वर्णना करते हुए यह भूल सा जाता है कि उसे नाटकीय संवाद-माला लघुवाक्यों के द्वारा निर्मित करनी चाहिए। तृतीय अंक में सामवान् की राजप्रशंसा नाट्योचित नहीं कही जा सकती। तेरह पंक्तियों की इस वर्णना में अर्थालङ्कार नाटकीय दृष्टि से अनर्थ उत्पन्न करते हैं।

चतुर्थ अङ्क में सुमेधा की एकोक्ति (स्वगत?) ३२ पंक्तियों की है। इतना लम्बा भाषण एक पात्र का नहीं होना चाहिए था। इसके बाद ही एक बार और उसका भाषण २३ पंक्तियों का है। षष्ठ अङ्क के आरम्भ में सुमेधा की एकोक्ति (स्वगत?) द्वारा वह सामवती के प्रति अपना प्रणयोन्माद प्रकट करता है।[1] अम्बिकादत्त का शब्दाधिकार उनके यमक-प्रयोगों से स्पष्ट है। यथा,

मा तापय मा मारुत मारुतमाकलय कलकण्ठ।
किं रे कूजथ मधुपाः मधुपानं कुरुत तूष्णीकाः॥
चित्ते चिन्तनमात्रेण प्रसभं प्रियया हृते।
शून्या इव दिशः पश्यन् कः कर्म्म किं निवेदयेत्॥६.३

रस

अम्बिकादत्त का हास्य-सर्जन-विधान निराला ही है। उनका वसन्तक कहता है कि सपत्नीक निमन्त्रण होने पर मैं स्वयं ही—

'देहे एव दक्षिणं पुरुषो वाम स्त्रीति'

नियम के अनुसार द्वाभ्यामपि हस्ताभ्यां भक्षयिष्यामि।

जीवन-दर्शन का संकेत करते हुए व्यास ने शान्ति रस की निर्झरिणी बहाई है—

बाल्यं भीतिवशादमोहहसनैः क्रीडाहतौ रोदनैः
व्यापारैर्नृपनीतिभिः खरतरैः संयापितं यौवनम्।
अद्य श्वोऽथ हरिं भजाम्यकपटश्चेत्थं कटिं बध्नतो
झञ्झावातमिषेण कोपकलुषः प्राप्तोऽन्तको घस्मरः॥५.५

अद्‌भुत रस के लिए सामवत का सामवती होना मात्र पर्याप्त है। अन्यत्र पादलेप से ब्रह्मचारी और अमात्य आकाशचारी बन जाते हैं।

---

१. इस एकोक्ति के समय बन्धुजीव नामक साथी यद्यपि उसके पीछे-पीछे है, फिर भी नायक उसका ध्यान न करते हुए अपनी बात एकोक्ति कोटि की ही करता है। इसका विश्लेपण करते हुए वह बताता है कि दूसरे के होने से क्या होता है? चित्त तो अपने को छोड़कर किसी और की प्रतीति कर ही नहीं रहा है।

शिल्प

कवि परवर्ती घटना-चक्र का संकेत देते चलता है। वह प्रथम अङ्क में वन्धुजीव विदूपक के मुख से कहलवाता है--

तत्किं द्वयोः परस्परमेव विवाहो भविष्यति। तर्हि एकस्य स्त्रीत्वं कथमपि करणीयम् भवतु सर्वं घटयति विधिः।

रंगमंच पर नारी द्वारा पुरुष का वलात् आलिंगन चतुर्थ अङ्क में दिखाया गया है।

कथावस्तु में तिलस्मी-तत्त्व की प्रचुरता इस युग की देन है। इस युग में हिन्दी में तिलस्मी उपन्यास लिखे जा रहे थे।

दृश्यविभाजन

एक ही अंक में सभी पात्र रंगमंच से चले जाते हैं। उनके जाने के वाद उसी अंक में पटीक्षेप के द्वारा या इसके विना भी अन्य पात्र सामने आ जाते हैं। एक ही अंक में ऐसा अनेक वार होता है।

नेपथ्य के पात्र से रंगनंच पर वर्त्तमान पात्र का संवाद चलता है।

दृश्य विभाजन के द्वारा और अन्यथा भी विविध दूरस्थ स्थानों के दृश्य एक ही अंक में दिखाये जाते हैं। प्रथम अंक में मुनियों के आश्रम का दृश्य है और साथ ही आगे चल कर विदर्भ-देश का। चतुर्थ अंक में सामवान् और सुमेधा के वन में यात्रा करने का दृश्य है। ऐसी यात्रा नाटक में वर्जित है। इसी अंक में कई कोसों दूर सारस्वत और वेदमित्र के आश्रम पर घटित दृश्य भी दिखाये गये हैं। पष्ठ अंक में पटीक्षेप के द्वारा सुमेघा और वन्धुजीव के वार्तास्थल से दूर सामवती और मधुरवचना की वार्ताभूमि सामने आ जाती है।

कवि रत्नावली से वहुत प्रभावित है। उसने होलिका-क्रीडा का दृश्य रत्नावली के आधार पर चित्रित किया है। दृश्यों को कवि ने लोकरंजना से सम्वद्ध किया है। होली का सारा प्रकरण इसी उद्देश्य से अपनाया गया है। द्वितीय अंक में राजपथ पर घूमते हुए राजप्रासाद के समीप आने का दृश्य दिखाया गया है। स्त्रीरूपधारी नर्तक (भ्रूकुंस) का नृत्य भी रंगमंच पर कराया जाता है। पंचम अंक में धीवरों का गीत रमणीय है। इनका गीत मागधी प्राकृत में—

एशा णोआ चलदि चलदि, एशा०
मश्चे विअ शलदि शलदि, एशा०
कीलदि कीलालमले।

इसके पश्चात् अमात्यका गीत संस्कृत में है—

गर्ज गर्ज वारिवाह तर्ज तर्ज घोरराव भर्ज भर्ज
दीनहृदयमतिशय खरतर रे। गर्ज०

पंचम अंक में राजा को प्रातः जगाने के लिए गीत गाया जाता है।

वर्णन

उद्दीपन-विभाव के रूप में कवि ने वहुसंख्यक प्रभावशाली वस्तुओं का सुचारु वर्णन किया है, जिनमें से प्रमुख है— चन्द्रोदय, सूर्यास्त, मृदङ्गादि का नाद, नर्तकी, सरसी, उद्यान, भित्तिशोभा, मुकुर-गृह, राजशोभा आदि।

सच्चरितानुष्ठान

अम्बिकादत्त ने भारत की चारित्रिक मर्यादाओं को सुश्लिष्ट रखने के लिए इतर कवियों की शृंगार-बहुलता और तदनुसारी अश्लीलता को प्रायः दूर ही रखा है। शृंगार-रस के इस नाटक में संयम का सौष्ठव झलकता है। कवि ने क्या-क्या कैसे किया—यह उसी के शब्दों में पढ़ें—

यद्यप्यत्राङ्गी शृङ्गारो रसः, तथापि नैष परकीयां सामान्यनायिकां वा समालम्ब्य प्रवृत्तो न वा गान्धर्वादि-विवाहाश्रयः, न नायक धैर्योदार्यादि-मर्यादाविघट्टकमदनमदवशंवदताविलः, न च वा तादृशत्वे आनन्दस्रोतस्स्राविलै तु न केवलतर्कसम्पर्ककर्कशानि न वा केवलव्याकृति-संस्कृतिप्रकृतिनिकृतिविकृतानि हृदयानि, किन्तु अङ्गीकृतसंगीतभंगीनि साहित्यसुधासमुद्रस्नातानि सहृदयानामेव हृदयानि प्रमाणम्। सम्प्रति हि स्वभावत एव विषयलोलुपचेतसो भवन्ति नवयुवकाः। ते च यथा काव्येषु परकीयाविषयकप्रेमपूरं परिकलय्य न भवेयू रतिकलुषमनसो न वा विघट्टयेयुर्धैर्यधुर्यमर्यादाम्; तथा विशिष्यास्मिन् सच्चरितानुष्ठानमेवाशंस्यत इति स्वयमेव विभावयिष्यन्ति भावुकाः।[1]

१. उपोद्घात पृष्ठ ६ से

अध्याय ८४

शंकरलाल के छायानाटक

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण और बीसवीं शती के प्रथम चरण में गुजरात के शीघ्रकवि महामहोपाध्याय शङ्करलाल ने सावित्रीचरित, गोपालचिन्तामणि-विजय, ध्रुवाभ्युदय, अमरमार्कण्डेय, श्रीकृष्णाभ्युदय आदि छायानाटकों की रचना की।[1] शंकरलाल का जन्म १८४२ ई० में और मृत्यु १९१८ ई० में हुई।[2]

छायानाटक

शंकरलाल के नाटक छायानाटक नहीं है—यह मृषार्थक विलायती इतिहासकारों का है। कीथ ने इनकी समीक्षा करते हुए कहा है—

Savitricarita of S'ankaralal, son of Mahes'vara, calls itself a Chayanataka, but the work, written in 1882, is an ordinary drama, and luders[3] is doubtless right in recognizing that these are not shadow dramas at all.

छायानाटक क्या है—यह समस्या विदेशी समीक्षकों और उनके भारतीय अनुयायियों के समक्ष बीसवीं शताब्दी में अब तक प्रायः सदा रही है। उनके छायानाटक-सम्बन्धी सिद्धान्त नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ मात्र हैं। उनकी समझ में यह नहीं आ सका कि भारतीय छायानाटक योरपीय Shadow play नहीं है। भारत में छायानाटक की निजी परिभाषा रही है, जो संस्कृत के सभी छायानाटकों पर पूर्णतया लागू होती है।[4] शंकरलाल के सभी नाटकों में छायतत्त्व प्रचुर मात्रा में वर्त्तमान है।

---

१. इनके अतिरिक्त शंकरलाल ने भद्रायुविजय नामक नाटक की रचना की थी। यह नाटक अभी तक लेखक को नहीं प्राप्त हो सका है। इसका प्रकाशन १९५७ई० तक नहीं हो सका था।

२. अमरमार्कण्डेय के उपोद्घात से।

३. ल्यूडर्स का मत Sitzungsberichte der konigl. Akademie der Wissenschaften zu Berlin 1916, pp 698 ff में प्रकाशित है।
The Sanskrit Drama P. 270

४. इस विषय का विवेचन लेखक के मध्यकालीन संस्कृतनाटक पृ० ३०२ से ३०६ तथा Charudeva Shastri Felicitation Volume में The Meaning of Chayanataka P. 523-528 में विस्तार से किया गया है। इसके अनुसार छायानाटक में नीचे लिखे तत्त्वों में से कोई एक या अनेक होना चाहिए।

(क) किसी नायक का प्रतिच्छन्द (माया) द्वारा प्रस्तुत होना, जिसे प्रेक्षक मूल नायक से अभिन्न समझता है।

(ख) किसी नायक का पुतला-मात्र उसका अभिनय करे।

(ग) किसी नायक का अभिनयात्मक या इन्द्रजालात्मक चित्र या प्रतिरूप जो प्रेक्षक के ऊपर वास्तविक जैसा प्रभाव डाले।

कविपरिचय

शंकरलाल का जन्म काठियावाड के प्रसमोर (प्रशनोर) नगर में हुआ था। उनके पिता भट्टमहेश्वर भारद्वाज-गोत्रोत्पन्न गुजराती ब्राह्मण थे। शंकरलाल ने अपने पिता के साथ रहते हुए जामनगर में संस्कृत की सर्वोच्च शिक्षा पाई। उनके प्रथम गुरु पिता महेश्वर और द्वितीय गुरु केशवशास्त्री थे, जिनका स्मरण उन्होंने समादर पूर्वक अपनी कृतियों में किया है। यथा, श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय के अन्त में—

इति श्रीमत्केशवदेवगुरुकृपावल्लरी-पल्लवायमाने इत्यादि।

और भी

गुरोः प्रसादेन महेश्वरस्य श्रीकेशवस्यापि च मे दयाब्धेः।
श्रीमत्केशवशास्त्रिसद्गुरुकृपालोकैकपात्रं च यः।

अपने नाम और पिता के नाम के अनुरूप वे शैव थे।[1]

सद्विद्यासम्पदे वन्दे विद्यासाम्राज्यसिद्धिदौ
दयामृतमयात्मानौ श्रीकेशवमहेश्वरौ॥

दासस्य वर्यगुरुकेशवधर्मसूनोः।

जामनगर के राजा ने शंकरलाल के आशुकवित्व से प्रसन्न होकर उन्हें शीघ्रकवि की उपाधि दी थी। उनके द्वारा कविवर मोरवी के संस्कृत महाविद्यालय में प्राचार्य हुए। मृत्यु के दो वर्ष पूर्व १९१४ ई० में उन्हें ७० वर्ष की अवस्था में महामहोपाध्याय की उपाधि भारतीय शासन के द्वारा प्रदान की गई।

शंकरलाल की प्रतिभा से साहित्य के बहुविध क्षेत्र समलंकृत हुए। उन्होंने २० सर्गों में बालचरित नामक महाकाव्य की रचना की। उनका चन्द्रप्रभाचरित कादम्बरी कोटि का गद्य-काव्य है। उनके विपन्मित्र तथा विद्वत्कृत्यविवेक में उनकी निबन्धशैली का चरम विकास परिलक्षित होता है। उन्होंने प्रयोगमणिमाला नामक लघुकौमुदी की टीका भी लिखी थी। उनकी अन्य रचनायें है—अनुसूयाभ्युदय, भगवती-भाग्योदय, महेश-प्रणयप्रिय, पाञ्चाली-चरित, अरुन्धती-विजय, प्रसन्नलोपामुद्रा, केशवकृपालेश-लहरी, कैलाशयात्रा, भ्रान्तिमायाभजन तथा मेघप्रार्थना। उनकी गुजराती-भाषा में निष्पन्न अध्यात्मरत्नावली में सरल भाषा में उच्च आध्यात्मिक तत्त्वों का निदर्शन है। मोरवी के राजाओं के द्वारा कवि बहुसम्मानित थे।

सावित्री-चरित

सावित्री-चरित की रचना कवि ने मोरवी के राजा श्री रवाजि राव और उनकी पत्नी मोंघीबा के निर्देश से की गई।[2] इसका समर्पण कवि ने मोंघीबा के लिए किया

१. यस्मादसौ कवयिता शिवरूप आसीत्। हाथीशर्मा का उद्गार

२. इसका प्रकाशन हो चुका है; इसकी प्रति नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ते में तथ हिन्दूविश्वविद्यालय, काशी के पुस्तकालय में है।

है। राजा ने कवि के समक्ष इच्छा व्यक्त की थी कि राजधर्म, पुंधर्म और स्त्रीधर्म-विशिष्ट प्रबन्ध का प्रणयन करें। प्रस्तावना में कहा गया है कि इस पहली रचना को स्त्रीधर्म-प्रधान बनाना है। इसे सुशील कन्यायें और सती स्त्रियां निस्संकोच पढ़ सकती हैं।

नाटक लिखकर कवि ने उच्च कोटिक विद्वानों से इसका परिशोधन करवाया। इनके गुरु केशव का इस दिशा में सर्वाधिक योगदान था। इस नाटक का प्रणयन १८८२ ई० में हुआ था।

कथासार

सावित्री-चरित के सात अङ्कों में सावित्री और सत्यवान् की कथा है। नारद सावित्री के पिता अश्वपति के पास आये और उनको सावित्री के विषय में चिन्तित देखा। नारद के सामने समाचार मिला कि योग्य वर की प्राप्ति कठिन है। संवाद-दाताओं ने अपनी यात्रा की चित्रावली अश्वपति के समक्ष रखी। उसमें अश्वपति को वनवासी राजा द्युमत्सेन का परिवार अच्छा लगा। उनके पुत्र सत्यवान् का सुशोभन चित्र आकर्षक था। उसके अन्य गुणों से सभी प्रभावित थे, पर नारद ने कहा कि इसे तो एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहना है। इसे सुनकर सावित्री और उसके माता-पिता मूर्छित हो गये। सावित्री को अकेले में अप्सराओं ने कहा कि सत्यवान् दीर्घायु होगा। आप तो वट-सावित्री व्रत करें।

इधर द्युमत्सेन की पत्नी शैव्या सशंक होकर व्याकुल थी कि क्या शत्रुचण्डसेन आक्रमण करने के लिए आ गया? दूसरी ओर से आये सावित्री के पिता अश्वपति। सत्यवान् ने शत्रुओं का वीरता से सामना किया, जिसे अश्वपति ने देखा।

सभी द्युमत्सेन से मिले। उनकी पत्नी ने वनवास की प्रशंसा की—

वासः पुण्येष्वरण्येषु संगः सार्धं च साधुभिः।
वन्यधान्यफलाहारः प्रियात्प्रियतरः प्रियः॥

द्युमत्सेन से अश्वपति की ओर से उनका मंत्री शत्रुशल्य कहता है कि आपके पुत्र सत्यवान् का विवाह अश्वपति की कन्या सावित्री से हो। द्युमत्सेन को यह स्वीकार नहीं कि समृद्ध की कन्या वनवासी राजपुत्र से विवाह करे। सभी अन्त में मान जाते हैं। माल्यादान-पूर्वक उनका विवाह चतुर्थाङ्क में हो जाता है। पंचमाङ्क में सावित्री आश्रमवासिनी हो गई है।

प्रेक्षणक गर्भाङ्क में निवेशित है।[1] अप्सरायें पात्र हैं। इसमें च्यवन, सुकन्या, शर्याति, सुशीला आदि रंगमंच पर आते हैं। सुशीला ने कहा कि मूत्रकृच्छ्रव्याधि से ग्रस्त तुम सभी लोग इससे मरने वाले हो। च्यवन ने ऐसा शाप दिया था, क्योंकि राजकन्या ने उनकी आँखें छेद दी थीं। सुकन्या की सेवा से च्यवन प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे अनेक वरदान दिये।

१. इस प्रसंग में गर्भाङ्क को रूपक, नाटक और प्रेक्षणक—इन तीन नामों से अभिहित किया गया है।

छठें अङ्क में माता-पिता के चले जाने के पश्चात् एक दिन सावित्री द्युमत्सेन से आज्ञा माँगती है कि मैं सत्यवान् के साथ इन्धन लाने जाऊँगी। अनुमति लेकर वह पति के साथ वन मे जाती है। सातवें अंक मे रात्रि के समय अश्वपति की पत्नी सत्यवान् के विषय मे अशुभ स्वप्न देखकर पति के साथ द्युमत्सेन के आश्रम की ओर चल देती है। द्युमत्सेन सन्ध्या के समय तक पुत्र और वधू के न आने से सचिन्त होकर वन मे उन्हे ढूँढने चल देते हैं। सभी वन मे मिलते हैं तो शैव्या पुत्र-विषयक विलाप करती है—

हे सत्यवन् क्व नु गता पितृपादभक्तिर्हा हा क्व वाद्य गलिता तव मातृभक्तिः।
वत्से क्व साश्वपतिपुत्रि तवापि सर्वश्लाघ्या स्वकीयगुरुभक्तिरहो विलीना॥

गौतम सब लोगों को इन्द्रजाल द्वारा धर्मराज का सभामण्डप दिखाते हैं, जिसमे वज्रतुण्ड और तीक्ष्णदंष्ट्र एक-एक करके पापियो को लाकर दण्ड दिलाते हैं। सावित्री और सत्यवान् सामने आते हैं। उन्हे इन्द्रजाल के दृश्य मे देखकर शैव्या और मालती आलिंगन करने के लिए उद्यत होते हैं। सावित्री और सत्यवान् की यम से सम्बन्धित कथा दिखाई गई है, जिसमे सत्यवान् जीवित हो उठता है। अन्त मे नारद के पूछने पर सावित्री इन्द्रजाल के दृश्य में कहती है—

नष्टां दृष्टिं पुनरुपगतो निर्मलां यद् गुरुर्मे
प्राज्यं राज्यं श्वसुर इह मे लप्स्यते यत्स्वकीयम्।
पित्रोः पुत्रा मम च शतशो यद्भविष्यन्ति पत्यु-
र्दीर्घं चायुस्तदखिलमिदं त्वत्प्रसादान्मुनीन्द्र॥

नाट्यशिल्प

कवि रुचिकर किन्तु अनावश्यक वस्तु-विस्तार का प्रेमी है। प्रथमाङ्क के आरम्भ मे शतरंज की क्रीडा का वर्णन कुछ ऐसा ही है। वैसे ही अनावश्यक है द्युमत्सेन का छः पृष्ठो मे अपना लम्बा वृत्तान्त सुनाना। अश्वपति ने भी इस सम्बन्ध में आत्मविषयक लम्बा व्याख्यान दिया है। यह सारा उपक्रम नाट्योचित नही है। चतुर्थ अंक मे अश्वपति की उक्ति मालवी को सम्बोधित करती हुई एकत्र साढे तीन पृष्ठों की है।

किरतनिया नाटको की भाँति कहीं-कहीं कवि ने देवप्रशंसात्मक स्तुतियो को पिरोया है। शैव्या चतुर्थ अंक मे शिव की एक पृष्ठ लम्बी स्तुति करती है। पचम अंक मे १३ श्लोकों का गीत है।[1]

यह ललिता और लीलावती का दो माला है। यथा,

यस्माद्यशः स्वममलं प्रसरेज्जगत्यां यस्माद् भवेदुभयलोकहितं नितान्तम्।
तत्कार्यमेव किलकार्यमिहार्यधार्य वत्से विनीतवनिताश्रित एष मार्गः॥५.४४

छठें अक के आरम्भ में ८ पद्यों का नेपथ्य से शिव का स्तुतिगान है।

१. पृ० ७५-८०।

कवि का एक प्रधान उद्देश्य है शिष्टाचार की शिक्षा देना। नाटक के सभी नायक समुदाचार का पदे पदे पालन करते हैं। छठें अंक में माता-पिता की सेवा न करने वाले पामर को कीट कहा गया है।

छायातत्त्व

आरम्भ में चित्र के द्वारा सत्यवान् के परिवार का परिचय कराना छाया-तत्त्वानुसारी है। अश्वपति सत्यवान् के पिता और माता-सम्बन्धी चित्र देखते हैं।[1]

अन्तिम अंक में यम के कार्यकलाप को इन्द्रजाल द्वारा दिखाया जाता है।[2] इसमें सावित्री और सत्यवान् के सामने आने पर उनकी मातायें शैव्या और मालवी उनका आलिंगन करने के लिए उद्यत होती हैं। साथ ही सत्यवान् की शिरोबाधा, उसका सावित्री की गोद में सिर रख कर सोना, यमराज का आना, उनसे बातें करना, सत्यवान् का प्राण लेना, सावित्री का उसको छोड़ने की प्रार्थना करना, दोनों का वाद-विवाद, सावित्री के पिता का राज्य और दृष्टि, अपनी सन्तान आदि वर-रूप में यम से पाना आदि दिखाया गया है।

सावित्री-चरित में उपर्युक्त छाया तत्त्वात्मक संविधान की गरिमा के कारण लेखक ने इसे छायानाटक कहा है। यथा,

छायानाटकस्यास्य परिशोधने……भूयान् श्रमः स्वीकृतोऽस्ति।

ध्रुवाभ्युदय

ध्रुवाभ्युदय की रचना शंकरलाल शास्त्री ने सं० १९५३ वि० तदनुसार १८९६ ई० में की।[3] प्रस्तावना के अनुसार—

---

१. 'देव, एतच्चित्रपटमेव निवेदयिष्यति तत्रत्यं वृत्तान्तम्। चित्रपट को देखकर अश्वपति कहता है—
स्वान्ते शान्ति वितरतितरां दर्शनादेव सद्यः। आगे चलकर चित्रपट में दिखाया गया है कि किस प्रकार सावित्री सत्यवान् को स्वयंवर की वरमाला पहनाने के लिए उद्यत है। इसे देखकर अश्वपति कहते हैं—
अरे किं तिरस्करिणीं तिरस्कृत्य पवित्रचरित्रा पुत्री सावित्री कर-कमलगृहीत-हारिहीरक-हारा नौकात उत्तीर्णेवात्र चित्रपटे दृश्यते। (अधिकं विलोक्य) अवश्यमस्मिन् राजकुमारेऽस्या दृष्टिर्निमग्ना। इत्यादि।

२. इन्द्रजाल का दृश्य इतना वास्तविक था कि राजा ने शैव्या को बताया कि यह इन्द्रजाल है। इन्द्रजालोत्पन्न भावावेश के क्षणों में पचीसों बार कहा गया है—'इन्द्रजालमेतत्' छाया-नाट्य का वास्तविक नाटक के समान प्रभविष्णु होना उसकी सर्वोच्च सार्थकता है।

३. इसका प्रकाशन यशवन्तसिंह स्टीममुद्रायन्त्रालय, लीवडीपुर जामनगर सं० १८९८ में हुआ था।

गुणशरनन्द-क्षमामितवर्षीये चैत्रमासि पूर्णायाम् ।
पूर्णमभूद् गुरुवारे श्रीगुरुकृपया ध्रुवाभ्युदयम् ।।

इसकी रचना राजवैद्य करुणाशंकर के अनुरोध पर की गई।

कथासार

सात अंकों के ध्रुवाभ्युदय में ध्रुव की सुपरिचित कथा है। ध्रुव ईश्वर की खोज में चल देता है, जब उसकी विमाता सुरुचि अपने पुत्र को बिठाने के लिए उसे पिता उत्तानपाद की गोद से हटवा देती है। ध्रुव तपस्या करता है। सुरुचि उसमें बाधा डालने के लिए अभ्यसूया को नियुक्त करती है। उसके असफल होने पर वह उत्तानपाद से कहती है कि ध्रुव मामा के घर रहकर आप पर आक्रमण करने की सज्जा कर रहा है। वह एक नकली चिट्ठी भी इसे प्रमाणित करने के लिए उत्तानपाद को दिखाती है। तब तो राजा सुनीति और उसका पक्ष लेने वालों को प्राणदण्ड सुनाता है।

इसके पश्चात् नारद छाया-दृश्य दिखाते हैं, जिसके प्रभाव से सत्य का उद्घाटन होने पर उत्तानपाद सुरुचि और उसके पक्षवालों को प्राणदण्ड सुनाते हैं। पर सुनीति सबको छुड़वा देती है। इस बीच ध्रुव भगवान् का साक्षात्कार करके लौट आता है।

छायातत्त्व

नारद के द्वारा ध्रुव के प्रकरण को राजा को छायादृश्य द्वारा ज्ञात कराना इस नाटक में सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण संविधान है, जिसके कारण कवि ने इसे छाया नाटक कहा है।

शैली

शंकर की शैली में भाव निनादित करने की प्रवृत्ति अनेक स्थलों पर है। यथा ध्रुवाभ्युदय में

मनसा वचसा च कर्मभिः युवयोः सा शुभमेव वांछति ।
निजपुत्र इवानुवासरं मयि च स्निह्यति सा शुभाशया ।।

इसमें सुरुचि से पीड़ित सुनीति के मनोभावों का वियोगिनी छन्द में निनाद है।

गोरक्षाभ्युदय

शंकरलाल ने गोरक्षाभ्युदय का अपर नाम श्रीगोपालचिन्तामणि-विजय रखा है।[1] कवि ने इसे छाया नाटक कहा है। वास्तव में इसमें छायातत्त्व का प्रचुर वैशिष्ट्य प्रत्यक्षतः है।

१. इसका प्रकाशन मनोरंजक मुद्रणालय, जामनगर से १९०१ ई० में तथा यदावन्त सिंह मुद्रणालय, लींबडीपुर से १९११ ई० में हुआ। इसका प्रथम प्रकाशन जटाशंकर वैद्यराज की स्मृति में उनके मित्रों ने कराया था।

गोरक्षाभ्युदय की रचना का आरम्भ कवि ने १८९० ई० में और अन्त १८९८ ई० में किया, जैसा नीचे के पद्य में उसने स्वयं बताया है—

आरम्भं नाटकस्यास्य पूर्वं संवत्सराष्टकात् ।
सविघ्न-विप्रुषः सर्वे समारम्भा इति स्फुरम् ॥
संवद्‌वाणेषुनन्दक्ष्मामितेऽब्दे चैत्र उज्ज्वले ।
पक्षे नवम्यां च बुधे पूर्णां करुणया गुरोः ॥

इस नाटक का प्रथम अभिनय महाराज श्रीव्याघ्रजित् की आज्ञा से उसके घर पर हुआ था।

कथासार

मथुरा के राजा उग्रसेन के राज्य में गौ और ब्राह्मण को पीड़ा दी जाती थी और उनकी हिंसा होती थी, यह समाचार सरस्वती ने सूत्रधार से सुना, भारतभूमि ने संवाद का समर्थन किया। पता चला कि गोरक्षा नामक अधिष्ठात्री देवी अशरण होकर वनवासिनी हो गई है। भारतभूमि उसे सभी वर्णों के लोगों के बीच ढूँढ़ती हुई नहीं पाती है और विलाप करती है। उन्हें गौओं को लेकर मथुरा से बाहर जाते हुए यादव मिलते हैं। उनसे विदित होता है कि कंस गौओं के प्रति अत्याचार कर रहा है।

कंस को ज्ञात हो गया है कि उसे देवकी का पुत्र मार डालेगा। वसुदेव-देवकी के छः पुत्र हैं। वे माता पिता के पूजापाठ में पुष्पादि देकर सहायता करते हैं। कंस उन सबको मारना चाहता है। नारद ने उन्हें बचाने के लिए दम्पती को निर्देश दिया कि पार्थिवेश्वर, गोपाल-चिन्तामणि और कामदुघा का नित्य पूजन करने से सब ठीक हो जायेगा।

देवकी ने अपनी गायें यमुना-तीर पर चरने के लिए भेजीं। वहाँ कंस के नौकरों ने उन्हें छीन लिया। वसुदेव उनकी रक्षा के लिए तलवार लेकर दौड़ पड़े।

द्वितीय अंक में कंस के अत्याचारों की चर्चा है—विष्णु के ध्वंस के प्रयास, गौ और ब्राह्मण पर अत्याचार, उनके आश्रयों का विनाश—आदि सुनकर कंस दूत से प्रसन्न होता है। उसे समाचार मिलता है कि वृकानुज और बकानुज मार डाले गये। इन्हीं ने गायें छीनी थीं। कंस ने कहा कि गोब्राह्मण दोनों विष्णु के प्रतिरूप हैं। विष्णु मेरा वैरी है। मैं उसका विनाश चाहते हुए गोब्राह्मण-संहारक हूँ। आप इनके रक्षक हैं। वासुदेव ने उसे गोमहिमा समझाने के लिए व्याख्यान दिया, पर सब व्यर्थ। वसुदेव से उसने कहा कि गायें दे दें, नहीं तो ठीक न होगा। वसुदेव ने कहा कि गायें तो नहीं ही दूँगा। जो करना है, करें। कंस ने कहा कि गाय नहीं देते तो अपने पुत्रों को दे दो। वसुदेव ने पुत्रों को बुलाकर उन्हें कंस को देते हुए कहा—

वत्स, सकलमंगलकामधेनोरस्याः प्राणसंरक्षणाय त्वां त्वन्मातुलाय समर्पयामि।

फिर तो कंस की आज्ञा से केशी नामक अमात्य उन सब के सिर कंस से कटवा देता है।

सरस्वती और भारतभूमि ने यह दृश्य देखा और घोषणा की कि तुम्हारा वध करने के लिए देवकी के गर्भ से शीघ्र ही पुत्र उत्पन्न होगा।

तृतीय अङ्क मे अपने पुत्र कंस के कुकर्म से सन्तप्त उग्रसेन से देवकी कहती है कि गौवो के लिए मेरे पुत्र मारे गये। फिर भी कंस गौओं के पीछे पड़ा है। उग्रसेन कंस का हृदय-परिवर्तन करने के लिए 'गोमत्तयम्युदय' नामक प्रेक्षणक का अभिनय कराता है।

इधर केशी ने बकासुर को ब्रह्मचारी बनाकर विष्णु का समाचार प्राप्त किया कि सरस्वती और भारतभूमि के प्रतिवेदन पर वे अवतार लेने के लिए तैयार हो गये हैं। उसी के द्वारा नियुक्त पूतना माया-लक्ष्मी बन कर विष्णु को रोकती है कि यह कष्ट आप क्यो करें। सवेरे जगने पर विष्णु ने चन्द्रमामा का नाम लिया तो माया लक्ष्मी ने मान किया। विष्णु उसकी मनुहार करते हैं। उसके पूछने पर वे बताते हैं कि मुझे अवतार लेना है। मायालक्ष्मी ने कहा कि अपने पार्षदो से गोरक्षादि का काम करालें। मायालक्ष्मी ने कहा कि अहीरो के समान गोपालक बनना आपको शोभा नही देता। विष्णु के न मानने पर वह रोने लगती है। उसके हठ करने पर विष्णु शाप देते हैं कि जा, सौ वर्ष तक मुझसे अलग रहो।

थोड़ी देर बाद असली लक्ष्मी विष्णु के पास आती है। उसने विष्णु से सुना कि मैं गोब्राह्मणहिताय अवतार लेना चाहता हूँ। बड़ी प्रसन्न हुई। प्रार्थना की कि आप गोप बनें तो मुझे गोपी बनाइये। नारायण ने समझ लिया कि थोड़ी देर पहले जो आई थी, वह मायालक्ष्मी थी। उन्होंने वास्तविक लक्ष्मी से सारी बात बताई कि अब तो हमारा और तुम्हारा शतवार्षिक वियोग होना है। लक्ष्मी मूर्छित हो जाती है, विष्णु रोते हैं। विष्णु ने शाप का संशोधन किया कि सौ वर्षों में से ११ वर्ष हम साथ रहेंगे, जब तुम राधा नामक गोपी बनोगी। मैं मायालक्ष्मी बनी पूतना को शीघ्र मार डालूँगा।

चतुर्थ अंक मे आरम्भ से ही गर्भाङ्क मे अतिदीर्घ प्रेक्षणक प्रस्तुत है जिसमें गोपालबाल-भक्ति मुख्य विषय है। गर्भाङ्क की कथा है—

राजा महीजित् और रानी शैव्या अपने राज्य मे घोर अकाल से अतिचिन्तित हैं। राजा की कन्या जयसेवा और पुत्र जयसेन एक ही रोटी के टुकड़ों पर दिन काटते हैं। झगड़ते नहीं। राजा ने अपनी सारी कोशनिधि प्रजा के प्राणरक्षार्थ दे डाली। इसी प्रेक्षणक मे अब दूरस्थ स्वर्गलोक की स्थली में प्रस्तुत है चित्रगुप्त और धर्मराज का पाप और पुण्य करने वालों को फल प्रदान करने का व्यापार। पापियों को घोर दण्ड देते हुए यम को देखकर कंस और केशी काँप उठते हैं। यम सौ वर्ष पूर्व का बनाया हुआ चित्रपट मँगाता है। एक चित्र में पानी पीते हुए बछवे को हटाकर स्वयं जल पीने वाले पापी को यम दण्ड देते हैं।

पंचम अंक में देवकी की तथाकथित पुत्री को कंस ने पटक कर मारना चाहा

तो वह छटक कर अष्टभुजा देवी बन गई। उसने कंस को बताया कि तुम्हारा वध करने वाला उत्पन्न हो चुका है।

पूतना और बकासुर अपना काम पूरा करके कंस के पास आये। उनसे समाचार पाकर कंस ने पूतना को नियुक्त किया कि मेरे शत्रु शिशु की हत्या कर दो। कंस ने अपने मित्र असुरों को यादवों का विनाश करने के लिए नियुक्त किया।

प्रेक्षणक के अन्त में पंचम अंक में नारद और कंस का संवाद प्रस्तुत है। कंस ने पूछा कि विष्णु-ध्वंस के लिए गये हुए मेरे वीरों के पांच मास व्यतीत हो गये। उनका क्या हुआ? नारद ने पत्रा खोला। एक-एक की चरित-गाथा इच्छानुसार पत्रा के पत्रों पर अंकित कंस को दिखाई पड़ी। चित्र पूतना, शकटासुर, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर, आदि का वध तथा दावानल-पान, गोवर्धन-धारण आदि देखकर कंस मूर्छित हो गया। कंस ने योजना बनाई कि यहीं बुलाकर कृष्ण को चाणूरादि से मरवा डालूँ।

षष्ठ अंक में कंसवध की कथा है। अक्रूर कृष्ण को निमन्त्रित करके मथुरा लाये। गोकुल छोड़ते समय कृष्ण ने वहाँ के निवासियों के मनोरंजन के लिए एक प्रेक्षणक के अभिनय के लिए निर्देश किया। प्रेक्षणक है—गोभक्त्यभ्युदय। प्रेक्षणक की कथानुसार सिंह गायों का पीछा करता है। नन्द और अक्रूर (दर्शक) कहते हैं—इसे छोड़ दो। कृष्ण उनसे कहते हैं कि यह प्रेक्षणक है। आगे कालचण्ड नामक व्याध गायों को बाँध कर लाता है। नर्मदा उसे समझाती है कि गाय जगज्जननी है। तब तो दर्शक गोपाल कालचण्ड को मारने दौड़ते हैं, जब वह गायों को नहीं छोड़ता। बलराम ने कहा—प्रेक्षणकमेतत्। नर्मदा नामक ब्राह्मणी कालचण्ड को गाय छोड़ने के लिए उसकी शर्त मांस खाना मान लेती है। कालचण्ड उससे फिर कहता है कि चलो तुम, मेरे घर भोजन करो। वह तैयार हो जाती है। नर्मदा की उक्ति है—

अभक्ष्यमपि मे भक्ष्यं यदि गौ रक्ष्यतेऽमुना।

उसके लिए मांस के साथ सुरा भी दी गयी। उसके मंत्र के प्रभाव से मांस फल बन जाते हैं और सुरा दुग्ध में परिणत हो जाती है। फिर तो राजा कालयवन नर्मदा पर इन्द्रजाल करने का आरोप लगाता है और गोवध करने के लिए उद्यत होता है। कालयवन को नर्मदा ने समझाया कि यह इन्द्रजाल नहीं है—गोभक्ति की महिमा है। तब तो राजा कालयवन ने प्रतिज्ञा की कि मेरे राज्य में अब कोई गोवध नहीं करेगा। राजा कालयवन ने दुन्दुभि से चारों ओर घोषणा कराई—

ग्रामे पुरेऽपि नगरेऽपि च कोऽपि देशे गां पीडयेन्न मनसा वचसा क्रियाभिः।
राजंस्त्वदीय इति घोषय डिण्डिमेन त्वं चेन्मदीयहितमिच्छसि कर्तुमद्य॥

प्रेक्षणक के पश्चात् कृष्ण ने यादवों को उपदेश दिया कि नर्मदा का आदर्श आप सब अपनायें। कंस सहस्रों गौओं का वध करता है। उसको रोकना है।

श्रीकृष्ण, नन्द, बलराम, आदि शकट पर बैठकर मथुरा के लिए प्रस्थान करते हैं।

अन्तिम अङ्क में कृष्ण मथुरा में हैं। उन्होंने कंस के रजक को मार डाला, धनुर्यज्ञ में धनुष को तोड़ दिया और अन्य बहुत से वीरों को सुरधाम पहुँचाया है। नन्द कृष्ण को कुवलयापीड हाथी का भय बताते हैं। वे मूर्छित हो जाते हैं। तभी अक्रूर बुलाये जाने पर आते हैं। कृष्ण और बलराम शंकर की स्तुति करते हैं।

आगे के दृश्य में कारागार में कंस के द्वारा वसुदेव-देवकी का दर्शन है। वह वसुदेव की गायें माँगता है। वहीं उसे समाचार मिलता है कि चाणूर और मुष्टिक को छोड़कर सभी मारे गये। वे दोनों भी मार डाले गये। फिर कंस की आज्ञा से देवकी-वसुदेव मल्ल-मण्डप में लाये जाते हैं।

कंस ने सबके मारे जाने के पश्चात् निर्णय किया कि पहले कृष्ण और बलराम को, फिर देवकी और वसुदेव को और अन्त में यादवों को परलोक भेजूँगा। कंस और कृष्ण आवेशपूर्ण बातें करके उचित भूमि पर लड़ने चल देते हैं। कंस मारा गया। कृष्ण और बलराम उग्रसेन को बन्धन-विमुक्त करके अपने माता-पिता के पास लाये। वे वसुदेव की बेड़ी काटना चाहते थे। उन्होंने कहा कि पहले कंस के द्वारा बद्ध गायें मुक्त की जायें। ऐसा किया जाता है। सरस्वती, भारतभूमि और गोरक्षा भी कृष्ण के पास आ जाती हैं। कृष्ण को ज्ञात हुआ कि मेरे वास्तविक पिता वसुदेव और देवकी हैं। वे वसुदेव और नन्द का समान रूप से होकर रहने का निर्णय सुना देते हैं। वसुदेव के छः पुत्र कंस के द्वारा मारे गये थे। वे सजीव आकाश से उतर आते हैं। कंस भी विमान पर चढ़कर आकाश मार्ग से स्वर्ग में स्थान लेने के लिए पहुँचा।

नाटक की कथावस्तु अतिशय प्रलम्बित है। इस बड़ी कथा में अगणित नायक के भाग्य का वारान्यारा होता है। ऐसी कथावस्तु में चुस्ती नहीं आती।

नाट्यशिल्प

प्रस्तावना में ही नाटक का अभिनय आरम्भ हो जाता है, जिसमें सूत्रधार एक पात्र बन जाता है और नेपथ्य के समक्ष सरस्वती की वन्दना नटी के साथ करता है। सरस्वती उसके मुख से सुनती है कि गायों का बड़ा तिरस्कार उग्रसेन के राज्य में हो रहा है।

इसमें प्रायशः देवों की भूमिका है, जिनमें गोरक्षा सर्वोपरि है। इसी के नाम पर इसे गोरक्षाभ्युदय नाम दिया गया है। देवता, असुर, मानव, ऋषि-मुनि—सैकड़ों व्यक्ति इसमें योगदान देते हैं। इतनी बड़ी पात्र-संख्या नाट्योचित नहीं है। भारी-भरकम यह रूपक महानाटक सा लगता है।

प्रथम अङ्क में सुदूरस्थ अनेक स्थलों के वृत्तों की चर्चायें हैं।[1] कोई पात्र आद्यन्त अंक में रहकर कथांश की एकसूत्रता प्रतानित करता हुआ नहीं दिखाई देता। अंक में भूतकाल की घटनायें संवाद के द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। ऐसा अर्थोपक्षेपक में होना चाहिए था। प्रायः सभी अंकों में यही विधि है।

---

१. तृतीय अंक में मर्त्यलोक और विष्णुलोक दोनों की कथायें हैं।

अनेक दिनों ही नहीं, मासों की कथा एक ही अंक में गर्भित है। कंस ने वीरों को विष्णुध्वंस के लिए भेजा—यह घटना और उनके गये हुए पांच मास वीत गये—यह दूसरी घटना पंचम अंक में ही आ गई हैं। अंक में तो केवल एक दिन की घटना होनी चाहिए। एक-एक दिन की घटना को अलग दृश्यों में विभक्त कर देने पर यह दोष नहीं रहेगा।[1]

रंगमंच वीच-वीच में पात्र-रहित रहता है। अन्तिम पात्र के जाने पर दूसरे पात्र आते हैं। यह भी दृश्यविधान से समीचीन वनाया जा सकता था।

छायातत्त्व

तृतीय अंक में पूतना लक्ष्मी का वेष धारण करके विष्णु को मर्त्यलोक में अवतार लेने से विरत करने के लिए प्रयास करती है। साथ ही वकासुर ब्रह्मचारी वनकर विष्णु की प्रवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त करता है। यह छद्म छायानुसारी है।

चतुर्थ अंक के प्रेक्षणक में यम एक चित्रपट महीजित् को दिखाते हैं, जिसमें गोहिंसक पापी की दुर्गति है। इसे देखकर महीजित् मूर्छित हो जाता है। कंस इस प्रेक्षणक में प्रस्तुत घटनाओं को वास्तविक समझने लगता है। प्रेक्षणक में अगली घटना च्यवन की है, जिसमें पृथ्वी से वढ़कर भी गाय का मूल्य आंका गया है। सूत्रधार कंस से प्रार्थना करता है कि गोपूजा करो।

प्रेक्षणक को देखकर उग्रसेन की अपने प्रति विपरीत वुद्धि जानकर कंस उन्हें कारागार में डाल देता है।

पंचम अंक में नारद क पत्रा के पत्रों पर पूतनादि की चरितावली चित्रित देखकर चिन्तित होकर कंस भावी कार्यक्रम वनाता है।

षष्ठ अंक में कृष्ण के द्वारा आयोजित प्रेक्षणक को नन्द, अक्रूर, गोपियाँ और गोपगण वास्तविक समझ कर कुछ कर वैठना चाहते हैं। इस प्रकार इस नाटक में छायातत्त्व की वहुलता है।

श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय

शंकरलाल ने श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय की रचना अपने मित्र हाथीभाई शर्मा के कहने पर एक वर्ष में की।[2] एक दिन मोरवीनरेश की नवानगर के जामवंशी रणजित् प्रभुसिंह से वातचीत हुई, जिसमें मोरवी राजा ने प्रभुसिंह से कहा कि विलायत के प्रभाव से आपने कण्ठतिलकादि क्यों छोड़ दिया है? प्रभु ने उत्तर दिया—हम कृष्णवंशी हैं और उस शिव की पूजा करते हैं, जिसकी पूजा करके कृष्ण ने पुत्र प्राप्त किये थे। फिर तो मोरवीनरेश ने शंकरलाल से पूछा कि क्या कृष्ण शिवभक्त थे? शंकरलाल ने

१. प्रथम अंक में देवकी वताती है कि कैसे कंस को ज्ञात है कि मेरा पुत्र कंस का वध करेगा—यह वात जानकर वह क्या-क्या कर चुका है।

२. पूर्णं च तूर्णमकरोत् स कविप्रकाण्डः, संवत्सरेण सहजप्रतिभानुरूपम्।

उन्हें महाभारतीय आख्यानों के आधार पर कृष्ण की शिवभक्ति प्रतिपादित की। शंकरलाल ने हाथीभाई शर्मा से यह बात बताई तो हाथीभाई ने कहा कि इस विषय पर निबन्ध लिख डालें। शंकर ने कहा कि ठीक तो है, पर आप इस विषय पर लिखे रूपक की टीका-टिप्पणी साङ्गोपाङ्ग लिखें तो मैं अपना काम करूँ।

शङ्करलाल ने श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय का रचना-काल बताते हुए लिखा है—

नन्दाङ्कनन्देन्दुमिते सुवर्षे कृष्णोदय श्रोदयया गुरूणाम्॥

अर्थात् १६६६ वि० स० में इसका प्रणयन हुआ। ईसवी शती १९१२ में रचा हुआ यह नाटक २० वीं शती की आधार शिला है। इस नाटक का प्रथम प्रयोग मोरवीनरेश व्याघ्रजित् की आज्ञा से वर्षा ऋतु में हुआ था।[1]

कथावस्तु

द्वारका में कृष्ण १६००० पत्नियों के साथ अपनी माया से प्रतिकलत्र एक-एक उनके अन्तःपुर में रहते थे। एक दिन सूर्य उगने के पहले ही बिना किसी को बताये बाहर चले गये। जगने पर उनकी पत्नियों ने परस्पर बातचीत करते हुए अटकल लगाया कि क्या राधा के पास हैं? अन्त में विवाद से बचने के लिए भित्तिचित्र दर्शन में वे सभी निमग्न हो गईं। वहाँ कृष्ण ने स्वयं शिवचरित-विषयक चित्र बनाये थे कुछ देर में कृष्ण आ गये। थोड़ा पहले आये नारद से कृष्ण का इस विषय को लेकर विवाद चला कि बहुपत्नीत्व सदोष है। अन्त में कृष्ण के निर्देशानुसार सभी पत्नियों ने महाशिवरात्रि-व्रत का अनुष्ठान किया। जाम्बवती ने इच्छा प्रकट की कि सभी पत्नियों को समान पुत्र होना चाहिए। इसके लिए कृष्ण को वन में जाकर शिवाराधन के लिए तप करना पड़ा। पत्नियों ने कहा—

यस्य क्षणवियोगोऽपि कल्पकल्पः प्रजायते।
कथं तं तु तपः कर्तुमनुमन्तुं क्षमा वयम्॥१-५६

कृष्ण के तपस्या करने के लिए बाहर रहते समय नारद को वहीं द्वारका में ठहरना पड़ा। कुशेश्वर मन्दिर में वे तपस्या करने गये।

द्वितीय अंक में शिशुपाल और दन्तवक्त्र की बातचीत से ज्ञात होता है कि हमलोग कृष्ण के पुत्रों का हरण करें। शम्बर की मायात्मक प्रवृत्तियों से उन्हें पता चला कि कृष्ण तो पुत्रार्थ तप कर रहे हैं। फिर उनके तप में बाधा डाली जाय। कृष्ण तपोवन में जा पहुँचे।

तृतीय अंक में कृष्ण की पत्नियाँ भी अपने-अपने उपवन में तप करती हुई शिवाराधन करने लगीं। शिवस्तुति में लीन होकर जब कभी वे मूर्च्छित होती थीं तो राधा के भगवद्-गुणगान से पुनः सचेत होती थीं। पार्वती ने स्वयं आकर उन्हें

---

१. इसका प्रकाशन बम्बई से १९१७ ई० में हुआ। इसकी प्रति काशी में विश्वनाथ-पुस्तकालय में है।

सान्त्वना प्रदान की। चतुर्थ अंक में एक दिन पार्वती ने दिव्य दृष्टि प्रदान करके उन सबको कृष्ण का तपश्चरण, उपमन्यु-समागम, शिवाराधन सुदाम-मिलन आदि दिखलाया।

सुदामा ने कृष्ण को बताया कि यहां से थोड़ी दूर उत्तर में मानस के पास बैल्व वन है। साधकों की सिद्धि वहाँ होती है। कृष्ण वहाँ चलते बने। सुदामा ने भी मित्र को तपस्यानिमग्न देखकर स्वयं तपस्या करने का संकल्प किया—

यावच्छ्रीकृष्णचन्द्रः श्रीमहेशपरितुष्टये।
करिष्यति तपस्तावत् तपस्तप्स्याम्यहं प्रिये ॥४.६८

श्रीकेदारेश्वर के मन्दिर में सुदामा अपनी पत्नी सुशीला के साथ तप करने पहुँचे, जहाँ कृष्ण पहले से ही तप कर रहे थे। कृष्ण की तपःस्थली है—

इतः समागच्छति हन्तकेसरी करीन्द्र आगच्छति चेत उन्मदः
इतश्च रोषोल्बण उत्फणः फणी प्रति प्रभुं रात्रिचरा भयङ्कराः ॥४.७६

दिव्य दृष्टि से कृष्ण-पत्नियाँ अपने पति की स्थिति देखकर मूर्छित हो जाती हैं। श्रीकृष्ण मन्त्र पढ़ते थे—

शशिशेखर ते नमो नमो मृडशम्भो भवते नमो नमः।
गिरिजाहृदयेश ते नमः शिवशूलिन् परमेश ते नमः ॥४.८५

यह मन्त्र पढ़कर प्रतिमन्त्र एक कमल शिव को अर्पित करते थे।

एक दिन एक कमल कम पड़ा। उसके बिना पूजा कैसे पूरी हो? कृष्ण ने समझ लिया कि अभी थोड़ी देर पहले जो हंस आया था, वह शम्बर मायारूपधारी था। वही एक कमल चुरा ले गया। फिर तो कृष्ण ने नयनकमल उत्पाटन करके शिव को अर्पित किया। तब तो बिल्व-दलपुंज से शिव प्रकट हुए और कहा कि भक्त तुम्हें क्या दे दूँ? कृष्ण ने कहा—

भक्तिरेव युवयोरभीप्सिता पादपद्म युगलेऽनुवासरम्।
तां समर्पयतमिष्टसिद्धिदां विश्वविश्वपितरौ दयामयौ ॥४.४६

शंकर ने कहा—सबकी पत्नियों को दस-दस पुत्र और एक-एक कन्या उत्पन्न होंगी। आठ वर शिव ने और १६ वर अम्बिका ने कृष्ण को दिये। कृष्ण की प्रार्थना पर शिव वहाँ आज भी भक्तों की इच्छा पूरी करते हैं।

पंचम अंक में शिव सुदामा और उनकी पत्नी सुशीला से वर माँगने के लिए कहते हैं। दम्पती ने कृष्ण की अभीष्ट पूर्ति पहला वर मांगा। तभी कृष्ण भी आकाशमार्ग से आ पहुँचे। शिव ने कहा कि यह तो पहले ही कर चुका हूँ। आप लोग अपने लिए कुछ माँगिये। दम्पती ने कहा कि कृष्ण की कृपा से हमें सब कुछ प्राप्त है। कृष्ण ने उन्हें सुझाया कि कैवल्य-मुक्ति माँग लें। सुदामा ने कहा—

गंगारोधसि निर्मले तरुतले स्वच्छे शिलामण्डले
त्वां गाङ्गैः सलिलैः समर्चितवतः संयान्तु मे वासराः।

शम्भो जन्मनि जन्मनि स्थिरतरा भक्तिश्च ते स्याच्छुभा
सा मे मुक्तिरनुत्तमाञ्जलिरयं कैवल्यमुक्त्यै कृतः ॥५·१२

शिव ने कृष्ण से कहा—

त्वमेवाहमहं च त्वमिति वेत्स्येव निश्चयात् ।
त्वमेवं तत्त्वं तत्तत् त्वन्मित्रायास्मै समर्पय ॥५·१५

कृष्ण ने व्याख्यान दिया—

सच्चिदानन्दरूपो यो जगन्मूल-महेश्वरः ।
सोऽहमस्मीति यद् ज्ञानमपरोक्षं तदुच्यते ॥५·१७

शंकर ने कहा—

श्रीकृष्णोऽहमहं कृष्णो न भेद आवयोर्यथा ।
तथा सुदामंस्त्वं चाहमहं च त्वमसंशयम् ॥५.१६

सुदामा को सारा जगत् शिवरूप प्रतीत होने लगा। अन्त में शिव केदारलिंग में अन्तर्धान हो गये।

सुदामा ने कृष्ण से बताया कि मैं तो प्रतिवर्ष केदारनाथ का दर्शन करता आ रहा हूँ। केदारनाथ ने ६० वर्ष के पश्चात् मुझसे कहा कि 'वर माँगो। अब बूढ़े हुए।' मैंने माँगा कि आपका साक्षात् दर्शन हो। केदारनाथ ने कहा कि द्वारकाधीश कृष्ण मेरी मूर्त आत्मा है। उन्हीं का दर्शन कर लो। मुझे प्रति वर्ष केदार तीर्थ आने के कष्ट से मुक्त करने के लिए शिव ने कहा—

केदारकुण्डसहितोऽहमेष्यामि भवत्पुरम् ।५.२८

सुदामा ने कृष्ण से कहा कि मेरे घर चलें। कृष्ण ने कहा कि अब तो मुझे राजधानी जाने दें। बहुत समय बीत चुका है।

कृष्ण की सभी पत्नियों से पुत्र उत्पन्न हुए। राजधानी में अतिशय उल्लास से महोत्सवपूर्वक हर्ष मनाया गया। उनका षष्ठी-जागरण महोत्सव धूमधाम से हुआ। पौर-जानपद ने नाना प्रकार के उपायन दिये।

किसी चोर ने रुक्मिणी के पुत्र को चुरा लिया। उग्रसेन से भीमसेन ने कहा कि हम या अर्जुन कुमार को कहीं-न-कहीं से ढूँढ़कर लाते हैं। सबको चिन्ता थी। कृष्ण आनन्द-मग्न थे। बलराम के कारण पूछने पर उन्होंने कहा—शिव की कृपा से अशुभ भी शुभ ही मानता हूँ।

रति मायावती बनकर असुराज के घर पाचिका बन कर उससे मायायें सीखकर अपने पति को उन्हें देने के लिए पति की प्रतीक्षा कर रही है। ऐसा करने के लिए परमेश्वर-दम्पती ने उसे आदेश दिया था। वह शिव से प्रार्थना करती है कि पति को मेरे पास भेजें। यथा,

अपराधशतानि विस्मर स्मरशत्रो शम्भो नात्रलब्धः पतिर्मे।
प्रबलतर-कुकृत्यैर्मामकीनैर्महेश
परजनुपि दयाब्धे देवदेवाशु देयः
पतिरिति चरमा मेऽभ्यर्थना नाथनाथाय ॥५.५८

वह फांसी लगाकर मरना चाहती है। तभी नौकर ने उसे एक महामत्स्य दिया और कहा कि इसे शीघ्र महाराज के लिए पकाकर देना है। वह उसे काटती है तो जीवित बालक उसमें मिला। आकाश-वाणी सुनाई पड़ी—

तत एनं बालं पालय पोपय लालय, प्राप्तयौवनस्य चास्य मायाशतं शिक्षय। तेन तस्य विजयोऽभ्युदयश्च सेत्स्यति।

उसने शिशु को मणिमंजूपा में रखा।

इधर जाम्बवती के पुत्र साम्ब ने कुरुकुल-महाराज की कन्या का स्वयंवर में अपहरण कर लिया। साम्ब ने द्वन्द्व-युद्ध में सबको हरा दिया, किन्तु कर्ण, दुर्योधन आदि महारथियों ने मिलकर उसे पकड़ लिया। इधर यादव भी उनसे लड़ने के लिए निकले, पर बलराम और उद्धव ने बीच-बिचाव किया और संघर्ष आगे न बढ़ा। वधू साम्ब को मिल गई। साम्ब कृष्ण के पास आ पहुँचे। उसकी माता ने उन्हें रुक्मिणी का आशीर्वाद लेने के लिए सर्वप्रथम भेजा। तब तक स्वयं रुक्मिणी जाम्बवती के घर नववधू को देखने आ गईं। कृष्णादि सभी प्रसन्न थे। पर जाम्बवती म्लान थी। पूछने पर बताया कि जब तक रुक्मिणी का नष्ट पुत्र नहीं मिलता, मुझे प्रसन्नता कहाँ?

यावद् ज्येष्ठं कुमारं ते नहि द्रक्ष्यामि सोदयम्।
तावत् साम्बोदयोऽप्येप न मे मनसि हर्पदः ॥५.६६

रुक्मिणी के पुनःपुनः सत्याग्रह करने पर शिव के मन्दिर में जाकर कृष्ण रुक्मिणी और जाम्बवती प्रार्थना करने लगे। प्रार्थना के पश्चात् कृष्ण के प्रणाम करने पर आकाश-मार्ग से पार्वती, शिव, रति और काम रंगमंच पर आ जाते हैं। पार्वती और शिव की योग्य पूजा कृष्ण ने की। फिर उनके साथ आये। रति और काम के विषय में पूछा। शिव ने कामदहन की घटना बताई और कहा कि मेरे विवाह के अवसर पर उसकी पत्नी रति को मैंने पति से पुनर्मिलन के लिए शम्बरासुर के घर माया सीखने के लिए कहा। कभी शम्बर ने शिशुपाल के कहने से रुक्मिणी के पुत्र का अपहरण किया और समुद्र में फेंक दिया था। इधर उसके घर रति (मायावती) ने पति-मिलन के लिए चिरोत्सुक होकर एक दिन फांसी लगाना चाहा। उसी दिन उसे महामत्स्य मिला, जिसे पकाकर शम्बर को खिलाना था। उस मत्स्य के उदर से कामदेव निकला, जिसने मायावती से माया सीख कर शम्बर को युद्ध में मार डाला। *शम्बर का राज्य काम ने ले लिया। हम भी काम के विजयाभिलापी बनकर वहाँ* गये थे। उसके विजयी होने पर कैलास जा रहे थे तो मार्ग में आपकी प्रार्थना सुनाई

पड़ी। फिर यहीं आ गये। यह काम वही रुक्मिणी का पुत्र है। शंकर ने इस अवसर पर कृष्ण को चक्र दिया। सभी प्रसन्न हुए।

छायातत्त्व

द्वितीय अङ्क में शम्बर ब्रह्मचारी का रूप धारण करके शिशुपाल और दन्तवक्त्र से मिलता है। वह शिशुपाल से कहता है—

मायाशत-ज्ञाननिधिं यदूनां निकन्दने बद्धदृढ-प्रतिज्ञम्।
अवेहि मां मोहितसर्वलोकं पृथ्वीपते शम्बरमात्ममित्रम् ॥२.१

चतुर्थ अंक में कृष्ण की सभी पत्नियाँ पार्वती से कहती हैं—

जय जय जय मातः श्रीमहेशप्रिये त्वं प्रणतजनमनोऽभीष्टार्पणैकप्रवीणे।
मणिगण-मयमेतद्देवि सिंहासनं ते चरणकमलयुग्मे चैव पुष्पाञ्जलिनः ॥३
यदुकुल-तिलकश्रीकृष्णचन्द्रप्रवृत्तिं भगवति करुणातो द्रष्टुमीहामहे ते।

तब तो पार्वती ने उन्हें दिव्य दृष्टि दी—

परमशिव कृपातो दृष्टिरानन्दवृष्टि—
र्भवतु सपदि दिव्या कृष्णपत्न्योऽधुना वः ॥४४

उन्हें रैवताद्रि, उपमन्यु-मुनि, श्रीकृष्ण आदि अदृश्य और दूरस्थ होने पर भी दिखाई देने लगे। कृष्ण को दिव्य दृष्टि से देखकर—

सर्वाः पट्टराज्ञ्यः श्रीराधामुख्या व्रजवासिन्यश्चोत्थाय ससम्भ्रमं प्रणमन्ति श्रीकृष्णम्।

सभी अन्य पत्नियाँ तो कृष्णचरित देखकर अश्रु-निर्भर हैं। यथा,

पद्भ्यामयं जननि याति सुकोमलाभ्यां छत्रं विनापि तपनातप-तप्तमार्गे।
पश्याम्बिके किमिदमात्मजलाभलोभादस्माभिराचरितमज्ञतमाशयाभिः॥४.२३

राधा उनके लिए छत्र और पादुका लेकर दौड़ीं। यथा,

विरम विरम हे नाथ मे क्षणं मणिमयीमिमां पादुकां निजाम्।
कुरु पदद्वये छत्रमप्यहह शिरसि ते करोम्याशु किंकरी ॥४.२४

तब तो पार्वती को उन्हें प्रबोध कराना पड़ा—

राधे, राधे व्यतीतमेतद् विलोक्यते मा संभ्रमं गमः।

राधा को कहना पड़ा—मातर्विस्मृतमेतन्मया।

आगे चलकर कृष्ण और सुदामा का मिलन दिखाया गया है, जब कृष्ण शिव की वन्दना करते हैं—

शिव-शिव शिवशम्भो श्रीशिवाप्राणबन्धो भव भव भव भूत्यै भूयसां श्रेयसां नः।
हर हर हर दुःखं भानपत्यत्वजन्यं कुरु कुरु करुणार्द्रं दृष्टिवृष्टिं समन्तात्॥

इस अंक में शङ्करलाल सर्वोत्तम छायातत्त्व का अभिनिवेश करने में सफल हैं।

पंचम अंक में रति मायावती बनकर असुरराज के यहाँ भोजन-पाचिका बनकर उससे माया सीखती है।

नाट्यशिल्प

शङ्करलाल नाटक में रमणीय प्रसंगों को जैसे-तैसे लाने में अतिशय कुशल हैं। चतुर्थ अंक में उन्होंने कृष्ण और सुदामा के प्रकरण का अभिनिवेश विशेष कौशल से किया है।

दिव्य दृष्टि की योजना द्वारा चतुर्थ अङ्क में कवि ने कथा-प्रतान को सुकोमल आयाम दिया है, यद्यपि कथांश मुख्य परिधि से बाह्य है।

पंचम अंक में केदारेश्वर और द्वारका—इन दो स्थलों पर नाट्यव्यापार दिखाया गया है। दृश्यों में विभाजन न होते हुए भी इस प्रकार की योजना को दृश्यानुबन्धित मानना पड़ेगा। रंगमंच पर आकाश-मार्ग से शिवादि के उतरने की व्यवस्था है। पंचम अंक में मायावती की एकोक्ति है। वह रंगमंच पर अकेली है। एकोक्ति में वह अपना भूतकालीन इतिहास बताती है कि कैसे परमेश्वर-दम्पती ने वर दिया है कि मैं अपने पति को पुनः प्राप्त करूँ। इस बीच मुझे असुरराज से माया का ज्ञान प्राप्त कर लेना है। उस माया को मुझे अपने प्राप्त पति को बताना है। मैं अब उनकी इच्छानुसार असुरराज को विविध प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, चोष्य आदि बनाकर देती हूँ। उसके यहाँ रहते हुए मैंने मायाशत सीख ली है।

नाटक असंख्य घटनाओं का पिटारा है। यही इसका परम दोष है। पर इस युग में और इसके पहले भी केवल भारत में ही नहीं, विदेशों में भी असंख्य बहुज्ञता-गर्भित नाटक लिखने की रीति रही है।

नाटक के अभिनय में गायन और वाद्य का आयोजन अनेक स्थलों पर है। यथा, पंचम अंक में कृष्ण शिव की प्रार्थना करते हैं और उनकी दो पत्नियाँ वीणा और मृदंग बजाती हैं।

कवि कुछ उद्देश्य लेकर नाटक-रचना में प्रवृत्त हुआ है और निस्सन्देह वह अपने उद्देश्य में सफल है। उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अनेक स्थलों पर नाट्यौचिती की चिन्ता नहीं की है।

सामाजिक सौष्ठव

शङ्करलाल ने सामाजिक सौष्ठव के लिए आवश्यक उपादान प्रायशः अपने नाटकों में प्रस्तुत किये हैं। उनमें से सन्मित्र की निदर्शना है—

यस्मिन् रसा जनकमातृसहोदरस्थाः सर्वेऽपि यद्रसलवोऽपि न चापरेषु।
तस्मादभिन्नहृदयात् समदुःख-सौख्यान् मित्रात् परं किमिह वस्तु हितं नराणाम्॥

शुभाशुभ की चिन्ता भक्त नहीं करते। क्यों?

यद् यद् भवे भवति तत् परमेश्वरेच्छामालम्ब्य सर्वमशुभं च शुभं च सर्वम्।
तस्मादवाप्तमशुभं शुभमेव मन्ये नेच्छा यतोऽस्य निजभक्तजनाशुभाय॥

कृष्ण ने अपने पुत्र की चोरी हो जाने पर यह कहा।

कवि ने पदे-पदे कौटुम्बिक शिष्टाचार का विस्तार से उपबृंहण किया है। कुटुम्ब में स्त्रियों में कैसे सौहार्द होना चाहिए—यह इसमें अनुत्तम विधि से बताया गया है।

अमरमार्कण्डेय

महामहोपाध्याय शंकरलाल की अन्तिम रचना अमरमार्कंडेय नामक पाँच अंकों का नाटक है।[1] इसका प्रणयन कवि ने १९१५ ई० के लगभग किया। इसका प्रथम अभिनय महाशिवरात्रि-महोत्सव में राजराजेश्वर-मन्दिर में समागत शिवभक्तों के विनोद के लिए हुआ था।

80174

कथावस्तु

महामुनि मृकण्ड की पत्नी विशालाक्षी को सन्तानहीन होने का घोर विषाद देखकर मुनिवर अपने आराध्य महादेव को तप से प्रसन्न करने के लिए चल पड़े। विशालाक्षी भी साथ चलने का आग्रह करने लगी तो मुनि ने आदेश दिया—

कुरु वल्कलवस्त्रधारणं कुरु रुद्राक्षगणैरलंक्रियाः।
कुरु भस्मविभूषितं वपुः कुरु सर्वस्वमपीह विप्रसात्॥

उन्होंने मुनियों को अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।

द्वितीय अंक की स्थली कैलास-पर्वत है। पार्वती और शिव वहाँ शतरंजी-क्रीडा कर रहे हैं। पार्वती ने देखा कि शिव का मन खेल में नहीं लग रहा है। उन्होंने कहा—

अहह नाथ मनः क्व तवाधुना कथमिदं विमना इव खेलसि।
नृपतिरेव पराजयमेष्यति त्रिचतुराभिरहो गतिभिः प्रभो॥

शिव ने कहा कि तीन वर्ष से तप करते हुए मृकण्ड के विषय में सोच रहा हूँ। उसके भाग्य में पुत्र-सुख नहीं है। पार्वती ने कहा कि भाग्य का पचड़ा उनके लिए होता है, जिन पर आप की कृपा नहीं होती। फिर तो मृकण्ड को वर देने के लिए शिव और पार्वती चल पड़े कावेरी-तट पर, जहाँ महामुनि तप कर रहे थे।

वहीं नारद आ पहुँचे और बोले कि वृन्दावन में राधा और कृष्ण रास रचने *वाले हैं और आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके लिए तो—*

क्षणमपि वर्षति तत्समेहि शीघ्रम्।

वह दिन शरत्-पूर्णिमा का था। उन्हें राधाकृष्ण का वह प्रतिवर्षानुसार रासलीला का कार्यक्रम विस्मृत हो गया, क्योंकि उन्हें मृकण्ड की चिन्ता हो गई थी। शिव रासलीला के लिए जाना चाहते थे। पार्वती ने कहा कि रासलीला अगले मास की पूर्णिमा को देख लेंगे, अभी तो मृकण्ड के पास चलें। शिव-पार्वती की इच्छा-*नुसार मृकण्ड के पास चलने को हुए तो नारद ने कृष्ण की चिट्ठी सामने रख दी—*

राकाऽराकाऽशरदपि शरच्चन्द्रिकाऽचन्द्रिका सा
राधाऽराधा परशिव तवासन्निधौ श्रीपतेर्मे।
रासोल्लासो प्रभवति सदा साम्बशम्भो यदा त्वं
देव्या सार्धं भवसि शिवया रत्नसिंहासनस्थः॥२.१७

---

१. इसका प्रकाशन १९२२ ई० में लेखक के पुत्र खेलशंकर शर्मा ने जामनगर से किया था। इसकी प्रति काशी के विश्वनाथ-पुस्तकालय में उपलब्ध है।

फिर तो दम्पती ने निर्णय लिया कि नारद हमारी ओर से जाकर मृकण्ड को वर दे आयें और हम दोनों रासलीला देखें। हम लोगों का रासलीला-दर्शन भी मृकण्ड के अभ्युदय के लिए होगा। शंकर ने नारद को आदेश दिया—

दत्त्वा वरं प्रणयिने प्रवरं वरेण्यं श्रीमन्मृकण्डमुनयेऽपि च तस्य पत्न्यै।
एवं त्वया तु सहसा रससागर-श्रीरासेशरासरसवीक्षण-शर्म भोक्तुम्॥

नारद के कावेरी-तट पर पहुँचने के पहले ही समाधि में मृकण्ड और विशालाक्षी ने शिव के वर को नारद के माध्यम से पाने का संवाद पा लिया। तब तक नारद पहुँचे।

यह देखकर नारद के मन में कष्ट हो रहा था कि कृष्ण क्योंकर पराङ्गनाङ्गालिंगन कर रहे हैं। शिव ने यह जानकर पार्वती से कहा कि आप ही नारद के मोह को दूर करें। इस उद्देश्य से पार्वती ने अपनी मुद्रिका उतार कर नारद के हाथ में दी कि इसे देखो।

नारद ने मुद्रिका में देखा—

राधिकां राधिकामन्तरे माधवो माधवं माधवं चान्तरे राधिका।
राधिकामाधवाभ्यामिदं मण्डलं व्याप्तमाभाति मे नापरा अङ्गनाः॥

नारद ने फिर देखा—

मातर्जगदिदमखिलं सचराचरमद्य मे भाति।
श्रीराधामाधवमयमितरद् वस्त्वेव नैवास्ति॥३.३४

श्रीकृष्ण ने शिव और पार्वती के सम्बन्ध में आदर प्रकट किया है—

कुंजे कुंजे प्रति तरुतलं सर्वतः पर्वताग्रे
तीरे तीरे तरणिदुहितुश्चानुरङ्गत्तरंगम्।
देशे देशे दिशि दिशि पुरः श्रीशिवासंयुतो मे
गंगाधारी स्फुरति जगदानन्दकारी पुरारिः॥३.८६

चतुर्थ अंक में उपमन्यु अपने आश्रम में मृकण्ड के गृहीत-विद्यपुत्र को पिता के पास दे जाते हैं। वे उसके माता-पिता से कहते हैं कि आपका पुत्र मार्कण्डेय नित्य मृत्युञ्जय देव की आराधना करे। पिता की इच्छानुसार उपमन्यु मार्कण्डेय को कावेरी-तीर पर शिवमन्दिर में ले गये और वहाँ मन्त्रदीक्षा दी। पिता ने समझ लिया कि इस मन्त्र के प्रभाव से मेरा अल्पायु पुत्र दीर्घायु हो जायेगा। माता-पिता ने पुत्र की दीर्घायु के लिए शिव की आराधना आरम्भ की। एक दिन विशालाक्षी ने स्वप्न देखा कि मार्कण्डेय को यमदूत निष्प्राण करने आये हैं। इसे सुनकर पति ने कहा कि चलें शिव के समीप। मार्ग में उन्हें आधि-व्याधि, ज्वर आदि मिले। उन्होंने कहा कि हम मार्कण्डेय को मारने के लिए आये थे। फिर तो—

बालं मुनिं परशिवैक-निलीनचित्तं श्रीचन्द्रशेखर-समीप-समाधिनिष्ठम्।
यावद् वयं व्यथयितुं निकटं प्रयातास्तावन्महेश्वरगणाः सहसाविरासन्॥४.३७

हम लोगों को उन गणों ने पीटा। हम लोग भागकर हिरन हो गये। मुनिदम्पती ने अपना परिचय दिया—

> य निहन्तुमिह यूयमागतास्तस्य बालकमुनेर्गतायुषः।
> मातरं पितरं च विद्धि नौ द्रष्टुमेव समुपागतौ च तम् ॥४.४६

यह सुनकर राजयक्ष्मा ने कहा कि आप लोगो का पुत्र चिरायु है। उसे कौन मार सकता है?

पचम अङ्क मे चित्रगुप्त और धर्मराज के दण्डविधान-सम्बन्धी सम्भाषण के अनन्तर काल और मृत्यु धर्मराज को अपना कच्चा चिट्ठा बताते हैं कि हम दल-बल के साथ मार्कण्डेय को लेने गये थे, पर वहाँ हमारी दुर्गति हुई। महामृत्युञ्जय के प्रभाव से वे दुर्लभ हैं। धर्मराज ने कहा—चलो, हम भी साथ चलकर उसे लायें। चित्रगुप्त ने परामर्श दिया कि जाने का साहस न करें। वहाँ सफलता नहीं मिलेगी। धर्मराज माना नहीं।

भैंसे पर चढ़कर यमराज वहाँ पहुँचे, जहाँ मार्कण्डेय-परिवार शिवाराधन में निलीन था और मार्कण्डेय मृत्युञ्जय का जप कर रहा था। मृकण्ड-दम्पती ने यम से कहा—

> प्रणमावः प्रणम्रौ त्वां यम संयमनीपते।
> निपतन्तु कृपादृष्टिवृष्टयोऽस्मासु ते सदा ॥५.२६

यम ने कहा कि तुम्हारा पुत्र बड़ा ढीठ है। वह मृत्युञ्जय-मन्त्र के बल पर मुझे कुछ समझता ही नहीं। अभी उसे मजा चखाता हूँ।

यम ने मार्कण्डेय के पास पहुँच कर भयंकर रूप धारण करके उसे ललकारा—

> आसन्नमरणं भक्तमवितुं त्वां महाभयात्।
> लिंगे सन्निहितोऽपीशः कथं निश्चेष्टतां गतः ॥५.३४

तब तो मार्कण्डेय ने मृत्युञ्जय को सम्बोधित किया—

> अयमतिभयदः कोऽप्येति मा हन्तुमुग्रः।
> शिव शिव शिव पाहि त्वं पतिर्मे गतिर्मे ॥५.४४

मूर्छित होकर वह शिवलिंग पर गिर पड़ा। लिंग से महामृत्युञ्जय प्रकट होकर बोले—

> एतन्मेऽभयदं हि हस्तकमलं त्वन्मस्तके धारितम्।
> हे निष्पाप न पापयापि च दृशा द्रष्टुं यमस्त्वां क्षमः ॥

इधर यम ने काल से कहा कि दौड़कर मूर्छित मुनिपुत्र को तलवार से मार डालो। मृत्यु को भी उसने भेजा। इधर शिव ने त्रिशूल लिया। दोनों शिव से निवारित होकर निरुद्यम हुए। शिव से तब तो यम ने विवाद किया। शिव ने कहा कि यम, तुम समझो कि किससे जीभ लड़ा रहे हो—

अधिकार-मदान्ध-चक्षुषो न हि पश्यन्त्यधिकारदं प्रभुम् ।
अपि तल्लघुशासनाञ्जनैरपनेया प्रभुणा तदन्धता ।।५.६०

पर यम ने शिव की आज्ञा न मानकर मार्कण्डेय के गले में अपना पाश फेंक कर फँसाया। मृत्युञ्जय से यह नहीं देखा गया। उन्होंने यम की छाती पर पाद-प्रहार किया और मूर्छित होकर वह भैंसे के नीचे गिर पड़ा। तब तो दिक्पालों ने यम का पक्ष लेकर मृत्युञ्जय से प्रार्थना की कि आप इसके सिर पर हाथ रखकर इसे सचेत करें। मृत्युञ्जय ने कहा—पहले मार्कण्डेय को वर देकर फिर यम को सचेत करता हूँ। उन्होंने मार्कण्डेय से कहा कि वर माँगो। उसने वर माँगा—यम को सचेत करें। लोकपालों ने मार्कण्डेय की प्रशंसा की—

उपकारपरो यस्त्वमपकारकेऽप्यरौ ।।५.८१

दूसरे वर से उसने माता-पिता का जीवन माँगा। इस प्रकार मार्कण्डेय अल्पायु से कल्पायु हुए।

शिल्प

इस नाटक में प्राकृत का उपयोग कवि ने कहीं भी नहीं किया है। सभी पात्र संस्कृत बोलते हैं।

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में कैलास-पर्वत पर हुई घटना का दृश्य है, आगे चलकर इसमें कावेरी-तट की घटना का दृश्य है। इस प्रकार एक ही अंक में अनेक स्थलों की घटना का समावेश दृश्यानुप्रेक्षी है।

नारद की एकोक्ति द्वितीय अंक में स्वगत के नाम से दी गई है। इसमें वे कावेरी-तीर के तपोवन का वर्णन करते हैं और दम्पती के तप का निदर्शन करते हैं। नारद ने उनसे भेंट की और वर के विषय में पूछा कि कैसा पुत्र चाहते हो—दीर्घायु मूर्ख या अल्पायु सर्वज्ञ? विशालाक्षी ने कहा कि दीर्घायु सर्वज्ञ पुत्र चाहती हूँ। नारद ने कहा कि शिव की आज्ञा है कि दीर्घायु-सर्वज्ञ पुत्र नहीं देना है। विशालाक्षी ने कहा-तब तो अल्पायु सर्वज्ञ ही पुत्र दें। नारद ने कहा—एवमस्तु

अष्टवर्ष—प्रमाणायुः सर्वज्ञः सद्गुणार्णवः।
सनयस्तनयो भावी सदाशिवपदाश्रयः ।।२.४१

मृकण्ड फिर पत्नी-सहित अपने आश्रम में लौट आये।

कवि ने अप्रासंगिक होने पर भी तृतीय अंक में नारद का १३ पद्यों का संगीत और उसके पश्चात् गोपियों और उनके साथ कृष्ण का तदनुसारी नृत्य प्रस्तुत किया है। इनसे नाटक का अभिनय विशेष सुरुचिपूर्ण हो जाता है। गद्योचित स्थलों पर भी कविवर ने अनेक स्थलों पर पद्यों का प्रयोग किया है। यथा,

मार्कण्डेयेन ते मित्र पुत्रेणानेन सर्वदा।
श्रीमान् मृत्युञ्जयो देवः सेवनीयोऽनुवासरम् ।।४.१५

कवि की पदशय्या में अनुप्रास की अलंकृति पदे-पदे विलसित होती है। यथा,

नारद—मदीयाशयशय्याशयसंशयः सन्तापयति माम्। तेन आनन्दमयोऽपि समयोऽयं नानन्दयति माम्।

इन्ही अलंकृत पदो मे सागीतिक लहरियाँ निर्भर हैं। यथा,

न गोप्यो न गोपा न गावो न वत्सा न वा राजयस्ता धनानां वनानाम्।
खगा नो मृगा नो नगा नो, मनोज्ञं विना कृष्णचन्द्रं न पश्यामि किंचित् ॥३.३६

रंगमंच पर सदा नायक कोटि का पात्र होना ही चाहिए—यह विधान नाटककार को मान्य नही है। चतुर्थ अक के बीच मे गगा और गोदावरी नामक केवल दो दासिया रगमच पर सवाद करती हैं।[1]

संविधान

अमरमार्कण्डेय का प्रमुख संविधान है तीसरे अंक मे नारद का पार्वती की दी हुई मुद्रा मे रासलीला देखना। यह मुद्रिका-प्रकरण छाया-नाट्यानुसारी है। प्रतीक पात्रो से इस नाटक का छायातत्त्व प्रगुणित है।

रंग-व्यवस्था

रगपीठ पर सभी पात्रो के चले जाने के पश्चात् अक के बीच मे नये पात्र आते हैं। उनके भी जाने के अनन्तर फिर दूसरे पात्र आते हैं। इस प्रकार किञ्चित् काल के लिए रंगपीठ अक के बीच मे रिक्त रहता है। रगपीठ पर महिषारूढ यम को ला देना कवि की एक नई सूझ है।

दार्शनिकता

नाटक में राधा-माधव-रहस्य और रासलीला का सुबोध रीति से निदर्शन किया गया है।

भूमिका

नाटक की भूमिका प्रायशः देवमयी है, नारद देवर्षि हैं। तृतीय अंक मे कृष्ण-करुणा की भूमिका से इसको अंशतः प्रतीक नाटक कह सकते हैं। कृष्ण की करुणा के पश्चात् शंकर की करुणा आती है। दोनो करुणायें सस्कृत बोलती है।[2] चतुर्थ अंक मे हृत्कम्प, राजयक्ष्मा, ज्वर, पाण्डु, भव, कामरी, क्रोध, मानस्ताप आदि पात्र बनकर आते हैं। यह प्रतीकता छायातत्त्वानुसारी है।

अनावश्यक तत्त्व

यद्यपि भक्तो के लिए तृतीय अक का रासलीला प्रकरण उपयोगी है, तथापि कला की दृष्टि से यह सर्वथा अनावश्यक है। कवि को जैसे-तैसे शिव और कृष्ण का पारस्परिक सौहार्द प्रदर्शन करना है। वह राधा और कृष्ण के प्रेममय रास मे सारे ससार को निमग्न करना चाहता है। ऐसे उद्देश्य कला से बाह्य तत्त्व हैं।

अमर मार्कण्डेय का सांस्कृतिक और शिष्टाचारिक तत्त्वानुदर्शन सातिशय उदात्त हैं। कही-कही चरित्र-निर्माण की दिशा मे धर्मशास्त्रीय विधानो का उपयोग किया गया है।

---

१. गगा और गोदावरी का यह संवाद वस्तुतः प्रवेशक है। प्राचीन नाट्यशास्त्रानुसार प्रवेशक को किसी अक के मध्य मे नही ही होना चाहिए। इसी अंक के बीच मे स्वप्न को अर्थोपक्षेपक रूप मे प्रयुक्त किया गया है।

२. प्रतीक पात्रो का मानव पात्रो से सम्भाषण होना नाट्यधर्मी तत्त्व है। भय, ज्वर आदि विशालाक्षी और मृकण्ड से चतुर्थ अंक में बातें करते हैं।

अध्याय ८५

माधव-स्वातन्त्र्य

माधव-स्वातन्त्र्य के रचयिता गोपीनाथ दाधीच के आश्रयदाता जयपुर-नरेश सवाई माधवसिंह थे।[1] उन्होंने जयपुर राज्य का शासन १८८० ई० से १९२२ ई० तक किया। दाधीच के आनन्द-रघुनन्दन की रचना १८८७ ई० में हुई थी और माधव-स्वातन्त्र्य का प्रणयन १८८३ ई० में हुआ था। प्रस्तावनानुसार इसकी रचना कवि ने वृद्धावस्था में की थी। कवि का जन्म १८१० के लगभग हुआ होगा।

कविवर गोपीनाथ ने जयपुर में आचार्य जीवनाथ ओझा से संस्कृत-शिक्षा—व्याकरण, न्याय-दर्शन, साहित्यशास्त्र, वेदान्तादि विषयों में पाई थी। शिक्षा पाने के पश्चात् वे जयपुर के संस्कृत-विद्यालय में अध्यापक बन गये।

गोपीनाथ उन विरल कवियों में से हैं, जिनकी लेखनी हिन्दी और संस्कृत में समान रूप से प्रौढ थी। उन्होंने सत्य-विजय और समय-परिवर्तन नामक दो नाटक हिन्दी में लिखे हैं। संस्कृत में उन्होंने २३ ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें से माधव-स्वातन्त्र्य, आनन्दनन्दन-काव्य, वृत्त-चिन्तामणि, शिवपद-माला, स्वानुभवाष्टक, रामसौभाग्यशतक स्वजीवन-चरित, यशवन्त-प्रतापप्रशस्ति, नीति-दृष्टान्त-पंचाशिका आदि प्रमुख हैं। कवि के समसामयिक थे जयपुर के महाकवि कृष्णराम, जिनकी रचना जयपुर-विलास प्रसिद्ध है। इन्हीं ने सूत्रधार से बताया था कि गोपीनाथ महाकवि हैं और उन्होंने माधव-स्वातन्त्र्य नाटक की रचना की है।

माधव-स्वातन्त्र्य का प्रथम अभिनय जयपुर के रामप्रकाश नामक नाट्यशाला में विद्वानों के मनोरंजन के लिए वसन्त ऋतु में हुआ था। यह नाट्यशाला रामलीला मैदान में थी। कवि ने छात्रों के उपकार के लिए यह नाटक लिखा। उन्होंने कृष्णराम से कहा था—

'मित्रवर, अहमभिनवं नाटकं छात्राणामुपकाराय, विदुषां सहृदयानां मनोरंजनाय, प्रधानपदभाजामुपदेशाय, वर्णनीयपुरुषगुण- प्रकाशनाय, स्वकीयकृतिपाटवप्रदर्शनाय प्रायः सरलनीतिप्रधानं चिकीर्षुरस्मि।'

कथावस्तु

जयपुर-नरेश रामसिंह ने बंगाल से कान्तिचन्द्र नामक अमात्य की नियुक्ति की। शीघ्र ही रामसिंह की मृत्यु हो गई। उसके पहले का प्रधानामात्य फतेहसिंह दुष्ट था। उसकी गड़बड़ियाँ राजा को बताना कान्तिचन्द्र का प्रधान काम था। दोनों में लाग-डाट तो थी, किन्तु वे जानते थे कि स्पष्ट पार्थक्य में कल्याण नहीं है। फतेह सिंह का कहना है—

स्वामिधर्मरतावावां समशीलेषु मित्रता॥ १.१९

---

१. माधव-स्वातन्त्र्य का अपरनाम चन्द्रविजय है। इसकी अप्रकाशित प्रति जयपुर के लक्ष्मीनारायण शास्त्री दाधीच के पास है।

दोनों एक दूसरे की आवश्यकता प्रतीत करते हुए किसी दिन मिलते हैं। वे परस्पर प्रशंसापरायण है। फतेहसिंह ने कान्ति से कहा कि महाराज ने अपने पद का काम करने के लिए मुझे नियुक्त किया है और मेरे पद का काम करने के लिए आप को लगा दिया है। हम दोनों मिल कर शासन चलायें।

कान्तिचन्द्र जानता था कि फतेहसिंह अविश्वसनीय और पक्का कुटिल है और मुझे समाप्त ही करना चाहता है, किन्तु बोला कि आपकी इच्छा के अनुसार कार्य होगा। फतेहसिंह ने उससे कहना प्रारम्भ किया कि महाराज की मृत्यु के कारण हम दोनों का पद अलग-अलग है, पर राजकार्य ठीक ढंग से चलाने का भार हम लोगों पर है। कान्तिचन्द्र ने कहा—ठीक है, आवश्यकतानुसार मुझे स्मरण करें। फतेहसिंह ने सोचा कि यह मेरे वाग्जाल में फँस गया। कान्तिचन्द्र के जाने के पश्चात् भद्रमुख नामक दूत फतेहसिंह से मिला और कहा कि महाराज के दायाद सर्वतोभद्र नामक महल में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

खेतड़ी नरेश और उसके मन्त्री मर चुके हैं। मन्त्री का पुत्र हरिसिंह है। वह खेतड़ी के नये राजा अजितसिंह से तथा रघुनाथसिंह गोविन्दसिंह से मिल रहे हैं। हरिसिंह खेतड़ी मे अपने पिता के स्थान पर प्रभावशाली बनना चाहता था और साथ ही नये राजा माधवसिंह की सहायता के लिए नियुक्त गौराङ्ग प्रभु का कृपापात्र बनना चाहता था। उसके पिता ने अगरेजो की बड़ी सहायता की थी।

जयपुर-नरेश जयसिंह तृतीय के १८३५ ई० मे मर जाने पर रामसिंह राजा बने थे। उनके बालकाल मे शिवसिंह और लक्ष्मणसिंह दो भाई राज्य-कार्य चलाते थे। शिवसिंह प्रधानामात्य था और लक्ष्मणसिंह सेनापति। इन दोनों ने जयपुर में अंगरेजों का प्रवेश कराया था और उनका महत्त्व बढ़ाया था। कृतज्ञ महारानी उनके पुत्र विजयसिंह और गोविन्दसिंह को मन्त्री बनाना चाहती थी। विजय प्रगल्भ था और गोविन्द आलसी था। ऐसी स्थिति मे मुख्यामात्य पद के लिए अनेक प्रत्याशी थे, जिनमे से एक रघुनाथसिंह था। वह कान्तिचन्द्र को हटाना चाहता था।

क्रासफोर्ड नामक अगरेज जयपुर का शासन अपने हाथ मे लेने के लिए आबू से आया था। महारानी की इच्छानुसार ऐसा हुआ था। नाम के लिए सर्वोच्च पदाधीश फतेह सिंह था, किन्तु उसी के शब्दों में—

कार्यं सर्वं कान्तिचन्द्रस्यैव हस्तगतम्

वह कान्तिचन्द्र को गिराने के लिए उसके साथी चाराध्यक्ष को साधन बनाना चाहता था। चाराध्यक्ष अनेक दृष्टियों से हीन व्यक्ति था। फतेहसिंह चाहता था कि क्रासफोर्ड सारी राजकीय सत्ता मेरे हाथ मे दे दे। तभी माधवसिंह का सन्देश मिला कि भूतपूर्व राजा के शोक से खिन्न कब तक रहेंगे? अब तो सजधज कर आज सभा मे आयें। सभा में राज्याधिकार विविध लोगों के हाथों मे वितरण होने वाला था।

फतेहसिंह को भय था कि क्रासफोर्ड विजयसिंह और गोविन्दसिंह नामक मौलामात्यों को शासन-भार न दे दे। वह इन दोनों को भी बेवकूफ बनाने में सफल होने की योजना कार्यान्वित करना चाहता था, किन्तु कान्तिचन्द्र से डरता था कि कैसे वह हाथ में आये ?

इधर कान्तिचन्द्र ने अपने पद से त्याग-पत्र लिखकर क्रासफोर्ड को देने के लिए चाराध्यक्ष को दिया।

सभा हुई। उसका वृत्तान्त चार ने खेतड़ी-नरेश अजीतसिंह को जयपुर आने पर दिया। उसके साथ हरिसिंह था। हरिसिंह को अजीत ने कहा कि आपको खेतड़ी का प्रधान बनना है। चार ने बताया कि क्रासफोर्ड ने (१) विजय सिंह को माधव सिंह की शिक्षा के लिए नियुक्त कर दिया (२) गोविन्दसिंह राजसभा का प्रधान मन्त्री फतेहसिंह एक वर्ष तक माधवसिंह के साथ बैठ कर महाराज को राजकर्म करने में प्रवीण बनायेंगे। कान्तिचन्द्र के विषय में पूछने पर चार ने बताया कि उनका त्याग-पत्र क्रासफोर्ड को अर्पित किया गया। साथ ही चाराध्यक्ष का त्यागपत्र भी था। हरिसिंह ने कभी चाराध्यक्ष का उपयोग फतेहसिंह को मारने के लिए किया था। क्रासफोर्ड ने चाराध्यक्ष का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया, पर कान्तिचन्द्र का त्यागपत्र नहीं स्वीकार किया और कहा कि अभी आप महारानी के साथ काम करें और गोविन्दसिंह की सहायता करें। प्रथम स्थान गोविन्द का और द्वितीय आपका। गोविन्द की इच्छानुसार अचरोलाधिप का भाई रघुनाथसिंह चाराध्यक्ष नियुक्त हो गया। कान्तिचन्द्र ने क्रासफोर्ड से कुछ प्रार्थना कान में की, जिसे उसने स्वीकार कर लिया।

जयपुर में कार्यसाधन के लिए हरिसिंह के पिता का मित्र नियुक्त हुआ था। उसकी सहायता से हरिसिंह और अजीतसिंह काम बनाना चाहते थे।

इधर फतेहसिंह ने देखा कि कान्तिचन्द्र की उन्नति हो गई। उसे कैसे वश में किया जाय—यह समस्या उसके सामने थी। जो हो, मैं तो वासवी (राज) सभा में निर्बाध जाऊँगा ही। वहाँ मैं कुछ कामों में रोक लगाऊँगा। अन्य अधिकारी मेरी सम्मति के बिना कुछ भी नहीं कर सकेंगे। एक वर्ष में राजा माधवसिंह जब अन्य मन्त्रियों के नियन्त्रण से मुक्त हो जायेगा तो सभी विरोधियों को निकाल कर निर्द्वन्द्व होकर राजकार्य चलाऊँगा। मैं महाराज को वश में करने के लिए वृन्दावन के ब्रह्मचारी गोपाल की सहायता लूँगा। वे इस समय स्थानीय रामचन्द्र-मन्दिर में हैं। उन्हें प्रसन्न करके उनसे माधवसिंह को कहलवा दूँगा कि आप फतेहसिंह को अलग न करें। कान्तिचन्द्र के विषय में झूठे दोष आरोपित करके उसके प्रति माधवसिंह को विरक्त करा दूँगा।

राजप्रासाद में महाराज ने स्वयं गोपाल का बड़ा सम्मान किया। महाराज स्वेच्छा से फतेहसिंह से पूछकर रामचन्द्र-मन्दिर में गोपाल से मिलने गये।

इधर गोविन्दसिंह कान्तिचन्द्र की योग्यता से प्रभावित थे। रघुनाथ ने उनसे यह सुनकर कहा कि शिवदीन शर्मा नामक कान्यकुब्ज को मेरे पिता लक्ष्मणसिंह ने महाराज को अंगरेजी पढाने के लिए नियुक्त करा दिया। शिवदीन ने शनैः शनैः महाराज को वश मे करके सारा राज्य-कार्य अपने हाथ में ले लिया। वैसा ही यह कान्तिचन्द्र भी करेगा। वह आपके सारे काम फतेहसिंह के वैरी होने के कारण करता है। कान्तिचन्द्र परम स्वार्थी है।

गोविन्द रघुनाथसिंह के कहने मे आ गया। दोनो ने योजना बनाई कि कान्तिचन्द्र को भगाना है। इसके लिए चाराध्यक्ष महाराज से कान्तिचन्द्र के विषय मे मिथ्या दोष कहता रहेगा। विजयसिंह को गोविन्दसिंह समझाता रहेगा कि कान्तिचन्द्र से मेलजोल न बढाये। फतेहसिंह से तब तक सन्धि रखी जाय, जब तक कान्तिचन्द्र है। उसके जाने के पश्चात् फतेहसिंह को भी उखाड फेंकना है और तब गोविन्द मंत्री बन जायेगा।

एक दिन गोविन्दसिंह विजयसिंह से अपने मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित होने के लिए मिला और कहा कि कान्तिचन्द्र को हटा देने पर हम लोग पुनः मन्त्री बन सकेंगे। उसके रहते-रहते हमारा कल्याण नही है। विजयसिंह गोविन्द से सहमत नही था।

इधर फतेहसिंह विजय और गोविन्द की असहमति का लाभ उठाते हुए रघुनाथ और गोविन्द की सहायता से कान्तिचन्द्र को हटाकर और इन दोनों को भी निर्बल करके स्वयं मन्त्री बनने का स्वप्न देख रहा था। मरते समय रामसिंह उसे अपनी पत्रपेटी दे गया था। इसके विषय मे क्रासफोर्ड से बातें करते हुए कान्तिचन्द्र को अविश्वसनीय बताकर वह अपना काम बनाना चाहता था। वह सोचता था कि उससे कान्तिचन्द्र को पदच्युत करवा दूंगा। वह नये महाराज माधवसिंह को अपनी सेवा से प्रसन्न करने के लिए उत्सुक था।

कान्तिचन्द्र के द्वारा नियुक्त गुप्तचर ने उससे एक दिन बताया कि फतेहसिंह ने गोपालदास ब्रह्मचारी के द्वारा माधवसिंह से अपनी पदोन्नति के लिए कहलवा दिया है। रघुनाथ नामक चाराध्यक्ष गोविन्द और विजयसिंह को मिलाकर कान्तिचन्द्र का अनिष्ट करने की योजना कार्यान्वित कराना चाहता है। रघुनाथ माधवसिंह से आपको सदोष बताता है। कान्तिचन्द्र ने कहा कि रघुनाथसिंह को चाराध्यक्ष पद से हटाने के लिए उसे किसी ऊँचे पद पर क्रासफोर्ड से कह कर नियुक्त कराना है।

खेतड़ी के राज्य मे जयपुर-नरेश के द्वारा नियुक्त प्रधान-पुरुष सर्वाधिकारी था। उसे हरिसिंह के आवेदन पर क्रासफोर्ड ने हटा दिया और अजितसिंह को खेतड़ी पर पूरा शासनाधिकार दे दिया। अजित ने हरि को अपना प्रधानामात्य बना दिया।

रघुनाथसिंह ने एक दिन दयानन्द सरस्वती को दर्शन देने के लिए बुलाया। वह उनकी वेदव्याख्या सुनना चाहता था। दयानन्द ने अपनी व्याख्या सुनाई—

जातिः कापि न कस्यचिज्जनवतः सा जायते कर्मणा
जात्या कोऽपि न भूसुरो न भूभुजो वैश्यो न शूद्रो मतः ।
चाण्डालो द्विजकर्मकृद् भवति स स्वीयं विधेयं त्यजन्
विप्रस्तद्विदधद्भवेत् स सहसा श्रुत्येति संदिश्यते ॥

दयानन्द के विषय में ढोंगी सनातनी अण्ड-वण्ड बकते थे । यथा,

मति को विगारै लोकनियम विगारै यह ।
स्वमत पसारै याकी बुद्धि सर्वनाशी है ॥

वहीं सुबुद्ध लोगों का मत था—

परोपकाराय धृतावतारः क्षितौ भवान् पर्यटनं करोति ।
अतः कृतार्थो भवता समेत्य शुभेन केनापि पुराकृतेन ॥३.३०

चतुर्थ अङ्क में माधवसिंह बताते हैं कि रामसिंह के दो अमात्य थे—फतेहसिंह और कान्तिचन्द्र । इन दोनों में वैर तो है । फिर इन दो विरोधियों से लिया मन्त्र मेरे लिए मतिभेद उत्पन्न करेगा । मैं इन दोनों में मैत्री करा दूँ । अन्यथा ये दोनों राजकाज का नाशकर देंगे । माधव ने कान्तिचन्द्र से अपनी पहली भेंट में कहा कि शिवदीन की भाँति आप क्या मुझे प्रपची मन्त्रियों की वागुरा से मुक्त करेंगे ? माधव ने कान्तिचन्द्र से एक-एक प्रधान राजकर्मचारियों के विषय में जिज्ञासा की कि ये सब कैसे हैं । फतेहसिंह ने श्रीप्रसाद नामक भूसेतुबन्धाध्यक्ष से अधिक धनराशि का व्यय दिखाने वाले आय-व्यय पत्रक बनवाने के लिए विभागीय लेखक गोविन्दशर्मा पर जोर डलवाया । उसके असहमत होने पर गोविन्दशर्मा को कारागार में फतेहसिंह ने डलवाया । गोविन्द के सम्बन्धियों ने महाराज को इस सम्बन्ध में विज्ञप्ति देने पर कान्तिचन्द्र के निर्णय करते समय फतेहसिंह ने गोविन्द को पुनः कारागार में भिजवा दिया । कान्तिचन्द्र ने यह सब माधवसिंह को बता दिया । फतेहसिंह ने श्रीप्रसाद प्रत्यर्थी को बिना बुलाये ही यह सब किया था ।

'फतेहसिंह को गौराङ्ग जयपुराधिकारी ने पदच्युत कर दिया' यह चाराध्यक्ष ने महाराज को बताया कि फतेह सिंह को दण्ड देने का कारण यह है कि उन्होंने रामसिंह का पत्रसमुद्गक अब तक आपको क्यों नहीं दिया ?

फतेहसिंह अधिकारच्युत होकर भी निराश न हुआ । उसके पास माधवसिंह महाराज भी आँसू पोंछने गये थे । फतेहसिंह स्वप्न देख रहा था कि महाराज के प्रसाद से पुनः अपने पद पर प्रतिष्ठित हो जाऊँगा ।

माधवसिंह के लिए अब सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर राजकाज चलाने का समय आ गया । इसके समारम्भ का महोत्सव धूमधाम से कराने के लिए कान्तिचन्द्र ने पूरी तैयारी कराई । इसी बीच एक दिन कान्तिचन्द्र की जिज्ञासा होने पर महाराज ने उससे बता दिया कि मैं फतेहसिंह, रामप्रसाद, गोविन्दसिंह आदि की कार्यप्रणाली से सन्तुष्ट नहीं हूँ । फिर तो मेरे लिए यह प्रगति का समय है—यह कान्तिचन्द्र मान बैठा ।

माधवसिंह को महारानी विक्टोरिया के शासनादेश से सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र शासन करने का अधिकार तो मिला, किन्तु एजेण्ट के परामर्श से उन्हें काम उठाना है। गौराङ्ग एजेण्ट ने शेखावत-शिरोमणि अजितसिंह को उनके द्वारा प्रार्थित सुविधायें प्रदान कर दी। इस अवसर पर गोविन्दसिंह की अयोग्यता प्रमाणित हुई। उसने शेखावतों का विरोध किया था। फतेहसिंह ने शेखावतो को उभाड़ा था।

माधवसिंह महाराज ने समझ लिया कि प्रधानामात्य-पद के लिए सर्वोच्च व्यक्ति कान्तिचन्द्र ही है। एक दिन जयपुराधिकारी एजेण्ट राजा से मिलने आया। उसने आबू के महाप्रभु गौराङ्ग का सन्देश माधवसिंह को बताया कि गोविन्दसिंह अयोग्य है। कान्तिचन्द्र ने पूरे वर्ष जो राजकार्य चलाया, उसमें कहीं कोई दोष नहीं है। उसे गोविन्द का सारा काम दे दिया जाय। गोविन्द वासवी-सभा में बना रहे। माधव ने समझ लिया था —

गौराङ्गाणां नीतिरत्यन्तगूढा नास्यास्तत्त्वं कोऽपि वेत्तुं समर्थः।
विद्वांसोऽमी गूढमन्त्राश्च नूनं शासत्यस्मान्मेदिनीं सागरान्ताम् ॥५.६

कान्ति को मन्त्रिपद का सर्वाधिकार प्राप्त हो गया।

कान्तिचन्द्र को काम तो मिला था, मुख्यामात्य का पद नहीं मिला था। फतेहसिंह ने कार्यक्रम बनाया कि जब जाड़े में आबू से गौराङ्ग साहब आयेगा तो उसे भुक्ति प्रदान करके स्वयं मन्त्री बनने के लिए महाराज को कहलवा दूँगा।

इधर कान्तिचन्द्र ने योजना बनाई कि चाणक्य ने जैसे राक्षस को वश में किया, वैसे ही मैं फतेहसिंह को वश में ले आऊँ। गोविन्दसिंह को दुर्बल करना है। इसके लिए विजयसिंह की सहायता गौण रूप से लूँ। उसे निलम्बित होने पर भी मुख्यामात्य का आधा वेतन मिलता था।

विजयसिंह ने दुःसाध्य रोगाक्रान्त होने पर एक दिन कान्तिचन्द्र को बुला कर कहा कि मुख्यामात्य के अधिकार से आप माधवसिंह से कहें कि मैंने रणवाल ठाकुर फतेहसिंह को अपना पुत्र बना रखा है। उसकी आप रक्षा करें। मेरे न रहने पर कोई फतेहसिंह की हानि न करे। मेरा यह मन्त्री सर्वसुख सभी कामों में निष्णात और विश्वसनीय है।

विजयसिंह के दिवंगत होने के पश्चात् गोविन्दसिंह ने माधवसिंह को आवेदन-पत्र भेजा कि कालक्रम से विजयसिंह का पदाधिकारी हूँ। ऐसी स्थिति में विजयसिंह के स्थान पर फतेहसिंह का राज्याभिषेक न हो सका।

एक दिन महाराज ने सभी सरदारों को बुला कर उनके समक्ष व्यवहार रखा कि विजयसिंह का दायभाक् आनन्दसिंह है और विजयसिंह रणवाल ठाकुर को गोद ले चुके हैं। उन्होंने फतेहसिंह के पक्ष में मत दिया।

रघुनाथसिंह कान्तिचन्द्र का शिष्य था। वह गोविन्द से जा मिला था और गड़बड़ी करता था। जान आलम नामक निर्वासित व्यक्ति को राजमाता ने प्रति-

निधि बनाने के लिए जयपुर बुलाया था, किन्तु यह दोष रघुनाथ के हस्ताक्षर से लिखे नकली पत्र द्वारा रघुनाथसिंह पर मढ़ा गया। आलम को रघुनाथ के मन्त्री रामप्रताप ने अपने घर ठहराया। यह समाचार गुप्तचर ने राजा माधवसिंह को दिया कि आलम से मिलने के लिए गोविन्दसिंह और रघुनाथसिंह पहुँचे हैं। इस विषय का पत्र महाराज ने कान्तिचन्द्र के पास भेज दिया। तब तो कान्तिचन्द्र ने सेनापति से आलम को पकड़वा लिया। उसके पास रघुनाथसिंह के हस्ताक्षर से एक पत्र मिला, जिसे पढ़कर माधवसिंह ने आदेश दिया कि इस पत्र को पढ़कर आदेश दिया जाय। कान्तिचन्द्र जान आलम से मिला और उसका वक्तव्य लेकर जयपुर-सीमा से उसे पुनः निर्वासित कर दिया। उसी समय कान्तिचन्द्र ने रघुनाथ-सिंह को सर्वाधिकार-च्युत कर दिया। तब रघुनाथसिंह को उसका हस्ताक्षरित पत्र दिखाया। रघुनाथ ने कहा कि यह मेरा लिखा नहीं है। चर ने बताया कि पत्र-लेखक रामप्रताप है।

कान्तिचन्द्र ने फतेहसिंह के पक्ष में निर्णय दिया। गोविन्द और रघुनाथ की पराजय हुई।

सप्तम अंक में माधवसिंह को महारानी विक्टोरिया की ओर से उपहार और उपाधियाँ मिलती हैं।

गोविन्द और रघुनाथ परास्त हो चुके। रघुनाथ ने गोविन्द को परामर्श दिया कि आप जयपुराधिकारी गौराङ्ग को और महागौराङ्ग को प्रसन्न करें, तब कुछ काम बनें। इसके लिए मन्त्रिपद से च्युत फतेहसिंह से सन्धि करना प्रथम उपक्रम है।

खेतड़ी के शासक का मन्त्री हरिसिंह था। उसे जयपुराधिकारी गौराङ्ग से कहलवा कर कान्तिचन्द्र ने राजकीय सेवा से विमुक्त करा दिया। हरिसिंह को जयपुर में आना निषिद्ध कर दिया गया। इस बीच वह पितृ-तर्पण के लिए गया हो आया। फिर जयपुर लौटा। एक दिन गौराङ्ग ने उसे जयपुर में देखा। हरिसिंह ने गौराङ्ग को बताया कि मेरे लिए स्थायी निवास यदि जयपुर में नहीं है तो अब परलोक में ही जाना पड़ेगा। क्या बालक माता को छोड़ कर कहीं जा सकता है? गौराङ्ग ने कहा कि जयपुर में रहो, पर खेतड़ी न जाना। हरिसिंह ने गौराङ्ग के चरणकमलों की सेवा की आज्ञा माँगी। गौराङ्ग ने उसे अपने पास रख लिया।

कान्तिचन्द्र की सभी योजनायें सफल हैं। माधवसिंह की स्वतन्त्रता बढ़ी। उसे भारत-सरकार ने अधिकाधिक अधिकार दे रखे थे। वह स्वयं सी. आई. ए. उपाधि प्राप्त कर चुका था। माधवसिंह के. जी. सी. एस्. आई. बनाया गया था। चिन्ता का विषय है कि फतेहसिंह, गोविन्दसिंह और रघुनाथसिंह षड्यन्त्र रच रहे हैं।

हरिसिंह को सूर्यदुर्गाधिप से पेन्सन मिलनी चाहिए। उसे प्राप्त करने के लिए हरिसिंह का आवेदन कान्तिचन्द्र के पास था। इसमें कान्तिचन्द ने हरिसिंह को हरा

दिया। हरिसिंह ने देखा कि कान्तिचन्द्र मुझे पनपने न देगा। उससे सन्धि करके उसने जयपुर महाराज से गाँव और सेनापति-पद पा लिया। इसके पहले उसने गौराङ्ग के पास अपील कर दी थी। गौराङ्ग ने उसकी पञ्जिका देखकर हरिसिंह की जीत कर दी। हरिसिंह ने भूमि प्रदान करने के लिए कान्तिचन्द्र को आवेदन पत्र दिया। पहले उसने टालमटोल किया। फिर गौराङ्ग के कहने पर उसे देने का आदेश कर दिया।

एक दिन दो स्त्रियों ने वासवी-सभा में राजा माधवसिंह के पास आवेदन-पत्र भेजा कि कान्तिचन्द्र हम लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि राग और लोभ इनके पास गये तो इन्होंने उनको बेंत से पिटवाया। राजा ने पूछा कि राग और लोभ तुम्हारे कौन हैं। तुम लोगों का नाम क्या है? उन्होंने कहा कि राग और लोभ की पत्नी हम रिश्वत और हिमायत हैं।' राजा ने आदेश दिया कि भोज-मन्दिर में धर्म इस पर व्यवस्था दें।

समीक्षा

माधव-स्वातन्त्र्य नाममात्र का ही नाटक हैं, किन्तु भारतीय नाट्य-परम्परा में इसका स्थान बेजोड़ है। माधवसिंह के शासन काल के राजतन्त्र को नाटकीय विधि से सौविध्य पूर्वक प्रस्तुत करने वाली यह कृति अतिशय उपयोगी है। इसमें सन्धि, सन्ध्यङ्ग, कार्यावस्था, नाट्यालङ्कार और नाट्यशास्त्रीय नियमों की अपेक्षा नहीं रखी गई है, फिर भी कवि की नाट्यप्रतिभा निःसन्दिग्ध रूप से उच्चकोटिक प्रमाणित होती है।

एकोक्ति

इस नाटक में एकोक्तियों की विशेष प्रचुरता आद्यन्त है। नाटक का आरम्भ कान्तिचन्द्र की एकोक्ति से होता है। इस उक्ति के द्वारा वह अपने स्वामी के विरह में विलाप करता है और अपना कर्तव्य-पथ निर्धारण करता है। मुझे अमात्य फतेह-सिंह वर्मा को जीतना है। रामसिंह ने जान लिया था कि फतेहसिंह प्रजापीड़क है। कान्तिचन्द्र को फतेहसिंह का सहायक नियुक्त किया गया था।" यह और परवर्ती अनेक एकोक्तियाँ वस्तुतः अर्थोपक्षेपक के समान हैं और बहुत लम्बी हैं। कान्तिचन्द्र की एकोक्ति के पश्चात् फतेहसिंह की एकोक्ति है, जो १६ पंक्ति तक चलती है। उपर्युक्त दोनों एकोक्तियों में रामसिंह की मृत्यु होने पर वर्त्तमान परि-स्थितियों पर अमात्यों की मानसिक प्रतिक्रियायें प्रधान हैं। ये प्रतिक्रियोक्ति के निदर्शन हैं।

प्रथम अंक के अन्त में दूत की बात सुनकर उसके चले जाने के बाद कान्तिचन्द्र अपनी मानसिक प्रतिक्रिया एक बार और लम्बी एकोक्ति के द्वारा व्यक्त करते हुए कहता है—

रन्ध्रान्वेषणदक्षं कुटिलगतिं क्रौर्यभाजमुरगमिव।
मन्त्रेणाहिग्राही गूढपेटायां निबध्नामि ॥१.२६

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में हरिसिंह की एकोक्ति दो पृष्ठ से अधिक है। वह अपना परिचय, परिस्थिति और नीतिशिक्षा एकोक्ति के द्वारा प्रस्तुत करता है। इसी प्रसंग में वह जयपुर की १९१२ वि० की राजनीतिक उथल-पुथल का वर्णन करता है। साथ ही दैव-दुर्विपाक का विश्लेपण करता है।

रंगपीठ पर कम से कम पात्र रहते हैं। कुछ स्थितियों में तो रंगमंच पर एक ही पात्र है, जो एक ओर से निकलता है, उधर दूसरी ओर से एक पात्र रंगमंच पर आता है। द्वितीय अंक में हरिसिंह एकोक्ति के पश्चात् एक ओर निष्क्रान्त होता है और दूसरी ओर रघुनाथसिंह प्रवेश करता है। रघुनाथ के जाने पर कान्तिचन्द्र अपनी एकोक्ति रंगमंच पर सुनाता है। उसके जाने पर फतेहसिंह अपनी एकोक्ति सुनाता है। इसी एकोक्ति से द्वितीय अंक का अन्त होता है। इस प्रकार एक या दो पात्र रंगपीठ पर आते हैं और अपना मन्तव्य प्रकट करके चले जाते हैं। फिर उनके वाद दूसरे एक या दो पात्र आते हैं। इस नाटक की यह नवीनता है। कभी-कभी तो कोई पात्र कुछ क्षणों के लिए ही रंगमंच पर आकर अपनी एकोक्ति सुनाकर चलता वनता है।

माधव-स्वातन्त्र्य नाटक के अङ्कों को अनेक दृश्यों में विभाजित सा किया गया है। द्वितीय अङ्क के एक दृश्य में खेतड़ी नरेश अजितसिंह का चर अकेले ही अपनी वातें सुनाता है, जो वहुत कुछ प्रवेशक जैसा है। अङ्क में आद्यन्त नायकादि किसी प्रमुख पात्र को रहना ही चाहिए, जिसके सम्वन्ध में उस अङ्क की कथा आसूत्रित हो—ऐसा इसके अंकों में नहीं पाया जाता।

आकाशभाषित

तृतीय अंक के आरम्भ में कंचुकी की एकोक्ति के पश्चात् आकाशभापित का प्रयोग किया गया है, जिसमें तीन पद्य हैं।

कहीं-कही केवल दो पात्र रंगमंच पर हैं। वे परस्पर समक्ष हैं। आरम्भ में वे एक-एक करके स्वगत द्वारा अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं। ऐसा अभिनय की दृष्टि से ठीक नहीं है। दर्शकों को स्वगत का ऐसा उपयोग सर्वथा अस्वाभाविक लगेगा।

रंगपीठ पर पंचम अंक में राजा माधवसिंह का प्रासाद है और मन्त्री कान्तिचन्द्र का आवास है। कंचुकी दोनों से इस अंक में सम्पर्क स्थापित करके दोनों की परस्पर वार्ता करा देता है।

एक ही अंक में अनेक दिनों की घटनायें प्रस्तुत की गई हैं। यथा, छठें अंक में विजयसिंह के मरने के पहले और उसके वाद की घटनाओं के दृश्य हैं।

भाषा

कुछ पात्र हिन्दी वोलते हैं। कान्तिचन्द्र के पास आनेवाला दूत अपनी एकोक्ति में हिन्दी का प्रयोग करता है। हिन्दी और संस्कृत में भी कतिपय आधुनिक सभ्यता की देन के प्रतीक अंगरेजी शब्दों के लिए संस्कृत शब्द गढ़े गये हैं। यथा,

Telephone के लिए श्रुतियन्त्र
Telegram ,, तारवर

जयपुराधिकारी अंगरेज एजेण्ट भी संस्कृत बोलता है। उसकी भाषा में त के स्थान पर ट आदि विकार हैं। यथा,

भो महाराज, जाटा नियोगोन्मुक्टिर्निर्विघ्ना। टट-कटावढ़ानटया राज्यकार्यं विढेयम्।

कतिपय पात्र गद्यात्मक संवाद के पश्चात् अपनी कविता हिन्दी में सुनाते हैं। यथा, चतुर्थ अंक में केलिमद्र अपनी कविता सुनाता है—

शनि यम दोय यह रवि के भये हैं सुत।
एक सुता जाको नाम यमुना बखाने हैं।

हिन्दी पात्रानुसार कहीं खड़ी बोली और कहीं व्रजभाषा है।

मुद्राराक्षस का प्रभाव

जैसा प्रस्तावना में कहा गया है, कवि ने मुद्राराक्षस के अनुरूप इस नाटक को रूपित किया है। इसके प्रथम अंक में पुरुष और विशारद की बातचीत मुद्राराक्षस में शार्ङ्गरव और निपुणक की बातचीत से पूर्णतः समान पड़ती है। वाक्यावली और भाव की दृष्टि से विशेष समता है।

प्रस्तावना-लेखक

प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है—

'तानि मया दृष्टानि पठितानि च।' यह कवि की कृतियों के विषय में है। आगे चलकर सूत्रधार ने बताया है कि इस नाटक का पता मुझे लेखक के मित्र कृष्णराम से लगा था कि गोपीनाथ एक नाटक लिख रहे हैं।

सूत्रधार की पत्नी नटी ने इसके प्राकृत के स्थलों का संस्कृत में या आवश्यकतानुसार हिन्दी में अनुवाद किया है। सूत्रधार ने नटी से कहा है—

'अये इदानीं प्राक्तनप्राकृतप्रवृत्तेरल्पतया बहवो विद्वांसोऽप्यनवगातार्था भवन्ति। अतस्त्वया प्राकृतस्थाने संस्कृतानुवादो देशभाषानुवादो वा कार्यः।' इत्यादि।

अन्य प्रकरण

लेखकों को अन्य मनीषियों से अपनी रचना में सहायता मिलती है। इस नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार ने कृष्णराम से अपनी बातचीत को उद्धृत किया है। तदनुसार लेखक ने कृष्णराम से कहा था कि नाटक लिखने में मुझे आपकी सहायता चाहिए। कृष्णराम ने कहा है—अहं च दत्तसम्मतिरभवम्। तादृशं मामुपलभ्य तत्प्रारम्भं विधाय मां दर्शितवान्।

नाटक के प्राकृत स्थलों का हिन्दी में अनुवाद स्वयं सूत्रधार की पत्नी नटी ने किया था। सूत्रधार ने नटी से कहा था—अतस्त्वया प्राकृतस्थाने संस्कृतानुवादो देशभाषानुवादो वाकार्यः।

लेखक के अनुसार माधव-स्वातन्त्र्य मुद्राराक्षस के आदर्श पर नीतिप्रधान नाटक है। नीति-शिक्षा के चक्कर में लेखक ने कहीं-कहीं राजनीति के व्याख्यान दिये हैं।[1] इस नाटक की कथावस्तु समसामयिक है, साथ ही आलंकारिक योजना के उपमान भी कहीं-कहीं वर्तमान से अन्विष्ट होने के कारण अभिनव चमत्कार उत्पन्न करते हैं। यथा,

रिक्तस्तु पूर्णतामेति पूर्णो भजति रिक्तताम्।
घटीयन्त्रवदेवेयं नृदशा परिवर्तते॥ २.६

इतिहास का तात्त्विक विवेचन कल्हण की राजतरंगिणी के आदर्श पर कहीं-कहीं किया गया है। यथा,

विवेकिभिरपि प्राक्तनैर्भूपालैर्नानाविधानुपाधीनुत्पाद्य गृहीतानि रिपूणां समृद्धानि राज्यानि, वर्त्तमानैश्च गृह्यन्ते।

लेखक ने अनेक सत्यों को निःसंकोच झलकाया है। वह कान्तिचन्द्र के विषय में फतेहसिंह से कहलवाता है कि उसका कोई सहायक इसलिये नहीं है कि वह निर्लोभ और पक्षपात-रहित है।

रघुनाथसिंह का दयानन्द से वेद-व्याख्या सुनने के प्रसंग से उस युग के आँखों देखे आर्यधर्म-प्रचार की झलक मिलती है।

चतुर्थ अंक में राजकाज में भ्रष्टाचार का दिग्दर्शन केलिभद्र नामक विदूषक राजा माधवसिंह के समक्ष करता है।

१. द्वितीय अंक में नीति के १५ दोष गिनाये गये हैं। यथा, असज्जनसहवास, प्रतिभावैकल्य इत्यादि।

अध्याय ८६

सौम्यसोम

सौम्यसोम के प्रणेता श्रीनिवास शास्त्री के छोटे भाई नारायण शास्त्री का जन्म १८३० ई० में हुआ था।[1] श्रीनिवास की मृत्यु १९०० ई० में हुई। श्रीनिवास को सूत्रधार ने कुम्भकोनम् का निवासी बताया है। इनके पिता रामस्वामी शास्त्री के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सीताम्बा था। इनके व्याकरणशास्त्र के अध्यापक अप्पयवंश में उत्पन्न त्यागराज मखी थे। कवि की रचनाओं से उसका शैव होना प्रमाणित होता है।

श्रीनिवास ने ब्रह्मविद्या नामक दर्शन-परक पत्रिका का सम्पादन किया और अप्पयदीक्षित के शिवाद्वैतसिद्धान्त का प्रचार किया। कवि ने उपनिषदों की रोचक और सरल भाषा में टीकायें लिखी। श्रीन्विास ने सौम्यसोम नाटक के अतिरिक्त नीचे लिखे ग्रन्थों का प्रणयन किया—

(१) विज्ञप्ति-शतक (२) योगि-भोगि-संवाद-शतक (३) शारदा-शतक (४) महाभैरव-शतक (५) हेतिराज-शतक (६) श्रीगुरु-सौन्दर्य-सागर-साहस्रिका।

सौम्यसोम की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है—'श्रीनिवासनाम्ना कविना विरच्य वितीर्णमस्मभ्यम् सौम्यसोमं नाम नाटकम्।' इससे स्पष्ट है कि भूमिका का लेखक सूत्रधार है।

नाटक के आरम्भ में प्रस्तावना के पश्चात् रंगपीठ पर पहली बार जब कुशीलव-वृन्द आता था तो—

अनुगत-तालनिनादा श्रोत्रमनोहारि-वल्लकी क्वणिता।
नर्तनपरेव बाला रंजयति मनांसि रंगमण्डपिका॥

अर्थात् एक बाला नाचती थी। वल्लकी क्वणित होती थी और मृदंग बज उठता था।[2]

सौम्यसोम नाटक का प्रथम अभिनय कुम्भकोनम् नगर में शिव के दोलामहोत्सव के अवसर पर हुआ था।[3]

कथासार

दिति के पुत्रों से देवों को विशेष कष्ट पहुँचाया जा रहा था। उनके आतंक

१. सौम्यसोम नाटक का प्रकाशन ग्रन्थलिपि में १८८८ ई० में हुआ था। इसकी प्रकाशित प्रति अडयार-पुस्तकालय, मद्रास में है, जिसकी प्रतिलिपि देवनागरी में सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

२. श्रोत्रहारी मृदङ्गध्वनिः

३. 'कुम्भेश्वराभिधस्य प्रमथपतेर्दोलाधिरोहणमहोत्सवे, इत्यादि।

से वचने के लिए शिव के पुत्र को सेनानी वनाना था। पुत्र होने के लिए उनका विवाह होना ही चाहिए। विवाह के योग्य पार्वती शिव की सेवा में उपस्थित है—

शुश्रूषते गिरिशमात्मपरिग्रहाय।

इन्द्र ने वृहस्पति से कहा कि शीघ्र विवाह कराने के लिए काम की सहायता ली जाय। वृहस्पति ने कहा कि काम छोटे-मोटे लोगों के विपय में उपयोगी हो सकता है। शिव से टक्कर लेने पर चकनाचूर हो जायेगा। वृहस्पति ने समझाया—

आलोच्य देवस्य परां प्रतिष्ठां निर्वार्य कन्दर्पवलं च वुद्ध्या।
यदुक्तरूपं वितनुष्व तत्त्वं मा मा प्रवृत्तो रभसानि कार्षीः॥

इन्द्र ने अपनी कठिनाइयाँ वताई तो वृहस्पति ने कहा कि काम से भी पूछ लिया जाय। वुलाने पर आते समय काम अपनी पहले की सफलताओं पर फूला हुआ भी अपशकुन से त्रस्त हो गया। उसके साथी वसन्त ने कहा—आपकी वाईं आँख फड़कने का अपशकुन वातपीडा से है। आपका पराभव कहीं नहीं हो सकता। काम ने वृहस्पति और महेन्द्र के समक्ष अपने पराक्रमों की वर्णना की। यथा,

न मर्त्ये नो नार्यां न सुरनिचये नैव दितिजे
न संन्यासिनि जन्तौ कुहचिदपराद्धं मम शरैः।
न विष्णुर्नो तातः न जिष्णुर्नोऽपि कुलजः
सुरर्षिर्वा कश्चित् किमुत पशवोऽन्ये मम धुरि॥

वृहस्पति ने कहा कि इनकी परिधि से वाहर है शिव, जिनसे तुम्हें टक्कर लेना है। यह जानकर काम काँपने लगा। यह देखकर वृहस्पति ने उससे कहा कि वसन्त भी तुम्हारे साथ रहेगा। काम ने स्पष्ट कहा—शिव पर शर प्रहार करना न तो धर्म है और और न नीति। इन्द्र ने कहा—तुमको छोड़कर किसी का सहारा नहीं रहा। अन्त में काम को तैयार होना पड़ा।

रात्रि में चन्द्रोदय ने काम के लिये समर-सामग्री प्रस्तुत कर दी—

उत्फुल्लनीलनलिनास्फुटितातिभुक्तवल्लीवितीर्ण—नव—सौरभवातपोता।
लिप्ता प्रभाभिरपि चान्द्रमसीभिरेषा रात्रिर्हि मद्विजयनाट्यनटी प्रविष्टा॥

शिव के आश्रम पर काम रथ पर पहुँचा। वहाँ उसने महातेजस्वी शिव, और निरुपम सौन्दर्यशालिनी पार्वती को देखा।

शिव के पास पहुँच कर काम ने सम्मोहन नामक वाण का सन्धान किया। शिव के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से काम ध्वस्त हो गया। गन्धर्व ने जाकर इन्द्र को यह समाचार दिया। इसे सुनकर इन्द्र मूर्छित हो गया। घृताची ने उसे सचेत किया। उसने इन्द्र को तीन पृष्ठों में रति की दुःस्थिति का परिचय दिया। तव तो इन्द्र पुनः मूर्छित हो गया। उसको सचेत करा कर घृताची ने वताया कि पार्वती ने रति को आश्वासन दिया है कि तुम्हें पुनः पति-संगमन-सुख मिलेगा।

इन्द्र पार्वती के पूजा-स्थल पर पहुँचे। वे तपस्विनी पार्वती की लिंगपूजा देखकर प्रभावित हैं। पार्वती ने जया और विजया नामक सखियों को किसी अतिथि का अन्वेषण करने के लिए भेज रखा है। उन्हें कोई वृद्ध तपस्वी अतिथि-पूजा के लिए मिला। विजया ने उसका परिचय यह कह कर दिया है—

एनं दृष्ट्वा अचेतनैरपि शैलैः शिरो नम्यते।

इन्द्र ने वर्णन किया —

तेजोनिगीर्णतरुषण्डतलान्धकारः निर्दैन्यसंकटमुखस्फुरितप्रसादः।
उच्चैस्तरां गिरिमुपेत्य तुषार-सान्द्रं जातो रविः किमयमत्र सुदर्शमूर्तिः॥

सखियों की प्रार्थना पर वृद्धतापस पार्वती के पास पहुँचा। उसकी स्थिति देखकर दयाद्रवित होकर वह सोचने लगा—

तत्कथंचिदालप्य मनःप्रवृत्तिं चोपलभ्य विगतशुचमेनां विधास्यमि।

उन्होंने पार्वती को आशीर्वाद दिया—तुम्हारे सभी मनोरथ सफल हों। व्रत का कारण पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि पार्वती शिव को पति-रूप मे पाना चाहती हैं। वे हँस कर बोले—

कापालिकस्य कटिलग्नकरीन्द्रकृत्तेर्घोरास्थि-मुण्डभसिताहिविभूषणस्य।
भिक्षान्नभक्षण-जुषः परमेश्वरत्वे वाच्यं जहाति खलु भिक्षुपदं जगत्याम्॥

पार्वती ने शिव की चारु वर्णना की—

घोरा तनुरिव शिवा परमेश्वरस्य लोकोत्तरा मुनिजनैरुपासनी या।
आद्या भवेद् भयदा समये जनानां सौन्दर्यसार-कलितेव परा सुखाय॥

पार्वती से यह सब सुना नहीं गया। वह अन्यत्र जाने लगी तो वृद्ध तापस ने कहा—थोड़ी देर और सुन लो और सुनाया ही—

भद्रं तवास्तु यदि भूतदया तव स्यात् वृद्धं विहाय गिरिराजसुते स्मरारिम्।
तारुण्यरूप-कुलशीलगुणैस्ततोऽपि ज्यायांसमेनमुररीकुरु तन्वि दासम्॥

यह कह कर पार्वती का आलिंगन करने के लिए झपटे तो पार्वती सखियों के नाम चिल्ला कर भाग खड़ी हुई। सखियों के आने पर वृद्ध तापस ने कहा कि मैं तो चला, पर इनका पाणिग्रहण मेरे साथ ही होगा।

तभी पार्वती ने प्रमथों का शिव-स्तुति-परक गान सुना। उसे समझते देर न लगी कि ये शिव ही हैं, जिन्होंने अभी-अभी विवाह का प्रस्ताव रखा था। उसने पशुपति से क्षमा मांगी। तभी नेपथ्य से उसे सुनाई पड़ा शिव का वचन—

पाणौ ग्रहीष्यामि पतिंवरे त्वां भवन्तु लोकाश्च विधूत-पापाः
गृहानुपेहि त्वरित प्रहृष्टा परीक्षिता मास्म गमः प्रतीतम्॥

इन्द्र का मन्तव्य पूरा हुआ। वह प्रसन्न होकर चलता बना।

एक दिन घृताची ने इन्द्र को संवाद दिया कि काम पुनरुज्जीवित हो गया है।

केवल रति ही उसके शरीर को प्रत्यक्ष कर सकेगी। इन्द्र को चिन्ता हुई कि मैं अपने मित्र को कैसे देखूँगा? तभी नेपथ्य से काम की ध्वनि सुनाई दी—

पश्यामि लोकानखिलानयत्नं न मां जनो वेत्ति पुरस्थितं वा।
आवां तु गौरीकृपयाद्य नूनं तमःप्रभा-मध्यगताविव स्वः॥

इन्द्र को काम की ध्वनि सुनाई पड़ी, पर उसका शरीर न दिखा तो उसने कहा—

अहो निरवलम्बो ध्वनिः परोक्षशरीरः कामः।

तब तो काम ने कहा—

एषोऽस्मि भवद्भुजपंजरपारिपाल्यः

इन्द्र ने कहा—

उदीक्षितुं तव मुखं कदा स्यामलम्।४·२५

वह भुजायें फैला कर कहता है—

कामं पातुं कामसौन्दर्यधारां काणीभूते लोचनानां सहस्रे।
तत्सम्पर्कान्निर्जितस्यारिभिर्मे बाहूभाग्यं प्राप्नुतामेतदेव॥

काम ने बताया कि शिव का प्रसाद हो चुका है। सेनानी का जन्म हो चुका है। बृहस्पति से आगे का कार्यक्रम जानें।

सेनानी के जन्म से सारा जगत् प्रकाम प्रमुदित हो गया। इन्द्र बृहस्पति से मिले। बृहस्पति ने इन्द्र के कान में बताया कि क्यों कर सेनानी के आविर्भाव के विषय में मौन रहना है। इन्द्र ने घृताची के कान में कुछ बताया कि सेनानी के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या कर्तव्य है।

देवल ने इन्द्र को बताया—सेनानी स्कन्द के लिए स्कन्दपुरी का निर्माण हुआ है। इधर षडानन ने ब्रह्मा से क्रोध किया, क्योंकि उन्होंने शिव से मिलने के लिए उनके गृहद्वार पर खड़े षडानन की अवहेलना की थी। तब तो षडानन ने उनका मार्ग रोक लिया।[1] उन्होंने ब्रह्मा से कहा कि यदि आपको शैवी शाब्दी का ज्ञान है, तभी आप भीतर प्रवेश कर सकते हैं। षडानन ने ब्रह्मा को बन्दी बना लिया। शिव ने उन्हें मुक्त कराया।

शूर की बहिन आजामुखी की नाक काशी में स्कन्द ने काट डाली। फिर दैत्यों ने जयन्त का अपहरण कर लिया। किसी असुरी ने इन्द्र की पत्नी का अपहरण कर लिया। इन्द्र रोने लगे कि रक्षा करो, मेरी प्राणप्रिया का अपहरण हो गया। वे मूर्छित हो गये। तभी जयन्त और उसकी माता शची आ गईं। उनको चित्ररथ नामक गन्धर्वराज लाया था। चित्ररथ ने बताया कि इनको असुरों के हाथ से छुड़ा लाया हूँ।

१. यह सूच्य सामग्री अंक भाग में नहीं होनी चाहिए थी।

सभी वृहस्पति से तत्सम्बन्धी वृत्तान्त जानने के लिए तैयार हुए। वृहस्पति ने आकर बताया कि सेनानी कार्तिकेय को शिव ने असुरों का विनाश करने के लिए नियुक्त कर दिया है। इन्द्र, तुम पुनः अपने पूर्वैश्वर्य को प्राप्त कर चुके हो।

इस नाटक का नायक इन्द्र है, जैसे वेणीसंहार का नायक युधिष्ठिर है।

शिव के सौम्य और रुद्र दो स्वरूप हैं। सौम्य स्वरूप की चर्चा के कारण इस नाटक का सौम्य-सोम नाम पड़ा है। सोम शिव हैं।

शिल्प

रंगमंच पर प्रथम अङ्क में एक ओर इन्द्र और बृहस्पति बातचीत करने के पश्चात् चुप बैठे हैं और दूसरी ओर उनके बुलाये हुए काम और वसन्त आते हुए बहुत देर तक लम्बी बातचीत करते हैं। ऐसी स्थिति नाट्योचित नहीं है।

काम का रंगमंच पर प्रवेश करते समय दो श्लोकों में वर्णन किया गया है। यथा, काम का वर्णन इन्द्र के द्वारा है—

गाढोपगूढदयिता स्तनयुग्ममुद्रा भद्रासनेन तुलयन्नुरसाश्मदेशम्।
सख्या ममापनतिदर्पं इवैष मौनिः कामः समस्तकमनीयनराङ्क यष्टिः॥

अन्यत्र भी इस प्रकार की पात्रीय वर्णनायें मनोरम हैं। वर्णन व्यक्ति पर स्थिति का प्रभाव व्यक्त करने के लिए है। ऐसे वर्णन कीर्तनिया-नाट्यानुसार हैं।

द्वितीय अंक के विष्कम्भक मे मुख्यत हिमालय और शिवमहिमा का वर्णन है। अन्त की कतिपय पंक्तियों मे वसन्त ने बताया है कि महेन्द्र ने भृत्यो को अनुचित कार्य में लगाया है। विष्कम्भक मे परिमाणानुसार वर्णन नही होना चाहिए। पंचम अंक के पूर्व का ७ पृष्ठों का विष्कम्भक अतिशय लम्बा है। यह उचित नहीं। यह लघु अक जैसा है।

रूपक मे जो कुछ कहा जाना चाहिए, उसका कार्य से या उनको सम्पादित करने वाले नायको से सीधे सम्बद्ध होना चाहिए। श्रीनिवास इसके विपरीत प्रायशः वर्णना मे लीन हैं। द्वितीय अक मे वसन्त और काम की हिमालय-विषयक वर्णना अनावश्यक है। फिर भी नाटक मे कार्य-सम्पत्ति और आङ्गिक अभिनय की प्रचुरता उल्लेखनीय है। नेपथ्य से ध्रुवागीति का आयोजन द्वितीय अंक मे है। तृतीय अंक के प्रायः अन्त में काहल-ध्वनि और शङ्खनाद होते हैं।

रगमच पर गन्धर्व-नायिका द्वितीय अक मे अपने पति का आलिंगन करती है।[1] यह अशास्त्रीय है।

इस नाटक मे अकों तथा विष्कम्भकादि का आरम्भ और अन्त लिखा नही गया है। प्रतिलिपि कर्ता ने अपनी ओर से मनमाना जोड दिया है।

तृतीय अक का आरम्भ इन्द्र की तीन पृष्ठ की एकोक्ति से होता है। इसमे रगपीठ पर अकेला इन्द्र अपनी दुर्गति का वर्णन करता है—

जुगुप्सा लज्जाभ्यां हृदयमभिविध्यन्ति शिथिलम्।

---

१. इति कम्पं नाटयन्ती भर्तारमालिंगति।

वह राजपद की तुच्छता बताता है—

भूपतिः किल सपत्नशंकया निद्रयापि रमते न निर्भरम् ॥

वह कामदहन-वृत्त पाने की चर्चा करता है और आत्मग्लानि व्यक्त करता है—

हा हा कथमेक एवाहमस्या अनर्थपरम्पराया मूलम् ।

वह एकोक्ति के अन्त में मूर्छित हो जाता है।

किसी पात्र के रंगपीठ पर होते हुए भी किसी अन्य पात्र की एकोक्ति का उदाहरण चतुर्थ अंक के आरम्भ में है।[1] चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, विधवा रति की तीन पृष्ठों की दुरवस्था का तृतीय अंक में वर्णन अतिदीर्घ होने के कारण नाट्योचित नहीं है। अन्यत्र भी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की मनोदशा के वर्णन सुदीर्घ हैं। तृतीय अंक में वृद्ध तापस (शिव) का अनेकशः वर्णन वस्तुतः कलात्मक है, किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से हेय है। तृतीय अंक में घृताची और इन्द्र के संवाद में सूचनायें हैं कि कैसे पार्वती ने रति को आश्वासन दिया है कि तुम्हें पति-मिलन होगा। अंक-भाग में सूचनायें नहीं होनी चाहिए थीं।

विशाल रंगपीठ के तीन भागों में पृथक्-पृथक् कार्य हो रहे हैं। मुख्य कार्य है पार्वती की लिङ्गपूजा, उससे आनुषङ्गिक कार्य है इन्द्र का छिपकर उसे देखना और अन्यतः जया और विजया नामक सखियों का पार्वती और शिव के प्रणय के विषय में चर्चा है। प्रेक्षक तीनों कार्यों का एकपदे दर्शन करते हैं। इन्द्र तो कभी-कभी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। शेष समय में वह चुप पड़ा रहता है। कला की दृष्टि से किसी पात्र का चुप्पी साधे बड़ी देर तक रंगपीठ पर पड़े रहना उचित नहीं है। पंचम अङ्कमें इन्द्र और काम के संवाद के अवसर पर घृताची बहुत देर तक चुप्पी साधे पड़ी रहती है। काम के जाने के पश्चात् ही घृताची की इन्द्र से बातचीत आरम्भ होती है।

श्रीनिवास ने इस नाटक में वही त्रुटि की है, जो कालिदास ने कुमारसंभव में की है। कालिदास का ब्रह्मचारी जैसे आश्रमानुचित बातें करता है, वैसे ही श्रीनिवास का संन्यासी शृङ्गरित बातें बनाता है। यथा—

हर्म्योचिता पितृवनानि कथं भजेथा अङ्केन्दुकूलसदृशं रजिनं वसीथाः ।
लावण्यपूर्णमपि तन्वि कुचद्वयं ते घोरास्थिकोणकिणकीर्णमिहादवीथाः ॥

छायानाटक की सरणि पर चतुर्थ अंक में अदृश्य काम और इन्द्र का संवाद प्रस्तुत है। श्रीनिवास का यह संविधान कुछ-कुछ कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में तत्सम्बन्धी छाया सीता और राम के मिलन के समान है। श्रीनिवास की विशेषता है कि अदृश्य काम बोलता भी है, पर कुन्दमाला की या उत्तररामचरित की अदृश्य सीता बोलती नहीं है।

चतुर्थ अंक में जयन्त और किसी असुर का संवाद नेपथ्य से सुनाया गया है। साधारणतः नेपथ्य में कोई एक पात्र कुछ कहता है।

---

१. रंगमंच पर चित्रसेन और माणिभद्र हैं। चित्रसेन की एकोक्ति है, जिसके विषय में माणिभद्र कहता है—

किमयं मामन्तिकस्थमप्यनादृत्याभिपतति देशान्तरम् ।

नारायणशास्त्री का नाट्यसाहित्य

उन्नीसवी शती के अग्रगण्य साहित्यकारो मे नारायण शास्त्री का स्थान पर्याप्त ऊँचा है। इनके पाँच नाटक—मैथिलीय, शर्मिष्ठा-विजय, शूरमयूर, कलिविधूनन और जैत्रजैवातृक प्रसिद्ध प्रकाशित कृतियाँ हैं। वैसे तो नारायणशास्त्री ने सब मिलाकर ९६ नाटको की रचना की।[1]

नारायणशास्त्री का जन्म महादेव-दीक्षितेन्द्र के वंश मे कुम्भकोनम् मे १८६० ई० में और मृत्यु ५१ वर्ष की अवस्था मे हुई। इनके माता-पिता सीताम्बा और रामस्वामी यज्वा थे। इनके बड़े भाई श्रीनिवासशास्त्री ब्रह्मविद्या के सम्पादक थे। नारायण को अभिनव-वाणी-विलास, मीमांसा-सार्वभौम-भट्ट, श्री बालसरस्वती, बालभारती और बालकवि की उपाधि उनकी उच्चकोटिक विद्वत्ता और काव्योत्कर्ष के लिए मिली थी। नारायण को धार्मिक विषयो पर व्याख्यान देने का चाव था। उन्होंने मद्रास मे गीता-प्रवचन देकर लोगो को प्रायशः मन्त्रमुग्ध किया था। बड़े भाई श्रीनिवास शास्त्री ने १८८८ ई० मे इनके द्वारा विरचित शूरमयूर को संशोधन करके तेलुगु-लिपि मे प्रकाशित किया था।

नाटको के अतिरिक्त नारायण ने २० सर्गों में सुन्दरविजय नामक महाकाव्य लिखा। उनकी अन्य रचनायें गौरी-विलासचम्पू, चिन्तामणि-आख्यायिका, आचार्य-चरित्र आदि काव्य हैं। उनकी नाटक-दीपिका १२ अध्यायो में प्रणीत है। विमर्श और काव्यमीमांसा अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं।

१८८४ ई० मे प्रकाशित मैथिलीय नाटक की पीठिका में नारायण शास्त्री ने अपनी प्रमुख कृतियो का नाम इस प्रकार दिया है—

शशिशारदीय	नाटक ७ अङ्क
शूरमयूर	नाटक ७ अङ्क
शर्मिष्ठाविजय	नाटिका ४ अङ्क
कलिविधूनन	नाटक १० अङ्क
मल्लिलाविलास	नाटक ८ अङ्क
स्वैराचार	प्रहसन ४ अङ्क
सुन्दरविजय	महाकाव्य २० सर्ग
गौरीविलास	चम्पू ६ आकर

१. इनकी सूची कृष्णमाचार्य ने अपने इतिहास के पृष्ठ ६६७-६६९ पर दी है। इनमे से १० नाटक छप चुके हैं। कलिविधूनन की भूमिका मे कवि ने लिखा है कि मैंने ९६ रूपको का प्रणयन किया है और कलिविधूनन मेरा ३६ वां नाटक है। ये ९६ नाटक १८८८ ई० तक लिखे जा चुके थे।

इनके अतिरिक्त चिन्तामणि-आख्यायिका, २१ महाप्रबन्ध और कतिपय प्राथमिक शिक्षामात्र के लिए उपयोगी पुस्तकें लिखीं। १९११ तक कवि ने जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया, उन सब की संख्या ६६ तक जा पहुँची है। मैथिलीय की पीठिका से कवि के स्वभाव की विनम्रता प्रकट होती है।

मैथिलीय नाटक का सर्वप्रथम अभिनय कुम्भेश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर पर परिषद् के आदेशानुसार हुआ था।

मैथिलीय

मैथिलीय संस्कृत के उन विरल नाटकों में से है जिन्हें नायिका-प्रधान कहा जा सकता है। इसका नाम ही नायिका के नाम पर है। नायिका-नामाङ्कित कोई नाटक सुप्रसिद्ध नहीं है। इसकी कथा वाल्मीकि-रामायण के अनुरूप है।

कथावस्तु

तपस्या करती हुई वेदवती के पास ऋषिवेष में रावण आया। उसने अपने असाधारण तप द्वारा शिव को प्रसन्न करने के प्रसंग को बताकर अपना परिचय दिया। वेदवती ने उसका स्वागत किया। रावण ने देखा कि यह तो अनुपम सौन्दर्य-राशि से मण्डित है—

वाचैवास्याः श्रवणचुलके तर्पिते किं विपञ्च्या
रूपेणैव त्रिजगति वशं प्रापिते किं तपोभिः।
भासैवात्र प्रहततिमिरे किं नु वैश्वानरेण
प्राचीनानां किमपि सुदृशां भाग्यमेवं हि जज्ञे ॥१.८

वह उसे उपभोगार्थ पाने के लिए बेचैन हो उठा। उसने कुमारसम्भव के ब्रह्मचारि-रूपधारी शिव की भाँति वेदवती से बातचीत आरम्भ की। वेदवती ने अपनी कहानी बताई कि विष्णु को मुझे देने के लिए उद्यत पिता को शम्भु नामक राक्षस ने मार डाला। तभी से मैं विष्णु का ध्यान कर रही हूँ। रावण ने कहा कि विष्णु कहाँ तुम्हारे योग्य है? रावण की उक्ति है—

किसलयशयनं करेणुयानं कनकगृहे परिवर्तनं च हित्वा।
विषधर-शयनं विहंगयानं विपविवरेषु विलुंठनं प्रियं ते ॥१.२३

वेदवती ने समझ लिया कि यह अतिथि दूषित मनोवृत्ति का है। अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए उसने प्रार्थना की कि अब मुझे समाधि लगाने के लिए छुट्टी दें। तब तो रावण ने अपना रावणत्व प्रदर्शित किया कि मुझे रावण जानो। मेरी रुचि का ध्यान न रखना निरापद नहीं है। मैं तुम्हें बलात् खींच ले जाऊँगा। उसने गालियाँ दीं और उसके सिर के बाल पकड़ लिए। वह यह कह कर अग्नि में कूद पड़ी कि मैं अगले जीवन में तुम्हारे नाश का कारण बनूँ। उसके शिर के बाल रावण के हाथ में रह गये। वह उसे सूँघता रहा। उसने भी भविष्यवाणी कर दी—

कुटिलाः कति वा गतीर्विवृत्तामवसाने सरितस्समुद्र एव।
इह घट्टकुटीप्रभातसंध्या नियतं मे करयोः पतिष्यसि त्वम् ॥१.३४

अर्थात् तुम्हें तो मेरा होना ही पड़ेगा।

वेदवती यज्ञभूमि का वर्णन करते हुए दशरथ को मिली। नारद ने आगे की बात बनाई कि दशरथ के पुत्र राम के रूप में वह विष्णु को धनुर्यज्ञ में मिलेगी।

द्वितीय अङ्क में मिथिला के धनुर्यज्ञ में राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र पहुँचते हैं। वहाँ सीता को राम के आने का समाचार मिल चुका है। राजप्रासाद की छत से उसने राम को देखा। राम ने सीता को देखा और दोनों वेसुध हो गये। लक्ष्मण ने वहाँ ऊर्मिला को देखा और अमृतधारा ही समझा। विश्वामित्र ने उन्हें बताया कि सीता उसकी होगी, जो शिवधनुष का आरोपण करेगा।

तृतीय अंक में यज्ञभूमि में जनक का रामादि से परिचय होता है। जनक को सन्देह था कि राम धनुष का आरोपण कैसे करेंगे—

दशशत-पंचकेन च नृणां परिवाह्यमिदं
बहुबहुभूमिपाश्च न हि सेकुरपंतुमपि।
कथमयमत्र पुष्पसुकुमारकरः कुरुते
बहुलपराक्रमं धनुषि तादृशि दाशरथिः॥

धनुरारोपण के समय प्रासाद-शिखर से सीता राम का पराक्रम देख रही हैं। राम के हाथ में आते ही धनुष एरण्ड-स्तम्भ की भाँति टूट गया। सीता की प्रसन्नता का बाँध टूट गया कि अब मैं राम की हो गई। विवाह की सज्जा होने लगी। दशरथ भी नारद से समाचार पाकर आ पहुँचे। चारों कन्याओं का दशरथ के चार पुत्रों से विवाह हो गया।

चतुर्थ अङ्क में क्रुद्ध परशुराम अयोध्या में उस समय पहुँचते हैं, जब वहाँ मिथिला से लौटने के दिन राम के अभिषेकोत्सव की सज्जा हो रही है। परशुराम ने अपना धनुष राम से चढ़वा कर उनकी परीक्षा करने का प्रस्ताव रखा। राम ने उसे भी चढ़ा दिया। यह देखकर परशुराम भाग खड़े हुए।

कोपागार में कैकेयी ने दशरथ से मारक वर माँगे कि राम १४ वर्ष तक वन में रहें और भरत राजा हों।[1] इसके पहले दशरथ ने कैकेयी को प्रेम से गोद में लिया था।[2]

दशरथ ने कैकेयी के वरों को सुनकर कहा—

मा मा मृणालमनलाय मुधा वितारीः। ४-११

दशरथ ने उसके चरण पकड़ लिए। कैकेयी ने कहा कि यदि मेरे भरत को राजपद न मिला तो विष खाकर मर जाऊँगी। दशरथ ने वर तो दे दिया और कहा

१. तन्मे सूनुर्भवतु भरतः प्राप्तराज्याभिषेकः।
पञ्चाप्याब्दान्नव च निवसेत् कौसलेयो वनान्ते॥ ४-२०

२. बाहुभ्यामवष्टभ्याङ्कमारोपयति।

कि मैं मिथ्यावादी नहीं हूँ। फिर वे मूर्छित हो गये। कैकेयी ने अपना विचार प्रकट किया—

अहमेवाद्यागतं रामं नगरान्निर्वासयामि।

राम को बुलाकर कैकेयी ने उनसे कहा—

निश्शङ्कं गहनं प्रयाहि हरिणत्वग्जाटजूटान्वितः।
पंचाप्यत्र नवापि तिष्ठ शरदः प्राज्ये तु राज्ये तथा
मत्सूनुर्भरतो बिभर्तु च धुरं प्राप्ताभिषेकः स्वयम्॥

लक्ष्मण ने वाण सन्धान करके झपट कर कहा—

वितरतु सोऽयमद्य तदहं वितरामि पुनः।
शितशरनिर्जितं सपदि ते सवनं भुवनम्॥ ४.४२

राम ने उन्हें रोककर कहा—

मास्म प्रतीपं गमः॥४.४४

कैकेयी ने राम से कहा कि तुम्हारे जाते ही दशरथ मर जायेंगे।

राम वन में गये। चित्रकूट में भरत को राज्याभिषेक करने के लिए राम की पादुका मिल गई। आगे जाने पर शूर्पणखा की कामुकता की अतिशयता के कारण उसकी नाक कटी। उसके रावण के पास आकर निवेदन करने पर एक दिन रावण मारीच के पास सीताहरण की योजना में उसकी सहायता के लिए पहुँचा। मारीच ने उसकी बातें सुनकर गिड़गिड़ा कर कहा—

मा मा भूदपि ते लयाय सुदृढा रामाभियोगे रुचिः॥ ५.१६

और भी—

सिंहं निहन्तुमिभमिच्छसि संप्रयोक्तुम्॥ ५.१८

मारीच राम के नाम पर काँपने लगा तो रावण ने कहा कि तुम्हें तलवार के घाट उतारता हूँ। मारीच ने कहा कि राम विष्णु हैं। उन्हीं के हाथों मरूँ। वह रावण के कहने के अनुसार काम करने चल पड़ा।

मारीच अपने आश्रम से रामाश्रम के समीप स्वर्ण-मृग बनकर पहुँचा। सीता ने राम से कहा कि इसे यदि जीते-जी पकड़ लेते हैं तो अयोध्या ले चलेंगे। मारा जाय तो इसका सौवर्ण मृगाजिन काम आयेगा। राम ने कहा कि यह सब तो ठीक ही है, किन्तु यह नीच मायावी मारीच है। उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि सीता की रक्षा करो। मैं मृग को पकड़कर लाता हूँ।

बहुत देर तक राम नहीं आये। सीता चिन्ताकुल हो उठीं। तभी दूर से सुनाई पड़ा— हा सीते, लक्ष्मण। इसे सुनकर सीता ने लक्ष्मण को जाने के लिए न उद्यत होने पर भी खोटी-खरी सुनाकर भेज ही दिया। लक्ष्मण ने सीता की गाली-परम्परा से खिन्न होकर सीता के लिए कहा—

एतावत्कमलाकरे सुविमले छन्नेव नक्राङ्गना॥ ६.१२

लक्ष्मण के जाने पर रावण वहाँ परिव्राजक की भूमिका में आया। उसने राम के पराक्रमों का स्मरण करके कहा—

किं वा शम्भुमुकुन्दः किमु कपटकलानाटिकासूत्रधारः ॥ ६.२०

सीता ने उसे सन्देह की दृष्टि से देखा, पर अतिथि-सत्कार को धर्म जान कर उसकी सपर्या का आयोजन किया। रावण उसकी अवहेलना करके उसे वेदवती के रूप में देखता हुआ पुनः पूर्ववत् व्यवहार करने लगा। रावण ने अपना परिचय दिया कि मैं तपस्वी हूँ। मेरा नाम पंक्तिमुख है। तुम्हारा हित करने के विचार से आया हूँ। रावण की बातें सुनकर सीता ने विचार कर लिया कि अब होना ही क्या है? मैं तो इसीके वध का कारण बन कर वन में आई हूँ। रावण ने कहा कि मेरी पत्नी बनकर अपने ऐश्वर्यविलास का अनुभव करो। सीता ने समझ लिया कि यह तो पहले की पद्धति पर ही चल रहा है। शीघ्र ही रावण सीता को अपने वश में आती न देखकर रावण-रूप में प्रत्यक्ष हो गया। रावण के प्रेमपाश प्रसारण करने पर सीता ने उसे भी खोटी-खरी सुनाई। रावण ने कहा—

लङ्कोचिता हि भवती न वनोपयोग्या त्व तस्य नैव सदृशी विजहीहि रामम्।
अथान्यथा परिविभावनयाकृत ते वाचाय वा तदमुमन्विहि मास्म खिद्यः॥

सीता ने कहा—त्वादृशां दर्शनमपि गुरुतरदुरितोदयाय।

रावण ने सीता को बलात् पकड़ लिया। वह अचेत हो गई।

सप्तम अङ्क में राम जब आश्रम में लौटकर आये तो वहाँ सीता नहीं थी। वे रोने लगे। सीता को ढूढने के लिए वन में घुसे तो विक्रमोर्वशीय के पुरूरवा की भाँति रोते हुए बोले—

मार्जाराय शुकीमदां परिचिता क्षुत्क्षामभूतेन्द्रियाम् ॥ ७.१०

उन्हें सीता का पालित हरिण मिला। राम ने उसे देखकर कहा—
अयं हि तस्याः करपल्लवात् तृणान्याभुज्य रोमन्थमनोहराननः।
निनाय निर्भीकमहानि तां श्रितः तावान् कथं जीवति नाम तल्लये ॥ ७.२२

उस हरिण के मुख से मुख लगाकर कहने लगे—

सारंग ते प्रियसखी क्व कुरंगनेत्री
किन्नामवस्त्वमिह केन वहिर्गतोऽसि।
ब्रूहि क्वचिद् गतवती किमु संस्थिता वा
मित्रस्य तन्त्रमखिलं ननु वेत्ति मित्रम्॥ ७.२३

उस हरिण की आँखों में आँसू भर आये?

---

१. ऐसे ही संविधान नाटक की पुरानी कथाओं में नवतापूर देते हैं।

आम से राम ने पूछा तो वह खिन्न हो उठा—

शाखास्तस्य न संचलन्ति नितरां नोल्लासिनः पल्लवाः
काण्डः शुष्यति कोरका अपि भृशं तान्ताः पतन्ति ह्यधः ।

उसके चुप रहने पर राम क्रुद्ध होकर उसे तलवार से काटने को उद्यत हो गये। लक्ष्मण उनका उन्माद समझकर उन्हें अन्यत्र ले चले । वहाँ राम को मयूर मिला। राम ने उससे पूछा—

त्वं कुक्कुटोपमतनुर्दविपे मयूर ।
यस्याः करेण वद सा क्व गता कृशाङ्गी ।। ७.३२

फिर नदी, वृक्ष, आदि से पूछा । तभी उन्हें विकृत पक्षी मिला । राम ने कहा कि यह पक्षी नहीं, कोई ठग राक्षस है । राम उसे मारने ही वाले थे कि उसने कहा कि मैं जटायु हूँ ।

सीतामाहरता प्रसह्य रुदतीं विद्धोस्म्यहं रक्षसा ।
मा स्म क्रन्दतमस्ति मैथिलसुता तत्प्रस्थितं दक्षिणाम् ।। ७.३९

आठवें अङ्क में हनुमान् लंका में अशोकवनी में सीता के समीप पहले छिप कर देखते हैं कि कहाँ क्या है ? वहाँ सीता विलाप करती हैं । राक्षसिनियाँ उन्हें रावण की वन जाने के लिए सुझाव देती हैं । वे रावण का ऐश्वर्य वखानती हैं । राम को मरा वताती हैं । शूर्पणखा कहती है कि रावण प्रसन्न होकर तुम्हें शार्दूल, शृगाल ऊँट आदि का मांस खाने को देगा, सुरा के घड़े पीने को देगा, नहीं तो तुम्हें काट कर खा जायेगा ।

सीता के पास त्रिजटा उसके विषय में शुभ स्वप्न सुनाती है । इसके अनुसार सीता स्वतन्त्र होकर राम से मिलती है । राम उसके पास रथ पर आते हैं । सीता को लेकर राम उत्तर की ओर चले जाते हैं । इसी स्वप्न में रावण के मरने का संकेत था । उसके सभी सम्वन्धियों का भविष्य भी वैसा ही दुःखद था । विभीषण का अभ्युदय स्वप्न में था । लङ्का के जलाने का संकेत इसी स्वप्न से हनुमान् को मिला । राक्षसियाँ यह स्वप्न मन्दोदरी को वताने चली गईं । सीता अकेले रह गईं ।

सीता को पक्का विश्वास नहीं हुआ कि राम रावण को मारकर उसका उद्धार करेंगे । वे फाँसी लगाकर मरने का उपक्रम कर रही थीं । तभी हनुमान् उनके सामने प्रकट हो गये । वे वोले कि मैं राम का दूत हूँ । सुग्रीव का मन्त्री हनुमान् हूँ । आपके लिए मेरे पास सन्देश है । सीता को यह निश्चय न हुआ कि यह वास्तव में रामदूत है या कोई मायावीर है । सीता से प्रश्नोत्तर हुआ । सीता ने उसकी पुनः पुनः परीक्षा ली । राम का कुशल पूछा । हनूमान् ने राम की अँगूठी दी । तव तो सीता ने कहा—हनुमन्नमृतधाराधरोऽसि । किमहं प्रत्युपकुर्याम् ः सर्वथा चिरंजीव ।

हनुमान् ने कहा कि आज्ञा दें तो आपको अपनी पीठ पर ले जाकर राम से मिला दूँ। सीता ने कहा कि यह धर्मविरुद्ध है। उन्होंने राम को सन्देश दिया और चूडामणि राम के लिए दी।

हनुमान् ने सैकड़ों महावीरों को मार गिराया। विभीषण ने समझ लिया कि यह सब राम के तेजोबल का प्रभाव है कि हनुमान् ऐसे उत्पात कर रहा है। मेघनाद ने उसे ब्रह्मास्त्र से बाँधकर रावण के सामने प्रस्तुत किया। रावण हनुमान् से प्रभावित होकर मन में सोचने लगा—

पिङ्गमक्षि पृथुलं भुजाशिरः विस्तृतान्तरमुरः खरः करः।
प्रङ्गमसलमफन्गु भाषितं कोप्ययं कलितकैतवस्सुरः॥

हनुमान् से परिचयात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं। वह चुप रहता है। अमात्य प्रहस्त समझता है कि यह बहरा है।[1] बारम्बार से पुनः वही प्रश्न करता है। जब पुनः क्रोध करके पूछता है तो उत्तर पाता है—

रे रे कीशोऽस्मि रे रे निशिचर किमरे कस्त्वम् अहम्यक्षहन्ता
कस्य प्रेष्योऽसि कक्षे तव बलगणनागालिबालि-प्रहन्तुः॥ ६.१८

जोशीले और व्यंग्य भरे सवाद के पश्चात् विभीषण ने रावण से कहा—जानकी समर्प्यताम्। हनुमान् ने रावण से कहा—

रामाय प्रति दीयतां जनकजा तत्सौख्यमभ्यर्थ्यताम्।
मा मारीचमहेन्द्रनन्दनखराद्याप्तां प्रयासि दिशम्॥ ६.२५

और भी बताया कि सीता तुम्हारे लिए क्या है—

लङ्कापत्तनकालरात्रिरिति ते प्राणावली-पन्नगी-
त्येपामन्तकपाशमूर्तिरिति च श्रेयापि निर्वार्यताम्॥ ६.२६

रावण के सामने इस प्रकार की बातें करने वाला त्रिलोकी में नहीं था। उसने कहा कि इस कीशमशक को मार ही डालो, या मैं ही इसे चन्द्रहास के पार उतारता हूँ। किसी-किसी प्रकार विभीषण ने उसे रोका और कहा कि दूत को मारा नहीं जाता। रावण ने कहा—अच्छा, इसकी पूँछ जला दी जाय। बस, मेघनाद की आज्ञानुसार चीथड़े लाये गये और अग्नि जलाई गई। पूँछ मे आग लगाकर गलियों में हनुमान् को घुमाते समय रावण को अपशकुन हुए और नेपथ्य से सुनने को मिला कि लङ्का जल रही है। तब तो विभीषण ने पुनः कहा कि राम से वैर समाप्त करें। सीता को दे डालें। नहीं तो सभी मरेंगे। रावण ने उसे फटकारा तो विभीषण ने शाप दे डाला—तव निधनमचिरेव भवतीति।

यह कह कर वह राम से मिलने चल पडा।

दशम अंक में राम का अभिषेक होता है। चौदह वर्ष पूरे हो गये। आज भी राम नहीं आये तो भरत व्याकुल हैं। वे अग्नि में कूदकर मरना चाहते हैं। तभी

१. ऐसे संविधान रंगमंच पर विशेष रोचक होते हैं।

नेपथ्य से सुनाई पड़ता है—आगतो रामः। हनुमान् ने उन्हें राम का सन्देश दिया—मैं शीघ्र ही आ रहा था। मार्ग में भारद्वाज के आतिथ्य से रुक गया। अभिषेक की सज्जा अयोध्या में हुई। राम आये। भरत और शत्रुघ्न साधु-वेषधारी सम्प्रसन्न हुए। राम का अभिषेक हुआ। सभी पुनः सुखी हुए।

सीता ने बताया कि माया के द्वारा मैं अग्नि में प्रवेश करके रही। मायामयी सीता अग्नि में प्रविष्ट हुई और वास्तविक सीता अग्नि से बाहर आई।

समीक्षा

राम-कथा की वाल्मीकीय मूलधारा में अवगाहन कराने वाले कवियों में नारायण शास्त्री का श्रम सफल कहा जा सकता है।[1] कवि ने इसकी पीठिका में कहा है कि इसकी कथावस्तु में अधिक विभिन्न इतिवृत्त नहीं है, किन्तु इसका संविधान अभिनव है।[2] पहले और दूसरे अंक के बीच में दस वर्षों से अधिक का अन्तराल है।

संवाद प्रायशः स्वाभाविकता लिए हुए हैं। यथा, मारीच का रावण से कहना—

तद्रोषारुणकोणमिक्षणमहो अद्यापि निध्यायतः।
रेफाद्यं च पदं पलायनपदं जातं विविग्नस्य मे ॥ ५.८

महामहिमा मात्रव्यक्त करने के लिए संवाद को लम्बा करने की रीति कवि ने यत्र-तत्र अपनाई है। अनेक संविधान उच्चकोटि के हैं। पंचम अंक में रावण और मारीच का संवाद रुचिपूर्ण होने के कारण अनूठा ही है। अष्टम अंक में त्रिजटा के स्वप्न का संविधान है।

छठे अंक में मारीच के 'हा लक्ष्मण, हा सीते' कहने पर सीता और लक्ष्मण से एक दूसरे के प्रति नीच स्तर की बातें कहलाना कवि, नायक और काव्य तीनों की महिमा को क्षीण करता है।

संवाद की भाषा कहीं-कहीं बहुत चटपटी और भावानुसारिणी है। यथा हनुमान् की पूँछ जलाने का उपक्रम हो रहा है। तब वे कहते हैं—

विगृह्यतां प्रगृह्यतां निगृह्यतामिदं वपुः
विदह्यतां विमोह्यतां विषह्यतां फलं त्वया।
प्रणोद्यतां विपद्यतां प्रपद्यतां विभुर्वचः
प्रदीयतां प्रदीयतां प्रदीयतां त्रिरुच्यते ॥

अनुप्रास का सौष्ठव नारायण में निर्भर है। यथा, हनुमान् का वर्णन है—

कपिरसि कपिशाकान्तिः कृतसितवस्त्रावृतिश्च कटिरेषा।
कलितस्फुटिमा वाणी कस्त्वं जिज्ञासुरस्मि कथयस्व ॥ १०.८

नारायण शास्त्री ने हनुमन्नाटक के अनेक तत्त्वों को अपनी कृति में अन्य कवियों

---

१. प्रायशः नाटककारों ने वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत रामकथा में बहुत कुछ जोड़-तोड़ किया है। श्रीनारायण शास्त्री इस दृष्टि से वाल्मीकि के उपासक हैं।

२. 'नातिविभिन्नेतिवृत्तमभिनवसंविधानमिदं मैथिलीयमारचय्य' इत्यादि।

की अपेक्षा अधिक सफलता-पूर्वक ग्रहण किया है। मैथिलीय का नवम अंक इसी प्रसंग में हनुमन्नाटक की पूँछ जैसा लगता है।

अभिनेता

अनेक नाट्य-मण्डलियाँ कुम्भकोणम् के वसन्तोत्सव के अवसर पर नाट्य-प्रयोग करती थीं। उनमें परस्पर स्पर्धा रहती थी कि हमारे दर्शकों की संख्या अधिकाधिक रहे। इस नाटक के प्रेक्षकों की संख्या सर्वाधिक थी।

नवनाटक

सूत्रधार ने बताया है कि पुराने नाटकों को देखते-देखते ऊबे हुए प्रेक्षकों को नये नाटकों में रुचि होती है।[1]

हिन्दी-लिपि दक्षिण में

कवि ने कलिविधूनन की भूमिका में लिखा है कि मेरे कतिपय नाटक द्रमिडान्ध्र लिपि में प्रकाशित हुए हैं, पर मेरे मित्र इससे सन्तुष्ट नहीं हैं। वे देवनागरी-लिपि में कलिविधूनन का प्रकाशन करा रहे हैं। कवि स्वयं १८ वर्ष की अवस्था तक आठ भाषाओं में कुशल था, जैसा सूत्रधार ने शूरमयूर की प्रस्तावना में बताया है।

शैली

नारायण की शैली असाधारण रूप से नाट्योचित है। प्रायशः सरलतम भाषा वाले, समास-घन से सर्वथा रहित और कहीं-कहीं तो गद्य की भाँति पद्य से समलंकृत संवाद मन को मोह लेते हैं। यथा,

नर-सुर-सिद्ध-साध्य-गरुडोरग-यक्ष-सुरारिपरा-
स्त्रिभुवनकण्टकोऽहमिति तन्न वदन्ति किमन्तरतः।
मम सहजां तथापि सहजान् परिभूय कथं स नरः
सममसुर्मिविभानि तदहं न सहेय सखे सुचिरम्॥

कवि को वर्णनानुरूप उदात्त शैली में लिखने की शक्ति थी, जैसा नवम अंक में हनुमान् के द्वारा सुग्रीव के वर्णन-सन्दर्भ से स्पष्ट है।

प्रकृति में अनुभूति का दर्शन कवि ने कराया है। सीतापहरण के पश्चात् कवि की अलङ्कृत कल्पना है—

ताम्यन्ति वल्लिनिवहाशिशिखिनेव वीताः नैव स्वनन्ति तरुकोटरगा विहंगाः।
तिष्ठन्ति दीनवदनास्तव दस्समग्रे सर्वे मृगाः किमु तथोपनतं वनाय॥ ७.५

सीता के वियोग में वल्ली, विहंग, मृग आदि उदास हैं।

कवि की चरित्र-चित्रण कला में उपमाओं के द्वारा विषय का प्रत्यक्षीकरण सुसिद्ध है। यथा हनुमान् के मुख से विभीषण का चरित्र-चित्रण है—

१. प्रायः प्राक्तननाटकप्रकटन-प्रावीण्यभाग्भिर्नटैः।
पौनःपुन्यनिरीक्षणे क्षणविधौ सर्वेऽपि निर्वेदिताः॥

कंकेषु कीर इव कुन्द इव स्नुहीषु व्याघ्रेषु कृष्ण इव धिष्ण्यमिवोपरेषु।
लग्नोऽयमस्तु सुमनाः पिशिताशनेषु शूकेषु पुष्पमिव रत्नमिवोरगेषु ॥६.३४

शिल्प

तृतीय अंक में नाट्य-भूमिका में दो वर्ग अलग-अलग हैं। सीता, ऊर्मिलादि एक ओर बातें कर रही हैं, उसी समय रंगमंच पर जनक, विश्वामित्रादि क्या कर रहे हैं—यह नहीं पता चलता। यह समीचीन नहीं है।

छायातत्त्व इस नाटक में पदे-पदे मिलता है।[1] आरम्भ में ही रावण ऋषि बन कर वेदवती के समक्ष आता है। छठें अंक में मारीच स्वर्णमृग और रावण परिव्राजक बनकर राम के आश्रम में पहुँचते हैं। सप्तम अंक मे जटायु का रंगपीठ पर आना, राम का उसे मायावी राक्षस समझना, अन्त में उसे पिता का और सीता का सहायक जानना छाया-तत्त्वानुसारी है।

कहीं-कहीं एकोक्ति का सौरभ इस नाटक में विद्यमान है। पंचम अंक के प्रायः अन्त में अकेला रावण कहता है—मारीचोऽप्यमुष्माद् बिभेति। कथमयमहमेवं वीर्यवन्तं जयेयम् ॥५.२८

आकाशोक्ति के द्वारा प्रथम अंक में वेदवती विष्णु को सम्बोधित करती है। यह आकाशोक्ति स्वगत से भिन्न है और एकोक्ति से भी पृथक् है। उसने इसी अंक में यम के लिए आकाशोक्ति कही है। प्रथम अंक में रावण की आकाशोक्ति एकोक्ति से भिन्न नहीं है। आठवें अङ्क का आरम्भ हनुमान् की एकोक्ति से होता है। यह चार पृष्ठ लम्बी है।

चूलिका से वही काम पंचम अङ्क के पहले लिया गया है, जो अन्यत्र प्रवेशक या विष्कम्भक से लिया जाता है। दो पात्र नेपथ्य में संवाद करते हुए अर्थोपक्षेपण करते हैं।

अङ्क भाग में प्रेक्षकों को बीती हुई घटना की सूचना संवाद के द्वारा दी गई है। तथा दशानन मारीच से कहता है।

भद्रां शूर्पणखां निशाचरपुरी-साम्राज्य - लक्ष्मीमिव
प्रत्यादिश्य विकृष्यच श्रुतिनसोश्छित्त्वा च तां हेलया।
दृप्तः कोऽपि नराधमः खरमुखान् कालाञ्जनस्थानगान्
आटोपादपि　　नट—क्षपाचरकुलांकूरप्ररोहानिव ॥ ५.३

छठें अङ्क के पहले आई हुई चूलिका वस्तुतः इस अङ्क के लघु दृश्य के रूप में है, यद्यपि नेपथ्य में राम, लक्ष्मण और सीता का संवाद इसके द्वारा प्रस्तुत किया गया है। चूलिका में नायक और नायिका की बातचीत रखना समीचीन नहीं है। कवि की नाट्यशास्त्रीय नई विधा इसके द्वारा प्रकट होती है।

१. दशम अंक में सीता के वक्तव्य के अनुसार रावण ने मायामयी सीता का अपहरण किया। वास्तविक सीता तो अग्नि की शरण में गई और अग्नि-परीक्षा में बाहर आई। यह छाया-नाटक का अनुत्तम आदर्श है।

नारायण संविधान के प्रस्तुतीकरण मे नितान्त दक्ष हैं। जटायु को देखकर उसे राम राक्षस समझते हैं। उसे मारने के लिए धनुष ले लेते हैं। वे जटायु से कहते हैं-

भो भो धूर्तधुरीण निर्घृण नृशंसाग्रेसरास्मिन् वने

तभी पक्षी कहता है—

नाहं यातु जटायुरस्मि।

मृत्यु का दृश्य इसमे रंगपीठ पर दिखाया गया है, यद्यपि अनेक परवर्ती नाट्य-शास्त्राचार्यों ने मृत्यु-दृश्य को वर्जित किया है।

आठवें अक मे रंगपीठ के भागो में है। एक मे हनुमान् सीता और राक्षसियो के कार्यव्यापार के विषय मे अपने मन्तव्य प्रकट करते हैं और दूसरे में सीता और राक्षसिनियाँ अपनी बातें करती हैं।

नवम अक के आरम्भ मे नेपथ्य से हनुमान् की प्रावेशिकी ध्रुवा गाई जाती है। यथा,

शिथलित - ध्वज - प्रकाण्डः गौरीकृत - तुंगतुंगतरदण्डः।
शिखरिणि प्रतिहतहिण्डः शिशिरं गमितोऽस्ति मारुतश्चण्डः॥

अभिनय-पूरता

नारायण कोरी रामकथा नही कहना चाहते। संविधानों के समीचीन सन्निवेश के द्वारा रंगपीठ पर लोकरंजक कार्यों को उपस्थित करने में वे सिद्धहस्त हैं। नवम अक मे नीचे का दृश्य इसका अन्यतम उदाहरण है—

दशानन—(अधरमापीड्य) स्थाणूयसे कपे
न चेदरोत्स्यत् सहजोऽधुना मां
चिरादपास्यत्तव जीवमेषः।

यह कह कर हनुमान् को चन्द्रहास दिखाता है और आगे कहता है—

अनेन शिक्षा तव नो गतार्था
विपह्यतां क्रूरतरं विधास्ये॥९.३३

लोकजीवन-दर्शन

लक्ष्मण ने राम से सीता-प्रकरण के प्रसंग मे कहा है—

प्रायेण प्रियदेवराश्च पुरुषा दारैर्भवन्त्यन्यथा।

शूरमयूर

लोग बाहुलेय-विषयक नाटक देखना चाहते थे। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए कवि ने शूरमयूर नाटक की रचना कर डाली।[1] इसका प्रथम अभिनय

१. शूरमयूर का प्रकाशन १८८८ ई० में ग्रन्थलिपि में हो चुका है। इसकी प्रति अड्यार के पुस्तकालय में है। देवनागरी - प्रतिलिपि सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

कुम्भेश्वर के मन्दिर में कृत्तिकामहोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसमें कार्तिकेय की कथा अनुबद्ध है। इस प्रस्तावना में पारिपार्श्विक ने कवि की उपलब्धियों की वर्णना की है—

भट्ट-श्रीपदलाञ्छनेन रचिता नारायणेनामुना।
दृश्यानां नवतिश्च विंशतिरपि श्राव्याः प्रबन्धाः परे॥
गर्भाष्टादश-वर्ष एव समभूद्यस्मिन्नयत्नं पुन-
र्भाषास्वष्टसु कौशलं च कविता चैनं न जानाति कः॥

शिव के पुत्र कुमार कार्तिकेय, षडानन या स्कन्द ने देवताओं का नेतृत्व करते हुए माया के पुत्र तारकादि असुरों को मारकर दानवराज शूर को मयूर-रूप में अपना वाहन बनाकर इन्द्र की कन्या देवसेना से विवाह किया—इस घटना का नाटकीय प्रपंच शूर-मयूर में है। शूर-मयूर का अभिप्राय है शूर नामक दानव का मयूर बन जाना।

कथावस्तु

कुमार एक दिन मेरुशृंग को गेंद बनाकर दो अन्य पशुपति-पुत्रों के साथ क्रीडा कर रहे थे। साथी कुमार वीरकेसरी और वीरबाहु थे। शिखर को आकाश में फेंककर पकड़ लेना—यही खेल था। इन्द्र ने समझा कि देवों की आवास-भूमि से पीडक क्रीडा दानव कर रहे हैं।

दानवों के अत्याचार और देवलोक के प्रपीडन का दुखड़ा लेकर इन्द्र बृहस्पति के पास पहुँचे। दानवों का नेता शूर था। इसने इन्द्रलोक को जीत लिया था। बृहस्पति ने बताया कि देवों के पतन का कारण है—

ब्रह्मर्षीनवमन्यते न गणयत्याचार्यवाचमपि
प्राचां पद्धतिमुज्जहात्यभिसरत्यन्याङ्गनामादरात्।
नास्तिक्यं च नवांहसां च जगतामध्वानमादर्शय-
त्यैश्वर्ये सतिदृप्यतीत्यममरः प्रत्नं तपश्चोज्झति॥

अब विपत्ति पड़ने पर रो रहे हैं। शूर की उन्नति का कारण बृहस्पति ने बताया—प्रतिदिन तप करता है, परमेश्वर की पूजा करता है और सभी उससे प्रसन्न हैं।

इन्द्र ने कहा कि यह सुमेरु-शृंग का उत्पाटन किसने किया? बृहस्पति ने बताया कि कुमार ऐसा कर रहे हैं। इन्द्र उन षडानन कुमार को पहचान गये कि यही हमारा भावी सेनानी है। इन्द्र ने उनसे प्रार्थना की—मेरी रक्षा करें और यह कहकर पैर पर गिर पड़े। उन्होंने बताया कि शूर, तारक और सिंहवक्त्र—ये तीनों माया-पुत्र मायावी हैं। इन्होंने सर्वत्र अन्धेर फैला रखा है। वीरबाहु ने कहा कि शूर तो बहुत भला है। वह दुष्टों के साथ रह रहा है!

कुमार कार्तिकेय ने देवसेना-नायक बनने की इन्द्र की प्रार्थना मान ली। उनका अभिषेक बृहस्पति ने कर दिया।

द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक मे अलाबुकुचि और अजामुखी नामक दानव स्त्रियाँ इन्द्राणी शची का अपहरण करने के लिए काशी में आई हैं। वे शची को अपनी भामी बनाना चाहती हैं। वे इन्द्राणी का गला पकड लेती हैं। उसके आर्तनाद को सुनकर कार्तिकेय आ जाते हैं। उन्होंने उनके अधर, कुच आदि काटकर भगा दिया। उन्होंने जाते-जाते कहा कि शूर से तुम्हें दण्डित करायेंगे।

शूर देवताओं से लडना नही चाहता था। तारक ने समझाया—

रिपुरोगपरीवाह-स्नुहिनास्तिवयमन्मथान्।
जातमात्रान्न शमयेद्यः स पश्चात् प्रमथ्यते॥

शूर के रोकने पर भी जडता के कारण हठी तारक माना नही।

कुमार कार्तिकेय ने तारक पर धावा बोल दिया। दानवो ने कृत्रिम पर्वत बनाया और उसी की आड मे छिपकर युद्ध की प्रतीक्षा करने लगे। नारद ने कार्तिकेय को बताया कि कृतक एव महीधरः। कार्तिकेय ने शक्ति-प्रहार किया। क्रौञ्च नामक वह पर्वत कुमार कार्तिकेय के प्रहार से ध्वस्त होकर उनकी शरण मे करुण विलाप करने लगा। तब तारक सामने आया, क्रौञ्च ध्वस्त हुआ। तारक को पशुमार मारकर कुमार ने मार डाला। थोडी देर के पश्चात् वीरबाहु कार्तिकेय का दूत बनकर दानवो के राजकुल मे आ पहुँचा। शूर उसे देखकर उसकी तेजस्विता से विशेष प्रभावित हुआ। दोनो ने एक-दूसरे को देखकर साश्चर्य हर्ष मन मे व्यक्त किया। बातें कुछ मीठी फिर कठोर हुई। वीरबाहु ने फटकारा कि जैसी तारकादि की गति हुई, उसके लिए सज्जित रहो।

सिंहवक्त्र षष्ठ अङ्क मे स्कन्द से लडने के लिए जाय—सुरसा ने सिंहवक्त्र को देने के लिए यह सन्देश भेजा, पर मार्ग मे ही उसे पुष्कर से ज्ञात हुआ कि सिंहवक्त्र तो युद्ध मे मारा जा चुका है।

षष्ठ अङ्क मे शूर और वीरबाहु और स्कन्द युद्ध मे लागडॉट की बातें करते है। फिर वे लडने के लिए चल देते हैं। सप्तम अङ्क मे स्कन्द की विजय के पश्चात् देवसेना को इन्द्र विजयी सेनापति के लिए पुरस्काररूप में अर्पित कर देता है। शची ऐसे उपकारी को प्राभृत देने के लिए इन्द्र से कहती है। इस प्रकार वह उभयथा देवसेनापति बनते है।

शूर पराजित होकर स्कन्द से प्रार्थना करता है—

शरणं सुब्रह्मण्यः शरणं दर्पो मम व्यपगतो जनता प्रमीता।
आस्तां ध्वजे तव शिरो मम कुक्कुटात्मा यानं भवान्यहमहो तव बर्हिरूपः॥

समीक्षा

नारायण ने शूरमयूर की कथावस्तु शंकर-सहिता से ली है। इसमे धीरोदात्त नायक, प्रख्यात वस्तु, वीररस आदि की विशेषता है। शूरमयूर की विशेषता है एक नये प्रकार के कथानक को नाटकीय रूप देने में। अब तक के कवि प्रणय-गाथा मात्र

को प्रायशः नाट्यौचित मानते थे। इसमें तो शूर (प्रतिनायक) को नायक स्कन्द का मयूर बना दिया गया है। यह एक रुचिकर नवीनता है। संविधान प्रस्तुत करने में नारायण को अद्वितीय दक्षता प्राप्त है। चतुर्थ अंक में तारक की मृत्यु का समाचार शूर को किस प्रकार दिया गया है—यह संविधान अतिशय कौशल का द्योतक है।

गद्य भाग में कहीं-कहीं बाण की समानपदिका समस्त-निर्झरी है[1] तो कहीं-कहीं छोटे-छोटे गेयछन्दों में पद्यात्मक अनुप्रासविलास से नारायण के नाटकों में रंजनीयता का उत्कर्ष है। पंचम अंक में शूर कहता है—

मिशतो मम कोऽर्पयदर्घ्यमिदं मणिमंजुलमासनमस्य मुदे।
युगपद्विलसद्दिवसेशशतं जयति ज्वलितं यदतिप्रभया॥

वीरबाहु का शूर के विषय में कथन है—

भण्ड पुरा ह्यज चण्डकमुण्डान् सैरिभकैटभशुम्भनिशुम्भान्।
वेत्सि वदद्य विमृश्य विधेयं या हि गुहं न यमं नु विवेकिन्॥

शिल्प

शूरमयूर में दूसरे अंक के पहले जो प्रवेशक है, उसे लेखक ने दूसरे अंक का भाग नहीं बनाया है, अपितु इसके विषय में स्पष्ट लिखा है—

अथ द्वितीयाङ्कस्य प्रवेशकः

इस प्रवेशक के पश्चात् कवि ने लिखा हैं—

अथ द्वितीयाङ्कः प्रारभ्यते।

विरल ही कवियों ने प्रवेशक और विष्कम्भक को अंक का भाग नहीं बनाया है। नारायण ने इस प्रकार शास्त्रीय विधान के अनुसार प्रवेशक को यथास्थान सन्निविष्ट किया है। छायातत्त्व की प्रधानता इस नाटक में है। क्रौञ्च का पर्वत होकर भी बातें करना और इससे भी बढ़कर शूर का मयूर हो जाना छाया-तत्त्वनुसारी है।

रंगपीठ पर युद्धोद्यत नायक और प्रतिनायक की लागडाँट-पूर्ण झड़प करा देने का विरल दृश्य शूरमयूर के तृतीय अंक में सन्निविष्ट है। नायक कुमार कार्तिकय ने तारक से कहा—

यूयं पुरारेर्यदि भक्तिमन्तो धर्म्येण चेदत्र पथैव यान्तः।
चिरं च भोगान् यदि भोक्तुकामाः मास्मामरै रोद्धुमितो यतध्वम्॥

तृतीय अंक में तारक की बातों का उत्तर स्कन्द के द्वारा उसी के पद्यों में देने की संवादात्मक कला अनूठी है। जो तारक कहता है, वही स्कन्द कहते हैं।

भूमिका

प्रतिनायक का व्यक्तित्व भव्य है। वह प्रातः काल उठकर शिव की स्तुति करता है—

एकं यद् द्विदशं त्रिदृष्टि च चतुर्हस्तं च पंचाननं
षड्वर्गा रति सप्तसप्तिवसति-ख्यातं तथाष्टाकृति।

---

१. पंचम अंक में वीरबाहु के सन्देश में बाणभट्ट की शैली दृष्टिगोचर होती है।

निःसंगं च निरंजनं निरुपमं यन्निर्ममं निर्गुणं
तज्ज्योतिर्दहरे चकास्तु सततं शैवं शिवायैव मे ॥ ४.१

संवाद

अनेक स्थलों पर कवि ने आवेश में आकर नायकों के चरित्र को उनसे अपशब्द कहलवा कर हीन किया है। नायकों के लम्बे वक्तव्य अनेक स्थानों पर नाट्योचित नहीं रह गये हैं, यद्यपि उनमें काव्योत्कर्ष पर्याप्त उदात्त है।

एकोक्ति

शूरमयूर में अन्य नाटकों की ही भाँति एकोक्ति का वैशिष्ट्य अविरल है। चतुर्थ अंक के आरम्भ में शूर की एकोक्ति तीन पृष्ठों की है। इसी बीच वह चूलिका के द्वारा सूचना भी प्राप्त करता है। शूर की एकोक्ति के पश्चात् उसी रंगपीठ पर उसी अंक में कवि शुक्राचार्य की एकोक्ति दो पृष्ठों की है।

दृश्याभाव

चतुर्थ अंक में तारक की मृत्यु का संवाद कवि ने दिया है और शूर को परामर्श दिया है कि अब युद्ध आगे बढ़ाने में कोई लाभ नहीं।' केवल इतने ही सूच्य के लिए चतुर्थ अंक की सार्थकता विचारणीय है। कोरी सूचनाओं से अंक को भर देना अकोषित नहीं होता।

प्रावेशिकी ध्रुवा

कभी-कभी महत्त्वपूर्ण नायकों के रंगपीठ पर आने के पहले उनका परिचय देने के लिए प्रावेशिकी ध्रुवा गाई गई है।

बहुप्रतिक्रियता

रंगपीठ पर अनेक नायकों की प्रतिक्रियायें दिखलाने में नारायण को सफलता मिली है। प्रथम अंक में एक ओर शूर और वीरबाहु बातचीत करते हुए परस्पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और दूसरी ओर उनसे कुछ दूर शूरपुत्र भानुकोप वीरबाहु की उद्दण्डता पर दाँत कटकटा रहा है। इन प्रतिक्रियाओं का परस्पर विरोधी होना रोचक है। इस प्रकार की उक्तियाँ प्रतिक्रियोक्ति के अन्तर्गत आती हैं।

वायुयान का दृश्य

रंगपीठ पर वायुयान से आने-जाने का दृश्य यन्त्र-प्रयोग से दिखाने की संक्षिप्तिका प्रचलित थी, यथा, सप्तम अंक में—ततः प्रविशति व्योमयानेन सजानिर्जिष्णुः सहसखीभ्यां देवसेना च।

अङ्कारोपण

नायिका और नायक को एक दूसरे की गोद में दिखा कर सम्भवतः प्रेक्षकों का शृङ्गारित मनोरंजन अविकल करना कवि का उद्देश्य था। सप्तम अंक के आरम्भ में इन्द्र शची को गोद में ले लेता है और अन्त में वह स्वयं अपनी कन्या देवसेना को नायक स्कन्द की गोद में रख देता है।

रस

वीरबाहु के लिए पृथ्वी से अपने-आप एक सिंहासन का उद्भव षष्ठ अंक में आश्चर्य रस की निष्पत्ति के लिए है। शूरमयूर में अङ्गी रस वीर है। प्रायशः नाटकों में हास्य रस विदूषक और चेटी आदि तक ही सीमित रह गया है।

नारायण हास्य की एक नई दिशा में प्रेक्षक को अवगाहन करने का अवसर देते हैं। इनके वीर कुमार कहते हैं कि हम खेल में बाधा डालने वाले इन्द्र की खोपड़ी इसी पर्वत-शृंग से लड़ाकर तोड़ देंगे। कुमार शृंग-खेल में लगे हुए थे।

अजामुखी रूप का पान श्रवण से करती है और करुण प्रलाप को नासिका से देखती है—जैसा वह स्वयं कहती है।

नाटक में विदूषक नहीं है। कंचुकी कम देखता है। उसे रंगपीठ पर पुष्कर डण्डा दिखाता है और वह बहरा होने के कारण पुष्कर की बातों को भ्रमर का गान समझता है।

शर्मिष्ठा-विजय

शर्मिष्ठाविजय के लेखक नारायण शास्त्री ने इस नाटिका को लिखकर नाटक-मण्डली के सूत्रधार को दिया था।[1] सूत्रधार ने अपनी लिखी प्रस्तावना में प्रेक्षकों को सुनाया—

भट्टश्रीपदलाञ्छनेन कविकुलशिखामणिना नारायणेन विरच्य वितीर्ण-मस्मभ्यमभिनववस्तु किमपि शर्मिष्ठाविजयाभिधं रूपकम्। तेन पारि-षदान् परितोषयिष्ये।

सूत्रधार ने बताया है कि पुराने नाटकों को देखते-देखते लोग खिन्न हो चुके हैं। अतएव

अस्मान्नूनमनूननाटकनवप्रस्तावनेच्छोः प्रथामुद्धर्तास्मि।

इस नाटिका का प्रथम अभिनय किसी मन्दिर में या राजाश्रय में नहीं हुआ था।

कथावस्तु

कुयें में गिरी शुक्राचार्य की कन्या देवयानी को राजा ययाति निकाल रहे हैं।[2] निकाली जाती हुई देवयानी ने कहा कि आपके द्वारा मैं सनाथ हुई। राजा के द्वारा हाथ पकड़कर उसे निकालने पर देवयानी को रोमांच हो आया। राजा ने देखा कि प्रेम तो कर रही है, पर वस्त्र-वेष-भूषादि से ब्राह्मण-कन्या लग रही है। फिर क्षत्रिय होकर मैंने उसका हाथ क्यों पकड़ा? कन्या ने उसका हाथ अपनी आँखों और छाती

१. इसकी प्रकाशित प्रति अड्यार की लाइब्रेरी में और देवनागरी-प्रति सागरविश्व-विद्यालय में है। इसका प्रकाशन १८८४ ई० में चेन्नानगरी के गीर्वाणभाषा-रत्नाकर प्रेस से हुआ।

२. इस पुस्तक में देवयानी का नाम सर्वत्र देवयाना मिलता है।

पर लगाया। इस पर राजा क्रुद्ध हो गया और अपना हाथ खींच लिया। देवयानी ने कहा कि ऐसा क्यो, हाथ पकडते ही आप मेरे पति हो गये, अब पार्थक्य कैसा? कन्या ने कहा कि मैं दैत्यराज वृषपर्वा के पुरोहित शुक्राचार्य की कन्या हूं। आज लीलाविहार के लिए राजकन्या शर्मिष्ठा के साथ यहाँ आई। वहाँ वृषपर्वा और शुक्र मे से कौन बडा है—यह विवाद हुआ। तर्क से मुझे परास्त न कर सकने पर शर्मिष्ठा मुझे इस कुएं मे ढकेल कर चलती बनी। इसके साथ ही उसने ययाति को बताया कि बृहस्पति का पुत्र कच कभी प्रणयिनी होने पर मुझे अस्वीकार कर चुका है, क्योंकि मैं उसके गुरु शुक्राचार्य की कन्या हूँ। मेरे बार-बार हठ करने पर वह मुझे शाप दे गया है कि तुम किसी राजा की पत्नी बनो। तब तो विधि का विधान है कि तुम मुझे पत्नी बना लो।

राजा ने कहा कि पृथ्वीपालक राजा को ऐसे विवाह नही कर लेना चाहिए और फिर आप ब्राह्मण हैं। पर पीछे लग गई देवयानी। उसने कहा कि आपके बिना क्षण-भर भी न जीऊंगी।

वही उस समय शर्मिष्ठा के साथ देवयानी की माता उसे ढूंढती हुई आ पहुंची। राजा ने शर्मिष्ठा को देखा तो प्रथम दृष्टि में उसकी वाणी और सौन्दर्य से वशीभूत हो गया। उधर वह बिलखती देवयानी की माता को आश्वस्त करने लगा कि यह देवयानी है। सबकी दृष्टि ययाति पर थी। वह कन्याओं के लिए प्रेष्ठ और देवयानी की माता की दृष्टि मे श्रेष्ठ रक्षक था। इधर ययाति शर्मिष्ठा पर लट्टू था। वह मन ही मन सोचता था कि यह तो शिरीष से भी कोमल है। वृषपर्वा और शुक्राचार्य वहाँ आ पहुंचे। शुक्राचार्य ने ययाति को अभिवादन करने पर आशीर्वाद दिया—

अनुगुणरमणी-जनो भूयाः।

इससे ययाति को संकेत मिला कि अनेक पत्नियाँ मिलनी हैं। शुक्र ने अपनी कन्या देवयानी और राजकन्या शर्मिष्ठा को आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों सापत्न्य-मत्सर से विरहित रहकर सुख भोगो। इससे शर्मिष्ठा को विश्वास पड गया कि ययाति मेरे पति होंगे। आगे चल कर भविष्य-द्रष्टा शुक्र को बताना पडा कि देवयानी के तो ययाति विधिवत् पति होंगे और शर्मिष्ठा भी उनकी सेविका बनेगी। शुक्र ने ययाति को कन्या-दान का संकल्प कर दिया। नायक ने देवयानी का दाहिना हाथ अपने दाहिने हाथ से पकड लिया।

शर्मिष्ठा यह देखकर जल गई। कैसे देवयानी से बढ़कर ययाति का प्रेम मुझे मिले? यह विचार उसके मन मे सर्वोपरि था। तभी ययाति ने उसे कनखियो से देखा।

दूसरे अंक मे ययाति अपनी राजधानी मे देवयानी को पत्नी बनाकर विलास करते हैं। वहीं शर्मिष्ठा देवयानी की सेविका बनकर रहती है। राजा उसे पाने के लिए विदूषक कपिञ्जल को नियुक्त करता है। वह विदूषक से नायिका की सौन्दर्य-राशि का वर्णन करके अन्त में उसके वियोग से सन्तप्त होकर मूर्छित हो जाता है। सचेत होने पर—'श्वासि-श्वासि' करता है।

उसी समय देवयानी की सारिका उड़ती हुई आई। उसने शर्मिष्ठा की दुःस्थिति का वर्णन किया कि कैसे वह चाहती हुई भी राजा की सन्निधि में नहीं आ पाती। देवयानी शर्मिष्ठा को राजा ययाति की दृष्टि से बचाती थी। शर्मिष्ठा उसका सान्निध्य चाहती थी। वह कहती है—किमहं नार्हामि महाराजसन्निधिम्।

नायक ने पक्का निर्णय लिया कि शर्मिष्ठा को उसके सौन्दर्य के अनुरूप प्रणय-सौरभ की प्राप्ति होनी है। मुझे तो देवयानी को मारकर शर्मिष्ठा का उद्धार करना चाहिए।

राजा को शर्मिष्ठा की दुर्गति और मनःस्थिति को बताने वाली सारिका को पकड़ने के लिए जो मदालसा नामक स्त्री आई, उसने राजा के द्वारा आश्वस्त होने पर स्पष्ट कर दिया कि राजा को शीघ्र ही शर्मिष्ठा को बचाना चाहिए। सबने निर्णय लिया कि मदालसा की सहायता से शर्मिष्ठा को नायक से मिलाया जाय। विदूषक ऐसे कामों में दक्ष था।

तीसरे अंक में नायक को शर्मिष्ठा से चैत्ररथोद्यान में मिलाने की योजना मदालसा ने कार्यान्वित कर ली। विदूषक के साथ नायक उद्यान में पहुँचा। वहाँ अन्तःपुर की रमणियों के स्नान के लिए बनी हुई राजिविनी सरसी के निकट नायक को रमणी-पद चिह्न दिखे, जिन्हें देखकर वह पहचान गया—

इदमेव प्रियायाः पदम्।

थोड़ी देर में मदालसा के साथ शर्मिष्ठा वहाँ आ पहुँची। लतान्तरित होकर राजा और विदूषक उनकी बातें सुनने लगे। मदनापीडित नायिका का यथोचित उपचार मदालसा कर रही थी। शर्मिष्ठा ने कहा कि इन उपचारों से मेरी दवा न होगी। मैं देवयानी की दासी हूँ। फिर भी राजा के संगमन से ही मेरी बाधा दूर होगी।[1] इसी अवसर पर मदालसा ने संकेत करके विदूषक से राजा को निकट बुलवाया, जब नायिका यह कहकर रो रही थी कि एक दिन देवयानी के विवाह के समय मुझे चित्रबिम्ब की भाँति राजा हो गये थे और अब मुझे देखने को नहीं मिलते। यह कहकर वह रो रही थी।

राजा ने शर्मिष्ठा के पास आकर अपना अपराध स्वीकार किया—

मन्दानिलस्य लगनादपि भेद्यवृन्तं क्रूरः पिनष्मि मुसलाहतिभिः शिरीषम्
यस्मान् मनागपि विषादमसासहि त्वां एतादृशीष्वपि दशासु निवेशयामि॥

नायिका ने कहा कि आपका सान्निध्य पाने लिए ही मैंने देवयानी का दासीत्व स्वीकार किया।[2]

---

१. शर्मिष्ठा—ननु राजन्येन।

२. शर्मिष्ठा—आगम एव एवं दुर्घटो भाति। अस्य सम्पादनायैव हताशया दास्यमुररीकृतं मया। तव दर्शनकृते शुद्धान्तमागतामपि मां न पश्यसि।

बातें बहुत आगे न बढ़ीं। मदालसा और विदूषक धीरे से खिसक गये। वहाँ रह गये अकेले ययाति और शर्मिष्ठा। उनकी परमानन्द की घड़ी शीघ्र ही समाप्त हुई, जब हरिण को ढूँढती हुई देवयानी वहाँ आ पहुँची।[1] नायिका वहाँ से भगी, यह निर्णय करके कि यहीं कल या परसों मिलेंगे। नायक ने देखा कि विदूषक आ रहा है। सब गड़बड़-घोटाला है। वह अपने बचाव के लिए उसी पल्लवास्तरण पर सो गया, जिस पर नायिका के साथ सोया था।

पहले तो विदूषक पर पड़ी कि क्यों कर तुम इस वन मे आये ? विदूषक ने कहा कि यहाँ राजा सोये हैं। उनसे मिलने आया। तब तो उस तमालनिकुञ्ज में सभी पहुँचे, जहाँ राजा सोने का उपक्रम कर रहा था। देवयानी ने देखकर समझ लिया कि यहाँ तो कुछ दूसरा ही क्रीडा-प्रपंच विलसित है।

देवयानी की विचक्षण आँखों ने क्षण भर मे देख लिया—ययाति की छाती पर चन्दन-चर्चित चित्रण उभरा था और वहीं पयोधर-मुद्रा अंकित थी। राजा रँगे हाथ पकड़ा गया। क्रोध से जलती हुई देवयानी अन्तःपुर जाने लगी। राजा के मनाने पर पूछा—आप अब दासी को प्रेमपाश में फँसाने लगे।

देवयानी ने सब कुछ सह लिया। अनेक वर्षों तक ययाति का शर्मिष्ठा से प्रेम-प्रसंग नित्य नूतन विधि से बढ़ता रहा। शर्मिष्ठा का पुत्र हुआ पुरु। एक दिन उसने खुरली-विलास के समय देवयानी के पुत्र यदु को पैर से मारा, जिसे सुनकर शर्मिष्ठा आगबबूला हो गई। उसने अपने पिता शुक्र को सब बताया। उन्होंने ययाति की राजधानी में आकर अपनी कन्या की दुर्गति देखी और पूछ कर मालूम किया कि ययाति का शर्मिष्ठा के प्रति राग है और उसके बाद मेरे प्रति जो राग है, वह वस्तुतः अनुराग ही कहा जा सकता है। वह देवयानी की दशा देखकर रोने लगे। उन्होंने ययाति को बूढ़ा होने का शाप दे डाला—

येन प्रायः कविकुलसुतामप्यवज्ञाय दर्पात्
रागादन्यां प्रथमवयसा प्राप्तकामामकार्षीत्।
तस्य स्थाने तदुदित-महापातकं स्मारयन्ती
दिग्धा दग्धाविनय-सरणिरसा जरा कामरोध्री॥

देवयानी ने कहा कि आप ने यह क्या कर डाला ? हम दोनों का यौवन व्यर्थ जायेगा। इसे ठीक कीजिये। तब शुक्र ने उस तीस वर्ष के शाप से प्राप्त वार्धक्य को विनिमेय बना दिया।

अभिज्ञान-शाकुन्तल के दुष्यन्त की भाँति देवताओं की सहायता करके विमान से लौटते हुए ययाति को प्रतीत होता है कि मेरी शक्ति क्षीण हो गई। उन्होंने अपने सारथि मातलि से यह सब बात कही और थोड़ी देर में मुकुट उतारने पर एकाएक

१. इसका वर्णन नायिका के मुख से है—या चिरकालनाथितं सम्भोगसुखं विघटयन्ती हताशा देवयाना आगता।

श्वेत केशपाश जो दिखाई पड़े तो उनका कलेजा मुँह को हो आया। 'कालाय तस्मै नमः।' ययाति असमर्थ हो गये। उनकी स्थिति क्या थी?

किमिदं पलितं मूर्धजफलितं परिगत-सिन्धुवारसरसदृशम्।
प्रकटं वदति जरायाः प्रसभं पराभूतिहर्षमवहसितम्॥

वे विमान से मार्ग में ही मातलि के साथ अपने आचार्य माध्यन्दिन के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ पहले से ही पुरु, यदु, शर्मिष्ठा देवयानी आदि थे। प्रश्न था ययाति की वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था देने का। पुरु इस विनिमय के लिए तत्काल तैयार हो गया। माध्यन्दिन ने यह देखकर कहा—

उचितं वृषपर्वसुताजनुषः सदृशं च सुधाकर-वंशशिशोः।
अनुरूपमपाप-ययातिभुवः सहजं च वाराभरणोद्यमिनः॥

पुरु बूढ़ा हो गया। फिर भी पुरु का युवराज-पद पर अभिषेक हुआ।

शिल्प

रत्नावली की भाँति सारिका का उपयोग इस नाटिका में किया गया है। इसमें सारिका बताती है कि किस प्रकार देवयानी शर्मिष्ठा को नायक की दृष्टि में पड़ने नहीं देना चाहती। रंगमंच पर किसी पात्र को चुपचाप पड़े रहने देना तृतीय अंक में कवि की त्रुटि है। मदालसा, शर्मिष्ठा और ययाति तो प्रेक्षकों को अपनी बातें सुनाते हैं। वहीं खड़ा-खड़ा कुछ न कहता-करता विदूषक प्रेक्षकों को अवश्य खटक रहा होगा। उसे उतने समय के लिए हटा देना चाहिये था।

वर्णना

अङ्कों के अन्त में समयोचित वर्णना अनेक पद्यों में गेय पदों में प्रस्तुत की गई है। तृतीय अङ्क चैत्ररथोद्यान का वर्णन शृङ्गार-रस के उद्दीपन विभाव के रूप में प्रस्तुत है। कवि अपनी वाक्शक्ति से शब्दों के द्वारा दृश्य उपस्थित करता है। यथा, नायिका नायक को छोड़ कर जाती है तो रोदं रोदं स्थायं स्थायं दर्शं दर्शं श्वासं श्वासं म्लायं म्लायं निष्क्रान्ता।

हास्य-रस

तृतीय अङ्क में हास्य रस की निष्पत्ति के लिए कवि ने विरल मार्ग अपनाया है।[1] चेट मदिरा पान करके प्रमत्त है। वह विदूषक कपिञ्जल को अपनी प्रेयसी समझ कर उसके पीछे पड़ जाता है। विदूषक पिण्ड छुड़ाकर भागना चाहता है।

प्रवेशक में दृश्य

तृतीय अङ्क के पूर्व आने वाले प्रवेशक में सूचना तो नाममात्र की है। इसमें प्रायः आद्यन्त विदूषक और चेट की मुठभेड़ का दृश्य है—सूच्य नहीं। शराब पीकर चेट विदूषक का पीछा करता है—विदूषक भागता है—यह दृश्य देखते ही बनता है। इस प्रकार यहाँ प्रवेशक लघु दृश्य है।

---

१. नागानन्द में मदिरा पीकर शेखरक नामक विट विदूषक को नवमालिका समझ कर विदूषक से प्रणय याचना करता है।

चतुर्थ अङ्क के पहले विष्कम्भक के अधिकांश में शुक्र के शाप देने की सूचना है। इस विष्कम्भक के कथा-विधायक शुक्र और देवयानी जैसे महान् लोगों का होना सापवाद है। इतने बड़े लोग विष्कम्भक में नहीं आते। देवयानी तो नायिका है।

गीत

नारायण ने गीतों को अनुप्रास-योजना से सुवासित किया है[1]। यथा,

कालः कालकलातुलामधिगतः कामेन मे क्लाम्यतः
कान्तायाश्च न कापि वागिदमिदं कर्णान्तिरं प्रापिता।
कामं कामकृशः क्रमेण विलयं प्राप्तैव कायोऽप्यसौ
कामिन्याः प्रणयोदयः प्रभवितेरयेवासवः शेरते॥

तृतीय अङ्क में नायक और विदूषक का दो गाना प्रस्तुत है—

नायक— हे सारंग विलोचनप्रियनम सन्तोपयालोकनैः
विदूषक—नागैश्चर्वितसल्लकी किसलया भान्त्यग्निलीढा इव।
नायक— मत्तेभस्तनिते घरं न विमृशन्दह्यो ह्यनङ्गार्चिषा
विदूषक—चूताङ्कुर कपायितश्च मधुरं पुंस्कोकिलः कूजति॥

पल्लवास्तरण से तृतीय अङ्क में राजा कहता है—

यत्त्वं पल्लवमंजरीमिववधू मध्ये न्यधाः कर्शितां
अङ्गग्लानिमपाचिकीर्षुरमितं तापं स्मरस्याहरः। इत्यादि

प्रणयाप्ति का दृश्य

रंगमंच पर आलिंगनादि वर्जित रहे हैं। पर कवियों ने इस नियम की प्रायशः अवहेलना करके कुछ व्यंजना से और कुछ साक्षात् नायक और नायिका के समागम का दृश्य प्रेक्षकों को हृदयंगम कराने में अपनी दक्षता मानी है। इस दिशा में नारायण बहुत आगे बढ़ चुके हैं। इस नाटिका में रंगपीठ पर ही नायिका की बाहु में नायक जा पहुँचते हैं।[2]

संविधान की कार्यपरता

नारायण का विश्वास है कि रंगमंच पर कुछ आङ्गिक अभिनय होते रहने चाहिए—कोरी गप्पें नहीं। उदाहरण के लिए तृतीय अङ्क में विदूषक का सत्कार कराया गया है, उसे देवयानी के द्वारा लता से पिटवा कर। अनुभावों में कार्य-दर्शन कराया गया है। शुक्र क्रोध करता है तो दन्तान् कटकटाकरोति।

---

१. गद्य में भी अनुप्रास योजना कहीं-कहीं है। यथा—प्रणय-प्रकर्ष-प्रदर्शन प्राय-प्रतीकारा हि प्रमदाजन-प्रसभ-प्रतिरवाः।

२. इति तद्बाहुन्तमङ्कमुपनयति (नायकः)
मुखमुन्नमय्य ससीत्कारं चुम्बति (नायकः)

लोकोक्तियाँ

शर्मिष्ठा-विजय में नाट्य-संवाद को रुचिकर बनाने के लिए प्रायशः प्रभविष्णु लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है। यथा—

१. चन्द्रहासेन स्वयं छित्त्वा छिन्नव्रण विरोपणाय यतसे।
२. न हि निर्घातो निष्ठीवनेन निवार्यते।
३. भानुरपि वारुण्यास्सेवातः शिथिलपादसञ्चारः।
रक्तश्च गगनधिया पश्चिमपाथोनिर्धिं च प्रविशति ननु॥
४. विपदि विपरीतत्वं व्रजन्ति मित्राण्यपि।
५. विग्वेवसमसमसमागमकृतोद्यमम्।
६. एतत्खलु कनकपादुकाप्रहार-सदृशम्।
७. अये अमृतमववृष्टम्।
८. छाया-विहरणे तरुपतनम्।
९. किं तक्राटप्रवेशार्थं दधिभाण्डखण्डनमिवाचरितम्।

एकोक्ति

शर्मिष्ठा-विजय में एकोक्ति की विशेषता है। द्वितीय अंक में रंगमंच के दो भाग हैं। एक में विदूषक है। दूसरे में राजा प्रवेश करता है और एकोक्ति द्वारा नायिका-विषयक अपने उद्गार प्रकट करता है। विदूषक दूसरे अंक के आरम्भ में अपनी एकोक्ति द्वारा उन परिस्थितियों को बताता है, जिसमें वह नायिका के चक्कर में नायक के द्वारा परेशानी में डाला जायेगा।

तृतीय अक के आरम्भ में वियोगी नायक की एकोक्ति नायिका की प्रणय-याचिका रूप में विशेष कलात्मक है।

प्रतिक्रियोक्ति

अनदेखा रहकर नायिका की उक्तियों पर अपनी प्रतिक्रियायें या अनुभाषण करने की अतिसरस रीति तीसरे अङ्क में अपनाई गई है।

कलिविधूनन

नारायणशास्त्री का ३७ वां नाटक कलिविधूनन है, जैसा उन्होंने इसकी भूमिका में बताया है।[1] कलिर्विधूयतेऽस्मिन्निति कलिविधूननम्-यह नाटक कलि के ध्वंस का परिचायक है। देवनागरी लिपि में कुम्भकोनम् से इसका प्रकाशन हुआ है। लेखक ने इसे सूत्रधार को अभिनय करने के लिए दिया था। इस नाटक का सर्वप्रथम अभिनय कुम्भेश्वर के महोत्सव में पारिषदों के प्रीत्यर्थ सन्ध्या के समय आरम्भ हुआ था।

कथावस्तु

नारद से कलि ने सुना कि दमयन्ती के विवाह के लिए स्वयंवर होने वाला है।

१. इसका देवनागरी लिपि में प्रकाशन १८९१ ई० में कुम्भकोनम् से हो चुका है। इसकी प्रति मद्रास के Record Office में है।

वह वहाँ जाना चाहता है, किन्तु समझता है कि वहाँ मेरी दाल नहीं गलेगी। हंस के मुख से नकली प्रशंसा सुनकर दमयन्ती का नल से प्रेम इतना अधिक है कि उसे विषय नहीं किया जा सकता। नायक और नायिका को राजहंस के द्वारा परस्पर प्रगाढ पूर्वानुराग उत्पन्न हो चुका है। फिर बाधायें हैं इनके एक दूसरे का होने में। नायक नल कहता है—

बाला पतिवरेयं भुवि दिव्या आर्य सन्ति सुन्दराः पुरुषाः।
दुष्कृतभीरोर्मम पुनरिदमतिरभसं सुदुर्यमं चेतः॥ १·१०

नल को दमयन्ती के स्वयंवर के लिए विदर्भ नरेश का पत्र मिलता है कि इसमें अवश्य पधारें। सेना-सहित नल चलते बने। उनके मनोरथ और रथ की गति का वर्णन है—

मम मन एव मनोरथमतिलघुगति नयति सम्प्रति विदर्भान्
अधिकतरतरस एते प्रागेव तयो रथं नयन्तीव॥ १.१८

मार्ग में लोकपालों ने उनको दूत बनाकर दमयन्ती के पास अपना प्रस्ताव ले जाने के लिए कहा।

द्वितीय अंक में नायिका दमयन्ती राजहंस के बताये नायक नल का ध्यान करके विरह-ज्वर-पीड़ित होकर सखियों से उसकी परिचर्चा करती है। नायक तिरस्करिणी-विद्या से वहीं अन्तःपुर में लोकपालों का सन्देश देने के लिए आया है। वह अदृश्य रहकर नायिका और सखियों के मुख से सुनता है कि मेरे वियोग में नायिका की क्या स्थिति है। वह अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करते हुए कहता है—

कथमियमिह मम वचनादनुरज्येल्लोकपालेषु।
कामो हि दुर्निवर्तः प्रस्रवणस्येति कुत्र वा सेतुः॥

द्वितीय अङ्क में नायक उद्विग्न है। वह लोकपालों के सन्देश के विषय में अपनी चिन्ता व्यक्त करता है—

आमिषमियं हि मनसो नियतविषयं निलिम्प विभुदूरयम्।
कथमिह च सविधानं गतमर्यादा हि कामुकी वृत्तिः॥२·१

नायक दमयन्ती के उपवन में जा पहुँचा है। वहाँ देखता है कि सरसी-तट पर कुंज में उसका शीतोपचार हो रहा है। वह छिप कर सखियों सहित दमयन्ती की बातें सुनता है। तिरस्करिणी के द्वारा अदृश्य न रहकर वह उनके सामने आकर कहता है कि मैं लोकपालों का दूत हूँ। वह इन्द्रादि की प्रशंसा करता है। दमयन्ती कहती है कि आप खूब दूत मिले। लोकपालों का वर्णन सुनकर दमयन्ती और सखियाँ उन्हें अयोग्य बताती हैं। वे नल से कहती हैं कि आप अपना परिचय दीजिये। वे समझ जाती हैं कि ये नल हैं। सारी परिस्थिति दमयन्ती के लिए शोचनीय है। नल प्रार्थना करने पर भी दमयन्ती को कृतार्थ नहीं करता। वह अन्तर्धान हो जाता है।

दमयन्ती स्वयंवर-मण्डप में प्रवेश करती है। वहाँ पाँच नल हैं—नल के साथ

उसी के रूप में चार लोकपाल। दमयन्ती ने निर्णय किया कि यदि नल न मिला तो परिव्राजिका बन जाऊँगी। देवताओं के अनुग्रह से दमयन्ती वास्तविक नल का वरण कर सकी। उसने शङ्कर का नाम लेकर माला फेंकी तो वह उसके सतीत्व के प्रभाव से नल के गले में जा पड़ी।

तृतीय अङ्क में कलि ने पुष्कर की सहायता की और उससे जुआ खेलते हुए नल पराजित हुए, यद्यपि पुरवासियों, मंत्रियों और स्वयं दमयन्ती ने उन्हें रोका कि जुआ न खेलें।

पुष्कर भी डर के मारे खेलना नहीं चाहता था। किन्तु नल ने उसे मनाया। अन्त में सब कुछ हारकर नल वन की ओर चले। उनके दो पुत्र सारथि वार्ष्णेय के साथ विदर्भ भेज दिये गये।

चतुर्थ अङ्क में नायक ने दमयन्ती का वन में पिता के घर जाने के लिए परित्याग कर दिया। दमयन्ती को छोड़कर जाते हुए वह कहता है—

तदेष गच्छामि विसृज्य च त्वां ललाटरेखा-सरणिर्ममैवम्।
या हि त्वमद्यैव पितुर्निवेशं विभिन्नभाग्यः खलु जीवलोकः॥ ४.३१

दमयन्ती अतिशय विपन्न हो गई। वह कहती है—

धिक् प्रत्नकर्म सततं सुखितैकमाथि धिग्वेवसं कुटिललेखनवद्रन्ध्रदक्षम्।
धिग्दैवमार्तजनतार्तिकरं पुनश्च धिङ्मर्त्यजन्म धिगिदं जननं वधूनाम्॥४.५२

तिलिप्स नाग सर्प के उदर में जाकर नल का रूप बदल गया। अब उसे कोई पहचान नहीं सकता था। दमयन्ती नल को ढूँढती हुई वृक्षों से उसका पता पूछने लगी—

तिलक तिलकः क्वास्ते क्वासौ रसाल रसालयः
सरल सरलः क्वेक्ष्यः क्वासौ कदम्ब कदम्बरीः।
वदर वद रे नाथं मुञ्चेर्न चन्दन चन्दनं॥ इत्यादि।

पंचम अंक में दमयन्ती पर किरात के आक्रमण करने की चर्चा है। दमयन्ती के पातिव्रत्य की अग्नि से शबर भस्म हो गया। नल जब खोजने से नहीं मिला तो दमयन्ती ने लता से प्रार्थना की कि तुम प्रियतम का पता नहीं बताती हो तो मेरे गले की फँसरी ही बन जाओ। यथा,

पृच्छामि तद्वद मम क्व पतिः प्रयातः
याचे न चेद् भव गले मम वन्वरज्जुः॥५.३७

वह फाँसी लगाकर मरने ही वाली थी कि उधर से एक सार्थवाह निकला। उन्होंने उसे बचा लिया। उनके साथ जाती हुई दमयन्ती पर दूसरी विपत्ति आई। एक गन्धहस्ती ने आक्रमण कर दिया और सार्थवाह वितर-वितर हो गया।

पति के वियोग में दमयन्ती को चेदिपुर में सैरन्ध्री बनकर राजभवन में समय बिताना पड़ता है। नल अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण का सारथि बाहुक बनकर

दमयन्ती के वियोग में अपने कारण उसकी विपत्तियों का ध्यान करके नितान्त सन्तप्त हैं। वैसी सुन्दरी मुझे कहाँ मिलेगी ? सुदेव नामक ब्राह्मण ने दमयन्ती को पहचान लिया और वह वहाँ से अपने पिता के घर पहुँची।

अष्टम अंक में ऋतुपर्ण को सदेश मिलता है कि दमयन्ती के स्वयंवर में पधारें। वे बाहुक को सारथि बनाकर कुण्डिनपुर पहुँचे। वहां उन्हें कलि का दर्शन हुआ—

कोऽसौ करीषकरिकाककशेरुकाल- कालायसाकलितकायकलायकृत्यः।
क्रूरक्रियः कुटिलकूर्चकरालकुक्षिः कीलालकद्रुकुरलः किरतीव कालीम् ॥८.५०

बाहुक के पास नवम अंक में दमयन्ती की भेजी हुई केशिनी नामक नायिका की सखी आई। उसने बाहुक से बातें करके जान लिया कि यह वस्तुतः नल हैं। फिर भी नल को अब दमयन्ती में विश्वास नहीं रह गया था। वायुदेव ने आकाशवाणी करके उनके भ्रम को दूर किया। दोनों का मिलन हुआ।

दशम अङ्क में नल पुनः सुव्यवस्थित होकर पुष्कर से जुआ खेलता है और उसका सर्वस्व जीत लेता है। नल राजा बना। पुष्कर को क्षमा कर दिया गया। गौतम ने राजकुमार का युवराजाभिषेक कर दिया।

शिल्प

प्रथम अंक के पहले मिश्रविष्कम्भक में प्रतिनायक का रंगमंच पर रहना नवीन प्रयोग है। वह अपनी मनःस्थिति का वर्णन इस अवसर पर करता है।

कलिविधूनन में कलि, द्वापर और तिलिप्स नामक सर्प की भूमिकायें छायात्मक हैं। तिलिप्स के पेट में नल का जाना और वहाँ से कुरूप बनकर निकलना छायात्मकता के द्वारा अलौकिक व्यापार का नियोजन करती हैं। दमयन्ती का सैरन्ध्री बनना भी छायात्मक है। चार लोकपाल स्वयंवर में नल का रूप बनाकर वर्तमान हैं। यह सारा कार्य-कलाप असाधारण रूप से छायात्मक है।

द्वितीय अंक के पहले नायक की एकोक्ति अपनी स्थिति के विषय में है कि कैसे मैं लोकपालों का सन्देश देकर उनका कार्य सम्पन्न करूँगा।

नवम अंक में दमयन्ती का एक भाषण चार पृष्ठ का है, जो नाटकीय संवाद की दृष्टि से समीचीन नहीं है।

प्रस्तावना और प्रथम अंक के बीच आने वाले विष्कम्भक में प्रतिनायक कलि की भूमिका समीचीन नहीं है। इतने ऊँचे पद की भूमिका अर्थोपक्षेपक में नहीं होनी चाहिए थी।

जैत्रजैवातृक

नारायण शास्त्री के जैत्रजैवातृक के प्रकाशन की सूचना १८८८ ई० में निकली।[1] इसमें सूर्य के द्वारा चन्द्र की विजय की कथा है। अन्त में रात्रि के समान रूप से प्रणयी बनकर दोनों प्रसन्न रहते हैं।

---

१. यह सूचना फोर्टसेण्टजार्ज के १२ मार्च १८८८ ई० की गजट में प्रकाशित हुई थी। इसके अनुसार वाणीमनोरंगिणी मुद्राक्षर शाला, पुंगनूर से यह निकला था। नारायणराव इसके प्रकाशक थे।

अध्याय ८८

उपहारवर्म-चरित

उपहारवर्म-चरित के रचयिता श्रीनिवास शास्त्री का जन्म कावेरी नदी के तट पर सहजपुरी नामक ग्राम में १८५० ई० के लगभग हुआ था।[1] कवि के पितामह सुब्रह्मण्य और पिता वेङ्कटेश्वर थे। कवि ने अपने नाटक को लाट कोन्नेमर को समर्पित किया था, जब वे मद्रास के गवर्नर १८८६ ई० से १८९० ई० तक थे।[2]

श्रीनिवास की ख्याति तिरुवसलूर-पण्डित नाम से थी। माध्वयतीन्द्र ने उनके धर्मोद्धारक कृतित्व से प्रभावित होकर इन्हें वेद-वेदान्त-वर्धक की उपाधि से समलंकृत किया था। कवि ने लार्ड कोन्नेमर की आशंसा प्रकरण के भरतवाक्य में की है—

जीयान्नैकसमाश्च जीवतुतरां श्रीकन्निमाराप्रभुः।

श्रीनिवास के गुरु सुब्बाराव सुप्रसिद्ध थे। श्रीनिवास ने काव्य, अलंकार, नाटक आदि विषयों में विशेष नैपुण्य प्राप्त किया था।

प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावना में कहा गया है—

नाट्ये यो विमुखः स एव परमं निन्द्यो रसज्ञैः बुधैः।

श्रीनिवास का अपने युग में बड़ा सम्मान था। वे स्वभावतः उदार और परोपकारी थे।

कथावस्तु

मिथिला के राजा प्रहारवर्मा को पुष्पपुर के राजा राजहंस ने अपने यहाँ निमन्त्रित किया। प्रहारवर्मा अपनी गर्भवती पत्नी प्रियंवदा के साथ पुष्पपुर की ओर चले। मार्ग में प्रियंवदा ने पुत्र-प्रसव किया।

प्रहारवर्मा की अनुपस्थिति में उसके भतीजे विकटवर्मा ने मिथिला के सिंहासन पर अधिकार कर लिया और पुष्पपुर से लौटते हुए प्रहारवर्मा को पत्नी और पुत्र के साथ वन्दी बना लिया। रानी ने नवजात शिशु को तापसी नामक दासी को सौंपकर उसे दूर हटाया। दासी के सामने एक चीता आया और वह शिशु को छोड़कर भाग गई। इसी बीच उधर से मृगया करते हुए राजहंस निकला। उसने शिशु को पहचान लिया कि प्रहारवर्मा का पुत्र है और उसे लेकर अपनी राजधानी में अपने पुत्र के साथ पालन-पोषण के लिए दे दिया। उसका नाम उपहारवर्मा रखा गया।

---

१. उपहारवर्म-चरित का तेलुगु-लिपि में प्रकाशन १८८८ ई० में मद्रास से हो चुका है। इसकी छपी प्रति मद्रास के अडयार लाइब्रेरी में है।

२. लार्ड कोन्नेमर साहित्यानुरागी था। उसने मद्रास में एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया था, जो अब भी उत्तम स्थिति में है।

उपहार-वर्मा बड़ा हुआ। उसे दिग्विजय की लालसा हुई। उसने मिथिला पर आक्रमण किया। वहाँ उसे विकटवर्मा की सुन्दरी रमणी कल्पसुन्दरी से प्रेम हो गया। उसने नायिका के पास पुष्करिका नामक दूती को भेजा। द्वितीय अंक मे दूती नायक का चित्रपट नायिका को दिखाती है और वह उस पर अपना सर्वस्व निछावर कर देने के लिए समुत्सुक हो जाती है।[1] वह उससे मिलने के लिए व्याकुल होकर अश्रुपात करती है। इन दोनो के परस्पर मिलन में विकटवर्मा रुकावट डालता है।

तृतीय अङ्क मे नायक अपनी धायी तापसी के दामाद और अपने पिता के समय से भृत्य दत्तक से सम्पर्क स्थापित करता है। इधर विकटवर्मा कल्पसुन्दरी को अपने से प्रेम न करती जान कर अपनी कुरूपता दूर करने के लिए यज्ञ-सम्पादन करता है। इसका पुरोहित पचम अंक में स्वयं उपहार-वर्मा तापस वेप धारण करके बनता है। वह अकेले में अग्निकुण्ड में विकटवर्मा को तलवार के घाट उतार कर फेंक देता है और अपने आपको विकटवर्मा यज्ञ के द्वारा सुन्दर बना हुआ घोषित करता है। फिर तो कल्पसुन्दरी निर्द्वंद्व रूप से उसकी हो जाती है, जो शाप के कारण कुछ समय के लिए विकटवर्मा के चंगुल में थी।

नायक अन्त में अपने माता-पिता को कारागार से विमुक्त करता है और पिता को राजा बनाकर स्वय युवराज बनता है।

समीक्षा

उपहारवर्म-चरित की कथावस्तु पर प्रधानतः कौमुदी-महोत्सव के कथानक की छाया प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है।[2] इन दोनों में अतिशय समानता है। जहाँ तक सुन्दर बनने की कामना से यज्ञ करने वाले प्रतिनायक को मार कर यज्ञकुण्ड में झोंकने की घटना है, वह भी अर्वाचीन नाटक में सुपरिचित संविधान है।

प्रकरण मे अर्धैतिहासिक कथावस्तु और राजकुमारादि का नायक होना देवीचन्द्र गुप्त नामक सुप्रसिद्ध प्रकरण के आदर्श पर निर्मित है। इन दोनों प्रकरणों मे अङ्क-सख्या दस से कम है।

उपहार-वर्म-चरित मे छायातत्त्व का वैशिष्ट्य है। नायक तापस बनकर यज्ञ का पुरोहित हो जाता है और कापटिक यज्ञ कराता है।

१. चित्रपट से नायक के प्रति प्रेम की उद्भावना छायातत्त्वानुसारी है।

२. कौमुदी-महोत्सव का कथानक लेखक के मध्यकालीन सस्कृत-नाटक के पृष्ठ २४–२७ पर है।

अध्याय ८९

गैर्वाणी-विजय

गैर्वाणी-विजय के प्रणेता राजराजवर्मा केरलवर्मा के भतीजे थे।[1] इनका जन्म १८६३ ई० और मृत्यु १९१८ ई० में हुई। इनके पिता चन्नाश्शेरी के लक्ष्मीपुर नामक प्रासाद में रहते थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा का श्रेय आचार्य चुन्नकर अच्युत वारियार और इनके चाचा केरलवर्मा को है। इनकी पहली कविता मङ्गविलाप १८८९ ई० में लिखी गई, जब वे बी. ए. में अनुत्तीर्ण हुए थे। १८९० ई० में वे विद्यालयों के अधीक्षक नियुक्त हुए और १८९९ में ट्रावनकोर राज्य के संस्कृतशिक्षण के सुपरिण्टेण्ड हो गये। उन्होंने मद्रास-विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि प्राप्त की, जिसके लिए नारायण भट्ट और उनकी कृतियों के विषय में शोधनिबन्ध प्रस्तुत किया था। १९१२ ई० में वे त्रिवेन्द्रम् महाविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

राजराज वर्मा संस्कृत के साथ ही मलयालम के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने मलयालम का व्याकरण केरलपाणिनीय लिखा और भाषाभूषण नामक मलयाली काव्यशास्त्र का प्रणयन किया।

राजराज ने संस्कृत में आंग्लसाम्राज्य नामक महाकाव्य २३ सर्गों में लिखा। उनके राधामाधव नामक गीतकाव्य के चार यामों में गीतगोविन्द जैसी सामग्री है। उनके उद्दालक चरित में शेक्सपीयर के ओथेलो की कहानी संस्कृत-गद्य में निष्पन्न है। इनके अतिरिक्त उनकी रचनायें तुलाभार-प्रबन्ध और ऋग्वेद-कारिका हैं।

राजराज ने लघुपाणिनीय में अष्टाध्यायी का संक्षेप किया है। करणपरिष्करण ज्योतिष के ग्रन्थ में तिथिपत्रसंशोधन के विषय में आवश्यक शोध किया है। उनकी लघु रचनायें—वीणाष्टक, देवीमंगल, चित्रश्लोक, पितृवचन, मातृवचन, रागमुद्रासप्तक, विमानाष्टक, मेघोपालम्भ और पद्मनाभपंचक हैं।[1]

राजराज में भारतीय संस्कृति के उन्नयन के प्रति गहरी आस्था थी। वे अपने को धर्मधुरन्धर और परमधार्मिक कहने में गर्वानुभूति करते थे। वे विद्वद्गोष्ठी में संस्कृत के अभ्युदय के लिए योजनायें बनाकर उन्हें कार्यान्वित करते थे। संस्कृत के प्रचार में प्रतिरोध करने वाली आंग्लशासन की नीतियों का उन्होंने सक्षम निराकरण किया।

गैर्वाणी-विजय का प्रथम अभिनय नवरात्र-महोत्सव के अवसर पर समागत परिषद् के प्रीत्यर्थ हुआ था।

---

१. गैर्वाणी-विजय का प्रथम प्रकाशन ग्रन्थ लिपि में १८९० ई० में कलपदि, पालघाट के कल्पतरु प्रेस से हुआ। इसमें १२ पृष्ठ थे।

2. The Contribution of Keral to Sanskrit Literature पृष्ठ २५६–२५७ के आधार पर।

कथावस्तु

भारती (सरस्वती) अपनी दुर्दशा से विपन्न होकर रोती हुई समाधि से विमुक्त ब्रह्मा के पास जाकर कहती है कि भारत मे ही मेरा आधिपत्य नही रहा। अब मैं हौणी (अंग्रेजी) भाषा की दासी बनाई जा रही हूँ। ब्रह्मा कलि के प्रभाव से संसार को ग्रस्त देखकर अतिशय चिन्तित हैं। सर्वत्र कुकर्म का बोल-बाला है। अधर्म बढ रहा है।

भारती ने बताया कि मेरी कन्यायें (भाषायें) परस्पर लड़ रही हैं। इसका मुझे दुःख है। ब्रह्मा ने भारती को गोद मे बिठाकर उससे पूरा विवरण देने के लिए कहा कि कैसा कुटुम्ब-कलह है। भारती ने कहा कि मेरी कन्याओ से ही पूछ कर जान लें। विद्रुमचञ्चु नामक कंचुकी गैर्वाणी और हौणी नामक भारती की कन्याओं को लेकर आ पहुँचे। हौणी ने आते ही Goodmorning से ब्रह्मा का अभिवादन किया। वह अर्धनग्न वैदेशिक वेषभूषा से बनठन कर आकर्षण उत्पन्न कर रही थी। नारद ने उसे फटकारा कि यह चाण्डाली कहाँ से ब्रह्मसभा मे आ गई। ऋषियों ने कहा कि यह ब्रह्मा का प्रमाद है। ब्रह्मा ने उससे Handshake किया। हौणी ने दुर्वासा की ओर सकेत करते हुए कहा कि यह खूँखार जानवर मुझे डरा रहा है। दुर्वासा ने कहा—यह वानरी क्यो कर आई ?

गैर्वाणी ने पहले अपना दुखड़ा रोया कि आदिकाल से वाल्मीकि-कालिदास आदि के द्वारा मैं समादृत हुई। अब कुछ समय से यावनी भाषा मेरा स्थान ले रही है। मैं निर्वासित सी हो रही हूँ। हौणी ने कपट-चाटुशतक से सबको मोह लिया है। लक्ष्मी जी हौणी के साथ हैं। ब्रह्मा ने हौणी से पूछा कि क्या गैर्वाणी सत्य कह रही है? हौणी ने कहा कि मैं तो गैर्वाणी का आदर करती हूँ, पर लोग मुझ पर लट्टू हैं। आप हमारा वैर भाव दूर कर दें। गैर्वाणी ने कहा—

कथमिव सहसा समादधेऽहं कलह-पदेषु मनाग् निष्कृतेषु
प्रतिपद–चरितां कथापराधां वद कथमेकपदे विस्मरामि ॥२०

किं किं नहि करोत्येषा मय्युद्वेजयितुं जनान्
लिंगदोषमृषा-व्याधि – प्रख्यापनसुदारुणा ॥ २२

हौणी निन्दा सुनकर घबड़ा गई। नारद ने उसकी घोर निन्दा की। हौणी की विनय से ब्रह्मा भी प्रभावित थे। उन्होने गैर्वाणी से कहा कि हौणी कनीयसी भगिनी है। अब इसे अपने सारे भार देकर आराम करें। आपका आदर होता रहेगा।

तभी गरुड आ पहुँचे। उन्होने समाचार दिया कि केरल के राजा मूलक महीपति ने धर्मशास्त्र मे अभिरुचि व्यक्त करते हुए गैर्वाणी की पद-प्रतिष्ठा द्विगुणित कर दी है।

इस नाटक मे छाया-तत्त्व सविशेष है।

अध्याय ६०

गर्वपरिणति

गर्वपरिणति में रचयिता का नाम नन्दलाल विद्याविनोद मिलता है। यह नाटक अभिनय के पूर्व ही संस्कृत-चन्द्रिका में १८९५ ई० में प्रकाशित हुआ। अतएव इसमें प्रस्तावना का अभाव है। विनोद ने इसे प्राचीन नाट्य-परम्परा से कुछ दूर रखकर नवीन संविधानों से प्रपन्न किया है।

कथावस्तु

रामचन्द्र और कमला को सुरेश नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जो रत्न के समान ही भास्वर और कठोर था। पिता उसे अपने समान ही मधुर-भाषी, उपकार-परायण और विनयी बनाना चाहते थे।[1] सुरेश निरन्तर पुस्तकों का अध्ययन करते हुए अपनी ज्ञानाग्नि संवर्धित करता था और उससे अपनी दुरुक्तियों और अभिमान-भरी वाणी के द्वारा दूसरों को जलाता था। वह सबको मूर्ख और नेय समझता था और अपने को शुक्राचार्य और बृहस्पति मानता था। ऐसे महामानी को कोई सम्मान न दे—यह स्वाभाविक ही था। माता-पिता उससे दुःखी रहते थे। सबसे बड़ी खेद की बात थी कि वह अपने बड़े भाई कृष्णदास को हेय समझता था, क्योंकि उसे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति की गन्ध नहीं लगी थी।

सुरेश पढ़ रहा है। कृष्णदास के पास आने पर वह भड़क जाता है कि मेरी पढ़ाई में बाधा डाली। वह कृष्णदास को दूर भग जाने की आज्ञा देता है। तभी पिता रामचन्द्र ने आकर उससे पूछा कि यह कैसा कठोर व्यवहार? सुरेश ने कहा कि कृष्णदास निरक्षर-भट्टाचार्य है। रामचन्द्र ने कहा कि तुम्हारा पुस्तकीय ज्ञान सब कुछ नहीं है। कृष्णदास भी बहुत कुछ ऐसी बातें जानता है, जो तुम नहीं जानते। तुम उससे बहुत-कुछ सीख सकते हो। उसे प्रेम से बड़े भाई का सम्मान दो। सुरेश पिता की इन बातों को थोथा मानकर उन्हें भी अप्रबुद्ध समझता है।

कृष्णदास ने सुरेश से कहा कि चन्द्रिका-चर्चित अधित्यका देखें। सुरेश उससे पूछता है कि क्या तुमने सांख्य पढ़ा है? कृष्णदास ने कहा कि पढ़ा तो नहीं, लाओ, देखूँ क्या है। सुरेश ने कहा कि तुम्हारे लोहे के हाथ से पुस्तक का स्पर्श नहीं होना चाहिए।

द्वितीय अंक में उदास रामचन्द्र अपनी पत्नी कमला से बातें करते हुए कहता है कि सुरेश तो मेरे लिए समस्या है। कमला कहती है कि उसका विवाह कर दो।

रामचन्द्र से मिलने के लिए उसका मित्र नीलाम्बर आया। उसने रामचन्द्र

---

१. पिता का मत था।

पाण्डित्याभिमानि-गर्वितपुत्रेभ्यो विनयी मूर्खोऽपि वरः।

और सुरेश से कहा कि अधित्यका में चन्द्रदर्शन करें। सुरेश ने कहा कि पुस्तकों में तो चन्द्रिका-स्वरूप भी वर्णित है। नीलाम्बर ने कहा कि तुम तो सरस्वती-पुत्र हो। नीलाम्बर और रामचन्द्र अरण्य में गये और सुरेश छिपकर अपने विषय मे उनकी बातें सुनने के लिए उसी जंगल मे जा पहुँचा।

पूर्णिमा के दिन वन मे एक साथ सूर्यास्त और चन्द्रोदय के दृश्यो से रामचन्द्र अतीव प्रसन्न है। उसी समय उसे समाचार मिलता है कि सुरेश भी वन मे कही चला गया है और उसका पता नही लग रहा है। नीलाम्बर उसे ढूँढने गया। रामचन्द्र ने वनमार्गों से परिचित कृष्णदास से कहा कि सुरेश विपत्ति मे पडा है।

सुरेश वन मे भटक रहा था। कोई सहारा नही था। रात बढती जा रही थी। उसे लगा कि मैं असहाय हूँ। किसी ऊँचे वृक्ष पर चढकर वही वह अपने दुर्भाग्य पर अरण्य-रोदन करने लगा। कृष्णदास को उसका रोना सुनाई पडा। वह अखिलज्ञ सुरेश के पास सहायता करने के लिए पहुँच गया।

सुरेश इतने मे ही बदल चुका था। जिस कृष्णदास को वह फूटी आँखों नहीं देखता था, उसके पास आते ही उससे गले मिलता है। उससे क्षमा याचना करता है। कृष्णदास ने कहा कि अब रात यही बितानी है। उसी वन मे वनचर श्वापदों के बीच वृक्ष के नीचे चादर-रहित पर्णशय्या पर सुरेश को डर-डरकर सोना है। अग्नि चाहिए। कृष्णदास ने कहा कि 'काष्ठघर्षणेनाग्नि प्रज्वालय' पुस्तकों मे कहा गया है। फिर सुरेश को भूख लगी थी। कृष्णदास उसके लिए जङ्गली फल तोड ले आया। सुरेश अपनी त्रुटियों और विवशता पर रोने लगा। उसने फल खाया और कृष्णदास की बताई गुफा में पत्रास्तरण पर शयन किया।

रामचन्द्र और कमला प्रातःकाल पुत्र के न आने पर उद्विग्न हैं। रामचन्द्र ने अपनी पत्नी को आश्वासन दिया कि कृष्णदास के आने तक धैर्य रखो। तभी सुरेश को लेकर कृष्णदास आया। पिता ने सुरेश को कृष्णदास को ही पुरस्कार-रूप मे दे दिया। सभी प्रसन्न हैं कि सुरेश में अभीष्ट परिवर्तन उसके सुख का निमित्त है।

समीक्षा

गर्वपरिणति के अंक दृश्यों मे विभाजित है। प्रत्येक दृश्य अपने आप मे स्वतन्त्र हैं। इसमे नान्दी, प्रस्तावना, अर्थोपक्षेपकादि का अभाव है। नायक के चरित्र का विकास इस नाटक की असाधारण विशेषता है। प्रायः नाटकों मे नायक आदि से अन्त तक समान ही रह जाता है।

शिल्प

नाटक मे वस्तु और नेता-विषयक जो शास्त्रीय मान्यतायें हैं, वे प्रायः सभी की सभी इसमें छोड़ दी गई हैं। इसमे कहीं-कहीं करुण और हास्य रस का परिपाक है। नाटकोचित वीर और शृङ्गार तो सर्वथा नहीं हैं।

गर्वपरिणति सर्वथा गद्य में है, केवल अन्त में मालिनी छन्द में भरतवाक्य है। संवादों में अलंकार का समावेश विरल है। छोटे-छोटे वाक्यों की छटा नाट्योचित है। असमस्त पदावली और संयुक्ताक्षरों की विरलता से भाषा की कोमलता और सुबोधता द्विगुणित है।

नाटक सांस्कृतिक कोटि में रखा जा सकता है। इसमें योरपीय संस्कृति की विषमताओं की ओर प्रेक्षकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। अंगरेजी के विद्यार्थियों की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से लेखक दुःखी प्रतीत होता है। पारिवारिक सम्बन्धों में पेशलता का संवर्धन लेखक का उद्देश्य है, जो पूर्ण हुआ है।

कथावस्तु की दृष्टि से गर्वपरिणति विकास की नई दिशा में प्रवर्तित है।

अध्याय ६१

मञ्जुल-नैषध

मंजुल-नैषध नाटक का सूत्रधार उच्चकोटि का विचार-परायण समीक्षक भी है।[1] उसने स्पष्ट कहा है—

ये कालिदास-भवभूतिमुखप्रबन्धाः प्रायेण ते परिषदा खलु दृष्टपूर्वाः।
प्राचीनमार्गगलनादधुनातनीनां सलक्ष्यते कृतिषु वाचि विचित्रतैव ॥

सूत्रधार अंग्रेजी पराधीनता के कुफल से परिचित था। उसने साश्रु नेत्रों से देखा है—

आक्रान्ता मृतसिंहकन्दरगता व्याघ्रैर्यथा शावका
वर्षेऽस्मिन्नधुना नृपतयो द्वीपान्तरीयैर्जनैः ॥

उसे सहा नहीं जाता कि भारतीय राजा अंग्रेजी वेष और भाषा को अपनायें और अपनी राजनीति छोड़ें।

मंजुलनैषध के प्रणेता महामहोपाध्याय वेङ्कट रंगनाथ विक्टोरिया के द्वारा राजकीय उपाधि से सम्मानित थे। इनके पिता संस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान् महाकवि श्री निवासगुरु भरद्वाज-वंशी थे और विजिगापट्टम् के निवासी थे। इनका समय १८२२ ई० से १९०० ई० तक रहा है। कवि की विद्वत्ता विविध-क्षेत्रीय थी। उनका पौराणिक कथावाचन सुप्रसिद्ध था, जिससे प्रभावित होकर अधिकारियों ने उन्हें महामहोपाध्याय पदवी के लिए योग्य माना था। इसके साथ ही वे संस्कृत-पाठशाला में अध्यापन भी करते थे। उनकी अन्य कृतियाँ आंग्लाधिराज-स्वागत, कुम्भकर्ण-विजय आदि हैं। संस्कृत-भाषा और साहित्य-विषयक उनका विश्वकोश अप्रकाशित है। उन्होंने संस्कृत-व्याकरण को सरल बनाने का प्रयास किया और इस दिशा में दो निबन्ध लिखे। मंजुल-नैषध का प्रथम अभिनय स्थानीय विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

नल को कोतवाल बताता है कि किसी सुन्दरी कुमारी को कोई पुरुष लिए हुए उसकी राजधानी में आने पर बन्दी बनाया गया है। नल ने उस कन्या को देखा तो मन में कहने लगा—

किमियममरकन्या लोचनेनानिमेषे किमु मनुजकुमारी नेदृशं वस्तु लोके।
सृजति मदनमेषा सा कथं सृष्टिरस्य स्वयमिदमतिलोकं रूपमत्राविरासीत् ॥

१. मंजुलनैषध का प्रकाशन १८९६ ई० में विशाखापट्टन से मद्राक्षर में हुआ था। इसके प्रकाशक कवि के पौत्र वेङ्कट रंगनाथ शर्मा थे। इसकी हस्तलिखित प्रति अड्यार, लाइब्रेरी, मद्रास में प्राप्तव्य है।

उस पुरुष ने बताया कि मैं विदर्भवासी हूँ और यह मेरी कन्या है। किसी को विश्वास न पड़ा कि यह इस सुन्दरी का पिता हो सकता है। चोर हो सकता है। कन्या ने पूछने पर अपने विषय में कुछ नहीं बताया। अन्त में नल ने उसे अन्तःपुर में भेज दिया कि वहीं इससे पूछा जाय कि यह कौन है। कुछ भी ज्ञात न हो सका। फिर पूछने पर पुरुष ने बताया कि मैं शिल्पी हूँ। जिस सुन्दरी को आपने अन्तःपुर में भेजा है, वह मेरी कृति है—मूर्ति है राजा भीम की कन्या दमयन्ती की। इस मूर्ति के निर्माता को आप पुरस्कार दें—इस उद्देश्य से मैं इसे लाया हूँ। राजा नल से पुरस्कार पाकर शिल्पी चलता बना। नल सोचने लगा कि इस रमणी को कैसे प्राप्त करूँ? इस अवसर पर द्वारपाल ने सूचना दी कि उद्यानपाल आप से मिलना चाहता है। उद्यानपाल ने बताया कि उपवन में वसन्त और वनलक्ष्मी का विवाह होने वाला है, जिसे देखने के लिए नल चल पड़ा। उसने देखा कि स्वयं दमयन्ती विराजमान है। वह नल के लिए उत्सुक है कि मुझे वे स्वीकार करेंगे कि नहीं। नल भी इसी चिन्ता में था कि मैं इसे ग्रहणीय हूँ कि नहीं। नल कहता है—

यथा मां शङ्कसे भीरु न कदापि तदास्म्यहम्।
तव प्रसादमिच्छामि पादाभ्यां च ते शपे॥

तभी नल को ज्ञात हुआ कि कोई इन्द्रजालिक यह सब इन्द्रजाल द्वारा प्रपंचित कर रहा है। उसने नल से बताया कि दमयन्ती तो कुण्डिनपुर में है। अपनी विद्या के प्रभाव से मैंने उसे यहाँ समक्षित कर दिया है।

इधर दमयन्ती ने राजहंस को नल के पास भेजा था कि उससे मेरा प्रणय निवेदन करो। हंस ने सफलतापूर्वक यह कार्य सम्पन्न किया था।

तृतीय अंक में कुण्डिनपुर में दमयन्ती के विवाह के लिए स्वयंवर आयोजित है। नारद ने कलह का आनन्द लेने के लिए इन्द्र, वरुणादि को उसका प्रत्याशी बना दिया है। तिरस्करिणी विद्या के द्वारा नल अन्तःपुर में पहुँचकर दमयन्ती और उसकी सखियों की बातें कुछ देर तक सुनकर अन्त में प्रकट हुआ। उसने देवताओं के लिए दमयन्ती से कहा, पर उसने कहा कि यदि आपने मेरे अंग को अङ्गीकार नहीं किया तो मैं भी उन्हें अंगीकार नहीं करूँगी। अन्त में दमयन्ती ने नल को उपाय बताया कि आप देवताओं से कह दें कि आप सभी स्वयंवर में पधारें। वहाँ दमयन्ती का निष्पक्ष निर्णय होगा।

चतुर्थ अङ्क के स्वयंवर में पाँच नलों में वास्तविक नल को दमयन्ती ने धर्म की सहायता से वरण कर लिया। यह सब कलि को नहीं देखा गया। उसने द्वापर से कहा कि दम्पती को पृथक् करने में आप मेरी सहायता करें। मुझे जुए में नल को हराकर उसे वन में भटकाना है।

एक दिन ब्राह्मण-वेषधारी कलि रोते-पीटते नल के पास आकर गिड़गिड़ाया कि आपके राज्य में मेरा सर्वस्व अपहरण हो गया।

नल ने कहा कि जिसने लिया है, उनसे तुम्हारी सम्पत्ति उसी प्रकार लौटवाई जायेगी, जैसे ली है। कलि ने कहा कि जुए में मेरा सर्वस्व अपहरण किया है। तब तो नल को पुष्कर नामक अपने चचेरे भाई से द्यूत खेलना पड़ा।

नल ने वन में दमयन्ती को छोड़ दिया था। वह उन्मत्त होकर अपनी प्रेयसी को ढूँढने लगा था। पहले दमयन्ती के पिता के घर उसे ढूँढते हुए पहुँचा, किन्तु वहाँ वह नहीं पहुँची थी। वह पुरूरवा की भाँति सिंह, रक्ताशोक कोकिल आदि से अपनी प्रेयसी का वृत्त पूछने लगा। वह दुःखी होकर कहता है—

हा पूर्णचन्द्रमुखि हा मदिरायताक्षि हा नैषध-प्रियतमे क्व गतासि हित्वा।
त्वामेव यद्यपि कृपामपहाय जह्यां त्वं नेदृशी कथमहो न ददासि वाचम् ॥५·१०५

तभी नेपथ्य से—'राजन् परित्रायस्व' की पुकार सुनाई पड़ी। यथा,

कर्कोटको नाम नरेन्द्रनागस्सोऽहं प्रलम्भात् किल नारदस्य।
यातोऽस्मि हन्ताचलतां दवान्तश्शापस्य चान्तस्तव सुप्रसन्नः॥ ५·१०६

दमयन्ती भटकती हुई पिता के घर कुण्डिनपुर पहुँच गई। वहाँ उसके पिता ने उसके पुनर्विवाह के लिए स्वयंवर रचा, जिसमें राजा ऋतुपर्ण अयोध्या से आये थे। उसे लेकर बाहुक नामक सारथि आया था। उसे केशिनी नामक दमयन्ती की सखी जब राजप्रासाद में ले जा रही थी तो वह बीच में ही एक नाग के मुँह में प्रवेश कर गया। उसका वृत्तान्त दमयन्ती को बताती हुई केशिनी ने कहा कि नाग के मुँह से निकलकर वह अतीव सुन्दर महाराज बन गया। नाग भी दिव्य पुरुष बन गया। नाग ने राजा नल से कहा कि मेरे रहते कलि आपकी हानि नहीं कर सकता—

सखे नैषध, मम विषाग्निना दह्यमानः कलिहतकः न किमपि त्वां बाधितुं प्रवृत्तः। न वा तेनैवापादित-विकृतरूपस्त्वं न केनापि अभिज्ञात इति।

फिर वे दोनों भोगवती नगरी की ओर चले गये। नागराज नल का कोई लाभ ही सोच रहे हैं। अन्त में दमयन्ती अपनी सखी के साथ आश्रम में गुरु के द्वारा दुरितशमन कराने के लिए चली गई।

भोगवती नगरी में कर्कोटक ने नल से कहा कि आप अब रथ से पुनः अपने देश को लौट जायें। वहाँ पहले पुष्कर को द्यूत में हराकर दमयन्ती से मिलें। वनों और दुर्गम स्थलों से होता हुआ रथ चला। मार्ग में आश्रम मिला। नल आश्रम के आचार्य के पास जाते हैं। वहाँ नल ने देखा कि एकवेणीधरा कोई पुरंध्री वहाँ विराजमान है। नल ने उसे पहचान लिया कि यह मेरी प्रेयसी है और दमयन्ती ने देखा कि ये ही आर्यपुत्र हैं। नल उसके चरण में गिरकर क्षमा-याचना करते हैं। दोनों के मिलन के अवसर पर वहाँ कर्कोटक का आगमन होता है। वहीं समाचार मिलता है कि नल के पुत्र इन्द्रसेन ने पुष्कर को दास बना लिया है।

दमन ने नल से इन्द्रसेन का परिचय कराया। सबका सबसे परिचय कराया जाता है। कर्कोटक ने नल का रूप परिवर्तित करके कैसे लाभ किया—यह बताया गया। नल ने पुष्कर को दासत्व से मुक्त कर दिया।

शिल्प

मंजुलनैषध नाटक में छायातत्त्व की प्रधानता है। आरम्भ में ही इसमें दमयन्ती की मूर्ति को राजा नल सजीव रमणी समझकर उससे बातें करना चाहता है और उसे अन्तःपुर में भेज देता है। उस मूर्ति के प्रति उसका प्रेम उत्पन्न होता है। द्वितीय अंक में इंद्रजाल द्वारा कुण्डिनपुर में वर्त्तमान दमयन्ती को विदर्भ में नल को दिखाया गया है। नल उसको वास्तविक दमयन्ती ही समझ बैठा था।

कुण्डिनपुर में दमयन्ती के विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन हुआ। नारद ने कलह देखने के उद्देश्य से इन्द्र, वरुणादि को प्रत्याशी बनाया। उनके लिए दमयन्ती को फुसलाने के हेतु नल ने दौत्य किया। यह छायातत्त्वानुसारी कार्य-व्यापार है। चतुर्थाङ्क में कलि का रोते हुए ब्राह्मण के रूप में नल के पास आना छाया-नाट्यात्मक है।

सात अंक के इस नाटक को कवि ने महानाटक कहा है। सात अंक के रूपकों को नाटक ही कहते हैं, महानाटक नहीं। इस रूपक के प्रत्येक अङ्क बहुत बड़े हैं उनमें पद्यों की संख्या प्रायशः शताधिक है।

प्रवेशक और विष्कम्भक में परवर्ती अंक की कथा का सारांश दिया गया है। वास्तव में अर्थोपक्षेपक ऐसी घटनाओं की सूचना के लिए ही प्रयुक्त होना चाहिए, जो रंगमंच पर दृश्य न हों। कवि ने इस नियम पर ध्यान नहीं दिया है।

अध्याय ६२

घीरनैषध

घीरनैषध नाटक के प्रणेता महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा बीसवी शती के संस्कृत के महामनीषियों में से थे।[1] इनका जन्म विहार-प्रदेश में गंगा-सरयू के सगम की सन्निधि में छपरा मे १८७४ ई० मे हुआ था। इनके पिता देवनारायण पाण्डेय और माता गोविन्द-देवी थी। उनकी आरम्भिक शिक्षा पिता के श्रीचरणों मे हुई और फिर वे उच्च अध्ययन करने के लिए काशी मे बालगंगाधर शास्त्री और शिवकुमार शास्त्री के पास आ गये। वे राजकीय संस्कृत-महाविद्यालय से साहित्याचार्य की परीक्षा गंगाधर का शिष्य रहकर प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुए। उन्होंने स्वाध्यायी छात्र रहकर कलकत्ते से १८९८ और १९०१ ई० मे प्रथम श्रेणी में क्रमशः बी० ए० आनर्स और एम० ए० संस्कृत की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। उन्होने पटना, कलकत्ता आदि की सर्वोच्च संस्थाओ मे काम करने के पश्चात् वाराणसी मे हिन्दू-विश्वविद्यालय मे संस्कृत-विभागाध्यक्ष पद को समलङ्कृत किया।

शर्मा का जीवन अनेक दृष्टियों से असाधारण था। वे मान-सम्मान, कृत्रिमता और जागतिक ऐश्वर्य-वैभव-विलास से कोसो दूर थे। तपोमय जीवन की गरिमा से वे पूर्णतया मण्डित थे। उनका सारा व्यक्तित्व विद्यामय और शिवतत्त्व से अनुप्राणित था। उन्होने असख्य विद्यार्थियों को अपना ज्ञान देकर यशोनिर्झरिणी को सदा-सदा के लिए शिष्यों के माध्यम से प्रवाहित किया और अपनी ज्ञाननिर्झरिणी मे अवगाहन कराने के लिए वे अगणित सरस्वती-सौरभान्वित-कल्लोलिनी के रूप मे ग्रन्थराशि वितरित कर गये।

शर्मा ने परमार्थ-दर्शन पुस्तक लिखकर सप्तमदर्शन की स्थापना की। उनका विश्व-कोश छदोबद्ध संस्कृत-ज्ञान का महार्णव है। योरपीय दर्शन, मुद्गरदूत, मारुतिशतक, भारतीयमितिवृत्तम् आदि उनकी अन्य प्रमुख रचनायें हैं। उन्होंने मित्रगोष्ठी-पत्रिका का सम्पादन किया था। संस्कृत, हिन्दी और अंगरेजी मे उन्होंने अगणित शोधनिबन्धो का प्रकाशन किया। भारतीय ज्ञानज्योति की ओर पाठको को ज्ञलमायमान करने वाले शर्मा का जीवन-चरित्र प्रेरणा प्रद है।

सात अङ्को का नाटक घीरनैषध कवि के विद्यार्थी-जीवन की रचना है। इसमें नलदमयन्ती की कथा को कवि ने एक नया रूप दिया है।

---

१. घीरनैषध का प्रकाशन विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से रामावतार-शर्मा ग्रन्थावली मे हो चुका है।

अध्याय ६३

अधर्मविपाक

अधर्म-विपाक के रचयिता अप्पाशास्त्री राशिवडेकर उन्नीसवीं और बीसवीं शती के सन्धिकाल की संस्कृत की सर्वोच्च प्रतिभाओं में अग्रगण्य हैं। इनकी सर्वाधिक ख्याति इनके द्वारा प्रवर्तित दो संस्कृत पत्रिकायें—संस्कृत-चन्द्रिका मासिक और सूनृत-वादिनी साप्ताहिक पत्रिकाओं के द्वारा है। इन दोनों पत्रिकाओं में इन्होंने अपनी सम्पादन-कला का और उससे बढ़कर अपने लेखों में प्रकटित परम वैदुष्य का परिचय दिया है। संस्कृत को सदैव अप्पा की निष्ठा वाले महामनीषी साधकों की आवश्यकता रहेगी, जिनके ज्वलन्त आदर्शों से प्रेरणा का स्फुलिंग निरन्तर प्रवाहित होता रहे।

अप्पाशास्त्री का जन्म कोल्हापुर जिले में राशिवडे ग्राम में भ्रुवाङ्क नदी के तट पर २ नवम्बर १८७३ ई० में और मृत्यु १९१३ ई० में हुई। इनके पिता सदाशिव भट्ट और माता पार्वती बाई थीं। वे अपने माता-पिता के अकेले पुत्र थे। ऐसी स्थिति में कुटुम्ब में इनका अतिशय दुलार था। इनकी आरम्भिक शिक्षा पिता के श्रीचरणों में हुई। इसके बाद उन्होंने ज्योतिष का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया। १८८६ ई० तक उन्होंने हरिशास्त्री पाटगांवकर से काव्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की, फिर कान्ताचार्य से १८९३ ई० तक कोल्हापुर में व्याकरण पढ़ा।

अप्पा ने हिन्दी, बंगला, मलयालम, तेलुगु, तमिल आदि प्रादेशिक भाषाओं का अच्छा ज्ञान स्वाध्याय से प्राप्त किया। उन्हें अंगरेजी का भी अच्छा अभ्यास था, जिसके बल पर उन्होंने अरेबियन नाइट का संस्कृत में अनुवाद किया।

अप्पा को आरम्भ से ही संस्कृत कविता करने की अदम्य रुचि थी। वे कवि-गोष्ठियों में सहर्ष जाते थे। १८९४ ई० में उनकी प्रथम कविता संस्कृत-चन्द्रिका में प्रकाशित हुई।

अप्पा का गार्हस्थ्य जीवन सुखी नहीं कहा जा सकता। उनकी तीन पत्नियाँ एक के बाद दूसरी मरती गईं और चौथी पत्नी को १५ वर्ष की अवस्था की ही विधवा छोड़ कर उन्होंने अपनी इहलोक-लीला समेट ली। उन्होंने अपने जीवन का उदात्ती-करण कर लिया था, जैसा उनके नीचे के पद्य से प्रतीत होता है—

> जननी श्रीगिरां देवी पिता देवः सदाशिवः।
> धनं च विपुला कीर्तिस्तनया किं च चन्द्रिका।
> बान्धवास्त्वादृशा स्निग्धा इत्येतन्मे कुटुम्बकम्॥

अप्पा की जीविका का प्रधान साधन ग्राम-पौरोहित्य था, जिससे उनकी आय कुछ विशेष नहीं थी। व्यय बहुत था—कभी-कभी दो पत्रिकाओं को चलाना। उन्होंने संस्कृत-ग्रन्थों की टीकायें और अनुवाद लिखकर कुछ धन अर्जित किया। जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने कुछ विद्यालयों में अध्यापन भी जीविका के लिए किया।

अप्पा निकटवर्ती और दूर-दूर की संस्कृत संस्थाओं में अपने सहयोग और व्याख्यान आदि के द्वारा प्राण स्पन्दित करते थे। महाराष्ट्र, मैसूर, केरल, मद्रास, बङ्गाल आदि में भ्रमण करके उन्होंने संस्कृत का प्रचार और प्रसार किया।

अप्पा का राजनीतिक जीवन विशुद्ध देश सेवकों का था। वे तिलक के गरम दल के थे। वे गोरक्षण के घोर पक्षपाती थे। काशी के धर्ममहामण्डल के वे सक्रिय सदस्य थे।

अप्पा के जीवन में संस्कृत-चन्द्रिका-पत्रिका के संस्थापक जयचन्द्र भट्टाचार्य का महत्त्वपूर्ण स्थान था। जयचन्द्र १९०५ ई० में कलकत्ते से वाराणसी आकर बस गये। उन्हीं के साहचर्य से इस पत्रिका का भार अप्पा ने बहुत दिनों तक वहन किया।

अप्पा का युग महामनीषियों का था। उन्हें तिलक, विवेकानन्द, अरविन्द, मदनमोहन मालवीय आदि महान् विचारकों और कर्मयोगियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। इन सबका प्रभाव अप्पा पर पड़ा था। वे सारे भारत के अपने युग के सभी ऊँचे साहित्यकारों और समाज-सुधारकों के सम्पर्क में अपनी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में आते रहे।

अप्पा को वंगीय संस्कृत-परिषद् से विद्यावाचस्पति की उपाधि मिली। भारत-धर्म-महामण्डल ने उन्हें विद्यालंकार और महोपदेशक की उपाधि दी। उत्तर प्रदेश में अयोध्या, कानपुर, मथुरा, प्रयाग और वाराणसी में अप्पा का संस्कृत-व्याख्यान और सार्वजनिक संस्कृत-सम्मान हुआ। सहस्रों उपहार और सम्मान से अप्पा को यह परितोष रहता था कि सुसंस्कृत समाज उनकी प्रवृत्ति के प्रति आस्था रखता है।

असंख्य कष्ट सहते हुए भी उन्होंने अपने प्राण के समान संस्कृत-चन्द्रिका को जीवन भर चलाया, यद्यपि इसके कारण उनकी आर्थिक स्थिति और बिगड़ती गई। पत्रिका का दो आने प्रति मास का चन्दा भी पाठकों से प्राप्त करने के लिए उन्हें असंख्यशः विज्ञप्ति निकालनी पड़ती थी। कौटुम्बिकों की मृत्यु की यातनायें पुनः पुनः उनके धैर्य की परीक्षा के लिए आती रहीं। फिर भी हिम्मत हारना अप्पा की राशि में नहीं था।

अप्पा उच्चकोटि के कवि थे। उनकी कविता अगणित विषयों को संस्पृष्ट करती थी, जैसा नीचे लिखे खण्ड काव्यों से प्रतीत होता है—तिलक-महाशय कारागृह-निवासः, मल्लिकाकुसुमम्, निर्धनविलापः, पंजरबद्धशुकः, वल्लभविलापः, आक्रन्दनम्, उपवन-तटाकम् इत्यादि। अप्पा ने गोकर्ण-सम्भव नामक महाकाव्य का प्रणयन किया था, जो अभी तक कहीं पूर्ण नहीं मिला है।[1]

अधर्म-विपाक प्रतीक-नाटक प्रबोध-चन्द्रोदय की शैली पर प्रणीत हुआ था।[2]

१. इसके दो उदाहरण संस्कृत चन्द्रिका में ६·१ में मिलते हैं।

२. अधर्म-विपाक के केवल दो अङ्क संस्कृत-चन्द्रिका ५.४, ७, ९, १० तथा ६.३, ९ में प्रकाशित हैं।

इसके दो अङ्क सम्भवतः लिखे गये, जो मिलते हैं। शेष अङ्क अप्राप्य हैं। सम्भावना है कि इसमें ५ अंक की योजना रही होगी। इसकी प्रस्तावना में पारिपार्श्वक ने कहा है—

यत्र किल सम्यक् चित्रिताधुनिकानां व्यापत्ति-ग्रथितश्चाधर्मानुशरणस्य परिपाको निरूपितं च धर्मस्यैव सुखानुबन्धन-हेतुत्वम्।

कथावस्तु

कलि और अधर्म दोनों का शत्रु धर्म है। उनका नौकर पंकपूर तापस-वेश धारण करके अपना काम आगे बढ़ाता है। पंकपूर ने सारे समाज को चरित्र-पथ से गिरा दिया है, तीर्थों में पावन-तत्त्व विगलित हो गया, प्रतिमायें मन्दिरों से हटा दी गईं। अधर्म ने वाराणसी पर धर्म की राजधानी को विध्वस्त करने के लिए आक्रमण कर दिया है। संग्रामोद्योग विशालोत्तर स्तर पर चल रहा है। अपनी पत्नी मिथ्यादृष्टि के साथ अधर्म विद्यामन्दिर में पहुँचता है, जहाँ नास्तिकता, अपवित्रता, वैदेशिक चाल-ढाल आदि का बोलबाला है। वहीं कलि अपनी पत्नी रीढा देवी के साथ आ पहुँचता है। मिथ्यादृष्टि कलि का और अधर्म रीढा का आलिंगन करके अपनी सुसंस्कृति का परिचय देते हैं। वे धर्म की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हैं।

वाराणसी में क्या हो रहा है? कलि अधर्म को बताता है कि सबसे भयङ्कर हैं धर्म-परिषदों की गोष्ठियाँ। अधर्म ने बताया कि मैंने धर्म की कन्याओं—श्रद्धा और भक्ति को बन्दी बनाने के लिए गूढ़ प्रयत्न कर दिया है। वे दोनों उपनिषदरण्य में परमेश्वर-प्रार्थना के लिए पहुँचेंगी और बन्दिनी बना ली जायेंगी। इस समय अविस्रम्भ भी धर्म की परामर्श-मण्डली में आ जाता है। उसने बताया कि धर्मपक्ष प्रबल है और वे तो मुझे भी पाठ पढ़ाना चाहते हैं। मोह उन्हें नहीं व्याप्त कर पा रहा है। अधर्म छक कर सुरापान करता है और कलि को पीने का आग्रह करता है। वह चषक में बची मदिरा को पीने के लिए कलि-प्रेयसी रीढा को, रीढा मिथ्यादृष्टि को और मिथ्यादृष्टि कलि को देती हैं। उससे प्रेम बढ़ाने के लिए कलि उसे गटक जाता है। सभी छक कर पीते हैं। मिथ्यादृष्टि कलि समझ कर दुर्मति का हाथ पकड़ लेती है। ये सभी प्रमत्त हैं। तभी इनका अनुचर सूचना देता है कि धर्म आक्रमण करने ही वाला है। सभी उसी अनुचर पर पिल पड़ते हैं।

योजनानुसार अधर्म ने श्रद्धा और भक्ति को उपनिषद्-अरण्य से अपहरण करके बन्दी बना लिया। अधर्म पक्ष पर विषूचिकादि व्याधियों का आक्रमण होने वाला है। महामोह नामक कारागार में श्रद्धा-भक्ति को रखा गया है और मिथ्या-दृष्टि और अविस्रम्भ उनकी देखभाल कर रही हैं। धर्म की पत्नी श्रुतिशीलता पुत्रियों की विपत्ति से व्याकुल है। शान्ति-कर्म के अनुष्ठान का काम चलने वाला है।

इस नाटक में अप्पाशास्त्री ने देश को धार्मिक विप्लव से बचने के लिए जागरण का सन्देश दिया है।

अध्याय ६४

पारिजात-हरण

बंगाल में मेदिनीपुर-वासी रमानाथ शिरोमणि ने उन्नीसवीं शती के प्रायः अन्त में पारिजात-हरण का प्रणयन किया।[1] पुस्तक का प्रकाशन १९०४ ई० में हुआ और लेखक की प्रकाशकीय भूमिका के अनुसार यह पाँच वर्ष तक मुद्रण-यन्त्रालय के गर्भ में यंत्रणा भोगती रही। इस कृति के विज्ञापन-पत्र के अनुसार छात्रों के अनुरोध से आचार्य रमानाथ ने इस रूपक की रचना की। वे अपनी सम्पत्ति से किसी-किसी प्रकार अपना और अपने आचार्य-कुल के छात्रों का भरण-पोषण करते थे। स्वयं पुस्तक का प्रकाशन करने के लिए बाध्य होकर उन्होंने कुछ धन-संग्रह करके कलकत्ते के वरदाकान्त विद्यारत्न के ऊपर इसका प्रकाशन का काम डाल दिया। उन्होंने इसका प्रकाशन अधूरा छोड़ा तो गिरिश विद्यारत्न के प्रेस में यह डाला गया।

संस्कृत-नाटकों के अभिनय के अवसर कम ही आते थे। तभी तो अन्त में रमानाथ का इसके विषय में लिखना है—

> यद्यप्यस्ति च पारिजातहरण नाम्ना नवं नाटकम्,
> कर्णेनैव निपीयते न तु दृशामुष्मिन् प्रदेशे क्वचित्।
> दृष्टं येन तदेव तस्य च नवं प्राचीनमन्यादृशम्,
> मत्वैव समर्मेति नाटकमिदं प्राचीननाम्ना मया॥

कथासार

कृष्ण और रुक्मिणी रैवतक पर विराजमान हैं। वीणावादन करते हुए वहाँ नारद पहुँचते हैं। नारद से सुगन्ध निकल रही थी। नारद ने बताया कि इन्द्र ने मुझे पारिजात पुष्प दिया है। उसी की सुगन्ध है। नारद ने उसे कृष्ण को दिया और कृष्ण ने उसे रुक्मिणी के केशपाश में खोंस दिया। रुक्मिणी ने नारद के प्रस्थान करते समय उनसे एक और पुष्प अपने लिए माँगा। वहाँ से नारद सत्यभामा के पास द्वारका आये और पारिजात-पुष्प की पूरी कथा रुक्मिणी के केशपाश में खोंसे जाने तक बताई। सत्यभामा को आक्रोश हुआ।

रात्रि में रुक्मिणी ने स्वप्न देखा कि इन्द्र के ऐरावत ने कृष्ण की सेना को ध्वस्त कर दिया है और कृष्ण को भी मारने के लिए चक्कर कर रहा है। कृष्ण ने उन्हें समझाया—

> नवे वयसि पूतनां तृणकं च वत्सासुरं
> ततश्च गिरिधारणान्मघवतोऽभिमानाचलम्।
> ततश्च शकटार्जुनौ कुवलयाभिधं दन्तिनं
> सकंसमहनं ततः कथय का कथा यौवने॥

---

१. इसकी प्रति कलकत्ते में संस्कृत-कालेज के पुस्तकालय में है।

और भी—

भवति किमहो सिंही भीता मतंगजशावकात् ।

अर्थात् क्या सिंही हाथी के बच्चे से डरती है ? कृष्ण का वाम नेत्र फड़का और तभी नारद आये और बोले कि मुझे वधूवध पातक लगा है । मैंने सत्यभामा को पारिजात की कथा बताई तो वह मूर्छित हो गई । अब तो—

भवानुपायं विदधातु शीघ्रं ममापि दोषः परिमार्जनीयः ।
ज्ञेयं हि सर्वं जगदात्मनस्ते मत्तो हि भूतं न मया कृतं तत् ॥

आप मेरा दोष परिमार्जन करें ।

कृष्ण को मानसिक उद्विग्नता हुई । उन्होंने रुक्मिणी से कहा कि पुष्प सत्यभामा को दे दें । नारद ने कहा कि मैं आपको दूसरा पुष्प लाकर दे दूँगा । आप इसे सत्यभामा को दे डालें । कृष्ण ने नारद से कहा कि इन्द्र से एक पुष्प माँग लायें । नारद ने कहा—आप इन्द्र से माँगें—यह उचित नहीं । युद्ध करके लें । कृष्ण ने कहा कि बिना लड़े मिले तो लड़ना व्यर्थ है । नारद चले गये इन्द्र के पास ।

तृतीय अङ्क में कृष्ण सत्यभामा से मिलते हैं । सत्यभामा की दुःस्थिति देखकर वे कहते हैं—

पश्याम्येषा नयनसुभगा मत्तमानाहिदष्टा ।
कष्टापन्ना वरणिशयना जीविता वा नवेति ॥

सत्यभामा की सखियों ने बताया कि नारद ने इन्हें पारिजात की बात बताई है । तब तो कृष्ण ने सत्यभामा से कहा कि नारद पुष्प लाने के लिए गये हैं ।

और भी—

विघटितोऽतिगुरुः प्रणयः प्रिये लघुतरस्य कृते कुसुमस्य किम् ।
आज्ञाप्यतां किमपि देवि मनोगतं ते कुर्वेऽधुना तव समक्षमतीव तूर्णम् ।

सत्यभामा ने कहा—

कथयत कथया मे रुक्मिणीकान्तमेतं दहति कथमसौ मां तीक्ष्णचाटूक्तिबाणैः ।
समभिलपितमन्यत् प्रस्तुतं चान्यदेव शठजनवचनं नो जातु विश्वासभूमिः ॥

नारद ने आकर बताया कि इन्द्र ने आप को गालियाँ दी हैं कि आप चोर हैं, परदाररत हैं, भाई मदिरापान करता है आदि, आदि । फिर,

तस्येयं न दुरात्मनः कथमहो स्वर्गीय-पुष्पस्पृहा ।

कृष्ण ने प्रतिज्ञा की—

तद् गर्वं सर्वमिह खर्वतरं करोमि ।

कृष्ण ने नारद से इन्द्र को सन्देश भेजा—

यदिच्छसि दिवि स्थितिं स्थितिमतां पुरो वा स्थितिं
यदिन्द्रपदसम्पदा कति दिनानि वा जीवितुम् ।

तदा मम समर्पय त्वरितमेत्य बद्धाञ्जलिः
समूलमपि सान्वयः शिरसि पारिजातं वहन् ॥

युद्ध के लिए सेना तैयार हो गई। बलराम और वैनतेय अपने सर्वसंहारी पराक्रम की चर्चा करते हैं। कृष्ण सत्यभामा से बताते हैं कि इन्द्र से जो युद्ध होना है, वह यज्ञस्वरूप है। यथा,

यज्ञस्थली सुरपुरी हविरिन्द्रदर्प इन्द्रः समिन्मम बलेषु सदस्यतास्ते ।
होतृत्वयज्ञफलदत्वपतित्वमास्ते मय्येव तत् त्वरयति प्रतिनिस्वनोऽयम् ॥

आप इसमे सहधर्मिणी हैं। कृष्ण के साथ सत्यभामा भी युद्ध भूमि मे जाती है।

पंचम अङ्क में नारद इन्द्र के पास पहुँच कर कृष्ण का सन्देश देते हैं। इन्द्र का कहना है कि कृष्ण मे शक्ति होती तो वे पाण्डवो की दासता क्यों स्वीकारते? मगधराज के भय से समुद्र के भीतर घर बनाकर क्यो रहते? इन्द्राणी भी इन्द्र की बातों का समर्थन करती हैं। तभी इन्द्र को उसके अश्वपाल ने सूचना दी कि नन्दनवन में पारिजात का उन्मूलन हो गया। इन्द्र ने अपना व्रत सुनाया—

नार्जुनो नापिशकटं नरको न च पूतना ।
न कंसो न च चाणूरो वासवोऽयं तवान्तकः ॥

इन्द्राणी को भी बुद्धि आ गई। वह इन्द्र को समझाने लगी कि आप पुष्प देकर सन्धि कर लें। इन्द्र के न मानने पर वह उसके साथ युद्ध देखने के लिए चली जाती है।

छठें अङ्क मे पार्वती और शिव की बातचीत है कि शिव के कारण कृष्ण को अवतार लेना पड़ा। दैत्य शिव की सस्ती पूजा करके बलशाली बनने का वर प्राप्त कर के आततायी असुर बन गये हैं। उनका शमन करने के लिए विष्णु को अवतार लेना पड़ता है। तभी नारद ने उन्हें बताया कि इन्द्र और कृष्ण लड रहे हैं। कृष्ण और इन्द्र के पुत्र युद्ध में गुँथे हैं।

पार्वती और महादेव युद्ध का निवारण करना उचित समझ कर युद्धभूमि की ओर चल देते हैं।

सप्तम अङ्क मे शिव ने इन्द्र से कहा कि कृष्ण आपके लघु भ्राता हैं। ऐसी बातों से प्रसन्न होकर इन्द्र कृष्ण का आलिंगन करता है और सिर चूमता है। इन्द्र की आज्ञानुसार जयन्तादि कन्धे पर पारिजात लाते हैं। पार्वती ने अन्तिम भाग मे सबकी प्रसन्नता के लिए वैर की दावाग्नि को शान्त किया। अन्त मे पार्वती के मुख से कहलाया गया है—

'काले वर्षतु वारिदः क्षितिरियं शस्येन पूर्णायताम् ।'

शिल्पालोचन

मनोरञ्जन की अतिशयता के लिए नाटक के अभिनय मे नृत्य, संगीत आदि प्रस्तुत हैं। प्रस्तावना के प्रायः अन्तिम भाग में नटी ताल-लय के अनुरूप नाचती है।

नाटक के अन्त में दो किन्नरियों की भूमिका में पात्र किरी राग में यति-ताल पूर्वक अधोलिखित संगीत प्रस्तुत करते हैं—

रविरभिसरति चरमगिरिशिखरे
रजनीसंकेतितभुवि रुचिरे ।
सखि हे, परिणतिमेति दिनं विषमम् । ध्रुवम्

दो गायिकायें एक-एक पद क्रमशः गाती हैं । यथा,

प्रथमा—मृदु मृदु विकसति कुसुमं सकलम्
द्वितीया—कूजत्यलिकुलमतिमधुरकलम् ।

चतुर्थ अङ्क में बलराम युद्ध के अवसर को देख कर नाचते हैं । षष्ठ अंक में 'प्रवृत्ता देवी शिखरिसुता' इत्यादि चर्चरी-गान नेपथ्य से होता है ।

बाण की शैली पर कवि ने आख्यानोचित वर्णनों को अतिशय लम्बा किया है । यह नाट्योचित नहीं कहा जा सकता । चतुर्थ अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में द्वारवती का वर्णन इसका उदाहरण है । इतना बड़ा वर्णन विष्कम्भक में देना कवि की कोरी प्रौढता है ।

कवि परिहास-प्रेमी है । कृष्ण के व्यक्तित्व का वह ऐसा चित्रण करता है कि प्रेक्षक को हँसी आकर रहे । एक प्रसंग है कृष्ण के विषय में जिज्ञासा कि कैसे उनमें इतनी दक्षता निष्पन्न हुई ? इन्द्र की विचारणा है—

किं नन्दाद् घृतगव्यभारबहुलात् कंसस्य कारालये
बद्धादानकदुन्दुभेः किमथवा भ्रातुर्हलं बिभ्रतः ।
श्रीदामप्रमुखान्नितान्तसुहृदो गोचारणां कुर्वतः
किं वा गोपवधूजनाद् यदितरो नो दृश्यते सद्गुरुः ॥

१. सप्तम अंक में इन्द्र के पारिजात लाने का आदेश सुन कर नारद वीणा बजाते हुए नाचते हैं ।

अध्याय ६५

उन्नीसवीं शती के अन्य नाटक

पंचायुध-प्रपंच-भाण

पंचायुध-प्रपञ्च-भाण के प्रणेता त्रिविक्रम के पिता विद्घनानन्द थे।[1] उन्होंने अपने बड़े भाई त्र्यम्बक से उच्च शिक्षा प्राप्त की। सूत्रधार ने त्र्यम्बक के पाण्डित्य की वर्णना की है।

इस नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार ने इसके लेखक की चर्चा करते हुए कहा है—

प्रतीतशारदोत्सवे विशालायां भगवत्याः कात्यायन्याश्चरणारविन्द-वन्दन-हेवाकसममागतमिलितेन मकरन्दकन्दलनाम्ना मे भावेन कोमलपद-विन्यास प्रचुररसालम्बनं स्वलंकारं तरुणीजनमिव भाणं रसिकमनोज्ञं त्रिविक्रमश्चक्रे। मदुपज्ञमयमभिनवो भाणज्ञावतां समाजेषु भवताभिनेतव्य इति सादरमुक्त्वा मे समर्पितः।

इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार है। इसमें कुशीलव प्रबलदाम सूत्रधार का मौसेरा भाई था—यह सूचना प्रस्तावना में है। इससे भी इसका सूत्रधार-प्रणीत होना निर्विवाद है।

पंचायुध प्रपञ्च-भाण में विट प्रबलदाम के प्रयास से कन्दर्पविलास और मन्दार-शेखर का क्रमशः कलहंस-लीला और कमन-ज्योत्स्ना से साहचर्य भगवती कात्यायनी की सहायता से सम्भव होता है।

अदिति-कुण्डलाहरण

अदिति-कुण्डलाहरण-नाटक के रचयिता, गोदावरी-तटवासी रामकृष्ण कादम्ब आधुनिक युग के उन विरल मनीषियों में से हैं, जिनकी बहुविध रचनाओं ने संस्कृत-साहित्य को प्रकाम समलंकृत किया है।[2] उनकी रचनाओं में दी हुई तिथियों के आधार पर उन्हें १९ वीं शती के आरम्भ से १८५५ ई० तक रखना समीचीन होगा उन्हें १८०३ ई० से १९४० ई० के अन्तराल में विनिवेशित किया गया है।

रामकृष्ण कादम्ब के दो नाटक—अदिति-कुण्डला-हरण और कुशलव-चरित हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने नीचे लिखी रचनायें की—

१. नृसिंह विजय काव्य—इसमें यथानाम नृसिंहावतार की चर्चा है।

२. चित्रशतक, रामावयवमंजरी—दोनों स्तोत्र काव्य हैं। रामावयव-मंजरी के ११८ पद्यों में राम के अङ्गों के अप्रतिम लावण्य की चर्चा है। चित्रशतक

१. इसका प्रकाशन १८६४ ई० में बम्बई से हुआ था।

२. इस नाटक की हस्तलिखित-प्रति सिन्धिया ओरियण्टल इंस्टीट्यूट उज्जैन में है।

में त्रिविध देवताओं के अनुत्तम चरित की वर्णना है। इसके प्रत्येक पद्य में चित्र शब्द प्रयुक्त है। इनके पृथ्वीवृत्त के १०१ पद्यों में कवि ने तुलसीदास की भाँति भगवान् को सन्देश निवेदन किया है। यह विनय-पत्रिका के रूप में है।

३. नैषध-चरित-टीका, चम्पू-भारत-टीका और श्रीमद्भागवततात्पर्यमञ्जरी विवरणात्मक और रहस्य-वर्णनात्मक रचनायें हैं।

४. दत्तकोल्लास कादम्ब की कानून-परक रचना है। इसमें दत्तक-पुत्र लेने के धर्म-शास्त्रीय-विधानों का विमर्श समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सम्पूरित किया गया है। ऐसा लगता हैं कि अंगरेजों ने अनेक राजाओं के निस्सन्तान होने पर उन्हें उत्तराधिकारी बनने के लिए दत्तक चुनने में अनेक बाधायें डालकर उनके राज्य को हड़प लिया था। पहले-पीछे सतारा का राज्य अंगरेजी शासन में आ गया था। झाँसी का राज्य १८५३ ई० में छीन लिया गया था। नागपुर और तंजौर के राज्य भी ले लिये गये थे। कादम्ब ने सिद्ध किया कि राजाओं का दत्तक पुत्र बनाना धार्मिक विधानों के अनुकूल है।

अदिति-कुण्डलाहरण का अभिनय दाशरथि-रथोत्सव के अवसर पर हुआ था।

अदिति देवताओं की माता है। इसके कुण्डल का अपहरण नरकासुर ने किया। इन्द्र ने अपनी माता के इस अपमान का बदला लेने के लिए कृष्ण को सन्देश भेजा—

भूपुत्रेण पुरा समस्त-दिविषन्मातुर्हृते कुण्डले
नैपुण्येन हिरण्यगर्भरचिते वन्द्ये मनोहारिणी।
हत्वा तं प्रसभं सप्तैनिकगणं तत्कुण्डलाभ्यां त्वया।
राध्या नो जननी ततः सुरपुरी सा पारिजाता भवेत् ॥१·४४

श्रीकृष्ण ने इन्द्र का सन्देश पाकर नरकासुर की राजधानी पर आक्रमण किया और कुण्डल प्राप्त करके इन्द्र की माता को दिया। उनकी सेना सजधज कर साथ गई। सत्यभामा भी युद्ध-भूमि में अवतरित हुई थी। स्त्रियों के साथ देने से यौद्धिक बल द्विगुणित हुआ था। भारत के विविध प्रदेश के राजाओं को भी संघ बनाकर राष्ट्रिय रक्षा के पावन संग्राम में जुट जाने का सन्देश नीचे लिखे पद्य में मिलता है—

शस्त्रोज्ज्वलीकरण-वाजिशफानुबन्धं गुल्माप्रमादपरिरक्षणकार्यजातम्।
किं चाहवीय-जनवेतन-सर्वदानमाज्ञापनीयमधुना परिखाजलाप्तिः ॥

इस नाटक का विशेष महत्त्व है राजनीति-शिक्षण में। संस्कृत में गिने-चुने नाटकों में इस प्रकार की प्रवृत्ति विकसित की गई है। भारतीय राजनीति का एक दुर्बल पक्ष रहा है—राजाओं का परस्पर शात्रव और किसी शत्रु-राजा के विरुद्ध होकर किसी विदेशी राजा की सहायता करना। इस नाटक की शिक्षा है कि बड़े-छोटे का विचार छोड़ कर परस्पर सहयोग करते हुए किसी शत्रु का सामना करना चाहिए। कवि ने अन्धविश्वास की तुच्छता, सत्यपरायणता की महिमा, वर्णाश्रम-धर्म का परिपालन आदि लोक-कल्याण तथा आत्मशान्ति के साधनों का अभिधा और व्यंजना से प्रतिपादन किया है।

अदिति-कुण्डलाहरण में सात अङ्क हैं।

रामकृष्ण कादम्ब की दूसरी नाट्य रचना कुशलवचरित है। इसका प्रथम अभिनय गोदावरी नदी के तट पर सतीनाथ-तिलमाण्डेश्वर के शिवरात्रि-महोत्सव के अवसर पर समागत विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था। कुशलव-चरित अभी तक अपूर्ण मिला है।

दोनों नाटकों के शैल्पिक विधान में बहुविध साम्य है।[1]

विजयविक्रम-व्यायोग

विजयविक्रम की रचना कविराज सूर्य ने उन्नीसवीं शती में की थी।[2] इनका जन्म कुण्डिन् गोत्र में हुआ था। सूत्रधार ने इनको पवित्र-चरित्र बताया है। नाटक का अभिनय परिषद् के आदेश से हुआ था।

कथावस्तु

विजयविक्रम की कथा महाभारतीय 'जयद्रथवध' प्रकरण पर आधारित है। कृष्ण युद्ध में अर्जुन के सारथि हैं। अर्जुन का रथ युद्ध-भूमि में शत्रुओं के सामने खड़ा है। कृष्ण के साथ उनकी युद्ध-विषयक बातचीत होती है। अर्जुन अभिमन्यु की मृत्यु का स्मरण करके मूर्छित हो जाता है। कृष्ण ने उन्हें आश्वस्त करके गीतोपदेश से सचेष्ट किया। उसने कहा—मेरे जीते अभिमन्यु के हन्ता कैसे जीवित रहेंगे? अर्जुन को युद्ध में कहीं अश्वत्थामा, कहीं भूरिश्रवा, कर्ण आदि मिलते हैं। बहुविध युद्ध में अर्जुन जयद्रथ पर विजय प्राप्त करता है।

रुक्मिणी-स्वयंवर

रुक्मिणी-स्वयंवर के प्रणेता रामकिशोर का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं शती के मध्यकाल में हुआ।[3] रामकिशोर के पिता व्रजकिशोर थे।

नाटक के सात अङ्कों में रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की सांगोपाङ्ग कथा है। इसमें नायक ने वृक्ष पर चढ़कर नायिका का दर्शन किया। रम्भामंजरी सट्टक में भी नायिका को खिड़की के पास के अशोक वृक्ष की डाल पर चढ़कर चेटी ने उतारा था। इस १३ वीं शती के नाट्य-संविधान का उन्नीसवीं शती में पुनः प्रयोग दिखाई देता है।

---

१. कुशलव-चरित की हस्तलिखित प्रति सिन्धिया लाइब्रेरी, उज्जैन में मिलती है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस, लन्दन के ग्रन्थागार में तथा मद्रास की ओरियण्टल लाइब्रेरी में मिलती है।

३. इस नाटक की हस्तलिखित प्रति कवि के प्रपौत्र कल्याणवल्लभ शर्मा को अपने नाना गोपीनाथ से मिली। श्री कल्याणवल्लभ जयपुर के महाराज संस्कृत कालेज में अध्यापक थे।

छठें अङ्क में हंसपदिका की एकोक्ति द्वारा कृष्णावगमन की सूचना दी गई है। नाटक में वन्दियों के द्वारा गाये हुए कतिपय गीत भी हैं।

प्रभावती-हरण

प्रभावती-हरण की रचना मिथिला के विख्यात कवि भानुनाथ दैवज्ञ ने लगभग १८५५ ई० में की थी।[1] मिथिलाधिप महेश्वर सिंह के द्वारा भानुनाथ सम्मानित थे। महेश्वर सिंह १६ वीं शती के मध्यकाल (१८५०-६० ई०) में शासन करते थे।

प्रभावती-हरण किरतनिया कोटि का रूपक है। मिथिला के किरतनिया नाटकों में विवाह की कथा लोकप्रिय थी। कृष्ण वंश के नायक विशेष प्रिय थे। प्रभावती-हरण में वज्रनाभ नामक दैत्य की कन्या प्रभावती के साथ कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के विवाह की कथा है।

प्रभावती-हरण नाटक की रचना जगत्प्रकाशमल्ल ने भी १६५६ ई० में की। इसका प्रभाव दैवज्ञ की रचना पर पड़ा हैं। इसमें संस्कृत के अंश विरल ही हैं। दैवज्ञ ने संवाद संस्कृत और प्राकृत में रखा है और पद्य या गीतों को मैथिली में।

राजलक्ष्मीपरिणय

राजलक्ष्मी परिणय के प्रणेता वेङ्कटाद्रि ने इस प्रतीक-नाटक में अपने पिता शोभनाद्रि अप्पाराव के राज्याभिषेक की कथावस्तु ग्रहण की है। इनका राज्य गोदावरी के परिसर में कृष्णा जिले में था। शोभनाद्रि का शासनकाल १८६० से १८८० ई० तक था। उनके आश्रय में अनेक कवियों ने उच्चकोटि के संस्कृतसाहित्य का सर्जन किया। इसमें शोभनाद्रि नामक कुलदेवता की स्तुति वैष्णव-सम्प्रदायानुसार है।

सत्संगविजय

सत्संगविजय के प्रणेता वैद्यनाथ का जन्म वम्वई के निकट सुगन्धपुर में हुआ था।[2] इनके गुरु रघुनाथ और आश्रयदाता श्रीजीवन थे। श्रीजीवन जी महाराज वम्वई के वड़ामन्दिर में रहते थे। वे स्वयं उच्चकोटि के विद्वान् थे। जीवन की मृत्यु १८७६ ई० में हुई।

सत्संगविजय प्रतीक नाटक है।[3] इसका प्रथम अभिनय जीवन जी की आज्ञा से हुआ था। इसमें पात्र हैं—सत्संग, कीर्ति, व्यभिचार, दुःसंग, कुमति, पिशुन, समय,

१. प्रभावती-हरण का प्रकाशन विहार से हुआ है। इसकी हस्तलिखित प्रति गंगानाथ झा विद्यापीठ, प्रयाग में है।

२. योऽसौ सुगन्धपुरवैद्यकुलप्रसूतो राजादि रामतनयो रघुनाथशिष्यः।
सत्तर्कशास्त्रपरिशीलनतत्परोऽस्ति श्रीजीवनाश्रितजनः खलु मोहमय्याम्॥

३. इसका प्रकाशन हो चुका है। इसकी पोथी-रूप में प्रकाशित प्रति वम्वई में विद्याभवन के पुस्तकालय में है।

प्रकाश, शिष्य, सनातन सिद्धांत, मिथ्याभिशाप, विद्या, प्रतिष्ठा पौराणिक, प्रामाणिक, सत्य, अविचार, आर्जव, तत्त्वविचार आदि।

नाटक के पाँच अङ्कों में विद्या विविध देशों में भ्रमण करती हुई पाखण्डियों की पोल खोलती है। यथा, तृतीय अङ्क में विद्या ने अनेक पद्यों में गुर्जर में विचरण करती हुई नारायणीय सम्प्रदाय की निन्दा की है। उससे प्रतिष्ठा कहती है—गुर्जर में नारायण सम्प्रदाय का प्रभुत्व है। यहाँ से हम महाराष्ट्र चलें। अन्यत्र पौराणिक ने विद्या को आशीर्वाद दिया है—

अनन्त-पतिका भव।

वह अपना परिचय देता है—

सारस्वतं श्रुतिपथं न कदापि नीतं, काव्यं न कोमलपदावलिदृक् समक्षम्।
रण्डासु मूर्खबहुलेषु जनेषु दम्भात् पौराणिकत्वममलं प्रकटीकरोमि॥

उसकी गृहिणी कोई विधवा थी।

नाटक का नायक सत्संग और नायिका कीर्ति हैं। प्रतिनायक दुःसंग है। पिशुन की सहायता से वह सत्संग को पराभूत करना चाहता है। सत्संग की विजय होती है।

इस नाटक की प्रकाशित प्रति में अङ्कारम्भ का संकेत नहीं किया गया है। अङ्क का जहाँ अन्त होता है, केवल वहीं अङ्क की समाप्ति लिखी गई है। प्रवेशक का अन्त होने पर प्रवेशक लिखा गया है। इस प्रकार अर्थोपक्षेपक को अङ्क का भाग नहीं दिखाया गया है, जैसी भूल छपे नाटकों की परवर्ती प्रतियों में की गई है।

जानकी-परिणय

जानकीपरिणय के लेखक मधुसूदन के पिता वृहत् दरभंगा के समीपवर्ती थे।[1] १८६१ ई० में कवि ने इस रचना को पूर्ण किया। इसमें केवल चार अङ्क हैं।

रामजन्म-भाण

रामजन्म-भाण के रचयिता श्रीताराचरण शर्मा हैं।[2] इसमें प्रभुनारायण सिंह के पुत्र का जन्मोत्सव वर्ण्य विषय है। ताराचरण काशीराज के सभासद् थे। विट जरती, कमलाक्षी आदि वेश्याओं से संलाप करता चलता है। इस भाण में कतिपय गीतों का समावेश किया गया है।

शृङ्गार-सुधार्णव-भाण

शृङ्गार-सुधार्णव के रचयिता रामचन्द्र कोराड १६वीं शती के उत्तरार्ध के आन्ध्र प्रदेशी पण्डित-प्रकाण्ड थे।[3] इनका जन्म १८१६ ई० में और मृत्यु १६ ० ई०

१. इस नाटक का प्रकाशन १८६४ में दरभंगा से हुआ।
२. इस भाण की रचना १८७५ ई० में हुई। इसकी प्रकाशित प्रति रामनगर-महाराज के पुस्तकालय में है।
३. शृंगार-सुधार्णव की हस्तलिखित प्रति Govt. Oriental, Mss. Library, मद्रास में मिलती है।

में हुई। इनके पिता लक्ष्मण शास्त्री, माता सुब्बाम्बा और प्रसिद्ध गुरु कृष्णमूर्ति शास्त्री थे। रामचन्द्र मछलीपट्टन के नोबुल कालेज में पण्डित थे।

रामचन्द्र ने चार रूपक—शृङ्गार-सुवार्णव और कामानन्द भाण, रामचन्द्र-विजय-व्यायोग और त्रिपुर-विजय-डिम लिखे। इनके अतिरिक्त इनकी अन्य संस्कृत-रचनायें—देवीविजय-चम्पू, कुमारोदय-चम्पू, घनवृत्त, उपमावली, मृत्युञ्जय-विजय-काव्य, शृङ्गार-मंजरी, मंजरी-सौरभ, कृष्णोदय-काव्य, कन्दर्प-दर्प, वैराग्य-वर्धनी, धीसुधा, पुमर्थ-शेवधिकाव्य, अमृतनन्दीय, रामचन्द्रीय, स्वोदयकाव्य[1] तथा बालचन्द्रोदय।

राम के वसन्तोत्सव को देखने के लिए आये हुए दर्शकों के प्रीत्यर्थ भद्राचल में इसका प्रथम अभिनय हुआ था। इस भाण में भुजंगशेखर नामक विट की वारवेश में चर्या का आँखों-देखा वर्णन प्रस्तुत है।

शृंगारदीपक भाण

शृङ्गारदीपक भाण के रचयिता विझमूरि राघवाचार्य का प्रादुर्भाव १६ वीं शती के अन्तिम चरण में हुआ। वे बेजवाड़ा के हाई स्कूल में बहुत दिनों तक अध्यापक थे। उनकी अन्य रचनायें रामानुज-श्लोकत्रयी, नरसिंहस्तोत्र, मानस-सन्देश, हनुमत्सन्देश, रघुवीर-गद्य-व्याख्या आदि हैं।

शृंगार-दीपक में रसिकशेखर नामक विट का शृंगार-चन्द्रिका नामक नायिका से समागम अनंगशेखर के प्रयासों से होता है। विट कांजीवरम्, श्रीरंगम् आदि का समसामयिक वर्णन करता है।

इस भाण का अभिनय श्रीदेवराज के यात्रामहोत्सव के अवसर पर काञ्चीपुरी में आये हुए रसिकों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कौमुदी-सुधाकर-प्रकरण

कौमुदी-सुधाकर के प्रणेता चन्द्रकान्त का सोचना है कि अन्तर्यामी की प्रेरणा से ग्रन्थ-निर्माण की इच्छा हुई है।[3] उनको अपने ग्रन्थों के छपाने वाले धनी-मानी लोग मिलते गये। फिर भी कई ग्रन्थ लेखकों ने अपने पैसे से छपाये। धनाभाव से कई ग्रन्थ प्रेस का मुँह न देख सके। यह देखकर उसने अपने सम्पूर्ण ग्रन्थों को पूर्ण करना अथवा नये ग्रन्थ लिखना बन्द कर दिया। पर अकस्मात् सेरपुर के स्वनाम धन्य हरचन्द्र चतुर्धुरीण उनके सभी ग्रन्थों के प्रकाशन का व्यय वहन करने के लिए

१. स्वोदय काव्य आत्मकथा है।

२. शृंगार दीपक भाण की हस्तलिखित प्रति मद्रास के शासकीय हस्तलिखित भाण्डागार में है।

३. इसका प्रकाशन कलकत्ते से १८८८ ई० में हुआ है। इसकी प्रति संस्कृत विश्व-विद्यालय, वाराणसी में प्राप्तव्य है।

समुद्यत हो गये। इन्हीं हरचन्द्र ने अपने पुत्र के विवाह के अवसर पर कौमुदी-सुधाकर को छपाया। यह थी संस्कृत ग्रन्थों की चिन्ताजनक प्रकाशन-व्यवस्था।

चन्द्रकान्त सेरपुर नगर के रहने वाले थे।[1] उन्होंने दर्शन, धर्म और काव्य की सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करके कलकत्ते में राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन किया। कलकत्ते में रहते हुए १८८८ ई० में उन्होंने यह नाटक पूरा किया था। कवि के पिता राधाकान्त थे। चन्द्रकान्त को महामहोपाध्याय और तर्कालंकार की उपाधि प्राप्त थी।

इस प्रकरण का अभिनय हरचन्द्र के पुत्र हेमचन्द्र और चारुचन्द्र के विवाह के अवसर पर हुआ था। सूत्रधार ने नये नाटक के अभिनय में प्रेक्षकों की अनास्था का निराकरण किया है।

कौमुदी-सुधाकर में नायक सुधाकर का विवाह नायिका कौमुदी से कतिपय विघ्नों के पश्चात् हो जाता है। कात्यायनी-यात्रा-महोत्सव के अवसर नायक और नायिका का प्रथम दर्शन में प्रगाढ़ प्रेम हो जाता है। इस बीच खण्डमुण्डन नामक कापालिक उसका अपहरण कर लेता है। नायक ढूँढते हुए उसे ऊँचे पर्वत पर लतापाश से बँधा हुआ पाता है। उसे नायिका मिली तो, किन्तु पुनरपि वही कापालिक राजा वसुमित्र के लिए उसका अपहरण करता है। भगवती उसकी रक्षा करती है। अन्त में दोनों का विवाह होता है।

इस प्रकरण पर मालतीमाधव का बहुत प्रभाव है।

वल्लीबाहुलेय

वल्लीबाहुलेय[2] के प्रणेता सुब्रह्मण्य सूरि का जन्म पुदुकोटा के समीप कुडुमकुडी[3] नामक गाँव में १८५० ई० में हुआ। उनके पूर्वज अप्पय, रामभद्र और चोक्कनाथ दीक्षित आदि थे। इनके पिता चोक्कनाथ अध्वरी थे। सुब्रह्मण्य के गुरु श्रीनिवासाचार्य थे। पुदुकोटा के दीवान शेषय्यशास्त्री के द्वारा वे विशेष सम्मानित थे।

सुब्रह्मण्य की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्हें पूरा सामवेद कण्ठस्थ था। संगीत निर्झरिणी का प्रवाह वे सामगायन में करते थे। देवी-देवताओं के भावपूर्ण चित्रों की रचना करने में वे निपुण थे। इन चित्रों से उनकी अध्ययन-शाला तथा पूजागृह सज्जित रहते थे। हरिकथा गायनपूर्वक सुनाने का उन्हें चाव था। १८९४ ई० से १९१० ई० तक वे पुदुकोटा के राजा कालेज में अध्यापक थे।

१. सेरपुर कैंकय प्रदेश में है। कैंकय प्रदेश कामरूप और ब्रह्मपुत्र के बीच का भूभाग है।

२. इसका प्रकाशन १९२९ ई० में मद्रास से हो चुका है। इसकी प्रति अडयार लाइब्रेरी, मद्रास में है।

३. इस गाँव का नाम प्रस्तावना में विचित्ररायरघुनाथ-समुद्र मिलता है।

सुब्रह्मण्य-द्वारा विरचित १८ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं रामायणार्या, चतुष्पादी चतुश्शती, शान्तसुचरित रामावतार, विश्वामित्रयाग, सीताकल्याण, लक्ष्मीकल्याण, हल्लीश, अभिषेचनक-रामायण, विभूति-माहात्म्य आदि। वल्लीवाहुलेय नाटक के अतिरिक्त उन्होंने मन्मथमंथनभाण की रचना की।[1]

वल्लीवाहुलेय के सात अङ्कों में वल्ली और वाहुलेय के परिणय की कथा है। विष्णु और लक्ष्मी के छद्मवेश में उनसे वल्ली नामक कन्या हुई। शिव के पुत्र वाहुलेय थे। नारद के कहने पर शिव ने उनके विवाह की अनुमति दे दी। वल्ली का पोषण निषादराज ने किया था। वाहुलेय छिप कर पिता का अभिमत अपने विवाह के सम्बन्ध में सुन चुका था। वह अपने मित्र हिडिम्ब के साथ मलयगिरि पर पहुँचा, जहाँ वल्ली रहती थी। वहाँ उसने पहले किरात और फिर वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके नायिका से भेंट की और अपने प्रेम से उसे अभिभूत करके पहले से ही अनुरागिणी वल्ली को अपना बना लिया। इसके पश्चात् वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर अपने प्रेमाचार को दृढ करता है। नायिका इस प्रेमप्रवाह में डूबती-इतराती हुई रागरोग से पीडित हो जाती है। निषादराज उसका बहुविध उपचार वैद्य, मान्त्रिक और यान्त्रिकों से करवा कर हार जाता है। ज्योतिषी गुरुप्रसादन के द्वारा उसके आरोग्य की साधना बताते हैं।

वाहुलेय ने हिडिम्ब नामक अपने मित्र के सुझाव के अनुसार देवसेना की सखी कामरूपिणी से नायिका का नायक से अनुराग-विषयक समाचार राजप्रसाद में पहुँचवाया। वह ईक्षणिका बनकर निषादराज से मिली और उसे उनके प्रेम का संवाद दिया। वाहुलेय निषादराज के कुलदेवता हैं। ईक्षणिका ने कहा कि उनकी पूजा करो और कन्या उन्हें दे डालो।

इस बीच वाहुलेय वल्ली का अपहरण कर लेता है। निषादराज सेना-सहित उसे ढूँढने जाता है। नायक और नायिका से मिल कर वह उन दोनों के विवाह का आयोजन कर देता है। इस नाटक में छायातत्त्व के संविधान विशेष रूप से समुदित हैं।

कोच्चुण्णि-भूपालक के भाण

कोचुण्णिभूपालक ने दो भाणों की रचना की है—अनंगजीवनभाण तथा विटराजविजय।[2] भूपालक का जन्म १८५८ ई० में कोचीन राज्य के कोटिलिंगपुर के राजवंश में हुआ था। उनका मूलनाम रामवर्मा था। उनको तम्पूरन भी कहते हैं। वे राजा होने पर भूपालक कहलाये।

---

१. इस भाण का प्रकाशन पुद्दुकोटा से प्रकाशित संस्कृत मासिक पत्रिका में हुआ था।

२. अनंगजीवनभाण का प्रकाशन १९६० ई० में केरल विश्वविद्यालय की संस्कृत-सीरीज में हो चुका है। इन दोनों का प्रकाशन त्रिचूर के मंगलोदयम् से हुआ है।

रामवर्मा की अन्य रचनायें हैं—विद्वद्युवराजचरित, श्रीरामवर्मकाव्य, विप्रसन्देश तथा बाणयुद्ध। उन्होंने देवदेवेश्वर-शतक में देवपूरक स्तुतियाँ लिखी हैं। उन्होंने गोदावर्मा के अधूरे रामचरित को पूरा किया। गोदावर्मा कवि के चाचा थे। उन्होंने रामवर्मा को काव्यशास्त्र की शिक्षा दी थी। उनके दूसरे गुरु कृष्णशास्त्री उच्च-कोटिक विद्वान् थे। रामवर्मा को संगीत और इन्द्रजाल में विशेष अभिरुचि थी। कोचीन के राजा ने रामवर्मा को कविसार्वभौम की उपाधि प्रदान की थी।

अनंगजीवन का अभिनय मुकुन्दमहोत्सव के अवसर पर समागत विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था। इसकी प्रस्तावना में नटी ने विटों के असत्यवादी होने का उल्लेख किया है। रंगपीठ पर सूत्रधार और नटी आलिंगन करते हैं।[1]

विट शृङ्गारसार ने राजा मद्रसेन का आनन्दवल्ली नामक गणिका से समागम कराया है। इसमें बूढ़ी वेश्या और युवक रसिया का चित्रण हास्यपूर्ण है। विटराज-विजय में भी इन्हीं दोनों का समागम वर्णित है। इस भाण में अनंगवल्ली का स्वयंवर होता है, जिसमें नेपाल, भूटान, बिहार, जनकपद, कश्मीर, श्रीनगर, पटियाला, उदयपुर, भरतपुर, भोपाल, जयपुर, धवलपुर, कोल्हापुर, उज्जयिनी, सिन्ध आदि के राजा सम्मिलित होते हैं।

रसिकजनमनोल्लास-भाण

रसिकजनमनोल्लास-भाण के रचयिता वेङ्कट के पिता वेदान्ताचार्य कौण्डिन्य-गोत्री थे।[2] प्रस्तावना के अनुसार लेखक ने भाण की रचना अप्रौढावस्था में की। इसमें तिरुपति के पूज्य देवता श्रीनिवास के वासन्तिक महोत्सव का वर्णन है। भाण के अनुसार विटाचार्य कोक्कोकोपाध्याय विट और वाराङ्गना-बालिकाओं को व्यवसायोपयोगी प्रशिक्षण देते थे।

त्रिपुरविजय-व्यायोग

पद्मनाभ ने त्रिपुरविजय-व्यायोग की रचना की।[3] इनका जन्म गोदावरी तट पर कोटिपल्ली में हुआ था। कृष्णमाचार्य के अनुसार इनका प्रादुर्भाव १६ वीं शती में हुआ था।[4]

त्रिपुरविजय का प्रथम अभिनय उस समय हुआ, जब आकाश प्रकाशप्राय था। सोमेश्वर के वसन्तकल्याण-महोत्सव पर समागत सभासदों के निवेदन पर इसका प्रयोग

१. इति नाट्येन सदाश्लेषसुखमनुभूय।
२. इस भाण की हस्तलिखित प्रति मद्रास की ओरियण्टल लाइब्रेरी में १२६३३ संख्यक है।
३. पुस्तक की हस्तलिखित प्रति मद्रास के शासकीय हृ० लि० भाण्डागार में है।
४. डा० पी० श्रीराममूर्ति ने पद्मनाभ की तिथि अज्ञात बताई है। Contribution of Andhra to Skt. lit. P. 145

हुआ। सूत्रधार ने इसे उच्चकोटिक व्यायोग बताया है।[1] इसमें त्रिपुरदाह की प्रसिद्ध कथा है।

कतिपय अन्य रूपक

नाटक

इल्लूररामस्वामी शास्त्री का कैवल्यावलीपरिणय, दामोदरन् नम्बुद्री का कुलशेखर-विजय इचम्वदी श्रीनिवासाचार्य का उपापरिणय, भद्राद्रि रामशास्त्री का मुक्तावली-नाटक, पेरी काशीनाथ शास्त्री का द्रौपदीपरिणय, पंचालिकारक्षण तथा यामिनीपूर्ण तिलक, मदभूसी वेङ्कटाचार्य का शुद्धसत्त्व, टी० गणपतिशास्त्री का माधवीवसन्त, श्रीनिवासाचार्य का क्षीराब्धिशयन तथा ध्रुव, नरसिंह चार्लू का चित्सूर्यलोक, वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य का चैत्रयज्ञ, आत्रेयवरद का रुक्मिणी-परिणय, शैलताताचार्य का, युगलांगलीय, वेङ्कटराघवाचार्य का मन्मथविजय, राधामंगल-नारायण का मुकुन्द-मनोरथ, उदारराघव तथा महेश्वरोल्लास, नृत्यगोपाल-कविरत्न का माधव-साधना-नाटक, पद्मनाभाचार्य का गोवर्धनविलास तथा ध्रुवतापस आदि।

भाण

जयन्त का रसरत्नाकर, केरलवर्मा की शृङ्गारमंजरी, श्रीनिवासाचार्य की शृङ्गारतरंगिणी, उदयवर्मा का रसिकभूषण, अविनाशी स्वामी का शृङ्गारतिलक, श्रीनिवास का रसिकरंजन आदि।

ईहामृग

कृष्णावधूतपण्डित का ईहामृग गीत।

डिम

रामकवि का मन्मथ-मन्थन।

व्यायोग

दामोदरन् नम्बुद्री का अक्षयपत्र, तम्पूरन्[2] का किरातार्जुनीय व्यायोग।

वीथी

दामोदरन् नम्बुद्री की मन्दारमालिका

---

१. चक्रे व्यायोगरत्नं त्रिपुर-विजय इत्यस्ति सोऽयं रसाढ्यः। इसमें लिट् लकार के प्रयोग से प्रतीत होता है कि पद्मनाभ की मृत्यु के पश्चात् इसका अभिनय हुआ।

२. इनके विरचित अन्य एकाङ्की थे—सुभद्राहरण, दशकुमारचरित और जरासन्धवध।

बीसवीं शती के नाटक

अध्याय ६६

पार्थपाथेय

काशिराज प्रभुनारायण सिंह का पार्थपाथेय उल्लाप्य कोटि का उपरूपक है।[1] इसके रचयिता काशिनरेश १८८९ से १९२५ ई० तक रहे हैं। भूमिका-लेखक धामाचरण भट्टाचार्य ने लेखक का परिचय देते हुए बताया है कि वे सतत शान्तमूर्ति, सनातनधर्म के मूर्त स्वरूप और वृद्धावस्था मे भी युवको की भाँति परिश्रमी थे। वे कविता करने मे निपुण थे, साथ ही वेदान्तविद्या के पण्डित-प्रकाण्ड थे।[2] वे सूक्ति-सुधानामक संस्कृत-पत्रिका मे भी अपनी कवितायें प्रकाशन कराते थे। श्री प्रभुनारायण सिंह ने युवावस्था मे इसकी रचना की थी।

पार्थपाथेय का प्रथम अभिनय विद्वत्परिषद् के आदेशानुसार हुआ था।

कथावस्तु

सुभद्रा को अर्जुन से प्रेम हो गया—इस बात को अर्जुन भी नही जानता था। सुभद्रा चित्रफलक पर अर्जुन का चित्र बनाकर मनोरंजन करती थी। चित्र के नीचे उसने लिखा था—

> अशक्नुवन्ती परिवोढुमात्मना भर चलन्मानसगूढरागिणी।
> प्रवर्धमानार्जुनमारुरुक्षते यदुन्मुखी तिष्ठति माधवीलता॥

उसकी सखी ने स्वयं एक और अर्जुन का चित्र उसी फलक पर बना दिया। उस चित्रफलक को वहाँ चुपके से आये हुए नारद ने ले जाकर हस्तिनापुर में किसी नौकर के हाथ से अर्जुन को दिलवाया। यह द्रौपदी के हाथ में चला गया।

नारद ने सोचा कि कृष्ण के द्वारा उलूपी को प्राप्त करने के उपक्रम मे मेरी अनुगृहीत अप्सराओं का भी उद्धार हो जाना चाहिए। नारद युधिष्ठिर की सभा में विमान से उतरे और कृष्ण, युधिष्ठिर तथा द्रौपदी ने उनका सत्कार किया।

नारद ने युधिष्ठिर से कहा कि आप लोगों मे कलह हो सकता है, यदि आप यह नियम नही बना लेते कि हम सब की एक पत्नी द्रौपदी किसी एक पति के साथ

---

१. इसका प्रकाशन रामनगर राज्य के दानाध्यक्ष श्री लक्ष्मण झा के द्वारा १९२८ ई० मे किया गया था। इसकी प्रति रामनगर के राजा के पुस्तकालय में और विश्वनाथ-पुस्तकालय काशी मे प्राप्य है।

२. सूत्रधार ने प्रस्तावना में लेखक के विषय मे बताया है—

> कपिलस्य मतं पतञ्जलेः कणभुग्गोतमयोश्च कृत्स्नशः।
> निगमान्किल वेत्ति सोत्तरानपि साहित्यसमुद्र-मन्दरः॥

एक वर्ष रहेगी और पति के साथ रहते उसे दूसरा पति यदि देखे तो १२ वर्ष ब्रह्मचारी रहकर घूमे। यह नियम सभी भाइयों को बतला दिया गया।

एक दिन किसी ब्राह्मण की गाय चोर चुरा ले जा रहे थे। उसकी रक्षा करने के लिए अर्जुन को गाण्डीव की आवश्यकता आ पड़ी, जो युधिष्ठिर के कक्ष में था। उसे लेने के लिए वहाँ गये तो द्रौपदी को देखने मात्र से उन्हें १२ वर्ष का वनवास लग गया।

युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि बकवास है नारद के सामने की हुई प्रतिज्ञा, जिसके अनुसार तुम्हें वन जाना है। अर्जुन जाने को ही था कि उसे एक पत्र द्वारका से मिला। अर्जुन ने उसे पढ़ा नहीं और कहा कि पत्राचार आदि ब्रह्मचारियों के लिए नहीं है। अर्जुन सबसे अनुमति लेकर चलते बने।

अर्जुन गंगाद्वार पहुँचे। वहाँ गंगा में नहाने के लिए उतरे तो किसी स्त्री ने उन्हें पानी में ही पकड़ लिया। विदूषक ने अर्जुन की आर्त ध्वनि सुनी और लोगों को बताया कि किसी डाकिनी ने उन्हें पकड़ लिया है।

आगे चलकर उलूपी के साथ अर्जुन प्रकट हुआ। अर्जुन से उलूपी का गान्धर्व विवाह हुआ और वह प्रसव के लिए पिता के घर चली गई। इसके पश्चात् चित्राङ्गदा नायिका अर्जुन के निकट आई। एक दिन चित्राङ्गदा के निकट अर्जुन आया और विदूषक से कहा—

अस्या दर्शनेनाकृष्टास्मि।

वह उसके पीछे चला कि पिता से इसे माँग लूँगा। इधर निकट आये हुए चित्राङ्गदा के पिता से अर्जुन ने सुना कि मुझे योग्य वर नहीं मिल रहा है। उसके अमात्य ने अर्जुन का परिचय दिया और तभी दर्शनार्थी बनकर अर्जुन आ पहुँचा। चित्रवाहन ने अर्जुन से प्रभावित होकर उसे कन्या दे दी पर समय लगाया कि इसका प्रथम पुत्र चित्रवाहन नामधारी होगा। कुछ दिनों तक उसके साथ रहकर अर्जुन अपनी ब्रह्मचर्य-यात्रा पर आगे बढ़ा और चित्राङ्गदा से बोला कि काम समाप्त करके तुमसे पुनः मिलूँगा।

अर्जुन घूमते-फिरते द्वारका के पास पहुँचे। वहाँ मुनियों के जलाशय में स्नान करते समय उन्हें पानी में एक रमणी वर्गा नामक मिल गई। ग्राहरूपिणी वह अर्जुन का पैर पकड़ते ही स्त्री बन गई थी। अर्जुन का कहना है—

वदनविधुविनिन्दितारविन्दा ननु कनकद्युतिदत्तचित्तलोभा।
कुचकलशनिसृष्टमंगलेयं स्फुरति पुरो रतिरेव देवता मे॥

वर्गा कुबेर की दासी थी। उसने बताया कि अन्य तीर्थों में भी मेरी अन्य सखियाँ हैं। कैसे ग्राह बनीं?

रिरंसवो वयं पंच ब्राह्मणेन तपस्यता।
विघ्नं विचार्य तद्दत्तशापेन ग्राहतां गताः ॥
ता वय तीर्थसलिले नारदेन दयालुना।
स्थापिता वो विमुक्तिः स्यादर्जुनस्पर्शनादिति ॥

थोड़ी देर में अन्य चार तीर्थों से भी अर्जुन चार रमणियों को निकाल कर लाये। वर्गादि ने प्रसन्नता से गाया—

नुमः सद्यो यशस्ते वारवारं गमिष्यामो निजं मोदादगारम्।
पृथयामादितेयेशादुदार समग्रानुग्रहं धत्सेऽवतारम् ॥

वहाँ से अर्जुन प्रभास तीर्थ की ओर चले। कृष्ण मिले। कृष्ण ने उन्हें अपने साथ द्वारका चलने का आदेश दिया। द्वारका में कृष्ण की बहिन सुभद्रा अर्जुन को दिखी। सुभद्रा की सखी कौमुदी ने उसे गाकर सुनाया—

उद्दिश्य भाग्यवन्तमहो कं मनोहरं धत्से करेण सुभ्रु कपोलं मनोहरम्।
ईहेत को न लब्धुमतुल्यं मनोहरमायासयस्ययाङ्गमनयं मनोहरम् ॥

सखियों ने कहा कि दुर्गा देवी तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी। नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

तुष्यामि साहसेन सुभद्रे यया त्वया संयोजयामि पाण्डुसुतं तं मनोहरम्।

तब तो प्रसन्नतापूर्वक सुभद्रा ने गाया—

दुर्गे शरणं त्वामुपयामि
भजति जनो भवतीमनेकधा मुग्धा कति कलयामि।
केवलमेकमर्थमनुभवितु निजसुकृतेन शपामि।

कृष्णार्जुनादि का रथ आ पहुँचा। कृष्ण ने अर्जुन को सुभद्रा का दर्शन कराया। उन्होंने अर्जुन को अवसर दिया कि अकेले सुभद्रा को उद्यान में वृक्षों को दोहद देते हुए देखें। वहीं अर्जुन को द्रौपदी का भेजा पत्र मिला। द्रौपदी ने अर्जुन के पत्रोत्तर में लिखा था—

प्रियप्रसंगाय किल प्रियस्य प्रीणाति या योषिदसौ प्रशस्ता।
मा भूत्सपत्नीतिनिजार्थसिद्धि-बुद्धिर्निषेवेत पतिं हि तां धिक् ॥

इस अवसर पर कृष्ण का सारा ध्यान सुभद्रा में अनुपक्त था। सन्ध्या का समय आने पर सुभद्रा घर की ओर चली। उसे अर्जुन का ध्यान करते-करते चला नहीं जाता था। तब तो अर्जुन ने उसे करावलम्बन देते हुए कहा—

विलप्य शून्या विदिशा विचिन्वती यदर्थमेवं करभोरु कम्पसे।
नितान्तहार्देन गतो विधेयतां ददाति तुभ्यं सकरावलम्बनम् ॥

कृष्ण, बलरामादि वहाँ आ पहुँचे। बलराम ने देखा कि कृष्ण का सुभद्रा से प्रेम चल रहा है। वे अर्जुन को मुसल से मार डालने को ही उद्यत थे। कृष्ण ने सँभाला और सुभद्रा से कहा कि यह तो दुर्गा देवी की इच्छानुसार अर्जुन तुम्हें पतिरूप में मिला है। तब तो नाचते हुए मधुमंगल नामक विदूषक ने भरतवाक्य पढ़ा।

नाट्यशिल्प

पार्थपाथेय में तीन अङ्क हैं। इसका आरम्भ विष्कम्भक से होता है।

विदूषक के हास्य की दिशा कुछ दूसरी ही है। नारद के कुछ कहने पर उसने स्वगत सुनाया कि कोई विपत्ति अब आयेगी ही।

अन्य स्थलों पर भी हास्य प्रायशः सुपरिष्कृत है।

रंगमंच पर नायककोटिक कोई न कोई पात्र पूरे अंक में रहना ही चाहिए। इसमें ऐसा नहीं हो सका है। प्रथम अंक के बीच में कुछ देर तक अकेले मधुमंगल विदूषक रंगमंच पर है। उसके बाद द्रौपदी की दासी भी आ जाती है। इन दोनों से कुछ देर बाद दौवारिक आकर मिलता है। यह अभारतीय है।

दौवारिक की इस उक्ति में अदृष्टाहति (Irony) है कि

देवात्त्यक्तपुनःप्रसक्तविभवाः पार्थाः सुखं शेरते।

क्योंकि इसके ठीक बाद पाण्डवों का विघटन आरम्भ होता है। अन्यत्र वह कहता है—

वेपिते कपाले तवोपलवृष्टिः।

अर्थोपक्षेपक का काम पत्र से प्रथम अंक में लिया गया है। किरतनिया नाटकों की भाँति नायक का वर्णन सुनाने के लिए चूलिका का प्रयोग हुआ है। यथा,

उल्लंघ्योटज—संघपुष्पितलतागन्धान्धभृंगावली-
झङ्काराकुलकाननान्तर— मिलत्तीर्थप्रदेशापगाः।
विप्रैः साकमुपासिताह्निकविधिर्नित्यप्रवुद्धाग्निभि-
गंगाद्वारमुपागतोऽद्य निवसत्यक्लेशमेषोऽर्जुनः॥

नेपथ्य में स्त्री और पुरुष की अर्जुन-विषयक बातचीत प्रेक्षकों को सुनाई पड़ती है।

यह उपरूपक मनोरंजन की सामग्री से भरपूर है। गीतों की अधिकता प्रायः सभी अङ्कों में विशेष है।

द्वितीय अङ्क में चित्राङ्गदा और अर्जुन के विवाह के अवसर पर मधुमङ्गल नामक विदूषक नाचता और गाता है।[1] इसके पहले गीतों का सम्भार रोचक है। नायिका उलूपी गाती है—

मुक्किओ हट्टी गमिस्सदि दुल्लहो तेण हीणं जीविदव्वं दुल्लहं
अत्तणो संथो अत्तणो णिम्मोडआ जे दिट्ठिआ अत्तदाणं दुल्लहं।
दुल्लहा सत्थे जा सच्छन्दिआ कण्णआणं भोदि एदं दुल्लहं
चिप्पओए वम्ममाराहेदि जा सावणे एदं कलत्तं दुल्लहं।
जा विओओ अज्ज उत्तादो भवेदेव दिस्सं किन्तिस्सत्थं दुल्लहं॥

१. नाटकीय मनोरंजन की दृष्टि से द्वितीय अङ्क में विदूषक का रोना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

रुचिरशुचिनखं, पाटलापत्रपुष्पं पवित्राङ्गुलीभिश्च खर्जुरगुच्छम्।
पदाभ्यां प्रवालं तरोः पार्ष्णिगुल्फे न पर्वान्विय जंघयाधः शिफाकाण्ड-
मष्ठीवता जालकं चोरुयुग्मेन रम्भाप्रकाण्डच्छविं सक्थिमद्वये-
नापि वृक्षप्रकाण्डस्यस्थूलता वर्तुलत्वे शुभे।

अर्थोपक्षेपकोचित सामग्री है तृतीय अङ्क में वर्णा का अर्जुन से अपना और अपनी सखियों का वृत्तान्त बताना।

एक ही तृतीय अङ्क में दूरस्थ अनेक स्थलों की घटनायें दृश्य हैं। प्रभासतीर्थ से अर्जुन कृष्ण के रथ पर द्वारका जाते हैं। अङ्क यद्यपि दृश्यों में विभाजित नहीं बताया गया है, किन्तु इसको पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अङ्क में अनेक दृश्य हैं।

प्रभुसिंह की उक्तियाँ बलशालिनी हैं। विदूषक नारद के जाने के बाद अपनी भँड़ास निकालता है—

भो गृहेऽङ्गारकं निक्षिप्य दूरमपक्रान्तो नारदः।

कहीं-कहीं भावानुकारी शब्दों का सुष्ठु प्रयोग है। यथा,

१—अले भाइओ घडफडेदि मह जीओ।

२—हीं ही इदो भणणभणन्द वणसद्दो।

३—दुन्दुमी ठंठणाअदि

अध्याय ९७

हरिदास सिद्धान्तवागीश का नाट्यसाहित्य

भारत को स्वातन्त्र्योन्मुख बनाने वाले बीसवीं शताब्दी के संस्कृत-कवियों में हरिदास सिद्धान्त-वागीश सर्वप्रथम नाटककार हैं। इनका जन्म १८७६ ई० में फरीदपुर जिले के कोटालिपाड़ा में अनशिया ग्राम में हुआ था। इनकी माता विधुमुखी और पिता गङ्गाधर-विद्यालङ्कार थे।[1] कभी इनकी जन्मभूमि में करोड़ों शिव के मन्दिर थे। सम्भवतः इसी कारण इसे दूसरी काशी ही कहते हैं। इन्हीं की पूर्वपरम्परा में सुप्रसिद्ध मधुसूदन सरस्वती हुए। हरिदास हिन्दुओं में उच्च-नीच भाव को अनुचित मानते थे।[2] उनका स्वर्गवास २५ दिसम्बर १९६१ ई० में हुआ।

हरिदास ने जीवानन्द विद्यासागर से साहित्य-शास्त्र का अध्ययन किया। इनकी प्रतिभा बालावस्था से ही चमत्कारकारिणी रही है। १५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने कंसवध नाटक तथा चम्पू का प्रणयन किया था, १८ वर्ष की अवस्था में जानकी-विक्रम नामक नाटक तथा १९ वर्ष की अवस्था में शंकर-सम्भव नामक खण्ड काव्य तथा २० वर्ष की अवस्था में वियोगवैभव नामक खण्डकाव्य का प्रणयन किया।[3]

कवि के परवर्ती सुप्रसिद्ध नाटकों में विराजसरोजिनी, मिवारप्रताप, शिवाजी-चरित और वङ्गीय-प्रताप उच्चकोटिक हैं। हरिदास के अन्य ग्रन्थ हैं रुक्मिणीहरण (महाकाव्य), विद्यावित्तविवाद (खण्डकाव्य), सरला (सरल संस्कृत-गद्यकाव्य), स्मृतिचिन्तामणि, काव्यकौमुदी (अलंकारग्रन्थ) और वैदिकवादमीमांसा। इनकी बंगला-भाषा में लिखी पुस्तकें हैं—युधिष्ठिरेर समय तथा विधवार अनुकल्प। वैदिक-वाद-मीमांसा ऐतिहासिक ग्रन्थ है। उन्होंने महाभारत की टीका आदि से वनपर्व के कुछ अंश तक प्रकाशित की।

हरिदास ने नकिपुरनरेश के टोल में प्राध्यापक पद पर काम किया। हरिदास का हिन्दुत्वाभिमान प्ररोचक है। यथा,

> हिन्दुरेव हि हिन्दूनां विकृतः कुरुते क्षतिम्।
> मृद्गरीकृतलौहं 'हि' लौहं दलति शाश्वतम्॥ मिवारप्रताप ३.१८

इस नाटक के पंचम अङ्क में प्रताप के मुँह से कहलाया गया है—

> हिन्दुभिरेव हिन्दूनां हिंसया संवृत्तोऽयं सर्वनाशो भारतस्य।

---

१. गंगाधर के पिता काशीचन्द्र वाचस्पति उच्च कोटि के विद्वान् थे।

२. शिवाजी-चरित में कवि ने शिवाजी के द्वारा अपना कार्यक्रम कहलवाया है—
प्रथमं हिन्दूनामुच्चनीचनिर्विशेषेण प्रगाढमेकतावन्धनम्।

३. कोटालिपाड़ा में १८९१ ई० में कंसवध का अभिनय हुआ था। यहीं इनके जानकीविक्रम नाटक का भी अभिनय किया गया था।

शिवाजी-चरित में देशप्रेम की वर्णना है—

विधर्म्यधीना ननु भारतप्रजा नदीप्रवाहं च गता मृदुर्लता।
न तून्नतिं गच्छति निष्फलोद्यमा परानुगत्यं हि लघीयसां क्रिया ॥

मिवार-प्रताप

हरिदास ने मिवार-प्रताप नाटक की रचना बंग-संवत् १३५२ तदनुसार १९४४ ई० में साढे चार मास में की।[1] इसके पूर्व उनके वङ्गीय-प्रताप का अभिनय तीन बार हो चुका था, जिनमे इसके काव्योत्कर्ष और अभिनय की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई थी। इससे प्रोत्साहित होकर मिवार-प्रताप नामक अभिनव रूपक की रचना में कविवर प्रवृत्त हुए।

मिवार-प्रताप का प्रथम अभिनय १९४५ ई० मे कलकत्ते मे स्टार-रंगमंच पर प्राच्यवाणी प्रतिष्ठान के उद्योग से प्रथम बार हुआ। नाटक और उसके अभिनय की प्रशंसा हुई। इसके अभिनय मे अनेक एम. ए काव्यतीर्थ, विनोद, शास्त्री आदि उपाधिधारी अभिनेता थे। स्त्रियों की भूमिका मे सभी पुरुष पात्र थे।

प्रस्तावना में प्रश्न उठाया गया है कि क्या संस्कृत-भाषा मर चुकी है? सूत्रधार का कहना है—

वेदादिशास्त्रनिचयस्फुटदिव्यमूर्तिः सा वाक् किमन्यवचनादमरा म्रियेत।
मध्याह्नसूर्यकरणो हि यदि ब्रवीति रात्रिः किलेयमिति हन्त स एव मूढः ॥

नये नाटकों के विरुद्ध एक वर्ग अवश्य था, किन्तु संस्कृत के उन्नायकों की संख्या कुछ कम न थी, जो कहते थे—

नवं नारिकेलं नवीनं च चेलं रमां चापि नव्यां गृहं नूतनं च।
वचश्चाप्यपूर्वं विशेषेण सर्वे रसज्ञाः पुराणाच्चिरायाद्रियन्ते ॥

—प्रस्तावना में सूत्रधार।

सूत्रधार ने दोष निकालने वालों को उपयोगी वराह की उपमा दी है। यथा,

दोषी जनो निजमुखे दधदन्यदोषं कुर्याद् विनिन्दितुमनास्तमदोषमेव।
कर्षन् मलं हि वदनेन वन वराह आलोडयन् परममेव परिष्करोति ॥

कथासार

मानसिंह राणाप्रताप के घर आया और उनसे साक्षात्कार तथा पंक्ति-भोजन के लिए संवाद भेजा। राणा ने शिरःपीड़ा का बहाना बनाया और अपने पुत्र अमर को भेजना चाहा। शक्तसिंह पंक्ति-भोजन के द्वारा भी सन्धि कर लेने के पक्ष मे था। यह सब देख कर मानसिंह खिन्न हुआ। थोड़ी देर अमर से बात हुई तो उसके पिता ने उसे बुला लिया। भोजन तो दो के लिए लाया गया, किन्तु अमर

१. इसका प्रकाशन १९४६ ई० में कलकत्ते से हो चुका है।

लौटकर पंक्ति-भोजन के लिए नहीं आया। तब तो मानसिंह ने भी नहीं खाया और उसके हटने पर उसके देखते-देखते गंगाजल से उसके पदाङ्क को धोकर स्थान पवित्र किया गया। तब मानसिंह ने प्रतिज्ञा की—

यद्यमुष्य प्रतीकारं न कुर्यां वीर्यवानपि
तदाम्बरं न यास्यामि यास्याम्यम्बरतां पुनः ॥

उसके जाते समय किसी ने उसे सुना दिया कि अपने बहनोई के साथ आना।

मानसिंह के जाने के पश्चात् राणा ने समझ लिया कि अकबर की ओर से मेवाड़ पर आक्रमण होगा ही और उसने इसके लिए पूरी सज्जा कर ली।

प्रथम अंक में अपने पक्ष के वीरों के समक्ष प्रताप प्रतिज्ञा करते हैं—

त्वमपि यतस्व तावदस्मदुच्छेदाय, वयमपि यतिष्यामहे युष्मदुच्छेदेन चितोरोद्धाराय।

सबने प्रतिज्ञा की—देह के शेष रक्त-बिन्दु पर्यन्त, प्राणपर्यन्त मातृभूमि की रक्षा करेंगे।

राणा प्रताप ने प्रतिज्ञा की—

१. चितोरोद्धारं यावत् सान्वया एव वयं प्रयोजने जायमाने समरे प्राणानपि प्रदास्यामः।

२. भोजने पादपपत्रमाश्रयिष्यामः।

३. तृणशय्यामधिशय्य यामिनीं यापयिष्यामः।

४. वेशविलासं परिहरिष्यामः।

सबने जगदम्बा के समक्ष हाथ जोड़ कर प्रतिज्ञा की—

रामस्य भीष्मस्य धनंजयस्य यथा प्रतिज्ञा सफला कृता त्वया।
तथा प्रतिज्ञां सफलां कुरुष्व नः चिरं च भूयाः समरे सहायिनी ॥१.२६

द्वितीय अङ्क में महिला-मेला का आयोजन है। सौन्दर्य-प्रतियोगिता में मुगल-रानियाँ सुन्दरियों को पुरस्कार वितरण करेंगी। उसमें पृथ्वीराज की पत्नी कमला को अकबर के विशेष आग्रह से भाग लेना पड़ा। मार्ग में मुगलोद्यान में उसे उद्यान-पालिका मिली। उसने उसके सौन्दर्य से मोहित होकर कहा कि इसे अकबर को अर्पित करा सकूँ तो जीवन भर की अर्थचिन्ता से मुक्त हो जाऊँ। उसने प्रस्ताव किया कि आपको अकबर से मिलाऊँ। कमला ने समझ लिया कि यह तो अकबर के पाश में फँसाने का जाल है। कमला मेले में न जाकर बच निकलना चाहती थी। उद्यानपालिका उसे अकबरसात् करना चाहती थी। उसने औरों को बुलाकर बलात् कमला को रोकना चाहा। सशस्त्र कमला ने उसे डराकर उद्यान-द्वार से बाहर निकल कर अपने घर का मार्ग अपनाया।

तृतीय अङ्क में मानसिंह ने अकबर से बताया कि राणा प्रताप ने कैसे अपमान किया है, और अपनी प्रतिज्ञा बताई—

मेवारजयमग्रतः कमलमीर— संलुण्ठनं
प्रतापधृतिमानयं प्रसमस्य दिल्लीपुरे।
समं मुसलमानकैः सदमि भोजनं तस्य च
क्रमेण करवाण्यहं तव समेत्य साहाय्यम्॥

राणा के भाई शक्तसिंह ने उसका प्रतिवाद किया। अकबर ने कहा कि यही विभीषण बनेगा।

चतुर्थ अङ्क मे हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन है। इसके अन्त होने पर इसी के गर्भाङ्क मे शक्तसिंह के प्रताप को अपना घोड़ा देकर सहायता करने की कथा है। शक्त ने प्रताप का पीछा करने वाले मुलतानी और खोरासानी सैनिकद्वय को मार गिराया। उसने प्रताप को बुलाया। प्रताप ने उसे पहचान कर कहा—

सुहृदामुत्तमो भ्राता दुर्हृदामपि चोत्तमः।
सन्निपाते हि दत्तेऽसून् हरतेऽप्यत्र तान् विषम् ॥४.४

शक्त ने देखा कि प्रताप हमे सन्दिग्ध दृष्टि से देख रहे हैं। उसने तलवार कोष मे रख दी। उष्णीष उतार कर अलग रखा और हाथ जोड़कर प्रताप के पास सविनय पहुँचा। प्रताप के पैर पर गिर पडा और बताया कि कैसे दो यवन-सैनिकों का वध किया है। थोड़ी देर में राणा का रक्षक घोड़ा चेतक मर गया। उसके मरते समय राणा ने उसे पखा झला। उसके मरने पर राणा के मुँह से निकला—

सलिले तरिगिरिवने तुरगः रणसंकटे सुनिपुणः सचिवः
परमः सखा विचरणे च चिरं नहि वाहनं ननु वहन्नपि माम् ॥४ १०

पराजय के पश्चात् राणा प्रताप को इधर-उधर गावों और वनों में भटकना पड़ा। मिवार-शैल पर पर्णकुटीर में सपरिवार राणा रहने लगे थे। प्रताप की पत्नी का मत था कि वन्य जीवन कठोर है, योग्य नहीं है। राणा का पुत्र अमर भी राजधानी कमलमीर का ही समर्थक था। वह कहता है कि कमलमीर स्वर्ग है तो यह वन्य जीवन नरक है।

एक दिन वनबिलाव उसी एक रोटी को ले भागा, जिसे रानी गौरी ने अपनी कन्या इन्दिरा के लिए बनाया था। कन्या को भूखी रहना पड़ा, क्योकि दूसरी रोटी पकाने के लिए सामग्री नही थी। राणा प्रताप से यह सब दुःख देखा न गया। उन्होने निर्णय लिया कि आज ही अकबर को सन्धिपत्र भेजता हूँ।

छठे अङ्क के पूर्व अङ्कावतार में बताया गया है कि राणा ने अकबर को सन्धि-पत्र भेजा। उसका उत्तर अकबर ने पृथ्वीराज से लिखवाया। पृथ्वीराज ने श्लिष्ट भाषा में राणा को लिखा कि आप हम सब पतितों के लिए भी गर्व के कारण थे। अब अपने व्रत से क्यों गिर रहे हैं? राणा की समझ में बात आ गई। तभी भामाशाह ने अतुलित धनराशि राणा को दी, जिससे उन्होने ५०,००० सैनिकों को

सेना और तोप सज्जित करके २९ दुर्गों पर अधिकार कर लिया और कमलमीर और उदयपुर को समलंकृत किया। वे देवीदुर्ग को अपने अधिकार में लाना चाहते हैं।

छठें अङ्क में देवीदुर्ग ग्रहण का वृत्त है। दुर्ग के मुसलमान अधिकारियों को राणा की ओर से समरसिंह सन्देश लाया और उसके प्रत्यक्षीकरण के लिए पत्र के साथ कशा, शृङ्खला और तलवार ले आया, जिनका व्यंग्य अर्थ था कशा से कि चाबुक लेकर घोड़े पर चढ़ो और किला छोड़कर भाग जाओ, शृङ्खला से कि तत्काल आत्मसमर्पण करो, तरवार से कि चाहो तो युद्धभूमि में लड़ लो। दूत के सन्देश से क्रुद्ध मुसलमान अधिकारियों ने राणा पर धावा बोल दिया, पर युद्ध में पराजित हुए। उन्होंने भागते हुए दुर्ग में आग लगवा दिया, भिल्लों ने परिखा-जल से आग बुझाई। दुर्गपति शाहबाज को निगडित किया गया। प्रताप की विजय हुई।

नाट्यशिल्प

नृत्यगीत का आयोजन कवि को प्रिय है।[1] काली पर्वत से उतर कर भील सैनिक प्रथम अङ्क में गाते हैं—

> महु महु महुरं सीहु सीहु णिअरं पिउ पिउ चतुरं वीर।
> लहु लहु चरणं वहु वहु करणं संहर जवणं धीर॥
> करेहि जीवणपणं धरेहि ण पहरणं।
> मारेहि जवणगणं पत्थरसमसरीर॥

चतुर्थ अङ्क के समाप्त हो जाने के पश्चात् चतुर्थाङ्क गर्भाङ्क मिलता है। यह उसी के एक दृश्य के समकक्ष है। अन्तर यही है कि इस दृश्य की एक प्रस्तावना भी है, जिसमें एकमात्र वक्ता सूत्रधार है। ऐसा प्रयोग पूर्ववर्ती नाटकों में नहीं मिलता। गर्भाङ्क की कथावस्तु मूल कथा का अंश ही है।

हरिदास एकोक्तियों से नाट्य कथा को मण्डित करने में निपुण हैं। द्वितीय अङ्क के आरम्भ में पृथ्वीराज की पत्नी कमला अपनी एकोक्ति में अर्थोपक्षेपकोचित सामग्री सूचित करती है कि कैसे अकबर ने मेरे पति से मुझे महिला-मेला में भाग लेने का आग्रह किया है। मुझे पति ने भेजा है। दिल्ली के पुरातन वैदिक सांस्कृतिक वैभव के स्थान पर हिन्दुत्व की हीनता का दृश्य देखकर वह अपनी मानसिक पीड़ा व्यक्त करती है। वह सोचती है—

> यः किल हिन्दूनां गौरवरविरस्तं गतः, स किं पुनर्नोदियात्।

उसे राणा प्रताप की स्मृति हो आती है—

---

१. द्वितीय अंक में महिलाओं का गीत—'हे मधुप हे मधुप' इत्यादि चतुर्थ अंक में चारणों का गीत 'धाव धाव वीर तुमुलरणमध्ये' इत्यादि पंचम अंक में साधुक और मधुक का गीत 'हगे ण इस्सं सादुफलाइ' सनृत्य तथा तत् कार्यं च कुरुतः प्रवर्तित हैं। षष्ठ अङ्क में तीन वेश्याओं का सनृत्य गीत है—

एकः स्फुलिङ्गो ग्रसते महावनं रुद्रः किलैको धुनुते जगज्जनान् ।
एको मरुत् पातयते च पादपान् एकः प्रतापोऽपि तपेद् विधर्मिणः ॥

वह मार्ग में मुगलोद्यान को देख रही है और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है।

कुंजे कुंजे मंजु मंजु रटति मधुपः सुमनो रसपः
सातिशयगुणवान् गुणगुणरववान् मोहित—
पादपः सेवितविटपः इत्यादि ।

यह दृश्य सर्वथा अनावश्यक होने पर भी इसीलिए समाविष्ट किया गया कि कवि इसके द्वारा प्रेक्षकों का मनोरंजन चाहता था

तृतीय अङ्क के आरम्भ में अकबर की एकोक्ति में सम्राट् पद की विडम्बना, कमला द्वारा उपेक्षा, विविध धर्मानुयायियों के द्वारा उत्पन्न बखेड़ो के कारण उसकी मानसिक चिन्ता और प्रताप-विषयक व्यग्रता व्यक्त की गई है। इसी अंक में मानसिंह के द्वारा प्रस्तुत स्वगत की सामग्री सर्वथा एकोक्ति के योग्य है[1]। यह स्वगत अतिदीर्घ है। जब तक वह स्वगत में व्यापृत रहा, तब तक अकबर और सलेम चुपचाप रंगमंच पर रहे—यह नाट्योचित नहीं है। इतनी देर तक पात्रों को रंगमंच पर चुपचाप रखना अस्वाभाविक भी है।

चतुर्थ अंक के आरम्भ में शक्तसिंह की एकोक्ति है। इसमें वह अपनी, मानसिंह की तथा प्रताप की स्थिति का आकलन करते हुए लालसा प्रकट करता है—

यदि वयमत्र संग्रामे विजयलक्ष्मीं लप्स्यामहे तदावश्यमेव भारताद् यवनापसारणेन साम्राज्यमारोपयितुमेव यतिष्यामहे ।

रंगपीठ पर चतुर्थ अंक में चेतक घोडे की मृत्यु होती है। अश्व को रंगमंच पर लाना संस्कृत नाट्य साहित्य में विरल योजना है।

अङ्क भाग में अनेक स्थलों पर अर्थोपक्षेपकोचित सूचनायें दी गयी हैं। यथा तृतीय अङ्क में मानसिंह का अकबर से और अकबर का सेलिम से राणा प्रताप द्वारा किया हुआ अपमान, मानसिंह का स्वगत में बतलाना—

यवनेन कन्यायाः पाणिं ग्राहयता तातेनैव नुन्नो जातिधर्मः ।

षष्ठ अङ्क के पूर्व अङ्कावतार है। यह किसी भी दृष्टि से विष्कम्भक से भिन्न नहीं है। कवि ने इसका नाम अङ्कावतार क्यों दिया—यह दुर्बोध है।

युद्धभूमि पर राणा प्रताप और सलेम की बातचीत का अवसर प्रस्तुत करना हरिदास की त्रुटि है। सलेम कहता है—

अवनम चरणान्ते प्रार्थय प्राणभिक्षां परिहर च मिवारान् वन्दिभावं भजस्व
सह च यवनजालैरेकपात्रे किलात्र सपदि निगडितः सन्नन्यथा द्राङ्म्रियस्व ॥

1. ऐसा लगता है कि हरिदास स्वगत और एकोक्ति का अन्तर नहीं देख रहे थे।

भला ऐसी बातें सुनने के लिए प्रताप पैदा हुआ था ?

कतिपय अङ्कों का विभाजन दृश्यों में मिलता है। प्रथम अंक में दो, चतुर्थ अङ्क में पांच, पंचम अंक में तीन और षष्ठ अंक में छः दृश्यों का विधान है।[1]

अङ्क में नायक कोटि का कोई पात्र होना ही चाहिए—इस नियम का निर्वाह इस नाटक में नहीं किया गया है। द्वितीय अङ्क में केवल दो पात्र आद्यन्त हैं—उद्यानपालिका और कमला—अकबर के सभा-कवि पृथ्वीराज की पत्नी। नाटक में पुरुषपात्र लगभग ४० और स्त्रीपात्र ११ हैं। यह संख्या अधिक प्रतीत होती है।

अङ्किया नाटक की भाँति पात्र-वर्णना की गई है, किन्तु सूत्रधार के मुख से ऐसा न कराकर रंगपीठ पर पहले से वर्त्तमान पात्र के द्वारा[2]। तृतीय अंक में अकबर मानसिंह को आता हुआ देखकर कहता है—

म्लानं मुखं हृदयदुःखमलं व्यनक्ति रोषानलं मनसि शंसति तीव्रदृष्टिः ॥
आवद्धमुष्टिरपि वक्ति दृढप्रतिज्ञां तस्मादभूद्विषमदुर्घटनैव कापि ॥

नाटक में वन्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत करना एक विरल विशेषता इस रचना की है। राणा प्रताप अपनी कन्या इन्दिरा से पूछते हैं कि तुमको राजधानी अच्छी लगती है कि यह वन ? वह उत्तर देती है—

अत्र धूलिः प्राप्यते, पुष्पं लभ्यते, निर्झरजलं प्रेक्ष्यते, पक्षिरवश्च श्रूयते।

छठें अङ्क में रंगपीठ पर शक्त और नूर का परस्पर युद्ध मनोरंजक है[3]।

कवि ने कतिपय स्थलों पर श्रवानुसारी शब्दों का रम्य प्रयोग किया है। यथा, हुलहुल्लिका, गुड़म्, गुड़म्, दुम् आदि।

इस नाटक के प्रथम अङ्क की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। इसमें अकबर के चरित्र के धूमिल पक्ष को प्रकाशित किया गया है। वस्तुतः इस अङ्क की कथावस्तु नाट्य-कथा से सर्वथा असम्बद्ध है।

देशप्रेम

भारतीय स्वतन्त्रता के लिए युद्ध का अन्तिम चरण था जब हरिदास ने गाया—

स्व-स्वजीवन—दानेन रक्षणीयैव जन्मभूः।
आदत्ते हि महद्वस्तु स्तोकत्यागेन बुद्धिमान् ॥ १.२४

१. दृश्यों का निर्देश मुद्रित पुस्तक में नहीं है, किन्तु आरम्भ में यवनिका-परिचय में मिलता है।

२. ऐसे वर्णनों से नाटक की अभिनेयता के साथ ही उसकी पठनीयता भी नाट्यकार की दृष्टि में अभीष्ट प्रतीत होता है।

३. इसी अङ्क में राणा प्रताप और शाहबाज दोनों तलवार लेकर रंगपीठ पर ही लड़ने के लिए समुत्सुक हैं।

भारत को हिन्दुस्थान रहना है—

हिन्दुस्थाने यवनवसतिर्नोचिता भारतेऽस्मिन्
नीहारौघस्थितिरिव शरद्व्योम्नि नक्षत्रदीप्ते।
तस्मादस्मान्निजनिजधिया यात यूयं स्वदेशान्
अस्रस्रोतः स्रवतु न खलुच्छिन्नभिन्नाच्छरीरात् ॥ ६.१३

नाटक के अन्त में सुप्रभदेवोपाध्याय कहते हैं—

सन्तानपोषी परदास्यपाशान् मातेव मुक्तैव च जन्मभूमिः।

लोकोक्ति-सौरभ

लोकक्तियों और अन्योक्तियों का प्रयोग प्रभविष्णु है। यथा,

१. अयं कल्याण—कल्लोलः स्वयं सम्मुखमागतः।
दृढेन स विशालेन शिलाबन्धेन वारितः॥ १.१२

२. यावतीह गृहिणो घनसम्पत्तावती ध्रुवममुष्य हि चिन्ता।
चिन्तयातिविकले किल लोके शान्तिमन्नहि सुखं समुपैति ॥ ३.१

३. दारिद्रयं नाम सर्वशान्तिनिदानम्।

४. सम्मते याति वैमत्यं सरसे विरसायते
दक्षिणे च भवेद् वामा रामा चित्र-चरित्रिका ॥ ६.८

शिवाजी-चरित

शिवाजीचरित का प्रथम अभिनय स्वाधीनता-दिवस-यात्रा के अवसर पर हुआ था। सूत्रधार ने बताया है कि भारतवासियों में देशप्रेम को प्रोज्ज्वलित करने के लिए हम अभिनय करना चाहते हैं। यथा,

येन हि साम्प्रतं सर्व एव स्वाधीनतां कामयते, वयं च तदुद्दीपनमेव कञ्चित् प्रबन्धमभिनेतुमभिप्रेमः।

शिवाजीचरित की रचना शकसंवत् १८६७ तदनुसार १९४५ ई० में हुई थी।[1] इसके पूर्व कवि ने मिवार प्रताप की रचना की थी। सूत्रधार ने इसे मिवार-प्रतापानुज नाम दिया है। रचना समयोपयोगिनी है—यह सूत्रधार का वक्तव्य है।

कथासार

पाठशाला में पढ़ते हुए शिवाजी ने अपने साथी गोविन्द के पूछने पर बताया कि गुरु लोग शास्त्र पढ़ने को कहते हैं और मन कहता है शस्त्र ग्रहण करने के लिए।

---

१. लोक्तुं नागेन्दुमिते शकाब्दे।

क्षत्रिय तो राज्य करने के लिए होता है। राज्य यवनों ने हड़प रखा है। शत्रुओं की संख्या विशाल है। शिवाजी को भी अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ानी है। उन्हें पहला साथी मिला सहपाठी गोविन्द, जिसने कहा—

सम्पदि विपदि वालिशं छायेवानुवर्तिष्ये भवन्तम्।
राजनि च त्वयि मन्त्री भवितास्मि कारायां च सहगामी॥

अन्य साथियों ने सम्मिलित होकर हिन्दुओं की दुर्दशा का वर्णन किया। शिवाजी ने कहा—

सुखमयमपि हिन्दुस्थानमप्यद्य हिन्दोर्न खलु वसतियोग्यं भोग्यमेतत्पिशाचैः।

शिवाजी ने अपनी योजना कार्यान्वित करना आरम्भ कर दिया। द्वितीयाङ्कानुसार तोरण दुर्ग का अध्यक्ष करीमवक्स विलासी था। उसकी सेना जलदस्युओं का दमन करने गई थी। उसी समय वहाँ रामहरी नामक कपटी साधु उसके पास आया। उसने करीम का मनोरंजन करने के लिए अपनी नर्तकियों से सनृत्य गीत कराया और स्वयं वंशी वजाई। इसके पश्चात् सरकस दिखाने वाले अपना करतब दिखाने के लिए बुलाये गये। साधु पुनः वंशी वजाने लगा और उसके निर्देशन में १०, १२ वीर भीषण युद्ध का अभिनय करने लगे।

शीघ्र ही बातें बदल गईं। साधु शिवाजी था। उसके संकेतानुसार सभी नर्तकियाँ और सर्कस के युवक वीर योद्धा बन कर दुर्गाधिकारियों पर चढ़ बैठे। करीम वक्स को गोविन्द ने शिवाजी के आदेश से वन्दी बनाया। इस प्रकार द्वितीय अंक में तोरण दुर्ग पर शिवाजी का अधिकार हो गया।

तृतीय अंक में बीजापुर के सुलतान नादिर को सूल रहा है कि मै पराधीन हूं। इसी समय राजदूत ने उसे सूचना दी कि आपके राजस्व-सचिव पूना के भूस्वामी साहनाथ के पुत्र शिवाजी ने आपके तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दूसरे दूत ने उसे सूचना दी कि पुरन्दर दुर्ग शिवाजी ने सैन्यवल से जीत लिया। नादिर ने साहनाथ को बुलवाया। उन्होंने वताया कि मेरा पुत्र धर्मराज्य की प्रतिष्ठा करना चाहता है। नादिर ने कहा कि उसे हुजूर में हाजिर करो। साहनाथ ने कहा कि पुत्र की प्रगति में मैं वाधा नहीं डाल सकता। नादिर ने कहा कि तब तो तुम्हें मरना पड़ेगा या कारागार में भेजना पड़ेगा। साहनाथ को वन्दी बना लिया गया।

नादिर ने अफजल नामक सेनापति को बुलाकर उससे कहा—शिवाजी का अन्त करना है। अफजल ने कहा—

चातुरीत एव चतुरं व्यापादयिष्यामि।

चतुर्थ अंक में पूर्वघटित घटनाओं की सूचना संवाद द्वारा दी गई है। पंचम अंक में बीजापुर का सेनापति अफजल खाँ शिवाजी को मारने के लिए दो सहकर्मियों के साथ आया। मिलने के पूर्व स्वागत-वाणी के पश्चात् आलिंगन करते समय शिवाजी की बाईं कुक्षि में वह कटार घुसेड़ने लगा। बचकर शिवाजी ने वघनख से

अफजल का उदर-विदारण कर दिया। दोनों साथी भी शिवाजी के साथ आये वीरों के द्वारा मार डाले गये। फिर तो दोनों पक्षों के सैनिकों का तुमुल युद्ध हुआ। अफजल के पक्ष की पराजय हुई।

छठें अंक के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार बीजापुर के सुलतान नादिरशाह के द्वारा शिवाजी के दमन के कुचक्र हैं। इसमें शिवाजी ने पूना की विजय कर ली है। दिल्लीश्वर औरंगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध सायेस्ता खाँ के सेनापतित्व में शिवाजी को ध्वस्त करने के लिए फौज भेजी। सायेस्ता खाँ को नादिरशाह को भी दमन करना था। उसने इस बीच शिवाजी की बीजापुर सुलतान से भिड़न्त होने पर पूना को जीत लिया था। बीजापुर की सेना को परास्त कर पूना को शत्रुओं के हाथ में जाने का समाचार जानकर शिवाजी पानहाला दुर्ग में आ गये थे, जहाँ शिवाजी के माता-पिता पहले से ही आश्रय ले चुके थे। शिवाजी की माता जयन्ती देवी युद्ध करने में निपुण थीं। वे युद्ध-भूमि में जाती थी। यथा,

क्षिपन्तीवाक्षितो वह्निमसिचर्मधरापरा।
रणचण्डीव चण्डश्रीः साटोपमटति द्रुतम्॥ ६.३

हिन्दुओं के पतन से वे खिन्न हैं। उनका कहना है—

प्रायः कालवशाद्विलुप्तविभवा हन्ताधुना हिन्दवः॥

पूना पर इस्लामी झण्डे से जयन्ती का हृदय जलता था। उन्होंने स्त्रियों की सेना बनाने की योजना बनाई। पूना में सायस्ता खाँ दुर्गाध्यक्ष था। एक दिन भास्कर शर्मा नामक शिवाजी के सहपाठी और सहकारी सेनापति ने वैष्णव-साधुवेश में सायस्ता से भेंट की और कहा कि मेरी माता का शव ले जाने का मार्ग आपके दुर्ग से होकर है। सायस्ता के उदार विचार थे। उसने अनुमति दे दी।

थोड़ी देर में शवयात्रा आ पहुंची। इसमें शिवाजी और उसके वीर सैनिक सशस्त्र थे। इस प्रकार पूना पर शिवाजी का पुनः अधिकार सायस्ता की सेना को परास्त करके हो गया।

सप्तम अंक के पूर्व के विष्कम्भक के अनुसार बीजापुर के सुलतान नादिर ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। औरंगजेब ने उसका दमन करने के लिए जयसिंह की अध्यक्षता में सेना भेजी। शिवाजी की सहायता से बीजापुर पर जयसिंह की विजय हुई और उपहार-रूप में उनको छत्रपति की उपाधि मिली। जयसिंह ने शिवाजी को दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया। शिवाजी के साथियों को सन्देह था कि दिल्ली में उन्हें बन्दी बना लिया जायेगा। इसका उत्तर शिवाजी ने दिया—

तेजस्विनं कौशलिनं महाधियं शूरं तथा को नु रुणद्धु हन्तु वा।
आहन्यमानोऽग्निकणो हि तेजसा प्रवर्धते संचरतेऽन्यवस्तु वा॥

शिवाजी ने यह भी कहा कि दिल्ली को जीतने के लिए भी तो देखना है।

सातवें अंक में औरंगजेव राजसभा में है। राजस्व-मन्त्री ने कहा कि हिन्दू जजिया कर नहीं देना चाहते। औरंजेव ने कहा—उसे शान्ति से वसूल करें ही। इस बीच शिवाजी आये। उन्होंने हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया तो औरंगजेव ने उनसे हाथ नहीं मिलाया। उसने जयसिंह से कहा कि आप अपनी श्रेणी में बैठें और शिवाजी को पंचहजारी में बैठायें। जयसिंह ने कहा कि ये तो पंचलखिया हैं।

शिवाजी ने औरंगजेव से कहा—मुझे अपने देश लौट जाने की अनुमति दें। औरंगजेव ने कहा—जल्दी क्या है? अभी तो आप से प्रेमाचार नहीं हुआ। जयसिंह ने कहा कि ये मेरे घर पर ही ठहरें। औरंगजेव ने कहा—इनके लिए मैंने एक अच्छा घर नियत कर रखा है। उसने आदेश दिया—इन्हें शान्तिशाला में रखा जाय। वहाँ दो ब्राह्मण भोजन पकाने के लिए और पाँच-छः सेवक तथा तीन सहचर दिये जायँ। यह सब कह कर मन्त्री के कान में कुछ और भी जड़ दिया।

अष्टम अंक का आरम्भ रंगमंच पर अकेले भास्कर शर्मा की एकोक्ति से होता हैं। इसके पश्चात् रंगपीठ पर शिवाजी आते हैं। वे भास्कर को विना देखे ही एकोक्ति द्वारा सूचित करते हैं कि कैसे औरंगजेव मेरे उपकार का बदला अपकार से दे रहा है। शिवाजी ने बीमारी का बहाना किया। एक दिन औरंग का भेजा एक वैद्य आया और शिवाजी को मारने के उद्देश्य से दो विष की गोलियाँ दे गया। उन्होंने जान लिया कि यह विषमय गोली है। शिवाजी ने उपाय निकाला कि दान देने की मिठाइयों की टोकरियाँ मेरे पास आयें। उनमें से किसी एक में निकल कर भाग जाना है। पन्द्रह दिन तक वितरण का काम चला। एक दिन शिवाजी भाग निकले। मिठाई लाने की वाहिका उनका यान बनी। उनके भागने पर औरंगजेव ने घोषणा कराई—

यो वृत्वार्पयितुं तमर्हति जनस्तस्मै प्रदेया ध्रुवम्।
मुद्राः पंचसहस्रिका व्रज जवाद् गृह्णातु वा हन्तु वा ॥८.५

औरंगजेव ने शिवाजी को पकड़ने के लिए सेना भेजी। जयसिंह के पुत्र मुर्द्धनसिंह ने शिवाजी से प्रस्ताव किया कि आप औरंगजेव को आत्मसमर्पण कर दें, जिससे युद्ध में निर्दोष प्राणी न मरें। शिवाजी ने उसे समझाया—हमारे साथ आ जाओ, जिससे—

समुत्थापय भारते विजय-वैजयन्तीं हिन्दुजातस्य।

उसकी वकवास सुनकर शिवाजी ने मुँहतोड़ उत्तर दिया—

जोषं युष्मान् हरिरिव मृगान् संहरन्नद्य सद्यः।
गत्वा दिल्लीं सपदि विदलन् पद्मिनीं पद्मवत्ताम्।
वन्दीकुर्वन् निजपुरमिमामानयंस्तं नृशंसम्
मद्वन्दीत्वप्रतिफलमहं सर्वथैव प्रदास्ये॥ ९.२३

अन्तिम दशम अङ्क में शिवाजी के राज्याभिषेक की कथा है। शिवाजी ने युद्ध में औरंगजेव को हराया। औरंगजेव ने शिवाजी को राजा की उपाधि दी।

फलतः राज्याभिषेक होने वाला था। इस अवसर पर रामदास स्वामी ने उन्हें आशीर्वाद दिया—

तापं हर छत्रमिव प्रजानाम्

यह कह कर उन्हे छत्र अर्पित किया। उपाध्याय महेश्वरशास्त्री ने उन्हें मुकुट प्रदान किया। पुरोहित नारायण शर्मा ने दण्ड दिया। भैरवी मुक्तकेशी ने गले मे माला पहनाई। माता जयन्ती देवी ने तिलक लगाया।

अपने विद्यार्थी जीवन के साथियो से अब तक सदैव सहयुक्त शिवाजी ने पूछा कि आप को स्मरण है कि मैंने बालकपन मे पढाई छोड़ दी थी। आप ही की योग्यता का फल है कि महाराष्ट्र को यह वैभव मिला है।

नाट्यशिल्प

हरिदास ने इस नाटक के आरम्भ होने के पूर्व भूमिका मे कहा है—

प्रायेणैव यथायथमितिहासमनुसरता वृत्तान्तपरिवृत्तिमपूर्वता पात्रमात्र च कल्पयता नाटकीयलक्षणादीनि च परिरक्षता नाटकमिदं मया निरमायि।

इसकी प्रस्तावना में पारिपार्श्वक पताका लेकर रंगपीठ पर आता है। यह तिरंगा झण्डा है।

कतिपय अन्य नाटकों की भांति हरिदास ने शिवाजी-चरित में भी गीतों का समावेश किया है। प्रथम अंक के अन्त में नायक के साथियों का बालगीत है—

बालको युवकः प्रौढो वृद्धः मनसा वचसा वपुषा शुद्धः।
भवतु त्वरितमेकतावहः देशोद्धारे मास्तु विरुद्धः।
घर घर प्रहरणं चल चल महारणं
कुरु भारतोद्धरणं न भव कोऽपि विरुद्धः।
इह बहुगुण आर्यः न हि यवननिवार्यः
भवामि कृतकार्यः परमपि सुसमृद्धः॥

नाटक विद्यार्थियों के हाथ मे देने योग्य नहीं बन सका, ऐसे पद्यों के कारण—

या नूतना नूतनमेव भोग्या सा सर्वथा प्रीणयते युवानम्।
न चर्वितायां पुनरिक्षुयष्टौ सा स्वादुता केन च नोपलभ्या॥२.११

चतुर्थ अंक की सामग्री सूचना-मात्र होने के कारण अर्थोपक्षेपक योग्य नहीं है। सम्भवतः अंक संख्या बढ़ाकर महानाटक रूप देने के लिए ऐसा किया गया है। छठें अंक की आरम्भिक सामग्री भी अंकोचित नही है।

रंगमंच पर एक भाग मे अफजल और उसके साथी संवाद करके बैठ जाते हैं। उसी समय दूसरे भाग में शिवाजी अपने दो साथियों से परामर्शात्मक संवाद करते हैं। दोनों भागों के लोग इतर वर्ग की बात नहीं सुन पाते। ऐसी व्यवस्था कुछ अस्वाभाविक सी लगती है, किन्तु असंख्य नाटकों में गृहीत है।

सप्तम अंक के पूर्व विष्कम्भक में दृश्य सामग्री भी पर्याप्त है। उदरवृद्धि और उसके साथी जो करतव करते हैं, उसे देखकर कहा गया है—

अपटुनट इव कटु नटसि, मर्कट इव विकटमुत्पतसि, रोदिषि च चाश्रुपातम्।

नाटक में छायातत्त्व उच्चस्तरीय है। शिवाजी और उनके साथी साधु, नर्तकी आदि बनकर समय आने पर योद्धा बन गये और उन्होंने युद्ध किया।

सप्तम अङ्क का आरम्भ औरंगजेब की तीन पृष्ठ की लम्बी एकोक्ति से होता है। वह दिल्ली राजसभा-भवन में आ रहा है। वह कहता है धर्म का संवर्धन करना जीवन का चरम लक्ष्य है। इस उद्देश्य से मैंने बाप को जेल में डाला, भाइयों को काल के गाल में डाला और अब स्वाधीन भारत सम्राट हूँ। कितने नीच काम करके साम्राज्य पाया है। हमारे प्रपितामह अकबर हिन्दू और मुसलमान को बराबर समझते थे। मुझे अकबर से आगे बढ़ना है। हिन्दुओं को मुसलमान बनाना, वाराणसी में विश्वनाथ-मन्दिर, वृन्दावन में केशव-मन्दिर आदि देवस्थानों को ध्वस्त करके उनके स्थान पर मस्जिद बनवाना है। शिवाजी ने मेरी सहायता की है। उसे छत्रपति बना दिया है। उसे दिल्ली बुलाया है। यहीं उसे बन्दी बना दूँगा।' नवम अङ्क के अन्त में महाराष्ट्र सेनापति गोविन्द सिंह की दो पृष्ठों की एकोक्ति है। उपर्युक्त एकोक्तियों से अर्थोपक्षेपण का भी कार्य लिया गया है। सप्तम अंक का अन्त भी रंगपीठ पर अकेले औरंगजेब की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह शिवाजी का अपवाद करता है। यथा,

तत्तोरणं धूर्ततया त्वमग्रहीः शाठ्यादजैषीरपि पुण्यपत्तनम्।
गर्वोद्धतञ्चाचरसीह संसदिच्छलद् बलाच्चाखिलनिष्क्रियं क्रियाम्॥

इस उक्ति को कवि ने 'आकाशे' नाम दिया है, जो एकोक्ति से भिन्न नहीं है।[1] अष्टम अंक के आरम्भ में भास्कर शर्मा और उसके बाद शिवाजी की एकोक्ति है।

सूक्तिसौरभ

नाटक में सूक्तियों का बहुशः प्रयोग यथा योग्य है। यथा,

१. विषमा पराधीनता पिशाची सर्वेषामेव पौरुषं ग्रसते।

२. एकीभूतः प्रस्तरौघो गिरिः सन् रुन्धे वात्यां तीव्रवेगामपीह।

३. तौर्यत्रिकं ग्रन्थविलासभोगाः खेलाकवित्वं सुकृतिः क्रिया च।
एतेऽनुकूलाः किल शान्तिकाले चण्डक्रियायां तु महान्तरायाः॥१.२०

४. भाषाणां भारतीयानां मूलमेकं हि संस्कृतम्।
मूललोपे च शाखेव सा सर्वा शोषमेष्यति॥२.५

---

१. वस्तुतः आकाशे आकाशभाषित है और कवि का यहाँ आकाशे कहना चिन्त्य है।

४. दर्पणे खल्वनुरूपमेव प्रतिबिम्बं पतति ।
५. न खलु रासभः पादपे फलति ।
६. वपुर्बलाद् बुद्धिबलं गरीयः ।
७. बुद्धिविशिष्टा लोकस्य तदभावे पशुर्हि सः ।
प्रदीपस्याग्निविरहे मल्लिका मृत्तिकैव हि ।।७.६
८. मनसो बलमेव वीरत्वम् ।
९. प्रयागे मूत्रितं येन गंगा तस्य वराटिका ।७.१४
१०. अग्निदाहे न मे दुःखं न दुःखं लौहताडने ।
इदमेव महद्दुःखं गुंजया सह तोलनम् ।।

हरिदास को अपने जीवनकाल में सतत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई । इन्हें १२ उपाधियों से विभूषित किया गया । परीक्षाओं से सात उपाधियाँ मिली । काशी के भारत धर्ममहामण्डल ने इन्हें महोपदेशक की उपाधि दी । भारत-शासन से उन्हें महा-महोपाध्याय की उपाधि मिली । निखिल-भारत-पण्डित-महामण्डल ने इन्हें महाकवि की उपाधि दी । स्वतन्त्र भारत ने पद्मभूषण बनाया । रवीन्द्रशतवार्षिकोत्सव में उन्हें रवीन्द्रपुरस्कार मिला । १९६२ में भारत-राष्ट्रपति की ओर से उन्हें Certificate of Honour मिला ।

वङ्गीय-प्रताप

देशोऽपि हन्त ! विधिना विहितो विदेशः

हरिदास सिद्धान्तवागीश ने वंगीय-प्रताप की रचना १८३९ शक-संवत्सर तदनुसार १९१७ ई० में की[1] इसी वर्ष इसका प्रथम अभिनय कवि के घर पर कोटा-लिपाडा के उनशिया गाँव में उदयन-समिति के सदस्यों के द्वारा किया गया । तीन वर्ष के पश्चात् कलकत्ते में मिनर्वा रंगालय में उदयन-समिति ने द्वितीय बार इसका अभिनय किया । उसी वर्ष कलकत्ते के विवेकानन्द-बालिका विद्यालय में पुरस्कार-वितरण-सभा में इसके २२ अभिनेताओं को २२ रौप्य पदक प्रदान किये गये । प्रथम अभिनय में कालिपद दर्शनाचार्य और द्वितीय तथा तृतीय अभिनय में शशिशेखर विद्यारत्न ने नाट्य-समाज का परिचालन किया था । राजा यतीन्द्रनाथ नकी-पुरनरेश प्रथम अभिनय के सभापति थे ।

कथावस्तु

शङ्करचक्रवर्ती नामक ब्राह्मण युवा नवाब शेरखां के हिंस्र कर्मचारियों से प्रपीडित जनता की सहायता करने के कारण उनका कोपभाजन बनकर दण्ड से

१. अङ्काग्नि नागेन्दुमिते शकाब्दे यन्निर्ममे श्रीहरिदासशर्मा । अर्थात् १८३९ शकसंवत्सर में इसकी रचना हुई थी ।
इसका प्रकाशन १९४४ ई० में कलकत्ते के सिद्धान्त-विद्यालय से हुआ था ।

बचने के लिए वन में भाग आया। वहाँ उसे एक बाघ मिला, जिसे उसने तीर से मार गिराया। उस बाघ के पीछे कुछ अन्य सैनिक पहले से ही पड़े थे। शीघ्र ही उनका स्वामी प्रतापादित्य घटनास्थल पर आ पहुँचा। बातचीत के बीच प्रताप को ज्ञात हुआ कि शंकर काम का व्यक्ति है। शंकर ने अपना मनस्ताप बताया कि यवनों के राज्य में क्या हो रहा है—

नवीनस्त्रीमात्रं गणयति विलासोपकरणं
प्रजानां सर्वस्वं करगतनिजस्वं च मनुते।
तृणस्तेये दण्डं प्रणयति परप्राणहरणं।
निरीहाणां खेलाकुतुकमसुभिः पूरयति च ॥१.१६

मैं ऐसे पीडित जनों का सहायक हूं—यह गुप्तचरों से जान कर नवाब ने मुझे पकड़ने का आदेश दिया है। तब मुझे वन की शरण लेनी पड़ी। दोनों का देश-निर्माण के प्रति समभाव होने से साहचर्य की इच्छा बढ़ी। प्रताप ने अपना विचार प्रकट किया—

विधर्म्यधीना बत भारतप्रजा नदीप्रवाहे पतिता लता यथा।
नैवोन्नतिं गच्छति निष्फलोद्यमा परानुगत्यं हि लघीयसां क्रिया ॥

शंकर ने प्रतिज्ञा की—प्राणपण से मैं आपका अनुवर्तन करूँगा। द्वितीय अंक में यशोरराज्य के नरपति वृद्ध विक्रमादित्य से पूर्वपरिचित वैष्णव गोविन्ददास और श्रीनिवास मिलते हैं।[1] वे बताते हैं कि आपने जिस वसन्त पर राजकाज छोड़ रखा है, वह विषय-ग्रस्त हो गया है। उनकी हरि-चर्चा के बीच शरविद्ध चील रंगपीठ पर गिरा। पता चला कि उसे कुमार प्रताप ने मारा है। वसन्त से उसके अमात्य नवानन्द ने बताया कि शङ्कर नामक ब्राह्मण-युवक की संगति के प्रभाव से प्रताप बिगड़ा जा रहा है। उसे कुमार प्रताप ने अपना मन्त्री बना लिया है। विक्रम ने अपना विचार स्पष्ट किया कि मैं वाराणसी जाकर वहीं रहना चाहता हूँ। विक्रम ने वसन्त से पूछा कि प्रताप की चरित्र-शिक्षा के लिए क्या किया गया है। वसन्त ने कहा—वह सच्चरित्र है। उसकी चरित्र-शिक्षा की बात व्यर्थ है। विक्रम ने कहा कि उसे देशदर्शन के लिए भेजा जाय। भारत-राजधानी दिल्ली में भेजने के प्रस्ताव का वसन्त ने विरोध किया—

प्रलोभनकरं परं विविधवस्तुसज्जीकृतं,
विलोक्य ननु संयतो भवितुमेव शक्नोति कः।
विकासि कुसुमावली ललितकानने को जनः,
परिस्फुरितसौरभं परिहरन् विहर्तुं क्षमः ॥

नवानन्द को प्रतापादित्य को दिल्ली भेजने की तैयारी करने का काम दे दिया गया।

---

१. विक्रमादित्य कायस्थ-जातीय सामन्त था।

तृतीय अंक के आरम्भ में कार्य-स्थल शंकर का घर है। नवाब ने अपने सेनापति सुरेन्द्रनाथ घोषाल को वहाँ भेज रखा है कि सभी अपराधी और शंकर की पत्नी को पकड़कर लाओ। शंकर ने घर से भागते हुए भवन-भार सूर्यकान्त गुह पर छोड़ते हुए कहा था कि शीघ्र ही आऊँगा। यवन-दासों से शंकर के घर की दो-चार दिन तक रक्षा पड़ोसियों की सहायता से हो सकी। सूर्यकान्त ने सुरेन्द्र से घूस लेकर लौट जाने की प्रार्थना की। सुरेन्द्र तैयार न हुआ। सूर्यकान्त ने अनुनय-विनय की, पर सुरेन्द्र पर कोई प्रभाव न पड़ा। फिर भी सूर्य ने निर्णय किया कि इस पिशाच के हाथ में शंकर की पत्नी को न दूँगा। उसने पुनः प्रार्थना की—आप ब्राह्मण हैं। एक ब्राह्मण (शंकर) का आपके हाथों अनर्थ हो—यह कहाँ तक उचित है ? सुरेन्द्र प्रचण्ड होता गया तो सूर्यनाथ ने कह डाला—

सतीकुलशिरोमणिं द्विजदरम्य पत्नीं द्विजो
भवन्नपि समीहसे यवनभोगसम्पत्तये।
कदापि भविता न ते फलवतीयमाशालता
सवीयहविषः स्रुतिः पतति कुक्कुरास्ये किमु॥३·८

मैं समर में मर जाऊँगा, पर शंकर की पत्नी को तुम्हारे हाथों में न जाने दूँगा। सुरेन्द्र ने कहा—

हरति यवननाथः कस्यचित् कामिनीं चेत्।
प्रभवति किमु रोद्धुं कोऽपि कायस्थ एकः॥३·१३

सूर्यनाथ ने उसे गालियाँ सुनाईं—कर्मचाण्डाल, यवनपदलेहननिर्घृतधर्मा आदि। तब तो सुरेन्द्र ने आज्ञा दी—सूर्यनाथ को क्षुद्रनलिका से मारकर बाँधो। तभी मुकुन्दघोष ने तलवार उठाकर सुरेन्द्र से कहा—अब तो आपकी ही गर्दन पहले कटनी है। इस तुमुल में शंकर के पक्षधर परास्त हुए। सुरेन्द्र शंकर की पत्नी के पास पहुँचा। वह शिव की स्तुति कर रही थी—

कलकलकारि जाह्नवीवारि वहति नदति जटाजाले।
हिमगिरिकन्या भुवनशरण्या मिलनि वपुषि विशाले।
अतिमनोहरो बालनिशाकरो विकसति विलसति भाले।
नाशय विपदं देहि हृदि पदं शङ्कर मम चिरकाले।

वहाँ आक्रमणकारी सुरेन्द्र आ पहुँचा। शंकर-पत्नी ने आत्मरक्षा के लिए छुरी निकाल ली। सुरेन्द्र ने कहा—आप नवाब के अन्तःपुर को सुशोभित करने के लिए चलें।[1] उसने पालकी पर उसे बैठने के लिए कहा। उसी समय शंकर और प्रताप वहाँ आ पहुँचे। सुरेन्द्र मार डाला गया। कल्याणी को बचाकर वे यशोर जाने वाली नौका की ओर चल पड़े।

१. जहीहि निर्धनाश्रयं चल नवाबहर्म्यान्तरम्।

चतुर्थ अङ्क में चार वर्ष बाद का घटना-चक्र है। दिल्ली में सम्राट् अकबर का दरबार दृश्य-स्थली है। मिवार से मानसिंह ने अकबर को पत्र लिखा कि राना प्रताप ने तिरस्कार किया है। अतएव मैं व्रत लेता हूँ—

यद्यमुष्य प्रतीकारं न कुर्यां वीर्यवानपि।
तदाम्बरं न यास्यामि यास्याम्यम्बरतां ध्रुवम् ॥४.७

पश्चात् यशोर-राजकुमार की अकबर से भेंट हुई। प्रताप ने अकबर को एक रत्न भेंट में दिया। अकबर उसकी महिमा से प्रभावित हुआ। यशोर-राज्य से तीन वर्षों से कर अकबर के राजकोश में नहीं भेजा गया था। इस विषय में पूछने पर शङ्कर ने बताया कि वहाँ के वृद्धराजा विक्रमादित्य ने अपने भाई वसन्त राय को राज्यभार दे रखा है। स्वयं वे नारायण-परायण हो गये हैं। वसन्तराय ने तीन वर्षों से कुमार प्रताप को दिल्ली की ओर भेज रखा है, क्योंकि वे कुमार से डरते हैं। यहाँ कुमार ने दिल्ली में रहकर शस्त्र और शास्त्र की पूरी शिक्षा ले ली है। अकबर प्रताप से प्रसन्न होकर बोला 'भवन्तं पुरस्कर्तुमिच्छामि। प्रताप ने कहा—आप राजराजेश्वर मेरे लिए जगदीश्वर हैं। अकबर ने यशोर का राज्य पूरा प्रताप को दे दिया। शंकर से प्रताप ने अकेले मे कहा कि मैं चाचा का अधिकार नहीं छीनना चाहता। शंकर ने कहा मूर्ख न बनो। फिर तो प्रताप अकबर के पूछने पर बोला कि वसन्तराय आपके आदेश का पालन नहीं करेंगे। अकबर ने आदेश दिया—प्रताप से कर लिया जाय, १२,००० राजपूत-योद्धा और १०,००० मुगल-योद्धा प्रताप के साथ जायें और घोषणा कर दी जाय कि बङ्गाल का नवाब भी यदि गड़बड़ी करे तो प्रताप स्वेच्छापूर्वक उससे व्यवहार करें। अकबर ने कहा--

प्राज्यैश्वर्ययशोरराज्यमखिलं तल्लेख्यपत्रान्वितं
सैन्यान् जन्यजयक्षमानपि महाराजेत्युपाधिं त्वयि।
भक्तिस्वीकृतमाददन्ननु ददे स्वल्पोऽपि मूल्यान्महान्
स्वर्णस्याणुरयश्चयस्य हि समः स्वस्त्यस्तु शास्तु प्रजाः ॥४.३३

पंचम अङ्क में नवाब यशोर पर आक्रमण करता है। उसकी सेना का स्कन्धावार यशोर से दो योजन दूर बना। उसके केन्द्र में नवाब का वासभवन बना। गुप्तचर मदनमल्ल ने यवन-वेश में नवाब की सारी स्थिति जानकर प्रत्याक्रमण करने वाले प्रताप को बताया। नवाब यशोर पर आक्रमण करके प्रताप को दण्ड देकर अपने पक्ष के राजकर्मचारियों को मुक्त करके शङ्कर की पत्नी कल्याणी को पाना चाहता था। उसके वासभवन में तोराब नामक उसका मित्र ललितादि तीन नवीन कन्याओं को कामाग्नि बुझाने के लिए लाया था। जिस समय उन्होंने आत्मत्राण के लिए शंकर को अपने गीत में सम्बोधित किया, उस समय नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

हर, हर महादेव, गुड्डुम् गुड्डुम् डुम्।

शङ्कर ने तोपों से आक्रमण कर दिया। फलतः नवाब को कहना पड़ा—

पंगुर्लंघयते गिरिं क्षितिगतो धत्ते विधुं वामनः
दर्पान्धं विजिगीषते मृगशिशुः सिंहं द्विपेन्द्रद्विपम्।
खद्योतो द्युतिभिर्नुनोति तरणिं ताक्ष्यं च धावत्यहिः
मामेवाक्रमणीय एष सहसा दुर्बुद्धिराक्रामति ॥ ५.१२

दूर से कुछ देर तक युद्ध देखने के पश्चात् वह स्वयं तलवार लेकर शत्रुओं से लड़ने चल पड़ा। उस पर शंकर टूट पड़ा। प्रताप ने उसे रोका कि नवाब का प्राण न लो। धीरेन्द्रदत्त ने नवाब से कहा—

स्मर तावदात्मनोऽत्याचारम्।

नवाब ने अपने प्राणरक्षक प्रताप के चरणों पर अपना मुकुट रख दिया। तोराब और नवाब को बन्दी बना लिया गया। यशोरपति की स्वाधीनता घोषित की गई।

छठें अङ्क के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार विक्रमादित्य ने राज्य का दस आना प्रताप को और छः आना अपने छोटे भाई वसन्त को दे दिया। यशोर वसन्त की राजधानी नियत हुई। प्रताप की राजधानी धूमधाम से नई बनी। विक्रम ने नवाब को मुक्त करा दिया। प्रताप की कन्या बिन्दुमती का विवाह चन्द्रद्वीप के रामचन्द्र से कर दिया गया। लोगों ने रामचन्द्र को डरा दिया। वह डर कर वधू को छोड़ कर रातों-रात भाग गया।

षष्ठ अङ्क के प्रायः अन्त में प्रताप का राज्याभिषेक-दृश्य है। इस अवसर पर प्रताप ने भूमि और वृत्ति दान में दी।

सप्तम अङ्क में यशोर पर मानसिंह का आक्रमण होता है। इसके पूर्व विष्कम्भक के अनुरूप भवानन्द नामक वसन्तराय के मन्त्री ने दिल्ली जाकर मानसिंह से सब मनगढन्त आरोप प्रताप के विरुद्ध लगाये। इधर एक दिन वसन्तराय जब प्रताप को मारने के लिए सचेष्ट था तो प्रताप ने उसे मार डाला। इससे भवानन्द और क्रोधित हुआ। वसन्तराय के पक्ष में सभी सशंक होकर वनों में भागे या यवनों की शरण में गये। इधर प्रताप के सेनापति सूर्यकान्त ने पुर्तगालियों से मेल करके रडा नामक पुर्तगाली को अपना नौसेनापति बनाया।

अकबर की मृत्यु होने पर जहाँगीर ने यशोर जीतने के लिए दो लाख सैनिकों को मानसिंह की अध्यक्षता में दिल्ली से भेजा। इधर यशोर के निकट भवानन्द और राघव मिले। भवानन्द मानसिंह को उसकी सेना-सहित कहीं छिपाये हुए था। मानसिंह का दूत एक बेड़ी और एक तलवार लेकर प्रताप से मिला और कहा कि इनमें कोई एक मानसिंह की भेंट-रूप में ग्रहण करें। प्रताप का उत्तर केशव भट्ट के मुख से था—

अयं तेन दत्तः कृपाणोऽसुनैव प्रतिक्षिप्तमेनं ससेनं निहत्य।
ततोऽस्य स्वसुः स्वामिनं सेलिमं च प्रतापोऽचिराद्बङ्गनाथो निहन्यात्॥

प्रताप और मानसिंह के युद्ध में प्रताप के विरुद्ध लड़ने के लिए राघव ने भवानन्द से आशीर्वाद प्राप्त किया। भवानन्द ने कहा—प्रताप, शङ्कर और सूर्यकान्त की दृष्टि से बचना। स्वयं भवानन्द मानसिंह की ओर से लड़ने चला। वह समझता था अपने विषय में—

नरकेऽपि न स्थानं मादृशानां स्वजातिदेशद्रोहिणाम्।

युद्ध में उदयादित्य ने मानसिंह के पुत्र दुर्जनसिंह पर आक्रमण किया। दुर्जन युद्ध में मारा गया। मानसिंह की पराजय हुई। हारे मान पर प्रताप ने पुनः आक्रमण किया। राघव ने उससे प्रत्याक्रमण करने के लिए कहा। मानसिंह ने कहा कि केवल प्रतिरक्षामात्र करने के लिए हमारा प्रयास होगा।

युद्ध में मानसिंह ने प्रताप पर आक्रमण किया। उस समय सूर्यकान्त प्रताप की सहायता के लिए आ पहुँचा। प्रताप की जीत हुई।

नाट्यशिल्प

हरिदास एकोक्तियों के प्रयोग में निपुण हैं। प्रथम अङ्क का आरम्भ शङ्कर चक्रवर्ती की दो पृष्ठ की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह बताता है कि किस प्रकार मैं नवाब शेर खाँ के निग्रह से डर कर जंगल में भाग आया हूँ—

स्वाधीनता-विरहितः परिदुर्बलाङ्ग आक्रान्तिमात्रमतिभीतिपलायमानः।
अङ्गैः किलाङ्गमभिगुप्य शृगालतुल्यो घोरं वनं प्रविशति शंकरचक्रवर्ती॥

सारे देश में अयोग्य व्यक्तियों का उत्थान और योग्य व्यक्तियों का अत्याचार-पीडन हो रहा है। लोग हतोत्साह हैं। क्या देश का भाग्य पलटेगा? अवश्य, किन्तु इसके लिए किसी सत्पुरुष की आवश्यकता है। मैं ही वह बनूँगा। पर फिर तो मेरी पत्नी को यवन खा जायेंगे। मुझे अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए पत्नी की चिन्ता को बाधक नहीं बनने देना चाहिए। मैं चलूँ इस वन में किसी पर्वत-गुहा में किसी योगी से उपदेश ग्रहण करूँ। आगे चलने पर उसे एक व्याघ्र दिखाई देता है, जिसे देख कर वह कहता है कि इससे क्या डर? मेरे यवन-पड़ोसी तो इससे भी बढ़ कर हिंस्र और अविवेकी हैं—

नारीधर्मं न हरति न वा जातिनाशं विधत्ते
धर्मग्रन्थं दलति न च नो देवमूर्तिं भनक्ति।
तीर्थस्थानं कलुषयति नो नापि वास्तुच्छिनत्ति
शून्यारण्ये भ्रमति निनदन् सम्मुखस्थं हिनस्ति॥ १.११

द्वितीय अङ्क का आरम्भ विक्रमादित्य की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह अपने जीवन की राजकीय उपलब्धियों की चर्चा करता है, अपने चचेरे भाई के हाथ में राज्य भार दे रखा है, पुत्र कर्मनिपुण है, स्वयं वृद्ध हो चुका है, स्वयं विरागी वैष्णव हो चुका है। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में अकबर की एकोक्ति को कवि ने स्वगत नाम दिया है। इसमें स्वगत के लक्षण भी हैं। पंचम के बीच से सभी पात्रों

के निष्क्रमण के पश्चात् नवाब अकेले रंगमंच पर आकर कल्याणी के चित्र को निहारते हुए एकोक्ति द्वारा अपनी लिप्सा प्रकट करता है। यह एकोक्ति दो पृष्ठों की है।

सप्तम अङ्क के आरम्भ को डेढ पृष्ठ की भवानन्द की एकोक्ति में बताया गया है कि किस प्रकार वसन्तराय के जीवनकाल मे कितना ऐश्वर्य विलास था और अब स्थिति कितनी विषम है। जैसी राक्षस और मलयकेतु की दशा थी, वैसी ही मेरी और राघव की है। भरोसा मानसिंह का है। इसके पश्चात् रंगमञ्च पर आये राघव की एकोक्ति है। वह भवानन्द को नहीं देखता और मूर्छित हो जाता है। भवानन्द की एकोक्ति सातवें अङ्क के मध्य मे है। वह अपने देशद्रोह से व्यथित होकर कहता है।

'धरातल, धरातल, देहि मे तलातलेऽवकाशम्।

वह भूतकाल के सभी देशद्रोहियों का स्मरण एकोक्ति में करता है। वह युद्ध का वर्णन इस एकोक्ति द्वारा प्रस्तुत करता है। आठवें अङ्क के आरम्भ में रंगपीठ पर अकेले मानसिंह की एकोक्ति द्वारा अपने पुत्र दुर्जन के युद्ध मे मारे जाने का विलाप-वर्णनीय है।

युद्ध रंगपीठ पर नहीं होना चाहिए—इस मान्यता को लेकर कवि ने नवाब को दूरवीक्षण दे रखा है। वह युद्ध का वर्णन रंगमच से प्रस्तुत करता है। सप्तम अङ्क में उदयादित्य और दुर्जन सिंह के वाग्युद्ध का दृश्य प्रभावशाली है।

छठे अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में कुछ इधर-उधर की अप्रासंगिक बातें भी हैं। यथा,

वेत्ति पारं सरस्वत्या मधुसूदनसरस्वती।
मधुसूदनसरस्वत्याः पारं वेत्ति सरस्वती॥

छठें अङ्क के आरम्भ में सूच्य सामग्री बलराम के वक्तव्य मे है—

'मुद्राविशेषाङ्कितं प्रतिपादय पत्रम्' इत्यादि।

इस अङ्क के आरम्भ मे कोई उच्चकोटिक पात्र न होना त्रुटिपूर्ण है।

अष्टम अङ्क मे पटपरिवर्तन होता है और फिर प्रतापादित्य रंगपीठ पर आते हैं।[1] उन्हें संवेत मिलता है कि स्वयं मानसिंह सेना का नेतृत्व करते हुए पुनः आक्रमण कर रहा है। उसके दोनों ओर सेना युद्ध करने के लिए प्रताप ने भेजी। मानसिंह प्रताप के पास आया और बोला—तुम राजद्रोह कर रहे हो।

दिल्लीश्वरार्पितबलं प्रणयादुपेत्य शास्त्रं च सभ्यनियमं च मदादपेत्य।
तस्यैव राज्यहरणे कुमतिः प्रवृत्तः पूर्णं निदर्शनमसीह कृतघ्नतायाः॥८.१४

१. अथ परिवर्तिते पटे प्रविशति युद्ध-सन्नद्धः प्रतापादित्यः

प्रताप ने कहा—मेरी कृतघ्नता नगण्य है अतिमातृद्रोह की तुलना में।[1] माता से बढ़ कर जन्मभूमि है—

धत्ते सा दश मासमात्रमखिलानाजीवनं जन्मभूः।
स्तन्यं यच्छति समाद्वयमियं भक्ष्यं चिरायाङ्गजम्।
बालेन प्रहृतैव तं प्रहरते सैषा तु सर्वंसहा
मातुर्भूमिरनेकधा गुरुतरा तेनातिमातोच्यते॥

मानसिंह का अपवाद प्रताप ने इस प्रकार किया—

वसस्युदग्रे यदि पर्वताग्रे चरस्यथो वा गहनप्रदेशे।
निहंसि वा यद्यपि मूढजन्तून् तथापि सिंहः पशुरेव नान्यः॥७.५१

गर्भाङ्क नाम से तृतीय अङ्क में एक अभिनव दृश्य उपस्थित किया गया है। इसकी प्रस्तावना सूत्रधार प्रस्तुत करता है, जिसमें अर्थोपक्षेपण है कि शंकर के सहायक परास्त हुए और यवन सैनिक शंकर के घर में घुस रहे हैं। सुरेन्द्र कल्याणी के बम-बम को सुनकर देवी की स्तुति का बम-बम करके उपहास कर रहा था। प्रस्तावना के पश्चात् सुरेन्द्र वहाँ पहुँचता है, जहाँ शंकर की पत्नी कल्याणी शिव-स्तुति कर रही है और उसके समक्ष कुत्सित प्रस्ताव रखता है—

जयेच्छा चेद्बलवती कटाक्षं क्षिप सुन्दरि।

चतुर्थ अङ्क में मानसिंह ने अकबर को पत्र द्वारा मिवार की घटनाओं की सूचना दी है। यह अङ्कभाग में अर्थोपक्षेपण है।[2]

रंगपीठ से सभी पात्र पंचम अङ्क में चले जाते हैं। फिर अकेले नवाब कल्याणी (शंकर की पत्नी) का चित्र लेकर आता है। यह नया दृश्य बनाकर ही प्रस्तुत होना चाहिए था, किन्तु इस नाटक में दृश्य-विधान नहीं है।

नाटक में उपदेश की वृत्ति इतनी लम्बायमान नहीं होनी चाहिए थी। सविधानों के माध्यम से कवि ने ऐसे भावों को पद्यों में निबद्ध किया है, जिनको व्यक्त करने पर प्रेक्षक निस्तब्ध रह जाते हैं। यथा, कल्याणी कहती है—

तदिदानीमेव,
शिरो नमतु वासुकेः पततु भूतलं प्रस्खलत्
क्षितौ लुठतु भास्करः किरतु सेन्दुतारा नभः।
जगद्दहतु सर्वशो ज्वलितकोटिजालातलः
विलोकयतु विक्रमं भुवनमार्यसत्याः क्षणात्॥ ३.२३

---

१. जन्मभूमिरेवातिमाता
२. ऐसा ही अर्थोपक्षेपण सप्तम अंक में भवानन्द और राघव के संवाद में है, जब वह बताता है कि कैसे मानसिंह के दूत ने प्रताप को बेड़ी और तलवार में से कोई एक अपने लिए चुन लेने के लिए कहा था।

परिस्थितियों में नाट्योचित विपरिवर्तन आकस्मिक होने से उनकी विशेष प्रभविष्णुता है। यथा, तृतीय अंक में इधर नवाव कल्याणी को शिविका में बैठाने के लिए आदेश देते हैं, उधर तत्क्षण उसके रक्षक शंकर और प्रताप आ पहुँचते हैं।

हास्य की धारा प्रवाहित करने में कवि निष्णात है। यथा षष्ठ अंक में—

नारीणां गुडिका विखण्डितदलं दोक्ता च सक्ता पृथक्
नस्यं भूरिमनीषिणां च चुरटं चंचद्विलासात्मनाम्।
हुक्का-गुड़गुड़िकाल्वला-विलसनैः शेषान् समालम्वते
चक्रं दर्शयते च्युतं वितनुते मुक्तिं प्रदशे परम्॥ ६.६

कवि माघ के विषय में पूछने पर पण्डित कहता है—

माघं को न जानाति, यत्र किल वंगेष्वपि महच्छीतम्। 'अस्ति कालिदास-सम्पर्कः' पूछने पर उसने बताया—

अस्ति महान् सम्पर्कः। स हि मे पत्नी-भ्राता।

तृतीय ने अपनी श्यामा का वर्णन सुनाया—

"देवीमम्वां सुनानां क्षितिधरवदनां भ्राष्ट्रकान्ति जघन्याम्
खट्वारूढामुदारामरुणितनयनां सर्वदा वग्वगन्तीम्"

इस प्रकार अंकमात्र में इस नाटक में कथा-प्रवर्तन की दृष्टि से अनपेक्षित महती सामग्री का समावेश चिन्त्य है।

गाली-गलौज की वाग्धारा केवल मध्यम या अधम कोटि के नायकों में ही नहीं, अपितु उत्तम कोटि के नायकों में भी प्रकाम सम्वायमान है।[1]

संगीत-साम्मनस्य

वङ्गीय प्रताप में साङ्गीतिक मनोरञ्जन स्थान-स्थान पर विनिवेशित है। प्रथम अंक का आरम्भ शंकर के गीत से होता है। द्वितीय अक में श्रीनिवास नामक वैष्णव साधु गाता है—

जीव, श्रीनरदेहो
निमेषे हि नाशमेति किं मानमहो।
गृहं त्यज वनं व्रज, हरिं भज किमिच्छसि हो।
नारी-नरः प्राणश्वरः, स्थिरतरः कोऽपि किमाहो।

इसके पश्चात् गोविन्द ने गाया—

अवोध मानव राजति भगवान्
अनिले, अनले दिवि भुवि जले सर्वशक्तिमान्। इत्यादि

१. अष्टम अंक में प्रताप और मानसिंह का दुर्वाद इसका निदर्शन है।

तृतीय अंक के पूर्व विष्कम्भक का आरम्भ धीवरों के प्राकृत-गीत से होता है। यथा,

'अले, आकासे वहइ वाओ भासइ मेहो दीसइ भंगओ' आदि।

पंचम अंक में नृत्य के साथ रंगपीठ पर गीत का आयोजन है। गीत है—

'मन्द-मन्दगन्धवहो वहति शीतलः कूजति कोकिलः' इत्यादि।

इस अंक में नवीन कन्याओं के संगीत में भावी घटना की व्यञ्जना भी है। यथा,

'शंकर संहर तिमिरमतिदुस्तरमवतर वितर करुणाम्' इत्यादि।

अन्यत्र षष्ठ अंक में वैतालिक का गीत है–शारदे, वरदे, गतिदे मतिदे' इत्यादि।

छायातत्त्व

वंगीयप्रताप में छायातत्त्व बहुविध है। वेश बदले हुए, मनोभाव बदले हुए और रूप बदले हुए अनेक चरित-नायक हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है नवाब का पंचम अंक में कल्याणी का चित्र लेकर कथन—

उदयति शरदिन्दुः किं वृथास्या मुखान्ते
विकसति कमलं किं लोचनोन्मीलनेऽपि।
वलति किं मृणालं बाहुसन्दर्शनेऽपि
स्फुरति सति किमंगे शारदी कौमुदी वा॥५·२

रंगपीठ पर व्याघ्र को तीर मारकर गिराने का अभिनय छायातत्त्वात्मक है। इसमें मनुष्य व्याघ्र बना था।

समसामयिकता

सूत्रधार ने इस नाटक की प्रस्तावना में कहा है—सामाजिकों का आदेश है कि देशप्रेम-निर्भर, सुन्दर प्रबन्ध का अभिनय होना चाहिए।[1] सूत्रधार ने आगे चलकर पुनः बताया है—

विषमयवनराज्यात् प्राज्यदुर्नीतिपूर्णात्
सुषम-विषमभावप्राप्तमिराजराज्यम्।
स्वजनकृतमुपेत्य ज्ञातमिच्छुः स्वभावात्
तमस इव शशांकं पूर्ववृत्तानि लोकः॥८

शंकरचक्रवर्ती के नीचे लिखे मातृसेवोपदेशात्मक गीत से अन्त होता है—

'हे सन्तान तव जननी
धनजन-समन्विता केन अनाथिनी
परमुखे दृष्टिकरी परद्वारे भिक्षाकरी
यथादीन-हीननारी जीविता विषादिनी' इत्यादि

कवि ने भारतीय दुर्दशा की सूक्ष्मावेक्षिका प्रस्तुत की है—व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थ के लिए लोग सत्पथ से च्युत हैं।

---

१. तदद्य कश्चन देशानुरागनिष्यन्दी सुन्दरः प्रबन्धोऽभिनेतव्यः।

सूक्ति-सम्भार

१. कुतो नाम गंगावगाहनं कूपमण्डूकानाम्।
२. दिङ्मूढो हि दिवाकरं दिगन्तरोदितं पश्यति।
३. तमो हि सूर्योऽप्यनुदित्य हन्ति न।
४. क्षुद्रस्य पक्षिणः सागरसेचनोद्यमः।
५. कः कुर्यात् मूषिकं हन्तुं बृहन्नालीकयोजनम्।

ऐतिहासिकता

इस नाटक के सप्तम अंक में ऐतिहासिक सामग्री महत्त्वपूर्ण है। इसमें बताया गया है कि प्रताप की ओर से पुर्तगालियों को सहायता कैसे प्राप्त हुई। इस प्रकार की सामग्री से अनेक स्थलों पर यह नाटक इतिहास हो गया है, जो नाट्योचित विधान नहीं है।

इस नाटक की समाप्ति दूसरे दिन के युद्ध तक कर दी गई है। तीसरे दिन राघव के द्वारा सुझाये हुए कूट पथ से मानसिंह ने झूठ घोषणा कराई कि प्रताप मारा गया। सेना का उत्साह भंग हो गया। सेना के तितर-बितर होने पर प्रताप बन्दी बनाया गया। उसकी राजधानी जला दी गई। लोहे के पिंजरे में प्रताप हाथी पर दिल्ली के मार्ग में वाराणसी तक पहुँच कर मर गया।

विराजसरोजिनी

विराजसरोजिनी नामक नाटिका की रचना १९०० ई० में हुई।[1] इसके पूर्व ही कवि ने जानकीविक्रम नामक नाटक की रचना की थी। नाटिका की एक विज्ञापना कवि-विरचित है, जिसके अनुसार १९०४ ई० में वृषसंक्रान्ति के समय सावित्री-व्रत के अवसर पर महाभारत का उद्यापन हुआ। वागीश ने स्वयं महाभारत-पाठ किया था। उद्यापन-दिवस पर विद्वानों की महती सभा आ जुटी थी। कवि के गुरु आनन्दचन्द्र विद्यारत्न और कृष्णदास राय ने प्रेरणा दी कि विराजसरोजिनी नाटक का अभिनय भी होना चाहिए। इसके अभिनय में कवि के सहपाठी विनोदबिहारी भट्टाचार्य आदि और छात्र हरेन्द्रनाथ और आशुतोष राय की प्रमुख भूमिका थी। अभिनय नितान्त सफल हुआ।

कथासार

मालवदेश का राजा हरिदश्व वाराणसी की किसी अभिमानिनी कुमारी गन्धर्वराजकन्या सरोजिनी के प्रेम परवश है, जो उसे बढ़ावा नहीं देती। वह दीवाल से छिप कर नायिका को देखने लगा कि वह नायिका मुग्ध है। यथा,

इममेव युवा नवाङ्गनाललितालापरसं पिपासति।
युवकात्मनि यस्य सन्निधौ नवपीयूषरसोऽपि नीरसः॥

---

१. इसका प्रकाशन १३१७ बंगाब्द में कलकत्ते से हुआ। इसकी प्रति वाराणसी के श्रद्धेय ताराचरण भट्टाचार्य के पुस्तकालय से प्राप्त हुई।

उसकी सहेली हेमलता ने शिव से प्रार्थना की—

सरोजिनीं हरिदश्वकरयोगान्मोदयस्व।

फिर तो नायक नायिका के पास आ गया। तभी सरोजिनी की माता ने उसे बुला लिया।

एक दिन नायिका ने चित्रलेखा को आकाश मार्ग से मालव-देश भेजा कि नायक को उड़ा लाओ। वह वहाँ पहुँची और मन्त्रपाठ करके सरसों फेंक कर नायक को बलात् सुला दिया। वह निद्रित होकर सरोजिनी-विषयक प्रणयालाप करने लगा। तभी महादेवी भी आ गईं और कुछ सुना तो पूरा सुनने के लिए वहीं जमकर बैठ गईं। चित्रलेखा को निराश होकर लौट जाना पड़ा।

इस बीच सरोजिनी नायक-कक्ष में आकर इस प्रकार दिव्य शक्ति से खड़ी हो गई कि केवल नायक ही देख सके—और कोई नहीं। नायक ने जगकर उसे देखा—

शशिकला सकला तनुमण्डले नयनयोरनयोरसितोत्पले।
विकसितं च सितं कमलं मुखे समुदये च सुवर्णलता मता॥ २.१६

वहाँ महादेवी आ गईं। सरोजिनी चलती बनी। नायक वहाँ से महादेवी से मिलने के लिए प्रमद-सौध की ओर चलता बना।

द्वितीय अंक में महादेवी ने नायक को ललकारा कि आपका सरोजिनी से प्रेम चल रहा है। पर अन्त में यह मान गई कि अन्य प्रेयसी भी आप रख सकते हैं। नायक ने समझाया—

प्रथमा त्वयि प्रियतमे प्रियता न हि सा विनंक्ष्यति परेऽपि गता।
अपरं तरुं स्वशिरसाश्रयते व्रततिर्न तु त्यजति मूलमपि॥२.३६

तृतीय अंक में सुबाहु नामक दानव सरोजिनी का अपहरण करने के लिए योजनायें कार्यान्वित करता है। उसे सरोजिनी दिखाई पड़ती है। वह उसका वर्णन करता है—

ऊरू स्तम्भौ विरलविरला लोममाला च भित्तिः
द्वारं दृष्टिः निधिरपि कुचच्छादनं केशपाशः।
दीपो वक्त्रं नयनकुसुमे भ्रूलते तोरणे च
वामानाम्नी रतिसहचरस्योत्तमाट्टालिकेयम्॥ ३.११

सरोजिनी ने उससे डरकर निवेदन किया कि मैं तो हरिदश्व की हो चुकी हूँ। सुबाहु ने कहा कि हे गन्धर्वे, दानव और मानव में से तुम मानव को कैसे चयनीय समझती हो? मैं तुम्हारे लिए मर रहा हूँ। और भी—

त्वदर्थं जातोऽस्मि प्रणयिनि विहीनेन्द्रिय इव।

दानवराज सुबाहु उसे बलात् अपने वश में लाने ही वाला था कि वीरसिंह नामक हरिदश्व का सेनापति सशस्त्र आकर सुबाहु से भिड़ गया। पहले तो दोनों

में गालिदान हुआ। अन्त में डर कर सुबाहु भाग गया और हरिदश्व को सरोजिनी सदा के लिए मिल गयी।

नाट्यशिल्प

कवि ने लोकरंजन के लिए नृत्य और संगीत का आद्यन्त सहयोग रखा है। प्रस्तावना में ही नटी नाचती और गाती हुई रंगपीठ पर आती है। स्त्रीमुख से होने पर भी गीतों को संस्कृत में ही रखा गया है, नियमानुसार प्राकृत में नहीं। प्रथम अंक का नायिका और उसकी सखियों का गाया हुआ प्रथम गीत है—

चन्द्रचूड शान्तिकर कुरु कल्याणम्, मालती यूथी विकासिनी याति यातनाम्।
प्रतीलकलिकादशाम्, उदिततरुणरसां विनालिमतिविरसां पश्य मलिनाम्।
शोषयति समीरणः तापयति विरोचनः दिवसे निशि च पुनः याति मूर्छनम्॥

कवि तरुणियों के गीत को मोहन-विद्या बताकर व्याख्या करता है[1]—

वर्णैरेव तनुस्तनोति नितरामाकर्षणं नेत्रयो-
र्लीलालोलगतिर्विलुम्पति मतिं धैर्यक्षयं कुर्वती।
गीतं तालयाश्रितं सुललितं प्राकृचित्तमाकर्षति
मध्ये नन्दयते क्वचिद् व्यथयते सम्मोहयन्तिमे॥

किसी पात्र को आकाश से रंगमंच पर उतरते हुए दिखाया जा सकता था। द्वितीयाङ्क के गर्भाङ्क में नाट्यनिर्देश है—

ततः प्रविशति गगनादवतरन्ती चित्रलेखा।

गर्भाङ्क की योजना इस नाटिका में स्पष्टतः दृश्य के समकक्ष पड़ती है। इस प्रकार इसका नियोजन नाट्यशिल्प में अपूर्व है।

द्वितीय अंक के गर्भाङ्क में नायक की एकोक्ति सुप्रयुक्त है। इसमें वह नायिका के विषय में कहता है कि जब से तुम्हें देखा, मेरी सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार में रुचिपूर्वक प्रवृत्त नहीं हो रही हैं। फिर नायिका को एकोक्ति में सम्बोधित करता है—

हृदये प्रतिभासि सन्ततं व्यथकस्त्वद्विरहस्तथापि मे।
विषमे समये समागते विगुणत्वं हि गुणोऽपि गच्छति॥ २.११

फिर कामदेव को सम्बोधित करके बहुत कुछ निवेदन करता है। मन्मथघात् सोते हुए वह सुषुप्ति की प्रशंसा करता है—

न क्लेशलेशो विषयस्पृहा च मोहो न वा मेन्द्रिय वृत्तिरस्ति।
तत्त्वज्ञता कारणमन्तरेण सा प्राणिनां मुक्तिरियं हि निद्रा॥ २.१५

---

१. अन्य गीत हैं द्वितीय अंक में नेपथ्य से देवी का, तृतीय अंक में सरोजिनी की देवी-प्रार्थना, चतुर्थ अंक में नायक-नायिका के मिलन पर चित्रलेखा और हेमप्रभा का गान।

अदृष्ट रह कर चित्रलेखा इस एकोक्ति को सुनती है। इसके पश्चात् उसके समीप आई महादेवी की एकोक्ति है।

द्वितीय अङ्क के अन्त में रंगपीठ पर अकेला नायक है। वह अपनी एकोक्ति के द्वारा नायिका की प्राप्ति-विषयक चिन्ता व्यक्त करता है और भावी कार्यक्रम स्पष्ट करता है। यथा,

अन्वेषणीयैव तथा सरोजिनी यथा परो वेत्ति न वित्तमोऽपि सन्।
येषां प्रवर्धेत यशश्च कर्मभिः कार्यं च सिध्येत त एव पण्डिताः ॥२.३६

तृतीय अङ्क का आरम्भ सुबाहु नामक दानव की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह सरोजिनी के हरण की योजना भी प्रकाशित करता है। इस प्रकार यह एकोक्ति अर्थोपक्षेपण करती है।[1]

सोया हुआ नायक अपनी नई-नवेली नायिका के विषय में प्रेमोन्माद प्रकट कर रहा है, जिसे उसकी महादेवी सुनती जाती है। यह संविधान नाट्योत्कर्ष विधायक है।

तृतीय अङ्क में प्रतिनायक का नायिका से अति विस्तृत संवाद व्यर्थ की बकवास है। संवाद में चुस्ती होनी चाहिए, न कि सुस्ती।

अनेक स्थलों पर मनोवैज्ञानिक तथ्यानुसन्धान उच्चकोटिक है। यथा,

(१) स्त्रियों के विषय में—

सरले कुटिलाचारा सुलभे दुर्लभा पुनः।
मृदुले कठिना नित्यमपमाने च मानिनी ॥ २.२४

स्वपिति च वामपार्श्वे दक्षिणेऽपि च समाचरति वामम्।
वीक्षते च वामदृशा महती हि निपुणता विधातुः ॥

(२) नीति—एकस्य मिथ्या वचनस्य रक्षणे सहस्रमिथ्यावचनप्रयोजनम्।

(३) सापत्न्य—सापत्न्यं नाम सीमन्तिनीनामनाशीविषविसृष्टमततरूपं च महाविषम्।

(४) निःसहाय पण्डित चारित्रिक बल खो देते हैं। क्यों?

---

१. बहुत बड़े रंगमंच पर पात्रों का अलग-अलग समूहों में अपने-अपने कार्यव्यापार में निमग्न रहना साधारण बात है, किन्तु असाधारण है किसी रंगमंच पर अकेले पात्र का उसी रंगमंच पर अन्य पात्र के विषय में एकोक्ति द्वारा मन्तव्य प्रकट करना, जैसा इसके तृतीय अंक में मिलता है, जहाँ सुबाहु सरोजिनी के विषय में अपने उद्‌गार प्रकट करता है।

चुल्लीं वह्नियुतां विधाय वनिता म्लानानना ध्यायति
वाला भोजनभाजनं निदधतः पश्यन्ति मातुर्मुखम्।
विप्रं दासमुरीकरोति न जनो नास्ति प्रभूणां दया
नष्टं देहवलं गृहेऽपि न धनं कः स्यादुपायस्तदा ॥ ३.४

और भी—बाल्ये वेतसताडनं प्रियतमाविश्लेषणं यौवने
प्रौढे भ्रूकुटीदर्शनं च धनिनां पाश्चात्यशिक्षावताम्।
वार्धक्ये पठितुं शिशोर्गतवतो विच्छेदजा यन्त्रणा
सर्वं क्लेशनिदर्शनार्थमसृजज्जातिं बुधानां विधिः ॥ ३.५

वागीश ने नाटिका को गाँवों की ओर प्रवृत्त किया है। यह असाधारण संघटना है। इसके चतुर्थ अङ्क का आरम्भ दो किसानों के संवाद से आरम्भ होता है, जिसमें वे बताते हैं कि कैसे खेती अच्छी हुई है या बिगड़ गई है।

किरतनिया या अङ्किया रूपकों में सूत्रधार या निवेदक पात्रों का वर्णन कर दिया करता था। ऐसे वर्णन इस नाटिका में मिलते हैं, किन्तु वे पात्र के द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। यथा, तृतीय अङ्क में प्रतिनायक सरोजिनी की वर्णना प्रस्तुत करता है—

ऊरुस्तम्भौ विरलविरला लोममाला च भित्तिः
द्वारं दृष्टिः निधिरपि कुचच्छादनं केशपाशः। इत्यादि

नाटिका का चतुर्थ अङ्क विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क से प्रभावित है, जिसमें हरिदश्व नायिका के वियोग में प्रमत्त होकर कहता है—

द्वितयचपलभृङ्ग — प्रान्तसम्पीयमाना
सरलमृदुमृणाल — द्वन्द्वसंधीयमाणा।
अनधिकविकचाभ्यां संगताकोरकाभ्याम्
पतदुदकसरोजा नान्यरूपा स्थलेऽपि ॥ ४.१४

लोकोक्ति-सौरभ

नाट्योचित है सूक्तियों का नाटकीय संवादों में प्रचुर समावेश करना। कतिपय सूक्तियाँ हैं—

१. असति रससेके कुतो मृदुलता लतायाः।
२. दिननायदर्शनं विना न भवति अरविन्दस्य विकासः।
३. उदयति रसिकत्वं यौवने कामिनीनां
सततमनपनेया मुग्धता शैशवे तु।
४. अयस्कान्तनिकटात् किमन्तरा भवितुं पारयति लौहशलाका।
५. न हि खलु संयुज्यन्ते सन्तप्तहेमशलाका शीतलहेमदण्डे।
६. न खलु वारिप्रवाहः तीरमेकतरमेव प्लावयते।
७. न खलु प्रद्युम्नोऽपदे पदमर्पयित्वा अकृतार्थो भवति।

८. न खलु केनापि मूलं गत्वैव नारिकेलरसः पीयते ।
९. त्वमपि कटाहे तैलमर्पयित्वा आगतः ।
१०. यत्र भवति वृकभयं तत्रैवाविर्भवति विभावरी ।
११. आहारमाहर्तुं बुभुक्षमाणस्य नियोगः सम्पद्यते खलु निजनैराश्याय ।

शैली

कवि की भाषा नितान्त सरल है । यथा,

दिवसो भविष्यति स मे कदा सखे प्रमदा यदेयमतिलोलपाणिना ।
अवलोकमानजनलोचनैः सह स्रजमीदृशीं मम गले प्रदास्यति ॥ १.२०

फिर भी भाषा में वाणीविन्यास (Idiom) का कौशल है ।

(१) स्वयमेव केसरिणीमुखे निपतितोसि ।
(२) लोचनेऽङ्गुलीमर्पयित्वा यत्करोपि तदेवासुखम् ।
(३) देवी अपि महाराजगृहे पुष्करिणीं खनति ।

उपमानोपमेय की कल्पना निराली है । महादेवी के विषय में विदूषक कहता है—

पीतरसा खर्जूरिकेन एषा गच्छतु ।

अनधिक अक्षरों के छन्दों का प्रायशः प्रयोग होने से पद्यों में भी सुबोधता है ।

रसयोजना

नाटिका का शृंगार निर्भर होना स्वाभाविक ही है । इसमें नायिकादि का सौन्दर्य-निदर्शन विभाव है । यथा, कामिनी-यौवन है—

झनिति झनिति नादः संचरन्नूपुरस्य
ललितचपलतायामीपदीपच्च लज्जा ।
विविधनयनभंगी हेतुशून्यं स्मितञ्च
युवजनमदकार्ये मद्यभूतान्यमूनि ॥

हास्यरस की निर्झरिणी विदूपक प्रवाहित करता है । वह पण्डितों को ढूँढ़ने के लिए उत्कोचमन्दिर में पहुँचता है ।

अध्याय ९८

वीरधर्मदर्पण

वीरधर्मदर्पण नाटक के प्रणेता परशुराम नारायण पाटणकर ने अपरान्त विद्यापीठ से बी० ए० और प्रयागविद्यापीठ से एम० ए० की उपाधि ली थी।[1] कविवर डेक्कन कालेज पूना मे डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर के शिष्य रह चुके थे। भण्डारकर ने इसकी हस्तलिखित प्रति पढ़ कर कहा था—

Well, very well in plaees.

अर्थात् नाटक ठीक है। कई स्थानो पर बहुत अच्छा है।

पहले कवि ने इसमे प्राकृतोचित स्थलो को भी सस्कृत मे निबद्ध किया था। भण्डारकर के आदेश पर प्राकृतांश का सन्निवेश किया गया। कवि ने नाटक को सोद्देश्य प्रणीत किया है, जैसा उसकी भूमिका मे बताया है—

A moral purpose in kept in view throughout, involving the contrast of the spiritual with the worldly life and emphasising devotion to doty and to truth.

पाटणकर का जन्म भीमा नदी के तट पर रत्नागिरि में हुआ था। इनके परदादा नरहरि भट्ट, दादा माधवशर्मा और पिता नारायण शर्मा थे। अध्यापक बन कर अनेक देशों मे पाटणकर ने निवास किया था। उन्होंने इस नाटक की रचना १९०५ ई० के लगभग की।

नाटक में जो प्रस्तावना मिलती है, वह सूत्रधार द्वारा-विरचित है। इसकी रचना सूत्रधार ने इसके दूसरी बार अभिनय के अवसर पर की थी।[2] लेखक ने इस नाटक की रचना शिष्यो के प्रीत्यर्थ की थी—

स्वान्तेवासिप्रीतये यत्नशीलो जग्रन्थैतन्नाटकं सत्प्रयोगम्।

इस नाटक मे श्रृंगार का सर्वथा अभाव है। प्राय पुरुष पात्र हैं। इस मे सात अङ्क हैं।

कथावस्तु

भीष्म घायल हो चुके हैं। वे वीरशय्या पर पड़े हैं। अर्जुन अपने पुत्र अभिमन्यु और उसकी माता सुभद्रा के साथ उनका अभिवादन करने के लिए आये। भीष्म ने आशीर्वाद दिया—

चिरं जीव चिरं जीव वह गुर्वीं धराधुराम्।
स्मरावतीर्णमात्मानं नरं भूभारहारिणम्॥

भीष्म से सवाद करते हुए अर्जुन उत्तररामचरित के राम के समान कहता है—

---

१. इस नाटक का प्रकाशन १९०७ ई० मे काशी से हुआ था। इसकी प्रति सस्कृत-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से प्राप्त हुई।

२. सूत्रधार—यत्कृतिरस्माभिरात्मविनोदार्थमभिनीतपूर्वा।

प्रियः सुभद्रातनयोऽभिमन्युः प्रेयो यतो नः खलु नास्ति किंचित् ।
स्वधर्मसिद्धौ यदि वास्य हानमवश्यमस्मिन्न खलु क्षतिर्नः ।।

अर्थात् अपने कर्तव्य-पथ पर चलते हुए यदि अभिमन्यु का प्रणाश भी हो जाय तो कोई क्षति नहीं मानता। सुभद्रा ने भी भीम को इस विषय पर पूछने पर बताया कि मैं भी अर्जुन से सहमत हूँ।[1] अभिमन्यु ने कहा—

वंशस्य कीर्तिमतुलस्य पितुश्च नाम वीरप्रसूत्वमथ मातुरुदग्रयन्मे ।
प्राणव्ययेन रिपुभिः कृतसंगरस्य भूयात् स्वधर्मचरणे प्रथितोऽधिकारः ।।

भीष्म ने साधुवाद दिया—

प्राणानामपि हानेन धर्मसंरक्षणव्रतम् ।
पाल्यं हि क्षत्रियश्रेष्ठैर्येन लोको भवेत् सुखी ।।

भीष्म ने अर्जुन से कहा कि मेरे पश्चात् द्रोणाचार्य का सेनापति होना योग्य है। उन्हें कोई हरा नहीं सकता। सेनापति पद के लिए जयद्रथ का नाम आने पर अभिमन्यु ने कहा कि इस पातकी से मैं स्वयं लड़ूँगा। वह कूट करने वाला था। कुछ दिन बीतने पर युद्ध में अर्जुन को संशप्तकों से लड़ने दूर जाना पड़ा। सेनापति द्रोणाचार्य ने जिस चक्रव्यूह की रचना की, उसमें अभिमन्यु को प्रवेश करना पड़ा।[2] वहाँ जयद्रथ ने उसे मार डाला। उसी दिन अभिमन्यु के द्वारा दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण भी मार डाला गया था।

जयद्रथ से दुर्योधन मिला। जयद्रथ ने अपनी बड़ी प्रशंसा की कि अभिमन्यु को न मारता तो आज कोई वीर उसे न मार पाता और आपके पक्ष की कितनी बड़ी क्षति होती। कर्ण और अश्वत्थामा ने कहा कि यह शिव के वर के प्रभाव से हुआ है। तुम्हें क्या श्रेय? बढ़-चढ़कर बातें वीर बना रहे थे। कर्ण ने कहा—

न स दूरमस्ति समयो धनञ्जयमवलोकयिष्यसि सदा निर्वाहितम् ।
सह केशवं शितशरं रणे मया नृपतेः प्रियं गुरुतरं चिकीर्षता ।।

अर्थात् शीघ्र ही मैं कृष्ण और अर्जुन को धराशायी करने वाला हूँ। जयद्रथ ने दुर्योधन से कहा—

इतः परं तु सकलसेनाभरं मयि एव विन्यस्य विश्रब्धमास्तां भवान् ।

कर्ण ने यह सुन कर कहा कि यह पगला गया है।

इन सब संघर्ष की बातों को दुर्योधन के हित की दृष्टि से रोक कर द्रोण के संदेशानुसार उनकी अनुपस्थिति में जयद्रथ की विजयपूजा का आयोजन किया गया।

चतुर्थ अङ्क में शंकुकर्ण अर्जुन और कृष्ण को मार डालने के लिए जयद्रथ

---

१. यथार्थपुत्रेण प्रतिज्ञातं न ममापि भावः ।
२. जयद्रथ द्रोण को सेनापति पद से हटा कर स्वयं सेनापति बनना चाहता था।

द्वारा नियुक्त होकर उनसे उस वनवीथि मे मिलता है, जिससे होकर वे रात्रि के समय सशप्तकों को परास्त कर लौट रहे थे।

घोर अन्धकार में रथ पर आते हुए कृष्ण और अर्जुन के रथ के पीछे-पीछे शकुकर्ण तलवार खीच कर चलने लगा। उसने योजना बनाई कि पीछे से बिल्ले की भाँति झपट्टा मारकर तलवार से अर्जुन की गर्दन उड़ा दूँगा।

ऐसे समय युधिष्ठिर के भेजे दूत ने चिट्ठी दी कि अभिमन्यु चक्रव्यूह में मारा गया। अर्जुन करुण-विलाप करते हुए मूर्छित हो गया। तभी शकुकर्ण आक्रमण के लिए उद्यत हुआ। उसे दीपधारी दूत ने देख लिया। कृष्ण ने उसका गला दबोच लिया। शकुकर्ण ने अपनी व्यथा बताई कि मुझे मारें मत, मुझे जयद्रथ ने आप लोगो की हत्या करने के लिए नियुक्त किया था। अब मैं आपका सेवक हूँ। कृष्ण ने उसे बन्दी बना लिया। उसने प्रतिज्ञा की कि अब से आपका हित करूँगा। जयद्रथ का दुर्वृत्त जानकर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की—

नियतमुदितैर्वैषा संध्या श्व एव जयद्रथम्
प्रतिविधिफलायाहं हन्तास्म्यनस्तमिते रवौ।
अथ स भगवानस्तं यायाद्वचो मुषयन्मम
स्वतनुमफलां सद्यो होष्याम्यहं खलु पावके॥

शंकुकर्ण घटोत्कच का अनुचर बन गया। उसकी सेना कृष्ण के पक्ष में आ गई।

पंचम अङ्क के आरम्भ मे अर्जुन ने कृष्ण से बतलाया है कि आचार्य से न लड़ना हो तो अन्य शत्रु-प्रमुखो को तृणवत् गिरा दूँगा। कृष्ण ने कहा कि जिस दैव ने भीष्म को परास्त कराया, वही द्रोणाचार्य के लिए भी है। कृष्ण और अर्जुन द्रोण के पास पहुँचे।

द्रोण प्रेम से मिले। कृष्ण ने उन्हे बताया कि आपके प्रिय शिष्य इस अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को मारने वाला जयद्रथ कूट-विधि से धनजय-वध के लिए प्रयत्न कर रहा है। शंकुकर्ण की योजना बताई। द्रोण ने कहा कि वह शीघ्र ही पाप से मरेगा। अर्जुन ने कहा कि जब तक आप उसकी रक्षा करेंगे, वह अमर है। कृष्ण ने कहा कि जो शाप आचार्य ने उसे दे दिया है, वह सत्य होकर रहेगा। द्रोण ने कहा—

मां चेदतिक्रमिष्यसे तदा जयद्रथस्यावसितं जीवितम्।

उनके जाने के बाद जयद्रथ आचार्य से मिलने आया। द्रोण ने उसे फटकारा—

सेनापत्ये विलुभितमनास्त्वादृशः कः कृतघ्नः।

फिर भी ब्राह्मण देवता मान गये। उन्होने कहा कि तुम तो मेरे पास से युद्धभूमि मे कही और न हटना। तुम्हे यम भी नही मार सकेगा। महाभारतीय युद्ध हो रहा है। जयद्रथ का प्राण आचार्य बचा रहा है। अर्जुन के रथ को कृष्ण ने द्रोणाचार्य के मार्ग से बाहर कर लिया। जयद्रथ का रथ द्रोण से दूर हो गया। इस प्रकार—

एकतः सिन्धुराजोस्याऽयमाचार्यो दूरमेकतः
उभयोर्मध्यमासन्नः पार्थस्त्वरितसारथिः ॥

जयद्रथ ने लुकछिप कर प्राण बचाया है—यह कृष्ण को असह्य हो गया। उन्होंने अकालसन्ध्या कर दी। युद्ध बन्द हुआ। द्रोण ने विज्ञप्ति की—मोघः पार्थस्य संगरः।

विषण्ण अर्जुन ने खड्ग छोड़ दिया। जयद्रथ ने कहा कि अब मैं तुम्हें तलवार से मारता हूँ। सूत ने उसे रोका कि धिक्कार है इस अधर्म व्यवसाय को। अर्जुन के पावक-प्रवेश के लिए कृष्ण ने मायात्मक अग्नि जला दी। जयद्रथ ने कहा—

पार्थहतकस्य देहदाहं प्रत्यक्षीकरोमि।

सप्तम अङ्क का आरम्भ एक करुण दृश्य से होता है, जिसमें अर्जुन जल मरने के लिए उपस्थित हुआ। उसके सभी सम्बन्धी स्त्री-पुरुष आ पहुँचे। युधिष्ठिर रो रहे थे—

हा हा कृतान्त एव बलवान् सत्त्वं न भूत्यै भुवि।

सुभद्रा रोती है कि मेरा पुत्र मारा गया, अब पति भी चला। मैं अनुमरण करूँगी।

अन्य सभी लोग रोते हैं कि हम भी मर जायेंगे। तभी जयद्रथ उज्ज्वल वस्त्र पहन कर विजयमहोत्सव मनाने के लिए आ पहुँचा। उसके मुख से अदृष्टाहृति (Irony) है—

व्यपेतमखिलं भयं धवलितं यशो मेऽधिकम्
त्रपानतमुखा नमन्त्युपहसन्ति ये मां पुरा।
पुनः स्वयमुपागतो विजय एष मद्धेतुकः
स्वहस्तमरणाद् रिपो र्बहुमुखोऽद्य लाभोदयः ॥

इस वक्तव्य के कुछ ही क्षणों के पश्चात् सूर्य दिखाई पड़ा और उसे यह कहते हुए सुनते हैं—एष वातितोऽस्मि। तब तो अर्जुन ने अपने बाण से उसका सिर काट दिया। शंकुकर्ण उस सिर को ले उड़ा और उसे जयद्रथ के पिता की गोद में डाल दिया। उसके भूमि पर गिरते ही पिता का सिर शतधा विदीर्ण हो गया। इस योजना के कार्यान्वित होने पर शंकुकर्ण ने कहा—

सोऽहमनृणोऽस्मि रक्षितजीवितस्य महाभागस्य।

तब सुभद्रा ने उसे धर्मभगिनी बना लिया। इसी अवसर पर उत्तरा को चेष्टाशून्य बालक उत्पन्न हुआ, जिसे कृष्ण ने सचेष्ट कर दिया।

शिल्प

वीरधर्मदर्पण नाटक सर्वथा परम्परानुगामी है। इसकी कथा-वस्तु का विकास प्राचीन नाटकों के समान है और चरितनायक आदर्श लेकर चलने वाले हैं। प्रथम अङ्क में अर्जुन के लिए अभिमन्यु से भी बढ़ कर कर्तव्यपालन को बताया गया है।

तृतीय अङ्क में अश्वत्थामा और जयद्रथ की स्पर्धात्मक बातचीत वेणीसंहार की अश्वत्थामा और कर्ण की बातचीत के आदर्श पर है।

नाटक में एकोक्तियो का समावेश बहुश किया गया है। द्वितीय अङ्क के आरम्भ मे कंचुकी अकेले ही रगमच पर है। वह पहले की घटनाओं का परिचय देता है कि मैंने कैसे युद्ध मे भीष्म का सामना किया और अभी-अभी सशप्तकों को पछाड़ा है। दुर्योधन अपनी विजय को दूर देखता हुआ चिन्तित होकर कर्ण से मन्त्रणा करता है। इन बातो के कारण यहाँ तक एकोक्ति अर्थोपक्षेपक ही प्रतीत होती है। इसके पश्चात् दुर्योधन की एकोक्ति है, जिसे लेखक ने भ्रान्तिवश 'आत्मगतम्' नाम दे रखा है। वह कहता है—

निजजनविनाशप्रसंगेनानेनाभिमानशून्य इव संवृत्तोऽस्मि।

इसके पश्चात् कर्ण की एकोक्ति है—

अदृष्टकुलसभव रणरसैकबद्धस्पृहः
स्वमाण्डलिकमण्डनां ननु निनाय यो मां पुरा।
कृतान्तगतिविक्लवं न यदहं तमुत्साहये
धिगस्तु ननु जन्म मे बत कृतघ्नतादूषितम्॥

तृतीय अङ्क के बीच मे रगमच पर अकेले जयद्रथ अपनी एकोक्ति मे बताता है कि सशप्तको को परास्तकर लौटते हुए अर्जुन को गुप्त रीति से मार डालने के लिए मैंने शंकुकर्ण नामक गुप्त घाती को नियुक्त किया है। इस आयोजन के पक्ष-विपक्ष और सफलता-विफलता के विषय मे वह बहुविध विमर्श करता है।

पंचम अङ्क के बीच में जयद्रथ रणपीठ पर अकेले है। वह अपनी एकोक्ति में बतलाया है कि अर्जुन ने मुझे कल मारने की प्रतिज्ञा की है। इससे मैं उद्विग्न हूँ। और भी—

न रिपुणा सह योद्धुमना अहं न समराच्च पलायितुमुत्सहे।
अगतिकः स्वपराक्रमदुर्बलः कमुपयामि शरण्यमिहेतरम्॥

यह एकोक्ति विशिष्ट रूप से समीचीन और सार्थक है। इसके पश्चात् एक पद्य भी द्रोण की एकोक्ति 'आत्मगतम्' नाम से है।

कवि ने तृतीय अङ्क मे जयद्रथ के भावों के वैपरीत्य को सफलतापूर्वक समाविष्ट किया है। इधर उसके विजयपूजा-मंगल का अयोजन पूर्ण ही हुआ था कि जयद्रथ को शल्य से सुनना पटा—

रक्षणीयश्च प्रयत्नेन सौभद्रवधप्रधानहेतुः सिन्धुराजः।

इसे सुनना था कि जयद्रथ ने अपने मन मे सोचा—

अपि विज्ञाता अनेन में प्रयत्नगूढा महाभीतिः।

चतुर्थ अङ्क में जयद्रथ के उस कूटचक्र का वर्णन है, जिसमे वह मार्ग मे ही अर्जुन और कृष्ण को नृशंस हत्या शङ्कुकर्ण नामक राक्षस से करा देना चाहता था, जब वे दोनों सशप्तकों को परास्त करके वनवीथि से होकर स्कन्धावार मे

आ रहे थे। शंकुकर्ण सेनासहित वन में जा छिपा था। वहीं उससे जयद्रथ का सेवक गुप्तचर उलूक मिला। उसने बताया कि मुझे जयद्रथ ने भेजा है कि मैं बताऊँ कि आपने कहाँ तक सफलता पाई।

कहीं-कहीं मानवता पर करारी फबती है। शंकुकर्ण नामक राक्षस कहता है—

युष्माकं (मानवानां) दशगर्दभभारपर्याप्तं नीतिशास्त्रम्। अस्माकं तु प्राणात्ययेऽपि यथावचनं वर्तितव्यमित्येतावत्येव नीतिः।

कवि ने चारित्रिक वैचित्र्य का अनोखा उदाहरण द्रोण के विषय में प्रस्तुत किया है। यथा,—

योऽयं विभ्रदरातिपक्षकटकप्राग्भारभूमिं गुरुः
कर्तुं भूमिमपाण्डवामिव रणे सज्जोऽस्ति सत्यव्रतः।
स्नेहोत्कर्षवशाद्विलीन इव मामालिंगितुं स स्वयं
गृष्टिर्वत्समिवावलोक्य रभसादायाति हर्षान्वितः॥
उपात्तरणकर्मणे स्फुरणशालिबाह्वोर्युगम्
किरीटिपरिरम्भणे भवति कण्टकैरावृत्तम्।
मनोऽपि दधदुग्रतां विनयमस्य दृष्ट्वा मयि
विलीनमिव सर्वथान्यथयति प्रतीपां धियम्॥

युद्ध का दृश्य रंगपीठ पर भले न दिखाया गया है, किन्तु योधनशील अर्जुन का जयद्रथ से वाग्युद्ध का प्रकरण दृश्य है, जिसमें अर्जुन जयद्रथ को ललकार रहा है—

अरे अरे रणभीरुक क्षत्रियवन्धो युद्धं विहाय पलायसे नाम।

जयद्रथ डरकर रथ की आड़ में छिप जाता है। वहाँ उसे देखकर अर्जुन कहता है—

अरे रे क्षत्रियकुलाधम जाल्म एप आसादितोऽसि।



अध्याय ६६

हरिश्चन्द्रचरित

हरिश्चन्द्रचरित के लेखक कविराज रणेन्द्रनाथ गुप्त वंगवासी थे। इन्होंने १६११ ई० में इस नाटक की रचना की। इस नाटक मे सत्यहरिश्चन्द्र की कारुण्यपूर्ण चरित-गाथा है।

धर्म का प्रतिपादन करने वाले इस नाटक मे राजा हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा को स्वकल्पनाओ से उदात्त रूप प्रदान किया गया है। कथा के माध्यम से कवि ने कर्म पर धर्म की वरेण्यता को प्रतिपादित किया है। नाटक के प्रारम्भ में कर्म की महत्ता प्रतिपादित करने वाले महर्षि नारद का धर्म से विवाद होता है तथा निर्णय के लिये हरिश्चन्द्र की कथा उदाहरण रूप में प्रस्तुत है।

कथावस्तु

प्रथम अङ्क मे महर्षि के तप को भङ्ग करने के लिये विघ्नराट् तैयार होता है, किन्तु आश्रम-द्वार पर चौकसी रखने वाले महाव्रत के कारण वह प्रवेश नही कर पाता है। वह मृगयानुरागी राजा हरिश्चन्द्र को वहाँ लाने की योजना बनाता है। विघ्नराट् सूकर रूप मे नगर के समीप उपद्रव करता है। अपने मृगया सहायकों से इसकी सूचना पाकर राजा उसका पीछा करता है। वह कौशिक ऋषि के आश्रम तक आ जाता है। वहाँ महर्षि के द्वारा प्रज्वलित अग्नि में डाली जाती हुई विद्याओ का आर्तनाद सुनकर राजा अज्ञानवश महर्षि कौशिक के प्रति बाण चलाना चाहता है, किन्तु उसी समय महर्षि का ध्यान टूटता है और वह क्रुद्ध होकर राजा से उसके अनुचित व्यवहार का कारण पूछता है। राजा कहता है—

दातव्यं द्विजदीनेभ्यो रक्षितव्या भयातुराः।
धर्मनीतिमतं युद्धं कर्तव्यं धरणीभृताम्॥

राजा के इस आदर्श को सुनकर वह उसके पुत्र और पत्नी को छोड़कर सम्पूर्ण भूमण्डल का दान मागता है तथा एक राजसूय यज्ञ की दक्षिणा रूप मे एक लाख मुद्राएँ भी। अनेक कष्टों को सहन कर राजा अपने वचन-पालन में समर्थ होता है।

नूतन उद्भावनाओ के कारण इसमें नाटकीय कथावस्तु अधिक प्रभावशाली है। विघ्नराट् जैसे पात्र की उद्भावना के द्वारा कवि ने महर्षि के मुनि-चरित्र की रक्षा की है तथा धर्म को समर्पित राजा की सहिष्णुता की परीक्षा भी महर्षि कौशिक की वज्रवत् कठोरता द्वारा सफल चित्रित है।

नाटक मे राजा हरिश्चन्द्र पुराण प्रसिद्ध धीरोदात्त कोटि का नायक है। वह अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक है। राज्य-कार्यों मे अहर्निश व्यस्त रहने के कारण वह प्रिया पत्नी को भी प्रसन्न नही कर पाता है। प्रथमाङ्क में शैव्या की विरह-विकलता उसकी व्यस्तता के प्रदर्शन के साथ ही कर्त्तव्यों को प्राथमिकता देने की भावना का प्रतिपादन करती है। राजा दृढव्रत है तथा वचन पालन के लिये न केवल-

राज्य का त्याग करता है अपितु अपनी पत्नी तथा पुत्र के सुख से भी वञ्चित होकर धैर्य का अवलम्बन लेता है। ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा तथा अपने धर्म की मर्यादा नायक के संकट काल में सहायता देने को उत्सुक ब्राह्मणों को दिये गये इस उत्तर से स्पष्ट होती है—

"आर्याः! क्षत्रियोऽहं आशीर्वादमन्तरेण ब्राह्मणेभ्यः किमप्यन्यद् ग्रहीतुमसमर्थोऽस्मीति क्षम्यतां मेऽविनयः। (तृतीय अंक, द्वितीय दृश्य)

अनेकशः महर्षि कौशिक के कठोर वचनों को सुन कर भी वह विनम्र रहता है। इस प्रकार नायक के धीर तथा उदात्त दोनों गुणों को समान महत्त्व देते हुए कवि ने हरिश्चन्द्र के रूप में लोक के समक्ष आदर्श-चरित प्रस्तुत किया है।

नायिका शैव्या का चरित्र नायक की धर्मपरायणता को निखारने में सहायक हुआ है। शैव्या वीरजा, वीरजाया और वीरजननी के रूप में प्रस्तुत की गई है। सम्पूर्ण भूमण्डल का दान हो जाने के पश्चात् राजा को धैर्य धारण करने के लिए कहे गये वचनों के उत्तर में उसका कथन बड़ा हृदयस्पर्शी है—'राजन्! अलमनेनोद्वेगेन। शैव्या क्षत्रियाङ्गना, क्षत्रियोचितकार्यपरायणा, महेन्द्रतुल्यस्यात्रभवतः सहधर्म्मिणी। जयन्तजननी पुलोमजा किं पृथ्वीदानेन कातरा भवति?"

नाटककार ने राजपुत्र रोहिताश्व के चरित्र-चित्रण में विशेष निपुणता दिखलायी है। वह पौराणिक वृत्तान्त सुनने में रुचि रखता है और पूर्वजों के उदात्त चरितों का अनुसरण करने के लिये तत्पर है। राजा द्वारा दिये गये दान की सूचना पाकर उसे परशुराम की समुद्र-शोषण की कथा का स्मरण हो आता है और अपनी माता से बालसुलभ भोलापन के साथ कहता है—

'पृथ्वीश्वरेण ममापि तातेन दीयतामियं मेदिनी। अहमेव अपसारयामि समुद्रं कार्म्मुकप्रभावेण।'

पिता का अनुकर्ता वह बालक अश्वमेध यज्ञ में भिक्षार्थ उपस्थित हुए ब्राह्मणों को अपने आभूषण उतार कर दे देता है, बालक रोहिताश्व बहुत सरल, साथ ही चतुर है। माता को दासी बनाने वाले ब्राह्मण को वह अनेकशः व्यङ्ग्यपूर्ण वचनों के द्वारा उचित मार्ग पर लाता है। कभी-कभी ज्ञानपूर्ण व्यवहार के अवसर पर उसका कहना—'आचार्यमुखात् श्रुतमिदम्'—अर्थात् गुरु ने ऐसा कहा था, हास्योत्पादक हो जाता है।

इनके अतिरिक्त धर्म, विघ्नराट्, महाव्रत आदि प्रतीकात्मक पात्रों की योजना द्वारा कवि ने पौराणिक कथा को सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक रूप प्रदान किया है। ये सभी प्रवृत्तियाँ सामान्यतया प्रत्येक मानव के मन में निवास करते हुए अवसर पाकर प्रभाव जमा लेती हैं। हास्य रस की उद्भावना-हेतु विदूषक को भी नाटक में प्रस्तुत किया गया है, जो कथा के प्रसंग में नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से अनावश्यक है।

शिल्प

इस नाटक पर उत्तररामचरित का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। भवभूति ने राम के मुख से राजा के जिस आदर्श को कहलवाया था—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

उसे हरिश्चन्द्र ने शैव्या का त्याग करते हुए अपने चरित्र मे दिखलाया है। उत्तररामचरित की भाँति ही इस नाटक मे शैव्या का विरह-वैक्लव्य तथा बालक द्वारा समुद्र-रोपण कर कुटी बनाकर रहने की अभिलाषा भावी विरह तथा भूमण्डल के दान का सूचक है।

नाटक को पाँच अङ्को मे और अङ्को का आधुनिक रीति से दृश्यों मे विभाजन किया गया है। एक दृश्य मे पात्र अनेकश आते-जाते हैं। इस प्रकार आधुनिक रङ्गमञ्च के सर्वथा उपयुक्त यह नाटक है। परम्परा से हटकर इस नाटक के स्त्री-पात्र तथा विदूषक भी संस्कृत बोलते है, केवल वनेचर प्राकृत का प्रयोग करते है।

नाटक की भाषा भावानुकूल मृदु अथवा ओजस्वी है। कवि ने सवादो मे जितनी रससृष्टि नही की है, उतनी परिसर-वर्णन द्वारा की गयी है, जिसमें पाश्चात्य रगमचीय विधान को भी अपनाया गया है। यथा—सूर्य के प्रचण्ड ताप से तपी मरुभूमि पर पत्नी तथा पुत्र-सहित हरिश्चन्द्र का उछलते हुए चलने, दशाश्वमेध घाट पर प्राप्त आक्षेपों को विष की भाँति पीते हुए तथा भिखारी की भाँति जीर्ण वस्त्रो से आवृत मूक हरिश्चन्द्र को देखकर किसका हृदय करुणा से द्रवीभूत नही होगा ?

रङ्गमञ्च की मर्यादा को रखते हुए अनेक घटनाओ तथा कार्यों की सूचना मौखिक रूप से दी गयी है। जैसे वराह के भयकर स्वरूप का प्रतिपादन, प्रज्वलित अग्नि के मध्य महर्षि की तप साधना का निरूपण, श्मशान-भूमि पर भयकारी की उपस्थिति आदि वर्णन द्वारा ही सूच्य है।



अध्याय १००

लक्ष्मणसूरि का नाट्य-साहित्य

लक्ष्मणसूरि अवर्गल ने तीन रूपकों का प्रणयन किया—दिल्ली-साम्राज्य और पौलस्त्यवध नाटक तथा घोषयात्रा (युधिष्ठिरानृशंस्य) डिम।[1] लक्ष्मण ने भीष्मविजय तथा भारतसंग्रह में अपने चरित-विषयक वृत्तान्त दिये हैं। उनका जन्म मद्रास के तिन्नेवल्ली जनपद में पुन्नाल में १८५९ ई० में हुआ था। इनके पिता मुथु सुव्वा भारती उच्चकोटिक विद्वान् तथा संस्कृत और तामिल के लेखक थे। लक्ष्मण के गुरु पिता के अतिरिक्त सुव्वा दीक्षित थे। दीक्षित ने उन्हें व्याकरण और दर्शन की शिक्षा दी। १८८६ ई० तक उन्होंने अध्यापन-कार्य निष्पन्न किया। अपने जीवन के अन्तिम भाग में परिव्राजक बन कर उन्होंने तीर्थ स्थानों में भारतीय संस्कृति और अध्यात्म-दर्शन पर प्रवचन किये। कविवर को १९०३ ई० में मैसूर के दीवान ने उनके तंजौर में शुभागमन के अवसर पर सूरि की उपाधि से मंडित किया। उनके पाण्डित्य की प्रशस्ति सुनकर तथा राजभक्ति-विषयक रचनाओं से स्तम्भित होकर भारतीय सरकार ने १९१६ ई० में उन्हें महामहोपाध्याय उपाधि से समलंकृत किया था। रूपकों के अतिरिक्त लक्ष्मण ने भीष्म-विजय, भारत-संग्रह और नलोपाख्यान-संग्रह नामक तीन गद्य काव्य, जार्जशतक-काव्य तथा कृष्णलीलामृत नामक महाकाव्य और अनर्घराघव, उत्तररामचरित तथा वेणीसंहार की टीकायें लिखीं।[2] इनके अतिरिक्त बालरामायण पर भी उन्होंने टीका निष्पन्न की। जार्जशतक का अंगरेजी अनुवाद मुकुटोत्सव के अवसर पर सुनाया गया था। मद्रास की सरकार से इसकी रचना पर कवि को पारिश्रमिक भी मिला था।

दिल्ली-साम्राज्य

दिल्ली-साम्राज्य नाटक की रचना लक्ष्मण ने अपने मित्र और आश्रयदाता कृष्णस्वामी अय्यर के सुझाव देने पर किया था। यह कवि की पहली नाटकीय रचना है। इसमें पाँच अङ्क हैं।

कथानक

वाइसराय लार्ड हार्डिञ्ज भारत के हितैषी थे। वे साम्राज्य के हितों को भी साथ ही सुरक्षित रखना चाहते थे। वे पंचमजार्ज का दिल्ली में सम्राट् पद पर अभिषेक करवाना चाहते थे। उन्होंने पार्लियामेण्ट को अपना प्रस्ताव विचारार्थ भेजा। वाइसराय के सचिव के साथ विमर्श करते हुए कतिपय समस्याएँ सामने

१. दिल्लीसाम्राज्य, पौलस्त्यवध तथा घोषयात्रा का प्रकाशन मद्रास से क्रमशः १९१२, १९१४ तथा १९१७ ई० में हुआ है।

२. उपर्युक्त ११ रचनाओं के अतिरिक्त लक्ष्मण ने १९१७ ई० तक ३७ और संस्कृत-ग्रन्थों का प्रणयन किया था। इनमें से सर्वप्रथम उपनिषद्-कारिका है।

आई कि अकालग्रस्त भारत के लिए क्या इतना व्यय करना समीचीन है? इस प्रकार सार्वजनिक समारोह मे अपने को डालना सुरक्षा की दृष्टि से क्या सम्राट् के लिए उचित है? महामारी का भय भी था। फिर भी वे दोनों आशान्वित थे। निर्णय लिया गया कि सम्राट् कैण्टरबरी के आर्कविशप का बड़ा आदर करते हैं। उनको पहले से ही इस विषय मे सूचना दी जाय।

द्वितीय अङ्क मे पार्लियामेण्ट मे बहस होती है। लार्ड मार्ले ने उपर्युक्त प्रस्ताव का समर्थन किया और कर्जन लैण्ड्सडाउन ने विरोध किया। दूसरा प्रश्न था कि किस नगर में अभिषेक हो। दिल्ली की सर्वाधिक योग्यता समारोह के लिए सर्वमान्य हुई। वङ्गाल के एकीकरण के लिए भी हार्डिञ्ज ने लिखा था।

तृतीय अङ्क मे भारतीय नरेश लण्डन जाकर बकिंघम-पैलेस मे सम्राट् से मिलते है। सम्राट् को इस अवसर पर अपने राजकुमार होने के समय भारत-भ्रमण की मधुर स्मृति हो आई। जार्ज की मातामही महारानी एलेक्जेण्ड्रा ने राजाओ की इच्छानुसार अपना प्रभाव लगाया। आर्कविशप ने सर्वप्रेमा की प्रशंसा करते हुए सम्राट् से कहा—भगवान् आपकी रक्षा करे और आप प्रजा के रक्षक बनें। ज्योतिषी ने बताया कि जिस दिन जार्ज दिल्ली पहुँचें, उसी दिन उनका अभिषेक हो जाय। सर्वसम्मति से दिल्ली मे अभिषेक का निर्णय हुआ।

चतुर्थ अक में जार्ज का जलयान भारत की ओर चलता है। वे बम्बई पहुँचते हैं। लार्ड हार्डिञ्ज, उसके सचिव, बम्बई प्रान्त के गवर्नर जार्ज क्लार्क, सेनापति आदि सम्राट् का स्वागत करने के लिए वहाँ उपस्थित हैं। यान से उतर कर कार से वे कार्पोरेशन-कार्यालय मे उपस्थित हुए। वहाँ सर मेहता ने एक समुद्गक भेंट किया, जिस पर अनेकविध द्वादश के प्रतीक थे, जिनसे व्यञ्जना होती थी कि १९१२ ई० मे १२ वें मास की १२ वी तिथि को १२ बजे जार्ज का अभिषेक होगा। अनेक प्रतीको के द्वारा भी जार्ज की सम्भावना की गई थी और उनको भारतीय प्रजा की हितैषिता का सन्देश दिया गया था।

मेहता ने जार्ज के लिए प्रशस्ति-पत्र पढा और बताया कि किस प्रकार ब्रिटिश शासन मे बम्बई की और भारत की उन्नति हुई है। उनसे भिक्षा मांगी गई कि हमे शिक्षा दीजिये, प्रकाश दीजिये। जार्ज ने वचन दिया कि यह सब यथाशीघ्र निष्पन्न होगा। छात्र और छात्राओ ने स्वागत-गान और नृत्य किया। वहाँ से जार्ज दिल्ली की ओर चले।

पंचम अंक मे अभिषेक की प्रक्रिया और सम्भार दृश्य हैं। सगीत और नृत्य से लोकरंजक वातावरण बना है। सेना की बलशालिनी क्रीडा लोकप्रिय रही। एक अमरीकी अपने वायुयान से यह सब देख रहा था। उसे रोका गया।

प्रकृति अपनी रमणीय विभूतियाँ न्योछावर कर रही थी। वाइसराय ने जार्ज का स्वागत किया। सभी राज्यपालों और राजाओं का परिचय उनसे कराया

गया। उनकी शोभायात्रा दरवार-कक्ष तक सम्पन्न हुई। दो स्मारक स्तम्भ निर्मित किये गये थे—एक हिन्दुओं के साम्राज्य-विजय का और दूसरा मुसल्मानी राज्याधिकार का। उनके साथ अंगरेजी झण्डा फहराया गया। इस प्रकार भारतीय इतिहास की त्रिजयिनी प्रसाधित हुई। भारतीय प्रजा की राजभक्ति का गुणगान सर जेङ्किन्स ने अपने प्रशस्ति-पत्र में किया। दिल्ली-मैदान में भूतपूर्व सम्राट् सप्तम एडवर्ड की शिला-पट्टिका का अनावरण किया गया।

ठीक दो पहर के समय हार्डिञ्ज जार्ज को गद्दी पर ले गये। वहाँ विधिवत् उन्हें राजमुकुट पहनाया गया। मधुर संगीत से आकाश निनादित हुआ।

सम्राट् ने इस अवसर पर ५० लाख रुपये शिक्षा-विकास के लिए दिये। उन्होंने इसी समय कलकत्ते के स्थान पर दिल्ली को राजधानी बनाई। ज्योतिषी पुनः एक वार रंगमंच पर आया और सम्राट् ने उसके प्रति समादर व्यक्त किया। उसने राजकीय वैभव की समृद्धि के लिए आशीर्वाद दिया।

समीक्षा

इस कथानक में पार्लियामेण्ट का अभिषेक विषयक विचारणा ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। डा० पेरिन ज्योतिषी कल्पित है।

नाटक में चालीस से अधिक व्यक्तियों की भूमिका है। इतनी बड़ी भूमिका प्रशस्य नहीं है।

नाटक में सन्धियों और अवस्थाओं का कलापूर्ण विकास नहीं दिखाई पड़ता। अधिक से अधिक वार्ताओं को पिरोकर अभिषेक की गरिमा द्विगुणित करना कवि का प्रधान उद्देश्य प्रतीत होता है, न कि कलाकृति में सौष्ठवाधान और तन्वीक लावण्य का विन्यास।

कवि की शैली सरल, सुबोध और फलतः सर्वथा नाट्योचित है। अंगरेजी और हिन्दुस्तानी शब्दों का संस्कृत रूप या पर्याय बनाने में लक्ष्मण की नैपुणी विशेष सफल है। इसमें आगरा, रेलरोड, म्यूजियम आदि क्रमशः आग्रा, आयसध्वा और प्रेक्षा-निवेश हैं। ग्वालियर के लिए कवि कुवालियार लिखता है। वस्तुतः ग्वालियर गोपालगिरि का अपभ्रंश है। जर्मन विद्वान् ई० हुल्ट जाख ने इस नाटक की शैली की प्ररोचना में लिखा है—It shows that this wonderful, rich and flexlble language, if handled by a master, is quite able to enpress modern ideas and to describe the latest European fashi0ns and in ventions in a clean and unmistakable manner.

शिल्प

इस नाटक में वीर और शृंगार अङ्गी नहीं हैं, अपितु दया अङ्गी है। नाटक में स्त्री-पात्रों की संख्या कम है। उच्चकोटिक स्त्रियाँ संस्कृत बोलती हैं। कतिपय कन्यकायें प्राकृत में भी बोलती हैं।

नाटक का आरम्भ वाइसराय की एकोक्ति से होना है, जिसमें वे अपनी योजनाओं का प्रकाशन करते है।

नृत्य और संगीत का चतुर्थ अङ्क में समावेश लोकरंजक संविधान है।

पौलस्त्यवध

पौलस्त्यवध मे विराध की मृत्यु के पश्चात् की रामकथा है। इसका प्रथम अभिनय चैत्रोत्सव मे उपस्थित विद्वानो के प्रीत्यर्थ हुआ था। इसके द्वितीय अङ्क में राम की सीता-प्रेम विषयक स्मरणीय उक्ति है—

ये पूरिते सुकण्ठधाः प्रथमालापेन ते मम श्रवसी।
धन्ये उभे हि शेषाण्यवयवसाकल्य-संपदर्थानि॥

इसके छठें अङ्क मे अन्तर्नाटिका का समावेश हुआ है। राम के औदात्त्य की प्रतिष्ठा करते हुए कवि ने कहा है—

दानं करे पदतले न तीर्थं बाहौ जयश्रीर्वचने च सत्यम्।
लक्ष्मी प्रसादे प्रतिघे च मृत्युरेतानि रामस्य निसर्गजानि॥

राम के चरित्र मे कौटुम्बिक प्रेम और सौहार्द की मर्यादा उच्चकोटिक आदर्श प्रस्तुत करती है। अशोकवनिका मे सीता की उक्ति है—

चारुस्मितं सरसिजोदरचारुनेत्रं नित्यप्रसादसुमुखमुखमिन्दुकान्तम्।
नाथ प्रदर्शय जनो जननान्तरेऽयं मा भूत्वया विरहितश्च विपद्गतश्च॥

शबरी की रामपरायण-भक्ति का वर्णन है—

तपस्तप्तं चीर्णं व्रतमुपचिता भूतकरुणा
समाधिः सम्यक्शो वरिवसितपादाश्च गुरवः।
जिता देव्या लोका जितमपि च जन्मेदमधुना
यतोऽहल्यातीर्थं जयति मम कुट्यां पदरजः॥

प्रस्तावना मे नटी कथावस्तु के प्रमुख सविधान का संकेत देने के लिए अपने ऊपर घटी हुई वस्तु की चर्चा करती है, जो सर्वथा मनगढ़न्त होती है। विगत अनेक शताब्दियो से इस प्रकार की रीति सूत्रधार ने प्रस्तावना में प्ररोचित की है। इसमे नटी के द्वारा सूत्रधार को सूचना दी गई है कि आपके साथ नाट्य के लिए आती हुई मुझ को मार्ग मे कोई कुशीलव हरण करने लगा। तुम्हारे भाई के शीघ्र आ जाने से मैं मुक्त हुई। इस प्रसंग मे नटी का अभिनय उल्लेखनीय है। वह भयकातरता का अभिनय करती हुई हृदय-कम्पन प्रकट करती है। सूत्रधार-रचित यह प्रस्तावना है—यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि वह पात्रो का परिचय देता है[1]। स्त्री-भूमिका स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत है।

---

१. इसके अभिनय में नटी का भाई और भौजाई क्रमशः राम और सीता बने थे। सूत्रधार का भाई लक्ष्मण बना था।

नाटक की विशेषताओं के विषय में सूत्रधार ने बताया है—

रसो न हीयते मुहुर्निषेवयाप्यभंगुरोऽसावभिवर्धतेतराम् ।
मनश्च संस्कारमवाप्य शास्त्रजं व्यपेतमोहं पदवीं प्रपद्यते ॥
सम्प्रसीदत्युपज्ञातुहृदयं दर्पणे यथा ।
यद्यस्ति नाटकं तादृगुत्सुका वयमीक्षितुम् ॥

इसमें गोदावरी का रमणी-रूप में वर्णन है—

क्वचिन्मुग्धेवान्तस्मिततरसत्वालसतया
क्वचिन्मध्याकारा नयनशफरीवल्गुवलनैः ।
प्रगल्भेव क्वापि प्रकटरसपूरैरधितटा-
दवसस्थात्रैविध्यं युगपदधिरूढेव तरुणी ॥

रंगमंच पर राम सीता का आलिंगन करते हैं—ऐसा प्रयोग अभारतीय होने पर भी प्रायः नाटकों में अपनाया गया है ।

भरत के औदात्त्य के विषय में राम ने कहा है—

विजिग्येऽसौ वीर्यादवनिभयमिच्छाव्यपगमात्
स इष्ट्वा पूतोऽश्वैरयमपि निगृह्येन्द्रियहयात् ।
जरन्मुक्तो लक्ष्म्या स खलु मुमुचे तां युवतमः
पितुर्मे भ्रातुश्च प्रथितमहसोरन्तरमिदम् ॥

विण्टरनित्ज और कर्न ने इस नाटक की भूरि प्रशंसा की है ।

घोपयात्रा

घोपयात्रा का अपर नाम युधिष्ठिरानृशंस्य है । इसका प्रणयन मद्रास की सुगुण-विलास-सभा के द्वारा अभिनय करने के लिए हुआ था । इस सभा के अध्यक्ष आनरेबुल जस्टिस टी० वी० शेपगिरि अय्यर मद्रास-हाईकोर्ट के जज थे । सुगुण-विलास-सभा का प्रमुख कार्य रूपकोंका अभिनय करना था । त्रिचनापल्ली के मुंसिफ रामस्वामी शास्त्री ने इस सभा के विषय में लिखा है—The Sabha has a noble record of work to its credit and has done and is doing well its share of the work of national enlightenment, uplift and regeneration, I have long fielt that it should stimulate literary activity and production even more than it has been doing till now by offering suitable inducements and the stamp of its approval to the compositions of aspiring and competent authors.

इस रूपक की अभिनेयता के विषय में शेपगिरि का कहना है कि—As this drama has been written with the express object of its being staged, it aims at simplicity and perspicacity of expression while presenting

to us sweet delicacies of sentiment and emotion and fascinating subtleties of thought.

शेषगिरि ने इस रूपक की भूमिका में महत्त्वपूर्ण चर्चा संस्कृत के विषय मे की है—

While Sanskrit has to be the central sun which will preserve the graces and the fragrances of the flowers of the vernacular tongues and easily intelligible and beautiful compositions in Sanskrit must be written in the realms of literature, philosophy, and devotional music to make the Sanskrit tongue and our great social and spiritual ideals living forces in our lives and to relate the present wisely to the past and to usher into existence the happy and glorious future that is to be.

घोषयात्रा डिम कोटि का रूपक है।[1] इसकी परम्परागत परिभाषा के अनुसार इसमे देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, उरग, भूत, प्रेत, पिशाचादि कोटि के सोलह नायक उद्धट चरित्र के होने चाहिए। इसमे माया, इन्द्रजाल, चन्द्रसूर्योपराग आदि दृश्य होने चाहिए। इस डिम मे उपर्युक्त लक्षण अंशतः ही घटता है। इसकी भूमिका मे अधिकाधिक मानव पात्र हैं। युधिष्ठिर, द्रौपदी, भीम, अर्जुन, कर्ण, दुःशासन, दुर्मुख, सैनिक, भानुमती, दौवारिक आदि मानव हैं। इन्द्र देवता है और चित्रसेन तथा चित्ररथ गन्धर्व है।

प्रथम अक मे वनवास के समय मे युधिष्ठिर, द्रौपदी और भीम आदि सभी भाइयो के मध्य बातचीत से ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर को अपनी दुःस्थिति से छुटकारा पाने के लिए उद्योग करने की प्रेरणा दी जा रही है। तभी उन्हे दूर से दुर्योधन की वाणी सुनाई पडती है—

धन्यास्त इव पुरुषा भुवि ये रिपूणां वक्त्रं प्रदोषकमलच्छविदुर्गतानाम्।
पश्यन्ति सस्मितमपत्रपयोपगूढं लक्ष्मीविलासललनीयमुखेन्दुबिम्बाः॥

दुर्योधन के इस गीत को चित्रसेन ने सुना और अपने सेनाधिप चित्ररथ को आदेश दिया—

निगृह्यतामयमस्मत्सन्निधावेव विस्तरं गायन् सपरिवारो दुरात्मा सुयोधनहतकः।

दुर्योधन के निग्रह से युधिष्ठर आकुल हो गये। युधिष्ठिर ने कहा कि यह कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। दुर्योधद के पराभव से हम सभी कलंकित होंगे।

रगपीठ पर द्वितीय अक में चित्रसेन, चित्ररथ, शकुनि, दुःशासन, दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के सरक्षण मे कौरव स्त्रियाँ एक और हैं और दूसरी ओर लतागृह में भीम और अर्जुन हैं। वाण से चित्रसेन ने शकुनि को मूर्छित कर दिया।

१. डिम कोटि के रूपक संस्कृत में विरल हैं।

चित्ररथ ने कर्ण की निन्दा की। दुर्योधन ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—

भीतोऽस्मादेव पार्थो दिवि भुवि च परिभ्राम्यति त्राणकांक्षी।

यह सुन कर अर्जुन को रोष हुआ। कर्ण ने दुर्योधन से कहा—

अमी चण्डकोदण्डदण्डादुदग्राः शिताग्राः पतन्तः पतङ्गेन्द्रवेगाः।
चिरं जिष्णुवक्षस्तटीशोणितोत्काः पृषत्काः प्रपास्यन्त्यसूनस्य यावत्॥

यह कह कर उसने बाण-प्रयोग किया। भीम ने सुना तो कहा कि इस बकवास करने वाले कर्ण को अभी-अभी मार डालूं। अर्जुन ने कहा—अभी प्रतीक्षा करें। कर्ण ने कहा—

नूनं स्वरसंयोगे चतुरस्त्वं तात न शरसंयोगे

तब तो चित्ररथ ने उसके ऊपर वाय्वास्त्र का प्रयोग किया। कर्ण उसके प्रभाव से पलायित हो गया। दुःशासन गन्धर्वों के विरुद्ध चला तो चित्रसेन ने कहा—तुम्हीं ने महेन्द्र की पुत्रवधू द्रौपदी का केशकर्षण किया था। उसे तलवार लेकर मारने के लिए चित्ररथ दौड़ा। चित्रसेन ने कहा कि इसे जीवित ही बन्दी बना लो। उसे रथ पर कस कर बाँधा गया। उसे छुड़ाने के लिए धनुर्बाण लेकर दुर्योधन दौड़ा। अन्य लोग भी दुर्योधन की सहायता के लिए दौड़े तो सबको बन्दी बना लिया। केवल दुर्योधन को छोड़ दिया गया। भानुमती ने दुर्योधन को रोका कि आप बहुत आगे न बढ़े, पर दुर्योधन बातें बढ़ाता गया तो चित्रसेन ने आदेश दिया कि सैनिको, दुर्योधन के अन्तःपुर की स्त्रियों को अर्धवस्त्र से संयमित कर लो, क्योंकि नीति है—

यादृशेनोपचारेण परानुपचरेत् पुमान्।
तं प्रत्युपचरेत्तेन तथोपचरणप्रियम्॥ २. १८

उसने स्वयं दुर्योधन को बाँधा। तब तो भानुमती ने सुझाव दिया कि हम सभी मिल कर रोयें। कोई उदात्त पुरुष सहायता करने के लिए आ जाये।

अर्जुन से नहीं रहा गया। भीम ने चिल्ला कर कहा—सम्राट् युधिष्ठिर आज्ञा देते हैं—

मुंचध्वं भ्रातृवर्गं किमयमविनयः पौरवेन्द्रे धरित्रीं
शासत्युद्दण्डप्रणयनविनताशेषसामन्तचक्रे ।

दुर्योधन ने भीम को देखा तो मन में कहा कि यह तो बड़ी हेठी हुई। चित्रसेन ने कहा कि सभी बन्दी महाराज युधिष्ठिर के पास हम लोगों के साथ ही चलेंगे।

तृतीय अङ्क में रंगमंच पर धनुर्धर अर्जुन और उसके पीछे भीम हैं। दुर्योधन आदि को लेकर गन्धर्वराज आया। दुर्योधन यह देख कर विषण्ण हुआ कि मुझे कोई पूछ भी नहीं रहा है। इधर दुर्योधन ने चित्रसेन से कहा कि आप तो मुझे मार ही डालें। ऐसा गर्हित जीवन दो कौड़ी का है। उसने उत्तर दिया कि आपके प्राणों के स्वामी तो ये अर्जुन हैं। उसने अर्जुन और भीम को अपने रथ पर बैठाया। अर्जुन को चित्रसेन आतिथ्य के लिए दिव्य फल देने लगा तो उसने कहा

कि पहले आप दुर्योधनादि को छोड़ें। चित्रसेन ने कहा कि इन्हें इन्द्र के आदेश से पकड़ा है। अर्जुन ने कहा कि हमारे आदेश से इन्हें छोड़ दें। चित्रसेन ने स्पष्ट किया कि इन्द्र (बाप) ने कहा है कि पकड़ो और अर्जुन (बेटा) कहता है कि छोड़ो। क्या करूँ? दुर्योधन ने कहा कि मुझे मार डालें। भीम के सुझावानुसार सभी इस बात पर सहमत हुए कि युधिष्ठिर के पास चलें।

चतुर्थ अंक में भीम ने युधिष्ठिर को सारी घटना बता दी। युधिष्ठिर के पास गन्धर्वराज बुलाये गये। द्रौपदी ने यह सुना तो बोली कि भीम सभी कुरुवधुओं को शीघ्र मुक्त करायें। मैं स्वयं छुड़ाने जाती हूँ। कहीं देर न हो जाय।

युधिष्ठिर ने जाना कि इन्द्र ने यह सब कराया है तो चित्रसेन से पूछा कि इन्द्र को यह सब विदित कैसे हुआ? ध्यान-चक्षु से इन्द्र सब कुछ जान लेते हैं—यह चित्रसेन ने बताया। इन्द्र ने क्या जाना इसका उत्तर चित्रसेन ने दिया—दुर्योधन ने आपकी पत्नियों को नीचा दिखाने के लिये घोषयात्रा का आयोजन किया। तब तो आपके प्रीत्यर्थ दुर्योधन की दुर्गति करनी पड़ी। युधिष्ठिर ने कहा कि यह तो मेरा उपकार ही किया इन्द्र ने। मेरे भाई को दण्ड देकर मुझे परितोष कैसे प्रदान कर रहे हैं। युधिष्ठिर ने कहा कि यह बिछुड़े लोगों से मिलने का समय है। स्त्रियाँ स्त्रियों से, लड़के लड़कों से और मैं दुर्योधन से मिलता हूँ। इस दृश्य को देखने के लिए इन्द्र भी आ पहुँचे। उन्होंने दुर्योधन से कहा कि अब भी सद्वृत्ति का पाठ पढ़ो। इन्द्र ने राजा युधिष्ठिर की भरत वाक्य की आकांक्षाओं की पूर्ति के विषय में कहा—तथास्तु।

इस नाटक में रंगमंच पर शस्त्रास्त्र प्रयोग के द्वारा अभिनय विशेष प्रभावोत्पादक है।

ॐ

अध्याय १०१

पंचानन तर्करत्न का नाट्य-साहित्य

पंचानन तर्करत्न बीसवीं शती के उन कतिपय लेखकों में अग्रगण्य हैं, जिनकी लेखिनी से भारत-भारती सतत धन्य रहेगी। उनका जन्म वङ्गाल में चौबीस परगना जिले में भाटपाड़ा (भट्टपल्ली) में १८६६ ई० में हुआ था। यह नगरी पण्डितों की खानि रही है। कविवर के पिता नन्दलाल विद्यारत्न न्याय और साहित्य के पण्डित-प्रकाण्ड थे। इनकी आरम्भिक व्याकरण-शिक्षा पिता के श्रीचरणों में हुई। इनकी बालावस्था में ही पिता दिवंगत हो गये। पश्चात् १३ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने जयराम न्यायभूषण से काव्यशास्त्र का अध्ययन किया। इनके अन्य गुरु राखालदास न्यायरत्न, मधुसूदन स्मृतिरत्न, ताराचरण तर्करत्न, भास्कर शर्मा आदि थे। १६ वर्ष की अवस्था तक पंचानन ने इन सभी गुरुओं से पूर्ण प्रज्ञा प्राप्त कर ली।

१८८५ ई० से सुदीर्घ काल तक वंगवासी प्रेस में पंचानन ग्रन्थों के सम्पादन, संशोधन आदि कार्यों के लिए नियुक्त रहे। वे १९३७ ई० में इस पदभार से मुक्त होकर काशी-सेवन के लिए वाराणसी में आ बसे।

उन्होंने नेशनल कालेज, संस्कृत-साहित्य-परिषद् आदि की स्थापना में योग दिया। वे वर्णाश्रम धर्म के विशेष मानने वाले थे। धर्म के अभ्युदय में शारदा-बिल को बाधक समझ कर उन्होंने इसका सक्रिय विरोध करते हुए महामहोपाध्याय की सरकारी उपाधि से तिलाञ्जलि दे दी। इस उद्देश्य से उन्होंने वंगीय ब्राह्मणसभा और अखिल-भारतीय-वर्णाश्रम स्वराज्य-संघ का प्रवर्तन किया। अंगरेजी शासन को वे धर्म का उन्मूलक मानते थे। इसे समाप्त करने के किए उन्होंने अनुशीलनी नामक क्रान्तिकारी पार्टी का गठन किया था। अलीपुर-बम्ब-विस्फोटन की घटना अरविन्द के दिग्दर्शन में घटी। इसके सम्बन्ध में १९०७ ई० में उन्हें बन्दी बनाया गया था।

पंचानन का पार्थाश्वमेध नामक काव्य विद्योदय पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने अमरमंगल तथा कलङ्कमोचन नामक दो संस्कृत नाटकों का प्रणयन किया।[1] अमरमंगल १९१३ ई० में लिखा गया था। इनके अतिरिक्त उन्होंने रामायण, महाभारत, पंचदशी, वैशेषिक दर्शन, सांख्यतत्त्वकौमुदी आदि की टीकायें लिखीं। ब्रह्मसूत्र पर उन्होंने शक्तिभाष्य लिखा। इन सब ग्रन्थों के रचयिता होने के कारण

---

१. अमरमंगल का प्रकाशन वाराणसी से १९३७ ई० में हुआ। कलंकमोचन का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-परिषद् पत्रिका में १९३७ ई० में केवल एक अंक तक हुआ। लेखक के पुत्र जीव न्यायतीर्थ के अनुसार इसका सम्पूर्ण प्रकाशन सूर्योदय में हुआ। इसकी प्रति श्री जीव के पास उपलभ्य है।

पचानन को आचार्य कहा जाता है। कवि के व्यक्तित्व का परिचय उनके अमरमंगल के भरतवाक्य से मिलता है। यथा,—

सन्तु स्वधर्मनिरता मनुजाः समस्ताः प्रीतिं सजातिषु भजन्तु विहाय मायाः।
सम्पूजयन्तु जननीमिव जन्मभूमिं भूपालभक्तिनिरताश्च चिरं भवन्तु॥

अमरमंगल

अमरमंगल का प्रथम अभिनय भट्टपल्ली के विद्वानो के प्रीत्यर्थ महासारस्वतोत्सव पर हुआ था। कवि ने इसे प्रयोग के लिए सूत्रधार को दिया था।

कथावस्तु

प्रथमअङ्क मे मेवाड-नरेश राणा प्रताप का पुत्र चित्तौड के दर्शन और उसकी भगवती की अर्चना के लिए लालायित है। यथा,

आजीवनं भवदुपासनमेव धर्मस्त्वद्गौरवाय मरणं च सुखं मदीयम्।
तेषां त्वदभ्युदय-दर्शन-वंचितानां मातर्दयस्व तनुजेषु भव प्रसन्ना॥

शत्रु मुगलराज के द्वारा उसे विलासी बनाने के लिए वेश्याओ के जाल मे फँसाने का प्रयास उसके कपटी साथी समरसिंह के द्वारा प्रवर्तित था। इसी समय कुछ वीर दूर से आते हुए दिखाई पड़े और उनके आतङ्क से मानो भीत होकर एक रमणी 'त्राहि माम्' कह कर चिल्ला रही थी।

अमरसिंह ने उसकी बातों और चेष्टाओ को देखा तो समझा कि यह क्षत्रिय-बाला मर्दापितहृदया मुझे देखकर मूर्छित हो गई है। उसने समर को भेजा कि तुम तो जाओ और इसके रक्षी वर्ग को बचाओ। मैं इसे तब तक आश्वस्त करता हूँ। समर ने आगे बढ कर देखा कि सभी यवन मारे गये। रक्षियों मे सभी राजपक्ष के सामन्त है। उस ललना वेश्या के साथ की बुढिया ने बताया—राठौरवशी सामन्त राजसिंह की यह वीरा नामक कन्या है। इस समय इसके पिता ने अभिलाषा प्रकट की है कि इसे यवनराज को दे दिया जाय, जैसा आमेर के राजा ने किया है। विवाह का दिन पक्का करने के लिए राजसिंह उधर दिल्ली गया, इधर महारानी ने इस कन्या को रक्षियो के साथ आपके पास भेज दिया। गत रात्रि में डाकुओं ने हम लोगों पर आक्रमण कर दिया और पालकी मे बैठी इस ललना को ले भागे। मेरे चीत्कार करने पर रक्षी जगे और उन्होने दस्युओ पर धावा बोल दिया। यवन-दस्यु भाग गये।

द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे मानसिंह के दो गुप्तचरों की बातो के अनुसार मानसिंह ने गुप्तचरो को अमरसिंह के पतन के लिए योजनायें कार्यान्वित करने के लिए नियुक्त किया है। प्रथम योजना थी—झालापति का पुत्र पानी मे डूब मरा था। उसका शव नही मिला। दैवज्ञ से झालापति की रानी को यह आश्वासन दिया गया कि तुमको अपना पुत्र मिलेगा। उसी दैवज्ञ ने कुछ दिनो के पश्चात् मानसिंह के गुप्तचर दुर्जनसिंह को सभी बातें बताकर रानी को अर्पित किया और कहा कि यही आपका पुत्र समरसिंह है। यह रानी

अमर की माता की सहेली थी। माता ने अमरसिंह से कहा कि समरसिंह (वस्तुतः दुर्जनसिंह) को अपना सहचर बना लो। तब से मानसिंह का वह चर समरसिंह नामधारी बन कर अमरसिंह के साथ रहता था। मानसिंह ने स्वयंवरार्थिनी क्षत्रिय कुमारी (वस्तुतः वेश्या) को अमरसिंह के पास इस उद्देश्य से भेजा कि वह अमर को चित्तौड़-विजय के लिए प्रेरित करे। समर भी यही कर रहा था। मानसिंह चित्तौड़-रक्षा के लिए मुगलराज को लगा कर अमरसिंह का अन्त कर देना चाहता था। साथ ही यदि अमर का साथ चित्तौड़-आक्रमण के समय अन्य सामन्त नहीं देते तो निराश होकर अमर विलासिनियों के बीच भोग-प्रवण होकर व्यसनी बनेगा। ऐसी स्थिति में जहाँ-कहीं भी अमरसिंह हो, उसे मुगलराज के द्वारा परास्त कराया जाय, यह मानसिंह की योजना है। वह वेश्या अमरसिंह के सम्पर्क में आकर सर्वथा परिवर्तित हो गई है। वह अपनी माता के कहने में नहीं रही।

द्वितीय अङ्क के अनुसार देवी ने अमरसिंह से प्रार्थना की थी कि आप वीरा को ग्रहण कर लें। अमर ने प्रतिज्ञा की थी कि चित्तौड़ जीते बिना अन्य किसी स्त्री से विवाह न करूँगा। चित्तौड़ पर आक्रमण की योजना कार्यान्वित की जाने की बातें चल रही थीं। वीरा ने देवी से कहा कि मेरा विवाह अमर से भले न हो, वे चित्तौड़ पर आक्रमण का संशय न लें। मैं उनको देख कर जीती रहूँगी।

चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए अमर की अध्यक्षता में सामन्तों की सभा जुटी। वहाँ राणा प्रताप के अन्तिम समय का इस प्रकार स्मरण किया गया—

आ ताम्रदीर्घनयनद्वयमुक्तमुक्तास्थूलाश्रुसन्ततिमपाङ्गतटाद्गलन्तीम्।
हा हा चितोर न तवोद्धरणं मयाभूद् इत्थं विलापबहुलां सततं स्मरामः॥

सामन्तों ने कहा कि दिल्लीश्वर ने मेवाड़ पर आक्रमण करना छोड़ रखा है। अकबर राणा प्रताप के गुणों से आवर्जित होकर उन्हें कष्ट में नहीं डालना चाहता था। हमारे चित्तौड़ पर आक्रमण करने से स्थिति बिगड़ सकती है। अमर सिंह ने कहा कि भय के कारण आप लोग इस प्रयाण से डरते हैं।

समरसिंह ने अमरसिंह का पक्ष लेते हुए कुछ कहा तो अमर के चचेरे भाई भणसिंह ने उसे दुत्कारा। फिर तो अमर का समर्थन पाकर समर ने कहा—

झालापतिर्मम पिता यदि वा न वासौ, क्षात्रे कुले मम जनुर्यदि वा न वास्तु।
आस्ते तु दण्डधरदण्डसमानवीर्यो निस्त्रिंश एष कुलमानविधानदक्षः॥

भण सिंह ने कड़ा उत्तर दिया—

तत्राहं ननु शक्तसिंहतनयः कोऽयं ममाग्रे पशुः।

समर जो काम चाहेगा, उससे हम सब अलग रहेंगे। सामन्तों ने भण का समर्थन किया। शालुम्ब्रा ने अमरसिंह के उत्तेजक सम्बोधन को सुन कर कहा कि आपकी बातें ठीक तो हैं, किन्तु कहीं चौबे गये छब्बे बनने, दूबे बन के आये।

परिणामत: जितनी स्वतन्त्रता है, वह भी वही न चली जाय। अमर ने पुन: कहा—

देशस्य मंगलमये समये चिराय या शान्तिरप्रतिहताभ्युदयं तनोति।
सैवेतरत्र कुरुते प्रवलावसादं धर्मार्थसंक्षयकरीमपि मोहतन्द्रीम्॥

चित्तौड पर आक्रमण की बात आगे न बढ सकी। सामन्त चलते बने। तब तो जरती ने राजकीय आवास मे आग लगा दी। अमर ने देखा कि उस अग्नि मे जरती स्वयं जल गई।

तृतीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार अमर तृण के घर के स्थान पर नवनिर्मित प्रसाद मे रहने लगा और व्यसनी हो गया। उस प्रासाद के भीतर तिनके से बने गुप्त भवन मे वह रहता है। उसका व्यसनी होना भी कृत्रिम है, जिससे शत्रु मानसिंह को प्रलोभन हो और अपने सामन्त उत्तेजित हो। आग लगाकर बुढिया भागी तो ठोकर खाकर गिरी और आग की लपट से अर्धदग्ध होकर बचाई हुई भी मर ही गई। मरते समय उसने मानसिंह की सारी चालें अमर के विध्वस की दिशा मे बताई। राजगुरु ने शुकावली को राणाप्रताप और मानसिंह के प्रकरण-विषयक अधिक्षेपात्मक पाठ पढाकर मानसिंह के जयपुर आवास की ओर भेज दिया। उनकी शुकवाणी सुनकर मानसिंह उद्विग्न हुआ। एक तोता गोली से मारा गया। उस अधिक्षेप को सुनकर मानसिंह ने कहा—

येन प्रतापवचन-क्रकचेन पूर्वं कृत्तेषु मर्मसु विपक्षतमुद्वहामि।
तत्तुल्यकीरवचनं श्रुतमेव सद्यः क्षारीभवन् क्षतमुखे नितरां दुनोति॥

एकलिंगनाथ का पुरोहित एक दिन आया। उसने मानसिंह के द्वारा प्रेषित पूजा की सामग्री उन्हें लाकर लौटा दी और कहा कि जिस भगवान् को राणाप्रताप की पूजासामग्री अर्पित करते आ रहे हैं, उसे आपका याजक बन कर आपकी वस्तुयें कैसे दे सकता हूँ? मानसिंह के सेनापति के अडवड बकने पर उसने कहा—

अथवा का ते त्रपा यवनश्यालचरणरेणुभोजिनो यवनदासानुदासस्य क्षत्रकुलकलङ्कस्य।

और भी—

अदेवलोऽहमथवा भवामि यदि देवलः।
तथापि यवनश्यालं न याजयितुमुत्सहे॥

तब तो मानसिंह ने प्रतिज्ञा की कि अब तो मैं मेवार से प्रस्थान करता हूँ और जब तक यह सर्वथा विध्वस्त न हो जायेगा, यहाँ प्रवेश नही करूँगा। मानसिंह ने प्रतिज्ञा की कि राणाप्रताप के पुत्र को मुगलराज के पैरो पर गिरा कर ही दम लूँगा। उसने दिल्लीपति के द्वारा उदयपुर पर आक्रमण करने की अनुमति लेने की योजना बनाई।

चतुर्थ अङ्क के अनुसार अमरसिंह ने मुगल-सेना का प्रतिरोध करने के लिए भीलों की सेना व्यवस्थित की थी। एक विलास-निकेतन मे अमरसिंह राना अमर

से मिला और बताया कि यावनी सेना आ रही है। अमर के प्रतिकार पूछने पर उसने बताया कि अभी तो कुछ नहीं करना है। समय आने पर बताऊँगा।

शालुम्ब्रापति, भणसिंह, वान्दा ठक्कुर आदि सामन्त अमर सिंह के विलास-निकेतन में उससे मिले। अमर ने कहा—मुझे शान्ति से रहने दें। आप लोग यथोचित करें। शालुम्ब्रा ने सुनाया—

क्व ते यातं तेजः क्व पुनरगमत्ते भुजवलं
क्व वा देशप्रेमा क्व च यवन-विद्वेष-गरिमा।
पितुः कार्ये भक्तिः क्व च तव गता सा नरपते
चितोरोद्धारार्थं ननु यदवलम्बोऽजनि भवान्॥

राजा अमर ने कुछ कहा भी नहीं कि समर ने कहा कि धन देकर यवनसेना को हटा दिया जाय। अन्य सामन्तों ने उसे खोटीखरी सुनाई और अमर को उत्तेजित किया, पर जब उसने कुछ भी नहीं सुना तो शालुम्ब्रा ने कहा—

'धन्यं तदीयमिदमासनमार्ययोग्यमिन्द्रासनादपि पवित्रतमं प्रतीमः।
अध्यासितुं तदयमर्हति नैवभीरुर्यावन्न याति समरे यवनक्षयाय॥

उचित अवसर देखकर राना अमर ने व्रत लिया—

यावन्मे शस्त्रपातक्षुभितहयगजोद्भ्रान्तिविभ्रान्तयोधा
रक्तोद्गारारुणाङ्गा यवननरपतेर्वाहिनी मुक्तकेशा।
देशादस्मान्न गच्छत्यचितविभवा नापि यावच्चितोरं
प्रत्यापद्ये न तावत् कथमपि जनकस्याशंसनं संस्पृशामि॥

और कहा—

यावज्जीवमहं स्थितोऽस्मि समये साक्षी भवत्वीश्वरः॥

राजा अमर ने समर सिंह से कहा—आज भी कपट नहीं छोड़ते। उसने नगर-पाल को बुलाकर आदेश दिया—इस समर सिंह के चाटुकारों को वन्दी बनाओ। इसके बाद सभी सामन्त पूरी सज्जा के साथ देशरक्षा के लिए उछल पड़े।

पंचम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार अमर सिंह की पत्नी छिपे या प्रत्यक्ष रूप से सदा अपने पति की सुरक्षा का प्रबन्ध साथ रहकर शस्त्रास्त्र से भी करती थी। वीरा का अनुसरण करने वाले यवन को इसी देवी ने शरसन्धान करके मारा था। मुगलसेना से युद्धपरायण अमर के साथ देवी अश्वारोही बनकर वीरवेश में पीछे-पीछे रहती थी। सुबला भी उसके साथ ही पुरुष-वेश में रहती थी।

पंचम में युद्ध-स्थल में भण का घोड़ा तोप की गड़गड़ाहट से डर कर भागा, चट्टान पर ठोकर खाकर गिरा और भण का घुटना टूट गया। अमर सिंह की सेना पलायन कर रही थी। उस समय अमर ने वीरों को सम्बोधित किया—

भो भो मेवारवीराः समरमिदमहो युष्मदाक्रीडलीलं
याथ क्वेमं विहाय त्रिदशपुरपथं देशरक्षाव्रतं वा।

वीक्षध्वं जन्मभूमिर्ज्जवनपदभरैर्दुःसहैः पीड्यमाना
निःशब्दं रोदितीयं मलिनमुखरुची रक्षतैनां सुपुत्राः ॥

एक बार और भण सिंह उसका प्रोत्साहन सुन कर युद्ध करने के लिए समुद्यत है। बन्दूक और तोपों की मार से राजपूत सेना पराङ्मुख हो रही थी। उदयपुर की ओर यावनी-सेना बढ़ी आ रही थी। उसे उचित स्थान पर स्थित होकर रोकने के लिए शालुम्ब्रा सचेष्ट था। वहीं उसे भर्णसिंह मिला। अपनी सेना के भागने से वे दोनों दुःखी थे कि पहले ही चित्तौड़ पर महाराज की आज्ञानुसार क्यों न आक्रमण कर दिया था?

भागती हुई सेना को राजा अमर की पत्नी ने युद्ध-स्थल में सन्देश दिया—

शृणुत शृणुत पुत्रा मातरं मामवेक्ष्य
त्यजत समरभीतिं यात वैरिक्षयाय।
सफलविजययात्रा मण्डिताः पुण्यकीर्त्या
वरमुचितमभीष्टं प्राप्स्यथ प्रीतिपूर्णाः ॥

यह सुन कर वीरों ने जय-जय ध्वनि करते हुए कहा—

विजयतां जननी। एते वयं वैरिक्षयाय प्रस्थिता एव।

मेवाड़ की विजय हुई। तब अमर सिंह की पत्नी अपना कार्य समाप्त समझ कर महाराज की आज्ञा लेकर नगर जाने के लिए आ गई। अमर ने उसकी प्रशस्ति में कहा—

त्वं राजनीतिनिगमे मम शिक्षयित्री
शिष्यासि मे रणकलासु कृतश्रमा त्वम्।
सर्वापदि स्थिरमतिः सचिवोऽसि मे त्वं
त्वं गेहिनी सदृशदुःखसुखा सखी च ॥

छठें अङ्क के अनुसार राजा और रानी के युद्ध में जाने पर वीरा भी कहीं चली गई। उसका पता एकलिङ्गनाथ के पुरोधा से चला, जब वे विजयोत्सव के अवसर पर अमर से मिलने आये। उन्होंने बताया कि चितोरेश्वरी के पूजा-महोत्सव के समय हजारों तपस्वी दुर्गापाठ करने के लिए बुलाये गये। किसी सिद्ध तापसी की सहायता से चितोर के शासक सागरसिंह ने इसके लिए अनुमति दे दी। वे सभी पुस्तकों के वेष्टन में शस्त्र लेकर एकत्र हुए थे। वे सभी ब्राह्मण योद्धा थे।

उसी तापसी ने चितोर-दुर्ग में प्रवेश का उपाय भी रचा है। पुरोधा ने कहा कि राजगुरु ने सप्तमी के दिन आप सब को बुलाया है। तापसी ने चित्तौड़-शासक का आज्ञा-पत्र राजा को दिया, जिसे देखकर चित्तौड़ का द्वार खोल दिया जाय। दूसरा पत्र तापसी का लिखा हुआ देवी के लिए था। पत्र से ज्ञात हुआ कि तापसी वही वीरा थीं।

सप्तम अङ्क के अनुसार चित्तौड़-विजय के लिए प्रयाण में शक्तान्वय अथवा चण्डान्वय सेनाग्रभाग-परिचालन का श्रेय पायें—यह शक्तवंशी भर्णसिंह के लिए

प्रश्न बना हुआ है। चण्डवंशी वान्दा ठक्कुर ने तभी भणसिंह आदि सामन्तों को कहा कि मेरे पीछे चलने के लिए सज्जित हो जायँ। भणसिंह ने कहा—मेरे रहते ऐसा न होगा। वान्दा से वह झगड़ पड़ा। वान्दा भी वचस्सौष्ठव से विरहित था। भण ने उससे कहा—

यदि रे बलाधिकतया प्रगल्भसे त्यज वाग्विसर्गमबलाजनोचितम्।
कृतशस्त्रमुद्यतमशस्त्रपाणिषु प्रहरन्ति शक्रतनया न जात्वपि॥

हमारे और तुम्हारे वंश के वीर लड़ें। जो जीते वह सेना का अग्रणी बने। वान्दा ने तलवार हाथ में ले ली और कहा आ जाओ। उसी समय पुरोधा आ गया। उसने उन्हें समझाया—

जन्मभूमेः परिक्लेश-हानये भवदायुधम्।
न तत्क्लेशकृते भ्रातृ-हत्यायां विनियुज्यताम्॥

पुरोधा की बात से वे दोनों रुक गये। पुरोधा ने उन्हें आगे समझाया कि मानसिंह के प्रणिधि ने तुम दोनों की वैराग्नि उद्दीपित की है। तुम दोनों अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अन्तला दुर्ग पर आक्रमण करो। जो पहले उसमें विजयी होकर प्रवेश करे, वह श्रेष्ठ। राजा भी इसके लिए निदेश प्रचारित करेंगे।

अष्टम अङ्क के पूर्व १५ पृष्ठों के विष्कम्भक के अनुसार सुबला के पूछने पर वीरा ने बताया कि स्वप्न में देवता का आदेश पाकर बिना किसी को बताये हुए ही मैंने देवी का आवास छोड़ दिया। मैं जानती थी कि मानसिंह और दिल्लीश्वर की हानि करने वाली मुझे देवी चित्तौड़ आने की अनुमति न देतीं। अब सब अभीप्सित उद्देश्य पूरे हो गये। केवल एक बात शेष रही। सुबला ने कहा कि वह भी पूरा होगा। चित्तौड़ की विजय होने पर देवी स्वयं आपका विवाह राजा से कर देंगी। वीरा ने कहा कि देवी से मेरी ओर से कह देना—

प्रेम्णः सुखं येन जनेन लब्धं न तस्य शारीरसुखेऽभिलाषः।
सुधारसास्वादन-तर्पिताय न रोचते पङ्किलवारिधारा॥

कल ही चित्तौड़ पर अमर की विजय-पताका फहरायेगी। तभी उसे दिखाई पड़ा कि दूर से देव अमर सामन्तों के सहित बड़ी सेना के आगे-आगे आ रहे हैं।

चित्तौड़ की ओर प्रयाण करते हुए निकट पहुँचने पर अमर ने कहा—

अपूर्वेयं सृष्टिस्त्रिभुवनविधातुः सुखमयी।
रजस्पर्शो यस्या वपुषि पुलकं मे जनयति॥

शीघ्र ही चितोरेश्वरी-मन्दिर में पहुँचे। वहाँ स्तोत्रगीत सुनाई पड़ा—

जयत्यस्त्रवर्षिद्विपन्मुण्डमाला कराला करालि स्फुरत्काञ्चिलीला।
घनश्यामधामा चतुर्बाहुवामा चितोरेश्वरी विश्वरीणाग्र्यनामा॥

वहाँ गुरु भीमानन्द मिले। वहीं चित्तौर का छत्र-दण्ड-चामर-राजसिंहासनादि लाया गया था। राजमहिषी भी विराजमान थीं। भीमानन्द ने कहा—अभी थोड़ी देर में सागर सिंह देवी को प्रणाम करने के लिए आयेंगे। सागर सिंह आ पहुँचे।

उन्हें कालभैरव का सन्देश शङ्कित कर रहा था। सन्देश था—यवनदासता छोड़ो, नहीं तो तुम्हें खा जाऊँगा। उसने अपने अमात्य से कहा—

एवं मूढधियो गतो बहुतिथः कालोऽल्पभाग्यस्य मे।
यस्मिन् नो गणितं कुलं न महिमा धर्मो न शौर्यं न च॥

राजत्व से मुझे क्या मिला?

राजत्वं मे नैव दास्यं यदेतत् राज्यं नेदं गोत्रशौर्यश्मशानम्।
रक्षानेयं किन्त्वसौ प्रेतवृत्तिः मानो नायं न्यक्कृतिः सर्वथा॥

सागर लज्जित था। उसकी मानसिक ग्लानि थी—

वर्तन्ते बहवः सुमन्दमतयो ये पापवृत्तिं श्रिताः
सर्वेषामहमेव निन्दिततमो लज्जाघृणावर्जितः।
दस्योर्दास्यमुपागतेन हि मया तस्यैव वृद्धयै प्रभो-
रम्बायाः परिधानमम्बरमहो हर्तुं समाकृष्यते॥

सागर के अमात्य ने कहा कि मानसिंह को हटाकर आपको चित्तौड़ का शासन दिल्लीश्वर ने दिया था। इसका उपकार मानें। सागर ने उत्तर दिया—

सुतोऽपि यवनीकृतो मम दुरात्मभिर्यैः स्त्रिया।
त एव यवना ननु प्रभुतया नियच्छन्ति माम्॥

अमात्य ने कहा कि मानसिंह की भाँति आप राजकार्य में असमर्थ हैं। सागर ने स्पष्ट कहा—राज्य तो योग्य आप के सुयोग्य पुत्र अमर का है। युद्ध के बिना ही उन्हें मैं इसे अर्पित करता हूँ। तब तो शालुम्ब्रापति ने अमरसिंह का चाचा सागर से परिचय करा दिया। सागर ने अमर का आलिंगन किया। फिर उसने भीमानन्द के चरणों में प्रणाम किया। सागर ने अमर को राज्य देना चाहा तो अमर ने कहा कि राज्य का दान नहीं ग्रहण करना है। विजय से राज्य चाहिए। तब सागर ने अमर को समझाया—

कुलप्रदीपेन कुलान्धकारो वत्स त्वयाहं विजितः प्रकृत्या।
पुरप्रविष्टस्य रणोद्यतस्य जानामि ते वीर्यजितं स्वमद्य॥

अमर का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। वीरा ने गीत गाया—

विधिवदमरसेव नन्दिताधर्मवैरिक्षपण-
नियतभावा भीमभक्तिप्रसन्नाः।
बहुकरतनुमध्या स्मेरवक्त्रा घनाङ्गी
जयति शिवपदान्तः श्रीचित्तोरेश्वरो नः॥

इस नाटक की कथावस्तु का आधार मुख्यतः कर्नल टाड का अनाल्स आव राजस्थान नामक ग्रन्थ है।

पूर्वपीठिका

नाटक में प्रस्तावना के पूर्व ही कवि द्वारा लिखित आठ पृष्ठों की लम्बी भूमिका है, जिसमें बताया गया है कि राजपुताने में मेवाड़ नामक भूभाग के

के प्राचीनतम राजा रामचन्द्र के द्वितीय पुत्र लव थे। इस प्रदेश में वप्पा ने चित्तौड़ में अपनी राजधानी वनाई।[1] आजकल भी यह राजवंश उदयपुर में चल रहा है। वावर से संग्रामसिंह पराजित हुआ। तव तो चित्तौड़-राजधानी में लज्जित राजाओं ने प्रवेश छोड़ दिया और उदयपुर में आ वसे। उदयसिंह संग्रामसिंह का पुत्र था। उपर्युक्त युद्ध में चित्तौड़ के सभी वीर मारे गये और वीराङ्गनायें जल मरी। उदयसिंह का पुत्र महाराणा प्रताप हुए। उन्होंने व्रत लिया कि जव तक चित्तौड़ का उद्धार न कर लूंगा, तव तक भोजन-पान में स्वर्ण-रजत के पात्रों का उपयोग नहीं करूंगा। प्रासाद में नहीं रहूंगा, कोमल शय्या पर नहीं सोऊँगा, दाढ़ी नहीं वनवाऊँगा, तृणपर्ण के पात्र तथा तृणपर्ण का आवास होगा। उन्होंने अकवर के विजेता सेनापति मानसिंह के साथ भोजन नहीं किया। उसके कहने पर अकवर ने प्रताप पर सेना का प्रयाण कराया और २० वर्षों तक प्रताप को युद्ध में जूझना पड़ा। ऐसी स्थिति में राणा को अनेक दिन ऐसे विताने पड़े कि भूख लगने पर अन्न, प्यास लगने पर पानी, ठंडक लगने पर वस्त्र, गर्मी लगने पर पंखा, पानी वरसने पर शरण भी न रहे। उनकी रानी और पुत्र को भी यही विपत्ति झेलनी पड़ी। मन्त्री भामाशाह के दिये धन से उन्होंने सैन्य-संघटन किया और चित्तौड़ को छोड़कर साही राज्य ले लिया। उन्होंने ग्रामवासियों को खा जाने वाले शार्दूल को अकेले ही भाले से मार डाला। चित्तौड़ के उद्धार की आशा लिये हुए ही वे दिवंगत हो गये।

प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने पेछला के तीर पर अवस्थित पर्णशाला के स्थान पर सौधावलि वनवाई। अकवर के मरने पर जहाँगीर ने मेवाड़-विजय के लिए वड़ी सेना भेजी। उसने १७ वार दिल्लीश्वर की सेना को पराजित करते हुए शासन किया।

जहाँगीर ने चित्तौड़ पर अमरसिंह के चाचा सागरसिंह का स्वयं अभिषेक किया। इधर अन्तला के दुर्ग पर चन्दावत और शक्तावत वीरों को भेज कर अमर ने उसे मुगलों के अधिकार से विमुक्त कर दिया।

चण्ड के पिता के पास राठौर राजकन्या के विवाह का प्रस्ताव आया। उसने कहा कि मैं वृद्ध हूँ। मेरे लड़के से इसका विवाह हो जाय। लड़का नहीं सहमत हुआ। पिता ने कहा कि तव तो मुझे विवाह करना पड़ेगा, पर इसकी सन्तान राज्याधिकारी होगी। उस कन्या से मुकुल का जन्म हुआ। पाँच वर्ष की अवस्था में मुकुल राजा वना और चण्ड सहर्ष उसका रक्षक वना। पहले तो चण्ड को विमाता ने दूर देश भिजवा दिया, जव उसने देखा कि मेरे पुत्र का प्राण संकट में है तो चण्ड को शरण देने के लिए वुलाया। चण्ड ने मुकुल की रक्षा करली। मुकुल ने उसको राजप्रमाणक शाश्वत प्रतिष्ठा प्रदान की।

प्रताप का छोटा भाई शक्तसिंह था। वह दिल्लीश्वर की शरण में पहुँचा।

---

१. लेखक के अनुसार चित्तौड़ चित्रकूट का अपभ्रंश है।

एक बार जब युद्ध में प्रताप के विरोध मे शक्तसिंह राजस्थान में आया तो प्रताप के पराक्रम से और देशरक्षा के लिए उसके आत्मत्याग से प्रभावित हुआ। प्रताप को गोली लगी और वह अकेले घोड़े पर चढकर जगल की ओर प्रस्थान कर रहा था तो दो यवन-सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। शक्तसिंह ने उन दोनो को मार डाला और अपने पूर्व के किये हुए पापो का ध्यान करते हुए विह्वल होकर प्रताप के चरणो पर वह गिर पडा। इसी शक्तसिंह का बडा लड़का भर्णसिंह अमर का अनुयायी था।

पचानन ने इस भूमिका को पढ लेने के बाद नाटक को पढने या देखने की समीचीनता प्रकट की है।

नाट्यशिल्प

कवि ने इस नाटक मे अक का आरम्भ प्रस्तावना के पश्चात् मानकर २८ वें पृष्ठ से प्रथमोऽङ्क का आरम्भ माना है।[1] इसी प्रकार प्रथम अङ्क के बाद विष्कम्भक और उसके पश्चात् द्वितीयोऽङ्क दिया है। अष्टम अक के पूर्व १५ पृष्ठो का विष्कम्भक अङ्क के समान पडता है। इसमे गीतात्मक पद्य तीन और साधारण पद्य पाँच हैं। अभिनय कार्यपरक है।

कापटिक पात्र समरसिंह का काम छायातत्त्वानुसारी है। वह वस्तुतः शत्रुओं की ओर से नियुक्त था कि अमरसिंह को झझटो मे डाले। उसने इस छाया-वृत्ति का सटीक वर्णन इस प्रकार किया है—

कपटो हृदये कपटो वचने कपटो नयने कपटो वपुषि।
कपटस्त्वचि चेति समृद्धगुणः परवंचनवर्त्मनि दक्षतरः ॥ १.५६

और भी

मनसि गरलभारो वाचि पीयूषधारा वपुषि मधुरभावो भावनान्यादृशी च।
प्रकृतिरियमधीता किन्तु नेत्रत्वचं मे सलिलपुलकजालं काममाम्राञ्च धत्ते ॥

सात्त्विक बनी हुई वेश्या-रमणी का प्रथम अङ्क का नाटक भी छाया तत्त्वानुसारी है। उसके माया रोदन को सुनकर समर सिंह कहता है—

अहो निपुणता वाराङ्गनाया यया तावदसम्भिन्नस्वरवर्णवचनया तथा-यमार्तध्वनिरुत्थापितो यथा जानतोऽपि मे सहसाभूतार्थपरिशंकिनी बुद्धिः समुत्पन्ना।

उसके कार्यव्यापर के विषय मे कवि ने कहा है—

अर्धस्खलितवसना मोहं नाटयति।

पात्रो का चारित्रिक विकास पचानन की वह सफल योजना है, जो सस्कृत नाट्यसाहित्य मे विरल है।

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में जरती के स्वगत या एकोक्ति के द्वारा निम्नाङ्कित अर्थोपक्षेपण किया गया है—

१. अन्य छपी पुस्तको मे भ्रमवश प्रस्तावना को प्रथम अङ्क में रखते हैं।

(१) विषप्रयोग या अन्य किसी उपाय से सस्त्रीक अमरसिंह को मारना चाहती है।

(२) उन्होंने उसकी कन्या को बहला कर अपने पक्ष में कर लिया है।

(३) सारे राजकुल को अग्निसात् करना चाहती है।

इसके पश्चात् अङ्क भाग में भी वीरा और जरती के संवाद में भी अर्थोपक्षेपणा तत्त्व है। यथा—

(१) वीरा नामक वेश्या को अमरसिंह का सर्वनाश करने के लिए एक लाख स्वर्ण-मुद्रा दी गई है। वह अमरसिंह से सात्त्विक प्रेम करने लगी है। अमरसिंह और उसकी पत्नी वीरा से स्नेह करने लगे थे। वीरा ने निर्णय लिया कि अमरसिंह के पतन का कारण न बनूंगी।

चतुर्थ अङ्क में समरसिंह के स्वगत में अर्थोपक्षेपण है कि दिल्लीश्वर की महती सेना निकट आ पहुँची है। तब भी अमरसिंह निरुद्यम है।

द्वितीय अङ्क के बीच में वीरा की एकोक्ति है, जिसमें वह अपना हृदय-परिवर्तन प्रकट करती है कि अब मैं अमरसिंह की भक्षिका नहीं, रक्षिका बन गई हूँ। 'यत् कृतं तत् कृतं पुनरकार्यं न करिष्यामि। कपटेनार्यपुत्रं न पातयिष्यामि।' पंचम अंक के आरम्भ में रंगपीठ पर अकेले भर्णसिंह युद्धभूमि में घुटने टूट जाने से विवश होकर आत्म-गाथा सुनाता है। कैसे घुटना टूटा, कैसे अमर की वाहिनी भाग रही है। उसकी एकोक्ति सप्तम अंक के आरम्भ में भी है, जिसमें वह असमंजस में पड़ा हुआ अपनी स्थिति का पर्यालोचन करता है।

द्वितीय अंक में रंगमच पर गीत का आयोजन लोकरंजक संविधान है। सुबला गाती है।

देव सुधाकर किर करं, दिनकर दुर्जयतिमिरहरम्।
तव सुखोदय-लालसहृदयं कुमुदं सेवतां विमलममृतम्॥ इत्यादि

इसी अङ्क में नेपथ्य से वैतालिक गाते हैं, जिनके गीतों के अन्तिम चरण हैं—

जयति जयति देशोद्धारबद्धैकदृष्टिः।
जयति जयति नृपतिवर्यो हिन्दुसूर्योऽग्र्यशौर्यः॥

तृतीय अङ्क का आरम्भ वैतालिकों के गीत से होता है, जिसमें वे मानसिंह की प्रशस्ति-वर्णना करते हैं। यथा,

जय दिल्लीश्वर-सेनापतिवर वीरनिकरकरहारी। इत्यादि

चतुर्थ अङ्क में वीरा का गीत नेपथ्य से सुनाई पड़ता है[1]—

---

१. अन्यत्र भी गीतों के द्वारा प्रेक्षकों के मनोरंजन का अवसर कवि ने प्रस्तुत किया है। यथा, चतुर्थ अंक में 'युवतिमुखमण्डलं कनकमय कुण्डलम्' आदि, चारण का गीत ११ पद्यों में, अष्टम अंक के पूर्व विष्कम्भक में रेणु–महिमा–विषयक वीरा का गीत ३ पद्यों में है।

प्रतिरतरमणो हरितमानव-देशहित-व्रत-जनसमुदाये ।
त्रिदिवदुरापं परमं सुखमपि जनकपरायण-शुभमति-तनये ॥

किसी पात्र को रंगपीठ पर बिना कुछ कहते-करते कुछ देर तक रखना कवि की योजना के अन्तर्गत है। द्वितीय अंक में वीरा रंगपीठ के एक ओर चुपचाप पड़ी रहती है, जब तक दूसरी ओर देवी और सुवला बातचीत कर रही हैं। उनकी बातचीत के मध्य वीरा की चर्चा आने पर वीरा उनके बीच आ गई।

अंक भाग में नायक को आद्यन्त रहना चाहिए। द्वितीय अंक के आरम्भिक भाग में ऐसा नहीं है। सप्तम अङ्क में तो नायक कोटि का कोई पात्र आदि से अन्त तक कहीं नहीं है। दशरूपक के अनुसार—अङ्क को प्रत्यक्ष नेतृ-चरित तथा आसन्ननायक होना चाहिए[1]।

अंकों में कार्यहीन संवाद प्रचुर हैं। फिर भी बातचीत के बीच आङ्गिक अभिनय का समावेश कहीं-कहीं द्वितीय अङ्क में इस प्रकार किया गया है—

इति खड्गमादत्ते (समरसिंहः)[2]

तृतीय अङ्क में भी इसी प्रयोजन से मानसिंह के प्रसंग में कहा गया है—

इति खड्गमुद्यच्छन् प्रतिसंहृत्य (मानसिंह.)

जब सेनापति पुरोधा को पकड़ने जाता है तो पुरोधा डण्डा फटकारता है।

राना अमर का विलास-वेश में भी चतुर्थ अङ्क में तलवार का खींच निकालना लोकोत्तेजक संविधान है।

लोकोक्ति-सौरभ

पंचानन की लोकोक्तियाँ यथास्थान सन्निवेशित होकर सुमण्डित हैं। यथा,

(१) को नाम स्वतन्त्रः स्वयमुपनतं पीयूषं नाभिनन्दति ।
(२) सागरमुत्तीर्य वेलायां मग्नप्रायोऽस्मि ।
(३) गुणवानिति कः शत्रुं बलवान् समुपेक्षते ।
द्विजराजोऽयमिति किं राहुर्न ग्रसते विधुम् ॥ २.३
(४) उदरं मे गुडगुडयति ।
(५) न सुखं कामे न सुखं विषये सुखमिह केवलममले हृदये ।
(६) विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
(७) एकः सूर्यो ध्वान्तराशिं निहन्ति व्याघ्रश्चैको हन्ति मेषान् सहस्रम् ।
विद्वानेको मूर्खलक्षस्य जेता हन्ति बप्पावंश्य एकोऽरिसंघम् ॥
(८) मरुमध्यपतितस्य पिपासाकुलस्य भागीरथीप्रवाहोऽवतीर्णः ।
(९) प्रमादे हि प्रभवो रक्षणीया मन्त्रिभिः ।

१. नायक से यहाँ नायिका, प्रतिनायक आदि भी गृहीत है। दशरूपक ३.३०,३६।
२. यह अंक वेणीसंहार के तृतीय अंक का अनुसरण करता है।

अन्योक्ति—

रे दर्पण त्वमसि निर्मलबाह्यमूर्तिरन्तर्नितान्तमलिनं तु तवाद्य विघ्नः।
यद्राजनामविदितं कुलकज्जलाङ्कमेनं दधासि हृदये गणिकेव यत्नात्॥

पंचानन की भाषा सर्वथा नाटचोचित है। भाषा में रसप्रवणता प्रायः सर्वत्र है। इतनी सरल भाषा में सूक्ष्म भावों और भावनाओं की वर्णना के द्वारा पंचानन बीसवीं शती के महाकवियों में गण्यमान हैं।

कलङ्कमोचन

कलङ्कमोचन श्रीपंचाननतर्करत्न भट्टाचार्य का अन्य प्रख्यात नाटक है, जिसमें नाटककार वाराणसेय विद्वानों के अनुरोध से नवीन नाटक के अभिनय की चर्चा प्रारम्भ में करता है[1]।

इसके प्रारम्भ के गर्गाचार्य और बौधायन के प्रवेश से ज्ञात होता है कि कृष्णप्रिया राधा पर आरोपित कलंक निराधार है।

कलङ्कः कल्पनामात्रं श्रीराधायां तदात्मनि।
नित्यतेजसि मार्तण्डे यथा दर्पणकालिमा॥

श्रीराधा नन्दनन्दन की आत्मा है। विमूढ तत्त्वबोध-रहित होकर मोहित होते हैं। विष्कम्भक में बोधायन गर्ग से श्रीकृष्णराधा-तत्त्व सुनने के लिए लालायित हैं। प्रथम अंक में सुदामा और कृष्ण परम रमणीय प्रदेश में प्रवेश करते हैं। श्रीकृष्ण खिन्न हैं और राधा के प्रति प्रगाढ स्नेह से अनुविद्ध हैं।



१. इसका प्रकाशन सूर्योदय-पत्रिका में हो चुका है।

अध्याय १०२

कालीपद का नाट्य-साहित्य

कालीपद का उपनाम काश्यप कवि है। आजकल के बांगला देश में फरीदपुर-मण्डलान्तर्गत कोटालिपारा-उनशिया गाँव में श्री तर्कतीर्थ—तर्कभूषण हरिदास शर्मा के पुत्र कालीपद अपनी पौत्रिक-मनीषि-प्रतिभा को संस्कार-द्वार से सपूजित करके १८८८ ई० में आविर्भूत हुए थे। इनके पूर्वजों में सोलहवीं शती में सुप्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन की अमर कीर्ति अपनी सांस्कृतिक प्रतिभा से विश्व-व्यापिनी रही है।

इनका परिवार मूलतः कान्यकुब्ज-मिश्रोपाधिक था। कालीपद के पौत्रिक भ्राता हरिदाससिद्धान्त वागीश थे, जिनके नाटकों की चर्चा हो चुकी है। विद्वन्मण्डित ग्राम में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करके वे कलकत्ते में अपने पिता के द्वारा अंगरेजी पढ़ने के लिए भर्ती कराये गये, पर पिता के लाख प्रयत्न करने पर भी वे अंगरेजी न पढ़ सके। फिर तो संस्कृत की ओर प्रवृत्त हुए और भारतीरंजन और मूलाजोड़-विद्यालयों में पढ़ा। कालीपद की उच्च शिक्षा भट्टपल्ली गाँव में महामहोपाध्याय पण्डित शिवचन्द्र सार्वभौम के श्रीचरणों में हुई।

कालीपद ने अपने गाँव की पुरा समुच्छलित किन्तु सम्प्रति विलुप्त विद्याधारा को पुनः प्रवर्तित करने के लिए वहीं एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी। यह पाठशाला पाकिस्तान बनने पर दिवगत हुई। कलकत्ते के राजकीय संस्कृत-महाविद्यालय में १९३१ ई० में कालीपद न्याय के अध्यापक बने और कालान्तर में वहीं तर्क के प्राध्यापक बनाये गये। अलौकिक प्रतिभाशाली छात्र कालीपद ने तर्काचार्य की उपाधि शिवचन्द्र सार्वभौम से पुरस्कार रूप में अर्जित की।[1] वे संस्कृत-साहित्य-परिषद् के द्वारा नये स्थापित संस्कृत-विद्यालय में १९१८ ई० में अध्यापक हो गये। वहीं परिषद् की पत्रिका के सहसम्पादक बनाये गये। इस विद्यालय में उन्होंने १२ वर्ष तक ब्रह्मचारियों का अध्यापन करते हुए अनेक दर्शन-ग्रन्थों की टीकायें लिखीं। परिषद्-पत्रिका में उनके अगणित निबन्धों और काव्य-मालिकाओं का समय-समय पर प्रकाशन होता रहा। कवि को नाटकों के अभिनय कराने का चाव था। उन्होंने विद्यार्थी जीवन में मूलाजोड़ विद्यालय में अपने नाटक विदर्भ-समागम का अभिनय कराया था। फिर इसी के परिष्कृत संस्करण का अभिनय अपने अध्यापन के युग में संस्कृत-साहित्य-परिषद् के विद्यालय में परिषद् की

---

१. काशी के भारत-धर्म-महामण्डल ने उनको विद्यावारिधि की उपाधि दी थी। १९४१ ई० में भारत-सरकार ने उन्हें महामहोपाध्याय बनाया। १९६१ ई० में राष्ट्रपति ने उन्हें पाण्डित्य-प्रशस्ति-पत्र दिया।

नाट्यगोष्ठी द्वारा कराया। वे स्वयं पात्र भी बनते थे। अपनी जन्मभूमि में उन्होंने कई अभिनय कराये।[1]

१९७२ ई० में वर्द्दान-विश्वविद्यालय से उन्हें डी० लिट् की उपाधि मिली। शृंगेरी मठ के शंकराचार्य ने उन्हें तर्कालंकार की उपाधि दी थी। हावड़ा के संस्कृत-पण्डित समाज ने उन्हें महाकवि की उपाधि दी थी।

उन्होंने पद्यवाणी नामक एक संस्कृत पत्रिका चलाई, जिसमें संस्कृत के चित्र-विचित्र पद्यबन्ध छपते थे। वह तीन वर्ष चल कर धनाभाव से कालकवलित हुई। १९५४ ई० में उन्होंने सरकारी नौकरी से विश्रान्ति पाई। फिर तो वे पश्चिम वंगाल में हुगली प्रदेश में भद्रकाली नगर में गंगा के पश्चिम तीर पर अपने घर में रहने लगे।

कालीपद-विरचित संस्कृत-ग्रन्थ अधोलिखित हैं—

महाकाव्य—सत्यानुभाव, योगिभक्त-चरित।

काव्य—आशुतोषावदान, आलोकतिमिर-वैर।

गद्यकाव्य—मनोमयी।

पद्यानुवाद—रवीन्द्र-प्रतिच्छाया, गीताञ्जलिच्छाया।

समालोचना—काव्य-चिन्ता।

विविध गद्य-पद्य-निवन्ध।

दर्शन-ग्रन्थ—न्याय-परिभाषा, जातिबाधक-विचारः—ईश्वर-समीक्षा, न्याय-वैशेषिकतत्त्व-भेद। इन मूल ग्रन्थों के अतिरिक्त आठ दर्शन-ग्रन्थों पर उनकी गम्भीर आलोचनात्मक टीकायें हैं।

कालीपद के वंगभाषात्मक ग्रन्थ हैं—

अनुवाद—नवगीताच्छाया (पद्य), चण्डीच्छाया इनके अतिरिक्त विविध पद्य और निबन्ध हैं।

इनका औपाधिक नाम काश्यप कवि था और इस नाम से अनेक साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हैं।

विश्रान्ति के दिनों में वे महाचार्य श्रेणी के विद्यार्थियों का कलकत्ते के राजकीय संस्कृत-महाविद्यालय में आजीवन निर्देशन करते रहे। इस बीच वे प्रणव-पारिजात नामक संस्कृत-पत्रिका के संचालक रहे। आर्यशास्त्र और सनातनशास्त्र नामक अपनी पत्रिकाओं के वे मुख्य सम्पादक रहे। प्रणवपारिजात में स्यमन्तकोद्धार

---

१. उनकी अधोलिखित पात्र-भूमिकायें सुविदित हैं—
मृच्छकटिक में चारुदत्त, मुद्राराक्षस में चाणक्य, चन्दनदास और राक्षस, चण्डकौशिक में धर्म, वेणीसंहार में भीम और युधिष्ठिर, उत्तररामचरित में राम, अभिज्ञानशाकुन्तल में कण्व, दुष्यन्त, मध्यमव्यायोग में भीम, पंचरात्र में विराट और ऊरुभंग में दुर्योधन।

व्यायोग छपा। उनके मन्दाक्रान्तावृत्त नामक खण्डकाव्य का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-परिषद्पत्रिका में हुआ।

कालीपद ने वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय में न्याय-वैशेषिक-दर्शनविमर्श विषय पर अध्यक्षीय व्याख्यान और गंगानाथ झा-स्मृति-समारोह के अवसर पर न्यायवैशेषिक विषय पर तीन व्याख्यान दिये। ये सभी छपे हैं। उनकी रचनायें—ईश्वरसिद्धि, ऋतु-चित्रम्, संवाद-कल्पलता आदि प्रसिद्ध हैं। उनके शिष्यों में हारवर्ड इंगल्स, कूचविहार के संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष यादवेन्दुनाथ राय, संस्कृत-विश्वविद्यालय, काशी के उपकुलपति डॉ० गौरीनाथ शास्त्री आदि विख्यात हैं। आचार्य १९७२ ई० में दिवंगत हुए। वे आमरण संस्कृत-साहित्य-परिषद् पत्रिका के सम्पादक रहे।

तर्काचार्य स्वभावतः विनम्र थे। कवि का व्यक्तित्व सर्वतः समुदित था।

कालीपद ने तीन नाटक लिखे—नलदमयन्तीय, माणवक-गौरव और प्रशान्त-रत्नाकर। इसका चौथा रूपक स्यमन्तकोद्धार व्यायोग है।[1]

माणवक-गौरव

माणवकगौरव का प्रथम अभिनय संस्कृतसाहित्य-परिषद् के आदेश से सूत्रधार ने प्रस्तुत किया।

कथावस्तु

आचार्य धौम्य ने देर से उठने वाले शिष्य कात्यायन से कहा कि अन्य शिष्यों को भी जल्दी जगाओ और कह दो कि विलम्ब से उठने वालों को आश्रम से निकाल दूँगा। कात्यायन को अन्य साथियों के साथ सरोवर तक जाने वाली पगडण्डी को सुगम करना था, जिससे होकर आचार्यानी स्नान करने जाती थीं। सभी शिष्यों ने कात्यायन से गुरु की आज्ञा सुनकर उसे शिरोधार्य किया। केवल हारीत ने गुरु का विरोध किया।

एक दिन स्नान करके लौटते हुए धौम्य को दूबर, भूखा-प्यासा, मूर्छित शिक्षार्थी उपमन्यु मिला। कमण्डलु के जल की बूँदों से भी वह सचेत न हुआ। किसी-किसी प्रकार सचेत होने पर कमण्डलु का जल पीकर वह स्वस्थ हुआ। उपमन्यु ने पिता की अन्तिम इच्छा बताई। धौम्य ने कहा—

अद्य प्रभृति बालं त्वां पित्रोः स्नेहेन वंचितम्।
पुत्रवत् पालयिष्यामि दीपयिष्यामि ते मतिम्॥

साथ ही आश्रम का नियम बताया—'मेरे मनोरथ और आदेश का उल्लंघन करके शिष्य नहीं रह सकेगा।' उपमन्यु ने इसे माना।

द्वितीय अङ्क में आरुणि के माता-पिता उसकी शिक्षा के विषय में चिन्तित हैं।

---

१. इनका प्रकाशन प्रणवपारिजात तथा साहित्य-परिषद् पत्रिका में हो चुका है। पुस्तकाकार इनका प्रकाशन भी परिषद् के द्वारा किया गया है।

गुरु विना सोचे ही शिष्य को अपने निजी कामों में जोत देते हैं, उनके भोजन और पान की वात भी नहीं सोचते, उनकी माँगी हुई भिक्षा पूरी की पूरी अपने लिए ले लेते हैं और जो उनकी वात नहीं मानते, उन्हें आश्रम से डाँट कर वाहर कर देते हैं। ऐसे आचार्य के यहाँ पढ़ने से अच्छा है कि मेरा पुत्र न पढ़े। अपने ही घर नहीं, पड़ोसियों के यहाँ भी शिष्यों को काम करने के लिए वे भेज देते हैं।

पिता ने कहा धौम्य के वास्तविक स्वरूप को तुम नहीं जानती। वे कठोर हैं तो साथ ही कोमल भी हैं—

विद्यायामपि चारित्र्ये लोकोत्तरगुणोत्करः।
वज्रादपि कठोरात्माकुसुमादपि कोमलः॥

एक दिन सतीर्थों के साथ उपमन्यु वन में भ्रमण कर रहा था, जब उन्हें वज्रक नामक व्याध के द्वारा शराघात से क्षत पक्षी मिला। पक्षी उनकी सहायता होने पर भी मर गया। वज्रक से उपमन्यु का विवाद हुआ तो उपमन्यु को सुनना पड़ा कि तुम लोग भी तो यज्ञ में पशुओं को मारते हो।

आचार्य धौम्य ने आरुणि को सूर्योदय के पहले ही फूल लाने के लिए दूर भेजा। उसके पीछे कात्यायन को भेजा कि देखो, उसे कोई अनिष्ट तो नहीं हो रहा है। आरुणि पुष्पावचय करते हुए सर्पदंश से व्याकुल हो रहा था। वह रो रहा था कि गुरु की आज्ञा का परिपालन किये विना ही मर रहा हूँ—

नालं साधयितुं दैवात् त्वदाज्ञामिह जन्मनि।
जन्मान्तरेऽपि शिष्यत्वं तवायं याचते ततः॥

आरुणि का प्राण वचाने के लिए कात्यायन महामृत्युञ्जय का जप करने लगा। उधर से एक सँपेरा सपत्नीक आ निकला। उसने एक साँप पकड़ा, जिसका विष वह हारीत को देना चाहता था। साँप ने उसे काटा तो विष से मरणासन्न होने पर भी उसकी पत्नी ने उसे मन्त्रपूत-निष्ठीवन से वचा लिया। उस साँप को उसने पेटी में रखा। आगे उसे वही साँप मिला, जिसने आरुणि को काटा था। आहितुण्डिक ने शीघ्र आरुणि को ढूँढ़ निकाला, पर उसके उपचार करने पर भी वह ठीक नहीं हो रहा था। उनके चले जाने पर वहाँ धन्वन्तरि आये। उन्होंने सर्पविष दूर कर दिया और चलते वने। हारीत ने भी आहितुण्डिक से विष लेकर किसी दिन आरुणि पर प्रयोग किया, किन्तु वह वच गया।

चतुर्थ अङ्क में हारीत अपने गुरुद्वेष के कारण कुष्ठपीडित है। धौम्य ने उसे सूर्योपस्थान करने के लिए कहा। ऐसे पतित विद्यार्थी का आचार्य होने के दोष का परिमार्जन करने के लिए उन्होंने चान्द्रायण व्रत का संकल्प किया। गुरु ने उसे आश्रम से वाहर कर दिया।

उपमन्यु गोचारण करता था। वछवों के भरपेट दूध पी लेने पर वह उनकी माताओं का वचा दूध पीकर अपना जीवन-निर्वाह करता था। गुरु ने कहा कि इससे वछवे कम दूध पी रहे हैं और कृश होते जा रहे हैं। गुरु ने वछवों के

मुँह से गिरा फेन पीने से उसे रोक दिया। भिक्षा नहीं माँगने के लिए कहा और वन के फल-मूल का भी निषेध कर दिया। कारण उनके पास बहुतेरे थे। यथा, मुनि के चुन लेने के पश्चात् यदि वन्य फल तुम्हीं खा लोगे तो पक्षी क्या खायेंगे? हरे पत्ते भी नहीं खाना था। क्यों—

अन्तःसंज्ञस्य वृक्षस्य पत्रभङ्गं शरीरतः।
बलाद् वियोजितं तस्य व्यथां संजनयत्यलम्॥

अपने आप गिरे सूखे पत्तों को उसे खाने की अनुमति मिली। गुरु का मन कल्प था कि सोना तपाने और पीटने से ही रमणीय अलङ्कार का रूप धारण करता है। यथा,—

विना हुताशस्य विशेषतापनं न जातु शुद्धिं समुपैति कांचनम्।
न वा तदेवायसताडनाद् ऋते मनोहरालंकरणत्वमंचति॥

पंचम अङ्क में आरुणि को खेत की मेड़ बाँधने के लिए आचार्य ने भेजा तो वह दिन भर नहीं लौटा। सन्ध्या के समय अपने कठोर व्रतविधान के विषय में सोचते हुए वे कहते हैं—

नारिकेलसमाकारा गुरवः परुषा बहिः
अन्तः सुमधुरा ह्येते परिणामसुखाः शिवाः॥

कात्यायन आरुणि की स्थिति देखने पहुँचता है। वह धौम्य को वहीं बुलाने जाता है। उसे मार्ग में धौम्य मिलते हैं। आचार्य ने आरुणि का कार्यभार पूरा करने का उत्साह और श्रम देखा तो उसके लिए उनके मुख से आशीर्वाद निकल पड़ा—

सम्पूर्णमद्य ते सुदुष्करं शिष्यव्रतम्। तदद्यारभ्य सर्वास्ते विद्याः सरहस्याः प्रतिभास्यन्ति।

गुरु ने उसका नाम उद्दालक रख दिया।

षष्ठाङ्क में आयोदधौम्य को योधमल्ल नामक राजा और मन्त्रियों ने प्रधानामात्य चुना। स्वयं राजा ने उनके आश्रम में जाकर नियुक्ति के लिए प्रार्थना की। धौम्य अपना आश्रम-जीवन छोड़ कर राजधानी की जीविका के लिए उद्यत न हुए। राजा के पूछने पर उन्होंने बताया कि मेरा प्रथम शिष्य ब्रह्मबान्धव काचनपुर में रहता है। राजा ने इस प्रस्ताव को मान लिया।

एक दिन उपमन्यु सन्ध्या के समय गौओं को लेकर नहीं लौटा। कुएँ में गिर पड़ा था। गुरु ढूँढ़ने गये तो मिला। उसने गुरु को प्रत्युत्तर वहीं से दिया—

आन्ध्यदोषादन्धकूपे पतितोऽस्मि।

लम्बी लता को ऊपर से नीचे लटका कर उसके सहारे शिष्य को ऊपर खींचते हैं धौम्य और कात्यायन। धौम्य ने अश्विद्वय की स्तुति का मन्त्र उपमन्यु को दिया। कात्यायन ने उसे कन्धे पर लेकर आश्रम-भूमि में पहुँचाया। वहाँ

पंचवटी-कुञ्ज में वह अश्विद्वय की स्तुति का मन्त्र-प्रयोग करने के पहले पुरश्चरण द्वारा आत्मशोध कर रहा था।

एक दिन अश्विद्वय उपमन्यु के पास आये। अश्विद्वय ने उसे अपूप दिया कि इसे खालो, तुम्हारी अन्धता दूर हो जायेगी। उसे आशीर्वाद देकर वे चलते बने। उस अपूप को गुरु की आज्ञा विना उपमन्यु कैसे खा सकता था? वह तो तदनुसार शीर्ण-पत्र-वृत्तिता का ही अधिकारी अपने को मानता था। उसने कात्यायन को बुलाया और अपनी समस्या बताई। फिर कात्यायन ने उसका हाथ पकड़ा और वे गुरु के पास पहुँचे। वहीं गुरुपत्नी थीं। वे उपमन्यु की दुर्दशा देख कर रोने लगीं। उपमन्यु ने पूप खा लेने के पश्चात् दृष्टि-प्राप्ति की बात बताई। कात्यायन ने कहा कि आपको निवेदन करने के पूर्व कैसे इसे खायें? धौम्य ने आशीर्वाद दिया—

लब्धा सौभाग्यतो दृष्टिः परीक्षायां जयो वृतः।
प्रतिभातानि शास्त्राणि किन्ते काम्यमतः परम्॥
त्रयो वेदास्त्रयो देवा गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः।
धौम्यस्यापि त्रयः शिष्या वेदारुण्युपमन्यवः॥

उस समय आरुणि ने आकर धौम्य से कहा कि हारीत का उद्धार करें। पुरश्चरण करते हुए उसे गगनवाणी से सन्देश मिला है—

हारीत यावद् गुरुणा प्रसीदता न दृश्यसे त्वं कृपया विमूढधीः।
तावन्न सिद्धिस्तव कृत्यसम्भवा न रोगमुक्तिश्च शुभायतिर्भवेत्॥

हारीत तो आपकी कृपा के लिए निरन्तर रो रहा है। यथा—

अश्रुणा तस्य दीनस्य हृदय-प्लाविना भृशम्।
सानुतापविलापैश्च पाषाणोऽपि विदीर्यते॥
विहंगकुलनिर्ह्रादैः सायं शिशिरविन्दुभिः।
तद्दुःख-दुःखिता नूनं रुदन्ति वनदेवताः॥

हारीत को आरुणि गुरु की आज्ञानुसार ले आये। तभी सूर्य ने आकाशवाणी द्वारा सुनाया—

प्रीतो गुरुस्तुष्टिमगां ततोऽहं मन्त्रस्य ते सावनमापसिद्धिदम्।
आरोग्यमासादय मत्प्रसादात् रूपं पुराणं पुनरेहि तूर्णम्॥

क्षण भर में हारीत का कोढ़ विनष्ट हो गया।

इस अवसर पर धौम्य के प्रथम शिष्य ब्रह्मवान्धव राजा योधमल्ल के महामात्य बनकर गुरु के लिए उपहार लेकर आ पहुँचे। शिष्य का उपायन अस्वीकार नहीं करना चाहिए—यह विचार सुना कर आचार्य धौम्य ने कहा—इसका आधा दोनों को बाँट दो और आधा आश्रम के विद्यार्थियों को वितरित कर दो।

मूर्तिमती गुरु भक्ति ने अन्त में आकाश से आशीर्वाद दिया—

शिष्ये गुरौ च यशसामभिवृद्धिरस्तु।

नाटक का अन्तिम वाक्य है—

सर्वेषां नयशिक्षणे गुरुपदं यायात् सदा भारतम् ।

समीक्षा

माणवक गौरव का कथानक एक नई दिशा की ओर प्ररूढ है । देवताओं और राजाओं की परिधि से बाहर ऋषियों की वनभूमि को ब्रह्मचारियों के सम्पर्क में प्रेक्षक को ला देने का श्रेय कालीपद को प्राप्त है । नायक ब्राह्मण है ।

द्वितीय अङ्क के तृतीय दृश्य पट में ताड़ी पीने वाले किरात, उसकी पत्नी और पुत्र वज्रक की दुनिया में कवि ने विचरण कराया है । पंचम अङ्क में किसान हलबैल के साथ खेत जोत कर श्रान्त लौटे हुए रंगमंच पर दिखाये है ।

माणवकगौरवका संविधान संस्कृति-परक है । राजतन्त्र, आश्रम-जीवन और नीति का सूक्ष्म निदर्शन पदे-पदे परिभाषित है । कतिपय अभिनव संविधानो के द्वारा रंगपीठ पर आङ्गिक कार्य दिखाये गये हैं । यथा, सप्तम अंक में किसी लम्बी लता को वृक्ष से उपार कर कात्यायन लाता है । उसके एक छोर को कात्यायन पकडता है और दूसरे छोर को आचार्य धौम्य कूप में डालता है । उसे उपमन्यु नीचे जाने पर पकडता है । कात्यायन और धौम्य उसे ऊपर खीचते हैं । इस प्रकार उपमन्यु कूएँ से बाहर आता है ।

भूमिका

माणवक गौरव की भूमिका का वैविध्य कथावस्तु से प्रतीत होता है । इसमें भावात्मक भूमिका गुरुभक्ति है । यह सप्तम अक के तृतीय दृश्य पट में गाती है और मानव-भूमिका के अनुरूप ही बोलती है—

सुचिरादनशनादिक्लिष्टस्यास्य शरीरमनुप्रविश्य किंचित् कष्ट-प्रतीकारं करोमि ।

यह उक्ति भूमिकोचित है । मानव-भूमिका से ऐसा नहीं कहलाया जा सकता ।

नाटक में जागरण के गीतों की विपुलता है ।[1] यथा प्रथम अक में चतुर्थ दृश्य पट का आरम्भ ब्रह्मचारी के नीचे लिखे गीत से होता है—

अयि जागृहि मूढ जीव निद्रां किमु सेवसे ।
न कथमरुणरागरक्तपूर्वगगनमीक्षसे ।। इत्यादि

प्रथमाङ्क के षष्ठ पट का आरम्भ उपमन्यु के गीत से होता है—

विलसति परुषो दैवनिपातः ।
क्व नु खलु तातः क्व नु खलु माता भ्राता क्व नु बत दूरे यातः ।

कतिपय स्थलों पर स्तोत्र-गान है । यथा धौम्य का स्नान के पश्चात् गान है—

शम्भो शिवशशिशेखरवृषभासनचारिन्
भूतिधवलरजताचलसन्निभतनुधारिन् ।

---

१. वङ्गदेश गायन-परायण है ।

अष्टमूर्तिशोभितभवभव्यनिकरकारिन्
करुणां कुरु कुशलं कुरु कामकलुषहारिन् ॥

यह प्रवृत्ति किरतनिया नाटक से आई है।

द्वितीय अङ्क के द्वितीय दृश्य पट में किरातबालकों का गान है—

एध एध वअस्सआ एध एस वअस्सआ।
दूलं लहु आहिण्डध सउणकदे वीदभआ।

वे रंगमंच पर आते हैं और गाकर चल देते हैं।

द्वितीयाङ्क और तृतीयाङ्क के बीच की कड़ी विवेक के गान के रूप में है। सभी पात्रों के चले जाने के बाद रंगमंच पर अकेले विवेक आता है और उसके गाकर चले जाने पर तृतीयाङ्क का आरम्भ होता है।

सप्तम अंक के तृतीय दृश्य में गुरुभक्ति का गीत है—

अभया गुरुपदसेवा
यो गुरुमर्चति कुशलं स भजति। तस्य हि तुष्टा देवाः ॥ आदि

नाट्यशिल्प

नाटक में दृश्य-पटों की विशेषता है। प्रथम दृश्यपट नान्दी से समाप्त हो जाता है। द्वितीय दृश्यपट प्रस्तावना से समाप्त होता है। तृतीय दृश्यपट से कथाभिनय आरम्भ होता है।

वैतालिक अन्य रूपकों में प्रायशः अङ्कान्त में कालवर्णन करते हैं। इस नाटक में यह काम प्रायः आचार्य धौम्य करते हैं। कहीं-कहीं अन्य उच्चकोटिक पात्र भी ऐसा करते हैं।

माणवक-गौरव में एकोक्तियों की बहुलता है।[1] इनसे अर्थोपक्षेपक का काम भी लिया गया है। प्रथमाङ्क का आरम्भ धौम्य की एकोक्ति से होता है। वह देश-काल के वैषम्य के प्रति अपनी उद्विग्नता प्रकट करता है। इस अंक के तृतीय दृश्यपट का अन्त कात्यायन की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह गुरु की शिष्यों के प्रति परुषता का मन ही मन पर्यालोचन करते हुए कहता है—

सर्वाः शिष्यहितायैव गुरोः परुषवृत्तयः
विद्विषन्ति गुरुं मूढाः पुरुषाः पापपंकिलाः ॥

प्रथमाङ्क के छठें दृश्यपट का आरम्भ उपमन्यु के एकोक्तिरूप गीत और उसके पश्चात् लम्बे व्याख्यान से होता है, जिसमें वह अपनी दुर्दशा का वर्णन करता है। इसमें सूचनायें भी हैं। यथा, मेरे पिता ने मुझे धौम्य का शिष्य बनने के लिए मरते समय आदेश दिया। मैं उन्हें कष्टपूर्वक ढूंढ़ रहा हूँ। गुरु धौम्य न मिले तो मर जाना ही अच्छा है, क्योंकि—

---

१. लेखक ने इन्हें एकोक्ति न बताकर स्वगत कहने की भूल की है।

गुरुपादमनासाद्य वृथैव मम जीवनम् ।
निविडं तिमिरं भेत्तुं को मे दोषो भविष्यति ॥

वह कहता है—अहह, घूर्णते शिरः। अवशान्यङ्गानि। नालमस्मि पदात् पदमपि संसर्पितुम्। तिमिरमयं सर्वं जगत्। न किंचित् पश्यामि। हा गुरो, क्वासि, हा गुरो (मूर्छति)। इसके पश्चात् धौम्य की एकोक्ति है।

तृतीय अंक के द्वितीय दृश्यपट में रंगमंच पर अकेले आरुणि एकोक्ति-परायण है। साथ ही वह कुछ काम भी करते चलता है। पुष्पावचय करने के लिए डाल को झुकाता है। उसे साँप काट देता है। आरुणि के मूर्छित हो जाने पर पीछे से आये हुए कात्यायन की विलापात्मक एकोक्ति है। इसके पश्चात् इसी अंक में धन्वन्तरि की एकोक्ति है कि मैं आरुणि को बचाने के लिए शिव के द्वारा भेजा गया हूँ।

चतुर्थ और पंचम दृश्यपट का आरम्भ धौम्य की एकोक्ति से होता है। अन्य एकोक्तियों की भाँति ही ये भी प्रायशः सूचनात्मक हैं। पंचम अङ्क के प्रथम दृश्य का अन्त भी धौम्य की एकोक्ति से होता है, जिसमें वे आरुणि के विषय में आत्मचिन्ता व्यक्त करते हैं।

पंचम अंक के द्वितीय दृश्य-पट में खेत में एक ओर किसान हल जोतते हैं, दूसरी ओर आरुणि मेड़ पर जलधारा रोके पड़ा है। वहीं पड़े-पड़े रंगमंच के दूसरे भाग में वह सूचनात्मक एकोक्ति कहता है। षष्ठ अंक का प्रथम दृश्य प्रायः पूरा ही राजा की एकोक्ति है, जो सर्वथा सूचनात्मक है।

चतुर्थ दृश्यपट में एकोक्ति द्वारा धौम्य महामात्य वामदेव की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हैं[1]।

सप्तम अंक के द्वितीय दृश्यपटल में कूप-पतित उपमन्यु की एकोक्ति का आरम्भ गीत से होता है—

को मम सम्प्रति शरणम्
हा हा दैवादन्धतया मे भविता नूनं मरणम्।
वेत्ति न भगवान् मामकवृत्तं कस्य भवेन्मयि सदयं चित्तम्।
पातकमिह मम किं वा वृत्तं यस्मादापदि पतनम्॥

गा लेने के पश्चात् वह अपने अन्धेपन का रोना रोता है। गुरु और माता आदि का सम्बोधन करते हुए मूर्च्छित हो जाता है। यह एकोक्ति दो पृष्ठ है। इस के समाप्त होने पर उसी रंगमंच पर धौम्य की एकोक्ति है—अन्य शोचनाओं के पश्चात् वह अन्त में कहता है—क्या मेरे द्वारा ओक्षित कष्ट-परम्परा से भाग कर वह कहीं चला तो नहीं गया?

---

१. यह विलापात्मक एकोक्ति है।

सप्तम अङ्क के तृतीय दृश्यपट का आरम्भ रंगपीठ पर अकेली गुरुभक्ति के गीत से होता है। गा लेने के पश्चात् उसकी सूचनात्मक एकोक्ति है, जिसके पश्चात् दृश्य समाप्त हो जाता है। यह दृश्य विशुद्ध विष्कम्भक स्थानीय है। इसी अंक के चतुर्थ दृश्य के बीच में रंगपीठ पर अकेले उपमन्यु की एकोक्ति है।

प्रशान्त-रत्नाकर

प्रशान्तरत्नाकर की अनुबन्धिका में कालीपद ने लिखा है कि आदिकवि वाल्मीकि पहले दस्यु थे—यह कथा केवल अध्यात्मरामायण में ही नहीं, अन्यत्र भी मिलती है, किन्तु उनका पूर्व नाम रत्नाकर था—यह सर्वप्रथम कृत्तवास-कृत वङ्गभाषा में विरचित रामायण में मिलता है। वहीं इनके पिता का नाम च्यवन मिलता है।[1]

इसका अभिनय संस्कृत-साहित्य-परिषद् के सदस्यों के द्वारा कवि के अध्यापक रहते हुए किया गया था।[2]

कथावस्तु

रत्नाकर नामक पहलवान भिक्षु को भीख नहीं मिलती। उसके कुटुम्बी जन भूखों मरते हैं। वह निर्णय लेता है कि लक्षाधीशों की सम्पत्ति बल से प्राप्त करूँगा, भीख से नहीं। तभी सुमति नामक भिक्षुकी का गीत उसे सुनने को मिलता है—

> जीव गुणाकर सुचरितमनुसर खलतां परिहर वह बहुमानम्।
> भौतिककाये दुरितसहाये मा कुरु मा कुरु गौरवदानम्॥
> विधिविपरीतं विधिमनुभीतं मानसमधिकुरु लसदवधानम्।
> वरमिह मरणं सुचरितशरणं तदपि वरं नहि पापविधानम्॥

इससे रत्नाकर की समझ में बात आई कि दुर्वृत्त नहीं होना है। फिर तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। उन्होंने सोचा कि फांसी लगाकर मर जाना ठीक है। वह वृक्ष पर चढ़ कर फांसी लगा ही रहा था कि दूर से सुनाई पड़ा कि मुझ अनाथा को डाकू लूट रहे हैं। रत्नाकर को यह अत्याचार सहा नहीं गया। वह पेड़ से झट उतरा। स्त्री ने डाकू को उसकी इच्छानुसार सभी अलंकार दे दिये। फिर तो डाकू ने कहा—मेरी कामवासना को परितृप्त करो। परित्राण करती हुई स्त्री को उसने बलात् खींचा। तभी रत्नाकर ने उसे डाँट लगाई। उसने डण्डे से डाकू की कमर पर बलपूर्वक मारा तो वह अधमरा हो गया। रत्नाकर

---

१. कृत्तवास को रत्नाकर नाम कहाँ से मिला—यह सुनिश्चित नहीं है।

२. अध्यापक दशायां च संस्कृत-साहित्य-परिषत्सदस्यैर्मत्कृतानां 'नलदमयन्तीय-प्रशान्तरत्नाकर-स्यमन्तकोद्धारनाम्नो संस्कृतरूपकाणामभिनयः'—लेखक के पत्र से।

ने कहा कि इस महिला को घर पर पहुँचा कर लौटता हूँ। तब तक यहीं रहना। स्त्री ने कहा कि तुम्हीं इन अलकारों को ले लो। तुमने बचाया है। स्त्री को ज्ञात हुआ कि मेरा रक्षक रत्नाकर है। उसने मन ही मन कहा—यह रत्नाकर दीन-हीन सुना जाता है पर सभी पुरवासी इसकी सुजनता की प्रशंसा करते हैं। अथवा कुनः खलु सुधाकरादन्यतः पीयूषवृष्टिः। डाकू से स्त्री के अलकार रत्नाकर ने लौटवाये। स्त्री ने कहा कि यह सब रत्नाकर को दे दो। रत्नाकर ने अस्वीकार करते हुए कहा—

भवत्या मातृतुल्याया नापरं किंचिदर्थये।
मनस्तापविनाशार्थमाशीरेव प्रदीयताम्॥

उस स्त्री को वहाँ से अकेले जाने देने के पक्ष में रत्नाकर नहीं था। डाकू ने कहा कि उसे कोई भय नहीं है। मार्ग में यदि कोई रोके तो उससे कह देना मेरा नाम वीरबल। इस प्रदेश के सभी दस्युओं का मैं नायक हूँ। फिर तो स्त्री अकेले चली गई। वीरबल ने पूछने पर अपना वृत्तान्त बताया—मैं ब्रह्मपुर के विष्णुदास ब्राह्मण का पुत्र हूँ। मेरे बालपन में ही मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया। युवावस्था में दरिद्र होने पर भी माता ने मेरा विवाह कर दिया। अकालग्रस्त देश था। ज्वराक्रान्त मेरी पत्नी मर गई। बहू के जाने से सन्तप्त माता भी रुग्ण हुई तो किसी ने सहायता न दी। माता की प्राणरक्षा के लिए मैं चोर बना—

विभिन्दन् मर्यादां कुशमगणयन्नुन्नततमं
स्वमातुः प्राणार्थं कतिचन दधद् बालसुहृदः।
रहश्चौर्यं कृत्वा धनमुपगतो मातरमहं
व्ययां सुस्थां तस्मात् प्रभृति कलये साहसमिदम्॥

रत्नाकर ने बताया कि मेरी स्थिति कुछ आप जैसी है। क्या करूँ? इसका उत्तर वीरबल ने दिया कि मेरे तस्कर-वर्ग का नेतृत्व आप करें।

रत्नाकर जैसे-तैसे तस्कर बनने को तैयार हो गये। तभी भोज्य सामग्री लेकर एक गाड़ी निकली और वीरबल के कहने पर रत्नाकर ने उसे लूटा।

भूख-प्यास से अधमरे कुटुम्बी जनों को रत्नाकर लूट का भोज्यादि देते हुए बताता है कि यह सब किसी मित्र ने दिया है।

रत्नाकर दस्युसंघ का प्रमुख हो गया। उसने अकालग्रस्त अनेक परिवारों की प्राणरक्षा की। वे सभी लोग रत्नाकर के आज्ञाकारी बन गये थे। रत्नाकर ने उनमें से चार प्रमुख पुरुषों से कहा—जैसे भी हो, धनिकों की सम्पत्ति दरिद्रों की प्राणरक्षा के लिए उपयोगी बनानी चाहिए। रत्नाकर का साम्यवाद का सिद्धान्त था—

गर्वं खर्वयत प्रमावजनितं वित्तेश्वराणां मुहुः
सर्वेषां समतास्तु भूमिवलये दैन्यं लयं गच्छतात्।

एको भूरिविलासभोगनिरतो भोज्यं विना चापरः
प्राणैरेव वियुज्यते कथमिदं वैषम्यमालोक्यताम् ।।

सभी दीन–दुःखियों को रत्नपुर की नवीन वसति में सुव्यवस्थित ढंग से रखना है। उस देश के राजा कामेश्वर के अत्याचार से प्रपीडित प्रजा है। उस राजा को पाठ पढ़ाना है। उसने योजना बनाई कि रात में वीरबल कतिपय बलिष्ठ पुरुषों के साथ कामेश्वर की राजधानी के प्राकार के पास मिले। वह स्वयं अपने अभिन्न मित्र कायस्थ वसुदास से कपट-लेख बनवाकर कामेश्वर के पास पहुँचने वाला है।

कामेश्वर से अकाल-पीडित ब्राह्मण अपनी पत्नी के राजयक्ष्मा-ग्रस्त होने पर उसका उपचार करने के लिए कुछ सहायता लेने आया। कामेश्वर ने आदेश दिया कि इसने राजकर नहीं दिया है। इसे बन्दी बनाओ। यथा,—

कारागारे तमश्छन्ने शतकीटनिषेविते
विना पानं विना भोज्यं स्थापयध्वं स्वभूतये ।।

ब्राह्मण ने उसे सर्वशः विनष्ट होने का शाप दिया। इन सब बातों से उद्विग्न कामेश्वर लीलावती नामक वेश्या के पास विनोदार्थ जाने के लिए प्रस्तुत हुआ, जो कभी ब्राह्मण कन्या थी, फिर बालविधवा हुई। उससे प्रेम करने के राज-मार्ग में बाधक उसके पिता की हत्या कामेश्वर ने करवाई और उसे नवीन पुष्प-वाटिका में रख कर नृत्य-गीतादि की शिक्षा दिलाई। मदिरापान करके प्रणयासंग-प्रवर्तन हुआ।

तृतीय अंक में रत्नाकर अपने संघातियों-सहित कामेश्वर की राजधानी पर आक्रमण करने के लिए आ पहुँचा। उसने कपटपत्र दुर्गेश्वरसिंह वर्मा के द्वारा कामेश्वर को लिखवाया था कि मेरे दुर्ग पर शैलराज आक्रमण करने वाला है। हमारी सेना अपर्याप्त है। इस पत्र को देखकर कामेश्वर ने अपनी सारी सेना सिंहवर्मा की सहायता के लिए भेज दी थी। रत्नाकर ने योजना बनाई कि पहले किसी मन्त्री के घर में आग लगा दी जायेगी। सभी लोग राजप्रासाद से निकल कर उधर जायेंगे। तब राजप्रासाद में प्रवेश करके हम लोग यथेष्ट कार्य करेंगे। ऐसा करने पर सब कुछ योजनानुसार ठीक चला। किसी दासी–विधवा का शिशु प्रदीपित घर में रह गया था। उसे बचाने के लिए वह आर्तनाद करने लगी। एक नागरिक उसे बचा लाया।

कोश-हरण के पश्चात् कामेश्वर ने आदेश निकाला कि कल तक यदि चोरों को ढूँढ़ा नहीं गया तो सभी रक्षी फाँसी पर लटकाये जायेंगे। कामेश्वर के शब्दों में—

केचिद् विपन्ना ज्वलनेन दग्धाः केचित् स्वहस्तेन हताश्च दुष्टैः।

एक दिन अपने ऋणदाता धनदत्त को कभी का भिक्षुक च्यवन ऋण लौटा रहा था। धनदत्त को आश्चर्य हुआ कि कहाँ से इसके पास इतना धन

आया ? समीप ही पड़े राजपुरुष ने उसकी बातचीत सुनी तो कौतूहलवश कान लगाकर सुनने लगा। कल ही रत्नाकर धन ले आया—यह च्यवन के बताते ही राजपुरुष भाँप गया कि कल के डाके में रत्नाकर का हाथ है। उसने राष्ट्रिय से च्यवन को पकड़वाया। धनदत्त से ऋण को लौटाने के मद में दिये हुए च्यवन के द्वारा प्रदत्त धनराशि को राजपुरुषों ने मांगा। पहले तो उसने कहा कि च्यवन ने कुछ नहीं दिया। फिर कोड़े से पीटे जाने पर धनदत्त ने सारी राशि लौटाई। राजा कामेश्वर के आदेश से च्यवन और रत्नाकर के पुत्र आत्रेय को राजपुरुषों ने पुनः पुनः पीटा। दोनों ने रत्नाकर का आह्वान किया कि बचाओ। रत्नाकर सघातियों के साथ आ पहुँचा। राष्ट्रियादि को मारकर उसने अपने बाप-बेटे को सुरक्षित स्थान रत्नपुर में भेज दिया।

पंचम अङ्क में माधव नामक गुप्तचर रत्नाकर को बताता है कि मैंने शत्रुपक्ष को दुर्बल कर दिया है। उसने सूचना दी कि आज ही रात में कामेश्वर ५०० सैनिकों के साथ सरयू में उतरेगा। रत्नाकर ने वीरबल से कहा कि आज इन सबको मार डालूँगा।

कामेश्वर लीलावती और उसके सघातियों के साथ सरयू नदी में रात्रि के एक पहर बीतने पर छिटकने वाली चन्द्रिका में 'नदी-वक्षसि' कौमुदी-महोत्सव का आनन्द ले रहा था। इस अवसर पर रत्नाकर कामेश्वर से प्रतिहिंसा की भावना लेकर अपने सघातियों के साथ नौकाओं पर आ पहुँचा।[1]

कामेश्वर को रत्नाकर और उसके साथी बन्दी बना लेते हैं। उसे च्यवन की देख-रेख में पेड़ के तने से रस्सी से जकड़ दिया जाता है कि दूसरे दिन सवेरा होने के पहले मार डालेंगे। आठवें अङ्क में उसके पास च्यवन आकर उसे बन्धन-विमुक्त करता है। इसके ठीक पश्चात् च्यवन की एकोक्ति है, जो तीन पृष्ठ तक लम्बी है। इसमें वह कुत्ते का भौंकना सुन कर घबड़ाता है और उसे अकारण जानकर कहता है—

श्वानः क्षणेन निद्राति क्षणेन च प्रबुध्यते।
नृणान्तु मोहसुप्ताना प्रबोधो न चिरादपि॥

वह अपना निश्चय बताता है कि अपने पुत्र को सत्पथ पर लाने के लिए और कामेश्वर की रक्षा करने के बहाने आत्महत्या कर लूँगा। अपने पुत्र को दुर्वृत्त में निमग्न देख कर मेरा मर्मस्थल छिन्न हो रहा है। यदि मैं आत्महत्या नहीं करूँगा तो पापभार से मेरे पुत्र को मरना पड़ेगा। मैं कामेश्वर को खोल कर उसकी रस्सी से फाँसी लगा लूँगा। मैं लिख कर छोड़ जाऊँगा कि हे रत्नाकर, तुम्हारे पापों को सह सकने में असमर्थ मैं आत्महत्या कर रहा हूँ। लिखने के लिए अपना रक्त निकालता हूँ। यथा,

---

१. तातमुद्दिश्य प्रतिज्ञातम्—दुरात्मनः कामेश्वरस्य सन्तप्तेन शोणितेन तातस्य पादौ प्रक्षालयामि।

शोणितेन विनिःसार्य शोणितं स्वशरीरतः।
तेन पत्रं लिखाम्यद्य तनयस्य विशुद्धये॥

वह उलूक की ध्वनि सुनकर समझता है कि बाधा डालने के लिए मेरा पौत्र ही आ पहुँचा। उसने अन्त में आत्महत्या कर ली। इसके पश्चात् वहाँ रत्नाकर वीरवल को लेकर पहुँचा। कामेश्वर को न देख कर उसका माथा ठनका। उसको पकड़ने के लिए उसने दलवल को सजग किया। तभी पेड़ पर लटका मृत च्यवन उन्हें दिखाई पड़ा। रत्नाकर को पिता का पत्र मिला, जिसमें लिखा था—

स्वस्ति च्यवनो नाम पुत्रं रत्नाकरमसंख्याभिराशीर्भिरभिनन्द्य विज्ञापयति—वत्स रत्नाकर लेखोपकरणमनासाद्य कण्टकेन शरीरतो निःसारितेन रक्तेन पत्रं लिखामि, वत्स, बहोः कालात् प्रभृति साहसिकेषु कर्मसु प्रवृत्तं त्वां प्रति संशमानस्य मे नास्ति लेशोऽपि शान्तिः। पुनः पुनरेव मया प्रतिषिध्यमानस्यापि ते विरतिं विना तत्र दृढां प्रवृत्तिमेव परिलक्षयामि। अद्य तु सविशेषमेव निर्णयं गतोऽस्मि। तदद्य कामेश्वरस्य प्राणरक्षामुपक्रम्य मदीय-जीवन-व्ययेनापि निर्विण्णस्य मयि ते सुमतिः प्रादुर्भवेदिति स्वयमुद्वन्धनेन प्राणानतिप्रियानपि विसर्जयामि। अहं परलोकमधिष्ठाय तव शीलशुद्ध्या सुखी भवितुमिच्छामि। यदि परलोकं गतस्य पितुः शान्तिं कामयसे, तदा सत्पथे चित्तं प्रवर्तयेथाः। अलमतः परमपि साहसानुवन्धेन। वत्स रत्नाकर, न लघुना सन्तापेन प्राणाधिकं त्वां पौत्रमात्रेयं तथा सर्वानपरान् परिजनान् स्वेच्छया विहाय जीवनं मुंचामि। तथापि—

तव सत्पथलाभाय राज्ञः संरक्षणाय च।
आत्मघातमहापापमङ्गीकृत्य व्रजाम्यहम्॥

रत्नाकर फूट-फूटकर रोने लगा। वह अपने को पितृमरण का कारण मानकर मूर्छित हो गया। रत्नाकर का पूरा कुनबा आ पहुँचा। सभी रोने लगे। च्यवन के पौत्र आत्रेय की समझ में नहीं आ रहा था कि मेरे दादा अब कभी भी नहीं उठेंगे, न बोलेंगे, न उसके साथ फूल तोड़ने जायेंगे। उसका हठ था कि जहाँ दादा गये, वहीं मैं भी जाऊँगा। वह मूर्छित हो गया।

अष्टम अंक के अनुसार रत्नाकर के शोकसन्तप्त परिवार के सभी लोग मर गये। कैसे ! रत्नाकर के शब्दों में—

आसीद् देवसमः पिता स सहसा यातो दिवं स्वेच्छया
माता तेन सहैव पुण्यपरमा शोकेन मृत्युं गता।
आसीत् प्राणसमः सुतः स विधिना नीतः क्षयं निर्दयं
तच्छोकेन विषं निपीय निभृतं पंचत्वमाप्ता प्रिया॥

उसे वीरवल से समाचार मिलता है कि कामेश्वर पकड़ा गया है। उसे छोड़ने का आदेश देते हुए रत्नाकर ने कहा—

कामेश्वरे यस्य बभूव वैरं रत्नाकरः सोऽद्य न जीवितोऽस्ति ।
दैवेन सर्वैः स्वजनैर्विहीनः कोऽप्यन्य एवैष नवीनसृष्टिः ॥

अर्थात् मैं अब पुराना रत्नाकर नहीं हूँ । रत्नाकरने बीरबल को उपदेश दिया—

क्रूरां वृत्तिं परित्यज्य सुपथि स्थाप्यतां मनः ।
तथैव निजवर्गस्य परिवृत्तिः प्रसाध्यताम् ॥

रत्नपुर का प्रच्छन्न कोशागार सैकड़ो वर्षो के लिए उपभोग की सामग्री सभी नागरिको को प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु सबको कुछ काम करके खाना है । अतः ऐसा करो—

पर्वतप्रान्तवर्तिषु नदीसन्निहितेषु क्षेत्रेषु यथायोग्य-कृष्यादिकर्मसु व्यापारयितव्याः । एवं कर्मव्यासक्तचेतसां दोषलेशोऽपि नात्मनि पदं कुर्वीत ।

कामेश्वर को छोड़ दो । उनसे मेरी ओर से क्षमा माँग लेना—

रत्नाकरेण पातेन यत्तवापकृतं पुरा ।
निःशेषं तत्फलं प्राप्तो भिक्षते स भवत्क्षमाम् ॥

रत्नाकर सरयू मे डूबकर मरने के लिए नदी देवी से प्रार्थना करता है । मरने के लिए नदी मे कूदने के पहले सुमति प्रकट होती है । उसने सन्देश दिया—

लप्स्यसे विपुलां शान्तिं गुरुणा दीक्षितो यदा ।
अन्विष्यतां गुरुः सोऽयं स ते शान्तिं प्रदास्यति ॥
असारां संसृतिं मत्वा सारे वित्तं निवेशय ।
गुरौ ब्रह्मणि विश्वस्तः परमार्थेन युज्यसे ॥

उसने दीक्षा के लिए रत्नाकर को शान्तिनिकेतन की ओर डगरा दिया । शान्तिनिकेतन मे ब्रह्मा के भेजे नारद ने उन्हें राममन्त्र दिया, जिसके जपने पर रत्नाकर को आँख मूँदने पर दिखाई देने लगा—

दूर्वाश्यामतनुस्तनूकृतमहाध्वान्तः श्रिया दीप्रया
वामे शक्तिकया कयापि रुचिरः श्रीरत्नसिंहासने ।
भक्तैरञ्जलिभिः सदा सुरनरैरभ्यर्चितः कोऽप्ययं
स्निग्धेनाक्षियुगेन सिञ्चति सुधाधारां मुहुः शान्तये ॥

नारद ने कहा—जिस देव को तुम ध्यान-नेत्र से देखते हो, वही तुम्हारे अभीष्ट देव हैं । इन्हीं से तुम्हें परमार्थ की प्राप्ति होगी । भरत वाक्य है—

न्यग्रोधमूलेऽत्र कृतासनस्य वर्षातपाद्यैरनभिद्रुतस्य ।
रत्नाकरस्तु निजेष्टसिद्धिः सर्वं जगन्नन्दतु साम्यलाभात् ॥

प्रशान्तरत्नाकर के कथानक पर समसामयिक अकालपीडित बङ्गाल की छाया है । उस युग में दीन-हीन और राजपीडित लोगो का उद्धार करने के लिए

असंख्य प्रवुद्ध वीर अपना प्राण संकट में डालकर धनिकों के कोश से धन प्राप्त करके दूसरों का कष्ट दूर करते थे।[1]

नाट्यशिल्प

प्रस्तावना में नाटक की कथावस्तु की समीचीनता की समस्या के समान पारिपार्श्वक की समस्या सूत्रधार के सम्मुख रखी गई है। यथा, प्रातः प्रभृति भिक्षुभिः समुद्वेजितस्य दुर्भिक्ष-विजृम्भिते जनपदे कवाटसंवरणमन्तरेण नास्त्यन्यो निस्तारो पायः।

एकोक्ति की विपुलता उल्लेखनीय है। नाटक के प्रथम अङ्क का आरम्भ नायक रत्नाकर की तीन पृष्ठ की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह कहता है—दिन भर घर-घर घूमकर माँगता हूँ, पर कुछ भी नहीं मिलता। संसार में यह क्या हो रहा है? धनिकों के लड़के मेरे पुत्र को दीन कहकर धिक्कारते हैं। मेरी पत्नी और माता को मन्दिर में जाना नहीं मिलता। इस प्रकार की दुःस्थिति के लिए भगवान् को छोड़कर किसे धिक्कारा जाय? वह अपने को सम्बोधित करते हुए कहता है—

मूढ रत्नाकर क्व एष ते विश्राम-प्रयासः,
त्वं तातं जननीं तथा पतिरतां पत्नीं सुतं वत्सलं
हित्वा क्षुत्परिपीडितानपि गृहे विश्राममाकांक्षसि।
धिक् धिक् त्वां निजशान्तिमात्रनिरतं जातं वृथा भूतके
प्रोत्तिष्ठ प्रतिकर्तुमात्मकरणैः स्वेषां विषादक्रमम्॥

घर के सभी लोग भोजन विना मर रहे हैं। फिर मुझे क्या करना है?—

बलेनैव ग्रहीष्यामि तस्य लक्षपतेर्धनम्।
स्वजनानां विपन्नानां रक्षा कार्या यथा तथा॥

द्वितीय अङ्क का भी आरम्भ रत्नाकर की एकोक्ति से होता है। इसमें वह अपने भूत काल की सत्त्व-सम्पन्न दीन दशा, वर्तमान की उद्दण्डता से पोषित दीन-हीन जनता और भावी राजत्व का मानसिक विश्लेषण करता है। वह भावी कार्यक्रम की सूचना भी देता है। तृतीयाङ्क में धनदत्त और च्यवन की एकोक्तियाँ हैं। इसके पश्चात् राजपुरुष अपना दुखड़ा रोता है कि चोर का पता न लगाने पर सन्ध्या तक मर जाना होगा। पंचम अङ्क के बीच में रत्नाकर की एकोक्ति है।

अष्टम अङ्क के आरम्भ में पेड़ से बँधे कामेश्वर की एकोक्ति है। वह बहुविध शोचनाओं के बीच अपनी प्रेयसी वेश्या के विषय में कहता है—

---

१. समसामयिकता है चतुर्थ अंक में सूदखोरी और घूसखोरी का संविधान रचने में। इसी अंक में अपराध स्वीकार कराने के लिए आत्रेय आदि को पीटा जाता है।

लीलावतीं कुसुमकोमलकायकान्ति मुक्ति सपादपतनं बत भिक्षमाणम् ।
क्रूरो जघान यदसौ परिपश्यतो मे तत्तीक्ष्णशल्यसदृशं रुजमातनोति ॥

वह अपने सभी सम्बन्धियों के लिए हा, हा करता है, जिनका रत्नाकर के द्वारा प्राण-पखेरू उड़ाया गया है।

नवम अङ्क के आरम्भ में सभी कुटुम्बियों के विलय हो जाने से रत्नाकर रंगपीठ पर अकेले विलाप करता है। संस्कृत-साहित्य की अनूठी एकोक्तियों में यह अनुत्तम है। यह एकोक्ति विलापात्मक है।

नवम अङ्क के मध्य में रंगपीठ पर अकेले रत्नाकर सविग्न होकर अपनी स्थिति और भावी कार्यक्रम पर विचारणा करता है। वह सरयू से प्रार्थना करता है—

तापः कायनतः प्रयाति विलयं शीतेन ते वारिणा
तृष्णामप्युपहन्ति पीतमचिरात् पीयूषतुल्यं हि तत् ।
ज्वालाभारसमाकुलेन मनसा तापप्रशान्तीच्छया
त्वन्नीरे प्रविशामि देहि कृपया स्थानं प्रतप्ताय मे ॥

नाटक की अन्तिम एकोक्ति है नवम अङ्क के बीच में सुमति की। वह सारे दृश्य का वर्णन करती है।

पंचम अंक के आरम्भ में चार पृष्ठों का कुमति और सुमति का पद्यात्मक संवाद पद्य ही पद्य में लिखे परवर्ती नाटक का अग्रेसर आदर्श है।

यद्यपि अङ्कों का विभाजन दृश्यों में नहीं किया गया है, फिर भी सुदूरस्थ नये स्थान की घटना को रंगपीठ पर एक ही अङ्क में इसके बिना नहीं होना चाहिए था। पहले अंक में यही विप्रतिपत्ति है। इसमें एक स्थान पर पृष्ठ २३ तक की घटनायें तो जैसे-तैसे दिखाई जा सकी है, पर इस पृष्ठ पर जहाँ च्यवन को अपने परिजनों के साथ अपने घर पर वर्तमान होकर रंगपीठ पर दिखाया गया है, वह दूसरा स्थान है और पूर्वघटनास्थली से बहुत दूर है।

द्वितीय अङ्क में पृष्ठ २५ पर सभी पात्र निष्क्रान्त हो जाते हैं। कार्यस्थली में परिवर्तन होना है। रंगपीठ पर नये पात्र आते हैं। यह सब बिना दृश्यपट परिवर्तन के ही किया गया है। इस अंक में तीसरी दृश्य-स्थली पुष्पवाटिका की है। रंगमंच पर्याप्त विस्तृत है। एक ओर रंगमंच पर धनदत्त, च्यवनादि है और दूसरी ओर राजपुरुष है। ये एक दूसरे से अदृष्ट हैं।[1]

अभारतीयता

रंगपीठ पर राजा और उसकी वेश्या का परस्परालिङ्गन अभारतीय है, फिर भी यह आधुनिक संस्कृति का अग्रदूत है। यथा,

---

१. छठें अङ्क में नदी का दृश्य समाप्त होता है और बिना पटपरिवर्तन के च्यवन के घर का दृश्य समक्षित है।

कण्ठे समार्पय भुजौ परिपीड्य गाढं पीनस्तनौ घटय वक्षसि कामतप्ते ।
रक्ताधरामृतरसं परिहातुकामं कामेश्वरं जनय तन्वि समाप्तकामम् ॥

(इति यथोक्तं व्यस्यति)

परिष्वजस्व मां कण्ठे निरन्तरम् ।
अधरामृतपानाय प्रसादं मयि योजय ॥

(यथोक्तं कर्तुं व्यवसितः)

व्याजेन भुजबन्धं मे परिमुंचसि चंचले ।
चिरमेवं गतायास्ते प्रमोदः किं न रोचते ॥

(आलिङ्ग्य चुम्बितुं व्यवसितः)

तृतीय अंक में रत्नाकर रक्षी को मार डालता है। अष्टम अंक में च्यवन का रंगपीठ पर फाँसी लगाकर मर जाना नाट्यशास्त्र की दृष्टि से चिन्त्य है।

रंगपीठ पर प्रथम अंक में मारपीट का दृश्य मनोरंजक है।

भूमिका

कालीपद ने कतिपय भावात्मक भूमिकायें अपनाई हैं। यथा सुमति और नियति प्रथम अङ्क में। रत्नाकर जीवन की विषमताओं में ऊहापोह के क्षणों में नियति का गीत सुनता है—

जनको मूर्च्छति जननी रोदिति लयमुपयाति विवस्वान् ।
मूर्छिततनयं समुचितविनयं पश्यसि न कथं धीमान्
क्षुधया विकलान् परिहृतकुशलान् स्मरसि न कथमिह दारान्[1] ॥

कवि ने अपने सभी नाटकों में सभी पात्रों से संस्कृत में संवाद कराये हैं। उनका विचार है कि प्राकृत भाषा समझने में प्रेक्षकों को कठिनाई रहती है।

नायक के चारित्रिक विकास की दृष्टि से यह नाटक अनुत्तम है। इसमें रत्नाकर भिक्षुक से दस्युराज और फिर ब्रह्मर्षि बनकर चारित्रिक विकास का आदर्श प्रस्तुत करता है।

कवि ने भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों का पुनः पुनः स्मरण कराते हुए जीवन का उज्ज्वल पक्ष समुदित किया है। यथा,

स्त्री मातृरूपा स्तनदुग्धदायिनी सर्वं जगत्पाति शुभानुकम्पया ।
भक्त्या स्त्रियो यत्र भवन्ति पूजिताः सर्वे सुरास्तत्र वहन्ति तुष्टताम् ॥

तृतीय अङ्क में अत्याचारी राजा का कोश लुट जाने पर नागरिक कहते हैं—

अन्यायेनार्जितं वित्तमेवमेव प्रणश्यति ।

---

१. पंचमाङ्क के आरम्भ में और सातवें अङ्क के अन्त में सुमति का गीत भी सोद्देश्य प्रयुक्त है। ऐसी भूमिका के द्वारा कवि दिखलाता है कि अधिष्ठातृ देवलोक कल्याण के प्रेरक हैं।

सामाजिक कुरीतियों को नाटक में झलकाया गया है। यथा, धनदत्त ने च्यवन को ६० मुद्रायें दीं, जो सूदसहित २०० हो गईं।

भावों की उच्चावचता का अनुसन्धान कालीपद ने सौष्ठवपूर्वक सँजोया है। द्वितीयाङ्क में जब कामेश्वर और लीलावती मदपान करके प्रणयासक्त हैं, तभी उन्हें पीडित प्रजा का कोलाहल सुनाई पड़ता है।[1]

कवि नाटक को रस-निर्भर करने में नितरां सफल है। उदाहरण के लिए अष्टम अङ्क का वह दृश्य लें, जिसमें अपने मरे दादा से आत्रेय कहता है—

पितामह, उत्तिष्ठ, प्रभाता रजनी। एहि, कुसुमानि चेतुं गच्छावः। मातः कथमद्यापि न पुष्पकरण्डको दीयते।'

दृश्यवैविध्य

कालीपद ने इस नाटक में कतिपय विरल दृश्यों का समावेश किया है। यथा अग्निदाह, लूट, मत्स्यासादन, दुर्भिक्ष, भीख माँगना, तरणी-विहार आदि।

छायातत्त्व

सुमति के कार्यकलाप छायात्मक हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय पात्र अपने मन में कोई अन्य अभिसन्धि रखकर ऊपरी रूप में किसी दूसरे उद्देश्य से कुछ कहते-सुनते और करते हैं। षष्ठ अङ्क में विशालाक्ष हृदय में कामेश्वरादि के विनाश के लिए प्रयत्नशील है, पर ऊपर से कहता है—मैं डूब रहा हूँ, बचाओ।[2]

गीतनृत्य

कालीपद गीत के प्रेमी हैं। उन्होंने नाटकों में प्रायशः गीतों का समावेश किया है। गीतों के साथ अनेकशः वाद्य की सगति है। छठें अङ्क में लीलावती के गायन के साथ मृदङ्ग की संगति होती है और तदनुसार अभिनयात्मक नृत्य लीलावती प्रस्तुत करती है। रंगपीठ पर ऐसे मनोरंजक कार्यक्रम से प्रेक्षक मुग्ध होते हैं।

नलदमयन्तीय

कालीपद ने नलदमयन्तीय की रचना १९१७ ई० में की, जब वे मूलाजोड़

---

१. द्वितीयाङ्क में धनदत्त डर रहा है कि च्यवन ऋण माँगने आया है। वस्तुतः वह ऋण लौटाने आया था। फिर तो उसकी आँख का पट्टर खुल गया। अष्टम अंक में कामेश्वर डर रहा है कि मुझे मारने वाला रत्नाकर आया, जब उसका रक्षक च्यवन उसके पास पहुँचा था।

२. सप्तम अङ्क में भावात्मक छायातत्त्व है च्यवन का यह कहना कि कामेश्वर को मेरे घर के पास बाँध दो। मैं रात में उसे देखता रहूँगा। फिर सवेरा होने के पहले ही अस्यैव सन्तप्तेन शोणितेन रक्तचन्दनीकृतेन प्रोद्यतः सूर्यस्यार्घ्यं कल्पयित्वा सुतरां तृप्तो भविष्यामि।

के संस्कृत-महाविद्यालय में विद्यार्थी थे।[1] उसी समय सारस्वत महोत्सव के अवसर पर वहाँ के विद्यार्थियों ने इसका अभिनय किया था। परवर्ती काल में १९२९ ई० के लगभग लेखक ने इसका पुनः सर्वथा परिष्कार किया। कवि ने इस नाटक की विशेषता बताई है कि यह कालानुरूप रचना है। यथा,

कालानुरूपरचनाप्रचितं यदि स्यात् काव्यं तदा कवयितुः कविता चकास्ति।
वीरस्य भूषणमरातिवधे कृपाणं शृंगाररंगसमये तदयोग्यमेव॥

लेखक ने इसकी प्रति स्थापक को अभिनय करने के लिए दी थी।[2]

इसके अभिनय में दमयन्ती की भूमिका में स्थापक पात्र बना था। मित्रगुप्त नामक विद्यार्थी विदूषक बना था।

कथावस्तु

नल को विदर्भकुमारी दमयन्ती का चित्र देखने को मिला और वह अधीर हो गया। विदर्भ के वन्दियों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी। मदनताप दूर करने के लिए नल उपवन में जा पहुँचा। वहाँ उसे राजहंस दिखाई पड़ा। नल ने उसके सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसे पकड़ा। हंस ने नल से दमयन्ती का सौन्दर्य-वर्णन किया और दमयन्ती से नल की चारुता की चर्चा की। अपने वाहन उस हंस को ब्रह्मा ने नल-दमयन्ती का प्रेम-संवर्धन करने के लिए भेजा था।

विदर्भ में दमयन्ती-स्वयंवर के अवसर पर इन्द्राग्नि, यम, वरुण आदि देवता विवाहार्थी बन कर आ पहुँचे। उन्होंने नल को अपना दौत्य करने के लिए पटा लिया।

एक दिन दमयन्ती अभिलपितार्थ की पूर्ति के लिए अम्बिकापूजन करने गई। वहीं नल देवकार्य करने के लिए जा पहुँचे। दमयन्ती से उन्होंने बताया कि देवता आपको पाने के लिए उत्सुक हैं। दमयन्ती ने स्पष्ट कहला दिया कि मेरा मन नल को छोड़ कर अन्य किसी के प्रति आसक्त नहीं हो सकता।

स्वयंवर हुआ। वहाँ सभी देवताओं ने नल जैसा रूप बनाकर अपने को उपस्थित किया। दमयन्ती के सद्भाव से प्रसन्न देवताओं ने अन्त में नल का वरण हो जाने दिया। कुछ दिनों तक सुखी जीवन बिता लेने के पश्चात् नल को उसके भाई पुष्कर ने द्यूत में हरा दिया। नलका वनवास हुआ। साथ में दमयन्ती गई। कलि ने उन दोनों का वियोग कराने की प्रतिज्ञा की।

नल और दमयन्ती के साथ उनकी सारी नागरिक प्रजा भी चलती बनी। मन्त्री, सेनापति आदि भी चलते बने। पुष्करने अपने राज्य में आज्ञा प्रचारित की—

---

१. समुद्रयुग्मानलचन्द्रमाने वंगीयवर्षे मिथुनस्थसूरे।
गुरोर्दिने सप्तदशे समाप्तिं प्राप्तं नवीनं नलवृत्तनाटयम्॥

२. कविना समर्पितमस्मासु नलदमयन्तीयं नाम नाटकं यथारसमभिनेतुम्।

वेदेषु प्रणयो विनश्यतु नयः शास्त्राद् बहिर्वर्तताम्
ये शास्त्रं रचयन्ति तेऽपि मनुजा नैतेऽपि किं तादृशाः।
यस्मै यद्धि विरोचते जनिमते तेनैव तत्साध्यतां
कालं कंचन देहसंगतिरियं काम्येन संयोज्यताम् ॥

विवेक ने अपने संगीत द्वारा पुष्कर का उद्‌बोधन किया। उसकी आँखें खुली। उसने अपने को धिक्कारना आरम्भ किया और नल को वन से बुला लाने के लिए तत्पर हुआ। यथा,

को दाहमिव ज्यायांसं राज्यादपवाह्य सिंहासनमभिलषेत्। तदलं मे राज्येन। वनं गत्वा सम्प्रति देवं नलं प्रसाद्य निषधेषु प्रत्यावर्तयेयम्।

पर तभी कलि आ पहुँचा। उसने पुष्कर के भावी कार्यक्रम को सुन कर कहा कि कहाँ मूर्खता में पड़े हो। पाप पुण्य की वार्ता में न पड़ो—यावद् यावद् दैहिकः सुखसम्भोगस्तावदेव प्रवर्त्यतामात्मा।

तृतीय अङ्क में नल दमयन्ती के साथ घने वन में जा पहुँचता है। नल प्रगाढ़ शोक से अभिभूत था। दमयन्ती उसे धैर्य बँधाती थी। नल ने कहा कि तुम को कष्ट में पड़ा नहीं देख सकता हूँ। यहाँ से मार्ग विदर्भ की ओर जाता है। चलो, तुम्हें माता-पिता के घर छोड़ आऊँ। दमयन्ती ने कहा—फिर ऐसी बात न कहना। तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती। यहाँ मैं वनदेवी बनूँगी और आपको भी कुसुमों से अलङ्कृत कर के वनदेव बनाऊँगी।

नल ने दमयन्ती से बताया कि कलि के प्रभाव के कारण प्रिय पुष्कर इस प्रकार बिगड़ गया है। फिर तो वही किरात वेशधारी कलि आ पहुँचा। उसने नल से बताया कि इस वन के राजा का नियम है कि फल उन्हीं को दिये जायँ, जो सुवर्ण भूमि से पकड़ कर स्वर्ण-हंस हमें उपायन-रूप में दें। कलि के द्वारा माया-निर्मित हंस को पकड़ने के लिए जब नल ने अपना परिधान फेंका तो उसे लेकर पक्षी उड़ा और दूर चला गया। कलि पति-पत्नी का वियोग कराने के लिए उत्सुक था।

चतुर्थ अङ्क में नल और दमयन्ती एक ही वस्त्र पहने रंगपीठ पर आते हैं। प्यासी दमयन्ती के लिए पहले जल-सरोवर दिखाकर उसे पुनः शोणित-सरोवर बनाने का काम कलि करता है। जल न पाकर दमयन्ती श्रान्त होकर सन्ध्या के समय नल के हाथ को हाथ में लेकर वटवृक्ष के नीचे सो गई। आशंका थी कि नल कहीं छोड़ कर न चल दें।

नल ने उस वस्त्र को काटा, जिसे वे दोनों पहने थे। वह दमयन्ती को छोड़कर चलता बना। किरातों ने सर्प से उसकी रक्षा की, पर दमयन्ती के रूप पर मुग्ध होकर वे उसे तंग करने लगे। तब तो किरातराज ने वहाँ आकर दमयन्ती की रक्षा की। किरातराज ने उसे पुत्री मान कर अपनी कुटिया में लाकर रखा। कलि का पक्षधर मोह यह देखकर दुःखी हुआ और धर्म का पक्षधर विवेक प्रसन्न हुआ। विवेक ने गाया—

रे जीवाः सुकृतेषु मानसरतिं कुर्वन्तु नक्तं दिवम्। इत्यादि

वह अपनी एकोक्ति द्वारा सूचित करता है कि अग्नि में कर्कोटक जल रहा था। उसे बचाने के लिए नल अग्नि में प्रवेश कर गया। परिणामतः उसका रंग बदल गया। किरातराज ने राजकन्या दमयन्ती को विदर्भ पहुँचवा दिया।[1]

षष्ठ अंक के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार दमयन्ती नल को प्राप्त करने के लिए अपना स्वयंवर रचवा रही है। अयोध्या-नरेश ने किसी अश्व-विशेषज्ञ को अश्वाधिकारी बनाया था। नल का भूतपूर्व विदूषक उसे ढूंढते हुए उससे मिला। पहले तो दोनों ने एक दूसरे को न पहचानने का बहाना किया। नल के देश-काल पूछने पर विदूषक ने बताया कि विदर्भराज की कन्या दमयन्ती। इतना ही सुनने पर नल ने पूछा—क्या मर गई? विदूषक ने कहा—ऐसा क्यों? वह तो अपना स्वयंवर रचवा रही है। कल सबेरे तक तुम्हारे महाराज ऋतुपर्ण को विदर्भ पहुँचना है।

सप्तम अंक में नल विदर्भ पहुँचा। वहाँ अम्बिका-पूजन के लिए दमयन्ती बाहर निकली। उसके लड़के इन्द्रसेन को एक भैंसा डराने लगा। इस भैंसे को विदूषक ने ही इन्द्रसेन की ओर प्रेरित किया था, जिससे नल उसके पास आ जाय। नल ने उसे बचा कर उसका हाथ पकड़ लिया। बातचीत करते हुए नल ने इन्द्रसेन के पिता नल की निन्दा की। इन्द्रसेन आवेश में आ गया और वे दोनों लड़ने के लिए युद्धभूमि में उतरे। तब तो दमयन्ती के पिता भीम सपरिवार युद्ध-व्यापार रोकने के लिए आ पहुँचे। नल पहचान लिए गये। नल से भीम ने बताया कि स्वयंवर का माया-व्यापार आपको शीघ्र प्राप्त करने के लिए रचा गया था। तब तो नल को अपने पुत्र के उलाहने देने पर कहना पड़ा—

राज्यं विहाय घनकाननभूप्रयाणे नाभूत्तथा किमपि दुःखमसह्यरूपम्।
यावत्त्वदीयवदनाम्बुजहास्यरेखासम्पर्कविच्युतिवशाद् विषमं तदासीत्॥
वत्स, एहि इदानीं परिष्वङ्गेण विनोदय माम्।

इस अवसर पर राजसभा में आकर पुष्कर ने नल से कहा कि मुझे दण्ड दें। कलि ने कहा कि मेरे प्रभाव में आकर पुष्कर ने सब दुराचार किये। नल ने उसे दण्ड दिया—

प्रभूत-स्नेहदिग्धेन हृदयेन बलीयसा।
तव गात्रपरिष्वङ्गो योग्यदण्डो वितीर्यते॥

इस नाटक में राष्ट्रिय-चरित्र-उत्थानात्मक पद्य अविरल हैं। यथा,

न केवलं जातिकृता महात्मता यन्नीच जातेरपि तस्य साधुता।
सनातनो गोपकुले समुद्गतो ददाह लोकस्य दुरन्तदुर्गतिम्॥

नाट्यशिल्प

रंगपीठ पर नाच-गाने का विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत है। वनपाल और उसकी

---

१. यह सूचना अंक में न देकर अर्थोपक्षेपक द्वारा दी जानी चाहिए थी।

पत्नी प्रथम अंक के पूर्व विष्कम्भक में रंगपीठ पर नाचते-गाते हुए प्रवेश करते हैं। संगीत सुनकर विदूषक कहता है—

अहो रागपरिवाहिणी संगीत-पद्धतिः।

तृतीय अंक में विवेक गाता है—

नवनिपधेश्वर सितकर कुलधर खलतां परिहर वह बहुमानम्।

मोह का गायन है—

परिसर दूरं त्यज रसपूरं सुप्ता विलसति भीमसुतेयम्। इत्यादि

इस प्रकार के गीतों में सूच्य सामग्री निर्भर है। आगे चलकर चतुर्थ अंक में पुनः मोह और विवेक गाते हैं।

भाण की पद्धति पर आकाश-भाषित का प्रयोग प्रथम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में किया गया है।[1] महाराज कहाँ हैं—इस प्रश्न का उत्तर विदूषक नौकरों से पाता है। इसमें 'आकाशे' कोटि की उक्ति का प्रयोग तृतीय अंक के पूर्व विष्कम्भक में मिलता है। यथा,

कलिः (आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) धम विवेकेन मां पराभवितुमीहसे। धिङ् मूर्ख, अपध्वस्तोऽसि। पश्य कियतीमिव ते दुर्गतिं सन्धारयामि।

प्रथम अंक के आरम्भ में नल की एकोक्ति है, जिसमें वह दमयन्ती-विषयक अपने मनोभाव और कामानलताप की चर्चा करता है। द्वितीय अङ्क के मध्य में अपनी लम्बी एकोक्ति में वह अपने दौत्य की दुष्करता का वर्णन करता है और दमयन्ती के प्रति प्रेम की अतिशयता की चर्चा करता है।

चतुर्थ अङ्क के मध्य में नल की एकोक्ति सात पृष्ठों की है। द्वितीय अंक में रंगपीठ के दो भाग हैं। एक भाग में अदृश्य रहकर नल एकोक्ति द्वारा अपने मनोभाव का वर्णन करता है और दूसरे भाग में दमयन्ती सखी के साथ पुष्पावचय करती है।

प्रतिक्रियोक्ति के उदाहरण द्वितीय अंक में मिलते हैं, जहाँ रंगपीठ के एक भाग में अदृश्य रहकर नल दूसरे भाग में दमयन्ती और कल्पलता की बातें सुनता है। वह अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करता है। यथा,

अहो श्रोत्रामृतं वचनमस्याः

वाङ्मात्रमाधुर्यविशेष-हेतोश्चिन्तं ममोत्सर्पति मोहराशिम्।

तत्रापि यन्मामधिकृत्य मुग्धा को वास्ति तस्मात् परतो विनोदः॥

चतुर्थ अङ्क में मोह के गीत को सुन कर नल का वक्तव्य देना प्रतिक्रियोक्ति है। सातवें अंक के आरम्भ में नल की सारगर्भित एकोक्ति के पश्चात् चूलिका से जो संवाद दिया जाता है, उसके पश्चात् पुनः नल अपना प्रतिक्रियात्मक भाषण देता है। यह प्रतिक्रियोक्ति है।

---

१. (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रूथ।

अतिशय लम्बे होने के कारण अनेक संवाद नाट्योचित नहीं प्रतीत होते। रूपक में तो छोटे-छोटे संवाद बातचीत के आदर्श पर होने चाहिए। भला बातचीत में एक पृष्ठ तक कोई बोलता चलता है। ऐसे संवाद व्याख्यान से लगते हैं।

कालीपद ने अपने अन्य नाटकों में प्राकृत भाषा को स्थान नहीं दिया है, क्योंकि प्राकृत दुर्बोध है। केवल इसी नाटक में कतिपय पात्र प्राकृत बोलते हैं। विदूषक संस्कृत बोलता है। इसकी रचना के बाद कवि ने प्राकृत छोड़ी।

छायातत्त्व का वैचित्र्य कालीपद के सभी नाटकों मे है। विवेक का पात्रोचित कार्यकलाप छाया-तत्त्वानुसारी है। उसका रूप है—

वस्ते गैरिकमेकमेव वसनं ग्रीवाग्रबन्धस्थिरं
शीर्षालम्बिसुदीर्घ-केशविलसत्पृष्ठ-प्रभोद्भासिता।
मूर्तिः कामपि कान्तिमेति परमां पूतां विनीतामिव
हंहो किन्तु ममापि चेतसि नवं भावं मुहुर्यच्छति॥

तृतीय अङ्क में कलि किरात का वेष धारण करके नल से मिलता है। चतुर्थ अङ्क में मोह रंगपीठ पर आकर गीत गाता है। छायातत्त्व का स्वाभाविक उद्गम अग्निप्रवेश के पश्चात् कालित नल है। उसे कोई नहीं पहचान पाता। रूप तो वही है, रंग भिन्न है। उसने नाम भी बदल लिया और काम भी। वह अब अयोध्या में अश्वाधिकारी है।

पात्रानुसन्धान की दृष्टि से मानवरूपधारी भावों का रंगमंच पर उतरना मनोरंजक है। विवेक और मोह ऐसे पात्र हैं। यह विधान छायात्मक है।

विष्कम्भक में अङ्कोचित सामग्री प्रायशः दी गई है। तृतीय अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक के अन्तिम भाग में कलि पुष्कर को समझाता है कि तुम्हें क्या—

हा धिक् दैवमिति वार्तामात्र-विश्रान्तं गगनप्रसूनायितम्। पुरुषकार एव फलं प्रसूते सर्वत्र। तत्र तु भवानेव प्रमाणम्।

इस विष्कम्भक में पुष्कर प्रतिनायक है। शास्त्रानुसार प्रतिनायक को विष्कम्भक में भूमिका नहीं बनना चाहिए।

तृतीय अंक के मध्य में कलि परिस्थिति-वशात् अकेले हैं और वह अपनी एकोक्ति द्वारा सूच्य प्रस्तुत करता है—

मूढे दमयन्ति, मूढ नल, दुर्जात धर्म। एते यूयं पराभूताः स्थ। कियानवसरो मे युष्मानभिभवितुम्। एषोऽहमचिरात्—

नलेन भैम्या विरहं विधास्ये द्रक्ष्यामि तस्याः परमाभिमानम्।
धर्मप्रभावं क्षयितं करिष्ये निजां प्रतिष्ठां भुवि भावयिष्ये॥

ऐसी सूचना अंक में होना अशास्त्रीय है।

चतुर्थ अङ्क में दमयन्ती के स्वगत के द्वारा सूचना दी गई है। यह स्वगत वस्तुतः एकोक्ति है। रंगपीठ पर उस समय नल है। दमयन्ती का यह स्वगत नल की उक्ति के प्रसंग में न होने से एकोक्ति है।

हन्त पिपासया अवसीदन्तीव मे अङ्गानि । परिशुष्यतीव हृदयम् । यदि आर्यपुत्रस्तथा जानीयात्, तदा क्लेशातिशयमेवानुभवेत् । पिपासया जडीभूता तु रसना नालमेकमपि वचनमुच्चारयितुम् इत्यादि ।

ऐसी ही स्वगत-रूपिणी एकोक्ति नल की इसी अंक मे आगे चल कर है—

नहि नहि नेदमुपपद्यते । प्रतिपदमेव कान्तारे विपदः सम्भाव्यन्ते । तदेषा विसर्जयितव्या ।

इसी अङ्क मे पुनरपि स्वगत मे दमयन्ती की एकोक्ति है ।

अहो सीदन्तीव मे अङ्गानि इत्यादि ।[1]

एकोक्ति का उत्तम स्वरूप चतुर्थ अक के मध्य मे नल द्वारा प्रस्तुत है । दमयन्ती सोई है । नल कहते है—

अहो संविधानकम्—
साम्राज्यं निरुपद्रवं परिजना वश्या यशो निर्मलम्, इत्यादि

पष्ठ अक का आरम्भ नल की दो पृष्ठ की लम्बी एकोक्ति से होता है ।

उत्स्वप्नायित का उत्तर प्रस्तुत करके एक नये प्रकार का सवाद इस नाटक के चतुर्थ अक मे प्रस्तुत किया गया है ।

सप्तम अंक मे नल से वियुक्त होने पर उसकी विपत्तियों की गाथा और किरातराज की सहायता से विदर्भ पहुँचने का वृत्तान्त विदूषक नल को बताता है । यह अंकोचित नही है ।

चतुर्थ अङ्क मे आरभटी-वृत्ति का अग माया-व्यापार रमणीय है । इसके द्वारा कलि माया-सरोवर बनाकर उसे क्षण मे शोणित-सरोवर बना देता है ।

एकोक्ति के समान ही किसी एक व्यक्ति का रगमंच पर कुछ करते हुए अपनी मानसिक अवस्था बुदबुदाना है । चतुर्थ अङ्क मे नल की एकोक्ति है—आवामेकवसनौ । तत्कथमिदानीमनुष्ठातव्यम् । (शस्त्रं व्यापारयन् भैम्याः शरीर-स्पन्दं रूपयित्वा) धिक् प्रमादः । एषा दमयन्ती स्पन्दते । इत्यादि ।

चतुर्थ अङ्क के प्रायः अन्त मे रंगमंच की एक ओर कलि की एकोक्ति प्रवर्तित होती है और दूसरी ओर दमयन्ती की । दमयन्ती की एकोक्ति दो पृष्ठ की अतिशय लम्बी है ।

पंचम अंक मे वन मे नल से वियुक्त होने पर उन्मत्त दमयन्ती नल के लिए एकाकी विलाप कर रही है । वही पीछे से आकर कलि की एकोक्ति है, जब दमयन्ती मूर्छा दूर होने पर पुनः विलाप करती है ।

---

१. ऐसे वक्तव्य स्वगत इसलिए है कि वक्ता रंगमंच पर स्थित पात्र से इसे अश्रुत रखना चाहता है । यह एकोक्ति है, क्योंकि किसी वक्ता के वचन से इसका कोई सम्बन्ध नही है । इसमें अपनी निजी स्थिति की चर्चा प्रायश: है ।

स्वयंवर के अवसर पर नल का अपने पुत्र इन्द्रसेन के साथ नल के विषय में निन्दा-परक काव्योचित संवाद है। नल इन्द्रसेन को पहचानता था, किन्तु इन्द्रसेन उसे नहीं पहचानता था।

स्यमन्तकोद्धार

कालीपद तर्काचार्य ने स्यमन्तकोद्धार नामक व्यायोग की रचना संस्कृत-साहित्य-परिषद् के संस्कृत-विद्यालय में अध्यापन करते समय १९३१ ई० में की थी।[1] इसका प्रथम अभिनय पारिषदों के प्रीत्यर्थ हुआ था, जो दिग्दिगन्त से पधारे थे।

कथावस्तु

कृष्ण पर अपवाद लगा कि स्यमन्तक मणि के लिए उन्होंने प्रसेन को मरवा डाला है। अपवाद को दूर करने की योजना में वे उस वन में गये, जहाँ प्रसेन मारा गया था। कृष्ण ने अपने साथियों को छोड़कर अकेले घोर वन में घुसते हुए सात्यकि द्वारा अपने शुभचिन्तकों को सन्देश दिया—

सस्नेहदृष्टया चिरमेव दृष्टो युष्माभिरासीदमलो हि कृष्णः।
मिथ्यापवादं व्यपनीय भूयःस्नेहं पुराणं पुरतः स पायात्॥

वहाँ से कृष्ण जाम्बवान् के घर के समीप पहुँचे, जहाँ वनदेवी मिली। उसने अर्घोपचार के पश्चात् कृष्ण के पूछने पर बताया कि भल्लूकराज जाम्बवान् प्राणियों की हत्या करता है और लता-वृक्षों का विदारण करता है। कृष्ण ने कहा कि उसे मैं ऐसा करने से रोक दूंगा।

कृष्ण जाम्बवान् के घर के पास पहुँचे। वहाँ जाम्बवान् का लड़का स्यमन्तक-मणि के जोड़े के लिए रो रहा था। कृष्ण ने अपनी कौस्तुभ-मणि उसकी ओर फेंक दी। उसे वह लड़का अपने रक्षक के साथ लेने चला तो कृष्ण ने रोका और कहा कि यह मेरी है। कृष्ण ने कहा कि यह जो स्यमन्तक है, वह भी हमीं लोगों का है। कृष्ण ने रक्षक से कहा कि अपने भल्लूकराज को सन्देश दो।

निहत्य मद्बन्धुजनं प्रसेनं स्यमन्तकं हन्त गृहीतवन्तम्।
सिंहं समुच्छिद्य सुहृत्तमोऽसि तत्तं मणिं मे प्रतिपादयत॥

अर्थात् स्यमन्तक मणि हमें दे दो।

सन्देश सुनकर जाम्बवान् वहाँ आया और स्यमन्तक माँगने वाले को खोटी-खरी सुनाई। पूछने पर जाम्बवान् ने अपना राम से सम्बन्ध बताया। कृष्ण ने राम का नाम सुना तो कहा कि वे ही राम न, जो स्वयं अशक्त होने के कारण पशुओं की सहायता से पत्नी का उद्धार करा सके। जाम्बवान् ने राम की प्रशंसा की। कृष्ण ने राम के हीन-कोटिक कामों को गिना दिया कि छिप कर वालि

---

१. स्यमन्तकोद्धार का प्रकाशन १९५९ ई० के प्रणव-पारिजात के प्रथम वर्ष के अङ्क ९, १०, ११ तथा १२ में तथा द्वितीय वर्ष के प्रथम अंक में हुआ है।

को मारा आदि। जाम्ववान् ने राम की प्रशंसा में जो कुछ कहा, उसमें कृष्ण ने प्रबल तर्क देकर मीन-मेख निकाला। जाम्बवान् ने कृष्ण की भरपूर निन्दा की और कहा कि तुम गोपवधूरस-पाटच्चर हो। कृष्ण ने कहा कि मैंने लोक-रक्षा के लिए कंस को मारा और गोवर्धन-धारण किया। जाम्बवान् ने कहा कि पर्वत तो हनुमान् भी हजारों कोश ढो ले गया था और कंसादि तो अपनी जीवन-अवधि के क्षीण हो जाने से मर चुके थे। उनको मारने में तुम्हारी क्या वीरता है? तुम भीरु तो हो ही—

हत्वा भृत्ययुतं कंसं जरासंध-भयातुरः
स्वप्राण-परिरक्षार्थं कतिकृत्वः पलायितः।
समुद्र-मुद्रितामन्ते कृत्वा द्वारवतीं पुरीम्
जरासन्धभयान्मुक्तः कथंचित् स्वस्थतामगाः॥

कृष्ण ने कहा कि बहुत बढ़-बढ़कर बातें करते हो। शीघ्र स्यमन्तक लाओ और महाराज उग्रसेन को उपहार दो। जाम्बवान् ने कहा—कहाँ के कृष्ण, कहाँ के उग्रसेन? मैं नहीं देता। कृष्ण बिगड़े और बोले कि अब तो तुम्हारे साथ युद्ध करना होगा। घर से शस्त्र लाओ। जाम्बवान् ने कहा—शस्त्र क्या होगा?

चर्मैव वर्म नखराः खलु शस्त्रसंघाः शस्त्रक्रियोपकरणं रघुनाथमन्त्रः।
तिष्ठ क्षणं निशितशस्त्रसमन्वितस्य संचूर्णयामि तव शस्त्रकृताभिमानम्॥

इसके पश्चात् कृष्ण ने अपनी माया से अपना अग्निमय रूप प्रकट किया। तब जाम्बवान् को कहना पड़ा—

शिलामाकृष्य शैलस्य प्राणांस्ते ध्वंसयाम्यहम्।

कृष्ण ने उसे नर-प्रभाव से अशक्त कर दिया था। वह पर्वत न उखाड़ सका। वह राम की सहायता के लिए ध्यान लगाने लगा तो उसे कृष्ण दिखाई पड़े। कृष्ण ने कहा कि राम का ध्यान लगाये इतनी देर हुई। तुम डर गये। अब तुम्हारी मुक्ति इस बात में है कि शीघ्र स्यमन्तक दे डालो। बिगड़ कर जाम्बवान् ने राम के प्रसाद के लिए स्तुति की तो विष्णुशक्ति ने नेपथ्य से कहा—

एषाहं वैष्णवी शक्तिः प्रसन्नास्मि स्तवेन ते।
विष्णुरेवाद्य सम्प्राप्तस्तव वैरितयान्तिकम्॥

विष्णुशक्ति ने कृष्ण में उसे राम का दर्शन कराया। उसके कृष्ण से क्षमा माँगने पर कृष्ण ने आदेश दिया कि वन्य पशुओं और वृक्ष-लतादिकों को व्यर्थ विनष्ट करना बन्द कर दो। इसके पश्चात् कृष्ण ने पधार कर जाम्बवान् की गुहा पवित्र की।

पंचम दृश्य में कृष्ण को जाम्बवान् अपनी कन्या जाम्बवती अर्पित करता है और स्यमन्तक मणि दे देता है। इसमें कन्या के पतिगृह-प्रस्थान का दृश्य अभिज्ञान-शाकुन्तल के चतुर्थ अंक के अनुरूप करुणापूर है।

नाट्यशिल्प

स्यमन्तकोद्धार व्यायोग एक अंक का है, किन्तु इसमें पाँच दृश्य हैं, जो एक-एक अंक के समान पड़ते हैं। इस प्रकार नाममात्र के लिए यह एकाङ्की है।

स्यमन्तकोद्धार में सभी पात्र मिलकर नान्दी पाठ करते हैं। नाट्यारम्भ के लिए प्रस्तावना में पारिपार्श्वक आदि कोई पात्र एक ऐसी कल्पित घटना की समस्या प्रस्तुत करते हैं, जो रूपक की वस्तु से मेल खाती हुई वस्तु प्रस्तुत कर देती है। अठारहवीं शताब्दी से प्रस्तावना के अन्तिम भाग में ऐसा आयोजन करने का प्रचलन विशेष रूप से रहा है। इस व्यायोग में किसी को साँप ने काटा तो सूत्रधार ने कहा—

विपन्नं मणिमाहर्तुं गच्छामि गिरिकन्दरम्।
एष कृष्ण इव प्राप्तः स्वामकीर्तिमपोहितुम्॥

इसके तत्काल पश्चात् कृष्ण रंगपीठ पर आ जाते हैं।

व्यायोग में नियमतः विष्कम्भक और प्रवेशक नहीं होते और इस रूपक में भी इनका अभाव है, किन्तु अर्थोपक्षेपोचित सामग्री को अङ्क-भाग में ही समाविष्ट किया गया है। रूपक के आरम्भ में ही सात्यकि के पूछने पर कृष्ण बताते हैं कि सूर्य से प्राप्त स्यमन्तक मणि सत्राजित् को स्वाभावानुसार लाभप्रद थी, किन्तु उसके पुत्र प्रसेन को हानिप्रद रही, क्योंकि प्रसेन पापी था और यह मणि पापी का प्रणाश करती है। फिर क्यों कर कृष्ण पर इसके चुराने का सन्देह लगा? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कृष्ण ने बताया है कि जब सत्राजित् इसे लेकर द्वारका में आया तो मैंने उसे बताया कि यह राजा के योग्य है। तुम इसे महाराज उग्रसेन को अर्पित करो। उसने ऐसा न कर प्रसेन को चुपचाप दे दिया। वह भी मुझसे बचने के लिए मणि लेकर दूर जंगल में घोड़े पर चला गया, जहाँ घोड़े सहित वह विपन्न हुआ। ऐसी स्थिति में लोगों में अपवाद फैला है कि मैंने प्रसेन को मणि के लिए मरवाया है। ऐसी सूच्य सामग्री एकोक्ति के द्वारा भी प्रस्तुत की गई है। द्वितीय दृश्य के अन्तिम भाग में सात्यकि के चले जाने के पश्चात् रंगपीठ पर अकेले कृष्ण बतलाते हैं कि स्यमन्तक को लिये हुए प्रसेन को यहीं गुफा के द्वार पर सिंह ने मार डाला और उससे मणि ले ली। उसको जाम्बवान् ने यहाँ पर मारकर उससे मणि प्राप्त की। मैं अपनी महिमा को छिपाये रखने के लिए अपने को मुग्ध-सा प्रदर्शित करता हूँ। अब भक्त जाम्बवान् के घर की ओर चलता हूँ। तृतीय दृश्य में वनदेवी को कृष्ण बताते हैं कि कैसे जाम्बवान् पूर्व जन्म में रामरूपधारी मेरा भक्त था। फिर उससे आज मिलना है। क्यों?

त्रेतायामसमो भक्तो हनूमान् मम यादृशः।
तथैव जाम्बवान् नाम द्वयोर्वा सदृशं द्वयम्॥

छायातत्त्व

वन देवी, ऋक्षराज जाम्बवान्, विष्णुशक्ति आदि को मानव रूप में पात्र बना कर रंगपीठ पर लाना छाया-तत्त्वानुसारी है। कृष्ण ने माया द्वारा अपना अग्निरूप दिखलाकर जाम्बवान् को डराया। चतुर्थ दृश्य में विष्णु-शक्ति को पात्र बनाया गया है।

उत्कृष्ट संविधान

चतुर्थ दृश्य में दारक का स्यमन्तक मणि का जोड़ा पाने का बालहठ वाला संविधान विशेष रमणीय है। उसका रोना संस्कृत-रंगमंच पर एक विरल संघटना है। उसका ग्यां, ग्यां ग्यां करना प्रेक्षकों को हँसाने के लिए है।

रस-विन्यास

स्यमन्तकोद्धार में अङ्गीरस वीर मानना ही पड़ेगा, क्योंकि इसकी प्रधानता और प्रचुरता है, किन्तु अङ्गी होने के लिए रस की परिव्याप्ति आद्यन्त होनी चाहिए—ऐसा नहीं है। अन्तिम दृश्य तो सर्वथा शृंगारित है।

शब्द-विन्यास

कवि ने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो केवल संज्ञामात्र नहीं हैं, अपि तु एक पूरे संस्थान को ही दृष्टिपथ में ला देते हैं। यथा, नीचे के श्लोक में वनप्रिय (कोयल) का प्रयोग है—

बहुश्रुतानां भवनां समागमाद् विधीयते मुग्ध जनस्य मन्त्रता।
वसन्तसंगाज्जडिमानमात्मनो वनप्रियो मुञ्चति पंचमस्वरे॥

एकोक्ति तथा प्रतिक्रियोक्ति

कालीपद एकोक्तियों की प्रभविष्णुता में विशेष आस्था रखते हैं।[1] उन्होंने द्वितीय दृश्य के अन्तिम भाग में कृष्ण की एकोक्ति सन्निविष्ट की है।

इस रूपक में कृष्ण की नीचे लिखी प्रतिक्रियोक्ति प्रभविष्णु है—

अहो शैशव-निर्बन्धः—

न सम्भवासंभवसंव्यपेक्षया वृत्तिः शिशूनां मनसः प्रवर्तते।
नभोगतं वीक्ष्य सुधांशुमुज्ज्वलं करेण बालस्तमवाप्तुमीहते॥

बहुस्थानिक कार्य

व्यायोग में एक ही अंक होता है, किन्तु इसमें अनेक स्थलियों की कार्य-परम्परा भी दिखाने की रीति रही है। दृश्यों में विभक्त होने पर भी किसी एक ही दृश्य में अनेक स्थलों की घटनायें दिखाई जा सकती हैं। इस व्यायोग के द्वितीय दृश्य के अन्तिम भाग में जहाँ से ऋक्ष पर्वत दिखाई देता है, वहाँ से लेकर जाम्बवान् के भवन की सन्निधि में आने का मार्ग 'परिक्रम्य दृष्ट्वा' इतने से ही कट जाता है। तब कृष्ण कहते हैं—अये एतत् सन्निहितं जाम्बवतो भवनं लक्षणेनापि संलक्ष्यते।

१. भ्रान्तिवश कतिपय स्थलों पर कवि ने एकोक्ति को स्वगत लिखा है।

गीत

कालीपद रूपक में गीतों भरी कहानी प्रस्तुत करके प्रेक्षक का मन मोह लेते हैं। पंचम दृश्य का आरम्भ जाम्बवती के लम्बे स्वागत-गान से होता है—

नीलनलिनरुचिसुन्दर दयित देहि दर्शनम्।
परिगृहाण यत्नरचित-माल्यं त्यज वंचनम् ।। इत्यादि

बहुविध प्रयोजनों से अनेक गीतों का समावेश इस रूपक में हुआ है। वनदेवी तो मानो योग्यतानुसार गाती ही है। यथा,—

तापस-पूजित कौस्तुभशोभित भक्तवशीकृत विश्वपते। इत्यादि

अङ्किया नाट या यक्षगान आदि में जैसे सूत्रधार या निवेदक महिमशाली पात्रों का परिचय देते हैं, वैसे ही वनदेवी के द्वारा कृष्ण का परिचय स्तुति-गीत में दिया गया है। यथा,

जय जय जय करुणामय दुर्गतिभयवारण
नलिननयन दीनशरण हे यदुकुलनन्दन। इत्यादि

वनदेवी के द्वितीय गान में देश-काल का परिचय है। यथा,

पादपकुल मृदुलानिलचञ्चल किर पुष्पं
काननमनु धरणि वितनु ललितहस्तिशष्पम्। इत्यादि

तृतीय दृश्य के अन्तिम भाग में वनदेवी कृष्ण के लिए प्रास्थानिक गीत गाती है। यथा,

हे मधुसूदन मधुर विलोचन करुणां कुरु वनकुंजे। इत्यादि

केवल गीत ही नहीं, पंचम दृश्य में रंग-पीठ पर नृत्य का आयोजन है। कुमारियाँ गाती हुई नाचती हैं—

कनकलता कृष्णतरुं श्रयति मंजुला कौमुदिका शिशिरकरं भजति कोमला।
सफला सखि वासना तव दयित-साधना सफलं तव यौवनमिह भव रसोज्ज्वला।।

रूपक के अन्त में भक्त मृदंग आदि वाद्य के साथ गाते हैं—

जयति मधुसूदनो नन्दनृपनन्दनो नीलमणिरुचिरतनुधारी। इत्यादि

सूक्तिराशि

स्यमन्तकोद्धार की सूक्तिराशि रमणीय है।[1] यथा,

१. जनेषु लब्धमानस्य गुणाढ्यस्य मनस्विनः।
जीवनं मरणं साक्षादपवादो भवेद् यदि ।।

---

१. अप्रस्तुत-प्रशंसा और अर्थान्तरन्यास आदि से निर्भर सूक्तियाँ चमकती हैं। यथा—

न स्वर्णकारस्य कृति-प्रभेदात् विज्ञातुमीशः खलु कुम्भकारः।
किमार्द्रकाणां वणिजो वहित्रैः तस्मान्निवर्तस्व नृपानुबन्धात् ।।
वात्या-चक्रेण महता पात्यन्ते पादपा भुवि।
पर्वतास्तु निराबाधा न स्तोकमपि कम्पिताः ।।

२. यदेव पश्यन्ति महाजनानां वृत्तं जनास्तत्र रतिं श्रयन्ते ।

३. कलङ्कसंशयक्षिप्तैः कटाक्षैर्जनसंसदि ।
बान्धवैरीक्ष्यमाणानां जीवनं मरणायते ॥

४. भस्म-प्रच्छादितो वह्निर्मोहादास्कन्दितो मया ।
ज्ञात्वा रज्जुरिति ध्वान्ते पदा स्पृष्टो भुजंगमः ॥

इस अन्तिम सूक्ति में उपमा द्वार से भी कृष्ण को सर्प कहना सदोष है ।

आरभटी

लोकरुचि की दृष्टि से आरभटी का उच्चकोटिक विन्यास इस व्यायोग में मिलता है। कृष्ण माया से अनिरुप बन जाते हैं। कृष्ण के कहने पर जब जाम्बवान् ने राम का स्मरण किया तो

नवीनपाथोधरलोलमूर्तिः कण्ठे दधानो वनपुष्पमाल्यम् ।
किरीटबानायुधशोभिदेहः स्मिताननः काञ्चनपीतवासाः ॥

पद्यात्मकता

कालीपद को कविता लिखने का चाव था। वे ययोचित स्थलों पर भी पद्य-बद्ध वर्णन करने में रुचि लेते हैं। यथा,

सत्राजितेनोपगतो रवेर्मणिर्भ्रात्रा प्रसेने निहितः स्यमन्तकः ।
सिंहेन हत्वा तमसौ वने हृतः निहत्य तं जाम्बवता च सोऽर्जितः ॥

०

अध्याय १०३

जीव न्यायतीर्थ का नाट्य-साहित्य

जीव के पिता उन्नीसवीं और बीसवीं शती के सुप्रसिद्ध संस्कृत-लेखक और कवि पंचानन तर्करत्न थे। जीव बंगाल में जिला चौबीस-परगने की भट्टपल्ली नगरी में २६ जनवरी १८९४ ई० में उत्पन्न हुए थे। भट्टपल्ली विद्वानों की खानि रही है। वहाँ उन्होंने बहुविध शिक्षा प्राप्त करके काशी में आकर महामहोपाध्याय राखालदास से न्यायदर्शन की सर्वोच्च शिक्षा पाई और न्यायतीर्थ बने। उन्होंने हाईस्कूल, बी० ए० आनर्स और एम० ए० आदि परीक्षाओं में संस्कृत विषय लेकर सर्वप्रथम सफलता पाई। फिर अनुसन्धान करते हुए १९२९ ई० में कलकत्ता-विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक नियुक्त हुए। वहाँ २९ वर्ष अध्यापन करके विश्रान्त होने पर भट्टपल्ली के संस्कृत कालेज में प्रिंसिपल हुए और प्रणवपारिजात तथा अर्थशास्त्र नामक पत्रिकाओं का सम्पादन किया। उनका धर्मशास्त्र-विषयक ज्ञान नितान्त गम्भीर है।

जीव कोरे नाटककार ही नहीं थे। वे विशुद्ध दृष्टि के आलोचक थे और उन्हें विश्वास था कि भारतीय नाट्यशास्त्रीय विधान या पौर्वात्य परम्परा से, सर्वथा बँधे रहना बीसवीं शती के लेखकों के लिए समीचीन नहीं है।[1] १९४८ ई० में हिन्दू कोड बिल-विमर्शिनी-सभा में भाग लेने के लिए वे पूना पधारे थे।

जीव ने बहुविध साहित्य की रचना करते हुए अमर भारती के साहित्य को सम्पूरित किया है। उनके पुरुषरमणीय नामक प्रहसन की प्रस्तावना में सूत्रधार ने उनके कर्तृत्व की वर्णना की हैं—सतत-प्रहसनचित्रकाव्यादि-निर्माणरतिना।

जीव की नाट्य रचनाओं में महाकवि कालिदास सर्वश्रेष्ठ है। इनके अनेक रूपक प्रहसनात्मक हैं। यथा, दरिद्रदुर्दैव, भट्टसंकट, पुरुष-रमणीय, विधि-विपर्यास, चौर-चातुरीय, चण्डताण्डव, क्षुतक्षेमीय, शतवार्षिक, चिपिटकचर्वण, स्वातन्त्र्य-सन्धिक्षण, राग-विराग, वनभोजन, विवाह-विडम्बन, नष्टहास्य, तैलमर्दन, रामनाम-दातव्य-चिकित्सालय आदि। इनमें से कतिपय रूपकों को किसी शास्त्रीय विधा में नहीं रखा जा सकता।

कवि का पुरुष-पुङ्गव भाण है, कैलासनाथ-विजय और गिरिसंवर्धन-व्यायोग

---

१. अपने अन्तिम प्रहसन दरिद्रदुर्दैव की भूमिका में उन्होंने कहा है—Most Prahasanas are, moreover, draped with a kind of drollery which *may possibly offend what is now known as modern* taste. Eroticism is an ill-conceived feature of these works... Only the ancient forms of these plays are to be revived minus their erotically comic flavour.

है, महाकवि कालिदास, कुमार-सम्भव, रघुवंश, साम्यतीर्थ, शंकराचार्य-वैभव विवेकानन्द-चरित, नागनिस्तार, तथा स्वाधीनभारतविजय आदि नाटक हैं।

जीव की उच्च कोटिक काव्य रचना का सम्मान केन्द्रीय शासन ने उन्हें राष्ट्रपति-पुरस्कार देकर किया है[1]। १९७५ ई० से सटीक महाभारत का सम्पादन करने में वे लगे हुए हैं। अब भी उनमें कार्य क्षमता और औदार्य सविशेष है।

महाकवि-कालिदास

महाकवि-कालिदास बीसवीं शती के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में अनुत्तम है।[2] इसका प्रथम अभिनय १९६२ ई० में उज्जैन में कालिदासोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसकी रचना कलकत्ते के राष्ट्रिय महाविद्यालय के अध्यक्ष गौरीनाथ शास्त्री की प्रेरणा से हुई। गौरीनाथ उज्जयिनी के अभिनय के प्रयोजक थे। इसके अभिनेता इसी महाविद्यालय के अध्यापक थे।

सूत्रधार ने इसकी प्रस्तावना स्वयं लिखी थी, जैसा प्रस्तावना के अधोलिखित वचन से प्रमाणित होता है—

श्री श्रीजीव-शर्मणा देवभाषयोपनिबध्य सद्यः प्रयोगायास्मभ्यमर्पितम्।

इसकी प्रस्तावना भी जीव के अन्य रूपकों की प्रस्तावना से पर्याप्त भिन्न है। इसमें नटी संस्कृत बोलती है और अन्य प्रस्तावनाओं में वह प्राकृत बोलती है। प्रायशः अन्य प्रस्तावनाओं में नटी के स्थान पर विदूषक है, जो प्राकृत बोलता है।

कथावस्तु

विद्यावती नामक दशपुर की राजकुमारी के स्वयंवरार्थी तीन राजकुमार समरेन्द्र, नरेन्द्र और मथुरेश को कूर्मनाथ (कालिदास) ऐसे मिल ही गये, जिनके बल पर उन्होंने समझ लिया कि काम बना—

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य भीष्मशौर्यं यथा हृतम्।
तथैनं मूढमासाद्य जेतव्यः प्रमदामदः॥

कालिदास 'शाखाग्रभागे तिष्ठन् शाखामूलं छेत्तुं व्यवसितः' थे। उनको राजकुमारों ने विवाह के लिए उत्सुक देखकर कहा कि आपको ये काम करने हैं—

(१) विवाह के पहले मौनावलम्बन।
(२) संकेत से ही विचार-प्रदर्शन।
(३) जब वह एक अंगुली दिखाये तो आप दो अंगुली दिखायें।

---

१. महाकवी राष्ट्रपतिप्रदत्ता पुरस्कृतिं प्राप्य यशोऽर्जयदः॥ इत्यादि नागविस्तार की प्रस्तावना से।

२. इसका प्रकाशन लेखक के द्वारा रूपक-चक्रम् नामक संग्रह में १९७२ ई० में हो चुका है।

(४) यदि वह दो अंगुली दिखाये तो आप एक अंगुली उठायें। उसके पश्चात् अंगुली को चक्कर करायें।

कालिदास को ऐसा करने का बहुशः अभ्यास करा दिया गया। इसके पश्चात् राजकुमारों ने पहचाने जाने के भय से ब्राह्मण-वेश-धारण कर लिया।

प्रथम अङ्क में राजसभा जुटी। नरेन्द्र, समरेन्द्र और मथुरेश कालिदास को लेकर उपस्थित हुए। विद्यावती आ गई। मौन शास्त्रार्थ या विचार-युद्ध होने वाला था। नियम बना—युद्ध के समय संकेत से जो विचार प्रकट किये जायेंगे, उन्हें संकेतज्ञ वाणी से घोषित करेंगे। विद्यावती का विचार उसके आचार्य सोमशर्मा ने वाणी द्वारा स्पष्ट किया। नरेन्द्र ने कालिदास-विचार-प्रकटन का भार लिया।

विद्यावती ने अंगूठी धारण की हुई तर्जनी दिखाई। सोमशर्मा ने उसके व्यंग्य का अभिधार्थ प्रकट किया—

अधिगगनमनेकास्तारकाः सन्ति दीप्ता, जगदपि परिपूर्णं वस्तुभिश्चित्र रूपैः।
विलसति सकलानां व्यापकः सर्गरक्षालयकृदखिलसारः कः पदार्थः स एकः॥

कालिदास ने तर्जनी और मध्यमा दो अँगुलियाँ दिखाईं। नरेन्द्र ने आशय बताया—

ब्रह्माण्डभाण्डशतकोटविकासलीलां शक्तः स ईश्वरकुलालवरो विधातुम्।
मायामदृष्टमुतवा प्रकृतिं सहायीकुर्वन् मुदा मृदमिव द्वितयं पदार्थम्॥

विद्यावती ने सिर हिला कर एक तर्जनी दिखाई। सोमशर्मा ने व्याख्या की—

यथोर्णनाभो रचयत्यनन्यापेक्षः स्वलालाभिरभीष्टजालम्।
तथैव देवो निजशक्तिमायाबलाद् विनिर्माति जगत्-प्रपंचम्॥

कालिदास ने दो अंगुलियों को चक्कर कराया। नरेन्द्र ने व्याख्या की—

रचयति न हि जालात् किंचिदन्यत् स कीटः
प्रणयति तव देवो विश्वरूपं विचित्रम्।
प्रभवति जगदेतच्चेत् ततः सत्यरूपात्
कथमिदमनृतं स्यादत्यभिन्ना न माया॥

कालिदास विजयी हुए। उनका विद्यावती से विवाह हो गया।

द्वितीयाङ्क के पूर्व विष्कम्भक में विवाह के बाद कालिदास की बालिशता का भेद कुछ-कुछ खुलने लगा। वे अपनी पत्नी के पास पहुँचे तो उसने उनकी परीक्षा ली। पत्नी के प्रश्न के उत्तर में वे ऊपर देखने लगे। फिर तो एक पहेली के उत्तर में उट्र (उष्ट्र) कहा। तब तो पत्नी रोकर कहने लगी—

हा दुर्दैवम्। धिग्धिङ् मे विद्याविभवम्। यदहं विद्याहीनस्य हस्तयोः पतितास्मि।

उसने फिर कहा—

अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष उत्तरञ्चेत् प्रदीयताम् ।

उत्तर नहीं देते तो इस घर में आपका कोई स्थान नहीं। कालिदास ने कहा कि ऐसे जीवन से मरना ही अच्छा। वह घर से भाग गया। उसका अन्तिम वाक्य था—

किं विद्यया या पतिभक्तिं न ददाति ।

तृतीयाङ्क में नर्मदातट पर श्मशान-घटनास्थली वन के पास है। कालिदास वहीं वन में बैठे हैं। उनकी तीन वर्ष की श्मशान-साधना काली के प्रीत्यर्थ पूरी हो चुकी है। उनकी अन्तिम स्तुति की समाप्ति पर काली प्रकट हुईं। काली ने कहा—वर माँगो। कालिदास ने कहा—

देहि मे विद्याम्, शुभां विद्याम् ।

काली ने कहा—तथास्तु। वाग्विभूतिमान् भव, विश्वविजयी भव। हिमाचल इव सुरसरस्वतीरसमाधुरीप्रभवो भव।

उसी समय उनको ढूँढती हुई विद्यावती कञ्चुकी के साथ आई। कालिदास का अन्तिम वाक्य उसे बींधने लगा था कि वह कैसी विद्या, जिससे पतिभक्ति नहीं मिलती। वह उन्हें ढूंढने लगी। उसे पावन पर्व में नर्मदा में स्नान करना था। उसकी सखी उसे सीधे पथ से नहीं ले जा रही थी, क्योंकि उधर श्मशान में कोई मुर्दा सा पड़ा था। तभी वह उठकर नदी की ओर चल पड़ा। उसे जपसमाप्ति का अभिषेक उसी समय करना था, पर एक स्त्री को स्नान करने के लिए उद्यत देख कर रुक गया। इसी क्षण उन्हें पत्नी का प्रश्न स्मरण हो आया—'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः'। आज यदि वह कहीं मिले तो इस प्रश्न के प्रत्येक पद से आरम्भ होने वाले अपना काव्य उसे सुना दूँ।

विद्यावती ने कालिदास की एकोक्ति सुनी तो उसे ऐसा लगा कि मैं अपने पति के निकट हूँ। वह अचेत हो गई। कालिदास को कंचुकी ने सहायता के लिए बुला लिया। नाड़ी-परीक्षा करते हुए कालिदास ने देखा कि उसकी अंगुली में वही अगूठी है, जो विवाह के समय में उसकी वधू के हाथ में थी। उन्होंने अपनी विद्यावती को पहचान लिया। सचेत होने पर विद्यावती ने भी उन्हें प्रियतम रूप में पहचाना। कालिदास ने कहा कि अभिषेक के पश्चात् अभी लौट कर मिलता हूँ।

नदी-तट पर जाने के मार्ग में कालिदास को विक्रमादित्य के शिविका-वाहक ने पकड़ा, क्योंकि एक वाहक रोगग्रस्त हो गया था। कालिदास ने अपना यज्ञोपवीत दिखलाया कि ब्राह्मण हूँ। मुझे छोड़ो। उसने कहा कि काम के समय बहुत से ढोंगी ब्राह्मण बन जाते हैं। कालिदास को जाना पड़ा।

चतुर्थ अंक के पहले के विष्कम्भक के अनुसार कालिदास उज्जयिनी में राजा के द्वारा सम्मानित होकर रहने लगते हैं। उनकी परिचारिका मालिनी देखती

है कि उन्हें अपनी प्रेयसी विद्यावती के लिए घोर उत्कण्ठा है। कालिदास एक दिन गाते हैं—

'विरहमिलनमध्ये विप्रयोगो हि योगः' इत्यादि।

चतुर्थ अङ्क में विक्रमादित्य अपने मन्त्रियों के साथ हैं। वे बताते हैं कि कैसे बावति कहने पर कालिदास ने मुझे शुद्ध किया। मैंने कालिदास की कविताएँ सुनीं और उन्हें अपनी सभा में बुलाया है। वररुचि को यह सुनकर स्मरण हो आया कि इस कवि ने मुझे कुमारसम्भव महाकाव्य दिखलाया है। उन्होंने महाराज से निवेदन किया कि आज समस्यापूर्ति से राजसभा का मनोविनोद हो। समस्या है—

न हि सुखं दुःखैर्विना लभ्यते।

कालिदास ने अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक रसमय पद्य सुनाया—

श्लाघ्यं नीरसकाष्ठताडनशतं श्लाघ्यः प्रचण्डातपः
श्लाघ्यं पङ्कविलेपनं पुनरिह श्लाघ्योऽतिदाहोऽनलैः।
यत्कान्ताकुचकुम्भ-बाहुलतिकाहिल्लोललीला-सुखं
लब्धं कुम्भवर त्वया न हि सुखं दुःखैर्विना लभ्यते॥

विक्रमादित्य ने यह सुनकर कहा—

धन्यतमोऽसि कालिदास। अनवद्या ते रचनाशक्तिः।

तब तो कालिदास ने अपनी सभी रचनाओं का परिचय दिया और अभिज्ञान-शाकुन्तल के पंचम अंक का अभिनय प्रस्तुत कराया। महाराज को प्रसन्न देखकर कालिदास ने उनसे कहा कि आपही के कारण मैं पत्नी का समागम न प्राप्त कर सका। आप मेरे कष्ट को दूर करें। तब तो कालिदास के श्वशुर बुलाये गये। उन्होंने बताया कि पति की खोज में मेरी कन्या विद्यावती किसी तीर्थ में रहती है। उसे मैं बहुत दिनों से ढुँढ़वा रहा हूँ। कालिदास ने कहा कि मैं सारे भारत को मथकर अपनी पत्नी-रत्न को पाने चला। विक्रमादित्य ने कहा—

गृहीतपुरस्कारः परिव्रज भारतं पुनरागमनाय।

कालिदास के जाने के बाद कोई राक्षसी वहाँ एक समस्या ले कर आई—

इहैवास्ति ततो नास्ति ततोऽस्ति नेह वर्तते।
इहास्ति च ततोप्यस्ति नास्तीहापि ततोऽपि न॥

इसका अर्थ बतायें।

वररुचि और अमरसिंह ने कहा कि तुरन्त इसका समाधान सम्भव नहीं है। राक्षसी ने कहा कि कालिदास ही इसका उत्तर दे सकते हैं। यदि कुछ मासों में इसका उत्तर न मिला तो एक-एक कर के सभी नगरवासियों को खा जाऊँगी। विक्रम को निर्णय लेना पड़ा कि कुछ दिनों तक कालिदास के लौटने की प्रतीक्षा करके मैं भी उन्हें ढूंढ़ने चल दूंगा। मुझे राक्षसी से नगर को बचाना है।

पंचम अङ्क में हिमालय पर कोई वनचरी एक दिन निराश विद्यावती से मिलती है। वह अपने स्वामी वलाहक से उसके विषय में बताती है। वलाहक वर्णन सुन कर समझ जाता है कि यही विद्यावती मेरे स्वामी दशपुर-राज की कन्या है, जिसे ढूँढने के लिए मैं नियुक्त हूँ। उसके कहने पर वनचरी ने विद्यावती को अपने कुटीर में रखकर स्वागत-सत्कार किया। वहीं कालिदास विद्यावती को ढूँढते हुए आ पहुँचे। वहाँ उन्हें नेपथ्य से गीत सुनाई पड़ा—

एष एमि ननु यामि न दूरं रचयन्निति वचनामृतपूरम्।
शशधर इव घनजलधरलीनः कथमसि सहसा दर्शनहीनः।
प्रियतम सन्निधिमुपनय मधुरम्।
जीवन-यौवन-सर्वमनोरथ—
नाथ कदा पुनरेपि नयनपथमुज्जीवय मम हृदयं विधुरम्॥

कालिदास ने समझ लिया कि यह मेरी प्रणयिनी के विषय में गीत है। वे मूर्छित हो गये। वलाहक वहाँ सहायता करने आ पहुँचा। उसने कालिदास को आत्मपरिचय दिया कि मैं आपका मानस-विहारी यक्ष हूँ। वियोगी कालिदास ने पूछा—मेरी प्रियतमा कहाँ है? वलाहक ने कहा कि अभी जो विरह गीत आपने सुना है, वह आपकी प्रियतमा का हृदयोद्‌गार है। तभी वहाँ राजा विक्रमादित्य और कंचुकी भी आ पहुँचे। विक्रम ने कवि को गले लगा लिया। कालिदास को राक्षसी से नगर-नाश की बात बताई गई। उन्होंने राक्षसी की समस्यापूर्ति की—

राजपुत्र चिरं जीव मा जीव मुनि-पुत्रक।
जीव म्रियस्व वा साधो व्याध मा जीव मा मृथाः॥

विद्यावती और उसके पिता भी वहीं बुला लिये गये। वहीं विक्रमादित्य की आज्ञानुसार कालिदास ने वरवधू का हाथ मिलवाया। वहीं बन्दी बनाकर कालिदास की परिचारिका मालती लाई गई। उसके ऊपर आरोप था कि वह मिथ्या राक्षसी वन कर नगरवासियों को डराती थी। विक्रम ने उसकी प्रशंसा की—तुम्हारे ऐसा कपट-नाटक करने से हम सब लोगों को कालिदास को ढूँढ निकालने की जल्दी पड़ी। मालती ने अपना विमर्श प्रस्तुत किया।

दुग्धं यथा तप्तकटाहसिद्धं गाढं भवेत् कालविलम्बयोगात्।
तथैव विच्छेदकृशानुपक्वं प्रेमप्रकर्षो भजते सुखाय॥

नाट्यशिल्प

विष्कम्भक में कथानायक-कालिदास को ही एक पात्र बना दिया गया है। अर्थोपक्षेपक में मध्यम और अधम कोटि के ही पात्र होने चाहिए थे। प्रथम अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक में केवल सूचनायें ही नहीं हैं, अपितु दृश्य भी हैं—यथा कालिदास का प्रशिक्षण- और उनके द्वारा अंगुलिचालन का नाट्य करना। चतुर्थ अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक में भी कालिदास नायक होते हुए पात्र हैं। यह अभारतीय है।

प्रथम अङ्क का आरम्भ सुदास नामक भृत्य की एकोक्ति से होता है; जिसमें वह भूतकालीन और भावी कार्यक्रमों के सम्बन्ध में सूचनायें देता है।

तृतीयाङ्क का आरम्भ कालिदास की एकोक्ति से होता है। वे अपनी साधना की कथा विवृत करते हैं। वे कहते हैं—मन्त्रं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्। गुरु के आदेश से नदीतटीय श्मशान पर तीन वर्ष साधना करता रहा हूँ। आज तीन कोटि जप समाप्त हुआ। वह जगन्माता की स्तुति करता है—

चलत्कपालकुण्डलां भजे नृमुण्डमण्डनाम्।
प्रकाण्डविघ्नदानवप्रचण्डकर्म-खण्डनाम् ॥[1] इत्यादि

आज माता ने दर्शन नहीं दिये तो नर्मदा के जल में कूदता हूँ। फिर काली प्रकट होती हैं।

इसी अंक के बीच रंगपीठ के एक ओर पड़े कालिदास की एकोक्ति पुनः है, जिसमें उसके अपनी पत्नी के द्वारा तिरस्कृत होने और उसकी वाणी—'अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः' की स्मृति प्रकट की गई है। इस समय रंगपीठ पर उनके लिए अदृष्ट विद्यावती भी थी।

पंचम अंक का आरम्भ रंगपीठ पर एकाकी वनचरी की एकोक्ति से होता है। उसके रंगपीठ पर रहते ही उसे न देखती हुई विद्यावती की एकोक्ति है, जिसमें वह अपनी दुःखभरी करुण कथा सुनाती है। इसी अंक में आगे वलाहक के रंगपीठ पर रहते कालिदास की आपबीती करुण कथात्मक एकोक्ति है। उसके जाने पर वलाहक की एकोक्ति है।

जीव ने अङ्कावतार से कुछ-कुछ मिलता-जुलता अंकांशावतार तृतीय अङ्क के पश्चात् रखा है। इसके पश्चात् विष्कम्भक आता है और उसके बाद चतुर्थ अंक है। अंकांशावतार अभारतीय पारिभाषिक शब्द है। जीव ने इसमें कालिदास की एकोक्ति आरम्भ में रखी है।

कान्ता कराम्बुरुहचुम्बित-पादयुग्मं स्पर्शोत्थ-हर्षवशमोहमुपागतोऽपि।
देवी प्रसादवर-लब्धबलादुदंचन्नाकृष्य मद्दयितया हृतचित्तमेमि ॥

अंकांशावतार होता क्या है? गत अंक में इसके आरम्भ की सूचना होती है। कथा की एक विच्छिन्न धारा यहाँ से आरम्भ होती है। इसे लघु अंक कहा जा

१. अर्थोपक्षेपक में नियमानुसार पहले की हुई या भावी घटनाओं की सूचना मात्र होनी चाहिए। उपर्युक्त दोनों विष्कम्भकों में ऐसा नहीं है। चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में कालिदास मूर्च्छित होते हैं। अङ्कभाग में भी सूचनायें परिप्लुत हैं। यथा, चतुर्थ अंक में स्वयं विक्रमादित्य शिविकावहन के समय कालिदास की प्रतिभा से प्रभावित होकर सूचना देते हैं। यह सूचना-दान दो पृष्ठों तक चलता है।

सकता है। यह दृश्य होता है—सूच्य नहीं। अंक में जो कथा नहीं कही जाती, उसकी आवश्यकता देखकर अंकांशावतार में देते हैं।

गर्भाङ्क का एक नया रूप इस नाटक में मिलता है। चतुर्थ अङ्क में रंगमंच पर अभिज्ञान-शाकुन्तल के पंचम अंक का दृश्य समाविष्ट है।

जीव ने अङ्क में नये-नये दृश्य उपस्थित करने के लिए पटी-परिवर्तन की विधि अपनाई है। चतुर्थ अङ्क में उपर्युक्त शकुन्तलाङ्क के पहले पटीक्षेप होता है और इसके अन्त में पटीपरिवर्तन होता है।

महाकवि-कालिदास में छायातत्त्व प्रचुर मात्रा में है। मालती का राक्षसी बनना इसका अनूठा उदाहरण है। कालिदास को नरेन्द्रादि ने पण्डित का रूप धारण कराकर उसे अवाक् शास्त्रार्थ में विजयी बनाया—यह सूक्ष्म छाया-तत्त्वाधान है।

कवि ने पंचम अंक में हिमालय को नाट्यस्थली बनाकर इस नाटक का औदात्त्य विशेष बढ़ा दिया है।

गीत राशि से कालिदास-नाटक सुवासित है। कतिपय गान वैतालिक नेपथ्य से गाते हैं। यथा प्रथमांक में—

एहि सुजनगण वाणीपूजनपुण्यदिवस इह तीर्थे।
सद इदमतिथे सदयमलंकुरु विद्याविलसितकीर्ते॥ इत्यादि

चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में वैतालिक का गान है—

'जय जय विक्रम-सूर
निजबलविक्रम-दमितरिपुक्रम विश्वजयक्षम शूर' इत्यादि।

चतुर्थ अङ्क में सूत्रधार ने रम्य गायन किया है—

आविर्भव भवरङ्गनटेश दनुजमनुज-सुर-पूज्य-विशेष।
त्वमसि जलानल-गगनधरातल-रविशशितपनमखेशः॥
अष्टमूर्तिधर-सृष्टचराचर-दृष्टदिगम्बरवेशः।
नट नट डिण्डिम नाद विशंकट-डमरुपाणिरनिमेषः।
उच्चलदुज्ज्वलभालसिन्धु-जल-पावित-भारतदेशः॥

पंचम अङ्क के आरम्भ में वनचरी प्राकृत में गाती है, जिसकी संस्कृत छाया है—

नम, नम, नम गिरिराजम्, सुरनन्दन-शिवसुन्दरसितकायम्।
देवदारु-नवश्यामलपल्लव-शोभितनिविडनितम्बम्।
अंगविराजितमंजुल-कूजित-मुखरित-विहगकदम्बम्।
देवविलास-निकायम्।

वह रंगपीठ पर इस गीत का नृत्याभिनय भी करती है।

आगे इस अंक में नेपथ्य से विद्यावती का विरह-गीत है।

संस्कृत के कवियों में युगाभिरुचि का यथोचित ध्यान नहीं दिखाई पड़ता।

जीव यद्यपि एक सुलझे हुए कवि हैं और देश-कालोपयोगी रचना में निष्णात हैं, किन्तु उनकी कविता भी रमणियों का कुचकलशभार ढो रही है, क्योंकि वैदिक कवियों से लेकर अद्यतन सभी संस्कृत-कवियों को इससे अजीर्णता या अरुचि न हुई। भला बीसवीं शती में अन्य भाषा का कोई सुसंस्कृत कवि ऐसा पद्य लिखेगा, जो कुच-कलश भार से बोझिल हो। इनका पद्य है चतुर्थ अङ्क में—

पुरो वा पश्चाद्वा क्वचिदपि वसामः क्षितिपते।
ततः का नो हानिर्वचनरचनाक्रीत-जगताम्।
अगारे कान्तारे कुचकलशभारे मृगदृशां
मणेस्तुल्यं मूल्यं भवति सुभगस्य द्युतिमतः॥

इसी अङ्क में आगे पुनः है—

यत् कान्ता-कुचकुम्भवाहुलतिका-हिल्लोल-लीलासुखम्।

शङ्कराचार्य-वैभव

शङ्कराचार्य-वैभव नाटक का प्रथम अभिनय १९६८ ई० में वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय के उपकुलपति गौरीनाथ शास्त्री के आदेशानुसार वाराणसी में सरस्वती-महोत्सव के अवसर पर समवेत विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था।[1]

कथावस्तु

त्रिचूड ग्राम में शिवगुरु नामक ब्राह्मण शिवमन्दिर में पुत्र कामना से शिव की स्तुति करता है। वहाँ शिवदम्पती ने उन पर दया की और कहा—

अहमेव स्वयं युवयोः पुत्रत्वमंगीकृत्य जगन्मंगलं विधास्यामि।

देवताओं ने शिव से कहा कि बुद्ध के प्रभाव से यज्ञादि संस्थायें विलुप्त हो गई हैं। शिव ने कहा कि विष्णु ही बुद्धावतार हैं। अब वेदकार्य के पुनः प्रवर्तन के लिए मैं कालदी ग्राम में शंकर-रूप में अवतरित होऊँगा। कार्तिकेय का अवतार कुमारिल-रूप में हो चुका है। वे वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे। इन्द्र को सुधन्वा राजा के रूप में अवतार लेने के लिए शिव ने आदेश दिया।

द्वितीय अङ्क में राजा सुधन्वा की राजसभा में बौद्धाचार्य और कुमारिल के विवाद का प्रस्ताव है। बौद्धाचार्य ने कहा कि कुमारिल अपनी सिद्धि दिखायें। वे पर्वत-शृंग से भूमि पर गिरें और शरीर अक्षत रहे तो उनके पक्ष को सारवान् समझा जाय। कुमारिल तैयार हो गये—

यन्नामग्रहणेन दैत्यतनयः प्रह्लाद आह्लादितोऽ
गाधे सिन्धुजले निपातितनुर्ग्रावार्दितो रक्षितः।
दृष्टः सोऽचलतुङ्ग-शृंगनिलयाद् भूमौ पतन्नक्षतः
सोऽयं श्रीहरिरद्य मामकपरीक्षाग्नौ भवेत्तारकः॥

---

१. इस नाटक के प्रथम और द्वितीय अङ्क के अंश का प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद् पत्रिका ५१ तम वर्ष में हुआ है।

इस नाटक में शिव शङ्कराचार्य के रूप मे अवतार लेकर वेदान्त के ज्ञानकाण्ड का उपदेश करते है। वैदिक धर्म का प्रचार करने वाले कुमारिल और कर्मकाण्ड का उपदेश करने वाले पतञ्जलि, वरुण और सुधन्वा के रूप मे सात्त्विक बौद्धधर्म के संरक्षक हैं।

नाट्यशिल्प

प्रस्तावना मे नटी नही रहती। उसके स्थान पर विदूषक उसका काम करता है। वह नटी की भाँति रंग को रसनिमग्न करने के उद्देश्य से गीत गाता है। इस नाटक मे गीत है—

जय देव दिगम्बर शुभ्रकलेवर भूधरपीवर देहि दयाम्।
एहि ममान्तरभभ्रमन्त्रधर चिन्मय भास्वर तारय माम्॥
रम्य-जलोच्चल-मौलितटाञ्चल-लम्बजटाधर देहि दयाम्।
भालसुधाकर कालभयंकर भैरवशंकर तारय माम्॥
कान्तसदाशिव शान्तनमोनिभ दान्त-समाहित देहि दयाम्।
भस्मविकस्वर-रूपमहेश्वर शाश्वतसुन्दर तारय माम्॥

विदूषकादि कतिपय पात्र संस्कृत ही बोलते हैं, जिन्हें प्राकृत बोलना चाहिए।

कुमारसम्भव

कुमारसम्भव नामक नाटक का अभिनय उज्जयिनी में कालिदास-उत्सव के अवसर हुआ था।[1] यादवपुर-विश्वविद्यालय के संस्कृतविभागाध्यक्ष रमारंजन मुखोपाध्याय के आदेश से इसकी रचना और प्रयोग हुआ था। सूत्रधार के शब्दो में इसमें कुमारसंभव महाकाव्य को दृश्य रूप दिया गया है। इसके पूर्व श्रीजीव द्वारा प्रणीत महाकवि कालिदास और रघुवंश का प्रयोग इसी उत्सव के उपलक्ष्य मे हो चुका था। संभवतः स्वयं गौरीनाथ इसका आयोजन कराते थे। महाकाव्यो के आधारपर बने हुए नाटकों को प्रस्तावना मे रूपकायित नाम दिया गया है।

कथावस्तु

पार्वती के उपाध्याय ने माता-पिता के पूछने पर उसकी कररेखा देखकर बताया कि रूपानुरूप सौभाग्य नही मिलेगा। यथा,

हुम् हुम् नाना सुखं दुःखं क्लेशोऽशेषः शुभाशुभम्।
रेखाभिर्बहु शाखाभिः सूच्यते किंचिदप्रियम्॥

थोड़ी देर मे नारद आये और पार्वती की सौभाग्य-वर्णना की—

सौभाग्य-योगाद् दुहिता तवेयं प्रेम्णा शरीरार्धहरा हरस्य।
नूनं भवित्री भवपूर्वजाया सती सती योगविसृष्टकाया॥

और कहा कि सेवा से शिव वश मे आयेंगे।

---

१. इसका प्रकाशन प्रणवपारिजात में ८. १–४ में हुआ है।

पार्वती को स्मरण हो आया कि शिव पूर्वजन्म में मेरे पति थे। उन्हें इस जीवन में पुनः पाना है। माता के न चाहने पर भी पार्वती तप करने चलती बनीं।

इन्द्र को तारकासुर का भय परित्रस्त कर रहा था। उसे ज्ञात हुआ कि तारक-संहारक शिवका पुत्र होगा और पार्वती उसकी माता होगी, जो महादेव के प्रणय-प्रसाद के लिए उनके पास तपस्या कर रही हैं। काम शीघ्र बनाने के लिए मदन को बुलाया गया और काम बताया गया। तब वसन्त को साथ लेकर शिव की तपोभूमि में वह सपत्नीक पहुँचा।

द्वार पर नन्दी था। वह सार्वत्रिक अनुशासन की प्रतिष्ठा कर रहा था। उससे डरकर काम प्रान्तमार्ग से समाधि-मग्न शिव की ओर पहुँचा और तीर को तैयार किया। उसे पार्वती आती दिखाई पड़ी। उसके पास पहुँचने भर की देर थी कि काम ने रति के रोकने पर भी अपना काम तमाम किया। अर्थात् उसके बाण चलाते ही शिव की नेत्राग्नि से जलना पड़ा।

चतुर्थ अंक में रतिविलाप एकोक्ति के रूप में है। उसकी सहचरी और और वसन्त उसे समाश्वस्त करते हैं। अन्त में देवेन्द्र, वायु और वरुण के कहने पर उसने अपना अग्निदाह नहीं किया, क्योंकि उसे विश्वास हो चला कि पुनः काम शीघ्र मिलेंगे।

पंचम अंक में पार्वती तप करने लगी। वह अग्नि में होम करती थी, जो रुद्र के प्रीत्यर्थ था। पंचाग्नि तप था। एक दिन जटिल ब्रह्मचारी आया। गौरी ने उसे अर्घ प्रदान किया और मधुपर्क समर्पण किया। उसने पार्वती के तप की व्यर्थता-विषयक भाषण देकर शिव की वरणीयता पर कुठाराघात किया। पार्वती ने कहा कि इस चंचल अशिष्ट वटु की बात सुनना ठीक नहीं। वह ज्यों ही जाने लगी कि शिव ने अपने को प्रत्यक्ष कर दिया। वे बोले—

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः।

सभी देवता आये। वसन्त और मदन उपस्थित हुए। हिमालय ने पाणिग्रहण करा दिया। सब ने मंगल-ध्वनि की। स्कन्द के उद्भव की सम्भावना हुई।

नाटक की कथा कुमारसंभव के प्रायशः शत-प्रतिशत अनुरूप है। सारी बातें अतिसंक्षेप में कही गई हैं। महाकाव्योचित वर्णना अत्यल्प है। कथा का नाट्य रूप विशेष लघु है।

शिल्प

तृतीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में अर्थोपक्षेपण का अभाव है। इसमें वसन्त-वर्णन मात्र है। पंचम अंक के पूर्व का विष्कम्भक तो एक लघु अंक या दृश्य के रूप में है, जिसमें पार्वती, उसकी माता और पिता उससे कहते हैं कि शिव के लिए तप क्यों करना है? जीव का विष्कम्भक प्राचीन परिभाषा की परिधि में नहीं आता। इसमें कार्य होता है और सूचना नहीं दी जाती। यह वर्तमान काल में है।

इस नाटक के पचम अक मे शिव का बहुरूप धारण करना छायातत्त्वानुसारी है।

शैली

कवि की शब्दावली अनेक स्थलो पर विशेष रूप से भावानुबन्धी है। यथा, उपाध्याय का विदूषक के विषय मे कहना—

त्वं शफरोपम फरफरायसे। इसमें क्रिया का प्रयोग ध्वन्यनुसारी है।

कवि हास्य-सर्जन मे निपुण है। उसका विदूषक अश्रुसागर मे डूब मरने के लिए उद्यत है। उपध्याय से उसकी नोक-झोक चलती है। नन्दी ने नाचने वाले भूत का कान ऐंठा और चपत लगाया। वह रगमच से रोते हुए भागता है। यह सब हास्य के लिए है।

नाटपरम्परा

किरतनिया नाट की स्तुति-परम्परा इस नाटक मे आदि, मध्य और अन्त मे अनुबद्ध है। नारद रगपीठ पर गाते है—

जय जगदीश्वर विश्वचराचर दृश्यविचित्रविकासः।
त्वमसि भक्तजन-मानसरजन-मजुलरूप-विलासः॥ इत्यादि.

अन्त मे नेपथ्य से गान होता है—

जय जय नाथ पुरारे कुटिल जटाकलिताम्बरधारे। इत्यादि.

नाट्य गीतो से भी सवलित है। रति और काम वसन्त-गान करते हैं—

स्वागतमिह ऋतुराज भ्रमरविलासी कुसुमविकासी
कानन सदसि विराज। इत्यादि.

पति के मरने पर भी रति का विलाप गीतात्मक है। यथा,

हा हा प्रियतम! किमपि विचेतन आशु शमय खेदम्। इत्यादि

पंचम अंक मे सखियो का गायन है—

जयशुभ्रकलेवर देव दिगम्बर भूधर पीवर देहि दयाम्। इत्यादि.

रघुवंश

रघुवश नाटक का अभिनय उज्जयिनी मे कालिदास-समारोह मे आये हुए विद्वानो के प्रीत्यर्थ हुआ था[1]। कलकत्ते के राष्ट्रिय महाविद्यालय के अध्यक्ष के निर्देशानुसार अभिनय का आयोजन हुआ था। इसमे रघुवश को नाटकायित किया गया है।

कथावस्तु

दिलीप का अश्वमेध यज्ञ हो रहा है। यज्ञिय अश्व अदृश्य हो गया। ध्यान लगाकर वसिष्ठ ने बताया कि इन्द्र ही अश्वापहारी है। रघु को अश्व लौटाने के लिए भेजा गया। रघु ने इन्द्र का पीछा करके उसे पकडा। इन्द्र ने रघु के

१. इसका प्रकाशन प्रणव-पारिजात मे ५. ५—८ मे हुआ है।

युद्धकौशल से प्रसन्न होकर उसे अभीष्ट वर दिया कि दिलीप को यज्ञ का पूरा फल मिले।

द्वितीय अंक में रघु दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हैं। तृतीय अंक के पूर्व विष्कंभक में दिग्विजय का वर्णन और विश्वजित् की चर्चा है। तृतीय अंक में कौत्स का प्रकरण है। रघु ने मृण्मय पात्र में अर्घ रखकर स्नातक कौत्स का स्वागत किया। राजकोष में स्वर्ण-वृष्टि से जो धन आया, वह सर्वस्व रघु स्नातक को देना चाहता था। स्नातक आवश्यक दक्षिणा से अधिक कानी कौड़ी नहीं लेना चाहता था। वसिष्ठ ने इस अवसर पर धन्यवाद दिया—

धन्यो दाता ग्रहीता च निर्लोभावुभयावपि।
चिरं द्वावेव वर्धेतां राष्ट्रकल्याणकारिणौ॥

वसिष्ठ ने रघु के पूछने पर बताया कि आपके वंश में स्वयं भगवान् विष्णु अवतार लेंगे। वे आपके प्रपौत्र बनेंगे।

चतुर्थ अङ्क में कंचुकी ने बताया है कि स्वयंवर में अज और इन्दुमती का विवाह हुआ है। वे अयोध्या की ओर लौट रहे थे। मार्ग में प्रत्यर्थियों ने संग्राम ठान दिया। शत्रु परास्त हुए। अज अयोध्या आये। वहाँ उनके अभिषेक की सज्जा होने लगी। विवाह के कुछ दिन बाद अज को दशरथ पुत्र हुए और इन्दुमती की आकस्मिक मृत्यु हो गई।

पंचम अङ्क में दशरथ मृगया करने जाते हैं। उनकी तीन पत्नियों से कोई पुत्र नहीं था। मृगया का सोल्लास वर्णन दशरथ के शब्दों में है। भूल से हाथी के स्थान पर मुनिकुमार को उनका शब्दवेधी बाण लगा। दशरथ उसके पास पहुँचे। वह मर गया। उसका अन्धा पिता और माता वहाँ आये और पिता ने दशरथ को शाप दिया—

बुढ़ापे में पुत्र शोक से तुम भी मरो। माता-पिता पुत्र की चिताग्नि में जल मरे।

आगे इसी प्रकार कथा रघुवंशानुसार प्रवर्तित है।

शिल्प

इस नाटक में चतुर्थ अङ्क समाप्त होने पर फिर से चतुर्थ-अङ्क-अंकांशावतार मिलता है। इसमें अकथित कथांश के आगे की कथा है कि कैसे इन्दुमती मर गई तो राजा अज मूर्छित हुए और तभी उसका शव हटाया जा सका। वे दशरथ का मुख देखते हुए जीवित रह सके।

नाटक में स्थान-स्थान पर गीतों का समावेश किया गया है। प्रथम अङ्क के अन्तिम भाग में वन्दिद्वय गाते हैं—

जयति दिलीपो रविकुलदीपः शोभन-सवन-विधायी। इत्यादि

द्वितीय अंक में नेपथ्य संगीत हैं—

जयति जगति रघुराजः। इत्यादि

वीर व्रजतु वज्रसमगर्जनवीर। इत्यादि

चतुर्थ अंक में नेपथ्य-गान है—

जय जय नृपवर, किन्नरशुभकर, सुरनरतर्पणकारिन् । इत्यादि नाट्य-परम्परा की अवहेलना करके छठे अक के पूर्व विष्कम्भक मे नारायण की स्तुति है ।[1]

महाकाव्यों को रूपकायित करने मे कवि को विशेष सफलता नही मिली है। महाकाव्य की अनेक बातो को छोड देने पर नाटकीय कथावस्तु अच्छी बनती। दुःखभरी कहानी रुलाने के लिए श्रीजीव ने व्यर्थ की बातें छोड़ी नहीं है। यथा श्रवण के माता-पिता का उसकी चिताग्नि मे जल मरना।[2]

यज्ञ के पश्चात् रामादि का जन्म हुआ। सीता से विवाह हुआ और शिवधनुर्भङ्ग से परशुराम को रोष हुआ, जिसे राम ने शान्त किया।

नाग-निस्तार

पाँच अङ्को के इस नाटक मे श्रीजीव ने महाभारत के प्रसिद्ध जनमेजय नामक आख्यान को नाटकीय रूप दिया है। इसका अभिनय प्रणव-पारिजात के संस्थापक ओङ्कारनाथ देव के आदेश से हुआ था। उस समय कर्मचारियो की हड़ताल चल रही था।

कथावस्तु

राजा परीक्षित् मृगया करते हुए प्यास लगने पर शमीक ऋषि के आश्रम मे उनके समाधिस्थ होने पर पहुँचे। समाधिस्थ मुनि को उनकी बात न सुनाई दी और उन्होंने उनके गले मे एक मरा साँप पहना दिया। शमीक के पुत्र शृङ्गी ने यह सुना तो राजा को शाप दे डाला कि सप्ताह भर के भीतर वह तक्षक सर्प से दष्ट होकर मर जायेगा। शृंगी ने पिता के पास पहुँच कर उन्हें ध्यान-विरत किया और शाप की बात कही तो शमीक ने कहा कि तप की हानि करने वाले अमर्ष से बचना चाहिए। पिता ने कहा कि शाप लौटाओ। शृंगी ने कहा—

कदापि मिथ्या न वदामि तात न नर्मतोऽपि स्थिरधीस्तपःसु ।
आचार्यदेवः पितृदेव एष सब्रह्मचर्योऽस्मि वृथा न भाषे ॥

शमीक ने शिष्य से परीक्षित् को शाप का संवाद भिजवा दिया।

द्वितीय अङ्क में राजा के व्याकुल होने पर भावी विपत्ति का निवारण करने के लिए मन्त्री ने कहा कि उच्च स्तम्भ पर लौह-पुटित निश्छिद्र गृह में आपको रख दिया जाय। फिर न सर्पभय, न शापभय। किसी को आपसे मिलने न दिया जाय। राजा ने कहा कि मैं बचाया नही जा सकता, क्योंकि—कृतकर्मफलं दैवं वायुवत् तदग्रे धावति पुरुषकारस्तु तृणवतमनुसरति।

---

१. श्री जीव विष्कम्भक को लघु अंक या दृश्य समझते हैं। इस विष्कम्भक मे नारायण और लक्ष्मी पात्र हैं और वे आत्मकथा बनाते हैं। उनका भावी कार्य-क्रम है। अर्थोपक्षेपक मे कही ऐसा थोड़े ही होना चाहिए।

२. पंचम अङ्क मे।

सातवें दिन सन्ध्या के समय आशीर्वाद देने के लिए एक ब्राह्मण आया। राजा की विशेषाज्ञा से उसे प्रवेश मिला। उसने राजा के समीप जाकर कहा—

स्वस्त्यस्तु ते धर्मपरायणा सद्ब्राह्मणस्य स्थितिपालकाय।
गृहाण पात्रं सफलं सपुष्पं मनोरथस्ते परिपूर्तिमेतु॥

राजा को शोक था कि ब्राह्मण का शाप दिनान्तर निकट होने पर भी पूरा नहीं हो रहा था। ब्राह्मण ने कहा कि यह पुष्प-करण्डक आपको सफल करे। राजा ने करण्डक को माथे लगाया। उससे साँप निकला और उसने परीक्षित् को काटा। वह बचाया न जा सका।

तृतीय अंक में जरत्कारु का नागकन्या जरत्कारु से विवाह होता है। उससे ब्रह्मा की मानसी कन्या का पुत्र नागवंश की रक्षा करने वाला उत्पन्न होगा—यह वरदान मिल चुका था। चतुर्थ अङ्क में जरत्कारु पत्नी की गोद में सिर रखकर सोये थे। सन्ध्या होने पर पत्नी ने उन्हें जगा दिया कि आपके सन्ध्या-कर्म का समय बीतता जा रहा है। जरत्कारु पत्नी पर बिगड़े। उन्होंने कहा कि सूर्य मेरी सुविधा का ध्यान न रखते हुए क्यों उग रहा है? सूर्य की पेशी हुई। उसने कहा कि काल का नियोग होने से ऐसा करना पड़ा। काल बुलाया गया। उसने कहा कि ब्रह्मा के आदेश से ऐसा करना पड़ता है। ब्रह्मा को मुनि ने बुलाया। ब्रह्मा ने गिड़गिड़ा कर कहा—

जरत्कारो तपस्विनां योगिनां च विभूतेर्नास्त्यविषयो नाम। ग्रहगति-मन्यथा कर्तुं क्षमत्वमस्त्येव।

जरत्कारु ने समयानुसार पत्नी को छोड़ दिया, पर उसके पूछने पर बताया कि तुम्हें पुत्र होगा। रोती हुई कन्या को वासुकि ने समझाया—

धन्यो वरेण्यो मुनिरेष देवि तदंगना विश्वजनार्चिता स्याः।
त्वं शुद्धसत्त्वं तनयं प्रसूय प्राचीव सूरं सुयशो लभस्व॥

पंचम अङ्क में जनमेजय नागयज्ञ करता है। एक के बाद एक सर्प हवनकुण्ड में जल कर मरने लगे। तक्षक इन्द्र की शरण में छिपा था। उसे हवनकुण्ड में गिराने के लिए इन्द्र और तक्षक को साथ ही खींच लाने का मन्त्र पुरोहित पढ़ने ही वाला था कि इन्द्र ने तक्षक को अलग किया। लुढ़कते हुए तक्षक अधोमुख गिरने लगा।

अरुणनयन-युग्मात् स्रंसते वारिधारा
सुरपतिपथमध्ये लम्बते श्वेनलीनः।
अशरणजनवत् स श्वासनादं च कुर्वन्
प्रबलभयगृहीतः कम्पते सर्पसत्रात्॥

षष्ठ अंक में जरत्कारु का पुत्र वासुकि के कहने से नागों की रक्षा के लिए यज्ञभूमि में आया। उसने सभी महर्षियों को और जनमेजयको अपनी सदाशयता

से प्रभावित किया। राजा ने उसे वर दिया, जिससे उसने नागयज्ञ बन्द कर देने की याचना की। तक्षक बच गया।

शिल्प

सूत्रधार ने समसामयिक परिस्थितियो का प्रस्तावना मे आकलन किया है कि किस प्रकार कुछ नेताओं ने जनता के कष्ट का ध्यान किये बिना ही रेल-कर्मचारियों की हड़ताल करा दी है। परिणामत लोग भूखों मर रहे हैं।

इस नाटक में अद्भुत रस अङ्गी है। नाट्यशास्त्रानुसार वीर और शृङ्गार ही नाटक मे अङ्गी हो सकते है।[1] सूत्रधार के अनुसार ऐसा करने से नवीनता का प्रतिपादन हुआ है।

तृतीय अङ्क में विवाह का मन्त्रपाठपूर्वक सम्पादन नाटकीय योजना के प्रतिकूल नीरस है।

श्री जीव ने नाटकों के अभिनय को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए उनमे गीतों का प्रचुर समावेश किया है। प्रथम अङ्क के अन्त में नारायण-स्तुतिपरक गीत नेपथ्य से गाया जाता है। यह किरतनिया-नाट का प्रभाव है। द्वितीय अक के आरम्भ मे वैतालिक का गीत है, जिसमे कृष्ण की महिमा विश्रुत है। गीतो मे भावी घटना की सूक्ष्म व्यंजना भी है।[2]

विष्कम्भक को अनेक स्थलों पर श्री जीव ने लघु दृश्य के रूप मे कार्यपरक बनाया है।[3] द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे पात्र काश्यप और ब्राह्मणद्वय है। इसमे उनके कार्यकलाप उन्ही के द्वारा आचरित उन्ही के उपयोग के लिए होने के कारण सूच्य नही हैं—दृश्य हैं। प्रधान दृश्य है एक वृक्ष का तक्षक के द्वारा दष्ट होने पर जलने लगना और काश्यप का पेटिका से कमण्डलु निकाल कर हाथ में जल लेकर मन्त्रपाठपूर्वक वृक्ष के उद्देश्य से अभिमन्त्रण। वृक्ष पुनरज्जीवित हो उठा। ब्राह्मण ने पूत रूप मे काश्यप को मणि-मुक्ता-रजत-काचन-पूर्ण मंजूषा दी और उसे घर लौटा दिया।

कवि की पात्र-कल्पना उदात्त है। उसने सूर्य, काल और ब्रह्मा को पात्र बना कर नाटक के स्तर का उदात्तीकरण किया है।

निगमानन्द-चरित

श्री जीव का निगमानन्द-चरित सात अङ्कों का नाटक है।[4] १९५२ ई० मे

---

१. कृत वा शृंगार-वीररसोपेक्षयास्मिन् नाटकेऽद्भुतरसः स्वीकृतः।

२. द्वितीय अङ्क मे ऐसा ही गीत है—

स्मर संसारं श्रीहरिमारम् तत्पदपंकजमधु, अनिवारम्।
क्षरति कृपाभरनिर्झरधारम् पिब हि जीवगण आ तनुभारम्॥

३. ऐसा करना अशास्त्रीय है।

४. इसका प्रकाशन १९५२ ई० में आर्यदर्पण, हलिशहर से हुआ है।

इसका अभिनय राममोहन-लाइब्रेरी-हाल कलकत्ते में हुआ था। यह चरितात्मक रूपक है।

साम्यतीर्थ

श्री जीव का साम्यतीर्थ पाँच अङ्कों का नाटक है।[1] यह रूपक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कतिपय निबन्धों पर आधारित है। इसमें भारत की राष्ट्रिय एकता की विचार-धारा का समुन्नयन किया गया है।

विवेकानन्द-चरित

श्री जीव के विवेकानन्द-चरित में यथानाम भारत के सर्वोच्च आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान के प्रकाशक विवेकानन्द का चरित है।[2] इसकी कथावस्तु चरितात्मक है। इसमें केवल तीन अङ्कों में स्वामी जी के जीवन की प्रमुख उपलब्धियों की रसमयी चर्चा है।

कैलासनाथ-विजय

कैलासनाथ-विजय व्यायोग का प्रथम अभिनय बंगाल के राज्यपाल कैलाशनाथ काटजू के उस संस्कृत विद्यालय में पधारने के अवसर पर हुआ था, जिसमें लेखक जीव अध्यापन करते थे। उन्हीं के नाम पर यह व्यायोग लिखा गया। इसमें कथावस्तु प्रसिद्ध पौराणिक है, जिसमें रावण कैलास पर्वत को उखाड़ने का प्रयास करता है।

कथावस्तु

रावण यम पर विजय प्राप्त करके अपनी पत्नी मन्दोदरी को विजय-प्रसंग सुना रहा था। पर मन्दोदरी रो रही थी। उसने बताया कि आपके बड़े भाई कुबेर ने आपकी अनुपस्थिति में यहाँ आकर मुझसे कहा कि तुम्हारा पति अधर्म करता है, देवद्रोह करता है। उसे रोको नहीं तो वह विपत्ति में पड़ेगा। रावण ने कहा कि क्षुद्र तपस्या के बल पर वह धनाध्यक्ष बना है और मुझसे स्पर्धा करता है। मन्दोदरी ने जड़ दिया कि अपने विमान से वह फूला नहीं समाता। मेरा तो सौभाग्य होता कि आप विमान को ही शीघ्र प्राप्त करके मुझे सातिशय प्रसन्न करते। रावण ने कहा—मुझसे बड़ा कोई नहीं—

तपसा तेजसा कीर्त्या मूर्त्या मर्यादया तथा।
औदार्येण च शौर्येण लोके कोऽन्योऽस्ति मत्समः॥

न्याय तो यही है कि विमान मेरा होना चाहिए। उसे छीन लाता हूँ। कंचुकी आया और बोला कि देव-धनाधिप का दूत आया है। उसने देव उपाधि क्यों

१. इसका प्रकाशन कलत्ते से १९६२ ई० में हुआ।
२. इसका प्रकाशन विवेकानन्द-शत-दीपायन में हो चुका है। इस संकलन का विचेता २४ परगने के वजवज का विवेकानन्द-संघ था।

लगाई—इसके लिए उसका कान उमेठा गया। दूत ने रावण से कहा कि बड़े भाई चाहते हैं कि देववैर, मुनिमारण आदि दुष्कर्मों से आप दूर रहें। रावण ने दाँत पीस कर कहा कि न तुम और न मेरा बड़ा भाई अब जीवित रह सकेंगे। प्रहस्त दूत को शूली देने के लिए ले गया। उसने कुबेर पर आक्रमण की सज्जा का आदेश दिया। विभीषण का सवाद कञ्चुकी ने दिया कि आप कैलास पर आक्रमण न करें। रावण मानने वाला थोड़े ही था।

झट रावण कैलास पहुँचा। वहाँ कुबेर ने उससे पूछा कि मेरे ऊपर आक्रमण का क्या कारण है? रावण ने कहा कि आपको लड़ना ही पड़ेगा। कुबेर ने अपने सेनापति मणिभद्र को बुलाया तो पता चला कि उसे प्रहस्त ने बन्दी बना लिया है। फिर तो कुबेर ने नन्दी को बुलाया। नन्दी से रावण की बातचीत हुई—

रावण—आः किं प्रलपसि रे भूतयोने। कस्ते रुद्रः कश्च त्वमसि।

नन्दी—भक्षको रक्षसामस्मि भूतोऽद्भुतबलोज्ज्वलः।
लयङ्करस्य रुद्रस्य किंकरः क्षुद्रशंकरः॥

और तुम कौन हो?

रावण—अवध्यत्वधनं क्रीतं येन कृत्तशिरःस्रजा।
ग्रस्तकोऽपि जितो येन स स्वतन्त्रोऽस्मि रावणः॥

प्रहस्त ने आकर रावण को बताया कि पूरी विजय हो चुकी है। पुष्पक विमान हमारे अधिकार में है। रावण ने कहा—अब लौट चलें। तब तो नन्दी ने बिगड़ कर कहा—

रुध्यतां रावणस्याध्वा बध्यतामखिलो भटः।
कृतघ्नं विश्वविघ्नं तं प्रतियोत्स्येऽहमायुधैः॥

रावण से कुबेर ने कहा—यह तो तुम्हारी दस्युवृत्ति है। तुम तो हम यक्षों का युद्ध-कौशल देखो। फिर उन दोनों पक्षों में युद्ध हुआ, जिसमें नन्दी बन्दी बनाया गया, शस्त्राहत कुबेर परावर्तित हुआ। वह कैलासनाथ की शरण में पहुँचा।

इधर रावण विमान पर बैठकर लङ्का लौटना चाहता था, पर विमान ठेलने पर भी नहीं खिसका। रावण से नारद ने बताया कि यह कैलासनाथ का प्रभाव है कि यह विमान नहीं चल रहा है। रावण ने पूछा कि कैलासनाथ कौन है? कहाँ रहता है? नारद ने दिखा दिया कि पर्वत के ऊपर वहाँ गिरिजा-सहित कैलासनाथ रहते हैं। रावण ने कहा कि विमान पड़ा रहे। अब इस कैलास-गिरि को उखाड़ कर लंका में फेंक देता हूँ।

रावण कैलास पर्वत को उखाड़ने के लिए हिलाने लगा। पार्वती ने शिव से पूछा कि क्या भूकम्प आ गया? यह क्या है? मैं समझ गया। यह कहकर शिव ने पादाङ्गुष्ठ बल से रोक दिया। तब तो रावण कातर हो उठा। वहाँ कुबेर आ गये। रावण आर्त होकर कह रहा था—

क्षरति रुधिरधारा ध्वस्तहस्ताग्रभागात्
कुलिशहतशिखाद्रेर्धातुशोणा नदीव।
तरव इव मदङ्घ्र्याशु सीदन्ति हस्त
क्षपित मृदुलतेव क्षीयते चेतना मे॥

वह मूर्छित हो गया। उसकी ओर से प्रहस्त ने शिव की स्तुति की। शिव ने उसे चेतना प्रदान की और कहा कि नन्दी और कुबेर का अनिष्ट करना बन्द करें। रावण के माँगने पर कुबेर ने विमान रावण को दे दिया।

शिल्प

व्यायोग एकाङ्की होता है। इस एक अंक में रंगमंच पर लंका और कैलास दोनों की दृश्यस्थली दिखाना है। इसके लिए कवि ने इतना मात्र कहा है—

रावणः—(परिक्रामन्) अयमागतोऽस्मि कैलासपुरम्।

कीर्तनिया-नाटक की परम्परानुसार नारद और प्रहस्त शिव की स्तुति करते हैं—

जय जय नाथ नमस्ते त्वमसि चन्द्र इव तमसि समस्ते।

आगे रावण की स्तुति है। अन्त में नन्दी और रावण ने कैलासनाथ की स्तुति की है—

जय जय कैलासनाथ सदयविलासजननाथ।
भारतभूमिनिरत निजमहिमहिमावदात॥
कलितललितवचनावलिगलितमकरन्दनिर्झर।
नन्द हृदयमन्दिरमधिवृतसुन्दरतनुनिर्जर॥

रावण लङ्का लौट आया।

गिरि-संवर्धन

गिरि-संवर्धन में कृष्ण के गोवर्धनधारण की कथा है।[1] इसका प्रथम अभिनय संस्कृत-राष्ट्रभाषा-सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर हुआ था। इस सम्मेलन में गिरिधर शर्मा चतुर्वेद को राष्ट्र-सम्मान मिला था। उन्हीं के संवर्धन के उपलक्ष्य में यह व्यायोग अभिनीत हुआ था।

कथावस्तु

कृष्ण की इच्छा के विरुद्ध, किन्तु नन्द की आज्ञा के अनुसार, यज्ञ सामग्री इन्द्र के प्रीत्यर्थ भारवाही ले जाते हुए मार्ग में विश्राम के लिए सनृत्य गान करते हैं। कृष्ण ने उनको यह कह कर रोका—

साक्षादिहाय मम सन्निधिमिन्द्रतुष्ट्यै वृथा विमूढमतयः किमुयाति यज्ञम्।
मामेव यज्ञपुरुषं पुरुहूतवन्द्यं मन्दाशया न वदन्ति विदन्ति सन्तः॥

१. इसका प्रकाशन प्रणवपारिजात में २. १, ३ में हुआ है।

कंचुकी ने कृष्ण को डाँटा कि क्यों रोकते हो? अलग हटो, नहीं तो बलात् दूर हटाता हूँ। कृष्ण का अनुभाव देखकर वह कृष्ण से प्रार्थनामात्र करने लगा कि इन्हें यज्ञ की सामग्री ले जाने दें। आपके इस काम से इन्द्र क्रोध करेंगे। कृष्ण ने कहा कि मैं कृष्ण को कुछ नहीं समझता। उसने नन्द से सब कुछ कहा। नन्द ने कृष्ण को समझाया कि ऐसा न करें। कृष्ण ने कहा कि इन्द्र का क्या आभार?

वर्षन्त्यम्बूनि ये मेघा अमोघाः कर्मनोदिनाः।
प्रजास्तैरेव जीवन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति॥

यशोदा ने समझाया कि हे कृष्ण? तुम्हारा यह दुराग्रह है। यह कह कर कृष्ण को खींचना चाहा तो उनके देह की कठिनता के कारण मूर्छित होकर गिर पड़ी। नन्द ने पूछा कि यदि इन्द्र के लिए यज्ञ नहीं करना है तो इस सामग्री का क्या किया जाय? कृष्ण ने उत्तर दिया—अग्नि, गौ, ब्राह्मण, गोवर्धन आदि के लिए यज्ञ किया जाय। नन्द मान गये। यज्ञ की सामग्री कृष्ण की इच्छानुसार अन्यत्र भेज दी गई।

वज्रनिर्घोष के साथ संवर्तक आ पहुँचा। उसने कृष्ण से कहा कि आज सभी व्रजवासियों का सर्वनाश करता हूँ। तुम इन्द्र के यज्ञ को रोक कर उसके कोप-भाजन हो। तुमको शीघ्र दण्ड भोगना पड़ेगा। कृष्ण ने कहा कि इन्द्र मेरा अंश रूप है। मैं हरि हूँ।

संवर्तक ने कहा कि हरि हो तो—'हर स्वं मदीयवीर्यवेगम्' उसने विद्युत्स्फुरण, गर्जन और तूफान उत्पन्न किया। कृष्ण ने सुदर्शन से कहा कि इसे भगाओ। संवर्तक भाग खड़ा हुआ। तब कृष्ण ने आदेश दिया कि अनिरुद्ध यज्ञ व्रजवासी करें। यज्ञ समाप्त होने पर यशोदा ने कृष्ण को भोजन करने के लिए कहा तो कृष्ण ने कहा कि गोवर्धन रूप में मैंने ही तो सब पूये खाये है, जो उन्हें बलि प्रदान किये गये। पेट भर गया है।

इसके पश्चात् इन्द्र ने तूफानी दुर्दिन उत्पन्न किया। कृष्ण ने सुदर्शन से कहा कि इस उत्पात को मिटाओ। उपप्लव है—

आसारवातविहताः पशवो रुदन्तो गोपाश्च दारसुत-भृत्ययुता भयार्ताः।
सर्वेऽपि कम्पनविकारविधुर्वहन्तो हा हेति दीनवचनैरुपयान्त्यहो माम्॥

कृष्ण ने गोवर्धन को छत्रवत् धारण किया। सभी व्रजवासी उसके नीचे सुरक्षित हुए।

फिर कृष्ण ने दलितदर्प इन्द्र से कहा कि अब आप वापस जायें। सुदर्शन संवर्तक पर चढ़ बैठा। संवर्तक ने रक्षा के लिए इन्द्र को बुलाया। इन्द्र ने अपने को स्वयं कृष्ण का शरणार्थी निवेदित किया। अन्त में योगमाया प्रकट हुई। इन्द्र ने उसकी स्तुति की—

मातर्नमस्ते भुवने समस्ते तवैव माया हरणी प्रमायाः।
दयस्व पुत्रं हतगर्वसूत्रं कृष्णैकवित्तं कुरु मेऽपि चित्तम्॥

शिल्प

प्रस्तावना में हास्य-रस की निष्पत्ति विदूषक की अप्रासंगिक बातों के द्वारा की गई है। साथ ही प्रस्तावना के अन्तिम भाग में प्रथम अङ्क की भूमिका दी गई है।

नाटक का आरम्भ सुदामा की एकोक्ति से होता है। यह लघु एकोक्ति सर्वथा सूचनात्मक है। बीच में संवर्त्तक की लघु उक्ति है।

अन्त में गोपों का गीत है—'जयति सुदर्शनधारी' इत्यादि।

संवर्तक का पात्र रूप में अवतरित होना छायातत्त्वानुसारी है। ऐसी ही छायात्मक पात्र हैं सुदर्शन, योगमाया आदि।

नृत्य और संगीत की प्रचुरता जीव के नाटकों में प्रायः देखने को मिलती है। इसमें सर्वप्रथम भारवाहियों का सनृत्य गान है—

जय जय सुरराज, एहि यज्ञ भुवि साधु विराज।
उन्मीलय तव नयन-सहस्रं सृज नो मंगलयोगमजस्रम्॥ इत्यादि

बीच में व्रजवासियों की वाद्यध्वनि है।

श्रीकृष्णकौतुक

श्रीकृष्ण-कौतुक का अभिनय ऋषि वंकिमचन्द्र महाविद्यालय के अध्यक्ष के निर्देश पर सारस्वतोत्सव में हुआ था।[1]

कथावस्तु

कृष्ण की वंशी का गान रात्रि के समय सुन कर राधादि गोपियाँ उनसे मिलने के लिए विह्वल होकर वन में उन्हें ढूंढ रही हैं। वे गाती हैं और स्तुति करती हैं। कृष्ण उनके समीप आ जाते हैं। गोपियाँ अपनी बाहुओं को परस्पर पकड़कर उनको चारों ओर से घेरे में रख कर घेराव करती हैं। कृष्ण उनसे कहते हैं कि यदि मुझ में तुम्हारा वास्तविक प्रेम है तो आँख मूंद कर मेरे नारायण रूप का ध्यान करो। उन्होंने ऐसा किया तो कृष्ण ने पलायन कर दिया। फिर गोपियाँ उनके लिए उदग्र हुईं। उनको बुरा-भला कहा। इस बीच जटिला कुटिला के साथ आ गई। जटिला ने कुटिला से अपना दुखड़ा रोया कि अभी किशोरावस्था में ही भाभी राधा का यह हाल है तो तारुण्य में वह क्या करेगी? मैं कितनी सती-साध्वी रही। वह राधा को ढूंढ रही थी। राधा मिली तो उसे जटिला और कुटिला—इन दोनों ननदों ने समझाना आरम्भ किया। राधा की ओर से सखियों ने कहा कि कृष्ण-प्रेम का दोषारोपण न करो। हम सभी यहाँ पुष्पावचय कर रही हैं। जटिलाने कहा कि मैं घर जाकर अपने भाई से कहती हूँ कि तुम्हारी पत्नी राधा वन में घूम रही है।

---

१. इसका प्रकाशन प्रतिमा न.१ में हुआ है।

भयग्रस्त गोपियों की रक्षात्मक स्तुति सुनकर कृष्ण उनके समक्ष प्रकट हुए। जटिला और कुटिला कृष्ण के साथ घर गईं। राधा फूल चुनने के बहाने वहीं रह गई। शेष गोपियों ने शोर मचाया कि कृष्ण के साथ रात में कुटिला और जटिला घूम रही है। फिर तो कृष्ण को छोडकर वे अकेले घर गईं।

राधा ने कहा कि रासमण्डल में कृष्ण का दर्शन करके ही आज घर जाऊँगी। अदृश्य कृष्ण के विषय में नीम, अशोक, तमाल, चूत आदि से गोपियों ने प्रश्न किया। वे बाहर नहीं, हृदय में मिलते है—यह विचार कर हृदयानुसन्धान किया तब तो—

एकः कृष्णः सर्वसखीकरग्रहणाय बहुरूपो दरीदृश्यते।

शिल्प

अभिनय संगीत और वाद्य से प्रपूर्ण है। कृष्ण वंशी बजा रहे हैं। राधा और ललिता के गीत से नाटक का अभिनय आरम्भ होता है। यथा,

शमय शमय तव वंशीकलरवमबलामाकुलयन्तम्। इत्यादि

रूपक कीर्तनिया-परम्परानुसार कृष्ण-स्तुति से निर्भर है। यथा,

नीमविटपिपदुचाभिनु मधुरमुरलिधर जलधर सुन्दर।
यमुना-पुलिन-विहरिन्। इत्यादि

इस रूपक में गद्यांश स्वल्प और पद्यांश का बाहुल्य इसके गीतितत्त्व को प्रोन्नत करता है।

पुरुष-पुङ्गव

पुरुष-पुंगव श्री जीव का भाण है[1]। संस्कृत-साहित्यपरिषद् के सारस्वतोत्सव के अवसर पर इसका अभिनय हुआ था। इसका नायक वाग्वीर है।

कथावस्तु

वाग्वीर की आत्मगाथा है—ग्रामीण नव युवतियों को विज्ञानमार्ग-विषयक चेतना प्रदान करता हूँ—

का नीतिः—परलोकभीतिरहितं या साहसं दीपयेत्
को धर्मः—निजशर्महेतुरपरे मर्मन्तुदापि क्रिया।
का पूजा—जठराग्नितर्पणमयी का साधुता मौखिकी
स्निग्धा वाक् तदनुच्छलेन कठिना गुप्ताहर्तिर्वक्षसि॥

वह स्त्रियों को सच्चारित्र्य से विगलित करने के लिए भड़काता था और दूसरों की पत्नियों को स्वच्छन्द विहार करने की सीख देकर अपनी पत्नी को घर में ताले-कुंजी मे बन्द रखता था। उसका मत था कि अपनी स्त्री परासक्त हुई तो

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद्-पत्रिका ४३.१२ मे हो चुका है।

अपना सर्वस्व गया। कहीं बीमार पड़ोगे तो परासक्त वह तुम्हारी सेवा नहीं करेगी। अतः स्वगृहं सावधानतया रक्षणीयम्।

उसने स्पष्ट बताया कि नेता परोपदेश के काम में निपुण होता है। मूर्ख ही अपने उपदेशानुसार आचार-व्यवहार करते हैं। यदि कोई बातों में आ फँसा तो उसे वैसे ही चूस लेता हूँ, जैसे मकड़ा अपने जाल में फँसी मक्खी को। उसने अपना भेद खोला। एक दिन किसी सम्बन्धी के यहाँ किसी गाँव में गया था तो जिस कुशासन पर बैठा था, उसका कुश, मेरे वस्त्र से चिपट कर लौटते समय दूर तक चला आया। उसे जाकर मैंने उस सम्बन्धी को लौटाकर अपनी सदाशयता की धाक जमा ली। वहीं किसी स्त्री का स्वर्ण-कुण्डल गिरा मिला तो उसे आँख बचाकर पाकेट में रखा। उस स्त्री के पूछने पर कहा कि मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। पुलिस वालों ने पकडा तो मेरे सम्बधियों ने साक्षी दी कि जो सत्पुरुष परपुरुष के कुश तक को नहीं लेता, वह स्वर्गकुण्डल क्यों लेगा? इस प्रकार मेरा प्राण बचा। यदि वे नहीं बचाते तो उसी दिन लोग मुझे मार कूट कर स्वर्ग-गति प्राप्ति करा देते।

इस बीच उसे कोलाहल सुनाई पड़ा। उसने समझा कि मुझे पकड़ने लोग आ रहे हैं। वह पेड़ पर चढ़ कर अपने को छिपाना चाहता था। पर पैर काँपने लगे तो निर्णय लिया कि लोगों के पैरों पर गिर पड़ूँगा। उसने पीछे जाना कि कोलाहल का कारण कोई दूसरा ही है। तब तो उसने कहा—

कस्तावत् पुरुषपुंगवस्य मम सम्मुखमापतेत्।

उसने आत्म-प्रशंसा की—

व्याघ्रः क्षुधा बुद्धिबलेन हस्ती खरः स्वरेण क्रमणेन च श्वा।
लाङ्गूलहीनो न च शृंगयोगी तथापि भोः पुरुषपुंगवोऽस्मि॥

मैं किसी से डरता थोड़े ही हूँ।

किसी ललना ने प्रस्ताव किया कि हे वाग्वीर, आपके गुणों से मुग्ध आपकी ही बन कर रहना चाहती हूँ। उसने उत्तर दिया कि मैं भी अपनी चण्डविक्रमा पत्नी से भर पाया! यदि शान्ति पाने के लिए वह स्वर्ग की यात्रा करे तो हम-तुम दोनों साथ सुखी रहेंगे, अन्यथा वह तो—न सहेत द्वितीया। उन्होंने अपनी विरह-गाथा सुनाई। प्रेमिका ने अपना प्रेमानल-सन्ताप सुनाया। अन्त में वाग्वीर ने गाया—

मधुरं मधुरं मधुरतरंगिच्छलयसि किं मां धृतनवभंगिः।
सुनृतवाणाश्रवणविलासी किमहं न स्यां तव मिलनाशी॥ इत्यादि

तब तक उसकी नव सुप्रिया को कोई बलात् प्रेमपथ पर घसीट कर नगर-प्रान्त की ओर ले जाने लगा। उसने वाग्वीर की गोहार की। उसने कहा तो कि अभी आकर तुम्हें बचाता हूँ, पर बल बढ़ाने के लिए व्यायाम करने लगा और अपहरणकर्ता को डराने के लिए वह सटकारी ढूंढने लगा। बाँस से उसे काटने

के लिए हँसिया ढूँढने लगा। फिर तो उसे प्रणयिनी का आर्तनाद सुनाई पड़ा—परस्य करमागता। वाग्वीर ने कहा कि जिस स्त्री-स्वच्छन्द-विहार का समर्थन करता हूँ, उसके अनुकूल कार्य हो गया। ठीक ही है।

शिल्प

भाण का एक शिष्ट रूप श्रीजीव ने दरसाया है। प्राचीन भाणकर्ता जिस अशोभन शृंगाराभास के गन्दे नाले में डुबाते थे, उसमें प्रेक्षक को बचाने वाले श्रीजीव का संस्कृत-जगत् अनवरत ऋणी है।

विधि-विपर्यास

श्रीजीव का विधि-विपर्यास प्रहसन है।[1] हिन्दूकोड बिल पर विमर्श करने के लिए १९४४ ई० में वल्लभाचार्य श्रीगोकुलनाथ महाराज ने पूना में अखिल भारत के धार्मिक विद्वानों की सभा बुलाई थी। इसमें श्रीजीव ने भाग लिया था। यह कोडबिल भारतीय धर्मशास्त्र-सम्मत नहीं है—ऐसा निर्णय विद्वत्परिषद् ने लिया था। इस अवसर की स्मृति को अमरता प्रदान करने के लिए कवि ने इस लघु रूपक की रचना और अपना धन लगाकर प्रकाशन किया।

कवि का कहना है कि नर और नारी में प्राकृतिक और मौलिक अन्तर है। इस भेद को मिलाकर दोनों को समान बनाने का कृत्रिम प्रयास प्रगतिशीलता के नाम पर किया जा रहा है।

विधिविपर्यास का अभिप्राय है कानून अथवा ब्रह्मा का व्यतिक्रमण। उस कानून को तोड़ना शाश्वत धर्म और राष्ट्र की मर्यादा का विलोपीकरण है, पतन के गर्त में जाना है। इसी उधेड़-बुन में देश को सांस्कृतिक सुप्रकाश देने की दिशा में कवि ने यह रचना की है।

इसका अभिनय पूना में सारे भारत से धर्मविमर्शिनी सभा में आये हुए विद्वानों के प्रीत्यर्थ १९४४ में हुआ था, जिस दिन अन्तिम बैठक में निर्णय लिया गया कि हिन्दूकोड-बिल अशास्त्रीय है।

कथावस्तु

विनोदसुन्दर नामक युवक स्त्री और पुरुष-विषयक धर्मशास्त्रीय विषमता का कट्टर विरोधी था। उसका सूत्रवाक्य था—

एको गर्भः स्नेहसन्दर्भ एको वीजं तुल्यं किन्तु मूल्यं विभिन्नम्।
पुत्रः प्राप्तस्तात सर्वस्वमान्यः पुत्री मूत्रीभावमेतीव घृण्या॥

वृद्ध महानुभाव उसकी इस तुल्यता-विषयक मान्यता के विरोध में कहते थे—

१. इसका प्रकाशन आचार्य पञ्चानन-स्मृति-ग्रन्थमाला के तृतीय पुष्प-रूप में बङ्गाब्द १३५६ ई० में कलकत्ते से हुआ है।

वैरं विभागभूयस्त्वं वैकल्यं कुलकर्मणः।
अतिक्रमश्च पत्युः स्यात् सुतादायस्य दूषणम् ॥

अर्थात् कुटुम्ब को छिन्न-भिन्न करने के लिए सुतादाय प्रमुख कारण बनता है।

विनोद ने घोषणा कर दी कि मेरी सम्पत्ति का बटवारा करते समय सभी सन्तानों को पुत्र और कन्याओं को समानांश दिया जाय। उसका विवाह भी नहीं हुआ था। घर्घरकण्ठा नामक आधुनिक कुमारी ने कहा कि अभी अविवाहित हो और सन्तान का कोई ठिकाना नहीं। विवाह करके सन्तान उत्पन्न कर लेते और तब पुत्र और कन्या को समभागी बना देते तो तुम्हारा समव्यवहार कुछ सार्थक प्रतीत होता। विनोद ने कहा कि स्त्रियों को विवाह ने ही दबा रखा है। स्त्री और पुरुष दोनों को विवाह न करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। तब तो तिलक, वधूनिर्वाचन आदि समाज के दूषण मिट जाते।

घर्घरकण्ठा ने कहा कि विवाह न होगा तो सृष्टि कैसे चलेगी? विनोद ने कहा कि अकेले पुरुष विज्ञान-बल से सन्तान पैदा कर लेंगे। वेद और पुराणों का प्रमाण देकर उसने मान्धाता की उत्पत्ति की चर्चा की कि स्त्री के बिना ही सन्तान होना शास्त्रचर्चित है। घर्घरकण्ठा ने कहा कि तब तो स्त्री की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। विनोद ने कहा कि स्त्रियों का भी पुरुष बनना सम्भव है। वह वेदवाणी उद्धृत करता है—

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्
भूतमध्ये मादृशां भाव्यमध्ये च त्वादृशां सन्निवेशः।

घर्घरकण्ठा ने कहा विज्ञान भी पुरुष का ही पक्षपात करता है। वह क्यों नहीं सभी पुरुषों को स्त्री बनाता?

विनोद का मत है कि स्त्रियाँ अबला हैं। क्यों सब को अबला बनाया जाय? ऐसा करने पर सारा जगत् दुर्बल हो जायेगा। विज्ञान सबको दुर्बल बनाने के लिए थोड़े ही है। घर्घरकण्ठा ने कहा कि यह सब तुम्हारी बात व्यर्थ की है। स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में पुरुषवत् उद्योगपरायण हैं। घर्घरकण्ठा की सहायता करने के लिए महिलापरिषद् की नेत्री जम्बालजिनी वहाँ आ गई। विनोद शर्मा ने स्वगत उसका नखशिख वर्णन किया—

आनाभिलम्बिस्तनतुम्बिकेयं सम्मार्जनी तर्जनकेशदामा।
कूपप्रविष्टाकुलदृष्टिरुग्रा व्यग्रा नरग्रासरसेव भाति ॥

उन्होंने कहा कि पुराने मनु को मिटाकर नया मनु प्रतिष्ठित करना है, जो स्त्री-स्वातन्त्र्य का प्रवर्तन करे। विनोद ने उसे छेड़ा और पूछा कि कैसे विज्ञान के बिना मनु स्त्रीपुरुष-साम्य प्रवर्तन करेगा? जम्बालजिनी ने अपनी दस सूत्री योजनायें गिना दीं—(१) प्रलम्बकेशच्छेदन, (२) वक्षःपेषकपट्टबन्धन, (३) व्यायामाभ्यास, (४) मृगया-व्यासंग, (५) तलवार चलाना, (६) सेना

मे भर्ती होना, (७) पर्दे में न रहना, (८) सम्पत्ति पर पूर्ण स्वत्व, (९) सगोत्र और असवर्ण विवाह, (१०) विवाह-बन्धन का छेदन।

विनोद ने पूछा कि गर्भधारण और सन्तान-पालन कौन करेगा? जम्वालजिनी ने कहा कि पुरुष क्या करेंगे? हम उन्हे कठपुतली की भाँति नचायेंगे।

रगमच पर याज्ञवल्क्य नामक ब्राह्मण आया। उसने पूछने पर विनोद को अपनी कथा सुनाई कि सन्तान न होने से पहली पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह कर लिया है। तरुणसघ का कहना है कि यह नही हो सकता। एक पत्नी किसी दूसरे को देना पडेगा। यह सुन कर मेरी पत्नियाँ रो रही हैं। घर्घरकण्ठी ने उससे पूछा—क्या स्त्रियो को भी दो पति का अधिकार है? ब्राह्मण ने कहा कि वेद मे इसका विरोध है। जम्वालजिनी तो अमर्ष से उसकी दोनो आँखें फोडने के लिए छाता उठाकर दौडी। घर्घरकण्ठी ने देखा कि ब्राह्मण भाग गया। जम्बा गिर पडी। फिर कहाँ से स्त्री-पुरुष की समता हो?

घर्घरकण्ठा ने विनोद के सामने पुन यही प्रश्न उठाया कि गर्भ कौन धारण करे? विनोद ने कहा—यह ब्रह्मा की चिन्ता है। वही वैज्ञानिको को कोई उपाय सुझायेगा अथवा नपुसको से सन्तान उत्पन्न करायेगा।

इस के पश्चात् ही सडक पर भागता-हाँफता हुआ एक नपुसक उन्हे मिला। उसने त्राहि माम् कह कर अपनी बीती सुनाई कि मेरे पीछे एक डाक्टर पडा है कि तुम्हारा आपरेशन करके तुम्हे सन्तानोत्पादन की योग्यता प्रदान करेंगे। मैं नपुसक समाज का नेता हूँ। विनोद और घर्घरकण्ठा ने कहा कि इससे अच्छा क्या हो सकता है? तुम इस प्रकार नपुसकत्व के कलकित नाम से भी बच जाओगे। तभी वह डाक्टर आ निकला। उसने अपना काम बताया—

> निःशल्यं शल्यतन्त्रेण क्रियते जान्तवं वपुः।
> तथा वर्षवरे हर्षात् स्त्रीपुंसत्वं च तन्यते॥

और भी

> खण्डनाद्वा नराण्डानां योजनाच्च जनाङ्गके।
> नरवानरयोः साम्यं प्रमाणीक्रियते मया॥

उसने विनोद और घर्घरकण्ठा के पास नपुसक नेता को देख कर उनसे कहा कि मैं भगवत्कर्म मे लगा हूँ—क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ। मैं नपुसकता मिटाना चाहता हूँ। आप लोग इस भागे हुए नपुसक को अच्छी तरह पकड़ लें, ताकि मेरा आपरेशन सफल हो। मैं तब तक छुरी-चाकू को निष्क्रिमि कर लूँ।

विनोद और घर्घरकण्ठा के विषय मे पूछने पर उन्ही के कहने पर डाक्टर को ज्ञात हुआ कि वे दोनो सन्तानोत्पत्ति से विरत रहने का व्रत ले चुके है। डाक्टर ने इनसे प्रस्ताव किया कि तब तो आप दोनो मे से किसी एक का प्रजनन अङ्ग निकाल कर नपुसक के शरीर में लगाये देता हूँ और वह सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जायेगा।

'अनुमन्यतां प्रथमं भवतोरावश्यकाङ्गकर्तनं ततो नपुंसकाङ्गयोजनम् ।'

विनोद और घर्घरकण्ठा भीत हो गये। कुमारी घर्घरकण्ठा ने कहा कि मेरा तो विवाह-सम्बन्ध निर्णीत है। विनोद ने कहा कि मेरा भी। डाक्टर ने कहा कि विवाह का साक्षी कौन है? उन दोनों ने नपुंसक से कहा कि कह दो कि ये दोनों विवाहित हैं। तभी तुम्हारा प्राण बचेगा। नपुंसक ने झूठी साक्षी दी।

डाक्टर ने कहा कि यदि यह सब झूठ बोलते हो तो समझ लेना कि मैं सरकारी डाक्टर विज्ञानाभ्युदय-विभाग से आया हूँ। तुम सबकी मिट्टी पलीद कर दूँगा।

घर्घरकण्ठा और विनोद ने वहीं परस्पर विवाह पक्का कर लिया। थोड़ी ही देर बाद उन दोनों ने अपने पूर्वाग्रह को भ्रामक माना और सनातन विधि से विवाह किया। अन्त में नपुंसक ने इस उपलक्ष्य में गीत गाया—

निर्झरकण्ठे किमिति सुकण्ठे पथिमनुमान्ये प्रसरसि कन्ये।
क्व तव शैलसरिदिव चलभासा क्व च शुभबन्धननियमितभाषा ॥ इत्यादि

उसने प्रसन्नता व्यक्त की कि अब सृष्टिभार आपके ऊपर है।

विवाहायोजक घटक ने कहा कि नपुंसक वाली सारी घटना छद्मतया मैंने प्रपञ्चित की थी।

शिल्प

इस नाटक में पात्रों का चारित्रिक विकास कलात्मक विधि से प्रयोजित है। इस कला में जीव निपुण हैं। नपुंसक का प्रपंच छायातत्त्वानुसारी है।

विवाह-विडम्बन

विवाह-विडम्बन श्रीजीव का प्रहसन है।[1] इसमें बङ्गाली या सच कहा जाय तो पूरे हिन्दुस्तानी समाज की कुछ कुरीतियों पर हँसते-हँसाते हुए प्रकाश डाला गया है। घटना क्रम अतिरंजित अवश्य है, पर ऐसी बातें प्रचलित हैं।

कथावस्तु

रतिकान्त ६० वर्ष का विधुर है। उसकी विधवा बहिन खड्गधरा भी साथ रहती है। रतिकान्त को उसकी विषमता नहीं सही जाती। वह उसके विषय में कहता है—

भोजने द्विगुणा मात्रा शयने च चतुर्गुणा।
कर्मकाले खमात्रा च ततः शूर्पणखास्वरः ।।

उसे कङ्क नामक वर के नौकर से पता चलता है कि रतिकान्त विवाहार्थी है तो वह सबके सामने स्पष्ट कहती है—

'पलितकेशस्य गलितदन्तस्य लुलितगात्रस्य स्थविरस्य विवाहाय घटकयोजनाम्' इत्यादि।

---

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-प्रतिभा ३.१ में हो चुका है।

कड्डू को आश्वासन दिया गया था कि विवाह हो जाने पर मेरी वेतन-वृद्धि हो जायेगी। रतिकान्त को पहले तो घटक को साक्षात्कार देना था। घटक चण्ट होते ही है। उसने स्पष्ट कह दिया कि तुम सठिया गये हो, पर मैं सब काम बना दूँगा। इसी की रोटी खाता हूँ। बात यह थी कि श्वेत बालों और पोपले गालों में चमत्कार लाने के लिए कड्डू के हाथों जो प्रसाधन किया गया, उससे वह दधिलिप्त वदन वाला वानर जैसा बन गया था। घटक की एकोक्ति है कि खत्र धण्डूल फँसा। उसने रतिकान्त को बताया कि चन्द्रलेखा नामक कन्या है। उसका पिता दरिद्र है। रतिकान्त ने विवाह के विविध अवसरों पर अलग-अलग धन राशि देने की योजना स्पष्ट की। कन्या के पिता का २००० रुपये का ऋण चुकाना उसने स्वीकार किया।

कन्या-पक्ष को जो वर दिखाया गया, वह मुहल्ले के तरुणवर्ग का सुन्दर नेता था। घटक के जाने समय खड्गधरा ने गाना गया—

यष्टिधारी षष्टिवर्षः सहर्षः स्थविरो वरः।
चन्द्रलेखा-स्पर्शकामः करं विस्तारयत्यहो॥

मुहल्ले के तरुणों का विरोध बन्द करने के लिए उन्हें सौ रुपये का घूस रतिकान्त को घटक के हाथों देना पड़ा। घटक से रतिकान्त ने कहा कि विवाह के पूर्व उस मनोरमा तरुणी को एक बार देखने की व्यवस्था करें। घटक ने कहा कि प्रकाश्य रूप से नहीं देखना है। मैं तो—

भवत्प्रतिवेशिनामेकं तरुणं वरत्वेन प्रदर्शयामि।

युवा बनाने वाले डाक्टर शङ्करनाथ ने भी रतिकान्त से कुछ धनराशि जटी। उस डाक्टर से छुटकारा पाने पर रतिकान्त का मत था—प्रवञ्चका एते वैज्ञानिकाः।

घटक ने आकर कहा कि चलें कन्या देखें और यदि वह ठीक लगे तो २००० रुपये पिता के ऋणशोध के और १००० रुपये विवाहव्यय के तत्काल दे दें। आप वरकर्ता के रूप में कन्या को देखें। वररूप में मैं किसी तरुण को दिखा चुका हूँ। आप तो विवाह के समय ही वर बनेंगे और यदि किसी ने कोई गड़बड़ी की तो मेरी ओर से पुलिस का प्रबन्ध भी रहेगा।

कड्डू ने घर के लोगों से बता दिया था कि रतिकान्त को बेवकूफ बनाया जा रहा है। इनके खर्च पर भास्कर शर्मा तरुण का विवाह चन्द्रलेखा से होगा।

चन्द्रलेखा को देख कर रतिकान्त लौटे तो यही समझ रहे थे कि चन्द्रलेखा ने इनको पति रूप में पाकर अपने को कृतकृत्य मानने की बात मृदु कटाक्ष से संकेतित की है। रतिकान्त ने स्वर्णकार को बुलाया। उससे डेढ़ हजार रुपये के गहने खरीदे। जब वरवेश में सजकर विवाह के लिए प्रस्थान करने को हुए तो उनकी विधवा बहिन ने उनकी दुर्बुद्धि पर माथा ठोक लिया। किसी तरुण ने

उनसे बाजे-गाजे पर व्यय होने वाली धनराशि ऐंठी। कन्या को सजाने के लिए रतिकान्त ने गहने भेज दिये। वहाँ पहुँचे तो बताया गया कि कन्या का विवाह उनके खर्च पर पड़ोसी भास्कर शर्मा से हो चुका है। रतिकान्त को अन्त में कहना पड़ा—

घटको घोटकश्चैव स्यान्मनोरथ-चालकः।
क्वचित् सन्निधिमासाद्य पदाघातप्रियः पुनः॥

रामनाम-दातव्य-चिकित्सालय

प्रणव-परिजात नामक पत्रिका के प्रवर्तक सीतारामदास ओङ्कारनाथ ने रामनाम-दातव्य-चिकित्सालय शीर्षक से बङ्गला भाषा में संलाप-कोटिक निबन्ध प्रस्तुत किया था। उसका भाव-ग्रहण करके श्री जीव ने उसे रूपकायित किया। यही वह रचना है। इसका प्रथम अभिनय लेखक की जन्मभूमि भट्टपल्ली के संस्कृत-महाविद्यालय के वार्षिक सारस्वतोत्सव में सम्पन्न हुआ था। सूत्रधार के अनुसार इसे दश प्रकार के रूपकों में से किसी के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

कथावस्तु

किसी क्षीव (मत्त) ने रामनाम-दातव्य-चिकित्सालय खोल दिया। वह सभी रोगों की एक ही दवा देता था रामनाम। सूत्रधार ने उसके सारे साजो-सामान के विषय में कहा—

तुलसीभिः कृता रामेऽविरामं रामनामकृत्।
लोकदृष्ट्या भवन् क्षीवो जीवक्षेमाय वर्तते॥

अर्थात् तुलसी के पौधों का घेरा बनाकर उसके बीच बैठकर अहर्निश राम राम रटो। बस, रोग शमन हो जायेगा। क्षीव का गायन है—

वारय रसनावारे सततं नाम सुधारे श्रोपविरूपाः कामम्।
मज्जसि किमु पंके रज्यसि दुःखकलंके परिहृत-नाम-ग्रामम्॥ इत्यादि

उसके पास श्वास का रोगी बुड्ढा आया। दवा बताई—घर में तुलसीवन लगाओ। वहीं सदा रहो। सुपथ्य भोजन करो। नित्य राम-राम कहो। सुदर्शन नामक युवक ने चिकित्सालय के नाम पर देखा—

न दृश्यते रम्यगृहं महत्तरं न काचपात्राणि सुसज्जितानि वा।
न भूरिवर्णौषधपूरितानि वा लसन्ति पात्राणि बृहन्ति मे दृशि॥

उसे आश्चर्य हुआ कि बुड्ढे को न सूई से छेदा गया, न कुछ खाने-पीने को मिला। फिर भी उसने रामनामी क्षीव को बीमारी बताई राजयक्ष्मा। उसने दवा बताई—तुलसी-कानन बनाओ, बीच में कुटी, उसकी भित्ति पर राम नाम। बस, ऐसे वातावरण में नित्य २४ घंटे रहो, उसके पूछने पर कि क्या अच्छा हो

जाऊँगा ?[1] क्षीव ने कहा कि या तो रोग छूटेगा, नहीं तो ससार छूटेगा। भोजन क्या करना है ?

> अस्विन्न-तण्डुल दुग्धं मुद्गमिश्रगुडं तथा।
> रम्भाफलं ते भोज्यं जीर्णे हितमितं सदा॥

राजयक्ष्मी के अपराध क्षीव ने गिनाये—लशुन-पलाण्डु, मास, अंडा आदि खाना। यह अपने प्रति तुम्हारा अपराध है। छोडो। सक्रामक रोग है। अपने थूक आदि को गाड दो।

राजयक्ष्मी के जाने पर एक रोगी लडका आया—शय्यामूत्री और जो पढ़े, वह भूल जाय। उसे दवा बनाई कि तीनों सन्ध्या-काल में गुरुओं को प्रणाम करो, प्रात साय १०,००० बार राम राम कहो, रात में न खाओ, कठिन शय्या पर सोओ आदि। वह लडका राम नाम गाते बाहर गया तो गुह्य रोग से पीडित विनोद आया। उसे शर्करा रोग था। उसे और उसके बाद आये हुए पेट के रोगी, कलही पत्नी वाला, विलासी आदि सबको शरीर और मन को शुद्ध रखने के लिए आवश्यक प्राकृतिक चिकित्सा रामनाम के साथ बनाई।

शिल्प

प्रस्तावना में लोकरुचि के लिए हँसी की सामग्री सूत्रधार और विदूषक के सवाद के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। यथा, विदूषक के पास दूसरों के उपवन में घुस-पैठ करने वाला राम नामक एक बकरा था बहुत प्यारा, जिसे वह पुत्र जैसा मानता था। एक दिन चावल के साथ तुप खाकर वह मर गया। उस दिन से राम नाम से विदूषक को ज्वर आता था, क्योंकि उसे बकरे की स्मृति हो आती थी। सूत्रधार ने उससे कहा कि चलो, तुम्हें एक छागनिशु दिला देता हूँ।

लोकरुचि के लिए क्षीव का गीत और नृत्य है। हँसी के साथ अगणित उपयोगी स्वास्थ्य-सूत्रों का ज्ञान इस रूपक से होता है।

साम्यसागर-कल्लोल

कथावस्तु

गणनाथ साम्यवाद का कट्टर नेता है।[2] उसने अपने सैनिक बनाये हैं। ये सभी भारत में, जो कुछ भारतीय है, उसका उन्मूलन करने के उद्देश्य से अनाप-

---

१. क्षीव की दृष्टि में यह गान्धी जी की चिकित्सा है। वह कहता है—

> श्रूयतां महात्मगान्धिवचनम्—
> एकोऽस्ति वैद्यो मम रामचन्द्रः शरीरचेतोमलनीतिदोषात्।
> दूरीकरोत्यौषधमस्ति नान्यदस्यान्तरे राजति रामनाम॥

२. इस नाटक का प्रकाशन प्रणवपारिजात के १२ वें, १३ वें और १४ वें वर्षों के अंकों में छिटपुट हुआ है।

शनाप बातें बकते हैं। नेता कहता है—प्रदेश, राष्ट्र और सारे जगत् को जीत कर तुम सबको सुखी बनाऊँगा।

पुराने सनातन विचारों का यति इनकी भ्रामक बातों को सुनकर गणनाथ से पूछता है कि तुम्हारे साथी क्या गड़बड़ मचा रहे है? अपने ही लोगों को मार कर गृहयुद्ध के बहाने देश का सर्वनाश करते हुए यह सब उत्पात क्यों मचा रखा है? गणनाथ ने उत्तर दिया—

अरे कपटकंचुकधारिन् धर्म न धर्मध्वजिनं न वेद्मि
श्रमार्तदीनान् हृदयेन जाने तेपामसृक्पान-सुपुष्टदेहान्
युष्मान् हि देशस्य रिपून् प्रनीमः।

उसने यति को डाँटा और नारा लगाया—श्रमिको उठो, किसानो जागो, आलसी विलासियों और मध्यवर्गीयों को मिटा दो।

यति ने कहा कि हम लोग तो सबके हित में अपना हित मानते हैं। तुम तो स्वयं महल में रहने वाले, कार में चलने वाले भोगी हो। क्या तुम श्रमिकों तथा कृपकों का रक्तशोषण नहीं करते? गणनाथ ने कहा—अहमस्मि नेता। कोऽपि दोषो न मां स्पृशति। अर्थात् नेता को कोई दोष नहीं लगता।

यति ने कहा कि तुम्हारे अनुयायी भी तो धनी हैं। नेता ने कहा कि जब तक साम्यवाद पूरा नहीं होता, तब तक ऐसा होगा ही।

दोनों की बात बढ़ी। गणनाथ को उस यति से कहना पड़ा कि दण्डदान से तुम्हारी बुद्धि शुद्ध करता हूँ। देखो, मेरे हाथ में 'मुद्गर' हँसिया आदि। हिंसा से भारत का उद्धार होगा। यति सनातन सत्य का उद्घाटन करते चलता बना। बाद में आये दो श्रमिक और कर्पक। उन्होंने गाया—

मिथ्या धर्मो मिथ्यापीशो वित्तं सत्यं मर्त्तः सारः। इत्यादि उन्होंने नेता से कहा—आप की आज्ञा से आन्दोलन करके ५० कारखाने बन्द करा दिया। अब हम बेकार हैं, भोजन नहीं मिलता। कोई उपाय करें। नेता ने सुझाया कि मिल-मालिकों को घेर कर पीटो तो उनकी बुद्धि शुद्ध होगी और काम बनेगा। नेता को हजारों बेकार हड़तालियों की भीड़ से मुठभेड़ हुई। उनको भी परामर्श दिया—हिंसापूर्ण आन्दोलन चलाओ। कल अवश्य मिलेगा। हड़तालियों ने कहा—अब क्या आन्दोलन करें? मिल के संचालक ताला बन्द करके भाग चले। पुलिस का पहरा है। वे लाठी मारते हैं, गोली चलाते हैं। यही हमको मिल रहा है। उनसे संघर्ष करने पर हम मरते हैं। नेता गणनाथ ने कहा—

मरणं मारणं च चिरवांछिता साम्यनीतेर्भित्तिभूमिः।

फिर हजारों किसान आ पहुँचे कि हमें भूमि चाहिए। श्रमिकों ने उन किसानों से कहा कि हम भूखों मर रहे हैं। थोड़ी भूमि हमें भी दो। किसानों ने पूछा—क्या तुमने कभी अपनी मजदूरी में से हमें कुछ दिया है? इस विवाद में दोनों वर्गों में लड़ाई की नौबत आई। गणनाथ ने उसे जैसे-तैसे शान्त किया।

कोई हड़ताली मजदूर भूखों मर रहा था। उसे कन्धे पर लादकर साम्यवादी उस दूकान पर ले गये, जहाँ से गाँव वाले आवश्यकता की वस्तुयें खरीदते थे। दूकानदार पर आरोप लगाया गया कि तुमने अन्न न देकर इस भारवाही को मरणासन्न बनाया है।

आगे चल कर इन साम्यवादियों ने अपने लोगों का उदरभरणार्थ दूकान लूटी। पुलिस को बुलाने वाले वणिक् को बाँधा गया। उसकी दूकान लूटकर उसमें आग लगाई गई। उस आग में दूकानदार के शिशुपुत्र को झोंक दिया गया। उस समय गणसैनिक गा रहे थे—

जय-जय विप्लव जय विद्रोह
त्रुट्यतु भारत-जनगणमोहः
श्रमिकजनानां कुरु संघटनम्।
कर्षक-हर्षक-परभूहरणं
मारय धनिनः करधृतलोहः॥

एक दिन यति के आश्रम पर गणसैनिकों ने धावा बोल दिया। पहले से ही वहाँ के निवासी शान्ति सैनिक बनकर यष्टिक्रीडा में अभ्यस्त थे। दुष्टगण-सैनिकों को शान्ति-सैनिकों ने बन्दी बनाया। उनके सम्प्रदाय के अन्य गण-सैनिक गणनाथ के साथ आ पहुँचे। गणनाथ को मार डालने के लिए उसके ही पहले के अनुयायी उसका पीछा कर रहे थे। यति ने गणनाथ को शरण दी। उसे गेरुआ वस्त्र पहना दिया। उसने स्वयं गणनाथ का वस्त्र पहन लिया। गणनाथ को यति की ध्यान-गुफा में पहुँचा दिया गया। तब गणसैनिक उसे ढूँढते हुए पहुँचे। उन्होंने कहा—

स (गणनाथः) खलु निरन्तरमस्मान् वृथाश्वासेन वाङ्मात्रेण सन्तोष्य न किंचिदपि करोति समाधानम्। वंचकं तं निहत्य नेतारमन्यं वरयामो वयम्।

गणनाथ को मारने के लिए उद्यत सैनिकों से यति से कहा—मैं गणनाथ हूँ। मुझे मार डालो।

चौर-चातुरीय

श्री जीव ने चौर-चातुरीय नामक प्रहसन की दो सन्धियों में चौर्य-कला के विविध निगूढ़ पक्षों का परिचय दिया है।[1]

कथावस्तु

चौरचातुरीय का नायक घटकर किसी रात बहुत बड़ी सम्पत्ति पाकर प्रसन्न सा हो रहा था। उस समय चोर को पकड़ने के लिए पुलिस निकला तो उसे देखते ही घटकर ने अपने को अन्धा जैसा बनाकर उसे सुनाया—

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद् पत्रिका में १९५१ ई० में हो चुका है।

नेत्रहीनस्य मे यथा दिवा तथा रात्रिः ।

उसके विषय में पुलिस का जो सन्देह था, उसके अन्धा होने से दूर हो गया। वह उसे छोड़ कर दूर चलता बना। घटङ्कर ने उसके जाने पर आँख खोली। दूसरा पुलिस उसे चोर समझ कर पकड़ने वाला था। उसके सामने घटङ्कर पागल बन गया। उसका प्रमत्त प्रलाप और चेष्टायें देखकर वह पुलिस चलता बना। उसके जाने पर चोर फिर बढ़-बढ़कर अपनी बड़ाई करता रहा। तीसरे पुलिस ने उसे चोरी के माल-सहित पकड़ लिया। घटङ्कर ने उसे घूस देना चाहा। पर उसकी एक नहीं चली। पकड़ कर ले जाते हुए पुलिस ने जब एक स्थान पर विश्राम करने के लिए उसे बैठाया तो वहाँ की बालू-भरी धूल को पुलिस की आँख में झोंक कर उसने अपने को मुक्त कर लिया। इस प्रकार वह बच निकला।

द्वितीय सन्धि में एक अच्छा सा सन्त घटङ्कर के घर भिक्षा माँगने आता है। उसी समय पुलिस आकर उसे चोर घटङ्कर का मित्र समझकर पकड़ लेते हैं, पर वस्तु-स्थिति का ज्ञान होने पर छोड़ देते हैं।

घटंकर घर पहुँचता है और अपनी पत्नी कालिन्दी को चोरित धनराशि देकर दूर भेज देता है। मार्ग में चोर उसे लूट लेते हैं। उसी चोर को पुलिस पकड़ते हैं।

सन्त ने उस चोर का उद्धार करने के लिए उससे वचन लिया कि प्रतिदिन देवदर्शन करूँगा और सदैव सच बोलूँगा। एक दिन वह राजा का काला घोड़ा चुराने गया तो प्रहरियों के पूछने पर सच-सच बता दिया कि मैं घटङ्कर नामक चोर हूँ और राजा का घोड़ा चुराने के लिए प्रासाद में जा रहा हूँ। उसकी बातों को परिहास मान कर उसे अन्दर जाने दिया गया। वह घोड़ा चुराकर बाहर आ गया और देवदर्शन करने के लिए मन्दिर के बाहर घोड़ा बाँधकर भीतर गया। उसे नगरपाल ने धर पकड़ा। घटंकर को अपने गुरु से रूप-परिवर्तिनी विद्या मिली थी, जिससे उसने काले घोड़े को श्वेत कर दिया। राजा ने नगरपाल को डाँट बताई कि मेरा घोड़ा तो काला था। श्वेत घोड़ा मेरा नहीं है। घटङ्कर छूट गया। राजा ने उससे रहस्य में पूछा कि यह सब कैसे क्या है? सत्यवादी घटङ्कर ने चौरचातुरी का रहस्योद्घाटन किया।

उसी समय वहाँ सन्त आया। उसने घटंकर से दक्षिणा माँगी। घटंकर ने अपना प्राण ही दक्षिणा रूप में दे दिया। सन्त ने राजा से अनुरोध किया कि इन सत्यवादी कलाविद् को छोड़ दें। राजा ने उसे छोड़ दिया और उसकी शोभन आजीविका की व्यवस्था कर दी।

सन्त ने घटङ्कर को उसकी प्रतिज्ञानुसार भारतीय संस्कृति का परिपालक और सुरसरस्वती का रसिक बन जाने की प्रेरणा दी। घटंकर ने भी अपनी चोर-वृत्ति छोड़कर पापों के परिमार्जन के लिए आशीर्वाद किया।

शिल्प

रूपक का आरम्भ घटङ्कर की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह अपनी

उपलब्धियों की चर्चा करता है। इस रूपक में अश्व को काले से श्वेत कर देना छायानत्वानुसारी है।

प्रस्तुत प्रहसन पर प्रबुद्धरौहिणेय नामक मध्ययुगीन नाटक का प्रभाव स्पष्ट है।[1]

चण्डताण्डव

श्री जीवन्यायतीर्थ भट्टाचार्य ने अपने चण्डताण्डव को प्रहसन कोटि में रखा है।[2] इसको प्रहसन के लक्षणों से पूर्णतया लक्षित न होने की प्रतीति कवि को है। उसने इसके प्राक्कथन में कहा है—

This two-act play should come under Prahasana (farce) in the absence of any other classification.

चण्डताण्डव में विगत विश्व-महायुद्ध में योरप के महान् राष्ट्रों ने १९४१-१९४६ ई० तक अपनी हिंसात्मक प्रवृत्तियों का जो नग्न नर्तन प्रदर्शित किया था, उसका परिहास-पूर्ण परिचय दो अंकों के इस प्रहसन में मिलता है। महायुद्ध के सचरणकाल में स्वामी करपात्री जी ने विश्वशान्ति के लिए एक महान् यज्ञ दिल्ली में किया था। उसी अवसर पर इसका प्रथम प्रयोग दिल्ली में किया गया।

कथावस्तु

प्रथम अङ्क में युद्धार्थियों के परस्पर वाचिक संघर्ष की वर्णना है। रूस का नेता (स्टालिन) आरम्भ में धर्म-ध्वंसन की घोषणा करता है। उसकी दृष्टि में धर्म ने विश्व को विनाशात्मक प्रवृत्तियाँ दी है। यथा,

धर्मो नाम कुकल्पनाल्पधिषणप्राणान्तकृद् भीषणो
यन्त्रं किं च पुरोधसां द्रविणदं दीनार्थविद्राविणम्।
दौर्बल्यं भजतामलीकशरणं द्वन्द्वैककन्दं नृणां
स्त्रीणां मानसमोहनः स हि कथं नोत्सार्यतां मादृशैः॥

अयं च धर्मो दूषणो विवेकिनां भूषणं कपटपटूनां घातकः सर्वशुभानां पातकं च सर्वराष्ट्राणाम्। वह अपने आदर्श को अपनाने का सन्देश सभी महान् राष्ट्रों को देता है। तभी उसका सेनापति आकर बताता है कि कैसे हमारे आदमियों ने सम्राट्-सम्राज्ञी, उनके पक्षपातियों, धर्माचार्यों आदि को मारकर

१. मध्यकालीन संस्कृत नाटक, पृष्ठ २१४-२२२

२. इस प्रहसन का प्रकाशन कलकत्ता से आचार्य पंचानन-स्मृति-ग्रन्थमाला के चतुर्थ पुष्प के रूप में हो चुका है। इसकी प्रति सागर-विश्वविद्यालय तथा काशी के विश्वनाथ-पुस्तकालय में है। इसका प्रथम प्रकाशन कलकत्ते की संस्कृत-साहित्य-परिषद्-पत्रिका में हो चुका है।

उनके रक्त से राजधानी की सड़कों को लाल कर दिया है। स्टैलिन ने कहा कि जो बचे-खुचे धर्मध्वजी हैं, उन्हें भी स्वर्ग पहुँचाओ।

धर्मपुरुष का आगमन हुआ। उसने धर्म की राष्ट्रनिर्माणात्मक विशेषताओं को बताया। उसे किसी मन्दिर में निगड-बद्ध करने का आदेश स्टैलिन ने दिया। फिर तो ज्योतिर्मय विग्रह करके गाते हुए वह भारत की ओर भाग आया। उधर पापपुरुष योरप में शक्ति बढ़ाने लगा।

उपर्युक्त पुरुषों के रंगमंच से चले जाने पर हिटलर वहाँ आता है। उसके हाथ में एक नारंगी है, जिसे नचाते हुए वह विश्व को नचाने का अपना अभिप्राय प्रकट करता है। यथा,

जम्बीर-फलमिव वीरनीरसारं वश्यं मे धरणितलं ह्यवश्यभाव्यम्।

हिटलर के साथ मुसोलिनी है। वह कहता है—

तिष्ठामि पृष्ठे भवतो गरिष्ठे जम्बीरखण्डे लवणानुकारी।
अहं मुदास्तीर्य निजं च वीर्यं प्राचीन-रोमस्थितिमुन्नयामि॥

इसके अनन्तर रंगमंच पर आंगल-सचिव इन दोनों से मिलता है। वह अपनी प्रतिज्ञा सुनाता है—

विश्वं नूनं हूणहीनं विधास्ये।

अर्थात् संसार में अब जर्मनों का नाम नहीं रह जायेगा। रूस और अंगरेज प्रतिनिधियों ने जर्मनी और इटली के विरुद्ध सन्धि कर ली। हिटलर ने अपनी प्रतिज्ञा सुनाई—

स्वस्तिकाङ्को ध्वजो योऽयमुच्छ्रितः स्वेच्छया मया।
प्राच्य-प्रतीच्य-निर्भेदं विश्वखेदं हरिष्यति॥

अंगरेज लोग भारताधिकार को भारतहित के लिए मानते थे। इसका निराकरण कतिपय लोग जोरों से कर रहे थे।

इधर जापान ने अपना बल बढ़ा लिया था। उसने हिटलर से मैत्री करके एशिया को अपने प्रभाव में करने की योजना बनाई। हिटलर विश्व के दो खण्ड करके पूर्वी भाग में जापान और पश्चिम में अपना अधिकार चाहता था।

इधर अमेरिका युद्ध में अंगरेजों की ओर से आ कूदा। गुत्थमगुत्थ युद्ध हुआ। इसमें आंगल सेनापति ने मुसोलिनी को और रूस ने हिटलर को गिरा दिया।

प्रथम अंक का अन्त लोभ और क्रोध के संवाद से होता है। उनका बाप पापपुरुष उनके साथ आ मिलता है। वह सुनाता है—

अमेरिका ने जापान का ध्वंस कर दिया। अब तो पाप अपने पुत्र क्रोध और लोभ को लेकर विश्वविजय के लिए निकलता है—पहले पश्चिमी देशों को और फिर भारत को उन्हें परास्त करना है।

द्वितीय अंक में देव-मन्दिर के सम्मुख क्रोध, लोभ, हिंसा और पाप पुरुष आ जुटते हैं। क्रोध और लोभ हिंसा को आगे बढ़ाते हुए उससे कहते हैं—

अग्रेसरीभव विमुक्तशरीरकुण्ठा वर्षं च भारतमनारतमाश्रयस्व ॥

हिंसा को धर्म से भय है। पाप पुरुष उससे कहता है कि मेरे रहते तुम्हें क्या भय ? सभी गाते हैं—

हिंसे नट नट भारतवर्षं मानवशोणितपानसहर्षम् ।

तभी धर्म आ पहुँचता है। उसे देखकर हिंसा अपने साथियों को रक्षार्थ बुलाती है। धर्म के हाथों में अक्षतादि पूजा-सामग्री को देवता को अर्पित करने से वे रोकते हैं। पूजोपहार को वे अपने लिए माँगते हैं। यज्ञ को लेकर विवाद होता है कि कि इसकी क्या उपयोगिता है ? धर्मपुरुष के आते ही यज्ञसामग्री को लूटने की इच्छा करने वाले शत्रु भाग खड़े होते हैं। भरत वाक्य का अन्तिम वचन है—

विश्वकल्याणमस्तु ।

नाट्य-शिल्प

आरम्भ में रंगमंच पर स्टैलिन की अकेले एक पृष्ठ की एकोक्ति है। वक्ता रोषपूर्वक अपनी धर्म-विरोधी भावनायें व्यक्त करता है। इसकी स्वगत से भिन्नता स्पष्ट है। स्वगत में रोष इत्यादि का अभिनय नहीं होता। इस एकोक्ति को स्टैलिन 'सरोषम्' कहता है।

प्रहसन में कतिपय गीतों से इसकी मनोरंजकता बढ़ गई है। अन्यत्र हिटलर के अनुचर नृत्य करते हैं। अनेक स्थलों पर केवल वाद्य ध्वनि से नेताओं की उक्ति पर हर्ष व्यक्त किया जाता है।

रंगमंच पर संवाद की प्रखरता के अनन्तर पात्रों का युद्ध भी दर्शनीय है। यथा,

इति परस्परं कण्ठदेशमाश्रम्य परिक्रम्य च हूणप्रभुः नाटयति आंगलसचिवश्च रोमकनेतुः कण्ठं रुन्धन् दूरे तं निक्षिपति ।

भावात्मक पात्र मानव पात्रों के साथ-साथ रंगमंच पर आते हैं। यथा लोभ और नृत्य रंगमंच पर नाचते हैं—

अन्तकमुखयन्त्रहसितशब्दितशतवक्त्रम् ।
घर्घरघर-घर्घरघर-घोरविकटगर्जम् ॥ आदि

रंगमंच पर कार्य-व्यापार की प्रचुरता है।

चण्डताण्डव प्राच्य और पाश्चात्य शैली के नाटकों का सम्मिश्रण व्यक्त करता है। इसमें मनोरंजन की प्रचुर सामग्री है। भारतीय प्रहसन में शृंगारिकता से अश्लील प्रहसन के स्थान पर नई रीति के ऐसे प्रहसन का विश्वकल्याणात्मक योजनाओं में समन्वय वस्तुतः एक नई दिशा प्रशंसास्पद है।

क्षुतक्षेमीय

क्षुतक्षेमीय प्रहसन का प्रथम अभिनय संस्कृत-साहित्य-समाज के प्रतिष्ठा-दिवस के उपलक्ष्य में हुआ था।[1]

---

१. इसका प्रकाशन रूपक-चक्रम् नामक संग्रह में १९७२ ई० में कलकत्ते से हुआ है।

कथावस्तु

यमराज के कर्मकर चित्रगुप्त पैदल ही चलकर श्रान्त होकर किसी सेठ रंगनाथ के द्वार को अपने आतिथ्य के लिए खुलवाने में समर्थ हुए। पाचक और भृत्य ने डाँटा कि तुम कौन ऐसे असमय में सबको विघ्नित कर रहे हो। चित्रगुप्त ने कहा कि मैं काम का आदमी हूँ। जाकर अपने गृहस्वामी से कहो कि मैं गुप्त निधि बताता हूँ। नौकरों ने कहा कि स्वामी के पास बहुत धन है। बताओ कहाँ क्या है? हम तीनों ही उसे निकाल कर ले लेंगे। दोनों नौकर चित्रगुप्त को पहले अपना हाथ दिखाने के लिए विवाद करने लगे।

गृहस्वामी ने आकर नौकरों को डाँटा, चित्रगुप्त को धर्मशाला का मार्ग बताया, पर ज्यों ही यह ज्ञात हुआ कि अतिथि गुप्त निधि बताता है, त्यों ही वह उसका विनम्र सेवक बन गया। खा-पीकर चित्रगुप्त शय्या पर विश्राम करने लगा।

गृहस्वामी ने कहा—जिसे निधि लाभ होता है, उसकी आयु स्वल्प होती है। बतायें, मेरी आयु कितनी है? तब तो अतिथि ने बताया—मैं चित्रगुप्त हूँ। यमपुरी में रहने वाले तुम्हारे पूर्वजों ने निधि की बात बताई है। तुम्हारी आयु तो केवल एक वर्ष है।

गृहपति रंगनाथ ने कहा कि मैं चिरंजीवी कैसे बनूँगा? धर्मराज ही यह कर सकते हैं। चित्रगुप्त का उत्तर था। रंगनाथ के पुनः पुनः आग्रह करने पर बताया कि पूरे वर्ष सभी दीनदुःखियों के घरों पर तृणाच्छादन कराओ। इस पुण्य से दीर्घायु बनोगे। चित्रगुप्त चलता बना।

द्वितीय मुखसन्धि में यमपुरी का दृश्य है। यम और चित्रगुप्त की उपस्थिति में रंगनाथ वहाँ आता है। चित्रगुप्त ने उसे पहचान लिया। वे उसे पुनः मर्त्यलोक में भेजना चाहते थे। यम ने पूछा कि यह कौन है? चित्रगुप्त ने कहा कि नाम पढ़ा नहीं जाता। पोथी पुरानी पड़ गई है। तब तो यम ब्रह्मा से उसका नाम पूछने गये। इधर चित्रगुप्त ने रंगनाथ से कहा कि यम के लौटते ही नाक में तिनके डाल कर जोर से छींको।[1] रंगनाथ के ऐसा करने पर यम ने कहा—जीव, जीव। चित्रगुप्त ने कहा कि इस छींकने वाले को आपने जीव-जीव कह दिया। उसे जीवित कीजिये। यम ने पूछा कि क्या इसका कुछ पुण्य भी है? चित्रगुप्त ने पुण्य बता दिये। फिर तो यमदूतों को उसे कन्धे पर लादकर मर्त्य लोक में लाना पड़ा।

नाट्य-शिल्प

प्रहसन का विभाजन प्रथम और द्वितीय दो मुखसन्धियों में है। केवल अपनी वाणी से ही कवि हास्य नहीं उत्पन्न करता, अपितु अवागभिनय मात्र से भी हास्य की सृष्टि कराने में वह निपुण है। मेरा हाथ पहले देखा जाय—इसके लिए

---

१. क्षुतं कुरु।

अवागभिनय है—'हस्तं प्रसारयति पाचकः, भृत्यस्तदुपरि, पाचकस्तदुपरि हस्तं रक्षति' इत्यादि।

शतवार्षिक

कलकत्ता-विश्वविद्यालय के सौवें वर्ष की समाप्ति पर जो उत्सव हुआ था, उसमें आये हुए अतिथियों और अधिकारियों के प्रीत्यर्थ संस्कृत-विभागाध्यक्ष के आदेश से इस प्रहसन का प्रथम अभिनय हुआ था।[1]

कथावस्तु

मर्त्यमणि राकेटयन्त्र के साथ ब्रह्मलोक के समीप पहुँचे। उसके शरीर से राकेट चिपका था। उसकी पहली मुठभेड़ स्वर्ग के द्वारपाल से हुई। पश्चात् वहाँ कुज (मंगल) पहुँचा। वह कुब्ज था। फिर भी पराक्रमी था। द्वारपाल से उसने कहा कि पितामह से मिलना है। द्वार छोड़ो। द्वारपाल ने कहा कि इस राकेट वाले के लिए रोक लगा रखी है। मंगल ने राकेट देखा तो उसके होश उड़ गये। उसने द्वारपाल से कहा कि ऐसे ही यन्त्र ने मेरी रीढ़ को बींध कर मुझे विकलाङ्ग कर दिया है। उसने मर्त्यमणि को खोटी-खरी सुनाई तो उसने कहा कि अभी तो तुम्हारी खबर ली है। आगे शीघ्र ही शुक्र और बुध की भी ऐसी ही दशा होगी। मंगल ने कहा कि मैं इन सबको सूचित करने चला।

चन्द्र ने बुध से कहा कि मेरी तो अब दुर्गति हो रही है। मेरी ओर टँङ्क फेंके जा रहे हैं। वे सुधार्थी हैं। चन्द्र ने कम्बल से अपना बचाव किया। मंगल ने कहा—इससे क्या बचोगे? बुध ने चन्द्र से कहा कि मैं दो घड़े लगाये देता हूँ कि छेदकर जब सुधा निकालेंगे तो इन्हीं में संगृहीत होगा। उसे फिर चन्द्र पी लेंगे। तब तक शुक्र पहुँचे और चन्द्र को देख कर पूछा कि ये दो घड़े कैसे तुमसे लटक रहे हैं? चन्द्र ने कहा कि पुत्र बुध ने मेरी रक्षा के लिए यह उपाय कर दिया है। इस बीच बुध ने कहा कि आपकी रक्षा भी मुझे करनी है। आइये, शिर पर हाँडी बाँध दूँ। बाँधकर मन्त्र बोला—

> हण्डिका चण्डिका चैव कथिता जगदम्बिका।
> दर्वी-तण्डुल-संयोगादस्माभावस्य खण्डिका॥

मर्त्यमणि ने राकेट यन्त्र को चलाया। सभी फिर डर कर काँपने लगे। राहु ने चन्द्र को देखा तो पूछा—अरे चन्द्र? किं मां वञ्चयितुमेव भाण्ड-पुटितोऽसि? राहु ने कहा कि कौन है राकेट वाला? मैं उसे खा जाऊँ। यह सुन कर सभी राहु की शरण में जाने लगे। राहु की मर्त्यमणि से मुठभेड़ हुई तो उसने पूछा—

> अरे मर्कटदर्शन, कस्त्वं देवलोकविप्लवार्थमागतोऽसि।

मर्त्यमणि ने कहा कि मैं विज्ञानवली हूँ। राहु ने सबको सम्बोधित करके

---

१. इसका प्रकाशन 'रूपक-चक्रम्' नामक संग्रह में हुआ है।

कहा—इसे पतंग की भाँति पकड़कर ब्रह्मा के पास ले चलें। वहीं इसके विज्ञान की परीक्षा होगी। फिर सभी मर्त्यमणि पर चढ़ बैठे। उसे लेकर ब्रह्मा के पास सभी ग्रहदेवता पहुँचे। चन्द्रमा ने ब्रह्मा से उसका परिचय दिया—

दूरात् क्षतानि कुरुते कायवक्षो मनांसि नः।
विद्युद्दामक्षिपर्यन्त्रैर्यन्त्रणादायिभिः सदा॥

ब्रह्मा ने सब को ढाढ़स बँधाया—

क्रियेत चेन्न यन्त्रीयविज्ञानस्य नियन्त्रणम्।
शतवर्षान्तरे पृथ्वी नूनं ध्वस्ता भविष्यति॥

चिपिटक-चर्वण

कोजागर-पर्व दिवस के अवसर पर चिपिटक-चर्वण का प्रथम अभिनय हुआ था।[1] इसका प्रणयन १९५९ ई० में हुआ था।

कथावस्तु

अतिशय धनी कपाली का छाता नौकर ने मार्ग में फेंक दिया था। इसके लिए कपाली फाँसी लगाकर मरने को उद्यत हो गया। कपाली की पत्नी रंगिणी ने पति का परिचय दिया—

नमोऽस्तु पतिदेवाय ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे।
चतुर्मुखोऽसि कलहे ताडने च चतुर्भुजः॥

पति-पत्नी में कलह चल ही रहा था। तब तक दासी मन्थरा और दास पंगुराम वहाँ लड़ते हुए आ पहुँचे—यह कहते हुए कि तुम मेरा काम करो। रंगपीठ पर वे एक दूसरे को मारते हैं। कपाली ने उनका कलह सुना तो बहुत बिगड़ा। दासी ने बताया कि पंगुराम ने आप की जीर्ण पादुका फेंक दी तो मैंने जीर्ण छाता को मार्ग में फेंक दिया। पंगुराम ने बताया कि ऐसा मैं नहीं करता। तभी पादुका को कोई कुत्ता मुँह में ले कर दौड़ता दिखाई पड़ा। कपाली उसके पीछे-पीछे दौड़ा। थोड़ी देर में वह लौटा। कुत्ते ने कपाली को काट कर लोहूलुहान कर दिया था। कुत्ते को मारने में छाता टूट चुका था। वैद्य बुलाने पर आया। उसने कहा कि लगता है कि पागल कुत्ते ने काटा है। इसे गाय का घी पिलाना है। कपाली ने कहा—दाग़ने से काम चल जायेगा। कटे स्थान को तप्त लोहे से दागा जाय। कपाली ने कुक्कुर-दंश से पगलाने का अभिनय किया और वैद्य को काटने दौड़ा। वैद्य घर छोड़ कर भाग चला।

रंगिणी ने तान्त्रिक को बुलवाया। इस बीच पंगुराम चार पादुकायें लेकर स्वामी को सन्तुष्ट करने के लिए आ गये और बोले कि जहाँ जूता फेंका था, वहीं यह जोड़ी मिली। दूसरी जोड़ी कहाँ मिली? यह पूछने पर उसने बताया कि पादुका के लिए मुझे रोता देखकर किसी दयालु ने अपने घर से निकाल कर

---

१. इसका प्रकाशन रूपक-चक्रम् नामक संग्रह में १९७२ ई० में कलकत्ते से हुआ है।

एक जोड़ी पुरानी पादुका मुझे दे दी। कपाली बिगड़ा कि मेरी प्रतिष्ठा धूलि में मिला रहे हो। अभी तुमको मार डालता हूँ। पशुराम भाग चला।

तब तक नकली तान्त्रिक आ पहुँचा। उसकी योजना थी कि कपटपूर्वक इस कपाली से धन ऐंठ कर गाँव वालों की योजनानुसार कुछ धन रंगिणी को दें। कपाली ने अपना रोग बताया—डाकिनी-ग्रस्त हूँ। तान्त्रिक ने शास्त्र का प्रमाण देकर सिद्ध किया कि कुत्ते के काटने का विकार है—

आत्मानं मन्यते स्वस्थमन्यान् सर्वान् विकारिणः।
श्वमुखात् पादुकाग्राही विकारग्रस्त उच्यते॥

कपाली ने पूछा कि आपके तान्त्रिक प्रयोग के लिए क्या दक्षिणा देनी होगी? तान्त्रिक ने उत्तर दिया—केवल एक हर्रा। तीन मास तक अनुष्ठान के दिनों में कुटुम्ब के सभी सदस्य केवल चिउड़ा खायेंगे और कुछ नहीं। कपाली प्रसन्न हुआ कि इससे तो मेरी बहुत बचत होगी, पर रंगिणी ने ललकारा कि इस व्रत का पालन मैं नहीं कर सकती। वह चलती बनी।

तान्त्रिक ने स्वस्त्ययन कर्म के लिए स्थापनीय घट में पञ्चरत्नदान का आदेश दिया। बीस तोला सोना कलश में डालो तो ६० तोला पाओगे, जैसे प्रेमसुन्दर और मानकुमार ने पाया है। कपाली ने कहा कि एक तोला सोना परीक्षा के लिए रहे। तान्त्रिक ने कहा कि संख्या के आगे शून्य होना चाहिए—

अङ्कः शून्ययुतो ग्राह्यः स्वर्णत्रैगुण्यकर्मणि।
शून्यहीनो यदा ह्यङ्कः शवयः सर्वलयस्तदा॥

तान्त्रिक ने अफीम-मिश्रित निद्रायोगचूर्ण कपाली को खिलाया। कपाली सो गया। घड़े से सोना तान्त्रिक ने ले लिया। फिर कपाली के जगने पर तान्त्रिक ने बताया कि पशुराम के स्पर्श से सोना पानी में मिल गया। इस बीच रंगिणी को पड़ोसियों ने तान्त्रिक से प्राप्त दस तोला सोना दे दिया।

रागविराग

रागविराग नामक प्रहसन की रचना १९५९ ई० में हुई।[१] इसका प्रथम अभिनय सभासदों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

कोई भिक्षुक वीणा पर गाते हुए राजभवन के समीप पहुँचता है—

भज रामचन्द्रमविरामं मधुरमुखतनुवरमभिरामम्।
सीता-करतलशतदललालित-भरतनयनजलधाराक्षालित-
नम्रहनूमद्ग्रस्तकपालितपदयुगमात्मारामम्॥ इत्यादि

द्वारपाल ने उसे रोका कि राजा गाने वाले को गरदनिया कर नगर से

१. इसका प्रकाशन रूपक-चक्रम् नामक संग्रह में हुआ है।

बाहर कर देता है। इस पूरे जनपद में गाना निषिद्ध है। भिक्षु ने गाना बन्द किया और कहा—खाने के लिए गुड़-तण्डुल ही थोड़ा दे दो। द्वारपाल ने कहा कि गुड़ नहीं, यहाँ लगुड मिलता है—यह कह कर मारने के लिए लाठी उठाई।

तब तक दो सैनिक उसे वीणाधारी देखकर पकड़ने को उद्यत हुए। भिक्षुक भागा। उसे पकड़ने के लिए एक सैनिक पीछे-पीछे दौड़ा। दूसरे सैनिक के पास एक सैनिक पहले से बँधुआ था, जिसका अपराध था कि किसी अन्य देश से गाना सीख कर सेना का मनोरंजन लुके-छिपे गुनगुना कर करता था। उसने पकड़ने वाले सैनिक से गिड़-गिड़ाकर कहा कि मुझे यथोचित दण्ड दें, पर पहले बन्धन-विमुक्त कर दें। बड़ा कष्ट हो रहा है। उसकी बातों में आकर सैनिक ने उसे छोड़ा और कहा कि दण्ड-संहिता के अनुसार भूतल पर नाक रगड़ो। पर छूटते ही वह उस पर चढ़ बैठा और बोला—

संगीतरस-विद्वेषी राजा भवति राक्षसः।
तद्वधाय यतिष्येऽहं छलेन च बलेन च॥

यह कह कर वह चलता बना। आक्रान्त सैनिक वहीं अचेत पड़ा रहा। तब तक युवकदम्पती निकला और उसे सचेत करने के लिए तरुणी-तरुणी ने गाया—

श्याम शमय तव वंशीकलरवमबलामाकुलयन्तम्।
श्रवणरन्ध्रमसुबन्धनमन्धं मानसमपि दलयन्तम्॥

सैनिक सचेत हुआ तो उसे देखकर दम्पती हिरन हो गये।

द्वितीय मुखसन्धि में घटना-स्थली राजसभा है। तरुण-दम्पती ने राजा के पास आवेदन किया कि हम लोग राजसभा में गाना चाहते हैं। राजा ने आदेश दिया कि भले गायें, पर मेरे आदेश के बिना गायकों को कोई उपहार न दे। अन्यथा दण्डनीय होगा। दो-चार और सुनने वाले थे, जिनमें एक यति था। पहले तरुण ने गाया और फिर तरुणी ने—

सखि भज धैर्यमिदानीं शोचसि विगतां किं रजनीम्।
अतनुं ननु तनु पुनरपि यत्नं सहसा न त्यज निजधृतिरत्नम्॥

यति ने प्रसन्न होकर अपना कम्बल पुरस्कार में दिया। राजकुमार ने गाने से प्रसन्न होकर उन्हें अपनी अंगूठी दे दी। राजकुमारी ने हार दे डाला।

राजा ने गायकदम्पती से कहा—मेरी आज्ञा बिना उपहार पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। फिर उपहार देने वालों से पूछा—मेरी आज्ञा के विरुद्ध यह क्या कर डाला? यति ने कहा कि गाना सुनने के पहले मैं यति-पथ छोड़कर संसारी बनना चाहता था। पुनः संन्यास के लिए उद्दाम प्रवृत्ति अक्षुण्ण हो गई। राजकुमार ने कहा कि गाना सुनने के पहले आप की हत्या करने की योजना कार्यान्वित करने वाला था। अब इनसे विरत हो गया हूँ। राजकुमारी ने कहा—मैं वयस्क हो चली हूँ। आप मेरे विवाह की चिन्ता से अस्पृष्ट हैं। आज रात को मन्त्रिपुत्र के

साथ गन्धर्व-विवाह करके भाग जाना चाहती थी। गाना सुन कर निर्णय लिया कि आपको क्यों कलंकित करूँ ?

राजा इस उत्तर से वस्तुतः प्रभावित हुआ और यादव-दम्पती को महत्व मुद्रा के साथ उपहार दे दिये। सैनिकों के द्वारा पकड़कर लाये हुए भिक्षुक और सैनिकों को भी राजा ने पुरस्कार दिये और सांगीतिक निषेधाज्ञा हटा ली।

भट्टसंकट

जीव का भट्टसंकट पाँच अङ्कों का उच्चकोटिक प्रहसन है।[1] इसका अभिनय कलकत्ते में सारस्वती-महोत्सव के अवसर पर हुआ था।

कथावस्तु

यज्ञपरायण भट्ट की पत्नी कर्कशा होने के साथ ही कुरूप थी। भट्ट उससे त्रस्त रहते थे, किन्तु यज्ञ में पत्नी को साथ रहना ही चाहिए—इसलिए उसको कण्ठी बनाये हुए थे। भट्ट के यज्ञों से राक्षस उद्विग्न थे और उन्होंने उनकी पत्नी का ही अपहरण कर लिया। भट्ट के निवेदन करने पर राजा ने कहा कि दूसरी पत्नी कर लें या कहें तो पत्नी की स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर यथार्थ प्रस्तुत करें। पर भट्ट को तो वही अपनी परिचित खूसट चाहिए थी। किसी सर्वज्ञ पुरुष ने ध्यान-बल से पत्नी का ठिकाना बता दिया। राजा ने गढपुरुष भेजकर पत्नी की खोज कराई। वहाँ उसने देखा कि राक्षस उसका विवाह किसी वानर से करने के लिए कृतसंकल्प है। वह स्वयं वानर बनकर उनकी पकड़ में आ गया और वधू के कान में अपनी योजना कह कर उसे विवाह के लिए तैयार कर लिया। विवाह के आयोजन के समय राजा की सेना वहाँ पहुँच कर धर-पकड़ करती है और राक्षस बन्दी बनाये जाते हैं। राक्षस गिड़गिड़ाते हैं। उन्हें मुक्त तो कर दिया जाता है, किन्तु उन्हें पत्नी को सौन्दर्य प्रदान करना पड़ता है। भट्ट पुनः सपत्नीक हो जाता है।

शिल्प

भट्टसंकट में प्रहसन की नवीन दिशा का आविर्भाव हुआ है।[2] इसमें न तो विदूषक की औदरिकता है और न अश्लील और भोंडे शृंगार की छीछालेदर

१. इसकी रचना कवि ने डा० पशुपतिनाथ शास्त्री, संस्कृत साहित्य-परिषद् के मन्त्री तथा कलकत्ता-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के परामर्श से प्रोत्साहित होकर की थी। पशुपति नाथ सुधरे हुए व्यक्तित्व के विद्वान् थे। जीव का उनके विषय में कहना है— (He) encouraged scholars to investigate into the unexplored areas of Sanskrit literature. Farces and satires he particularly wanted to be reconstructed on the basis of the dramaturgical rules. etc. दुर्दैव की भूमिका से।

२. भट्टसंकट का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-परिषद् पत्रिका में १९२६ ई० में कलकत्ते से हुआ।

है। इस प्रहसन में गूढपुरुष का वानर बनना उच्चकोटिक छायातत्त्व का निदर्शन है।

पुरुष-रमणीय

पुरुषरमणीय की रचना १९४७ ई० में स्वतन्त्रता के अरुणोदय में हुई थी।[1] इसका प्रथम अभिनय वङ्गीय-ब्राह्मण सभाध्यक्ष के आदेशानुसार हुआ था। १९३३ ई० में काञ्चीकाम-कोटि-पीठ के कुम्भकोण-मठ में अधिष्ठित जगद्गुरु चन्द्रशेखर सरस्वती—शङ्कराचार्य पैदल ही भारत का भ्रमण करते हुए गंगातट-पथ से कलकत्ता आये थे। वहाँ वे वंगीय ब्राह्मण-सभा में भी पधारे थे। इसी उज्ज्वल क्षण की स्मारिका रूप में यह कृति निर्मित हुई थी।

जीव ने पुरुष-रमणीय को पुरातन पद्धति के प्रहसनों से कुछ भिन्न बनाया है। उनका कहना है—

Regarding the nature of this play, I leave to the public to have their own judgment. I have classed it under Prahasana (farce or comedy) in the absence of any better classification.

कथावस्तु

प्रथम अङ्क में सुबन्धु और सोमदत्त दो स्नातक जीविका की खोज में घूमते हुए सीमन्तिनी नामक रानी के प्रासाद के पास पहुँचते हैं। वह दीन-दुःखियों को दान देती थी। उसके पास जाने के पहले अपनी सारी धनराशि बाहर ही राजपुरुष के पास रख छोड़ना पड़ता था। सुबन्धु ने उससे झगड़ा मोल लिया कि तुम डाकू हो। राजपुरुष ने कहा कि भिखमंगे से तो डाकू ही होना भला। यह बात सुबन्धु को लग गई। उसने कहा कि अब डाका ही डालूँगा। इस बीच वृद्ध दम्पती सीमन्तिनी से दान लेकर उधर से निकला। प्रमोद भरी बातचीत में वृद्धा ने कहा कि अब तुमसे प्रेम का युवोचित रूप होगा—

झणझणतमिदुसद्दविमिस्सहस्सं सिक्कन्तनिस्सरिदलालमुहं सिजन्ती।
कासोवमानसिदवालविलोलचम्मं वत्तं मुहू चुहुत्ति तदा विचुम्बे॥

सुबन्धु उन्हें लूटने चला। वृद्ध ब्राह्मण ने समझाया—पाप क्यों करते हो? अपनी भार्या के साथ सीमन्तिनी के पास चले जाओ। वहाँ से मेरे समान ही धन पाओ। सुबन्धु ने कहा कि मेरी पत्नी नहीं है। वृद्ध ने कहा कि इस अपने साथी को भार्या रूप में साथ ले लो। हमारी पत्नी की पेटी में साड़ी, सिन्दूर, यावकादि हैं। इनसे साथी का नारीवेष बना डालो। ऐसा किया गया।

द्वितीय अङ्क में सीमन्तिनी से प्रचुर धन पाकर वे बाहर निकले। कुछ दूर

---

१. इसका प्रकाशन सं० सा० प० पत्रिका में १९४८ में कलकत्ते से हुआ है। इसकी पुस्तकाकार प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

जाने पर सोमदत्त को अपने नारीत्व की प्रतीति होने लगी। सुबन्धु ने उसे स्पष्ट बता दिया—

कृत्रिममुरोजयुगलं सरोजमुकुलं जयति समुन्नत्या।
कठिनं पीनं श्रीफलमपि विफलयति श्रिया निजया॥

सोमदत्त रोने लगा कि मेरे पितृवंश का विलोप हो गया। पिता का एक ही पुत्र था। अब स्त्री बन गया।

इधर सुबन्धु ने कहा कि मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। सोमदत्ता ने कहा कि तुम घर जाओ। मैं अब यहीं डूब मरूँगी।

पश्चात् वही राजपुरुष आया। उसने सुबन्धु से कहा कि यह कन्या कहाँ से चुराई तुमने? आते समय कोई स्त्री तुम्हारे पास नहीं थी। वृक्षों के बीच यह तुम्हें कहाँ मिली?

सुबन्धु ने देखा कि राजपुरुष बहुत बलवान है। उससे वश नहीं चलता। उसने शंकर का स्मरण करना आरम्भ किया—रक्ष रक्ष नो विपदः। राजपुरुष शङ्कररूप में परिवर्तित हो गया। उसने उनकी भक्ति से प्रसन्न हो कर कहा—सोमदत्ते, तुम्हारे पिता को दूसरा पुत्र शीघ्र होगा। सुबन्धो, पूर्वजन्म की यह पत्नी कर्मवशात् कुछ दिनों के लिए पुरुष मित्र थी। अब पुनः तुम्हारी पत्नी है।

समीक्षा

इस प्रहसन का कथानक अम्बिकादत्त व्यास के सामवत नामक नाटक पर पर उपजीवित है।[1] इसको कोरे प्रहसन का रूप देना और साथ ही इसमें हास्यात्मक सविधानों का सयोजन जीव की कलासाधना के परिपाक से सम्भव हुआ है। लेखक के शब्दों मे—साम्प्रतं स्वतन्त्रे भारते देवभाषया राष्ट्रभाषा-प्रतिष्ठाकाम्यया सम्यगाधुनिकविषयानुबन्धि लोकरोचकं लघुसाहित्य-मावश्यकमिति।

नाट्यशिल्प

पुरपरमणीय की प्रस्तावना से ही हास्य-रस की निर्झरिणी प्रवाहित होती है।[2] इसमे सूत्रधार और विदूषक का लम्बा संवाद प्रेक्षकों को हँसाने के लिए है। सोये हुए विदूषक को सूत्रधार जगाता है तो उसे गाली सुननी पड़ती है—दुर्जन, दुर्मनुष्य, हतभागधेय, परमंगलभंगकर्म निपुण। सूत्रधार ने कहा कि क्यों उल्लू की भाँति दिन में भी सो रहे हो? विदूषक ने उत्तर दिया—क्यों काँव-काँव कर रहे हो? बातचीत के बीच सूत्रधार कहता है कि ब्रह्मा ने क्या बुद्धिमानी की कि पेट को चमड़ी का बनाया, जो पर्याप्त विस्तार ग्रहण कर लेता है। यदि कहीं हड्डी का होता तो पेटुओं को लाचार होना पड़ता। विदूषक ने ठीक ही

१. जीव को यह तथ्य अपनी कृति की विज्ञप्ति में स्पष्ट कर देना चाहिए था।
२. कवि ने प्रायः सभी प्रस्तावना मे विदूषकोत्थ हास्य का प्रवर्तन किया है।

प्रतिवाद किया कि हाथी आदि अन्य पशुओं को इतना बड़ा पेट देकर मनुष्यों के प्रति क्या अन्याय नहीं किया ब्रह्मा ने कि उनको छोटा सा पेट दिया ?

प्रहसन में प्रमोद की मात्रा को गीतों के दो बार आयोजन से अतिशयित किया गया है। डाकुओं का शिव की स्तुतिपरक गीत है—

जय नटनाथ पुरारे
कुटिलजटाऽऽकलिताम्बरवारे
शशिधर-सुन्दररङ्गं विपधरभीषणमङ्गम्
धृतवरपरशुकुरंगं वहसि दहनमपि भाले।
धुधुकुटुधुंकुटुताले प्रविकटहास्य कराले ।। इत्यादि

छायातत्त्व की विशेषता इस रूपक में भी है। सोमदत्त का स्त्री बनना और शंकर का दस्यु बनना—दोनों सार्थक छायातत्त्वानुसारी घटनायें हैं।

देशकालोपयोगिता

कवि ने इस प्रहसन को देशकालोपयोगी बताया है। इसके समर्थक कतिपय वाक्य इस रूपक में अधोलिखित हैं—

(१) एकस्य कस्यापि मारणं विनान्यस्य धनागमः कुतो भवति।
(२) प्रतारणा नो भवति प्रतारणा संसारदुःखार्णवपारदायिनी ।।
फलं च सद्यो दधती सुखायति प्रतीयते दैवदयानुवर्तिनी ।।
(३) विना विवाहं दाम्पत्यं परिहासाय कल्पते।
स्वतः पुमाननागाः स्याद् योपा दोषास्पदी भवेत् ।।

दरिद्र-दुर्दैव

जीव ने १९६८ ई० में प्रकाशित दरिद्रदुर्दैव के विषय में कहा है कि अब तक के लिखे मेरे प्रहसनों में यह अन्तिम है।[1] इसके उपोद्घात में कवि ने अपना रोना रोते हुए एक गम्भीर बात कही है, जो कवि की सभी रचनाओं के लिए ठीक है—

प्रहसनं नाम किञ्चिल्लघुसाहित्यं पलाशतरोरिव यस्य रचनया न ज्ञानकाण्ड-गौरवं न वा यशःपुष्पसौरभं प्रकटीभवेत्। अतो ममेयं समीहा किञ्चित् कारणान्तरमपेक्षमाणा स्फुरति। तच्च कारणं बहुजनप्रचार-प्रसिद्धाया मृतभाषाया अद्यापि हास्य-स्फुरणं भवतीति प्रत्यक्षीकुर्वन्तु भवन्तः।

इसका अभिनय ऋषि-बंकिमचन्द्र-महाविद्यालय की देवभाषा-परिषद् के वार्षिक उत्सव में हुआ था।

कथावस्तु

नायक वक्रेश्वर शर्मा भीख मांगते हैं। उनका रूप है—छिन्नकर्पट, छिन्न-पादुक, छिन्नातपत्र। किसी दिन अपूर्ण भीख मिली। घर पहुँचने पर थोड़ा सा चावल

१ इसका प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद्-ग्रन्थमाला में ३१ संख्यक हुआ है।

भीख मे से अपने लिए अलग कच्छ-वस्त्र मे बाँध लेता है। घर के समीप आने पर भूखे लडकों की मारपीट होती है। उनकी माता लम्बोदरी आ जाती है। वक्रेश्वर भी पहुँच जाते है। भीख से कुछ भोज्य पाने की आशा से वे चुप हुए। वक्रेश्वर ने भिक्षा मे प्राप्त केवल चावल ही चावल गृहिणी मन्दोदरी के सामने रख दिया। षडानन ने कहा—इसमे गुड, सत्तू और लड्डू तो है ही नहीं। मन्दोदरी ने कहा कि इसमे तो पुत्रों के और आप के उदर पूर्त्यर्थ भोजन है। मेरे लिए क्या रहेगा ? वाक्कलह के बीच वक्रेश्वर ने पत्नी से कहा—

अहो स्वदभाग्ययोगेन दुर्भिक्षं न जहाति माम्।

मैं तो घर छोड कर चला। पत्नी ने कहा—लडको को लेते जाओ। तुम्हारे कच्छ वस्त्र मे उन्हें बाँधे देती हूँ। ज्यो ही कच्छ-वस्त्र खोला कि उससे चावल की पोटली निकली। पत्नी ने कहा कि कुटुम्बी जनो से भिक्षान्न छिपाते हो—यह पचों से विचरवाती हूँ।

ग्रीष्म मे एक दिन भीख माँगने के लिए उपर्युक्त सभी जन निकले। प्यास से सभी त्रस्त थे। पानी का कही कोई ठिकाना नही था। वक्रेश्वर वृक्ष के नीचे सो गया। उधर से क्षुद्रराम नामक बनिया निकला। वह कोटीश्वर लगा। वक्रेश्वर ने उससे कहा—भोजन के बिना हम सब मर रहे हैं। कुछ भिक्षा दे दो। क्षुद्रराम ने बचने का उपाय निकाला कि मार्ग मे भीख न देना—ऐसा पिता-पितामह का आदेश है। घर पर देता हूँ। घर कहाँ है—यह पूछने पर उसने टेढे मार्ग से दस मील चलने पर नदी पार करने पर अपने घर पहुँचने का विक्रम समझा दिया। फिर भीख क्या मिलेगी ?—ताम्रपणार्ध। तब तो वक्रेश्वर ने उसे शाप दे डाला—मेरे ही समान तुम भी बनो।

क्षुद्रराम के प्रस्थान के पश्चात् कमण्डलु लिए कोई सिद्ध उधर से निकला। उसकी पत्नी साथ आने में विलम्ब कर रही थी, क्योंकि स्वर्ग मे वह प्रसाधन करने में लगी थी। सिद्ध के पास शिव प्रदत्त तीन पाशकशलाकायें थी, जिनसे वह कोई काम ले सकता था। पत्नी के विलम्ब से खिन्न होकर उसने पहली शलाका फेंक कर पत्नी के मुँह पर बकरी की पूंछ जैसी मूँछ जमा दी। तब सब से उपहसित सिद्धा भागती हुई सिद्ध के पास पहुँची। सिद्ध ने कहा—तुम्हें पुरुषों की समता प्राप्त हो गई। अब दूसरी शलाका के प्रयोग के समय पति ने माँगा कि पत्नी की मूँछ मिट जाय और पत्नी ने धीरे से माँगा कि पति को लगूर जैसी पूँछ लग जाय। ऐसा ही हुआ। सिद्ध ने अपनी पूँछ की प्रशसा और कृतित्व की वर्णना की—

लांगूलं चिर मंगलं हि पुरुषस्योपाधिसंज्ञां दधत्
मर्यादा-बल-वीर्य-वित्तयशसां संसूचना-सुन्दरम्।

---

१. क्षुद्रराम कहता है—हंहो ! जनहीनेऽस्मिन् प्रान्तरे स्वकीयभाग्योदयं गोप्यमपि न कथं चिन्तयामि।

यावद्दीर्घतरं भवेच्च तदिदं तावन्महत्त्वं नयेन्
निष्पुच्छस्य च तुच्छता बुधसमाजान्तर्मुधा जीवनम् ॥

इधर लम्बोदर प्यास से मूर्छित हो गया। वक्रेश्वर कहीं से जल लाने के लिए कमंडलु लेकर दौड़ा। सिद्ध से यह सब देखा न गया। उसने तृतीय पाश को फेंक कर तत्काल कमण्डलु भर जल प्राप्त करके मन्दोदरी को दिया। सबकी प्यास मिटी।

इधर वक्रेश्वर का कमण्डलु भी जल से भर गया। उन्हें सिद्ध का प्रभाव विदित हुआ। उन्होंने दुखड़ा रोया तो उन्हें दिव्य पाश देकर उनका प्रभाव सिद्ध ने बताया कि इनसे जितना तुमको मिलेगा, उसका दूना पड़ोसियों को मिलेगा। इनका सात्त्विक प्रयोग न करने से पाश तुम्हारे पास से विगलित हो जावेंगे।

वक्रेश्वर की इच्छानुसार तब तो उनके कुटुम्ब के सभी भिक्षापात्र अन्न से भर गये, पर साथ ही अन्य सभी भिक्षुकों को अतिशय अन्न मिला। यह वक्रेश्वर को सहा नहीं गया। उसने कहा—

अन्धः कुष्ठी दरिद्रो वा प्रतिवेशी वरं भवेत्।
समानधनगर्वेण स्पर्धमानो हि दुःसहः ॥

वह पाश फेंक कर अपने साथ सबको (विशेपतः क्षुद्रराम को) दरिद्र बनाना चाहता था। तभी सिद्ध, ने आकर उन्हें छीन लिया। वक्रेश्वर प्रसन्न हो गया।

नाट्यशिल्प

दरिद्रदुर्दैव का अङ्कारम्भ नायक की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह अपनी करुणापूर स्थिति की सूचना देता है—दिन भर भीख माँगने पर भी पर्याप्त भिक्षा न मिली। कृपण कृपाण-रूप धनिक हैं, कठोर निदाघ है, स्वल्प भिक्षान्न से चिन्ता, कुटुम्बी जनों की अग्नि-भक्षी भूख इत्यादि।[१] द्वितीय मुखसन्धि के बीच में क्षुद्रराम नामक वणिक की सूचनात्मक एकोक्ति है।

रंगपीठ पर आङ्गिक अभिनय का सौष्ठव हैं। लम्बोदर और षडानन में चपेटा मारना और वकोटा-वकोटी होती है।

जीव ने शिवस्तुति का समावेश कथानक में करके गीत प्रस्तुत किया है। यथा,
देवदयामय शमय पिपासां सफलय बालकयुगल हृदाशाम्। इत्यादि

वनभोजन

श्री जीव का वनभोजन प्रहसन-कोटिक रूपक है।[१] इसका अभिनय ऋषि बङ्किमचन्द्रमहाविद्यालय के शिष्ट-मण्डल के प्रीत्यर्थ हुआ था। श्री जीव उस समय वहीं अध्यापक थे। इसी उद्देश्य से लेखक ने इसका प्रणयन किया था।

कथावस्तु

विद्यालय के छः छात्र सुप्रिय, देवप्रिय, सुमन्त्र, सुबुद्धि, अभिराम और अतिप्रिय

---

१. इसका प्रकाशन प्रणव-पारिजात के ४.६ में हुआ है।

वनभोजन के लिए सामान लिए-दिये चल पड़े। वहाँ वनभूमि मे पहुँच कर सामान रख दिया गया और सुप्रिय तथा देवप्रिय ने पेट को हाथ से सुहलाते हुए गाया —

उदर त्वमहो परम ब्रह्म।
प्रेयः श्रेयः साधन-रम्य। दानव-मानव-कीटपतङ्गान्।
किन्नरगणभुभनिर्जर-संघान्व्यापृणुषे वपुरन्तरगम्य।
त्वयि मतिरास्तामयि जननम्य
चर्ममय त्वं कर्मविशालं तनुषे नन्दितजीवनकालम्।
प्राणरसायनमहिमस्तम्भ प्रिय जयजित गिरिगह्वरदम्भ॥

किसी बड़े पेड़ के नीचे भोजन पकाने की तैयारी होने लगी। सुप्रिय को सूझा कि यदि सब कुछ पकने पर ऊपर से किसी पक्षी ने पुरीष उसके ऊपर कर दिया तो हमारी क्या दशा होगी? देवप्रिय ने सुझाया कि पाकारम्भ से पहले ही ऊपर बड़ा वस्त्रवितान बना ले। वैसा वस्त्र कहाँ से खरीदा जाय, इस समस्या का समाधान न होने पर यह तय हुआ कि तीर-धनुष से अथवा ढेला मार कर पक्षियो को लोग उड़ाते रहे। पर ढेला ऊपर से कही हमारे ही सिर पर या हँडिया पर ही गिर पड़ा तो? चलो उस जीर्ण मन्दिर में चलें—यह अभिराम ने सुझाव दिया। वहाँ इन्धन तो वे लाये ही नही थे। देवप्रिय हँसिया लाया था। उसे अभिराम ने माँगा तो देवप्रिय को लोकोक्ति याद आ गई—

परहस्तगतं दात्रं पात्रं च परिचुम्बितम्।
गात्रं च परभारार्त्तं सदा त्रासाय कल्पते॥

पर वह स्वयं अपनी हँसिया लेकर उसके साथ लकड़ी काटने चल पड़ा। उन्हे ढूँढने के लिए सुबुद्धि और सुप्रिय वन मे पहुँचे। वहाँ कही खड़खड़ाहट हुई। सुबुद्धि ने प्रकल्पना की कि शार्दूल का आक्रमण अवश्यम्भावी है। क्यों—

महान् व्याघ्रः कश्चिच्चलविपुललांगूलसहित—
स्तले बिभ्रद्भीमः शमन इव नो क्रामति पुरः॥

सुप्रिय तो भाग चला। सुबुद्धि भाग न सका। उसने कहा कि भीरु थोड़े ही हूँ। देखूँ कौन जानवर है? वह निकला भिक्षुक। सुबुद्धि ने मन में सोचा कि यह साला चीते से भी बढ़ कर भयकर है। क्यों।

शार्दूलो भर्दयेज्जीवं वने निर्घूय चेतनाम्।
भिक्षुकोऽर्ह'ति जीवन्तं वसन्तं यत्र कुत्र वा॥

उससे बचने के लिए वह भाग गया।

सन्ध्या के समय सुबुद्धि मन्दिर मे पहुँचा तो उसने दीप बुझा कर हड़बड़ी पैदा की क्योकि उसे व्याघ्र-संकट मे सुप्रिय ने डाला था। अब दीप कौन जलाये? सबने अपना-अपना काम कर लिया था। यह नया काम किसके मत्थे पड़े? विना दीप जलाये खाया नही जा सकता। अन्त मे अतिप्रिय ने समाधान निकाला कि हममें से जो सर्वप्रथम हुङ्कार करे, वही दीप जलाये। तब सभी मौन हो गये। तभी

वहाँ भिक्षु आया। वहीं वह रहता था। दीप जलाकर उसने देखा तो विस्मय में पड़ा कि भोजन तैयार है, ये लोग खा नहीं रहे हैं। उसने उनको कुछ न बोलते या करते देखा तो हिम्मत बढ़ी और वह सब कुछ बाँधकर चलता बना। खा-पीकर भीतर आया और जो कुछ बचा-खुचा था, लेकर चलता बना।

इस बीच तीन पुलिस आये। उन्होंने डाकुओं का पीछा करते हुए चुपचाप वन-भोजियों को पकड़ने के पहले भिक्षुक को पकड़ा कि तुम डाकू हो। उसने कहा कि मैं डाकू नहीं हूँ। डाकू उस मन्दिर में हैं। उन्होंने उन सभी मौनावलम्बियों को पकड़ा। वे बोले नहीं, क्योंकि बोलने वाले को दीप जलाने का काम करना पड़ता। पुलिसों ने समझा कि इन्होंने छककर पी ली है। अतएव बोलने में असमर्थ हैं। वहीं नगरपाल बुलाया गया। उसने कहा कि इन्हें कूटकाट कर लूट की वस्तुओं का पता लगाओ। बेंत की मार खाने पर अतिप्रिय बोला—म्रियेऽहम्। तब तो उसके शेष साथियों ने कहा कि तुमको दीप जलाना पड़ेगा। उन्होंने सारी बात बताई तो नगरपाल ने उनको मूर्ख विद्यार्थी जान कर छोड़ दिया।

शिल्प

वनभोजन की प्रस्तावना हास्यमयी है। इसमें आरम्भ में ही अभिनय है विदूषक का मुँह पीछे करके चलते हुए रंगमञ्च पर आना। बात यह हुई कि उसकी कमाई देख कर पत्नी ने कहा कि यदि अधिक नहीं कमाना हो तो वन में जाओ। यही लज्जा का कारण था। वनभोजन विदूषक को करना पड़ेगा—यह विदूषक और सूत्रधार की समस्या है, जिसे लेकर नाटकीय पात्र रंगमंच पर आते हैं।

यह प्रहसन दो मुखसन्धियों में विभक्त है।

बीच-बीच में गीतों का समावेश हास्य को प्रोत्तेजित करता है। यथा, भिक्षुक का मुफ्त का खा-पीकर गीत है—

गहनवने निशि भोज्यं वितरसि तमसि विधूदय जय हे।
तव चरणानत-सततशरण रतजनमिममुन्नय जय हे॥

स्वातन्त्र्यसन्धिक्षण

श्री जीव का स्वातन्त्र्य संधिक्षण एकाङ्की प्रहसन है।[1] इस रूपक में देश की उस राजनीतिक परिस्थिति का वर्णन है, जिसमें भारत स्वतन्त्र तो हुआ, किन्तु विभाजित होकर। विभाजन का कारण विदेशी शासकों की नीति बताई गई है। वे भारत को एक विशाल राष्ट्र के रूप में नहीं पनपने देना चाहते थे। क्षेत्रफल की दृष्टि से बड़े देशों का भविष्य अच्छा होना अवश्यम्भावी है—इस भय से उन्होंने भारत की महिमा को जड़ से खोदने के लिए शास्त्र-मूलित राष्ट्र पाकिस्तान को जन्म

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद् की पत्रिका में १९५७ ई० में हुआ है।

दिया। इसमें अंगरेजों की कुटिलता का सांगोपाङ्ग निदर्शन है। इस एकाङ्की में परिहास की मात्रा स्वल्प ही है।

इनके अतिरिक्त श्री जीव के प्रमुख रूपक हैं—तैलमर्दन (प्रहसन) नष्टहास्य (प्रहसन) तथा स्वाधीनभारतविजय नाटक।[1]



१. इनका प्रकाशन कलकत्ते से १९६४ ई० में हुआ है।

अध्याय १०४

मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक का नाट्य-साहित्य

याज्ञिक गुजरात में खेडा जनपद के नडियाद (नटपुर) गाँव के निवासी थे। इनका जन्म ३१ जनवरी १८८६ ई० में और मृत्यु १३ नवम्बर १९६५ ई० में हुई। इनके पिता माणिकलाल और माता अतिलक्ष्मी थीं। उन्होंने आरम्भिक शिक्षा नडियाद में और उच्चस्तरीय शिक्षा बड़ौदा में पाई। इनकी बी० ए० की परीक्षा के अध्ययन काल में श्री अरविन्द घोष महाविद्यालय के आचार्य थे। मूलशंकर वैङ्क आदि में विभिन्न स्थानों पर काम करके १९२४ ई० में शिनोर में शिक्षक हुए। इसके पश्चात् ही इनकी लेखन प्रवृत्ति विशेष उत्तेजित हुई। आगे चलकर वे बड़ौदा में संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। उन्होंने सेवावृत्ति से विश्रान्ति होने पर शेष जीवन नडियाद में विताया।

कविवर को जीवन काल में पर्याप्त सम्मान मिला। वाराणसी की विद्वत्परिषद् ने इन्हें साहित्यमणि की उपाधि दी। शंकराचार्य ने श्रीविद्या की उपाधि से उन्हें समलंकृत किया।

याज्ञिक की जीवनचर्या तपोमय थी। उन्होंने अनवरत साधना के बल पर संस्कृत-समाज को उत्कृष्ट साहित्य प्रदान किया। उनके नाटकों में गीतों के समावेश और उनकी रचना विजय-लहरी (गीतिकाव्य) से उनकी संगीतमर्मज्ञता प्रमाणित होती है। कविवर का देशप्रेम उस युग के नवजागरण के प्रभाव से प्रोत्फुल्ल हुआ था। *श्री अरविन्द के महाविद्यालय में उनका चरित्र निर्मित हुआ था*। उन्होंने राष्ट्रनिर्माताओं के चरित का गहन अध्ययन और अनुसन्धान करके ऐतिहासिक नाटकों का प्रणयन किया। इनके अतिरिक्त गुजराती भाषा में पाँच पुस्तकें लिखीं, जिनमें मेवाड़ प्रतिष्ठा, हर्षदिग्विजय (नाटक) आदि ऐतिहासिक कृति हैं। इनका भाष्य ग्रन्थ संस्कृत में सप्तर्षिदृष्टवेदसर्वस्वम् है।[२]

याज्ञिक के तीन नाटक क्रमशः प्रताप-विजय, संयोगिता—स्वयंवर और छत्रपति-साम्राज्यम् हैं।[१] इस युग में अनेक कवियों ने उच्च कोटिक ऐतिहासिक चरितनायकों की गाथा से विशेषतः नाट्यविधा को सम्भृत किया है।

प्रताप-विजय

कवि ने प्रताप विजय की रचना गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा का वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह, श्रीपाद शास्त्री का श्री महाराणा प्रताप सिंह चरितम्,

---

१. ये तीनों नाटक बड़ौदा से छप चुके हैं। इनकी प्रतियों प्रयागविश्वविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्य हैं।

२. इसमें देवताओं को स्वर्ग की प्रभा रूप में बताया गया है। कवि के शब्दों में—The Conception of God as Heavenly Light appears to be common in almost all the religions of the world.

आइने-अकबरी और जहाँगीर-नामा आदि पुस्तकों का अध्ययन करके लिखा था। इसका प्रणयन सर्वप्रथम १९२६ ई० में हुआ था। प्रकाशन के पूर्व १९३१ ई० में लेखक ने इसका संशोधन किया था।[1] मेवाड के महाराजाधिराज महाराणा भूपालसिंह ने इस नाटक की सम्पूर्ति में विशेष योगदान दिया। इस नाटक में नव अङ्क है।

कथासार

अनेक सामन्तों को मानसिंह ने अपनी कूटनीति से अकबर के अधीन करके प्रताप से मिल कर उनसे कहा—आप अकबर का प्रधान सामन्त-पद अलङ्कृत करें। प्रताप ने कहा—सूर्यवंशी राजा ऐसा कैसे करेगा।[1] मान सिंह ने कहा कि आप कम से कम मित्र तो अकबर के बन ही जायें। राणा ने कहा कि यह भी नही होगा। बात कुछ बनी नहीं। उसके पश्चात् अमर सिंह के साथ मानसिंह नगर-दर्शन के लिए चला। अमर ने स्वतन्त्रता-देवी का विजय-स्तम्भ उन्हें दिखाया, जो पर्वतश्रेणी के रूप में नगर के चारो ओर थे। आगे सर प्रासाद में वे पहुँचे।

भोजन के समय मान का अपमान हुआ। राणा उसके साथ भोजन के लिए नही आये। मानसिंह से मिलने पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि अकबर के सम्बन्धी आप है तो हमारे साथ आप का सहभोज कैसा? मान ने अमर्ष भरे शब्दो में कहा—

सद्यः समेत्य शमयामि तवावलेपम्। १.२४

मन्त्री ने प्रताप से कहा कि मानसिंह अपने अपमान की चर्चा अकबर से करके वैर बढ़ायेगा। अब हम लोग यथाशीघ्र लडाई करने के लिए सज्जित हो जायें। पर्वत-प्रदेश को युद्धभूमि बनाकर हम लोग सफलता से लडते हैं। सभी हल्दीघाटी की ओर युद्ध की प्रतीक्षा मे चल पडे।

द्वितीय अङ्क मे प्रताप के भाले के प्रहार से मानसिंह के मारे जाने की सूचना मिलती है।[2] घायल हुए प्रताप के अश्व की मलहम-पट्टी होती है। प्रताप फिर लडने के लिए चल देता है। प्रताप ने संवेदना प्रकट की—

दुर्गाद्रितुङ्गसरिदुत्प्लवने प्रवीरो व्यूह-प्रभंजनपटुः समरे सहायः।
मत्स्पर्श-हर्षिततनुः समयेङ्गितज्ञो हा छिन्न एष विधिनैकपदेऽश्वसारः॥

प्रताप के वीर युद्ध मे विजय प्राप्त कर रहे थे। अजमेर मे पडा अकबर युद्ध का विषम समाचार सुनकर स्वयं लडने के लिए आ रहा है—यह संवाद गूढप्रणिधि ने राणा प्रताप को दिया। मन्त्री ने कहा कि शत्रु से कूट युद्ध करें। प्रताप ने कहा कि हम सूर्यवंशियों के लिए ऐसा करना ठीक नहीं है।

---

१. हीराचन्द्र ओझा का ग्रन्थ १९२८ ई० में नाटक के लिख जाने के बाद प्रकाशित हुआ। इसके नये अनुसन्धान के अनुसार कवि ने प्रताप विजय का संशोधन किया।

२. अश्ववारः—(ससंभ्रमम्) दिष्ट्या हतो मानसिंहः। वह केवल मूर्छित हुआ था।

तृतीय अङ्क में रंगपीठ पर अकबर, मानसिंह आदि हैं। छः मास से घेरा डालने पर भी उन्हें प्रताप का पता नहीं मिल पाया। प्रताप के साथी पौरजानपद तथा आटविक थे। प्रताप के पीछे अकबर ने चर लगाये हैं।

इसी बीच गान्धार में महान् विप्लव का समाचार अकबर को मिलता है। पृथ्वीराज ने अकबर को परामर्श दिया कि यहाँ युद्धविराम करके आप गान्धार पहुँचे। उसने साहिदास नामक चित्तौड के दुर्ग के द्वारपाल के मारे जाने पर उसकी पत्नी के अपने सोलह वर्ष के पुत्र के साथ समराङ्गण में कूदने का वर्णन किया है—

आकृष्टभीषणकृपाणकरालपाणिश्छिन्नोत्तमाङ्गरिपुसैन्यकबन्धकीर्णम्।
तूर्णं विधाय समरांगणमेव चण्डी चण्डप्रकोपहुतभुग्ज्वलिता विरेजे॥

अकबर अपनी राजधानी की ओर लौट पड़ा और सेना को प्रताप को पकड़ने का आदेश दे गया।

चतुर्थ अङ्क में अकबर की भेदनीति का प्रपञ्च है। कोई दूत आकर प्रताप के अमात्य से कहता है कि आप तो अकबर का आश्रित बनकर सुखी जीवन बितायें। अकबर की भेदनीति के इस प्रवर्तन को अमात्य ने प्रताप के पास जाकर बताया। प्रताप ने देख लिया था कि परमवीर बहुशः मारे जा चुके हैं। छोटे-मोटे वीर विषय-लोलुप होकर शत्रु के चरण-चुम्बक हैं। पर वे हतोत्साह नहीं हैं। उन्होंने आदेश दिया—अपनी रक्षा के लिए सभी लोग शैल-प्रदेश में आश्रय लें और परित्यक्त प्रदेश में कृषि आदि न की जाय। अन्त में ऐसा ही हुआ।

पंचम अङ्क में पृथ्वीराज की भगिनी राजपुत्री का अमर सिंह से प्रेम बढ़ता है। इसके अतिरिक्त प्रताप को सूचना मिलती है कि आपके आदेश के विपरीत ऊँटाला में किसी किसान ने लम्बी-चौड़ी खेती कर रखी है, जिससे मुगल-सेना पल रही है। उसे दण्ड देने के लिए प्रताप चल पड़ते हैं।

षष्ठ अङ्क के पूर्व विष्कम्भ से सूचना मिलती है कि प्रताप ने उस राजद्रोही किसान को मार डाला तथा प्रताप अकबर की शरण में आने वाला है। इस अङ्क में प्रताप का सन्देश अकबर को मिलता है कि शरणागत हूँ। पृथ्वीराज कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता। उन्होंने अनुचर से प्रताप को पत्र भेजा कि मैंने अकबर से कह दिया है कि प्रताप का शरणागत होना गंगा का उलटा बहना है—

विषममुपगतोऽप्ययं यदि त्वां सकृदधिराजमुदाहरेदजय्यः।
सुरसरिदवशं वहेत् प्रतीपं तपनकरोऽप्युदियात्तदा प्रतीच्याम्॥

प्रताप ने उत्तर भेजा—

प्राणान्तेऽप्ययमेकलिंगशरणः क्षुद्रं तुरुष्काधिपं
सम्राजं किमुदाहरेत्तपनजः सुप्तः प्रमत्तोऽपि वा।
गुम्फारूढकरो विडम्बय रिपूंस्त्वं सत्यसन्धोऽधमान्
प्राच्यां नित्यमुदेष्यति प्रमथनो ध्वान्तस्य देवो रविः॥

यवन सेना ने पूर्व और उत्तर दिशा से प्रतापाधिष्ठित शैल को घेरना आरम्भ किया। प्रताप को उस पर्वत को छोड कर अन्य पर्वत पर जाना पडा। इस बीच पृथिवीराज की भगिनी राजपुत्री का युवराज अमरसिंह से प्रणयानुबन्धि मदनसन्ताप प्रवृद्ध हो चला।

अष्टम अङ्क में वन्य जीवन से खिन्न कुमार कुम्भलगडदुर्ग-प्रासाद में जाना चाहता है। प्रताप और उनकी पत्नी यह देखकर उद्विग्न हैं। तब तक मुगल-सेना अन्यत्र विप्लव शान्त करने के लिए चलती बनी। शरद् ऋतु का आगमन हुआ। प्रताप को पौत्रजन्म का सवाद मिला। कुम्भलगडदुर्ग जीता गया। उदयपुर जीतने का उपक्रम होने लगा।

नवम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक से ज्ञात होता है कि विजय महोत्सव समारम्भ हो रहा है। वीणा गाथी गाते है—

महाव्रत भारतराजपते, मुदा तव जनता वन्दते।
स्वातन्त्र्यसुधासकल सुधाकर-रंजितराजमते।
नयगुण-विक्रमविदलितरिपुदल वंचितपरविजिते।
पुरजनपदजनमनोऽनुरंजनसंचितलोकरते।
दिव्ययशोध्वनिनन्दितसुरवरकिन्नरगाननुते।
जीव चिरं दिनकरकुलमण्डन-भारतधर्मपते॥

उसी समय दिल्ली-नगर से मुद्रामुद्राङ्कित सन्धिपत्र मिला, जिसके अनुसार—
प्रौढप्रतापपरिवर्धितवंशकीर्तिः कामं प्रशास्तु निरुपद्रवमात्मधर्मम्॥

शैली

शङ्कर की शैली नाट्योचित सरलता से परिमण्डित है। नाटक में प्रयुक्त अलङ्कारों से कवि की कल्पना का भण्डार समृद्ध प्रतीत होता है। यथा अप्रस्तुत-प्रशंसा है—

प्रभंजनोत्पाटितवप्रपादपं समुत्पतत्पन्नगराजिसंकुलम्।
हित्वोद्धवं स्वं मलयं हिरण्मयं मेरुं श्रयन्ते न हि चन्दनद्रुमाः॥ ४.२

प्रकृति के विषय में कवि का पारम्परिक दृष्टिकोण है। वह प्रताप की पत्नी के द्वारा कहलवाता है—

घनविरुढ-फलान्वितपादपं मधुरनिर्झरवारिपरिस्रवम्।
द्विजततेर्विरुतैश्च निनादितं व्रजति नन्दनतां गिरिकाननम्॥ ४.१५

शङ्कर ने पूर्वकवियों से पर्याप्त प्रेरणा ली है। यथा, नीचे के श्लोक में कालिदास के रघुवंश की वासना है—[1]

वातालोलवितानविटपैरावीजयन्ति द्रुमा-
श्छत्रं वारिधराश्च बिभ्रति पुरो गायन्ति केकारवाः।

---

१. इसमें रघुवंश २.७-१३।

नित्यं स्वादुफलानि चाच्छसलिलं सम्पादयन्त्यापगाः
राज्यश्री वियुतोऽप्ययं नृपवरो वन्यश्रिया नन्दितः ।। ७.२

वीररस-निर्भर नाटक में शृङ्गार का अन्तस्तरङ्ग उल्लसित है। यथा कोई राजकन्या कहती है—

मुकुलिनीं मधुसौरभसंयुतामुपचितावयवां विपिनश्रियम् ।
नवरसाङ्कुरितां नवमल्लिकां मधुकरो न विहातुमयि क्षमः ।। ५.२

नाट्यशिल्प

याज्ञिक ने उच्चकोटिक संगीत को प्रेक्षकों के लिए अतिशय लुभावना मानकर अनेक सरस गीतों का समावेश प्रायः सभी अङ्कों में किया है। प्रस्तावना में नटी गाती है—

सुखयति मधुररसा सरसी
सारसहंस विहंगममिथुनं विहरति मृदुरहसि ।। इत्यादि

द्वितीय अङ्क के मध्य में वैतालिक का वीरगान है—भूपालीराग और दादरा ताल में—

भट्टा नदताट्टमेव हर हर हर महादेव
धावत रिपुकटकपारमधमकृत महापचाररुष्टा। इत्यादि

तृतीय अङ्क के मध्य में सार्वभौम अकबर के प्रीत्यर्थ नर्तकियाँ जयवती राग त्रिताल से गाती हैं—

इह सखि विहरति ललित विहारः। सुमनोमोहन-नन्दकुमारः ।। ध्रुवपदम्[1]

अमर सिंह और पृथ्वीराज की भगिनी की प्रणयकथा पताकावृत्त के रूप में पल्लवित है। इनका आरम्भ चतुर्थ अङ्क के अन्तिम भाग से होता है।

प्रतापविजय नाटक में प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। छोटे-बड़े सभी पात्र संस्कृत बोलते हैं।

चतुर्थ अङ्क का आरम्भ प्रताप के अमात्य की एकोक्ति से होता है। इसमें सूच्यार्थ का प्रतिपादन-मात्र है और सर्वतः विष्कम्भक-स्थानीय है। इसके पश्चात् अकबर का दूत उससे मिल कर जो बातें करता है, वह सब भी सूच्य ही है। षष्ठ अङ्क में अकबर और उसकी पत्नी की बातचीत में कोरी सूच्य सामग्री है।

युद्धनीति और स्वातन्त्र्य-प्रोत्साहन

शङ्करने युद्धनीति-विषयक अपने पाण्डित्य का अपूर्व परिचय अनेकशः इस नाटक में दिया है। यथा,

---

१. षष्ठ अङ्क में तानसेन कर्णाट राग-ध्रुपद ताल में, सप्तम अङ्क में राजपुत्री सोहिनी राग त्रिताल में तथा नवम अंक में वीणा गाथी भैरवीराग त्रिताल द्वारा गाते हैं।

गाढारक्तप्रकृतिरबलोऽनल्पवीर्यस्य शत्रोः
प्रत्याहन्तुं प्रभवति नृपो दुर्गसंस्थोऽभियोगान् ।
कालेनैव विमृदितदलं हीनकोशं द्विपन्तं
नानायोगैरुपचितबलो लीलयैवोच्छिनत्ति ॥ ४.६ ॥

अल्पः कदाचिन्महता सुदुष्करं कार्यं महत् साधयितुं भवत्यलम् ।
काष्ठैकपोतेन सुखोत्तरः प्रभो हिरण्यनावा जलधिर्न तीर्यते ॥ ४.१३

स्वतन्त्रता के लिए कवि प्रेक्षकों को स्थान-स्थान पर प्रोत्साहित करता है । यथा,

समदनृपमभीक्ष्णं धर्षयित्वा रणाग्रे
प्रकटितपृथुवीर्यो यावनेशाभियुक्तः ।
यदुपतिरिव दुर्गे वासयित्वा स्वपौरान्
प्रतिहतपरमन्त्रो राजसे त्वं स्वतन्त्रः ॥ ४.११

प्रताप की पत्नी कहती है—

आर्यपुत्र स्वातन्त्र्यमेव राजन्यस्य वीर्यम् ।
नानारसैः स्वादुफलैः सुपोषितः स्नेहेन राजन्यकुलोपलालितः ।
शुकोऽपि चामीकरपञ्जराश्रितो न पारतन्त्र्यं बहु मन्यते खगः ॥ ४.१४

पृथ्वीराज की कन्या कहती है—

अम्ब, निसर्गत एव स्वातन्त्र्यप्रियाः सन्ति क्षत्रकन्यकाः । तद्
यवननृपकुलाङ्ग, नावधूतानटविटवृन्दविडम्बनावसन्नः ।
नियमितसुखसंचरा स्वतन्त्रा न जननि जीवितुमुत्सहे पुरेऽस्मिन् ॥ ४.१६

संयोगिता-स्वयंवर

मूलशंकर का दूसरा नाटक संयोगिता-स्वयंवर १६२७ ई० मे लिखा गया और १६२८ ई० मे प्रकाशित हुआ । इसका अभिनय राजा के द्वारा सम्पादित राजसूय के अवसर पर एकत्र हुए राजाओ के मनोविनोद के लिए हुआ था ।

कथासार

कन्नौज का राजा जयचन्द राजसूय यज्ञ करने वाला था । इस अवसर पर पृथ्वीराज के आने के लिए जयचन्द ने कड़ा पत्र लिखा । जयचन्द को उसका उत्तर मिला—

दुर्दैवतस्त्वमसि मूढमते प्रवृत्तः सम्राज एव विहिते नृप राजसूये ।
सद्यो विरंस्यसि न चेद्व्यवसायतोऽस्माद् गन्ताशु मे गलभतां करवालवह्नौ ॥

इस उत्तर से जयचन्द अत्यन्त क्रुद्ध हुआ । उसने राजसभा में जाकर सामन्तों से से चर्चा की कि पृथ्वीराज अपने को सम्राट् समझता है । उसे जैसे भी हो वश मे लाना है । सामन्तो ने जयचन्द का समर्थन किया कि पृथ्वीराज का उन्मूलन करना है । प्रयाण करने के लिए सेना सज्जित होने लगी ।

जयचन्द के सामने एक दूसरी समस्या आ खड़ी हुई कि राजसूय के अवसर पर उसे अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर करना था, जिसमें संयोगिता की कोई रुचि नहीं थी। किसी को कोई कारण भी वह नहीं बताती थी। सुमति नामक मन्त्री ने सुझाव दिया कि इस वसन्त ऋतु में मदनोत्सव का आयोजन करें। वहीं सखियों के बीच संयोगिता स्वयंवर के विषय में अपना क्या विचार प्रकट करती है—यह महारानी छिप कर सुनें।

द्वितीय अङ्क में वसन्तोत्सव की रंगरेलियों का वर्णन है। सभी सखियों के साथ संयोगिता ने मदन-मन्त्र पढ़ा—

साकूतनेत्रान्त-विलासजन्यरागास्मितान्याशु मनांसि यूनाम्।
परस्परं संग्रथयन् सलीलं जयत्यनङ्गो भुवि देव देवः॥

अपने अभीष्ट प्रियतम का ध्यान आते ही संयोगिता मूर्छित हो गई। चतुरिका नामक सखी ने उससे पूछा—

तव हृदि को नु निलीयते मिलिन्दः॥ २.१४

संयोगिता ने कहा—दिल्लीश्वर पृथ्वीराज,

गतमवनिभुजामधीश्वरस्य श्रवणपथं विमलं यशो यदा मे।
प्रियसखि मम मानसे तदानीं सपदि पदं कृतवानसौ मरालः॥ २.१५

चतुरिका ने उसे बताया कि उनसे तुम्हारे पिता की अनबन है। संयोगिता ने कहा—प्रणय शत्रु-मित्र नहीं गिनता।

पराधीनं चेतस्त्वसमशरविद्धं न हि गुरो
रिपुं वा मित्रं वा क्षणमपि विवेक्तुं प्रभवति॥ २.१७

महारानी संयोगिता का मनोरथ जानकर उसके पास आ गई और कहा कि ऐसा करना ठीक नहीं। तब तो संयोगिता ने आधुनिकी वरार्थिनी के लिए आदर्श वाक्य कहा—

मनसो यत्र न वर्तनमम्ब विवाहः कथं स धर्माय॥ २.२०

पृथ्वीराज के लिए संयोगिता का निश्चय दृढ जानकर रानी ने यह सब जयचन्द से कहा। जयचन्द ने आदेश दिया कि संयोगिता गंगातट पर बने दुर्ग में जीवन भर रहे।

जयचन्द का भाई वालुकाराय मारा गया। अत एव राजसूय स्थगित हो गया। इधर चार ने पृथ्वीराज को बताया कि संयोगिता आपको पतिरूप में पाना चाहती है। उसे जयचन्द ने दुर्ग में बन्द कर दिया है। कन्नौज से आई हुई मदनिका नामक नायिका की दूती ने बताया कि आपके अन्तःपुरमें जो कर्णाटकी थी, वह अब कन्नौज में अन्तः पुर परिचारिका बन गई है। उसका संयोगिता से विशेष प्रेम है। मदनिका ने कर्णाटी का पत्र और संयोगिता का मदनलेख दिया। मदनलेख था—

निर्घृणमनसिजविशिखैर्विलुप्यमानां त्वदाश्रयामवलाम्।
प्राणेश्वर परिपालय परमशरण्यः श्रुतस्त्वमार्तानाम्॥

चन्द नामक कवि ने कभी पहले ही संयोगिता की प्रणय-वृत्ति नायक के समक्ष निवेदित की थी। पृथ्वीराजने नायिका के लिए प्रणय पत्र भेजा—

अयमागतो जनस्ते प्रणय-परवशः स्मरोपितः शरणम्।
को नु यदृच्छोपगतं पीयूषरसं न सेवते दयिते॥ ३.१३

पृथ्वीराज ने मन्त्रियों से परामर्श किया। कन्ह ने कहा कि छल से शत्रु को वश में किया जाय, क्योंकि राजसूय के लिए आये हुए सामन्तों के बल से वह बली हो गया है। चन्दकवि ने कहा कि सेनानी मेरे परिचारक बन कर जयचन्द के पास पहुँच कर यथोचित उपाय कार्यान्वित करें। तदनुसार कार्य करने का निर्णय सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

चतुर्थ अङ्क में जयचन्द की राजसभा में चन्द अपने परिचारकों के साथ पहुँचता है। चन्द ने जयचन्द के प्रीत्यर्थ कविता सुनाई—

भक्ताः परेशं वनिताः पुमांसं लतास्तरुं धूर्तजनास्तु लुब्धम्।
खगाश्च नीडं सरितः समुद्रं व्रजन्ति तद्वत् कवयो नरेन्द्रम्॥

जयचन्द प्रसन्न हुआ। कवि की मण्डली में जलधर पृथ्वीराज हो सकता है। जयचन्द ने उसे देख कर कहा—

आजानुलम्बिदृढमांसलबाहुशाली सन्तप्तदीप्तनयनोऽपि मनोऽभिरामः।
एवं स्वमित्रपरिचायकर्ता भतोऽपि स्वाभाविकी न स पुनः प्रभुतां जहाति॥

यह पृथ्वीराज है कि नहीं—यह पक्का निर्णय करने के लिए वार-विलासिनी कर्णाटकी नामक जयचन्द की अन्तःपुर-परिचारिका बुलाई गई।[1] उसने पृथ्वीराज को देखा तो मुख ढक लिया, पर चन्द के संकेत पर उसे हटा लिया। चन्द ने मन ही मन उसकी छवि की वर्णना की—

व्यामोहयन्ती ललिताङ्गविभ्रमैर्वराङ्गना कामकला विधिज्ञा।
कादम्बिनी मध्यगता स्फुरन्ती संचारिणीयं चपलेव राजते॥ ४.८

अवगुण्ठन हटाने के विषय में जयचन्द के पूछने पर कर्णाटकी ने कहा—

मित्रं विलोक्य पुरतो मम पूर्वभर्तु-
स्तस्यादरात् सपदि संवृतमाननं मे।
एकः पुमान् स पृथ्वीपतिरेव यस्माद्
रात्रिर्यथा दिनकरात् समुपैमि लज्जाम्॥ ४.८

अर्थात जिस पृथ्वीराज से लज्जा करती हूँ, उसका मित्र चन्द दिखा तो उसका आदर करने के लिए मुख ढक लिया। इस वक्तव्य से जयचन्द्र को यह स्पष्ट हो गया कि जलधर पृथ्वीराज नहीं हैं, फिर भी शंका बनी रही।

चन्द्र को विश्रामभवन में भेज दिया गया। वहाँ सेनाध्यक्ष कन्ह के विमर्श से लंगडीराय सेनाधिपति बन कर सुरक्षा करने लगा। वहीं कर्णाटकी संयोगिता की सखियों के साथ आई। बहाना था वाग्देवतावतार कविकुलेश्वर चन्द्र का स्वागता-

१. कर्णाटकी वस्तुतः पृथ्वीराज की प्रणयिनी थी, जो दूती बन कर रहती थी।

भिन्दन करना। पृथ्वीराज ने कर्णाटकी से बताया कि रात बीतते-बीतते मैं संयोगिता के पास पहुँचूँगा।

पृथ्वीराज घोड़े पर बैठकर गंगा दर्शन करने चले। उनके मुख से गंगा-वर्णन है—

कल्लोलवीचिरमणीय जलप्रवाहे मज्जन्ति ये सुकृतिनः किल मुक्तिभाजः।

और भी—

भस्मी कृता ये कपिलेन कोपात् समुद्धृतास्ते सगरात्मजास्त्वया।
दग्धां प्रियां मे स्वगुरोरमर्षात् कर्तुं प्रवृत्तासि कथं नु भस्मसात्॥ ४.१८

वे संयोगिता के वन्दीगृह के पास पहुँचते हैं।

पंचम अङ्क में संयोगिता उत्का होकर अपने प्रबल मदन-विकार का निर्वचन कर्णाटकी के साथ बातचीत में प्रकट करती है। वह दक्षिणानिल से सन्देश भेजती है—

नाथे त्वय्यपि सीदति प्रणयिनी तत्किं तवात्रोचितम्। ५.७

दुर्ग के नीचे उसे नायक दिखाई पड़ा। कर्णाटकी उन्हें भीतर लाई। कर्णाटकी ने अपने पौरोहित्य में संयोगिता-पृथ्वीराज का विवाह-संस्कार सम्पन्न कर दिया। नायिका ने वरस्रज् पहनाया। पृथ्वीराज ने अंगुली-मुद्रा नायिका को पहनाई।

षष्ठ अङ्क के विष्कम्भक के अनुसार लड़ने के लिए उद्यत सभी दुर्गपालों को पृथ्वीराज ने धराशायी किया। फिर वे चलते बने। उनके लौटने में देर होने से विरहिणी संयोगिता का चित्त तान्त होने लगा। थोड़ी देर में वे आये। कर्णाटकी ने आप बीती बताई कि मैं कर्णाटराजपुत्री हूँ छद्मरूपधरा—

मधुकरी मधुकोशविनिर्गता परिपतेत्सुमनोरसिका यथा।
अभिसरन्त्यतिदूरमहो तथा प्रणयभाजनतां प्रिय ते गता॥ ६.६

पृथ्वीराज ने कर्णाटकी को चन्द के साथ गुप्त पथ से दिल्ली लौट जाने का प्रबन्ध कर दिया। फिर संयोगिता ने अपने प्रेमियों से प्रस्थान के लिए अनुमति ली—

रम्या मे वनवासबन्धुतरवो नानालतालिंगिताः
स्निग्धे मे शुकसारिके च दयितालापे नितान्तं रते।
वीणे में मधुरस्वरानुरणनानन्दोर्मिमालावहे
यास्यन्तीं पतिमन्दिरं निजसखीं सर्वेऽनुजानन्तु माम्॥ ६.११

उसे इन मूकबन्धुओं ने अनुमति दी—[1]

विकीर्यमाणैः कुसुमैर्महीरुहाः प्रियानुलापैः शुकसारिके पुनः।
स्वयं च वीणा स्वरमूर्च्छनादिभिः प्रतन्वते ते मदिराक्षि मंगलम्॥

फिर वह अश्वारूढ़ पृथ्वीराज के अङ्क में जा बैठी। नायिका चलती बनी।

---

१. यह संविधान अभिज्ञान-शाकुन्तल के चतुर्थ अंक से वासित है।

सप्तम अंक के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार जयचन्द की महती सेना पृथ्वीराज के वीरों द्वारा मार डाली गई। फिर तो जयचन्द की आँख खुली। वह स्वयं पृथ्वीराज से संयोगिता का विवाह कर देने के लिए चन्द कवि से बोला।

सातवें अङ्क में चन्द पृथ्वीराज से बताता है कि मेरे कहने पर जयचन्द अब शान्त हैं। वे स्वयं आकर यहाँ कन्यादान करना चाहते हैं। जयचन्द्र ने उपस्थित होकर पृथ्वीराज की प्रशस्ति की—

मिथोऽनुरागाभ्युदयप्रहर्षितः स्वयंवरा मे तनयां समर्प्य।
सम्राट् स्वयं विक्रमशालिने ते कृतार्थतामद्य गतोऽस्मि सान्वयः ।।

संयोगिता-स्वयंवर बीसवीं शती के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जा सकता है।

नाट्यशिल्प

तृतीय अङ्क का आरम्भ पृथ्वीराज की एकोक्ति से होता है,[1] जिसमें वह बताता है कि कन्नौज में राजसूय के स्थगित हो जाने पर भी मुझे सन्ताप हो ही रहा है, आज कन्नौज से गुप्तचर आयेंगे, मुझे जयचन्द को पराभव दिखाना है। *यह एकोक्ति अर्थोपक्षेपण-भाग करती है और सूच्य है।*

चतुर्थ अङ्क के अन्त में अकेले घुड़सवार पृथ्वीराज गंगा तट पर परिभ्रमण करते हुए अपनी एकोक्ति में गंगा का वर्णन करते हैं, नायिका का उद्धार करने की गंगा से प्रार्थना करते हैं, निकटवर्ती *प्रियतमापदाङ्कितोपवन-सरणि* ढूँढते हैं और संयोगिता के प्रति अभिनिवेश प्रकट करते हैं। पंचमाङ्क के बीच में यद्यपि रंगपीठ के एक भाग में नायिका है, तथापि दूसरी ओर खड़े पृथ्वीराज की लघु एकोक्ति समाविष्ट है।

छायातत्त्व का विन्यास चन्द की उस योजना में तृतीयाङ्क में है, जिसमें वह सेनानियों को और पृथ्वीराज को भी अपने परिचारकगण में भर्ती करके जयचन्द के पास पहुँच जाता है। यथा,

तत्सार्वभौमप्रमुखाः सर्वेऽपि सामन्ता विशन्तु मे परिचारकगणम्। एवं प्रच्छन्नमुपसृत्य कन्नौजाधीश्वरमवधार्य च तस्य सामर्थ्यं यथोचितं विधास्यते।

पृथ्वीराज ने इसके विषय में कहा है—

मयाप्युररीक्रियते कविवरविभावितोऽयं नाट्यप्रयोगः।

अनेक स्थलों पर कवि ने गीतों का संयोजन किया है। यथा, चतुर्थ अङ्क का आरम्भ बीणिकों के केदार राग-त्रिताल में गान से होता है—

---

१. कवि ने इसे स्वगत कहा है, जो उचित नहीं। स्वगत किसी पात्र या पात्रों से निह्नुत होता है, एकोक्ति किसी पात्र से निह्नुत नहीं होती। साधारणतः एकोक्ति के समय रंग पीठ पर केवल वक्ता मात्र रहता है, किन्तु यदि अनेक पात्र हों तब भी एकोक्ति हो सकती है। रंगपीठ के पात्र उसे सुन भी सकते हैं, पर वक्ता को किसी पात्र का ध्यान नहीं रहता।

माधव, यमुनातीरविहारी।
मृदुराधाधरमधुमधुमधुकर नटवर गिरिवरधारी॥
राधा यौवनवनवनमाली गोपीजन सुखकारी।
सुमतिमयि जनय नयशाली त्वमुजयपथमविकारी॥

प्रेक्षकों के मनोरंजन की दृष्टि से पंचम अङ्क के आरम्भ में नायिका का गौण्ड-मल्लार राग में अधोलिखित गीत महत्त्वपूर्ण है—

क्व नु मम विहरसि मानसहंस।
घन इव सततं वर्षति नयनम्। स्फुटयति तडिदिव रतिरिह हृदयम्॥ १॥
तिरयति तिमिरं तव पन्थानम्। अयि कुरु मरुन प्रिय तव यानम्॥ २॥
विरहविलुलितां परमाकुलिताम्। प्रियमुखनिरतामव तव दयिताम्॥ ३॥

इस नाटक के संविधानों द्वारा रमणीयतम दृश्य प्रेक्षकों के लिए प्रस्तुत हैं। यथा, नायक के द्वारा पंचम अङ्क में नायिका को अंगूठी पहनाना। नाट्योचित है कवि का पूरे नाटक में प्रायः सर्वत्र स्वल्पाक्षरों वाले पद्यों का संयोजन। साथ ही नायिका के व्याहारों में गीति-तत्त्व की निर्भरता इस कृति को विशेष लोक हारिणी बनाती है। यथा, चन्द्रमा का सम्बोधन है—

रे मां कथं व्यथयसि क्षपिताङ्गयष्टिं ज्योत्स्नान्तरे कुमुदिनीश कुरु प्रलीनाम्।
प्रासादपृष्ठमपि भाग्यवशाच्चरन्ती प्राणेश्वरप्रणय पात्रमतो भवेयम्। ५.८

ऐसे प्रकरण विशेष रस-निर्भर हैं।[1]

पञ्चमाङ्क में रंगपीठ के दो भाग कल्पित हैं। एक ओर छत पर नायिका कर्णाटकी के साथ है और दूसरी ओर पृथ्वीराज भूतल से उन्हें मानो दूर से देख रहे हैं। संयोगिता उन्हें कुछ क्षणों के पश्चात् देख पाती है।

रंगपीठ पर नायक का मधुपान और अवशिष्ट नायिका द्वारा पान कुछ-कुछ आधुनिक चलचित्रों के संविधानों के पूर्वरूप से प्रतीत होते हैं। संस्कृत नाटकों में यह प्रवृत्ति दोषावह है, यद्यपि परम्परा से इसका विरोध नहीं है।

अङ्कभाग में सूच्यसामग्री तो प्रायः सभी कवि रखते हैं—किन्तु उसका समावेश बलात् नहीं होना चाहिए। षष्ठ अंक में कर्णाटकी का पृथ्वीराज को अपनी चरितगाथा सुनाना नाट्यकला की दृष्टि से अभीष्ट नहीं है, यद्यपि सामग्री रुचिपूर्ण है।

सप्तम अङ्क में रंगपीठ पर संयोगिता निद्रामग्न है। यद्यपि यह भारतीय परम्परा के विरुद्ध है, किन्तु इसमें प्रत्यक्ष दोष नहीं है।

---

१. ऐसा गीत-तत्त्व है पृथ्वीराज की अधोलिखित नायिकावर्णना में—
किं स्यादेषा हिमकरकला चंचलत्वं कुतोऽस्या
विद्युल्लेखा वियति विमले नापि संभाव्यते वै।
मन्ये त्वेवं मनसिजरुजा तप्तगात्री प्रिया मे
प्रासादेऽस्मिन् विरहविकला संचरत्येव तन्वी॥ ५.११

छत्रपति-साम्राज्य

छत्रपति-साम्राज्य नाटक शिवाजी के १६४६ से १६७४ ई० तक के शासन की घटनाओं पर आधारित है। कवि ने नीचे लिखे ग्रन्थों के आधार पर कथावस्तु का विन्यास किया है—

१. Grant Duff : History of the Marathas.

२. सारदेसाई मराठी रियासत

३ Macmillan : In Wild Maratha Battle

४. श्रीपादशास्त्री छत्रपति शिवाजी महाराज

५. Manker : *Life and Exploits of Shivaji*

कवि का यह अन्तिम नाटक प्रसिद्ध है।

प्रस्तावना के नीचे लिखे पद्य तत्कालीन स्वातन्त्र्य-संग्राम की ओर राष्ट्र को प्रेरित करने का कवि का लक्ष्य स्पष्ट है—

पित्रोर्गुरोश्चाधिगतार्थविद्यो वीरानुरक्तैः सवयोभिरावृत्तः।
स्वराज्यसंस्थापन-निश्चितव्रतो गर्जत्ययं केसरिणः किशोरः॥

कथासार

प्रथम अङ्क साम्राज्योपक्रम है। भारतीय नरेश तुच्छ स्वार्थवश परस्पर लड़ते हुए यवन सार्वभौम की शरण में गये हुए अपनी परतन्त्रता का अनुभव नहीं करते। यवन राजा अत्याचारी हैं। शिवाजी स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना करना चाहते है। शिवा जी के साथी उनकी बात को सर्वंश नहीं मानते, किन्तु नेता जी की भगिनी को उनसे छीन कर बीजापुर के सैनिकों ने उन्हें मार डाला, इस बात से सभी उत्तेजित है। सभी धर्म की रक्षा के लिए हिन्दू-साम्राज्य—स्थापन करने पर एक मत हुए। इसी बीच तोरण दुर्ग के रक्षक ने अपना दुर्ग शिवा जी को सौंप दिया। द्वितीय अङ्क निधि-प्राप्ति का है। इसमें शिवा जी के अधिकार में चाकण दुर्ग आता है। नेता जी को मृत समझ कर यवन-सैनिकों ने छोड़ दिया था पर वे सप्राण थे और पुनः प्ररिपुष्ट होकर शिवा जी से आ मिले। किसी जीर्ण मन्दिर में शिवा जी को खोदवाने से अपार सम्पत्ति मिली। उससे शिवा जी ने शस्त्रास्त्र विदेशों से भी क्रय कर लिए। तृतीय अङ्क राज्यव्यस्थिति का है। गोवलकर नामक कोङ्कण के सामान्त ने भवानी नामक कृपाण शिवा जी को भेंट की। कल्याण-विजय हुई। सात सौ गान्धारी सैनिक शिवाजी की सेवा में बीजापुर के यवनराज को छोड़कर आये। राजमाची दुर्ग जीता गया। शिवा जी के पिता को बीजापुर में यवनराज ने बन्दी बना रखा था। दूतभेद नामक चतुर्थ अङ्क में रामदास के निर्देशन में मठों में नवयुवकों के शारीरिक व्यायाम की व्यवस्था चालू की गई। बीजापुर का यवन सेनापति शिवाजी को बन्दी बनाने के लिए आया। एकान्त शिविर में शिवा जी ने उसे धोखा-धड़ी का व्यवहार करने पर बघनख से घायल करके मार डाला।

पांचवाँ अङ्क आत्मसमर्पण है। इसमें वाजी शत्रुओं से लड़ते हुए मारा जाता है। छठा अङ्क छलप्रवन्ध है। इसमें वराती वन कर शिवाजी और उनके साथियों ने मुगल सैनिकों को परास्त किया। सप्तम अङ्क मोगलेश-अनुसन्धान है। इसमें शिवाजी जयसिंह से मिलते हैं। दोनों में सन्धि होती है। प्रयाण-प्रवन्ध नामक अष्टम अङ्क में शिवाजी औरङ्गजेव के द्वारा वन्दी वना लिए गये, जव वे उनसे मिलने गये थे। वहाँ से शिवाजी मिठाई की टोकरी में छिप कर वाहर निकल आये। दुर्गविजय नामक नवम अङ्क में पाँच दुर्गों के विजय का समाचार मिलता है। साधुवेश में शिवाजी गंगाजल अभिषेक के लिए अपनी माता को देते है। दसवें अङ्क में अभिषेक महोत्सव होता है। रामदास ने भरतवाक्य कहा है—

मोदन्तां नितरां स्वकर्मनिरताः पर्याप्तकामा प्रजा
एधन्तां नयविक्रमाङ्कयशसो लोकप्रियाः पार्थिवाः।
सस्यानां च समृद्धये जलमुचः सिंचन्तु काले रसां
सप्ताङ्ग-प्रकृतिप्रकर्षरुचिरं राष्ट्रं चिरं वर्धताम्॥ १०.१२

इस नाटक पर देश-विदेश के विद्वानों की सम्मतियाँ इस प्रकार हैं—

I am glad you have succeeded in maintaining the standard of your earlier works.

Mm. Ganganatha jha

You handle the Vaidarbhīrīti with much skill and the play is very agreeable reading.

L. D. Barnett

It is very remarkable how perfectly you feel at home in that difficult Brahmī Vāc and your works are in no way inferior, as far as I can judge, to those of our honoured classical poets and dramatists.

इन सब सत्सम्मतियों के होने पर भी नाट्य कला की दृष्टि से कवि का यह नाटक उतना अच्छा नहीं वन पड़ा है, जितने पहले के दो नाटक या इसी कथावस्तु को लेकर लिखे अन्य कवियों के नाटक।



अध्याय १०५

महालिङ्ग शास्त्री का नाट्य-साहित्य

महालिंग का जन्म जुलाई १९९७ ई० में तिरुवालङ्गाड ग्राम में (तंजौर जिले में) हुआ था। प्रतिराजसूय नाटक के अन्त में कवि ने अपनी वंशावली दी है, जिसके अनुसार कविवर के पुराण-पुरुष श्रीमान् अप्पयदीक्षितेन्द्र थे। उस वंश में राजुशास्त्री उपाधि से विभूषित त्यागराज हुए, जिनके पौत्र यज्ञस्वामी शास्त्री हुए। यज्ञस्वामी महालिंग के पिता थे।

महालिंग ने एम. ए. उपाधि ली और बैचलर आव ला होकर मद्रास हाईकोर्ट में वकालत करते रहे। कवि के व्यक्तित्व का प्रकाम विकास भारतीय ललित कलाओं के विविध क्षेत्रों में हुआ था। संगीतशास्त्र में उनकी उपलब्धि सविशेष थी।

स्वतन्त्र भारत में भी संस्कृत और भारतीय संस्कृति की उपेक्षा है—इसका स्वानुभूत परिचय कवि की लेखिनी से है—

Where is the money to throw on them (Sanskrit Books) where are the readers to purchase them, where the patrons to finance their publication, where the Rasikas to enjoy them? When I think of all these problems, the writing of poetry and drama in Sanskrit appears to me a crime in these days. Still I have written, do write, and publish too.

उद्गातृदशानन की भूमिका में लेखक ने पुनः व्यक्त किया है—

It is not surprising that in the endless winter nights for sanskrit which is refrigerated with the antarctic temperature in the minus grade, the thawing of hearts has not set in too soon in spite of all the warmth of endeavour which I have carried with me for more than a quarter of a century. I have taken refuge against the chill-blasts at the sanctum-sanctorum of chillness itself through locating the action of this play at the loftiest and most holy of the snowclad peaks of the Himalayas.

उभयरूपक की भूमिका में कवि ने १९६० ई० में संस्कृत लेखक की दुराशाओं का स्वानुभूत चित्रण किया है। यथा,

A Sanskrit poet, if he should aspire for recognition has to publish his writings, He waits in vain for government aid or private philanthropy. when he, at last, decides to take a plunge with his meagre private capital without calculating the profit or loss, but only aspiring at any cost to spread his literary appeal to responsive hearts, dire disappointment awaits him.

कवि का नैराश्य और अदम्य उत्साह दोनों वैसे ही समंजसित हैं, जैसे कालिदास का 'ज्ञाने मौनम्'।

महालिङ्गशास्त्री का कृतित्व बहुविध है। उनका संक्षिप्त विवरण है—

प्रकाशित काव्य

१. किंकिणीमाला—इसमें ५० लघुगीत और काव्य हैं। कतिपय काव्य अंगरेजी साहित्य से अनूदित हैं। इसका प्रकाशन १९३४ में हुआ। किंकिणीमाला का अपर संग्रह १९५६ तक अप्रकाशित था।

२. द्राविडार्या-सुभाषित-सप्तति का प्रकाशन १९५२ ई० में हुआ था। इसमें औवइ के दो काव्यों का अनुवाद है।

३. व्याजोक्ति रत्नावलि का प्रकाशन १९५३ ई० में हुआ। यह अन्यापदेश है।

४. देशिकेन्द्र-स्तवाञ्जलि का प्रकाशन १९५४ ई० में हुआ।

५. भ्रमर-सन्देश का प्रकाशन १९५४ ई० में हुआ।

६. वनलता — पाँच सर्गों में गीत काव्य।

७. शम्भुचर्योपदेश—इसमें आदर्श हिन्दु-बालक का वर्णन है। यह १९३१ में प्रकाशित हुआ।

८. स्तुतिपुष्पोपहारः तथा मुक्तकस्तुतिमंजरी का प्रकाशन १९६३ ई० में हुआ।

अप्रकाशित

९. मणिमाला—बड़े काव्यों का संग्रह।

१०. प्रशस्तिप्रगुणमालिका—इसमें प्रशस्तियों का संग्रह है।

११. किंकिणीमाला—द्वितीय भाग अप्रकाशित है।

१२. व्याजोक्तिरत्नावली—द्वितीय भाग अप्रकाशित है।

१३. प्रकीर्णकाव्य—श्लोक-संग्रह।

१४. भारतीविषादः —आधुनिक युग में संस्कृत की दुर्दशा का वर्णन प्रतीक-पद्धति पर किया गया है।

१५. महामहिष-सप्ततिः —यह व्यंगकाव्य (Satire) है।

१६. लघुपाण्डवचरितम्।

१७. शृङ्गार-रस-मंजरी—इसमें शृङ्गार रस का पद्य-शतक है।

१८. श्रीवल्लभ-सुभाषितानि—तिरुवल्लूर के सदुपदेशों की चयनिका है।

१९. उत्तरकाण्ड—लघुरामचरित का पूरक है।

महालिंग ने विद्यार्थियों के उपयोग के लिए कतिपय संग्रह छपवाये थे। यथा,

हाईस्कूल के लिए—लघुरामचरित, उपक्रमपाठावली, मध्यमपाठावली, प्रौढ-पाठावली, प्रवेशपाठावली।

महाविद्यालयों के लिए—भास-कथासार तीन भागों में।

गद्य

२०. गद्य कथानककोश—इसमें गद्यात्मक कथाओं का संग्रह है।

२१. संकथा-सन्दोह—इसमें वंशावली-वर्णन है। विशेष रूप से त्यागराज का विवरण है।

साहित्यशास्त्र

२२. कविकाव्य-निकष—इसमें केवल कारिकायें हैं।

व्याकरण

२३. संस्कृत-लाघव—हाईस्कूल के छात्रों के लिए उपयोगी।

संगीत

२४. संस्कृत में कीर्तन तथा रागमालिकायें—इनमें रागोचित स्वर-निर्देशन है।

नाट्य-साहित्य

महालिंग ने उद्गातृदशानन की भूमिका में लिखा है कि नाटक लिखने के प्रयास की दिशा में यह मेरी पहली कृति है, जो १९२७ ई० के अन्तिम मासों में आरम्भ की गई और १९२८ ई० के दिसम्बर तक इसके चार अङ्क पूरे हो गये। इसके पश्चात् १४ वर्षों तक यह अधूरा पड़ा रहा है। इसके उत्तरार्ध में तीन अंक १९४३ ई० की २६ जनवरी से ६ मार्च तक पूरे हुए। इस बीच में कवि ने अन्य नाटक—कौण्डिन्य-प्रहसन १९२८ में, प्रतिराजसूय १९२९ में, मर्कटमार्दलिक भाण १९३७ में, शृंगार-नारदीय और उभयरूपक १९३८ में, कलिप्रादुर्भाव १९३९ में तथा आदिकाव्योदय १९४२ ई० में लिखे। इन सबका प्रकाशन हो चुका है। इनका अयोध्याकाण्ड नामक नाटक १९६८ ई० में संस्कृत-प्रतिभा में प्रकाशित हुआ।

उद्गातृ-दशानन

उद्गातृदशानन की रचना का आरम्भ १९२७ ई० में हुआ, १९२८ तक चार अङ्क लिखे गये और फिर १४ वर्षों के बाद तीन अंक लिखे गये। इसकी स्वलिखित भूमिका से महालिंग की उदात्त मनीषिता का परिचय मिलता है। उनका कथन है—सूत्रधार के शब्दों में यह रूपक परमेश्वर की कृपा प्राप्त कराने वाला है। इसका प्रथम अभिनय शरद् ऋतु में सामाजिकों की आराधना के लिए हुआ था।

उद्गातृदशानन की क्रीडा-स्थली हिमालय प्रदेश है।

कथावस्तु

पार्वती का द्वारपाल नन्दी अपने साथी भृंगिरिटि से चर्चा करता है कि शिव और पार्वती में कुछ मनमुटाव हो गया है। अम्बा ने क्रोध से शिव को छोड़ दिया है। वे शरवण में अकेले विनोद के लिए आई है। यह सब विजया के शाप से हुआ है। उसने देव-दम्पती की रहस्य वार्ता कवाट-विवर पर कान लगा कर सुनी थी। शिव ने उसे शाप दिया—वातशरीरा पिशाची भव। परिणामत: विजया की पक्षपातिनी पार्वती शिव से अलग हुई।

इस बीच उस प्रदेश पर राक्षसों ने आक्रमण किया। शीघ्र ही शिव के पुत्र विनायक और स्कन्द को दशमुख के द्वारा अपने प्रदेश पर आक्रमण का समाचार विदित हुआ कि वह अपने बड़े भाई कुबेर को पीड़ा दे रहा है। अलकापुरी में

राक्षसों ने घोर उत्पात मचा रखा है। कुबेर के सेनापति मारे गये। उन्हें कुछ मित्र आकाश में ले उड़े। वे इन्द्र के पास पहुँचाये गये। इन्द्र ने शिव से मिलने का उपक्रम किया।

द्वितीय अंक में रावण कुबेर के सिंहासन पर बैठता है। कुबेर का दूत रावण से कहता है कि स्वामी ने मुझे आपके पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर भेजा है। रावण के साथियों ने उसे ठुकराया। रावण ने यक्ष लोक के विषय में आदेश दिया—

निःशेषं क्षिप यक्षलोकमधुना बद्ध्वा गिरेर्गह्वरे—
त्वेषामाहर योषितस्सुनयना अत्रोपभोक्ष्यामहे।
संगृह्याखिलकोशसारमनलस्यैनां पुरीमर्पय
द्रागावासय वा निशाचर कुलैर्लङ्काद्वितीयस्त्वियम्॥

तृतीय अंक में रावण के वीरों ने एक यक्ष-दूत को पकड़कर रावण के सम्मुख किया और उससे कहा कि कुबेर का पुष्पक-विमान हमें प्राप्त कराओ। यक्ष ने रावण से कहा कि तुम लोग तो अपने आप उड़ते हो। तुम्हें विमान से क्या? प्रहस्त ने उसे मारा तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

नारद ने शिव के प्रति रावण को यह कह कर भड़काया कि उन्होंने लङ्का से भगाये हुए कुबेर को कैलास पर शरण दी। रावण के वीरों ने नारद से कहा कि बस, शिव को जीतने पर कुछ भी अविजित नहीं रहेगा। रावण ने महोदर से कहा कि विमान को 'शिवपुरी कैलास की ओर चलाओ। रावण ने विमान पर उड़ते हुए वर्णना की—

तुहिन-पटलपात-विलष्ट-सन्दिग्धरूपा नवजलदकणान्तर्वेधचित्रप्रभाढ्या।
वनभुवि चलपर्णच्छाययान्दोलिताभा विदधति गुडिकान्तःपारदालोललीलाम्॥

कैलास में जाकर रावण ने घोषणा कराई—शिव के सभी पार्षद सुन लें और उनसे जाकर कह दें कि रावण ने आक्रमण कर दिया है।

रावण का विमान कैलास पुरी के समीप रुका तो रुका ही रह गया। ज्ञात हुआ कि यह नन्दी का कृतित्व है। उससे रावण की झड़प हुई। उसने कहा कि अपने मनोरथ से विदूर हो, अन्यथा अपनी चपलता का फल पाओगे। तुम्हें दृष्टिमात्र से जला दूँगा। उसे शाप देकर नन्दी ने नीचे गिराया और सूचना दी कि इससे आगे फल देना शिव के अधिकार में है।

क्रोधाभिभूत रावण ने क्या किया?

विलुठ्य पुनरुत्थितः सपदि सम्प्रवाव्याभितः
परीक्ष्य गिरिमूलमर्पितभुजस्तदभ्यन्तरे।
विनम्रतनुरुच्छिरा विकटमेकजानुस्थिति—
र्निरुध्य पवनं हृदि द्रुतमसौ समुद्युज्यसे॥

वह कैलास को उखाडने लगा। शिव ने पादाङ्गुष्ठ से कैलास को दबा दिया। उससे रावण घिस गया। पर रावण को वर मिलने वाला है।

सप्तम अंक के पूर्व विष्कम्भक में नारद ने बताया है कि कैसे पार्वती ने मान छोड़कर शिव का कण्ठ पकड़ लिया—

कैलासाद्रेस्तोलनं तावदास्तां तेनैवास्मिन् दृष्टचौर्ये प्रतुष्येत्।
त्रस्ता देवी मानमुत्सृज्य कण्ठं जग्राह स्थाणुरन्तःसमोदः॥

रावण ने अपने उद्धार का मार्ग यह समझा कि शिव की स्तुति का गान करे। उसके गाते हुए नारद ने वल्लकी बजाई। रावण और उसके वीरों ने महादेव का जय जय गान किया। शिव ने कहा—

प्रीतोऽस्मि तव शौण्डीर्याद् भक्त्या च दशकन्धर।
शैलाक्रान्तेन यन्मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः॥

उसे चन्द्रहास खड्ग दिया। शिव के आदेश से पुष्पक में रावण की सेवा करने के लिए गति आ गई।

शिल्प

अभिनय में रंगमंच विचित्र रूपधारी पात्रों से मण्डित है। यथा—दस मुंह वाला रावण,[1] छः मुंह वाला स्कन्द, घोड़े के मुंह और सींग वाला भृंगिरिटि और एकदन्त हाथी का मुंह वाला गणेश। छायात्मक पात्रों का अनोखापन भी रमणीय है। ऐसे दो पात्र हैं सन्ध्या और रात्रि। नन्दी वृद्ध बैल है, पर संस्कृत बोलता है।

द्वितीय अङ्क के अन्त में दशानन की एकोक्ति है, जिसमें देवताओं की श्रेष्ठता, शठता आदि की चर्चा करते हुए वह सूचना देता है—

इन्द्रः स्यां वरुणः स्यामस्मि कुबेरो यमोऽपि स्याम्।

तृतीय अङ्क के आरम्भ में रावण अपने मदन-सन्ताप का वर्णन करता है। उसे रमणी चाहिए। तभी रम्भा की छाया दीख पड़ी। चतुर्थ अङ्क के अन्त में नन्दी की सूच्यात्मक एकोक्ति है।

नेपथ्य के पात्र से रंगपीठ के पात्र का संवाद तृतीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में है।

संघर्षात्मक संवादों की चटुलता रोचक है। नन्दी और रावण का ऐसा संवाद है—

दशाननः—(समर्पाटोपम्) अरे रे वृथा शूलधर, जर्जरानड्वन्, किमिति प्रगल्भसे एष शृङ्गे ते समुत्पाटयामि।

नन्दी—अरे दुर्वार, भ्रष्टो भव

फिर तो दशाननोऽन्तरिक्षादधः पतति।

---

१. रावण का रूप है—

विंशति कुण्डलतारा विद्योतितदशशिरःकूटः।
अञ्जनगिरिरिव विचरति पंचपनक्तञ्चरोनुचरः॥

प्रतिराजसूय

महालिङ्ग ने प्रतिराज सूय की रचना मद्रास-संस्कृत एकेडेमी के पुरस्कार के के लिए की।[1] उनको इस रचना पर ३५० रुपये का पुरस्कार १९२९ ई० में मिला। लगभग ३० वर्षों के पश्चात् इस पुरस्कृत रचना का प्रकाशन १९५७ ई० में सम्भव हो सका।

सात अङ्कों के इस नाटक का उपजीव्य महाभारत का वनपर्व है। इसमें विदुर-प्रवेश, अक्षय-पात्रोपलब्धि, सुदर्शन-प्रवेश, दुर्वासा का आगमन, राजकुल में दुर्वासा, कुहनातापस, अर्जुन का आगमन, पुलाकपरिपाक, विकाल-प्रवेश तथा अभिमन्यु की अभिसन्धि है।

आदिकाव्योदय

महालिंग ने आदिकाव्योदय नामक रूपक को प्रकरण कहा है। इसका मूल लघु रूप मार्च १९३२ ई० में आधे घण्टे के अभिनय के लिए बना। तभी से क्रमशः परिवर्धित और संशोधित होते हुए १९४२ के दिसम्बर मास में पूर्ण हुआ। इसका प्रथम अभिनय सह्यजा नदी के तट पर आषाढ मास में हुआ था।

कथावस्तु

किसी अप्सरा ने दो वर्ष के दो शिशुओं को वाल्मीकि की देख-रेख में छोड़ दिया था। वाल्मीकि ने अपनी योगदृष्टि से जान लिया था कि ये हैं कौन। इस बीच एक दिन नारद आये और उन्होंने वाल्मीकि को रामचरित सुनाया। वाल्मीकि के आश्रम में नवागत शिष्या आत्रेयी ने स्पष्ट शब्दों में प्रचार किया कि यह राम की निर्दयता है कि उन्होंने सीता का परित्याग किया। द्वितीय अङ्क में वाल्मीकि और भारद्वाज तमसा के तट पर हैं। उन्हें आगे चलने पर रमणीय अरण्य मिला। वहाँ निषाद ने तीर चला कर क्रौञ्च-मिथुन में से एक को मारा। उसे उस समय उन दो मुनियों का धिक्कार सुनाई पड़ा और वह भाग चला। वाल्मीकि ने उसे शाप दिया—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। इत्यादि

भरद्वाज ने कहा—भगवन् छन्दोवतारः किल।

आकाशवाणी हुई—

कुरु रामायणं कृत्स्नं श्लोकैर्बद्धं मनोहरम्। इत्यादि

तृतीय अङ्क में रामायण की रचना की सूचना मिलती है। कुश और लव उसको कण्ठाग्र करके गाते हैं। एक दिन भरत का निमन्त्रण वाल्मीकि को मिलता है कि शिष्यों के सहित अश्वमेधयज्ञ में आ जायें।

---

१. इनका प्रकाशन १९५७ ई० में साहित्य-चन्द्रशाला, तिरुवलंगुटु, तंजौर (मद्रास) से हुआ है।

चतुर्थ अङ्क मे सीता की वियोगाग्नि मे प्रदग्ध राम स्वर्णमयी सीता को पत्नी-रूप मे ग्रहण करके यजमान बने हैं। उनके शोक को दूर करने के लिए लव और कुश रामचरित का गायन प्रस्तुत करते हैं।

कौसल्या के प्रासाद में छठें अङ्क मे पुत्तलिका-नृत्य का समावेश है।[1] उसमे संगीतक नेपथ्य से गाया जाता है। उसका भावाभिनय पुत्तलिकायें रगपीठ पर करती हैं। ईश्वरभूति और उमादास गाते हैं। राम के वनवास की कथा है। इसमे पात्र हैं ऊर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, मन्थरा, कैकेयी, दशरथ, प्रतीहारी, सुमन्त्र, राघव, सीता, लक्ष्मण, कौसल्या, अन्त पुर के लोग, विनयभद्र और विज्ञान भद्र तथा ईश्वरभूति और उमादास।

सातवें अङ्क मे गर्भाङ्क का समावेश है।[2] बाल्मीकि के शिष्य इसका अभिनय करते हैं। सीता हरण की कथा अभिनेय है। इसमे राम के अकेले होने पर शूर्पणखा सीता बनकर उन्हे स्वर्णमृग को पकड लाने के लिए कहती है। जटायु-युद्ध तक का वृत्तान्त इसमे आया है।

अष्टम अंक मे युद्ध का वृत्तान्त कुम्भकर्ण को जगाने तक प्रवर्तित है। नवम अक मे रात्रि के समय विभीषण और हनुमान् की बातचीत होती है। उन्हे सीता की सच्ची कथा ज्ञात होती है। अभिनव-द्रष्टा प्रतिभाशाली नये कवि हैं, जिन्होने वाल्मीकि की काव्यधारा को अपनाकर सीता का गुणगान किया।

इसके पश्चात् प्रकृति-नटी ने अपना खेल दिखाया। प्रभञ्जन और जलप्लावन का उत्पात उन्ही दो लव-कुश ने अपने अस्त्रो से शान्त किया। अश्वमेध के पूर्ण होने के पहले ही पृथ्वी फटी और उसमे से जो सीता निकली, उसने स्वर्णमयी सीता का स्थान ले लिया। राम को दो पुत्र और सीता मिली।

इस प्रकरण का नायक महालिंग की दृष्टि मे आदिकाव्य है।[3]

कौण्डिन्य-प्रहसन

कौण्डिन्य प्रहसन की रचना विशेष अवसर पर प्रयोग करने के लिए हुई थी। इसमे नान्दी से ही प्रेक्षकों को हँसाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। शष्कुली (जिलेबी) तथा कविता की समानता का परिचय नान्दी मे है—

मृद्वी घनाधरपुटे लघुपीडनेन श्च्योतन्निरन्तररसा रसकोविदानाम्।
वर्णप्रकर्षविलसद्वहलोमिकाढ्या युष्मान् धिनोतु कविता मधुशष्कुलीव ॥

कथावस्तु

द्वादशी-पारण प्रातःकाल कर लेने के पश्चात् गृध्नास को अपराह्न-भोजन की चिन्ता हुई। उन्होने अपनी पत्नी जिह्वाला से कहा कि चिउडा (पृथुक) बनाओ।

१-२. महालिंग ने इन दोनो को प्रेक्षणक कहा है। षष्ठ अङ्क मे विरत प्रेक्षणकम्
सप्तम अंक मे क- पुनरस्य प्रेक्षणकस्य रचयिता।

३. The hero of the play is Ādikāvya itself. P, III.

पत्नी ने कहा कि बाजार से सामग्री आप लायें। गृध्र ने कहा कि जाता हूँ, पर देखना कहीं कौण्डिन्य न आ धमके। वह मुझे बाजार आता-जाता देखकर समझ लेगा कि कुछ विशेष भोजन का आयोजन है। फिर द्वार पर जम जायेगा और बिना खाये नहीं टलेगा।

द्वितीय अङ्क में कौण्डिन्य नामक पराान्नव्रती को दूर से बचकर निकलते हुए गृध्रनास दिखाई पड़ा। उसे ध्यान आया कि यह भोजन का शौकीन दूकानों पर कुछ खरीद रहा है। अवश्य ही आज बढ़िया पूड़ियाँ और मिठाइयाँ केवल अपने खाने के लिए पकवा रहा है। चलें, इसके घर पहुँचे। उसके घर पहुँचा तो द्वार बन्द मिला।

वह बरामदे में बैठ कर गाने लगा—

परगृहभोजनपरितुष्टानां नित्यातिथ्योत्सव-निष्ठानाम्।
कालत्रयविरतोद्योगानां किं च समेतामितभोगानाम्।
गृहमेधिनिमन्त्रणचित्तानां पड्रसभरिताशनमत्तानाम्॥ २.१५

जिह्वाला का भोजन पक चुका था। पीछे के द्वार से कौण्डिन्य की दृष्टि बचाते हुए गृध्रनास भीतर आया तो पति-पत्नी ने चर्चा की कि पिशाच कौण्डिन्य तो आ चुका है। उष्ण भोजन करके गृध्र निवृत्त हो जाय और उससे मिले—यह योजना बनी।

कौण्डिन्य ने घर के भीतर उनकी बातचीत सुनी। पीछे के द्वार से वह भीतर घुसा ही था कि उसे बन्द करने के लिए आती जिह्वाला ने प्रवेश करते देखा। उसने पीछे भाग कर पति से कहा—एष चोर इव पश्चिमद्वारेण प्रविशति निर्लज्जः। नाथ का गतिरधुना।' यह कहकर रोने लगी। यह सुनकर गृध्र जल्दी-जल्दी गर्मागर्म चिउड़े का सफाया करने लगा और अंगुली तो जली ही, जीभ जली और वह हा हा करने लगा। आँखें निकल आईं। उसने गृध्र के मुंह में अपनी ठंडी श्वास से शीतलता प्रदान की। कौण्डिन्य तब तक उनके पास आ पहुँचा। पति की स्थिति देख कर पत्नी ने समझा कि यह तो कहीं मर ही न जायें। उसने रोकर कहा कि आपके मर जाने पर तो मैं भी मर ही जाऊँगी। पत्नी के पूछने पर कौण्डिन्य से कहा कि इन्हें कुछ दिनों से मुंह में बड़ा फोड़ा था। ज्वराक्रान्त थे। आज तो मर ही रहे हैं। कौण्डिन्य ने कहा कि अभी-अभी तो इन्हें बाजार से आते देखा था। ये अस्वस्थ कब हुए? पत्नी ने कहा कि अपनी दवा के लिए वैद्य के पास गये थे। आप तो इतनी ही कृपा कर सकते हैं कि शीघ्र ही कोई वैद्य बुला दें। कौण्डिन्य ने कहा कि वैद्य बुला दूँगा। पर मैं भी उपचार जानता हूँ। आप तो आँचल हटायें। देखूँ कैसा फोड़ा है? जिह्वाला ने कहा कि देर कर रहे हो। क्या देखते नहीं कि मरणासन्न रोगी का कण्ठ घर्घर

१. इनका प्रकाशन उद्यान पत्रिका में तो हुआ ही है, साथ ही पुस्तकाकार प्रकाशन साहित्य-चन्द्रशाला तिरुवलंगुडु, तंजौर से हुआ है।

कर रहा है ? तब तो कौण्डिन्य वैद्य बुलाने के बहाने द्वार से बाहर निकला और देहली के पास कुसूल के बगल मे छिप गया।

गृध्रनास ने आँखें खोली और पत्नी से पूछा—प्रिये किं गतः स हतकः।

द्वार बन्द करने के लिए जिह्वाला गई तो उसने देखा कि कौण्डिन्य वही छिपा पडा है। गृध्रनास ने यह सुना तो कहा—पापोऽयं ब्रह्मराक्षस इव निरन्तरं मामनुबध्नाति। इससे कैसे पिण्ड छूटे ? पत्नी ने कहा—इसे युक्ति से भगाती हूँ। पति ने कहा—मुसल मारकर भगाऊँगा। पत्नी ने कहा—इससे गाँव मे नाक कटेगी। इसे छल से भगाती हूँ। आप देखे।

इधर कौण्डिन्य ने देखा कि ये भोजन करने के लिये उठ क्यो नही रहे हैं ? उधर घर के भीतर जिह्वाला चिल्लाई—परित्रायस्व माम्, परित्रायस्व माम्। गृध्रनास ने चिल्लाकर कहा कि तुम्हे ब्रह्मराक्षस ने पकड लिया। जिह्वाला ने कहा कि कल पीपल वाले ब्रह्मराक्षस ने ब्रह्मचारी बनकर दन्तुरा से भीख माँगी थी—ऐसा दन्तुरा ने स्वय समाचार दिया है। उसके पति ग्रन्थिल मिश्र ने उसे भगाने के लिए मुसल लेकर आक्रमण किया तो वह ब्रह्मराक्षस द्वार के पास जा छिपा। ग्रन्थिल मिश्र से डरकर ब्रह्मराक्षस ने शरणागति माँगी और रोकर भागा। गृध्रनास ने पत्नी से कहा—मैं इन सब कामो मे ग्रन्थिल मिश्र का चाचा हूँ। मैं ब्रह्मराक्षस को अभी भगाता हूँ। गृध्रनाश ने मुसल लेकर अपना कार्यक्रम आरम्भ किया। इस बीच यह सब सुनकर कौण्डिन्य ने कुसूल से भुस लेकर सूप को हाथ मे उठा लिया और गृध्रनास के पास आते ही उसके मुह पर भुस दे मारा। गृध्रनास ने अन्धा सा होकर पत्नी को बुलाया। पत्नी ने 'परित्रायध्वम्' का रोना रोया। कौण्डिन्य ने कहा कि गृध्रनासमिश्र, तुम तो भुस खाओ। मैं चिउडा खाता हूँ। वह झपट कर खाते हुए जिह्वाला से बोला कि फोड़े का डाक्टर बुलाऊँ या आँख साफ करने वाली ? जिह्वाला ने उसे खूब गालियाँ दी। कौण्डिन्य ने कहा कि अतिथि को ठगने से लोग ब्रह्मराक्षस अगले जीवन मे होते हैं। मैंने तुम्हारे पति की रक्षा कर ली सब कुछ खाकर।

नाट्यशिल्प

कौण्डिन्य-प्रहसन मे एकोक्तियो की विशेषता है। पहली लम्बी एकोक्ति कौण्डिन्य की है, जो द्वितीय अंक के आरम्भ मे दो पृष्ठ की है। इसमे वह पराम्न की प्रशसा करता है और अपने चाचा वटिका मिश्र की चर्चा करता है :—

कृत्वापणं हि वटिकाशतभक्षणाय पूर्णे नवाधिकनवत्यशनेऽथ यस्य।
उद्गीर्णलोचनयुगस्य पुरा मुमूर्षोः शिष्टैकसंग्रहरुचि कृतिनः स्मरन्ति॥

उसे कंजूस गृध्रनास कहीं दिखाई पडा तो उसके भोजनादिकी प्रशसा की और कहा कि यह मुझे दूर-दूर से ही छोड़कर निकला जा रहा है।

रंगपीठ तीन भागो मे है—एक मे कौण्डिन्य है और दूसरे मे घर का पिछवाड़ा

और तीसरे में घर का भीतरी भाग। आवश्यकतानुसार इनमें से कोई भाग समक्षित होता है।

हास्य सर्जन के लिए पात्रों के नाम यथा योग्य हैं—जिह्मला, गृध्रनास मिश्र (गिद्ध जैसी नाक वाला), कौण्डिन्य ग्रन्थिल मिश्र। नाट्य कथा के संविधान हास्य-प्रवण हैं। रूपक में संवाद सरल सुबोध भाषा में मनोग्राही हैं। सबसे बढ़कर विशेषता है कि परम्परागत शृंगार का परित्याग कर सुसभ्य समाज के योग्य हँसने-हँसाने की सामग्री जुटाने में महालिंग अद्वितीय हैं।

कलिप्रादुर्भाव

कलिप्रादुर्भाव कवि की प्रिय कथा है। उन्होंने यह कथा अपने किसी मित्र से सुनी और १६३० ई० में उद्यान पत्रिका में आख्यान-रूप में प्रकाशित की। फिर १६३६ ई० में इसका नाटकीय रूप रचा और इसका तामिल अनुवाद शिल्पश्री में प्रकाशित किया। इस रूपक का प्रकाशन १६५६ ई० में हुआ।

कथावस्तु

द्वापर युग का अन्तिम दिन था। कात्यायन मिश्र ने किसी वैश्य को अपनी भूमि का कुछ भाग बेच दिया था। वैश्य ने उसमें हल चलाते समय उस खेत में गड़ी बड़ी निधि पाई। ब्राह्मण के धन के स्पर्शमात्र से डरकर उस निधि-कलश को सन्ध्या के समय ब्राह्मण से कहा कि यह निधि ले लें। ब्राह्मण ने कहा यदि खेत तुमको बेच दिया तो उसमें जो कुछ था, वह तुम्हारा हो गया। वैश्य ने कहा कि मैंने भूमि का मूल्य आपको दिया है, कोश-निधि का नहीं। मैं ब्राह्मण की सम्पत्ति लेकर अपनी दुर्गति नहीं चाहता। मेरा कुल नष्ट हो जायेगा। ब्राह्मण ने कहा कि जब तुम्हारा दुराग्रह है तो कल प्रातः काल आ जाओ। पंचों के द्वारा विवाद का निर्णय किया जायेगा।

द्वितीय अङ्क में आधी रात के समय युग-परिवर्तन से लोक-प्रकृति का ही परिवर्तन हो गया। द्वापर गया और कलि ने अपने शासन की व्यवस्था बनाई—

अर्था निश्वसितं भवन्तु भविनां लुम्पन्तु चेभ्याः परं
सन्तापं समुपाश्रितेषु ददतः कौटिल्यकुल्यायिताः।
लोभेन प्रकृतिहिते नृपाः प्रतीपं वर्तन्तामवनिसुरा निकारभाजः।
वर्णोनाः परिकलितप्रभावदृप्ता मात्सर्यप्रचुरफणाधराः स्फुरन्तु॥

तृतीय अङ्क में रात में सोए हुए वैश्य और उसकी पत्नी बातचीत करते हैं कि यह तो ठीक नहीं हुआ कि निधि कलश ब्राह्मण को बताया गया। वैश्य ने कलश के लिए पत्नी को रोते देखकर अन्त में कहा कि अभी कुछ बिगड़ा नहीं। कल पंचों के सामने कह दूंगा कि मैं कलश के विषय में कुछ नहीं जानता।

चतुर्थ अङ्क में कलियुग के प्रथम दिन ही ब्राह्मण की बुद्धि बिगड़ी। उसने निर्णय लिया कि वैश्य पर ब्राह्मण का धन हड़पने का दोषारोपण करूँगा। राजा की शरण लेना पड़ेगा। वह वैश्य भी अब सामने नहीं आता।

पंचम अङ्क में राजकुल की मन्त्र-सभा मे छलधर्मा नामक राजा मन्त्री और पुरोहित आदि से मन्त्रणा करता है। छलधर्मा ने अपने को द्वापरयुगीन दुर्योधन का अनुव्यवसायी बताया और कहा कि कृष्ण के मरजाने पर अब पाण्डवों का जीतना बायें हाथ का खेल है। युद्ध के लिए सज्जा करने की लम्बी-चौड़ी योजनाये बनी। इसके लिए धनराशि की आवश्यकता मन्त्री ने बताई। अवरामात्य ने बताया कि कुछ लोगों को इस नगर मे निधिलाभ हुआ है। वह सब आपका होना चाहिए। कैमुतिक न्याय से राजा ऐसी सम्पत्ति का पूर्णाधिकारी है। राजा ने सभी सभासदो के एकमत से उपर्युक्त विधानका समर्थन करने पर घोषणा कराई-निधान देर्ने तो उसे राजा के लिए निर्यातन करे। जो इसे छिपायेगा उस पर राजद्रव्यापहार का दण्ड दिया जायेगा।

छठें अङ्क मे पच ब्राह्मण मठ मे उपस्थित हैं। वैश्य वहाँ नही आ रहा था। ब्राह्मण उसे पकड़कर लाया तो वह निधि-कलश की बात डकार गया। पचों का मत था कि धन कात्यायन का है। एक पंच ने कहा कि आधा-आधा आप दोनो बाँट ले। कात्यायन ने कहा कि पूरा ही चाहिए। वैश्य ने कहा कि कानी कौड़ी भी न दूँगा। वह चलता बना। तब तो कात्यायन भोकार पार कर रोने लगा।

सप्तम अक मे आधिकरणिक के समक्ष विवाद पहुँचा। आधिकरणिक ने वैश्य से पूछा कि कल सन्ध्या के समय तुमने निधान-कुम्भ कात्यायन को ले लेने के लिए कहा था। वैश्य ने कहा—असत्य है सब। इस ब्राह्मण को खेत का लोभ है। अतएव इस प्रकार के जाल रचता है। अधिकरणिक ने पूछा—आज प्रात काल पचो ने क्या कहा? वैश्य ने बताया कि कोशनिधि को आधा-आधा ले लो। आधिकरणिक ने कहा कि तब तो धन की प्राप्ति की घटना उनके समक्ष थी। वैश्य ने कहा कि यह सब ब्राह्मण की कल्पना है।

आधिकरणिक की आज्ञा के अनुसार वैश्य के घर कोशनिधि ढूढने के लिए राष्ट्रिय पहुचा। कात्यायन मिश्र साथ गया। थोड़ी देर मे निधिकलश लेकर वे दोनो आ गये। उन्होने बताया कि वैश्य-पत्नी ने डरकर यह दिया है। आधिकरणिक की आज्ञानुसार कलश राजा को मिला। ब्राह्मण को खेत मिल गया।

शिल्प

प्रस्तावना मे कवि ने कथा का कुछ अंश सूचित करके उसके आगे के भाग को दृश्य बनाया है।[1]

पूरा रूपक १६ पृष्ठों का है और इसे सात अङ्को मे विभक्त किया गया है। पहला अक तो एक पृष्ठमात्र का है। चतुर्थ अङ्क एक पृष्ठ का है। इसमें ब्राह्मण की एकोक्ति मात्र है।

इस नाटक मे द्वापर और कलि छायात्मक पात्र हैं।

---

१. 'ततश्च यदनुगतं तद्रूपके द्रक्ष्यथ' प्रस्तावना से।

द्वितीय अंक का आरम्भ द्वापर की एकोक्ति से होता है, जिसे कवि ने आकाशे नाम दिया है। इस अंक के अन्त में कलि की एकोक्ति है।

अर्थोपक्षेपक का एक नया स्वरूप तृतीय अङ्क में वैश्य के उत्स्वप्नायित में मिलता है। वैश्य दूसरे दिन क्या करने वाला है—वह सब स्वप्न में वह बक देता है।

संवाद क्या हैं—लम्बे-लम्बे व्याख्यान, जो तीस पंक्ति तक चलते हैं। यह नाट्योचित नहीं है।

शृङ्गारनारदीय

महालिंग का तृतीय नाटक प्रकाशन-क्रमानुसार शृंगारनारदीय है। इसकी रचना १९३८ ई० में हुई। इसका प्रकाशन १९५६ ई० में हुआ। कवि ने धनिकों को सुबुद्धि देने का प्रयास करते हुए इसकी भूमिका में लिखा है—

शृणुत विबुधवर्याः प्रार्थनामस्मदीयां कतिकतिविधया वः क्षीयते नार्जितस्वम्।
सरभसपरिचर्यापात्रमत्राद्रियध्वं प्रतिनवकविकर्म स्वर्गवीपाशुपाल्यम्॥

इस प्रहसन की कथा का पूर्वरूप देवी भागवत की नारद कथा में मिलता है। महालिंग ने उपर्युक्त कथा में पर्याप्त जोड़-तोड़ कर कथावृत्त को विश्वास-परिधि में ला दिया है।

कथावस्तु

गन्धर्व-मिथुन प्रणयलीला में निमग्न हैं और जलाशय तट पर कन्दरा में सङ्केत-स्थान पर आनन्द-निर्भर हैं। एक दिन नारद ब्रह्मलोक से अपनी चर्या पर निकले। तो उन्हें हिमालय की उपत्यका में वही कन्दरा विश्रामोचित प्रतीत हुई। उसमें घुसे तो उन्हें प्रणयोन्मुख गन्धर्व-दम्पती मिली, जो बाधित होने पर भाग चली। उन्हें अपने इस करतब पर खेद हुआ। उन्हें प्रतीति हुई कि मुझे पाप लग गया। वे तट पर वीणा रखकर जलाशय में नहाने लगे। इस बीच वहाँ ऋक्षरजा आया, जो आवश्यकतानुसार स्त्री और पुरुष बन जाता था। रूप-रंग वानर जैसा था। कामी तो जन्मजात था। वीणा देखी तो उसे बजा कर नाचने-गाने लगा।

डुबकी लगा कर नारद ने ऊपर देखा तो उन्हें ऋक्षरजा दिखाई पड़ा। नारद ने उसे ललकारा—

अपेहि, अपेहि क्षुद्रवानर, अपेहि।

ऋक्षरजा ने नारद को देखा तो प्रणयपूर्वक उनकी ओर बढ़ा। इधर नारद को लगा कि मैं रमणी बन गया हूँ। ऋक्षरजा ने प्रस्ताव रखा—'भज मां प्रसीद'। नारद ने डाँटा—मर्कटपाश, मैं नारद हूँ, ब्रह्मा का प्रथम पुत्र। शाप दे दूँगा, यदि चपलता की। ऋक्षरजा ने कहा कि कहाँ के नारद हो तुम! अब तो रदना हो।[1]

---

१. जलाशय में स्नान करते समय जल के विशेष प्रभाव से नारद का लिंग-परिवर्तन हो चुका था।

मैं ब्रह्मा का पुत्र हूँ। उन्हीं ने इस जलाशय से निकली हुई तुमको मेरी पत्नी बनाया है।

नारद जितना ही दूर हटते जाते थे, उतना ही ऋक्षरजा उनके पीछे पड़ा था। नारद को इस बीच प्रतीत हो गया कि मैं ब्रह्मा का पुत्र नहीं रह गया, वधू बन चुका हूँ। उन्होंने देखा कि वानर के हाथ में पड़ी मैं चपलाक्षी-मात्र हूँ। जटा-कबरी बन चुकी है। यह जलाशय मायिक है। इस पशु (ऋक्षरजा) के प्रति मेरे मन में प्रीति उत्पन्न हो रही है। उससे नारद (रदना) का प्रणयालाप आरम्भ हुआ, जिसमें ऋक्षरजा ने बताया कि इस जलाशय में नहाने से मैं भी स्त्री बन कर सूर्य और इन्द्र की पत्नी होकर वालि और सुग्रीव की माता बना। फिर पुरुष बना।

रदना (नारद) ने कहा कि प्रणय-पथपर चलने के लिए प्रणयिनी को कुछ भूषण-वस्त्रादि से समलङ्कृत करके प्रसन्न करना पड़ता है। तुम तो मेरे लिए जलाशय से कमल लाकर दो।' नारद को आशा थी कि इसके जल में स्नान करने से पुनः स्त्री होकर यह मुझ से प्रेम करना बन्द कर देगा। हुआ भी ऐसा ही। सरोवर से निकलते हुए ऋक्षरजा सिर धुनने लगा और रोकर कहने लगा—

स्त्री खलु ऋक्षरजा पुनरेव, पुनरेव।

रदना (नारद) ने प्रसन्न होकर उसे पुकारा—मेरी सखी, बोलो क्या है? मन ही मन उसके सौन्दर्य से लुब्ध हो गये। ऋक्षरजाने रदना को डाँटा कि यह सब तुमने जान-बूझकर किया है। रदना ने कहा कि बुरा क्या है? अब तो देवता तुम्हारे लिए ललक कर आयेंगे। ऋक्षरजा ऐसी स्थिति में भाग खड़ी हुई।

रदना ने विष्णु के प्रीत्यर्थ पुनः अपनी वीणा बजाते हुए गाया—

सुकुमारललितमूर्ते गोपीजनगीतमधुरनिजकीर्ते।
नारदललनामार्तेरुद्धर विहिताखिलेष्टसम्पूर्ते॥
गोपीजनजार स्मर नारायण रदनाम्।
दारास्तव माराशुग निशिताङ्ग्यहमुचिता॥

विष्णु प्रकट हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर रदना से कहा—भोगायतनं खलुस्त्री-शरीरम्। मैं भी तो मोहिनी बना और शिव ने मुझे पत्नी रूप में अपनाया। अब तो प्रेमपूर्वक मेरे सहवास से ६० पुत्र उत्पन्न करो, फिर नारद (पुरुष) बनना। विष्णु ने ऋक्षरजा से कहा कि तुमको पुरुष बना देना चाहता हूँ। उसने कहा—नहीं, मैं तो स्त्री ही रहकर संसार को नचाना ठीक समझती हूँ।

शिल्प

महालिंग की एकोक्तियों में आस्था है। अङ्क के बीच में अकेले नायक नारद प्रथम बार रंगपीठ पर आते हैं तो अपनी अनुभूतियों का राग अलापते हैं। हिमालय पर रमणीय सर की शोभा का वर्णन करते हैं और अपनी विश्रामानुभूतियों की चर्चा करते हैं। वे नारायण की प्रीति के लिए वीणा बजाते हैं और दो पहर की

धूप का वर्णन करते हैं। उन्हें कन्दरा में गन्धर्व-युगल मिला, जो उन्हें देखते ही भाग चला। इसके पश्चात् फिर नारद की इस स्थिति पर मनस्तापात्मक एकोक्ति ११ पंक्तियों की है।[1]

लम्बे-चौड़े गीतात्मक पद्यों के द्वारा मनोविज्ञान को महालिंग ने अनेक स्थलों पर सचित्र किया है। गन्धर्व-युवा दस पद्यों में अपनी बात कहता है। बीच-बीच में अधिक से अधिक एक-दो पंक्ति का गद्य भाग ही आ पाया है।

प्रेक्षकों के प्रीत्यर्थ संगीत का आयोजन महालिंग ने इतस्ततः किया है। नारद की वीणा को ऋक्षरजा बजाता है। वह वीणा बजाते हुए नाचता और गाता भी है। यथा—

उपेहि ललने मदीय दयिते अपाङ्गवलने कृपास्तु मयि ते।
विभीहि मा मे प्रियस्तवाहम् विधातृसृष्टं वृणीष्व रुष्टे॥

इस रूपक में छायातत्त्व की प्रचुरता है। नारद और ऋक्षरजा का लिंगपरिवर्तन अतिशय रोचक संविधान है।

यह प्रहसन है। प्राचीन युग के प्रहसनों में जो भोंडापन रहता था, उससे सर्वथा भिन्न संविधानों के द्वारा सुमण्डित शृंगार-नारदीय हास्य की सुयोजित धारा प्रवाहित करता है।

उभयरूपक

महालिंग के उभयरूपक का प्रणयन १९२९ से १९३८ ई० तक पूरा हुआ। १९२९ ई० में एक चौथाई और शेष १९३८ में पूरा हुआ। इसका प्रथम प्रकाशन उद्यान पत्रिका में १९६२ ई० में हुआ।

कथावस्तु

कुक्कुट स्वामी का पुत्र छागल जाड़े की छुट्टी में घर आया था। वह गाँव में पिता के घर आना प्रायः छोड़ चुका था, पर इस बार उनके विशेष आग्रह करने पर उनको मानो दर्शन देने के लिए आया था। गर्मियों में भी अपने मामा के घर पिंगलपुर में रहता था। यह कुक्कुट स्वामी से जानकर गाँव के अध्यापक वज्रघोष ने अपना मत प्रकट किया—

विदेश-वेशभाषाढ्याः प्रभिन्नगतयो नराः।
विप्रकर्षं शनैर्यान्ति स्वजनेभ्योऽपि नूतनाः॥

वज्रघोष का स्पष्ट मत छागल के विषय में है—

नगरवास-लम्पटानां ग्रामवासे काममस्वरसता सम्भवति।

कुक्कुट यद्यपि गाँव में रहता था, किन्तु वह ग्रामवास से अरण्यवास को अच्छा

---

१. एकोक्तियों का क्रम चलता रहता है। नारद रंगपीठ पर ही है। उन्हें न देखते हुए ऋक्षरजा वहाँ आता है और आत्मकथा सुनाता है और वहीं पड़ी नारद की वीणा बजाता है।

मानता था। वह समझता था कि इंगलैण्ड में पढ़कर मेरा लड़का उन्नपद पर नियुक्त होगा।

कुक्कुट का बड़ा लड़का ग्रामवासी था। वह विलायती संस्कृति की भारत-विमुखता को समझता था। उसके शब्दों मे विलायती संस्कृति की छाया का प्रभाव है :—

सकंचुकमुरस्सदा सदन चंक्रमेष्वप्यहो
पदत्रपिहितं युगं चरणयोर्वपुर्मानिनः।
उपोढमुपलोचनं वहति सार्धकाकुस्वरं
प्रर्नतितशिरोधरं घटिति कूणितं पश्यति ॥

वह छागल का परिचय देता है—

ईदृशः खलु नव्यो नागरो फालं विशोधयति पुंड्रमपोह्य तूर्णम्।
सन्ध्यादिकं नित्यकर्म निराकरोति उच्छिष्टदोषमविमृश्य चरत्यभोज्यम् ॥

छन्दोवृत्ति को यह असह्य था कि नित्य पिता की सहायता करने वाले मुझ से बढ़कर अंगरेजी पढ़ने वाला छागल प्रियतर है।

सवेरे से ही नाई को छागल ढूंढ रहा था। उसे नाई मिला नहीं। वह गाँवों की दुःस्थिति और ग्रामवासियों की कुरीतियाँ को भली भाँति समझता था। वह वज्रघोष से टकराया। इधर-उधर की निन्दा-स्तुति के पश्चात् वज्रघोष ने बताया कि कार्यदृष्टि की कन्या वंचना से तुम्हारा विवाह करने की योजना चल रही है। तुम्हारी सगति के लिए वंचना नाचना-गाना सीख रही है और अंगरेजी पढ़ रही है। पिता तुम्हारे भावी ससुर से सामुद्रिक यात्रा की व्यय-राशि वरशुल्क के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं।

छागल को विवाह के लिए ग्राम्य बाला स्पृहणीय नहीं थी। वज्रघोष ने कहा कि तुम्हारे योग्य कन्यायें तो तुम्हारे विद्यालय मे ही हैं। उसने जिस कन्या को दृष्टि में रखकर छागल से बातें की, उससे छागल समझ गया कि वह मेरी प्रेयसी मंजुला की चर्चा कर रहा है। वज्रघोष ने कहा था—

विस्फार्याक्षि स्वरविकृतिमिच्छावयन्ती वचस्वां
धम्मिल्लस्य स्तनपरिसरे वल्लरी सारयन्ती।
पादोद्वन्धद्विगुणघटितं प्रस्खलन्तीव यान्ती
श्यामा धेयात्तव हृदि पदं कापि विद्यालयस्था ॥

वज्रघोष के जाने पर छागल के पूछने पर चाय लेकर आई हुई उसकी माता पिप्पली ने बताया कि वचना से विवाह की बात ठीक है। छागल ने अपनी अस्वीकृति स्पष्ट की। उसने मां से स्पष्ट कहा कि मुझे गांव में रहना अच्छा नहीं लगता। माँ चली गई। डाकिये ने छागल को उसके अध्यापक का पत्र दिया कि विद्यालय की ओर से होने वाले नाटक की पूर्वसज्जा करने के लिए मैं तुम्हारे

स्टेशन से होकर जाऊँगा। तुम भी साथ चलो, छागल ने देखा कि समय कम है। उसने स्वयं अपनी दाढ़ी बनाई और कटे वाल किसी लिफाफे में डाल कर वहीं छोड़ दिया। जल्दी-जल्दी में सामान ठीक किया। नाटक में उसे हैमलेट की भूमिका मिली थी। उसके संवाद का एक भाग वहीं छूट गया था। कुक्कुट कहीं खेत पर गये थे। छागल ने वृद्ध शाक्वर नामक नौकर के सिर पर समान रखवाया और स्टेशन जा पहुँचा। उसने वृद्ध शाक्वर के हाथ पिता के लिए चिट्ठी लिख भेजी कि किस परिस्थिति में मुझे झट चल देना पड़ा।

थोड़ी देर पहले में कुक्कुट स्वमी खेत से आये। छागलक का बड़ा भाई छन्दोवृत्ति उससे पहले ही आ गया था। उन सब को विदित हुआ कि छागलक यहाँ नहीं है। छन्दोवृत्ति को उसके कमरे में हैमलेट की एकोक्ति मिली, जिसमें मरण सन्देश था। उसने उड़ा दिया कि छागलक ने आत्महत्या करने के पहले इस पत्र द्वारा अपनी दुराशा प्रकट की है। वह कहाँ गया—यह जानने के लिए वज्रघोप बुलाया गया।

वज्रघोप ने हैमलेट वाली पत्रिका पढी। उसमें नायिका मंजुला का नाम था। वज्रघोपने कहा कि इससे तो यही लगता है कि वह कहीं चला गया है। वज्रघोप को छागल के कमरे में पुड़िया में रखा दाढी का बाल मिला। यह तो विप है—उसके यह बताने पर हाहाकार मच गया। अम्बष्ठ सिन्दूर नामक वैद्य ने वज्रघोप का समर्थन किया। उसने कहा—कालचूर्ण हि विषं नु दारुणम्। उसे पानी में डालकर छन्दोवृत्ति ने स्पप्ट किया कि यह कालचूर्ण केवल दाढ़ी का बाल है।

अन्त में स्टेशन से वृद्धशाक्वर लौटा। उसने छागल की चिट्ठी और उसका कुशल बताया। पत्र में गाँव की निन्दा थी—

यत्र वाचः शूलसूचीफालकुद्दालकर्कशाः
परस्परसमुत्क्रोशमर्मसंघट्टदारुणाः ।
श्वश्रूस्नुषाखुमार्जार यम निर्यात्यतेऽनिशम्
दुर्दान्तिस्त्रीघटाटोपपटश्चरितपौरुषम् ॥

कुक्कुट को प्रतीत हुआ कि छागल अब विलायती हो गया। उसका मोह भंग हुआ।

शिल्प

एकोक्ति महालिंग की अभीष्ट साधनिका है। छागल की एकोक्ति के द्वारा गाँव की विपमता का पूरा परिचय दिया गया है।

हास्य की परिवृत्ति नायकों के नाम मात्र से भी की गई है। नाम यथागुण हैं—छागल (बकरा), कुक्कुटस्वामी (मुर्गा), गोनास (साँप), दुर्दुरक (मेंढक), पेचक (उल्लू) आदि। तुत्थ नामक नायक का कहना है—

अस्ति लेलेलेखवाचिकमित्यश्रूऊश्रयत।

अयोध्याकाण्ड

अयोध्याकाण्ड रूपक का नाम व्यंग्यात्मक है। जैसे रामायण की अयोध्या में कैकेयी की दुष्प्रवृत्तियों से पूरे कुटुम्ब का माधुर्य विनष्ट हो गया, वैसे ही इस रूपक में शतह्लदा नामक सास की अपनी बहू चारुमती के प्रति दुर्दान्त कठोरता से उसे फाँसी लगानी पड़ती है, यद्यपि वह मरने नही पाती।

कथावस्तु

इस एकाङ्की के नायक चारुचन्द्र और नायिका उनकी पत्नी चारुमती हैं। चारुमती अपने पिता के घर से मिठाई लाई। उसमें से अपनी ननद सन्दीपनी की लड़की को भी दिया। उस लड़की को सन्दीपनी ने डाँटा कि क्यों लिया? छन्दोवती चारुमती के नवजात शिशु के लिए बधाई देने आई तो उसे शत ह्लदा का ताना सुनना पड़ा कि मेरी लड़की सन्दीपनी और दामाद के प्रति सौहार्द नही प्रकट किया और चली आई चारुमती को बधाने देने। छन्दोवती शिशु को बिना देखे ही भाग चली।

शतह्लदा का पति शर्वरीश सुभद्र था। वह रुग्ण था, पर उसकी दवा बनाने की चिन्ता उसकी पत्नी को नही थी। चारुमती ने वैद्य के बताये काढ़े को उसे देना चाहा तो शतह्लदा ने कटाक्ष किया। वह वही काढ़ा छोड़कर चलती बनी। सन्दीपनी का सन्देह हुआ कि चारुमती ने काढ़े में विष मिलाया होगा। उसने उसे चखा और फिर अपने पिता को दिया। उसने कहा कि यह ठीक नहीं है और फेंक दिया।

रामायण की कथा सुनकर चारुचन्द्र बाहर से लौट कर आया तो उसके पिता ने कहा कि मेरी बीमारी शारीरिक कम है और मानसिक अधिक है। मैं अपनी पत्नी का बहू चारुमती के प्रति दुर्व्यवहार देखकर क्षुभित हूँ। चारुचन्द्र ने पिता से रामायण के अयोध्या-काण्ड की अपनी सुनी कथा को बताया कि कैकेयी ने कुल की शान्ति को ध्वस्त करने के लिए क्या किया। वही मेरे घर मे हो रहा है।

इधर चारुमती ने फाँसी लगा ली थी। वैद्य बुलाया गया और वह बच गई। सर्वरीश ने प्रतिज्ञा की कि अब मेरा पुत्र अपने सुख और शान्ति के लिए अलग घर में रहेगा।

इस रूपक मे कौटुम्बिक विषमता का नग्न चित्रण प्रहसनात्मक विधि से करने मे कवि को सफलता मिली है। संस्कृत के पूर्ववर्ती साहित्य में ऐसी रचनायें विरल हैं।

मर्कटमार्दलिकः

महालिङ्ग शास्त्री ने मर्कटमार्दलिक को भाण कहा है।[1] इसकी रचना शास्त्री ने १९३७ ई० मे की थी। कथानायक एक मर्कट अर्थात् वानर है। इसकी पूँछ में

१. इसका प्रकाशन मंजूषा नामक पत्रिका में कलकत्ते से १९५१ ई० में हुआ था।

कांटा विध जाने से इसे मरणान्तक पीडा हो रही हैं। उसे कोई नाई दिखाई पड़ता है। वह प्रार्थना करने पर कांटा तो निकाल देता है, पर वानर के कूदने से उसकी पूँछ कट जाती है। नाई पर क्रुद्ध होकर वह उसका छुरा लेकर उसे भगा देता है।

वानर को कोई बुढिया मार्ग में दिखाई देती है, जो टोकरी वनाने के लिए अपने नख से वाँस चीर रही थी। वानर ने उसे छुरा दे दिया और उससे विनिमय में टोकरी ली। आगे उसे एक गाड़ीवान मिला, जो अपने वैलों को चटाई पर घास डाल कर खिला रहा था। वानर ने उसे टोकरी दी और उसके टूट जाने पर गाड़ीवान से लड़-झगड़ कर दोनों वैल लिए। वैलों को किसी तेली को दिया और उससे एक घड़ा तेल लिया। उसने किसी बुढ़िया को तेल दिया; जिससे उसने पूए वनाये। बुढ़िया उन्हें वेचना चाहती थी, पर वानर ने सारे पूए वलात् ले लिये, कुछ खाये और कुछ ग्राहकों को वाँट दिया। ग्राहकों में कुछ गवैये थे। उन्हें वानर ने भरपूर गाली दी कि तुमने सव खा लिए, कुछ छोड़े नहीं। उन्हें डरा-धमका कर दूर भगाया। जल्दी में वे अपना मर्दल वहाँ छोड़ गये। उसे लेकर वानर पेड़ पर चढ़ गया और वजाने लगा। अन्य वनर आये, जिनसे उसने कहा कि मनुष्यों ने मेरी पूँछ काट कर मुझे मनुष्य वना दिया है। वानरों ने उसे अपना नेता वना लिया, क्योंकि वे उसके पराक्रम से प्रभावित थे।

महालिंग का यह भाण अपने आकाश-भाषित शैली से भाण के मूल लक्षण को अपनाये हुए है, किन्तु भाण में शृंगार और वीर में किसी एक को अंगीरस होना चाहिए—[1]यह लक्षण इसमें नहीं मिलता। पूर्ववर्ती भाणों में भोंडा शृंगाराभास आद्यन्त मिलता है। महालिंग ने एक नई शैली का भाण लिखकर संस्कृत नाट्य-साहित्य को महत्त्वपूर्ण देन दी है।



१. सूचयेद् वीर-शृंगारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवैः।—दशरूपक ३.५०

अध्याय १०६

रतिविजय

रतिविजय के लेखक रामस्वामी शास्त्री डिस्ट्रिक्ट-जज थे। सूत्रधार ने उनका परिचय इस कृति की प्रस्तावना में देते हुए कहा है—

कृतं खलु तत्तत्रभवतां महाशयानां सुन्दररामार्याणां चम्पकलक्ष्म्यम्बायाश्च तनूजेन रामशास्त्रिणा' इत्यादि।

रामशास्त्री कुम्भकोलम् के निवासी थे। उन्होंने नेगापट्टम् में रतिविजय की रचना १९२८ ई० में की।[1] परतन्त्रता के दिनों में सरकारी नौकरी में रहते हुए भी रामस्वामी स्वदेश प्रेम, स्वभाषा-प्रेम और भारत के नागरिकों के प्रति प्रेम के वश होकर उनकी उन्नति के लिए सदा यत्न करते थे। कवि की यह विशेषता इस नाटक में उसके भरतवाक्य से झलकती है, जो इस प्रकार है—

देशोऽयं भारताख्यं प्रथितसुखमयो धर्ममूलं च भूयात्
वैषम्यं रागजन्यं भवतु च शमितं देशभक्ति-प्रभावात्।
वैदग्ध्यं सर्वशास्त्रेष्वपि सकलकलावस्तु चित्ते जनानाम्॥

इससे प्रतीत होता है कि रामस्वामी वस्तुतः उच्च कोटि के सुसंस्कृत और सहानुभूति-पूर्ण नागरिक थे।

रतिविजय का प्रणयन जगदम्बा की अर्चना के लिए कवि ने किया है। वे स्वयं देवी के परमोपासक थे। उन्होंने कहा है—

My measureless and loving adoration for Devi has been my master impulse.

इस कृति ने कवि को पवित्र किया है, आनन्द प्रदान किया है, अधिक अच्छा बनाया है और उसे विश्वास है कि दूसरों को इससे प्रसन्नता होगी।[2]

रामस्वामी को विद्यार्थियों से प्रेम था। वे जब त्रिचनापल्ली में रहते थे तो कतिपय छात्रों ने उनसे कहा कि कोई छोटा नाटक लिख दें, जो भाषा तथा विधान की दृष्टि से सुबोध हो। विद्यार्थी ऐसे नाटक का अभिनय करना चाहते थे। उसी समय कवि को भाव आया कि जगदम्बा के श्रीचरणों में प्रेमप्रसून अर्पित करूँ। उसने ऐसी स्थिति में इसकी रचना की।

रतिविजय का प्रथम अभिनय भारतधर्ममहामण्डल के महाधिवेशन के अवसर पर हुआ था।

संस्कृत के नवीन नाटकों के प्रति बीसवीं शती के प्रथम चरण में दो प्रकार

---

१. इस नाटक का प्रकाशन १९२३ ई० में श्रीरंग के वाणीविलास-मुद्रायन्त्रालय से हुआ था।

२. It has made me better and purer and happier and may perhaps please other adorers of our universal mother. प्राक्कथन से।

की प्रवृत्तियाँ प्रेक्षकों में दिखाई देती हैं। इसकी प्रस्तावना के अनुसार कतिपय क्रूर-दृष्टि-आलोचक हैं, जिनका इस प्रसंग में परिचय है—

नवीनं नाटकं काव्यं भाषागौरवमिच्छता।
लक्ष्यते क्रूरया दृष्ट्या रसिकेन सदैव हि॥

इनके विरुद्ध सौमनस्यायन रसिक हैं, जिनका परिचय है—

यदि सन्ति गुणाः काव्ये रज्यन्ति रसिकमनांसि तत्रैव।
सुन्दरसुगन्धिकुसुमे रतिरनिवार्या द्विरेफाणाम्॥

कथावस्तु

वसन्त शिव के द्वारा काम के जलाये जाने से सन्तप्त है और गन्धर्व चित्रसेन अपने जीवन को उत्सवविहीन पा रहा है। वसन्त उसे तारकासुर का देव-पीडन, ब्रह्मा के द्वारा शिव के पुत्रदान से जगती में सुखप्राप्ति की योजना बताया जाना, महेन्द्र का मार को स्मरण करना, उसका हिमालय पर जाकर शिव का दर्शन, पार्वती का शिव-पूजन, वसन्त का वहाँ रामणीयक विलास उपस्थित करना और अन्त में काम-विलास का उज्जृम्भण बताता है—

अकालजातं खलु मद्विलासं मनोहरं मंगलमद्भुतं च।
वीक्ष्यैव लोलेन्द्रियवेगपूर्त्या मनांस्यनंगस्य गतानि दास्यम्॥
देहेषु कान्तिर्नयनेषु तेजः रागाख्यपीयूषझरी मनःसु
वृक्षेषु शोभा च मरुत्सुगन्धः खे निर्मले पूर्णशशिप्रकाशः॥ १.२४-२५

काम ने शिव पर अपना मोहनास्त्र चला ही दिया, जब पार्वती शिव की पूजा कर रही थीं। तब तो शिव ने काम को देख दिया और परिणाम हुआ—शलभतां सद्य एवाप मारः।

रति वसन्त के सामने रोने लगी—

स्मरामि नित्यं परिपूर्णचन्द्र-प्रभासमानद्युतिवक्त्रबिम्बम्।
लीलावलोकं मधुरं कटाक्षं सुधामयं तस्य समन्दहासम्॥ १.३८

वसन्त ने रति से कहा कि शिव की प्रार्थना करने से ही तुम्हें काम मिलेंगे। रति ने कहा कि शिव तो मेरी परिधि के बाहर हैं। मैं तो पार्वती देवी के प्रीत्यर्थ तप करूँगी।

द्वितीय अङ्क के अनुसार काम के प्रदग्ध हो जाने से अव्यवस्था हुई। कमलिनी (सरोजिनी) ने गीत गाया तो कमल (पुण्डरीक) के मन में सुख का आविर्भाव ही नहीं हुआ। न तो सरोजिनी को गाने का उत्साह रह गया था और न पुण्डरीक को गान में शृंगार-सुख था। कवि दुर्गादास के मन में रसस्फूर्ति नहीं रही। उनकी वाग्झरी सर्वथा अवरुद्ध थी। गायक श्यामल दास का कण्ठ ही नहीं खुल रहा था। वह कहता है—

इदानीं मे स्वरविलासः लोकान्तरं गत एव।

राजराज का किसी काम में मन ही नहीं लग रहा था। उसने गीत द्वारा राजराजेश्वरी की स्तुति की।

महेन्द्र ने बृहस्पति से भेंट की कि वे इस अव्यवस्था को दूर करें। बृहस्पति ने कहा—श्रीविद्या-रूपिणी मङ्गल देवता का भजन करने से सारा वैषम्य मिट जाता है। वही काम संजीवनी है।

तृतीय अङ्क के अनुसार हिमालय के शिखर-प्रदेश पर तपस्विनी रति ईश्वरी के प्रीत्यर्थ तप कर रही है। उसके पास तपस्विनी पार्वती की भेजी चेटी जया एक दिन यह पूछने आई कि पार्वती आपके तप का उद्देश्य जानना चाहती है। रति ने कहा—मुझे तुम उनसे मिलाओ। ऐसा हुआ। रति ने पार्वती से पूछा—आप वरलाभ के लिए तप कर रही हैं। पार्वती ने कहा कि तप से मनोरथ पूर्ण होते हैं और रति से पूछा कि आप किस लिए तप कर रही हैं? रति ने कहा—

त्वमेव मम जन्मरोगस्य सिद्धौषधम्।

पार्वती ने उसकी कथा जानकर वर दिया—

दीर्घसुमंगली भव। ***त्वत्प्रार्थना पूरणाय परमेश्वरं प्रति तपः करोमि।

चतुर्थ अङ्क के अनुसार शिव नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। वे पार्वती के तप से प्रसन्न होकर उसके पास आये। ब्रह्मचारी ने पार्वती के तपोविषयक जो प्रश्न पूछे, उसका उत्तर जया ने दिया कि शिव को पति पाने के लिए तप कर रही है। तब तो उसने शिव की गहरी निन्दा की और पार्वती ने शिव की प्रशंसा कर-कर के पुनः पुनः कहा—

न त्वं जानासि मे नाथं जगन्मंगल-मंगलम्।

उस समय आकाशवाणी हुई—तुम्हारे तप से आराधित शिव ही आये हुए हैं। शिव ने कहा—वर माँगो। पार्वती ने कहा—अभी-अभी एक वर दीजिये—रति को मांगल्य-प्राप्ति। शिव ने कहा—

तथैवास्तु

पंचम अंक के अनुसार पार्वती-परमेश्वर का विवाह हो चुका है। परमेश्वर ने हिमालय से कहा—

सदैवायं पुण्यदेश आर्यावर्तो भवता शत्रुभ्यो रक्षितव्यः।

आये हुए काम को शिव ने उपदेश दिया—

धर्मप्रियो भवेन्नित्यं भवेदीश्वरकिंकरः।
पूर्णानन्दस्त्वया देयो धर्म्यो रागो भवेद्यदि॥ ५.१

महेन्द्र और बृहस्पति, पुण्डरीक-सरोजिनी, श्यामलदास-दुर्गादास और राजराज आदि सभी एक-एक करके आये और उन सबकी कामनायें परमेश्वर ने विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में पूरी की। सरोजिनी ने वर मांगा—

रसिका देशानुराग-पूर्णा ईश्वरभक्ति-युक्ताः सर्वकलानिपुणा भवेयुः।

पार्वती और परमेश्वर ने कहा—तथैवास्तु।

शिल्प

किरतनिया नाटक के प्रभावानुसार रतिविजय गीत बहुल है। प्रस्तावना में देश की विजयिनी लहराती है—

जयतु जयतु भारतदेशः कर्मभूमिर्भोगभूमिः पुण्यभूमिरितिख्यातः।
उत्तमकविमुनिकृतपुण्योपदेशः लीलावतारपवित्रप्रदेशः ॥
जयतु जयतु भारत देशः।[1]

इस नाटक में प्रवेशक-विष्कम्भकादि का अभाव है। अङ्कों में ही अर्थोपक्षेपण किया गया है। प्रथम अंक प्रायः पूरा का पूरा वसन्त और चित्रसेन की वातचीत में समाप्त हो गया है, जिसमें वसन्त उसे बताता है कि कामदहन कैसे हुआ।

नाटक में प्रतीक पात्रों के द्वारा लोकरञ्जकता सविशेष है। ऐसे प्रतीक पात्र हैं—सरोजिनी और पुण्डरीक (कमल)

एकोक्ति का प्रयोग नये ढंग से किया गया है। पात्र रंगपीठ पर आता है और अपनी बात कह कर दो मिनट में चल देता है। इस बीच एक गीत भी सुना देता है।

उपासना और भक्तिभाव विषयक लम्बे व्याख्यान कतिपय स्थलों पर रोचक नहीं प्रतीत होते। यथा द्वितीय अङ्क में बृहस्पति का इन्द्र के लिए श्रीविद्या का निरूपण।

एक ही अङ्क में सभी पात्र रंगपीठ से चले जाते हैं और तत्काल दूसरे पात्र या पहले के पात्रों में से भी कुछ रंगमंच पर आ जाते हैं। बिना दृश्यविधान के ही ऐसा कर लेना दृश्य का प्रकल्पन प्रमाणित कराता है। चतुर्थ अंक में पार्वती के द्वारा प्रोक्त ब्रह्मचारी की शिव की निन्दा का ३२ पद्यों में प्रत्याख्यान इस प्रकरण की तुन्दिलता व्यक्त करता है।

रामस्वामी का नाट्य रचना की दिशा में एक निजी प्रयोग है, जो अपने-आप में सफल है।



१. अन्य गीत हैं द्वितीय अंक में 'संगीतरसिक शृणु गीतसारम्।' 'नमामि शिरसा वाचा मनसा।' 'स्तुवे सदा राजराजेश्वरीम्' तृतीय अंक में 'सौभाग्यलक्ष्मीं भजे सदा' चतुर्थ अंक में 'परमकृपानिधे पाहि मां पशुपते।' पंचम अंक में—'सुधामयी मयि भवतु जगदम्बा'।

अध्याय १०७

भ्रान्त-भारत

भ्रान्त-भारत नाटक के लेखक गोकुलदास-तेजपाल-संस्कृत-महाविद्यालय के छात्र है।[1] इन छात्रों की एक विबुधवाग्विलासिनी सभा है, जिसने इसका प्रकाशन भी किया है।[2] लेखकों की धारणा है कि आधुनिकता के नाम पर भारत भ्रष्ट हो रहा है। *नान्दी मे ही इस आशय को व्यक्त करते हुए कहा गया है—*

मातस्त्वदीय चरणौ शरणं सदास्तु भ्रान्तस्य भद्रविमुखोद्यतभारतस्य।
यत्संगतोऽभवदिदं सुरराज्य-पूज्यं वर्षं विमोहऋषि-राजनिवासभूमिः॥

नन्दीपाठ एक नट ने किया है।

भ्रान्त-भारत का प्रथम अभिनय उपर्युक्त महाविद्यालय के छात्रों के विविध परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के अवसर पर उनका सत्कार करने के लिए और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए वाग्वर्धिनी सभा के उत्सव के कार्यक्रम का अङ्ग था। यह उत्सव आश्विन सं० १९८६ में हुआ था।

कथावस्तु

आरम्भ मे रंगमच पर नारद आते हैं। वे आधुनिकता की ओर प्रगत भारत का विवरण देते है कि कैसे पुरातन मान्यतायें विनष्ट हो रही हैं और अंगरेजीयत की बाढ आ रही है। यथा,

जातं यद्वशजातं जगदिदमुग्रतरं चोत्तपते
स्वदते तद्विद्याया वृद्धि संस्कृत-विद्यां ह्रसते।
मूढोऽभयं भयमिव मनुते।

नारद-शिष्य वास्तविकता से सुपरिचित है। वह स्पष्ट कहता है—

पर्वतो नाथ पुरुषो दूरादेव हि शोभते।
किंवदन्ती कृतार्थास्मिन् देशे भारतसंज्ञके॥

आर्य वर्णितानां गुणानामन्यतमोऽपि न लभ्यते भारतीयेषु।
उत्पश्यामि बलवत्पतनमेतेषाम्।

अर्थात् आज के भारत में आपके बताये कोई गुण न रहे। भारतवासियों का घोर पतन हो रहा है।

संस्कृत-संस्थाओं के विषय में नारद की टिप्पणी है—

आसां चापि स्थितिरनाथवृद्ध-वनितानामिव चिन्तनीया।

प्रश्न है कि इस देश मे जो असंख्य तपस्वी, ब्राह्मण और सद्गृहस्थ हैं, वे क्यों नहीं संस्कृति रक्षा के लिए कुछ करते। नारद ने कहा कि तपस्वी तो धनी

---

१. लेखक छात्रों के नाम है व्याकरणचार्य-काव्यतीर्थ नागेश पण्डित, व्याकरण शास्त्री-काव्यतीर्थ शालिग्राम द्विवेदी और अच्युत पाध्ये।

२. पुस्तक की छपी प्रति श्रीविश्वनाथ पुस्तकालय, वाराणसी से प्राप्त हुई।

मठाधीश बन गये। ब्राह्मण कुछ तो जीविका हीन हैं और शेष पतित हो गये। गृहस्थ आलसी हैं और बुरे लोगों का साथ देते हैं। ऐसा अंगरेजी शासन के प्रभाव के कारण हुआ है।

संस्कृति की रक्षा विदेशी शिक्षा के साथ सम्भव नहीं है। नारद का कहना है—

आरोप्य मादनी-वीजं फलमाम्रं लभेत कः।
मूलमुच्छिदा चेच्छेत् को विद्वान् वृक्षस्य रक्षणम्।

अब तो स्थिति है कि यदि कोई काशी जाता है तो उसे पागल कहा जाता है। पेरिस और बर्लिन जाने वालों को आधुनिक शिष्ट कहा जाता है।

वाग्विलासिनी में नये आधुनिक विद्वानों का विबुधवाग्विलासिनी सभा का अधिवेशन हो रहा है, जिसमें निर्णय होना है कि विवाह और दम्पति-संयोग के लिए उचित आयु क्या है? नये और पुराने विद्वानों के शास्त्रार्थ द्वारा यह तय होगा। शारदा महोदय ने विवाह-विषयक और जोशी साहब ने दम्पत्ति-संयोग के प्रसंग में खटपट की है।

सभापति नागेश शर्मा बनाये गये। नागेश ने एक लम्बा व्याख्यान दे डाला कि अंगरेजों ने देख लिया है कि धर्मपरिवर्तन कराने के लिए बल-प्रयोग सफल उपाय नहीं है। अतएव उन्होंने दूसरा उपाय अपनाया है कि इतिहास को ही बदलो। महापुरुषों के जीवन-चरित को इस प्रकार बदल दो कि लोगों का उन पर विश्वास ही न रहे। इस राज्य में शब्दों में उन्नति है, अर्थों में नहीं—

अत्र राज्ये शब्दे सर्वं समुन्नतं जोघुष्यते अर्थे तत्सर्वं विपरीतमनुवोभूयते। एतद्राज्यं वाचालता-साम्राज्यम्।

सभापति के प्रास्ताविक भाषण के पश्चात् चुन्नीलाल ने व्याख्यान दिया—शास्त्र कहता है कि रजोदर्शन के पूर्व ही विवाह हो जाना चाहिए। हिन्दू इस शास्त्रवचन को मानते हैं। शासन इसके विरोध में कानून न बनाये। विष्णुदत्त शुक्ल ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

एक विरोधी ने कहा कि युवावस्था में विवाह करने वाले तो पर्याप्त उन्नतिशील हैं तो हमीं क्यों न ऐसा करें? उत्तर दिया गया कि तब तो भारत भी पेरिस हो जायेगा, जहाँ विवाह की आवश्यता ही नहीं रह गई है।

नाटक में राजकीय सत्ता की स्पष्ट शब्दों में निन्दा की गई है। यथा, हस्तं च क्षिपति धार्मिककृत्ये। नारद का कहना है कि धारासभा में केवल धार्मिक लोग ही जायँ। वे चाहते हैं कि स्त्री और पुरुष की अवस्था में २० वर्ष का अन्तर हो। यथा, वरेण विंशतिवर्षज्येष्ठेन भाव्यम्।

वाइसराय को वाग्विलासिनी सभा ने प्रस्ताव भेजा—विवाहवयो राजानुशासनं निजाधिकारेण व्यर्थयतु भवान्। कन्या विवाहवयोनिर्णये हिन्दूनां मुस्लिमानां चास्तिकानां सदाचारिणां महान् विरोधो वर्तते। धर्मप्राणानां

हिन्दूनां मुस्लिमानां चानादरस्य तु परिणामो विषोपमो भविष्यति इति भवताग्रतोऽवधेयम्।

दूसरा प्रस्ताव यह पास हुआ कि यदि बिल पास भी हो जाय तो हम लोग उसे मानें नहीं। तीसरा प्रस्ताव था कि नाममात्र से हिन्दू, किन्तु वस्तुतः धर्म-विरोधी लोगों का वाइसराय की सभा में प्रवेश न हो। संस्कृत का प्रचार कम होने से धर्म की च्युति होती जा रही है।

शैली

सांवादिक शैली नितान्त सरल और रोचक है। इसका चटपटापन देशज और विदेशी शब्दों के प्रयोग से विशेष बढ़ जाता है। यथा, हैट, सेण्ट, बोतल, होटल, चुरट, नौकरी, पागल, अलमस्त, बराण्डी, मैडम, मखमल पार्सल, भाभी आदि।[1]

हास्य उत्पन्न करने के लिए संवाद में शास्त्रार्थी वक्ता और श्रोता रंगमंच पर अन्ध, मूर्ख चण्डूल, ग्रामीण आदि अपशब्दों का प्रयोग ही नहीं करते, अपितु हाथ में लाठी भी ले लेते हैं। यथा,

वि०—(दण्डमुद्यम्य) एषोऽपि भवति।

अन्य उपायों से भी संवादों में हँसी की मात्रा बढ़ाई गई है। यथा, वादी कहता है कि मेरी भाभी विवाह हो जाने पर भादों की भैंस की भाँति मोटी हो गई है और मेरी भगिनी विवाह न होने से पिता के घर पर पूस मास की भैंस के समान दुबली है। वादी की भाभी अलमस्त है।

कवि की भाषा में बल है। अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाले परिवार का दयनीय चित्रण है—

एकश्चतुष्पादिव कम्पतेऽर्भो दोर्भ्यां गृहीत्वा चरणौ जनन्याः।
अन्यस्तदङ्के करुणं विरौति दैवं विनिन्दत्यपरस्तु गर्भे।

अर्थात् एक लड़का बकइया चल रहा है, दूसरा गोद में है और तीसरा गर्भ में है। जैसे ज्योतिषी के घर में प्रतिवर्ष एक पंचाङ्ग बढ़ता है, वैसे ही प्रौढ के विवाह करने पर प्रतिवर्ष एक-एक सन्तान उत्पन्न होती है।

शिल्प

नेपथ्य से पट्ट-सन्देश न कह कर उसे डुग्गी पीटने वाले के द्वारा रंगमंच पर कहलवा दिया जाता है। बस, अपनी सूचनामात्र देने के लिए वह आता है और सूचना देकर चल देता है।

लम्बे भाषण अनेक स्थलों पर नाट्योचित नहीं प्रतीत होते। नारद का भाषण तीन पृष्ठ का है।

---

१. कहीं-कहीं हिन्दी लोकोक्तियों का भी प्रयोग संस्कृत-वाग्धारा के बीच किया गया है। यथा, भूखा बंगाली भात-भात।

बहुभाषात्मक

इस नाटक में भाषायें अनेक हैं, परन्तु प्राचीन भारतीय नियमों के अनुसार प्राकृत न होकर आधुनिक भाषायें हैं। इसमें डुग्गी पीटने वाला छः पंक्तियों का अपना सन्देश हिन्दी खड़ी बोली में देता है।

अनेक दृश्य

एक अंक में अनेक दृश्य हैं। दृश्य में कथांश की पूर्णता सी प्रतीत होती है।

समीक्षा

अपनी कोटि की यह कृति विचित्र ही प्रयास है। विबुधवाग्विलासिनी सभा की ओर से इसकी विवाह-वयोङ्क की समीक्षा इस प्रकार दी गई है—

वस्तुतः वस्तुस्थिति समझने में रसप्रवाह बाधक होता है। इसीलिए इस नाटक में रसप्रवाह पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। आहार्यता से भी इसे इसलिए वंचित रहना पड़ा कि इसके अभिनेता विद्यार्थी होंगे। सभ्य समाज को इसमें कुछ भी सन्तोष हुआ तो इसका विधवाङ्क, समाजाङ्क, शिक्षणाङ्क और स्वराज्याङ्क भी शीघ्र ही प्रकाशित किया जायेगा। सहृदय विद्वानों से प्रार्थना है कि वे बहुत सावधानी के साथ इसकी यथार्थ समालोचना करें।

भ्रान्तभारत प्राचीन परम्परा से आश्लिष्ट नहीं हैं। फिर भी समसामयिक समस्या पर जनता को जागरूक करने का संस्कृत नाटक के द्वारा प्रयास किसी संस्था के विद्यार्थियों के द्वारा—नाटक लिखना, अभिनय करना और प्रकाशन करना एक नये उत्साह का द्योतक है।



जग्गू श्रीबकुल भूषण का नाट्य-साहित्य

जग्गू वकुल भूषण का पूरा नाम जग्गू अलवारैय्यङ्गार है। दक्षिणभारत में यादवाचल के निवासी महाकवि जग्गू श्री शिङ्गरार्य इनके पितामह थे।[1] इनके पिता श्रीनारायणार्य थे। कविकुल प्रायशः आचार्यों का था। पितामह और पिता के शिष्यों की परम्परा में सरस्वती की धारा प्रवाहित होती रही है। इनके कुल का नाम वालधन्वी था। इनका वंश कौशिक है।

जग्गू वकुलभूषण का जन्म १९०२ ई० में हुआ था। इनके चाचा मैसूर के महाराज के राजपण्डित थे और दर्शन तथा साहित्य के उच्चकोटिक विद्वान् थे। उन्हीं की प्रेरणा से जग्गू वकुलभूषण की साहित्यिक प्रतिभा उजागर हुई। इन्होंने मंजुलमंजीर के उपोद्घात में लिखा है—

मत्सकाशादेवाधिगतसमस्तसाहित्य-ग्रन्थः पण्डितप्रकाण्डैः परीक्षितस्स-मुत्तीर्णस्साहित्य विद्वानिति प्रथां चाध्यगमत्।

कविवर यदुगिरि की संस्कृत-महापाठशाला में साहित्य के अध्यापक थे। नाल्वडि श्रीकृष्णभूपाल और जयचामभूपाल के द्वारा वे सम्मानित थे।

वकुलभूषण १५ वर्ष की अवस्था से संस्कृत का विशेष अध्ययन करने लगे। १७ वर्ष की अवस्था में इन्होंने शृङ्गारलीलामृत नामक काव्य का प्रणयन किया और १८ वर्ष की अवस्था में जयन्तिका नामक गद्यकाव्य कादम्बरी के आदर्श पर लिखा। कालान्तर में वे बंगलौर में निवास करते हुए संस्कृत साहित्य के संवर्धन में सम्पृक्त हैं।

वकुलभूषण की रचनायें २० से अधिक हैं। इनमें १५ रूपककोटि की अधो-लिखित हैं—

१. अद्भुतांशुक[2] २. मंजुलमंजीर ३. प्रतिज्ञाकौटिल्य, ४. संयुक्ता ५. प्रसन्न-काश्यप ६. स्यमन्तक ७. वलिविजय ८. अमूल्यमाल्य ९. अप्रतिमप्रतिम १०. मणि-हरण ११. प्रतिज्ञाशान्तनव १२. नवजीमूत १३. यौवराज्य १४. वीरसौभद्र १५. अनंगदा।

इनके अतिरिक्त वकुलभूषण का महाकाव्य अद्भुत-दूत प्रकाशित है।[3] उनका

---

१. यादवाचल की यह वसति भारत के १०८ पुण्यतम तीर्थों में गिनी जाती है। इसका वर्तमान नाम मेलकोट है। यह दक्षिण का बदरिकाश्रम भी कहा जाता है।

२. इसका प्रकाशन बंगलौर से १९३२ ई० में हुआ है। इसकी प्रकाशित प्रति संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी में है।

३. अप्रकाशित काव्य हैं करुणरस-तरंगिणी, पथिकोक्ति-माला तथा शृंगारलीलामृत।

गद्य काव्य यदुवंश चरित और चम्पू भारत-संग्रह प्रकाशित है।[1] उन्होंने चार दण्डक स्तोत्र लिखे हैं।

अद्भुतांशुक

अद्भुतांशुक की रचना १६=१ ई० में हुई। इसका प्रथम अभिनय यदुगिरि के श्रीभूनीलावल्लभ भगवान् सम्पत्कुमार के हीरकिरीटोत्सव के अवसर पर दर्शकों के प्रीत्यर्थ हुआ था। इस अवसर पर समागत पण्डितों की इच्छा थी—वीररसप्रधान नाटक देखने की, जो अदृष्टपूर्व हो।

प्रस्तावना में नटी कहती है—

घरे दरिद्दत्तणेण वुहुक्खिआ पुत्तआ रोइन्दि।

इससे स्पष्ट है कि नाटक करनेवाले व्यावसायिक अभिनेताओं की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी।

कथावस्तु

सूत्रधार के शब्दों में इसकी कथावस्तु का स्वरूप है—

यद्भट्टनारायणनिर्मित प्राग् वेण्यां महाभारतवस्तु रम्यम्।
तत् पूर्वभाव्यत्र विधाय वेण्या संयोजितं श्रीकविना त्वनेन॥

अर्थात् इसमें वेणीसंहार के पूर्व की कथा है।

दिग्विजय के पश्चात् युधिष्ठिर का राजसूय-यज्ञ भीम के लौटकर न आने के कारण रुका था। वे हस्तिनापुर में दुर्योधन को जीतने के लिए गये थे, क्योंकि उसका कहना था कि मुझको जीते विना युधिष्ठिर का राजसूय सार्थक नहीं है। फिर उसे जीतने के लिए भीम को जाना पड़ा था।

भीम ने दुर्योधन के साथ दुःशासन-शकुनि कर्णादि को भी वन्दी बनाकर युधिष्ठिर के पास प्रस्तुत कर दिया। युधिष्ठिर ने उन सबको बन्धनविमुक्त कराया और दुर्योधन को यज्ञ-समारम्भ में धनाध्यक्ष पद पर नियुक्त कर दिया। उसके अन्य साथियों को भी यथायोग्य कामों में लगा दिया।

कृष्ण और बलराम यज्ञभूमि में आये। युधिष्ठिरादि का अभिनन्दन करने के पश्चात् कृष्ण ने दुर्योधन को लज्जावनत मुख देखा। भीम ने उसकी कथा बताई। दुर्योधन ने मन में सोचा कि समय आने पर पुतली की भाँति भीम को नचाऊँगा।

यज्ञ के अवसर पर राजसभा में दुर्योधन को भ्रान्ति हुई—स्थल में जल की जल में स्थल की, द्वार में भित्ति की और भित्ति में द्वार की। इन सब बातों से और पाण्डवों के वैभव से अतिशय खिन्न होकर वह कर्णादि से मन्त्रणा करके पाण्डवों के उन्मूलन का उपाय सोचता है। जब कर्ण ने कहा कि मेरे रहते शत्रु तृणवत् हैं तो दुर्योधन ने घोर विडम्बना प्रकट करते हुए कहा—

---

१. अप्रकाशित गद्यकाव्य उपाख्यान-रत्नमंजूषा और चम्पू यतिराज हैं।

बाणः क्व लीनस्तव पौरुषं वा तदा क्व लीनं ननु मित्रवर्य।
यदा गदाघातनिबन्धनादिर्भीमेन पीडा महती कृता नः॥ २-७

दुर्योधन ने कहा कि अब तो अरण्यवास ही करूँगा। शकुनि के आश्वासन देने पर उससे दुर्योधन ने मन की बात कही—

पाण्डवानां वशीकृत्य सर्वां सम्पदमद्भुताम्।
मद्वशे दासभावं च तेषां कल्पय मातुल॥ २-१०

शकुनि ने प्रत्युत्पन्न बुद्धि से योजना सुनाई—जुए में युधिष्ठिर को मनोरंजन प्रस्तुत करके उसका सर्वस्व आप को दिला दूँगा। भाइयों-सहित उन्हें आपका दास बना दूँगा। दुर्योधन ने कहा कि द्यूत-विजय द्वारा एक और प्रयोजन करें। दासता के समय यदि कोई विरोध करे तो सबको एक वर्ष फिर वनवास भुगतना पड़े। इस एक वर्ष की दासता के बीच धन अर्जित करके वे मेरा कोश पूरा भरें, अन्यथा फिर दास बनें। बीच में कोई क्रोध करे तो फिर सबका दास्य।

इस बीच धृतराष्ट्र दुर्योधन को ढूंढते हुए आया। दुर्योधन को विषण्ण जानकर धृतराष्ट्र के पूछने पर शकुनि ने उन्हें बताया कि पाण्डवों को दास बनाना है; युक्ति है जुए में उनको जीत लेना—इत्यादि। सारी योजना उन्हें समझा कर उनकी अनुमति ले ली। धृतराष्ट्र ने बताया कि दुर्वासा इस काम में सहायक होंगे और उनको अर्थहीन बना देंगे।

तब तो दुर्योधन प्रसन्न होकर कहता है—

कैतवे तन्त्रजालेन वशीकृत्य वृकोदरम्।
मयेच्छं मर्दयाम्यद्य नः प्राक्कृतपराभवम्॥ २-१६

दुर्योधन और शकुनि की योजना पूर्णतः कार्यान्वित हुई। एक दिन कंचुकी ने भीम को बताया—

आदौ कोशस्ततश्च करिणस्स्यन्दना वाजिवृन्दं
पृथ्वी सर्वा अलधिरशनाच्छत्रसिंहासने च
यूयं शूराः प्रथितयशसो दासभावे नियुक्ता-
स्साध्वी भार्या द्रुपददुहिता हन्त हन्त स्वमेव॥ ३-८

इसी समय दुर्योधन ने द्रौपदी को चेरी से उसे बुलाया। कुछ देर बाद सहदेव भीम के पास आये कि आपको दुर्योधन ने अभी-अभी बुलाया है। तब तो भीम ने सहदेव पर बिगड़ कर दुर्योधन के लिए कहा—

चूर्णयाम्याशु पापं त्वां पादाघातेन सम्प्रति।
किं किमुक्तं पुनर्ब्रूहि नामशेषं करोम्यहम्॥ ३-१२

भीम दुर्योधन के पास पहुँचे, जहाँ पहले से ही सभी भाई थे और दुर्योधन के साथ दुःशासन-शकुनि-कर्ण भी थे। पहुँचते ही भीम ने दुर्योधन से कहा—

'आः दुरात्मन्, किमुक्तं त्वया। क्व स मम्मानुचरोऽद्य वृकोदरः' आयातोऽहं, तवानुचरणार्थम्।

यह कह कर गदा ऊँची करके उसकी ओर झपटा। सहदेव ने उन्हें शान्त किया। भीम हाथ पीसते ही रह गये। दुर्योधन ने भीम से कहा—जाओ, द्रौपदी को बुला लाओ। भीम ने आज्ञा का पालन तो किया, किन्तु उसे बुलाने की गर्हणा से व्यथित होकर मूर्छित हो गये। तभी विदुर और धृतराष्ट्र वहाँ आ पहुँचे। धृतराष्ट्र के पैर से मूर्च्छित भीम का स्पर्श हुआ। मन ही मन वह प्रसन्न हुआ कि घमण्डी भीम ने फल पा लिया, पर बनावटी दुःख प्रकट करने के लिए उसे अपने वस्त्राञ्चल से हवा करने लगे। फिर वे युधिष्ठिर का स्पर्श करने चले तो युधिष्ठिर ने आत्मग्लानि पूर्वक कहा—

> यत्कृते सोदराः कष्टां दशामनुभवन्त्यमी।
> याज्ञसेन्यपि दुःखार्ता तं मां मा स्पृश पापिनम्॥ ३-२०

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा कि इन सबको दासता से विमुक्त करो। दुर्योधन ने कहा कि मैं तैयार हूँ, यदि युधिष्ठिर चाहें। युधिष्ठिर ने प्रतिकार किया—

> धर्मच्युतेरिदं श्रेयो दास्यमस्माकमस्तु तत्।
> न त्यजामि प्रतिज्ञां तां न बिभेमि च दास्यतः॥ ३-२४

विदुर और युधिष्ठिर ने कहा कि दासता की अवधि तो महाराज निश्चित कर दें। दुर्योधन ने कहा—पाँच वर्ष तक दासता रहे। इस बीच यदि कोई क्रोध करे तो एक वर्ष अज्ञातवास होगा। दुर्योधन ने द्रौपदी को अपने अन्तःपुर में भिजवाया। भीम शयनागार के द्वारपाल नियुक्त हुए। युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की सेवा में नियुक्त हुए, अर्जुन कर्ण के, नकुल शकुनि के और सहदेव अन्तःपुर के द्वारपाल हुए।

एक दिन भीम शयनागार के द्वार पर चौकी करते हुए द्रौपदी को आते हुए देखता है। भीम से मिलने पर उसने बताया कि भानुमती ने मुझे प्रसाधन-सामग्री देकर दुर्योधन के शयनागार में भेजा तो उसने मुझसे कहना आरम्भ किया—

> पराजिताः पाण्डुसुताः प्रियास्ते दासीकृतास्तेपु कृतोऽनुरागः।
> ममेश्वरस्यापि विशालमङ्कमलंकुरुष्वाद्य तवास्मि दासः॥ ४-७

तभी गान्धारी ने आकर मुझे अपने स्थान पर भेज दिया। फिर उसने मुझे चेरी से सन्देश भेजा है कि मैं कल मन्दारोद्यान में माला लेकर शुभ्रवेप में मिलूं। भीम तत्काल ही दुर्योधन को खटमल की भाँति पीस देना चाहते थे, किन्तु द्रौपदी ने कहा कि अभी ऐसा न करें। भीम ने कहा कि दूसरा उपाय है मेरा स्वयं कल स्त्रीवेश में मन्दारोद्यान में पहुँचना। वहाँ वह मुझको द्रौपदी समझकर जब चाञ्चल्य प्रकट करेगा तो मैं अपनी कर डालूंगा। उसने द्रौपदी को भेजा कि जाकर स्त्रियों के योग्य वस्त्रादि मेरे लिए लाओ। द्रौपदी के लाये वस्त्र और आभूपण को धारण कर भीम ने अपने को दर्पण में देखकर कहा—

> हन्त पोटा संवृत्तास्मि।

सवेरा होने पर द्रौपदी के दिखाये मार्ग से स्त्रीरूपधारी भीम मन्दारोद्यान में जा पहुँचा। दुर्योधन के आने की आहट पाते ही वह पुष्प चुनने लगा। फिर वह

माला गूंथने लगा। दुर्योधन को निकट आया देखकर वह कुछ दूर चला गया। दुर्योधन प्रेम की बातें करने लगा तो भीम भयभीत होने का नाटक करने लगा। तब तो दुर्योधन ने कहा—

> कुसुमावचयश्रान्तां ननु वाहुलतां तव।
> संवाहयामि दासोऽहं मदङ्कं तदलंकुरु॥ ४.१६

यह कहकर रास्ता रोक कर भीम को पकड़ने का प्रयास किया। भीम डरता हुआ सा दूसरी ओर जाने लगा। भीम ने कहा कि मुझे अपने पतियों से डर लग रहा है। दुर्योधन ने समझाया—

> दासेभ्यः पाण्डुपुत्रेभ्यः कुतोऽद्यापि भयं तव ?

भीम ने कहा—मुझे आप से कहना है कि आप मुझे भानुमती का स्थान दें। दुर्योधन ने कहा—मैं जब तुम्हारे चरण दबाऊँगा तो भानुमती पंखा झलेगी। यह सब कह-सुन कर दुर्योधन ने भीम का आलिंगन किया। तब तो भीम ने वेग से अपने अंगों को झटकारा। दुर्योधन डर गया। भीम ने उसका आलिंगन क्या किया, उसे धर दबोचा। उसने दुर्योधन को बताया कि मैं द्रौपदी नहीं, भीम हूँ। यह कह कर उसे पटक दिया।

ऐसे विषम क्षणों में वहाँ धनपाल आ गया। दुर्योधन ने उससे कहा कि पाण्डव-गण को बुला लाओ। सभी आये और भीम को देखकर हँसने लगे और पूछा कि यह स्त्रीवेष कैसा? भीम ने युधिष्ठिर से कहा कि यह तो आपकी महिमा के कारण बनाना पड़ा। भाइयों के सामने ही वह मुक्का मारने के लिए दुर्योधन की ओर दौड़ पड़ा। युधिष्ठिर ने पूछा कि द्रौपदी सवेरे ही यहाँ कैसे आई? भीम ने उत्तर दिया कि इस दुरात्मा ने बुलाया है। दुर्योधन ने कहा कि इस दुर्व्यवहार के कारण आप लोगों को वनवास करना पड़ेगा। पहले एक वर्ष का अज्ञात-वास होगा। दुर्योधन ने एकोक्ति द्वारा बताया कि दुर्वासा की आराधना करके पाण्डवों की सारी धनराशि उनसे मुनि को प्राप्त करवा दूँगा।

वनवास करते हुए एक दिन द्रौपदी ने सौगन्धिक कुसुम की गन्ध का अनुभव किया। उसके कहने पर भीम कुबेर-लोक से उसे लाने के लिए चले गये। इस बीच वहाँ जयद्रथ आ फँसा। उसे दुर्योधन ने द्रौपदी का अपहरण करने के लिए भेजा था। उसने द्रौपदी को अपना परिचय दिया कि मैं तुम्हारे चरणों का दासानुदास हूँ। इस जंगल में क्या पड़ी हो? चलो हमारे रथ में। वह बलात् उसे ले जाना चाहता था। तभी वहाँ इन्द्रलोक से मातलि के साथ रथारूढ अर्जुन आ पहुँचा। उन्होंने जयद्रथ का दुर्वृत्त देखा। अर्जुन ने उसे मारने के लिए गाण्डीव उठाया। जयद्रथ भाग निकला। अर्जुन ने पीछा किया। वह उसके चरणों पर गिर पड़ा। अर्जुन ने उसका मुण्डन करा दिया और धनुष की डोरी से उसके हाथ बाँधे। उसे लेकर उस आश्रम पर आये, जहाँ युधिष्ठिरादि थे। मातलि ने युधिष्ठिर को बताया कि उर्वशी ने अपना प्रणय-निवेदन ठुकराने पर अर्जुन से

प्रसन्न होकर एक कनकमालिका दी है, जो अपने प्रभाव से अपने स्वामी की धनसमृद्धि करती है। युधिष्ठिर ने समझ लिया कि इससे अब दुर्योधन का कोशागार सम्पूरित कर देंगे।

जब रथ से वन्दी जयद्रथ लाया गया, तभी भानुमती भी रंगमंच पर आ पहुँची और युधिष्ठिर के चरणों में गिरकर निवेदन करने लगी कि गन्धर्व मेरे पति को वन्दी बनाकर लिये जा रहे हैं। युधिष्ठिर की आज्ञानुसार अर्जुन मातलि के साथ दुर्योधन को बचाने चले। इस बीच पुष्पक-विमान पर बैठ कर भीम सौगन्धिक पुष्प कुबेर से लेकर आ पहुँचे। द्रौपदी ने उनसे जयद्रथ की पापेच्छा की चर्चा की और उन्हें भीतर ले जाकर वन्दी जयद्रथ को दिखाया। भीम तो दाँत कटकटाकर उस पर गदाप्रहार करना चाहता था, पर युधिष्ठिर ने उसे छुड़ा दिया।

भीम ने द्रौपदी को वह सौगन्धिक पुष्प दिया और यक्षों के द्वारा प्रदत्त महती धनराशि युधिष्ठिर को अर्पित की। तदनन्तर अर्जुन दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन को लेकर वहाँ आ गया। दुर्योधन ने कुवेर-प्रदत्त धनराशि देखी। जब भीम के सामने दुर्योधन लाया गया तो भीम ने पूछा कि पापाचार में प्रवृत्त तुम कभी क्या भीम का भी स्मरण करते हो—

शकुनिकर्णविकर्षण-पण्डितस्सुहृदि दर्शितवाहुपराक्रमः।
मदनुजे रचितात्यवमाननः क्व नु ममानुचरोऽद्य वृकोदरः॥ ५-२८

युधिष्ठिर ने कौरवों को छोड़ने का आदेश दिया, पर दुर्योधन ने निर्णय लिया कि दुर्वासा ही इनकी सम्पत्ति ले सकते हैं। उन्हीं से प्रार्थना करता हूँ।

अन्तिम षष्ठ अङ्क में कृष्ण वटुवेषधारी रंगमंच पर आते हैं। वे बताते हैं कि मुझे दुर्वासा ने पाण्डवों का पता लगाने के लिए भेजा है। रंगपीठ की दूसरी ओर दुर्वासा एकोक्ति द्वारा व्यक्त करते हैं कि श्यामलक नामक मेरा शिष्य पाण्डवों का पता लगाकर अभी नहीं लौटा। तभी श्यामलक (कृष्ण) उनसे आकर मिले। उन्होंने उसे तप के प्रभाव से सुन्दर स्वर्णमृग बनाकर युधिष्ठिर के कुटीर पर भेजा और कहा—किसी के भी छूने पर मरा सा बन जाना। फिर मैं आगे का काम पूरा कर डालूंगा। मैं युधिष्ठिर के आश्रम के पास जा छिपता हूँ। कृष्ण ने कहा—एवमस्तु।

द्रौपदी ने स्वर्णमृग (कृष्ण) को देखकर कहा कि इसे मेरे लिए पकड़ा जाय। भीम पकड़ने गये तो वह छूते ही मर कर गिर पड़ा। तब तो उसे ढूंढ़ते हुए दुर्वासा आये। उसे मरा देखकर दुर्वासा विलाप करने लगे। उसने युधिष्ठिर से कहा कि इस मृग को तो किसी तरह आज जीवित करना ही है। महान् यज्ञ करना होगा। श्रोत्रियों को बड़ी दक्षिणा देनी होगी। इसके लिए आप अपना सर्वस्व दे दें। कुबेर से प्राप्त सारा धन उसे दे दिया गया। अर्जुन के कण्ठ में लटकती धनदा कनकमालिका भी दे दी गई। भीम ने उसे दुर्वासा की कुटी में पहुँचा दिया। दुर्वासा ने किसी को मृग का स्पर्श न करने दिया और स्वयं उसे लेकर चलते बने।

वर्ष बीतने पर वहाँ दुःशासन ने आकर पाण्डवों से कहा कि चलें, दुर्योधन का कोश भरने के लिए धन दें। रथ से सभी दुर्योधन के सौध पर पहुँचे। द्रौपदी अन्तःपुर में चली गई।

राजसभा में भीष्मादि से घिरा दुर्योधन सिंहासन पर बैठा था। भीष्म ने पाण्डवों से कहा कि तत्काल राजलक्ष्मी ग्रहण करें। दुर्योधन ने कहा कि राजकोश भर दें। युधिष्ठिर ने कहा कि सारा धन दुर्वासा को दे दिया गया। दुर्योधन ने आदेश दिया कि नियमानुसार पुनः दासता करें। उसने कर्ण के कान में कहा कि अब तो द्रौपदी का दुकूलाकर्षण करने की अपनी पूर्वप्रतिज्ञा को पूरा करना है।

कुलपालिका द्रौपदी को अन्तःपुर से बुलाने गई। कुलपालिका ने लौटकर उत्तर दिया कि यह मन्दारोद्यान में पुष्पित लता की भाँति पड़ी है और नहीं आना चाहती। दुर्योधन ने कहा कि जाकर कहो कि तुम दासी हो। आना ही पड़ेगा। विदुर ने कहा कि पुष्पवती है। कैसे आयेगी? द्रौपदी के पुनः न आने पर दुःशासन भेजा गया। कृपाचार्य और द्रोण ने कहा—

क्षिप्रमेव स्वमूलनाशाय यतते मूर्खोऽयम्।

भीम गदा लेकर दुर्योधन को मारने को उद्यत हुए। युधिष्ठिर ने उन्हें रोका। द्रौपदी रोती हुई लाई गई। अर्जुन ने युधिष्ठिर से क्रोधपूर्वक कहा—आज ही बाण से दुर्योधन को मारे डालता हूँ। दुर्योधन ने द्रौपदी से कहा कि मुझ सार्वभौम की गोद में बैठो। द्रौपदी के न आनेपर उसने दुःशासन से कहा कि इसका दुकूलकर्षण करो। दुःशासन के ऐसा करने पर द्रौपदी ने पाण्डवों से रक्षा के लिए निवेदन किया। उनके कुछ न करने पर उसने भगवान् वासुदेव को पुकारा। उसका दुकूल (अंशुक) बढ़ने लगा। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। कृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने कहा—इन निश्चेष्ट पाण्डवों को ही मार डालूँगा, पर द्रौपदी क्यों विधवा हो? उन्होंने दुर्योधन से कहा कि पाण्डवों के द्वारा अर्जित धन से तुम्हारा कोश भर देता हूँ। उन्हें राज्य दे दो। यह सुन कर भीम ने कहा कि अब तो स्वतन्त्र हुए। दुःशासन को गदा दिखा कर बोला कि इसे मारता हूँ। द्रौपदी वेणीसंहार करने के लिए तैयार हुई तो भीम ने कहा—मैं स्वयं रक्तरंजित हाथों से तुम्हारा वेणीसंहार करूँगा[1]। दुर्योधन को गदा दिखाकर भीम बोला—

विदार्य गदया रणे शिरसि वामपादोऽर्प्यते।

दुर्योधन ने कहा—कृष्ण कौन हैं कोश पूरा करने वाले? तुम लोग फिर दास हो। यह कह कर वह चलता बना। कृष्ण ने बिलखती द्रौपदी से कहा—शीघ्र ही तुम्हारा वेणीसंहार होगा। युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि पाँच गाँव दिलाकर संधि करा दें।

---

१. इस घटना के कारण इसे वेणीसंहार का पूर्वरंग कहते हैं।

शिल्प

रंगपीठ पर आने वाले पुरुष का वर्णन किरतनिया अथवा अंकिया नाटक के अनुरूप किया गया है। प्रथम अङ्क में युधिष्ठर कृष्ण का वर्णन करते हैं—

योगिध्येयो नवघनरुचिः पुण्डरीकायताक्षो
रक्षादीक्षावहननिरतः पीतवस्त्राञ्चिताङ्गः।
लक्ष्मीक्रीडामरकतगिरिर्भक्तकल्पद्रुमोऽयं
श्रीकृष्णो मे हरति नयने कोऽस्ति वन्यो मदन्यः ॥ १.११

कवि का ध्यान पात्रों के कार्य पर उतना नहीं जाता, जितना उनके व्यक्तित्व की वर्णना पर। प्रथम अङ्क में कृष्ण, द्रौपदी के विषय में कहते हैं—

एक वल्लभमनोऽनुवर्तनं योषितस्तु भुवि दुष्करं किल।
पञ्चभर्तृहृदयानुसारिणी तान् वशीकृतवती सतीमणिः ॥

द्वितीय अङ्क के पूर्व आने वाले विष्कम्भक में अशास्त्रीय और दूर-सम्बन्धित वर्णन सविशेष हैं। यज्ञ-वैभव, सार्वभौमविनिर्णय, वासुदेव-सपर्या, शिशुपालवध आदि ऐसे प्रकरण हैं।

बड़ी कथा को नाटक के ढाँचे में ढालने के लिए जहाँ अर्थोपक्षेपकों को अपनाना चाहिए था, वहाँ एकोक्तियों और संवादों में ऐसी सामग्री दी गई है। पंचम अंक के आरम्भ में भीम और द्रौपदी के संवाद में विराट के भवन में कीचक-वध की चर्चा की गई है। इसी अंक में आगे चलकर युधिष्ठिर और मातलि के संवाद द्वारा उर्वशी का अर्जुन के प्रति प्रणय-निवेदन की घटना विस्तार पूर्वक प्ररोचित है। यह सामग्री अंकोचित नहीं है। इसे तो अर्थोपक्षेपक में रखना चाहिए था।

संवाद

नाटक में संवाद नाट्योचित हैं। उनमें हँसाने की सामग्री कहीं-कहीं बेजोड़ है। यथा,

भीमः—क्व उडीयते शकुनिः। गृहाण तं पंजरे स्थापयामः।
अर्जुनः—एनं महाराजदुर्योधनस्य मातुलं ब्रवीमि, न तु पतगम्।

दुःशासन के विषय में भीम का कहना है—

अयमेक एवालं जगति साधुनाशाय।

कहीं-कहीं संवाद में भावी कथांश को पहले ही बता दिया गया है। द्वितीय अंक के अन्त में आगे की कथा का निचोड़ सा दिया गया है। संवाद के द्वारा तृतीय अंक में भूतकालीन घटनाओं का वर्णन कंचुकी करता है। यह सामग्री अङ्कोचित नहीं है। ऐसा अर्थोपक्षेपण अंक के बाहर होना था।

एकोक्ति

अद्‌भुतांशुक में एकोक्तियों का बाहुल्य है। द्वितीय अङ्क का आरम्भ दुर्योधन की एकोक्ति से होता है। वह रंगपीठ पर अकेले है। इस एकोक्ति में वह आत्मगर्हणा

करता है कि शत्रु इतने वैभवशाली हैं। वह पाण्डवों को निस्सार बनाने की कामना प्रकट करता है। ये कर्णदुःशासन आदि आ रहे हैं। उनसे मिलकर पाण्डवों को वश में करने की योजना बनाता हूँ। यह एकोक्ति अंशतः अर्थोपक्षेपक का उद्देश्य पूरा करती है।

तृतीय अंक के प्रायः आरम्भ मे रंगपीठ के एक भाग में कंचुकी की एकोक्ति का दृश्य है, जब दूसरे भाग मे द्रौपदी और भीम अपने संवाद के पश्चात् चुप पड़े हैं। इस एकोक्ति में अर्थोपक्षेपकोचित भूतकालीन घटनाओं का विवरण है और उसके साथ ही एकान्तोचित भावनिर्झरिणी प्रवाहित है—

कण्ठाश्च निस्सरति हन्त कठोरवाणी
नेत्रात् परं पतति वाष्पझरी कवोष्णा।
आज्ञा प्रभोर्बलवती किमिहाचरामि
हा पातितोऽस्मि विधिनाद्य तु संकटेऽस्मिन् ॥ ३.५

चतुर्थ अङ्क के आरम्भ मे रंगपीठ पर अकेले ही द्वारपाल बने हुए भीम की महत्त्वपूर्ण एकोक्ति दो पृष्ठों मे है। वह विधि-विलसित, दासी बनने पर द्रौपदी का भीम पर साश्रु दृष्टिपात धर्मपिशाचाक्रान्त युधिष्ठिर के वज्रहृदय की प्रतिक्रिया-हीनता, लोक की घोरनिद्रा, चन्द्रोदय आदि का वर्णन एकोक्ति के द्वारा प्रस्तुत करता है।

भीम की एकोक्ति के ठीक पश्चात् द्रौपदी की एकोक्ति है, जिसमे वह अपने पतियों के विषय मे कहती है कि अब वे मुझ से कोई मतलब नही रखते।

षष्ठाङ्क का आरम्भ बटुवेशधारी कृष्ण की एकोक्ति से होता है। इसमे सूर्योदय, छात्रवृत्ति की कठिनाइयों, दुर्वासा के नियोग आदि का वर्णन है। इसके ठीक पश्चात् दुर्वासा की एकोक्ति है।

चतुर्थ अङ्क के बीच में रंगपीठ पर अकेला पात्र भीम पुनः अपने भावी कार्य-क्रम की विचारणा करता है। यथा,

परिरम्भणकैतवेन दोर्भ्यां सुदृढं त्वां परिगृह्य मर्दयामि।
दशदिक्षु विनिक्षिपन्तमक्षि क्षुभितं द्रक्ष्यति मे प्रिया स्फुरन्तम् ॥ ४.१२

चतुर्थ अङ्क के अन्त मे दुर्योधन एकोक्ति मे अपनी भावी योजना-मात्र बताता है कि द्रव्याभाव मे पाण्डवो को पुनः दास बनाऊँगा तथा राजाओं की सभा में द्रौपदी का वस्त्र-कर्षण कराऊँगा। इस प्रकार यह एकोक्ति अर्थोपक्षेपक है।

छायातत्त्व

अद्भुतांशुक मे छायातत्त्व का सफलता-पूर्वक विनिवेश हुआ है। भीम का स्त्री बनकर मन्दारोद्यान में दुर्योधन से मिलना छायातत्त्वात्मक है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कृष्ण का दुर्वासा का शिष्य बनना। कृष्ण का षष्ठ अंक में स्वर्णमृग बनना छायातत्त्वानुसारी है।

कपट नाटक

अद्भुतांशुक कपट नाटक है। इसमें कृष्ण का मृग बनना और उसकी कापटिक मृत्यु द्वारा पाण्डवों को छलना चण्डकौशिक नाटक में हरिश्चन्द्र के छलने के अनुरूप अंशत है।

रंगपीठ

रंगपीठ के एक भाग से दूसरे भाग में प्रवेश करने की व्यवस्था थी। दूसरा भाग यवनिका से अन्तरित होता था। पंचम अंक में बाहरी भाग में बातें करने के पश्चात् द्रौपदी भीम के साथ आभ्यन्तर भाग में प्रवेश करती है।

अभिनय के लिए रंगपीठ का अतिशय विशाल होना आवश्यक है, जिस पर आवश्यकता होने पर बीच में द्वारानुबद्ध दो भाग होने चाहिए। इस बड़े रंगपीठ पर दूरस्थ भागों में पृथक्-पृथक् समूहों में संवाद करने वाले एक-दूसरे वर्ग से असम्पृक्त हैं—ऐसा स्वभावतः प्रकट होना चाहिए। द्वितीय अङ्क के आरम्भ का रंगपीठ ऐसा ही प्रकट करता है—इसके एक ओर से दुःशासन, कर्ण और शकुनि उन्हें न देखते हुए बातचीत करते हैं।[1] तृतीय अंक के आरम्भ में भी द्रौपदी और भीमसेन रंगपीठ के एक ओर है और दूसरी ओर कंचुकी की एकोक्ति दृश्य है।[2]

रंगपीठ पर कतिपय पात्र बिना काम के एक ओर खड़े रहते हैं, जब दूसरी ओर अन्य पात्र बातें करते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। द्वितीय अंक में सूत और युधिष्ठिर के संवाद के समय दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि अन्यत्र चुपचाप पड़े रहते हैं। सम्भवतः रंगपीठ की विशालता के कारण ही एक ही साथ तृतीय अंक में ११ पात्र एक साथ ही समक्षित हैं।

अभिनय की प्रचुरता

कवि ने अभिनय के लिए अनेकशः अधिकाधिक संविधान सँजोये हैं। यथा,

भीमः—(सामर्ष सकम्पश्च) आः कष्टं कष्टम्। प्रिये, नूनमनाथासि। नूनं, नूनम्। धिगस्मान् पंच वल्लभान्। किं करोम्यद्य। (इति हस्तेन हस्तं निष्पीड्य सशीर्षान्दोलनम्) हुम्।

रंगपीठ पर पात्रों के कार्य उत्तेजनापूर्ण हैं।

उच्चावच प्रवृत्तियाँ

महापुरुषों को ऊपर उठा कर तत्काल ही नीचे गिराने से भाव-वैषम्य का

---

१. दुःशासन कहता है—क्व गतो महाराज-दुर्योधनः? नाद्याप्यस्मन्नयनगोचरः।' दोनों एक ही रंगपीठ पर हैं।
२. तृतीय अंक में ही आगे चल कर रंगमंच पर परस्पर दूरस्थ दो स्थानों के दृश्य समक्षित किये जाते हैं। एक स्थान से परिक्रमा करके दूसरे स्थान पर पात्र जा पहुँचते हैं।

नाटकीय निदर्शन करने में वकुलभूषण को सफलता मिली है। युधिष्ठिरादि के सर्वोच्च ऐश्वर्य की बात भीम और द्रौपदी से सुनने के पश्चात् कंचुकी के मुख से प्रेक्षक सुनते हैं—

'कुतो वा पाण्डवानां राज्यसौख्यम्'

युधिष्ठिर का सर्वस्व जुए में नष्ट हो चुका था।

चरित्र-चित्रण

नायकों के चरित्र-चित्रण के लिए कवि आवश्यक कथाधारा की परिधि से बाहर जाकर कुछ घटनाओं की सूचना प्रमुख पात्रों के संवाद द्वारा प्रस्तुत कर देता है। पंचम अंक में अर्जुन के चरित्रचित्रण के लिए मातलि और युधिष्ठिर के संवाद द्वारा उर्वशी का अर्जुन के प्रति प्रणय-निवेदनात्मक-घटना का वर्णन किया गया है।

रथयात्रा

रंगपीठ पर रथयात्रा का दृश्य छठें अंक में है। इसमें बिना दृश्यपरिवर्तन के ही युधिष्ठिर के आश्रम की घटनायें और उसके पश्चात् दुर्योधन की राजसभा का अंशुककर्षण दृश्य एक ही अंक में दिखाया गया है।

सूक्तिराशि

वकुलभूषण की रचना में सूक्ति-सम्भार प्ररोचित है। कतिपय सूक्तियाँ अधोलिखित हैं—

(१) आशा-पोषिता खलु स्त्रीवृद्धि।
(२) उभयतः पाशः।
(३) अट्टालिकादग्र पतितस्योपरि लगुडाघातः।

प्रतिज्ञा-कौटिल्य

भगवान् सम्पत्कुमार के हीरकिरीटोत्सव देखने के लिए आये हुए विविध प्रदेशों के विद्वानों के प्रीत्यर्थ प्रतिज्ञाकौटिल्य का अभिनय हुआ था।[1] इसमें मुद्राराक्षस की पूर्ववस्तु कथानक द्वार से संगृहीत है। प्रस्तावना के अनुसार इसके प्रयोग में अमात्य राक्षस की भूमिका में सूत्रधार का भाई उतरा था।[2] वह पात्र राजनीति-कोविद था।

कथावस्तु

अमात्य राक्षस से अमात्य वक्रनास कहता है कि वृद्ध राजा सर्वार्थसिद्धि मौर्य को राजसिंहासन देकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहता है। राक्षस को नन्द प्रिय थे। वह मुरापुत्र की योग्यता से प्रभावित था, किन्तु सनातन परिपाटी

---

१. इसका प्रकाशन १९६३ में बंगलोर से हुआ है।

२. इससे प्रकट होता है कि भूमिका लेखक सूत्रधार है।

का उल्लंघन उसे समीचीन नहीं प्रतीत होता था।[1] उसने नन्दों के पक्षपातोन्मुखी अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए दारुवर्मा नामक शिल्पी के कान में कुछ कहा। राक्षस की इस विषय में एकोक्ति है—

क्षत्रियर्षभगणैरधिष्ठिते सिंहपीठे मयि कोऽपि शूद्रकः।
मा विचिन्तय निषीदतीति यद्राक्षसोऽयमधुनापि जीवति ॥ १.१०

उसने करालक नामक अपने मित्र ऐन्द्रजालिक को भी उसका कार्य अपनी योजना कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में बताया।

इधर नन्द अपने पिता के मौर्य का अभिषेक करने की वार्ता सुनकर विस्मित थे। वे मौर्य को येन केन प्रकारेण समाप्त करने के लिए समुद्यत थे। राक्षस ने प्रत्यक्ष उनके विचारों को जाना और कहा कि रक्त-प्रवाह के बिना केवल उपाय से अपना काम सिद्ध करो। उपाय पूछने पर उसने कहा कि अभी चुपचाप मौर्य के प्रति कृत्रिम अनुराग प्रकट करते हुए उसके पट्टाभिषेक का अभिनन्दन करो। महाराज सर्वार्थसिद्धि के बुलाने पर राक्षस उससे मिलने के लिए सुगाङ्ग-प्रासाद में चला गया।

मौर्य की शोभा-यात्रा की वेला में सेना सज्जित थी। सेनापति चाहता था कि मौर्य का अभिषेक न होता तो मैं राजा बन जाता।

सुगाङ्ग-प्रासाद में राजा के साथ राक्षस और सेनापति थे। उसने नन्दों को भी बुलवा लिया। नन्दों की बात चीत से ज्ञात होता है कि दारुवर्मा ने छिपे द्वार वाला घर बना लिया है। राजा ने कहा कि मैं तो अब वृद्धावस्था में वन की ओर चला। मौर्य को अपने स्थान पर राजा बनाये देता हूँ। आप लोग उसकी सहायता करें। तभी मौर्य आया। बनावटी ढंग से राक्षस और नन्दों ने उसका समर्थन किया।

कुछ देर बाद सेनापति ने आकर सन्देश दिया कि कुमार मौर्य सौ पुत्रों के साथ मारा गया। स्वयं दुर्गा प्रत्यक्ष होकर सौ पुत्रों सहित मौर्य को कदली की भाँति काट-पीटकर अन्तर्धान हो गई। आकाश वाणी द्वारा उसने सूचना दी—श्रेष्ठ क्षत्रियों के होते हुए क्यों वृषल को राजा बनाया जाय।

मौर्य पुत्र चन्द्रगुप्त बच गया था। इससे राक्षस और नन्द चिन्तित थे। उस पराक्रमी से महाभय की आशंका है?

सर्वार्थ मौर्य की मृत्यु से अतिसन्तप्त था। कल्याण-पथ पूछने पर राक्षस ने उसे बताया कि अब तो भाइयों सहित नन्द का अभिषेक कर दें।

तृतीयाङ्क में चन्द्रगुप्त आत्मरक्षा के लिए भागकर अरण्य में पहुँचा। वहाँ वह अजगर के मुँह में पड़े किसी ब्राह्मणवटु की रक्षा करता है। वह चाणक्य का शिष्य

१. पाटलिपुत्र के महाराज सर्वार्थसिद्धि की दो पत्नियाँ सुनन्दा और मुरा थीं। सुनन्दा से नव नन्द और मुरा से मौर्य नामक पुत्र हुए। मुरा वृषला थी, किन्तु महाराज की प्राणप्रिया थी। मौर्य के सौ पुत्र थे, जिनमें चन्द्रगुप्त सर्वश्रेष्ठ था।

शार्ङ्गरव था, जिसे ढूढ़ते हुए आने पर चाणक्य की चन्द्रगुप्त से भेंट हुई। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की कथा सुनकर प्रतिज्ञा की—

प्रज्ञाकृपाणेन निहत्य नन्दान् राज्येऽभिषिच्य प्रथितं भवन्तम्।
स्वत्सन्निधौ तं सचिवावतंसं संस्थापयिष्याम्यचिरादधीनम्॥ ३. १५१

उस समय तापस वेशधारी एक गुप्तचर आया और उसने चाणक्य से बताया कि सिंहकेश्वर ने पाटलिपुत्र के शारदोत्सव के अवसर पर पिंजरेमे एक सिंह रखकर बिना द्वार खोले उसे बाहर निकालने वाले को उच्च पदाधिकार देने के लिए राक्षस को लिखा है। चाणक्य ने समझ लिया कि चन्द्रगुप्त को पकड़ने के लिए यह सब उपाय राक्षस कर रहा है। उसने चन्द्रगुप्त को बताया कि उस सिंहको कैसे निकाला जाय और उससे कहा कि ब्रह्मचारी बन कर कल तुम एतदर्थ पाटलिपुत्र जाओ।

यथासमय चन्द्रगुप्त बटुवेश धारण करके सिंह को पिंजर से निकालने के लिए पाटलिपुत्र पहुँचा। सिंह को गलाने के लिए उसे समुद्यत होने पर राजा नन्द ने उसे पहचान सा लिया—

तद्रूपसंवादिवटोर्हि रूपं तत्कण्ठनादप्रतिभोऽस्य नादः।
सैवास्य चेष्टा बत चन्द्रगुप्ते मयानुभूतं सुचिरं च यद्यत्॥ ४.२०

नन्द की आज्ञा से उसने तप्त शलाका से सिंह को गला दिया। उसे राजा नन्द ने सत्राधिकार दे दिया। स्थानीय और दूर से आये हुए अगणित ब्राह्मणों की भोजन-व्यवस्था वह करने लगा।

पंचम अङ्क के अनुसार अन्नसत्र-व्यवस्था से चन्द्रगुप्त ऊब गया। एक दिन चाणक्य आकर उससे मिला। चाणक्य ने उससे कहा कि तुम तो मेरी कुटी मे जाओ, तब तक मुझे यहाँ कुछ करना है। ऐसा होनेपर वह महाराज नन्द के आसन पर बैठ गया। नन्द ने आकर जब उसे देखा तो कहा कि तुम मेरे आसन पर क्यों बैठ गये? उसने प्रश्नोत्तर के पश्चात् उसे बलात् केश पकड़ कर आसन से गिरा दिया। चाणक्य ने प्रतिज्ञा की—नन्दों को भस्म करने के पश्चात् ही केश बाँधूंगा। चाणक्य ने छठे अङ्क के अनुसार अपने शिष्य जीवसिद्धि को क्षपणक का वेष धारण करवाकर राक्षस का प्रिय बनवा दिया। एक दिन सेनापति राजा को मृगया के लिए वन ले जाने के लिए उत्सुक हुआ और जीवसिद्धि ने उसे रोकना चाहा कि वहाँ प्रतिज्ञा किये हुए चाणक्य रहता है।

इधर नन्दो के पिता सर्वार्थसिद्धि ने स्वप्न देखा कि मेरे पुत्रो का भविष्य विपत्ति-सकीर्ण है। उसने राक्षस से कहा कि इन विषम परिस्थितियों में आप चाणक्य को बुलाकर उसे शान्त करें। उसी समय भट ने राक्षस से बताया कि मृगया करते समय नन्दों पर पर्वतेश्वर ने चन्द्रगुप्त की सहायता से आक्रमण कर दिया है। अभी राक्षस नन्दों की सहायता के लिए जाने को ही था कि उसे समाचार मिला कि नन्द मारे गये। तब तो सर्वार्थसिद्धि और राक्षस ने मिलजुल कर उनके लिए विलाप किया। उन्हें समझते देर न लगी कि यह सब चाणक्य का कृतित्व है।

इस बीच शत्रुओं के द्वारा नगर पर आक्रमण के भय से सुरंग से जीव सिद्धि को अरण्य में जाना पड़ा। ऐसे करने के लिए परामर्शदाता राक्षस भी साथ गया। चन्दनदास के घर उसने अपने कुटुम्बियों को टिकाया। राक्षस-पत्नी मालती कुटुम्ब की व्यवस्थापिका वनी। उसके माँगने पर राक्षस ने अपनी मुद्रा उसे दे दी।

राक्षस ने चन्दनदास को बुलाकर अपनी योजना वता दी कि मेरा कुटुम्ब आपके घर में रहेगा। इस वीच मैं अपने उपायों से चाणक्य और चन्द्रगुप्त का विनाश कर दूंगा। चन्दन ने उसे आश्वासन दिया—

जीवितमपि परित्यक्तुमत्र सज्जोऽस्मि राक्षस।
न पुनस्ते कलत्रस्य निवेदयामि स्थितिं गृहे॥ ६.३०

सप्तम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक के अनुसार भागुरायण को चाणक्य ने पत्र द्वारा सूचित किया—राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जो विषकन्या आज रात में भेजेगा, उससे पर्वतेश्वर को मरवा दूँगा। तुम उसके पुत्र मलयकेतु को इस नगर में लाओ। भद्रभटादि सामन्त को चन्द्रगुप्त से दूर करके मलयकेतु के साथ लगाओ। मैंने सर्वार्थसिद्धि को मार डालने के लिए घातुकों को नियुक्त कर दिया है। मलयकेतु से राक्षस आ मिलेगा। राक्षस को उससे अलग करा देना है। सदा राक्षस की रक्षा करते रहना।

सप्तम अंक में जीवसिद्धि विषकन्या को पर्वतेश्वर के विलास के लिए रात्रि में सोने के पहले प्रस्तुत करता है और कहता है कि इस राजकुमारी को राक्षस ने आप के लिए भेजा है। उसके मरने की खवर कंचुकी से पाकर चाणक्य कहता है—राक्षस ने विचारे पर्वतेश्वर को मरवा डाला। उसे मैं कल आधा राज्य देने वाला था। अव उसके पुत्र मलयकेतु को ही आधा राज्य देता हूँ।

इस वीच चाणक्य को समाचार मिला कि मलयकेतु डर कर भाग गया। तव तो विलखते हुए चाणक्य ने कहा कि अव तो उसके चाचा वैरोचक को ही आधा राज्य देकर मुझे अनृण होना है। योजना थी—उसे चन्द्रगुप्त का वस्त्र पहना कर कपट-व्यापार से रात्रि में मरवा देना। उसे बुलाने के लिए स्वयं चन्द्रगुप्त गया। वैरोचन को यह सब बातें ज्ञात थीं कि कैसे चाणक्य ने मेरे सम्वन्धियों को मरवाया है, किन्तु चन्द्रगुप्त ने उस वैधेय को समझा दिया कि यह सब राक्षस का किया हुआ है। चाणक्य तो आपको आधा राज्य देना चाहता है—

अनुभुंक्ष्व चिरं राज्यमभिषिक्तो यथासुखम्।
स्वयमेवागतां लक्ष्मीं को वा वद जिहासति॥ ८.१

वैरोचक ने मन ही मन निर्णय किया कि आधा राज्य लेकर उसे मलयकेतु को दूँगा। वह चन्द्रगुप्त के कहने पर आकर चाणक्य से मिला। चाणक्य वैरोचक को पर्वतेश्वर के आभरण दिखाता है कि उसके श्राद्ध के दिन इन्हें श्रोत्रियों को

दूँगा।[1] उसने चन्द्रगुप्त से कहा कि अपने जैसे वस्त्राभूषण वैरोचक को भी पहनाओ। ऐसा किया गया।

आधी रात के समय चन्द्रगुप्त के विशिष्ट हाथी पर वैरोचक को बैठाकर यात्रा-महोत्सव के लिए निकाला गया। यन्त्रतोरण के गिरने से राजभवन-द्वार पर वह मारा गया। दारुवर्मा ने लोष्ठ-कीलक से उसे मार डाला—यह चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को दिखाया। वैरोचक के अनुयायियों ने दारुवर्मा को भी मार डाला—

चाणक्य ने ऐन्द्रजालिक द्वारा पहले मायाचन्द्रगुप्त का अभिषेक करवाया। उसे राक्षस के ऐन्द्रजालिक ने कृत्रिम अग्नि से जला दिया। इसके पश्चात् वास्तविक चन्द्रगुप्त का अभिषेक हुआ।

प्रतिज्ञा-चाणक्य में संविधान मुद्राराक्षस से सरसतर है।

शिल्प

रंगपीठ पर आने वाले पात्र की चाल-ढाल और अलंकरणादि का वर्णन यदि नाटक में किया जाता है तो इससे स्पष्ट है कि लेखक उसे केवल अभिनय के ही लिए नहीं, अपितु पठन-पाठन के लिए भी उपयोगी समझता है। अङ्गिमा नाटक और किरतनिया नाटक में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जाती है। प्रतिज्ञा-कौटिल्य में

दीप्रोष्णीपनिराकृताश्मकुटं वंकस-वस्त्रोज्ज्वल-
स्निग्धश्यामतनुप्रकान्तमुकुसङ्काशस्फुरत्कुण्डलम्।
आगुल्फाञ्चितदुग्धवारिधिगलत्फेनाभचण्डातकं
मन्ये पाटलराजधान्यधिगतस्वाम्यं द्वितीयं नृपम्॥ २.३

यही प्रवृत्ति द्योतित है। द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक के

'कोशे वेशितखड्गवल्लिरित एवायाति सेनापतिः॥

से भी नाटक की पठनीयता प्रमाणित होती है।

अनेकानेक एकोक्तियों की नाटकीय अभिनय-विषयक प्रभविष्णुता से कवि प्रभावित है। प्रस्तावना के पश्चात् अंक का आरम्भ राक्षस की एकोक्ति से होता है। यथा,

राक्षसः (सानन्दं) धन्योऽस्मि, साचिव्येन। यतः

राज्ञि प्रजास्सुदृढभक्तियुताः कृताश्च
सामन्तभूमिपतयोऽपि नयानुरक्ताः।
राजापि मय्यखिलराज्यधुरं निधाय
धन्योऽद्य मे सचिवता सफला हि दिष्ट्या॥ १.३

---

१. इसी अङ्क में एकोक्ति के द्वारा इन आभरणों के विषय में चाणक्य कह चुका है कि इनसे राक्षस को फँसाऊँगा। 'इदं, तावत्पर्वतेश्वरस्याभरणत्रयं राक्षस-संग्रहणार्थं रक्षणीयम्।'

एकोक्ति में राक्षस अर्थोपक्षेपण भी करता है। यथा,

वृद्धो जातो धनपतिनिभस्सोऽपि सर्वार्थसिद्धिः
प्रौढा नन्दास्तदिह नृपतां प्रापणीया मयैव।
मातुर्दोपाज्जठरगलिता यन्मया वर्धितास्ते
तैलद्रोण्यां कथमपि नवक्रव्यपिण्डस्वरूपाः॥

तृतीय अङ्क के आरम्भ में व्यथित-हृदय चन्द्रगुप्त लम्बी एकोक्ति द्वारा अपनी भावी योजना बताता है।

निकृत्य करधूतया निशितखङ्गवल्ल्या रणे
शिरोधरपरम्परां परिलुठत्सु शीर्षेषु वः।
पदं विनिदधाम्यहं निगलतो विमोच्यानुजै-
स्समं पितरमुज्ज्वलं नरपतिं करोम्याशु तम्॥ ३.५

अन्यत्र भी प्रायः सभी अङ्कों में ऐसी अनेक एकोक्तियाँ अर्थोपक्षेपक हैं।

नाटक यथानाम आरमटी-वृत्ति-परायण है। इसमें इन्द्रजालिक राजप्रासाद को जलता हुआ दिखाता है। यथा,

राक्षसः—कथं, प्रज्वलति प्रासादः। तात, उपसंहर। न पारयामि द्रष्टुम्।

जनान्तिक तथा स्वगत के द्वारा द्वितीय अङ्क में भावी कार्यक्रम की सूचना दी गई है। यथा—'बन्धनागारप्रवेशाय सर्वाभरणभूषितो मौर्योऽयमित एवाभिवर्तते।'

राक्षस—तदधुना नन्दार्थमकार्यमपि कार्यमेव मया।

कथावस्तु में वैषम्य-परम्परा लोकरुचि से निषिक्त है। एक ओर सर्वार्थसिद्धि मौर्य को राजा बनाना चाहता है, दूसरी ओर राक्षस उसे बन्दी बनाने की योजना कार्यान्वित कर रहा है। इसी प्रकार जब सर्वार्थसिद्धि मौर्य की शोभायात्रा की सफलता की आशंसा कर रहा है, तभी सेनापति आकर कहता है कि मौर्य मारा गया।

अङ्क भाग में सूचना देने की प्रवृत्ति इस नाटक में कुछ कम नहीं है। तृतीय अंक में चन्द्रगुप्त चाणक्य से अपनी सारी कथा बताता है और सूचित करता है कि कैसे मेरे अन्य भाई मारे गये और मैं बच निकला।

बीसवीं शताब्दी के कवि भी अनावश्यक शाश्वत शृंगार-प्रियता से उन्मुक्त न हो सके—यह विषमता है। चतुर्थ अंक में नन्दों की पाटलिपुत्र-वर्णना में विट और वेश्याओं की चर्चा सुनिहित नहीं कही जा सकती।[1] इसी प्रकार सप्तम अंक में पर्वतेश्वर का विष कन्या से कहना है—'गाढालिङ्गनभुग्न-चूचुकमभवद्वक्षोजकुम्भाधुना।' आदि

---

१. चन्द्रातपे तत इतो विचरन्ति वेश्याः। ४.१३
वृद्धा विटाः कृतपटीररसाङ्गलेपाः। ४.१४

भावी घटना का क्षीण संकेत कवि ने कंचुकी के पद्यों द्वारा भी दिया है। यथा,

उदयमुपगतस्सम्पूर्णचन्द्रः कुवलयहासनिदानमुज्ज्वलाङ्गः।
यदुदयसमवेक्षणात् प्रजानां भवति सुखं शमितात्मखेदजालम् ॥ ४.६

षष्ठ अंक मे सर्वार्थसिद्धि के स्वप्न द्वारा भावी घटना की सूचना दी गई है।

अष्टम अङ्क में ऐन्द्रजालिक के द्वारा चाणक्य मायाचन्द्रगुप्त को रंगमंच पर लाया है। उसे देखकर उसका कहना है—

अहो मायाबलं यस्मादेनं पश्यामि तत्त्वतः।
आत्मनः प्रतिबिम्बं मुर्यादर्श इव निर्मले ॥ ८-२१

यह छायात्मक है। प्रतिज्ञाकौटिल्य में छायातत्त्व की प्रचुरता है। चन्द्रगुप्त वटुवेश धारण करके सिंह का विद्रावण करता है। मानसी छायातत्त्व चाणक्य और चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व मे है, जब आठवें अक में वैरोचक से चन्द्रगुप्त कहता है कि आधा राज्य अब आपको ही चाणक्य देना चाहता है। चाणक्य भी उसे प्रतिश्रुत अर्धराज्य देने की बात मिलने पर कहता है। वस्तुतः वे दोनो उसके अन्तक हैं। उसको मरवा देने के पश्चात् वह कहता है—

हा पर्वतेश्वर भ्रातः भवतापि नानुभूतं मयादत्तं राज्यम्।

नाटक में कुछ ऐसी वर्णनायें हैं, जो संस्कृत-काव्य-साहित्य में अन्यत्र विरल होने के कारण अतिशय रोचक हैं। यथा ग्राम्यारोचन है—

कूपोदकोद्धरणयन्त्रनिनाद एष सम्पूर्यमाणपृथुभाण्डरवानुमिश्रः।
हुङ्कारगर्भमुसलाहतिशब्दरम्यभ्राम्यद्घरट्टनिनदो विभवं व्यनक्ति ॥

कुछ घटनायें भी उपर्युक्त उद्देश्य से पिरोई गई हैं। राक्षस का पुत्र पष्ठ अङ्क मे उसके वियोग की बात सुनकर वात्सल्य निर्भर होने से प्रेक्षक को प्रीति प्रदान करता है।

षष्ठ अंक के बीच मे मालती हरिश्चन्द्र-चरित की कथा राक्षस के प्रीत्यर्थ संक्षेप मे सुनाती है।

सप्तम अंक में रंगमंचपर पर्वतेश्वर और विषकन्या का प्रणयालाप आधुनिक दृष्टि से रमणीयताधायक है।

रंगमंच के अनेक भाग हैं, जिनमे दूरस्थ घटनेवाली बातें दिखाई गई है। एक भाग मे पर्वतेश्वर और विषकन्या को परस्परानुरक्त कर दिया और दूसरे में वह क्षणभर बाद चाणक्य से मिलता है। इसी भाग मे चाणक्य से चन्द्रगुप्त मिलने के पहले अपनी एकोक्ति द्वारा बताता है—

वैमात्रेयो घातितो राज्यलोभान्नन्दैस्तातो मे यया सोदरैश्च।
नन्दास्तद्वद्घातितास्ते मया तद्राज्यप्रेप्सां बन्धुहन्त्रीं धिगेनाम् ॥

कथावस्तु की कला का मूलाधार है चाणक्यनीति—

विस्तीर्य युक्तिजालं प्रदर्श्य वस्तु प्रलोभ्यञ्च।
प्रत्यर्थिमत्स्यवर्गो धीवरवद् धीमता ग्राह्यः ॥

रंगमंच पर हाथी को लाया गया है। उस पर वैरोचक बैठता है।[1]

शैली

वकुलभूषण संस्कृत-काव्य के अनुत्तम श्लोकों की छाया लेकर उन्हीं छन्दों में श्लोक बनाकर अपने नाटक में पिरोने में निष्णात हैं। यथा भास के स्वप्न-वासवदत्त से—

खगा वृक्षे निद्राविरतिधुतपक्षामितरवा-
स्तरोश्छायामूलात्पथिक इव विश्रम्य सरति।
रविः प्राचीं किंचित् ककुभमवलोक्य स्फुटकरैः
प्रयाणे स्वां कान्तां परिमृशति सान्द्रैरिव पुमान्॥ ३-१०

वकुलभूषण के सरल शब्दों में अर्थगाम्भीर्य निर्भर है। यथा चाणक्य की कुटी का वर्णन है—

कुटिलसुषिरस्थाणुस्तम्भदिवाकरशोपितैः
पवनमुखरैः पत्रैश्छन्नच्छतित्रुटितातयम्।
पथिकगमनश्रान्तिच्छेदिप्रलिप्तवितर्दिकं
विलसति गृहं गोविट्पूत समित्कुशसम्भृतम्॥ ३-१४

एक ही पद्य में सांवादिक प्रश्नोत्तरी-माला का सन्निधान वैचित्र्यपूर्ण है। यथा नन्द और चाणक्य का प्रश्नोत्तर है—

कस्त्वं मूर्ख ? तपोधनोऽहम्। इह मत्पीठे निषण्णः कुतः ?
भोक्तुम्। स्थानमिदं न ते। यदि तथा कस्यैतत् ? अस्यैव मे।
पूज्योऽहं भवतोऽपि तद्वरमिदं पीठं ममैवोचितं
वाचाटोऽसि नवेत्सि माम्। अहमपि त्वां वेद्मि नन्दं प्रभुम्॥

अनेक स्थलों पर अपनी स्वाभाविक उत्प्रेक्षाओं द्वारा कवि ने दिखाया है कि प्रकृति भी भावी कार्यक्रम की योजना में सहयोगिनी है। यथा,

रक्तो विभाति चरमाद्रितटेऽर्कबिम्बः
कालद्विजेन पटुना हि समूह्यमानः।
पट्टाभिषेचनकृते तव शातकुम्भ-
कुम्भो महानिव जलाहरणाय सिन्धोः॥ ८-१२

डॉ० राघवन् ने इसकी विशेषताओं का आकलन करते हुए कहा है—

As conceived by him, his motifs and the use to which he puts them, his style and tempo and with these, presents the antecedents of the Mudrārākṣasa.

मंजुल-मंजीर

मंजुलमंजीर जग्गू वकुलभूषण की रामचरितात्मक नाटकीय रचना आठ अङ्कों

---

१. वैरोचको वशामधिरोहति।

में सम्पन्न हुई है।[1] कवि के पितृव्य जग्गू वेङ्कटाचार्य ने इसके उपोद्घात में इसका परिचय देते हुए कहा है—

मंजुलमंजीरेऽस्मिन्नामैवास्य व्यनक्ति वैचित्र्यम्।
साकल्येन कथास्ते नातिह्रस्वा न वा दीर्घा॥
कथा-सन्दर्भास्ते नवनवचमत्काररुचिराः
प्रक्लृप्ताः पद्यानि प्रकटितनिजार्थानि सुसुखम्।
अपूर्वैर्दृष्टान्तै रनुभवनिरूढैरुपगता—
न्ययो वाचः प्रायः प्रकृतिकथनान्मंजुलतराः॥
कविमाकर्षति प्रायो विवक्षा स्वपथे ततः।
कथा दीर्घत्वमायाति तत्र भाव्यं हि जाग्रता॥

वेङ्कटाचार्य के अनुसार पहले के प्रायशः राम-नाटकों में प्रस्तावना, प्रवेशक, विष्कम्भक आदि का अति विस्तार है, पद्यों की अधिकता है, वर्णनों की बहुलता है, वे काव्य-चम्पू आदि का अनुकरण करते है, युद्ध-वृत्तान्त गृध्र और गन्धर्वों के सलाप से प्रकट किया गया है। ये सब मजुलमजीर मे नही है। इसमे युद्ध का वृत्तान्त हनुमान् भरत से कहता है। इसमे शोध की प्रवृत्ति सम्वायमान की गई है, जब दण्डकारण्य-वास से लेकर लक्ष्मण-मूर्छा तक की कथा हनुमान् राम के सम्बन्धियो से कहते हैं।

वेङ्कट के अनुसार इसमे कवितायें अच्छी है। वालिवध को सकारण दिखाया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सस्कृत के विद्वान् नाटकों की रसपरक समीक्षा मे रुचि लेते थे।

प्रसन्नकाश्यप

प्रसन्नकाश्यप नामक तीन अङ्को के इस नाटक मे जग्गू वकुलभूषण ने अभिज्ञान शाकुन्तल के एक पद्य का आधार लेकर दुष्यन्त के साथ कण्व के आश्रम में आई हुई शकुन्तला का महर्षि से मिलने पर आनन्द वर्णन किया है।[2] पद्य है—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमही-सपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥

---

१. इसका प्रकाशन १६४६ ई० मे मैसूर से हुआ। इसकी प्रति सागर वि० वि० के पुस्तकालय मे लभ्य है।

२. इसका प्रकाशन १६५१ ई० मे कवि ने स्वयं किया था। इसकी प्रति सागर वि० वि० के पुस्तकालय मे लभ्य है।

सूत्रधार के शब्दों में—

सदारस्सकुमारश्च कण्वाश्रमदिदृक्षया ।
आयाति स्यन्दनेनासौ दुष्यन्तः कौतुकी वनम् ॥

कथावस्तु

राजा दुष्यन्त अपनी पत्नी शकुन्तला, और पुत्र भरत के साथ कण्व के आश्रम में आश्रमवासियों से मिलने के लिए जाते हैं। वन की शोभा देखते हुए वे रथ से चलते हैं। यथा,

तरुवरविटपेषु पक्षिणोऽमी कलमधुरस्वरदर्शितात्मतोषाः ।
भवनकनकपंजरेषु पुष्पात् ननु रुचिरा विचरन्ति पत्रिणोऽपि ॥

उन्हें मृगशावक के साथ खेलता अनसूया का पुत्र मिलता है। भरत उसका हरिणपोत बलात् लेना चाहता है। शकुन्तला उसे एक फल देती है तो वह उसे अपने हरिणपोत को बाँट कर खाना चाहता है। तब तक उसकी माँ अनसूया घड़े में जल लिए हुए तीर्थ से वहाँ आ जाती है।[1] वहीं प्रियंवदा भी आ जाती है। यही संगति दुष्यन्त को प्रणय के पूर्व भी मिली थी। पारस्परिक बातचीत में सूचना है कि अनसूया शार्ङ्गरव को व्याही गई।

द्वितीय अङ्क में गौतमी से शकुन्तला सखियों के साथ मिलती है। उसको शकुतला ने अपना वृत्त बताया कि कैसे मुझे मेनका हेमकूट पर ले गई और वहाँ मारीच ने पितृवत् मेरा पोषण किया। तब तक भरत शार्दूल-शावक लेकर आ पहुँचा। भरत ने बताया कि इसकी माँ से माँग कर इसे लाया हूँ।

शकुन्तला ने गौतमी को फलोपायन दिया। उसके साथ ही पीताम्बर से एक चित्रफलक गिरा, जो दुष्यन्त ने शकुन्तला के वियोग में अपने समाश्वासन के लिये बनाया था। उसमें शकुन्तला, उद्यान, नवमालिका-संगत सहकार, भ्रमर, सखियाँ— सारी पुरानी बातें थीं। उसे शकुन्तला ने भी नहीं देखा था। उसे विदूषक ने पीताम्बर में छिपा रखा था।

सखियों से बातचीत हुई कि कभी कोई पत्र क्यों नहीं लिखा? तृतीय अङ्क में शकुन्तला और दुष्यन्त कण्व से मिलते हैं। कण्व राजपद के भार और प्रजासेवा की चर्चा करके बतलाते हैं कि राजा भी ऋषिकल्प ही है। यथा,

भोगास्पदे स्थितो राज्ये चातुर्वर्ण्यावने रतः ।
नित्यं स्वसुखनिस्तर्षः साक्षाद् राजर्षिरेव हि ॥

कण्व ने भरपूर आशीर्वाद दिये। इसी समय मेनका भी आ गई। शकुन्तला उनका प्रतिरूप लग रही थी। उसने शकुन्तला के सौभाग्य पर बधाई दी। कण्व ने भरत को आशीर्वाद दिया—

बाल्ये एव शिशावस्मिन् राजते सत्त्वशालिता ।
भवानिव गुणोपेतो भूयादयमपि श्रिया ॥

---

१. 'वामकटिसमारोपिततीर्थकलशा' अनसूया का विशेषण है।

कथावस्तु सर्वथा कल्पित है। अभिज्ञान शकुन्तल के पाठकों के मन में जिज्ञासा रहती है कि इसके बाद क्या हुआ? इस प्रश्न का समाधान इस कृति में किया गया है। इस प्रकार इसे उत्तराभिज्ञान कह सकते हैं।

शिल्प

तीन अंक के इस रूपक को लेखक ने नाटक कहा है जो विशुद्ध दृष्टि से नाटक नहीं है। इसमें कार्यावस्थायें तो नाममात्र के लिए भी नहीं है और न फलागम प्रयत्नसाध्य है। संवाद की रमणीयता निराली है।

इस रूपक में मनोरंजन की सामग्री निर्भर है। इसका आरम्भ भरत के यह कहने से होता है कि विदूषक पत्थर मार कर बन्दर भगा रहा है और विदूषक को भरत को विस्मित करने के लिए उसे गमछे के छोर में बँधे मेढक के बच्चे दिखाना है। इसमें वन-विहार, मित्र और सखी से चिरकाल के बाद मिलन और ऋषि का आशीर्वाद ग्रहण आदि भावुकतापूर्ण प्रसंग हैं, जो अनुत्तम विधि से निष्पन्न हैं।

प्रसभकाश्यप पर अभिज्ञानशाकुन्तल की छाप तो स्पष्ट है, साथ ही उत्तर रामचरित के तृतीय अंक के अनुरूप इसमें समयानुसार वन की प्रकृति के परिवर्तन का वर्णन है।

अप्रतिमप्रतिम

दो अङ्क के इस लघु रूपक में धृतराष्ट्र के द्वारा अपने पुत्रों की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए भीम की लौहमूर्ति को विचूर्णित करने की कथा है।

कथावस्तु

महाभारतीय युद्ध की समाप्ति हो जाने पर कृष्ण को एक ही चिन्ता है कि धृतराष्ट्र कुछ अनर्थ न कर डाले। युधिष्ठिर अपने भाइयों-सहित धृतराष्ट्र का अभिवन्दन करने के लिए जाने वाले थे। भीम को धृतराष्ट्र के सान्निध्य से बचाना है। इसने ही तो दुष्ट कौरवों का निपातन किया है।

भीम से मिलने पर कृष्ण ने कहा कि आप मेरे रथ पर बैठकर द्वारका जायें और मेरी पारिजात माला ले आयें। भीम ने कहा कि आज तो धृतराष्ट्र के अभिवन्दन में जाना है। फिर आपका काम कैसे होगा? कृष्ण ने कहा—तब तक लौट आना। उस माला को धृतराष्ट्र के प्रीत्यर्थ अवश्य देना है। दारुक के रथ पर भीम चलते बने।

पश्चात् कृष्ण को अर्जुन की पड़ी। वह लज्जित था कि मैंने कर्ण को मारा। यथा,—

समये गुरुशापतोऽस्त्रलोपो द्विजरूपात् कवचच्युतिर्मघोनः।
जननीवचनात् सकृत् प्रयुक्तप्रथितास्त्रग्रहणं च तस्य जातम्॥ ८॥

कृष्ण ने कहा कि अधर्म से तादात्म्य करने वालों का मैंने भी इसी प्रकार वध किया है। अर्जुन ने कर्ण की वदान्यता की प्रशंसा की तो कृष्ण ने द्रौपदी-केशकर्षण का उल्लेख करके उसका मुंह बन्द कर दिया।

कृष्ण की शीघ्र ही भेंट चिन्ताकुल युधिष्ठिर से हुई। उनके साथ थे द्रौपदी, नकुल और सहदेव। युधिष्ठिर ने कृष्ण के द्वारा किये हुए अभिषेक के प्रस्ताव को सुन कर कहा——

वने वसतिरेव मे मुनिजनैः समं सात्त्विकैः
प्रमोदमतनोत् तथा शमदमादिसंवर्धनैः।
यथा च हृदि मे कदाप्यतुलविक्रमप्रक्रमो
मनागपि न विस्फुरेत् परुषवीरधर्मोऽधमः॥ १४॥

वे दुःखी थे कि कर्ण के साथ अन्याय हुआ। कृष्ण ने कहा कि अभिमन्यु के साथ उसका क्या व्यवहार था।

युधिष्ठिर अपने परिवार के साथ धृतराष्ट्र से मिलने के लिए निकले। उनका रथ धृतराष्ट्र के प्रासाद के पास पहुँच कर रुका। युधिष्ठिर ने देखा कि कभी का ऐश्वर्यशाली भवन आज सर्वथा उदास है। वे उस कक्ष में पहुंचे, जहां दुर्योधन भीम से लड़ने के लिए युद्धाभ्यास करता था। वहां भीम की एक प्रतिमा बनी थी—

गदामवष्टभ्य च वामपाणिना करं वलग्ने विनिवेश्यदक्षिणम्।
कटाक्षविक्षेपतृणीकृतद्विपद् वृकोदरो धीरतरोऽत्र तिष्ठति॥ १५॥

वह कृष्ण के द्वारा यन्त्र चालित होने पर गदा घुमाते हुए आक्रमण करने के लिए समुद्यत थी।

धृतराष्ट्र के गान्धारी के साथ आने पर कृष्ण ने उनसे कुशल पूछा। धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया—सर्वनाश करा कर अब जले पर नमक छिड़कने आये हो। इस नोक-झोंक के पश्चात् पहले युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। धृतराष्ट्र ने आशीर्वाद दिया—

निष्कण्टकं राज्यमिदानीमनुभुंक्ष्व।

फिर अर्जुन ने उन्हें प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने कहा कि तुम पर तो कृष्ण का सख्यभाव है। तुम्हें हमारे निग्रहानुग्रह की क्या अपेक्षा? फिर सहदेव और नकुल के प्रणाम करने पर धृतराष्ट्र ने उनका परामर्श किया। द्रौपदी की वन्दना सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—

इतः परमस्य सौधस्य त्वमेव लक्ष्मीः।

धृतराष्ट्र ने पूछा—और कोई? कृष्ण ने कहा—हां, खुरलीगृह में भीम है। उसे लाता हूँ। प्रतिमा-भीम के साथ कृष्ण थोड़ी देर में वहाँ उपस्थित हुए। धृतराष्ट्र ने उसका आलिंगन कस कर किया तो मूर्ति चूर्ण होकर गिर पड़ी। धृतराष्ट्र भी गिर कर मूर्छित हो गये। गान्धारी ने समझा कि भीम मारा गया। उसने धृतराष्ट्र को धिक्कारा—

अद्यापि कपटस्थानमार्यपुत्रहृदयम्।

वह भी मूर्छित हो गई। सचेत होने पर धृतराष्ट्र भी भीम के लिए विलाप

करने लगा। वासुदेव से उसने बताया कि अब कापटच-ज्वर विगलित हुआ। मैं प्रसन्न हूँ।

तब तक भीम आ गये। धृतराष्ट्र को कृष्ण ने चक्षु दी कि अपना पाप देख लो। भीम ने उन्हें प्रणाम किया और पारिजात-माला अर्पित करना चाहा। धृतराष्ट्र ने उसे कृष्ण के कन्धे पर अर्पित कर दिया। धृतराष्ट्र ने कृष्ण से क्षमा माँगी और बोले की मुझे अब प्रकाम शान्ति है।

शिल्प

अप्रतिमप्रतिम रूपक का आरम्भ कृष्ण की एकोक्ति से होता है, जिसमें विष्कम्भक की भाँति अर्थोपक्षेपण के साथ कृष्ण की हार्दिक चिन्ता विनिवेशित है।

प्रस्तुत रूपक में भीम की यन्त्रचालित प्रतिमा का प्रकरण छाया नाट्यानुसारी है।

प्रतिज्ञाशान्तनव

*दो अङ्कों के प्रतिज्ञा-शान्तनव में वकुलभूषण ने महाभारत से सुप्रसिद्ध भीष्म-*प्रतिज्ञा का कथानक लिया है।[1]

कथावस्तु

राजा शन्तनु मृगया करते हुए अस्वस्थ विदूषक के लिए जल हेतु उसे छोड़ कर दूर यमुना-तट पर जा पहुँचे। यमुना पर द्रोणी-चालन करती हुई उन्हें सुगन्ध प्रसारिणी सत्यवती दिखी। शन्तनु के मुख से निकला—

ईदृशी विजने सृष्टिरेतादृग्ललनामणेः।
सारसं सृजतः पङ्के युक्तरूपैव वेधसः॥ ८॥

उसी से राजा का मन बँध गया।[2] वे उसका स्वेच्छा-विहार देखने के लिए वृक्षान्तर्हित हो गये। कुछ देर में विहरणशील उनकी नौका भँवर में फँसी। नौका से कूद कर सत्यवती निकली तो पानी में डुबकने लगी। उसे राजा ने बचाया। उसका मन भी राजा में अँटका, पर वह प्रेम भरी दृष्टि से उसे देखती हुई सखियों की खोज में चलती बनी। राजा उसके पीछे-पीछे लगा और थोड़ी दूर पर सखियों से मिलने पर उनसे सत्यवती की बातें सुनने लगा। सखियों ने उसको प्रत्यग्र प्रणय-विषयक परिहास किया। सत्यवती ने स्पष्ट मत व्यक्त किया कि मेरा भाग्य कहाँ कि ऐसे महाराज को वररूप में प्राप्त करूँ। वे उन्हें ढूँढने चली तो वे पास ही मिले। राजा ने सखियों से उसके विवाह, कुल और जन्म का ज्ञान प्राप्त किया। घर का ठिकाना जान लिया। इस बीच राजा को ढूँढते हुए उसके अनुचर आये।

द्वितीय अङ्क में शन्तनु राजधानी में है। भीष्म उनका पुत्र अविवाहित रह

---

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-प्रतिभा में ५.१ में हुआ है।

२. दृष्टाधरं कुटिलितभ्रुविलोलचक्षुः लोलालककुलललाटमरालकण्ठम्।
ताटंकताडनततारुणिमोच्च गण्डं पश्यामि पुण्यवशतोऽद्य मुखाब्जमस्याः॥

कर इन्द्रियों की पाशवागुरा से विमुक्त रहना चाहता है। इधर उसका बाप सत्यवती के चक्कर में घुला जा रहा है। सचिव ने इस स्थिति का वर्णन किया है—

युवराज एष करपीडने पराङ्मुखतां गतोऽद्य नृपतिस्तु तत्पिता।
तरुणीकरग्रहणवांछयाकुलो विधिचेष्टितं हि विपरीतमद्भुतम्॥

भीष्म को आश्चर्य था कि शन्तनु अब भी विषयाभिलाषी है। उसी समय उसे शन्तनु का गाना सुनाई पड़ा—

अद्यापि मे नयनयोर्धुरि पर्यटन्ती स्निग्धातिमेचककटाक्षमिषेण शश्वत्।
जालं वितत्य वशवर्ति मनो मदीयमाकर्षतीव नितरां मदिरेक्षणा सा॥

कामी शन्तनु प्रेयसी सत्यवती से मिलने के लिए दुर्गन्धभरी धीवरों की वसति में चलता चला जा रहा है। थोड़ी देर में दाशाधिप आया। पहले एक मछली पकड़ने का उपक्रम वह साथियों को बताता है। उसे सत्यवती की स्थिति चिन्ताजनक बताई गई। लम्बी साँस ले रही है—यह सुन कर वह उसे बुलवाता है। शान्तनु यह सब सुन कर प्रसन्न हुआ कि प्रेयसी का रूप-सौन्दर्य पान करने को मिला। भीष्म ने उसे देखा तो उसे प्रतीत हुआ—

स्थाने खलु पितुः कामो दाशेशदुहितर्यपि॥ २.१५

सखी ने उसके शन्तनु द्वारा जल में डूबने से बचाये जाने की बात बताई। सत्यवती ने पूछने पर दाशाधिपको स्पष्ट बताया कि उस राजा में मेरा मन लग गया है। इस समय शन्तनु दाशाधिप के पास आकर प्रत्यक्ष हुआ। दाश पत्नी ने कहा कि सत्यवती का पुत्र आपका उत्तराधिकारी हो। शन्तनु ने कहा—ऐसा नहीं होगा। उसी समय भीष्म भी सामने आ गये और बोले कि ऐसा ही होगा। दाशपत्नी ने भीष्म से कहा कि आपका पुत्र यदि राज्य पर अधिकार बताये, तब भीष्म ने कहा कि मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा।

पित्रर्थं त्यक्तराज्योऽहं जितबाह्यान्तरेन्द्रियः।
भवेयं ब्रह्मचार्येव विचिकित्सैव मात्रभूत्॥ २.२१

भीष्म ने शन्तनु से कहा—

तस्यास्तावत् पाणिं गृह्णन्तु तातपादाः। तदेव मे प्रियम्।

शिल्प

द्वितीय अङ्क का आरम्भ भीष्म की एकोक्ति से होता है।

इस रूपक में राजा शन्तनु की अवस्था ४० वर्ष से कम नहीं है, जब उसका पुत्र भीष्म नवयुवक है। ऐसा अधेड़ प्रणयी बनकर सत्यवती का वर बने—यह विडम्बना हास्यास्पद प्रत्यक्षतः है, किन्तु संस्कृत के नाटककारों की ऐसे अधबुड़ राजाओं को नायक बनाकर किसी प्रेयसी के चक्कर में डालने की प्रवृत्ति रही है।

रंगमंच पर भीष्म और सचिव का संवाद चल रहा है। नेपथ्य में शन्तनु और विदूषक की बातचीत हो रही है, जिसे सुन कर प्रति-क्रियात्मक भाषण रंगपीठ के पात्रों का है। वे रंगपीठ पर आ जाते हैं। फिर तो रंगपीठ पर एक और

अन्तर्हित-गान भीष्म और सचिव है और दूसरी ओर शन्तनु और सचिव हैं, जो सत्यवती की खोज मे पथिक है और तीसरी और दाशाधिप और सत्यवती है।

नये तत्त्व है मछुओ की वसति और मछली पकडने की चर्चा। ऐसी बातें आधुनिक युग की विशेष देन कही जा सकती है।

मणिहरण

एकाङ्की मणिहरण की स्थापना मे इसकी कथावस्तु का सकेत इस प्रकार मिलता है—

दुर्योधनस्य भग्नोरोः प्रीणनार्थममर्षणः।
कृतप्रतिज्ञस्सम्प्राप्तो द्रौणिश्शत्रुजिघांसया॥

इसमे भास के ऊरुभंग की परवर्ती कथा महाभारत के अनुसार ग्रन्थित है।

कथावस्तु

दुर्योधन की जाँघ टूट जाने के पश्चात् उससे मिलने वालों मे अश्वत्थामा ने उसके समक्ष प्रतिज्ञा की कि तुम्हारे पुत्र को सार्थक राजा बनाऊँगा। वहाँ से चल कर वह अपने मामा कृपाचार्य से अपनी योजना तत्काल कार्यान्वित करने के लिए मिला, जो उसके इस अभिनिवेश के पक्ष मे नही थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जिसके लिए यह सब समारम्भ था, वह दुर्योधन अब नही रहा। राजा के मर जाने पर हम लोगों को क्या लेना-देना रहा? अश्वत्थामा मानने वाला नही था। उसने कहा कि गुरुघातक तो अभी है ही। उससे वैर का बदला लेना है। कृप ने कहा कि वे सभी शत्रु तो सोये है। किससे लडोगे? अश्वत्थामा ने कहा कि उन्हें सोये ही सोये पशुमार विधि से मार डालता हूँ। कृप ने कहा—यह उचित नही है। अश्वत्थामा ने कहा कि जो भी हो आप पाण्डवशिविर के द्वार पर तलवार लेकर समुद्यत रहें। कृप अन्त मे उसके पीछे हो लिया और वे दोनो पाण्डवो के शिविर मे रात्रि के समय उनको सोये ही सोये मार डालने के लिए पहुँचे। *अश्वत्थामा के शब्दों मे—*

आर्य, तन्नरमेधाय प्रविशामस्तावच्छिविरयज्ञवाटम्।

सबेरा होने वाला था। शिविर मे युधिष्ठिर के साथ नकुल, सहदेव और द्रौपदी थे। अपनी विजय पर युधिष्ठिर का विस्मयपूर्ण उपलब्धि का भाव था। उस समय धृष्टद्युम्न[1] के कचुकी ने आकर उन्हे सवाद दिया कि द्रौपदी के भाई, पुत्र आदि मारे गये। द्रौपदी इसे सुनकर मूर्छित हो गई। उसने विलाप किया।

सोये हुए सब लोगों को मारा—यह कचुकी से सुनकर द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की कि जब तक उसका कटा सिर न देखूँगी, तब तक भोजन न करूँगी।

---

१. द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा के पिता द्रोणाचार्य का वध किया था।

भीम बाहर से आये तो इस विषाद का कारण कंचुकी ने उनसे बताया—

गाढनिद्रासमासक्तं धृष्टद्युम्नं प्रबोध्य सः।
अहन् द्रौणिर्विशस्यैव भवतां तनयांस्तथा ॥ ६ ॥

सुभद्रा ने कहा—कृष्ण के होते हुए यह अनर्थ कैसे? द्रौपदी ने सुभद्रा से कहा—गृहाण कशाम्। सज्जीकुरु रथम्। पौरुषाभिमानिनस्त्वेते पश्यन्त्व-बलां पाञ्चालीम्।

यह कह कर उसने कोश से तलवार खींच ली। उसने भीम के आश्वाशन देने पर कहा कि जब तक उसका कटा सिर नहीं देख लेती, तब तक अनशन करूँगी। नकुल और भीम रथ पर द्रौपदी की प्रतिज्ञानुसार चल पड़े।

कृष्ण और अर्जुन आ पहुँचे। अपनी कृतकृत्यता से दोनों सन्तुष्ट हैं। कृष्ण ने कहा कि अभी अश्वत्थामा तो बचा रहा। अर्जुन ने कहा कि जीता रहे गुरुपुत्र। तब तक कृष्ण रंगपीठ पर वर्त्तमान द्रौपदी आदि को देखकर सन्न रह गये। कंचुकी ने उन्हें बताया कि क्या हो चुका है।

चेटी ने आकर बताया कि उत्तरा के गर्भ में घोर सन्ताप उत्पन्न हो गया है। कृष्ण ने कहा कि यह भी अश्वत्थामा के अस्त्र का प्रभाव है। उन्होंने ब्रह्मशिरा शस्त्र से उसका शमन किया।

इसके पश्चात् भीम अश्वत्थामा को रथ पर पकड़ कर ले आये। युधिष्ठिर ने कहा कि इसे छोड़ दो। उसको सब ने लज्जित किया कि तुम ब्राह्मण बनते हो और भ्रूण हत्या करते हो। उसकी अभिमान भरी बातें सुनकर द्रौपदी ने कहा कि मेरी प्रतिज्ञा का क्या हुआ? तब कृष्ण ने द्रौपदी के हाथ से तलवार ली और मुट्ठी में अश्वत्थामा की शिखा पकड़ी। तभी व्यास ने आकर उन्हें रोका। उन्होंने अश्वत्थामा को धिक्कारा कि तुम्हारे जैसा काम कीड़ा भी नहीं करेगा। व्यास की बातें सुनकर अश्वत्थामा को निश्चय हुआ कि मैं कुपथ-गामी हूँ। उसे अनुताप हुआ। उसने अर्जुन के सामने सिर झुका दिया कि इसे काटें। व्यास ने उसे चिरंजीव होने का आशीर्वाद दिया था। उन्होंने कहा कि सिर काटने के स्थान पर उसके समकक्ष है उसके सहजात मस्तकान्तर्मणिहरण। अर्जुन ने उसके शिर को चीर कर उसमें से रत्न निकाल लिया। उसे द्रौपदी ने युधिष्ठिर की मुकुटमणि बना दी।

सुदर्शन ने आकर समाचार दिया कि उत्तरा को पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह सुनकर अश्वत्थामा को परितोष हुआ कि अपवाद से बचा।

शिल्प

मणिहरण नामक एकाङ्की में आरम्भ में तीन पृष्ठों का शुद्ध विष्कम्भक है।[1]

मणिहरण में और अन्य रूपकों में भी कहीं-कहीं विलाप मिलता है, जिसे

१. नियमानुसार विष्कम्भक छोटे रूपकों में नहीं होना चाहिए। केवल नाटक, प्रकरण, नाटिका आदि में ही विष्कम्भक रहता है।

संवाद नहीं कहा जा सकता। कोई दुर्दान्त संवाद मिलने पर श्रोता सब कुछ छोड़ कर जब अपने आपको सम्बोधित करके रोने लगता है तो यह विलाप कोटि की एकोक्ति होती है। इसमें कंचुकी के द्वारा द्रौपदी को बताया जाता है कि आपके भाई और पुत्र मारे गये तो—

द्रौपदी—(उत्थाय, आत्मानमेवोद्दिश्य), **द्रौपदि, ननु द्रौपद्यसि, चिरं जीव। सन्तापानुभवायैव खलु पावकप्रभवासि।**

इत्यादि प्रतिक्रियात्मक एकोक्ति है। यह स्वगत नहीं है, क्योंकि वह रंगमंच पर वर्तमान कंचुकी या युधिष्ठिर आदि से अपने मनोभाव को छिपाती नहीं। उसने अपने विलाप में कोई प्रश्न नहीं उठाया है, जिसका उसे किसी से कोई उत्तर चाहिए। यह संवाद नहीं है। केवल प्रतिक्रियात्मक एकोक्ति है। इसके विषय में रंगपीठ पर कोई अन्य चर्चा भी नहीं करता।

द्रौपदी का तलवार खींच कर युद्ध के लिए उद्यत होने का दृश्य प्रकाम मनोरंजक है।[1]

इस एकाङ्की में कार्य (*action*) की प्रचुरता सविशेष होने के कारण इसकी रमणीयता असन्दिग्ध है।

अश्वत्थामा के चरित्र का विकास दिखाना कला की दृष्टि से अनुत्तम उपलब्धि है। वह कृष्ण के कथानुसार हिमालय पर प्रायश्चित्त रूप में तप करने चल देता है।

यौवराज्य

एकाङ्की यौवराज्य में भरत के युवराज बनने की कथा है।[2]

कथावस्तु

रंगपीठ पर हंस मिथुन है। हंसी का चुम्बन करके ऊर्मिला पास आये हुए हंस को सम्बोधित करके कहती है कि तुम वधू को छोड़कर फिर कमल-वन मत चले जाना। रंगपीठ पर आये हुए हंस के पास तब तक हंस चला जाता है। हंसी उसके लिए व्याकुल हो जाती है। ऊर्मिला हंसी से पूछती है कि क्या तुम भी मेरी तरह हो ? वह चेटी से मराल-दम्पती को कनक-दीर्घिका में छुड़वाकर लक्ष्मण के साथ अष्टापद (शतरंज) खेलने लगती है। इस बीच कंचुकी सन्देश लाता है कि आपको राम बुला रहे हैं। लक्ष्मण चल देते हैं।

रंगपीठ पर राम और सीता हैं। नेपथ्यद्वार पर लक्ष्मण है। उनकी बातचीत होती है कि राज्यभार भारी पड़ता है। उसी समय राम की मातायें आती हैं तो सीता कुछ हट जाती हैं। राम ने माता कौसल्या से कहा कि अकेले मुझ से राजकाज कैसे चले ? कौसल्या ने कहा कि भरत को युवराज बना लें। कैकेयी ने कहा कि वन में लक्ष्मण साथ रहे। उन्हें ही युवराज बनायें। सीता ने

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-प्रतिभा १०.२ में हो चुका है।
२. इसका प्रकाशन संस्कृत-प्रतिभा १. १ में हो चुका है।

इसका समर्थन किया। सुमित्रा ने कहा कि भरत ने राज्य छोड़ा। उन्हें ही युवराज बनाना चाहिए। नेपथ्य-द्वार पर खड़े लक्ष्मण ने माता की बात पर साधुवाद दिया।

राम ने लक्ष्मण के विलम्ब करने पर उनका स्मरण किया। तब तक वे सामने आ गये। राम ने उनके सामने यौवराज्य का प्रस्ताव रखा—

दयितया सहितो विपिने त्वया विहितसर्वविधाद्भुतसेवनः।
गुरुजनानुमतोऽयमिहापि ते किमपि सम्प्रति साह्यमपेक्षते॥

लक्ष्मण ने कहा—क्या सहायता चाहिए? राम ने कहा—

अभिषेक्तुमिच्छामि।

लक्ष्मण ने कहा—मुझ किंकर का अभिषेक? अभिषेक ही होना है तो कैङ्कर्य-साम्राज्य-पद पर हो। राम ने कहा युवराज-पद पर अभिषेक होना है। लक्ष्मण ने कहा कि उसका तो कभी ध्यान भी न रहा। मुझसे यह भारी काम कैसे होगा?

न खलु प्रगल्भते शैलमुद्धर्तुं कीटः।

राम ने कहा—मुझे अकेले ही यह सब शासन-भार ढोना पड़ रहा है। लक्ष्मण ने कहा कि इसके लिए भरत का चयन करें।

राम के बुलाने पर शत्रुघ्न-सहित भरत आये। राम ने उनसे कहा—मेरे सहायक बनो। कौसल्या ने स्पष्टीकरण किया कि तुम्हें युवराज बनना है। भरत ने कहा कि लक्ष्मण इसके लिए उपयुक्त हैं। राम ने कहा कि उन्होंने अस्वीकार कर दिया है। क्या तुम भी मेरी प्रार्थना ठुकरा दोगे? भरत ने उत्तर दिया—

वसनमपरनिघ्नं कांक्षते किं स्वमर्थं स्वचरणपरिमृष्टिं शीर्षसंवेष्टनं वा।
प्रभवति हि विधातुं तस्य नेता यथेच्छं प्रभुरिममुपयुक्तां स्वानुकूल्यानुरूपम्॥

राम ने उनका आलिंगन किया। बात बन गई।

वसिष्ठ इस बीच आ गये और उन्होंने यह सब भरताभिषेक की बात न जानते हुए कहा कि लक्ष्मण युवराज पद पर अभिषिक्त हों। लक्ष्मण ने कहा—

दास्याधिकारयोर्मैत्री तेजस्तिमिरयोरिव।
तत्किंकरेण सन्त्याज्या यत्नेनाप्यविकारिता॥ २१

वसिष्ठ ने अभिषेक कराया—

छायानुकारी रामस्य नित्यं मंगलमाप्नुहि।
रामसंकल्पकल्पस्त्वं कैङ्कर्ये भव लक्ष्मण॥ २२

शिल्प

यौवराज्य में रूपक-विधान का कुछ नया रूप दिखाई देता है। पुराने रूपकों में कहीं कुछ ऐसा दिखाई देता है जैसा इसके आरम्भ में हंस और हंसी का मूक अभिनय दिखाया गया है। इनके अभिनय में छायातत्त्व है।

संवाद की चटुलता मनोहारिणी है। छोटे-छोटे वाक्यों का विन्यास है। कोई

पात्र एक साथ एक-दो वाक्य से अधिक नहीं बोलता। वकुलभूषण की यह विशेषता अनुपम है।

बलि-विजय नाटक

जग्गू के इस रूपक की स्थापना में सूत्रधार ने बताया है कि कवि ने अनेक नाटक पहले ही लिखे हैं।[1]

कथावस्तु

बलि ने युद्ध में त्रिलोक की सम्पदा जीत ली। उन्हें समाश्वस्त करने के लिए वामन वन में आया। इन्द्र का ऐश्वर्य विलुप्त हो चुका था। उसकी तापस-स्वरूप है—

जटी चीरव्रतक्षाम-प्रतीको ध्यान-मन्थरः।
प्रसूनाहरण-व्यग्रो जिष्णुरभ्येति तापसः॥

वामन ने इन्द्र से बातें कीं। वामन को पुरुष-परीक्षा में निष्णात समझ कर इन्द्र ने उसे अपना हाथ दिखाया। वामन ने कहा कि तुम्हारे हाथ से तो ऐसा लगता है कि तुम इन्द्र हो। इन्द्र ने कहा कि यह तो ठीक है। बताइये, फिर राजा कब होना है? वामन ने कहा कि शीघ्र ही। इन्द्र ने पूछा कि यह कैसे? वामन ने कहा कि आधा राज्य मुझे दो तो काम शीघ्र बनाऊँ। इस बीच बृहस्पति आ गये और वामन को पहचान कर पूछा—

अहा वामनशरीरस्तः प्रभो किं करिष्यसि निवेदयाञ्जसा॥

वामन ने शिष्टाचार की बातों के अनन्तर बृहस्पति से कहा कि इन्द्र से मैंने प्रस्ताव किया है कि काम बनाने के लिए आधा राज्य तुम मुझे दे दो तो वह आनाकानी कर रहा है। बृहस्पति ने कहा कि यह आपको राज्य देने वाला कौन है? आप ही का दिया राज्य तो यह भोग रहा था। धार्मिक बलि को कैसे दण्ड दिया जाय? यह वामन की समस्या थी। बृहस्पति ने कहा कि छल से बिना काम नहीं बन सकता। वामन को यह उपाय ठीक लगा और वे बलि की यज्ञ-भूमि की ओर चल पड़े।

द्वितीय अंक में सभ्यों के साथ सिंहासन पर बलि बैठा है। शुक्र किसी काम से कुछ विलम्ब से आने वाले थे। बलि ने इकट्ठा हुए लोगों से कहा कि आप लोग अपनी अभीष्ट वस्तुयें मांगें। किसी दानव वृद्ध ने कहा कि यह मायावी इन्द्र-पक्षी हो सकता है। किसी अमात्य ने कहा कि यह विपत्तिकारक हो सकता है। बलि ने स्पष्ट कहा कि वामन जैसा भी हो, मुझे तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी है। वामन ने याचना की—

---

१. जग्गू वकुलभूषण ने अपने पत्र दिनाङ्क १०.४.७७ में लेखक को सूचित किया है कि मैंने अद्यावधि २१ रूपकों की रचना की है। बलि-विजय का प्रकाशन लेखक ने स्वयं किया है। इसकी प्रतियाँ **IV cross Road, Malleswaram, Banglore, 3** से प्राप्य है।

न मे राज्ये कोशे गजरथपदात्यश्वकलिते
बले कांक्षा किन्तु प्रतिदिनमनल्पव्रतजुषे।
विविक्तं मत्पादत्रितयपरिमेयं क्षितितलं
प्रदेह्येतन्मह्यं दितितनुज ते यद्यभिमतम्॥ २.१६

जलधारा के साथ तीन पाद भूमि का दान होना था। इस बीच शुक्र आ पहुँचे। उन्होंने जलधारा पर रोक लगाई।

हरिणाजिनोत्तरीयो माणवकोऽयं तु वामनाकारः।
तालातपत्रसुभगो भगवान् भवतः प्रलोभने निरतः॥

तब तो बलि ने हाथ जोड़ दिये। शुक्र के रोकने पर भी बलि माना नहीं। यदि यह छले भी तो हम कृतार्थ हैं। इसे तो देना ही है। भृङ्गार से जल गिराया जाने वाला था कि शुक्र उसके छेद में सूक्ष्म बन कर प्रविष्ट हो बैठे। वामन ने कुश से नासिकच्छेद किया तो शुक्र एकाक्ष होकर रोते निकले कि मैंने किये का फल पा लिया। बलि ने दानधारा का प्रवाह होने पर दान दिया। शुक्र ने गाया—

एकेन चक्षुषाहं काणोऽप्यधुना भवामि किल धन्यः।
यत्पश्यामि महान्तं त्रिविक्रमं त्वां क्रमात्त-भुवनान्नम्॥ २.२४

त्रिविक्रम (वामन) ने दो पाद से बलि के जीते प्रदेश को माप लिया। तीसरे पाद के लिए बलिमस्तक स्थान मिला। बलि ने कहा—

दिवि भुवि पाताले वा ममास्तु वासो मुकुन्द तव कृपया।
दिव्यं दर्शय रूपं सततं पश्यन् कृतार्थतां यामि॥

लक्ष्मी ने इन्द्र के गले में मन्दारमाला पहना दी।

शिल्प

प्रथम अंक के मध्य में पराजित इन्द्र की एकोक्ति है, अब उसी रंगपीठ पर थोड़ी दूर पर वामन छिप कर उसकी बातें सुन रहा है। इन्द्र कहता है—

नष्टराज्याधिकारस्य प्रजागरकृशस्य च।
जीवितान्मरणं श्रेयो धिङ् मां जीवन्तमद्य हा॥

इसके पश्चात् एकोक्ति को छिपकर अकेले सुनने वाले वामन की प्रतिक्रियोक्ति है।[1] यथा,

स्वर्गे पर्यटति स्म तस्य विपिने ह्येकाकिनो हा गतिः॥ १.८

बलिविजय में छायातत्त्व प्रकाम है। वामन विष्णु है। वह अपने विषय में कहता है—

समुत्पाद्य मायया मयि वटुत्वसाधारणज्ञानमस्यावगच्छामि तावदाशयम्।

इन्द्र का तापस रूप धारण करना भी छायात्मक है।

---

१. लेखक भ्रान्तिवशात् इसे स्वगत कहता है। एकोक्ति और प्रतिक्रियोक्ति को स्वगत से पृथक् समझना चाहिए। इन्द्र की एकोक्ति और प्रतिक्रियोक्ति आकाश-भाषित से संवलित है।

द्वितीय अंक के भीतर विष्कम्भक है।[1] नियमानुसार ऐसे दो अंक के रूपक में विष्कम्भक नहीं होना चाहिए।

हास्य की सामग्री सौष्ठव पूर्ण है। इन्द्र से आधा राज्य की वामन की मांग करना हास्य-जनक है।

अमूल्य-माल्य

जग्गू के आरम्भिक नाटकों में से अमूल्यमाल्य भी है, यद्यपि इसकी रचना के पहले भी वे अनेक रूपकों का प्रणयन कर चुके थे।[2] इसके अनुसार एक कृष्ण-भक्त मालिक कृष्ण को माला पहनाता है, जब वे कंस के धनुर्यज्ञ को देखने के लिए मथुरा गये थे। इसमें कृष्ण के बालपन की मधुर झांकी है।

कथावस्तु

दधिभाण्ड नामक गोपवृद्ध बालकृष्ण का भगवत्स्वरूप पहचान गया है। वह उन्हीं के ध्यान में निमग्न है। कृष्ण उसे हिलाडुला कर पूछते हैं कि क्यों रोते हो? उसने कहा कि तुम्हारे माया-जाल से मैं बँधा हूँ। कृष्ण ने कहा कि अभी तो मुझे बचाइये। मैं चोरी में पकड़ा गया हूँ। वनमाला नामक गोपी नवनीत चुराने के अपराध में मुझे ढूंढ रही है। दधिभाण्ड ने उन्हें बैठाकर बड़े कड़ाह से ढक दिया। वनमाला को झूठ बोलकर दधिभाण्ड ने लौटा दिया और स्वयं कड़ाह के ऊपर बैठ लिया। कृष्ण ने कहा कि मुझे निकालो। दधिभाण्ड ने कहा कि पहले मुझे मुक्त करो। कृष्ण से कहलवा लिया कि मुक्तोऽसि। तब कड़ाह को उठाया। उसकी प्रार्थना के अनुसार कृष्ण ने उसे अपना चतुर्भुज रूप दिखाया।

कृष्ण ने जामुन बेचने के लिए आई हुई स्त्री को किसी लड़की का स्वर्ण-वलय उसे देकर उसके हाथ में फल भरवा दिये। लड़की घर पहुँची तो उसने कृष्ण का काम बताया कि वलय फल वाले को दे दिया। कृष्ण ने झूठ कहा कि इसी ने वलय दिये। उसकी माता ने कृष्ण को पकड़ा और यशोदा के पास ले गई। यशोदा के सामने जाँच हुई तो सभी फल सोने के हो गये थे।

कृष्ण ने अपना मुँह खोल कर दिखाया तो उसमें दधिभाण्ड नामक वृद्ध दिखा। खबर उड़ी कि कृष्ण ने दधिभाण्ड को मार डाला। वनमाला ने आकर बताया कि कृष्ण मेरे घर से मारा मक्खन चुराकर उसी के घर में घुसा था। जाँच हुई तो वनमाला के घर पहले से दूना मक्खन मिला। दधिभाण्ड भी वहीं टहलते हुए आ गया।

कृष्ण वेणु बजाते भाग कर घर पहुँचे तो वहाँ कोई बुड्ढा आया और बोला कि कृष्ण की मुरली-ध्वनि सुनकर मेरी लड़की उसके पीछे भाग गई। अनेक व्यक्तियों ने उनपर दोष लगाया कि गोकुल की स्त्रियों को इसने कुलटा बना दिया

---

१. विष्कम्भक को अंक के भागरूप में दिखाना त्रुटिपूर्ण है।

२. इसका प्रकाशन बलिविजय के साथ लेखक ने स्वयं १९४९ ई० में किया था।

है। तब तक एक गोपी ध्यान लगाती हुई कृष्ण में विलीन हो गई। कृष्ण ने चतुर्भुज रूप धारण किया।

बलराम ने आकर समाचार दिया कि मथुरा से कंस के भेजे अक्रूर ने धनुर्यज्ञ देखने के लिए हमें अपने रथ पर बुलाया है।

द्वितीय अङ्क में कृष्ण रथ पर हैं, गोपियाँ उसे घेर कर खड़ी हैं। वे कहती हैं, मत जाओ। राधा के लिए कृष्ण का जाना असह्य था। उसने चक्रार पर चढ़कर कृष्ण की मुरली ले ली। कृष्ण ने रथ आदि बढ़ाने को कहा तो राधा ने घोड़े की रास पकड़ ली। रथ चला तो राधा आगे गिर कर मूर्च्छित हो गई। कृष्ण ने उसे अपने स्पर्श से सचेत किया। राधा ने कृष्ण पर पुष्पाञ्जलि की वर्षा की।

कृष्ण और बलराम मथुरा पहुँचते हैं। वहाँ रथ छोड़ कर पैदल नगर में प्रवेश करते हैं। मार्ग में धोबी को मार कर उससे कपड़े लिए और प्रेम से कुब्जा का प्रसाधन ग्रहण किया। परिणामतः कृष्ण ने उसे सुन्दरी बनाया—

कृष्ण और बलराम को आगे उनका भक्त मालाकार मिला। दोनों रूप बदलकर उससे माला लेने गये। उसने स्पष्ट कहा कि किसी मूल्य पर कोई माला नहीं दूँगा, क्योंकि ये भगवान् के लिए हैं। कंस का दूत बनकर कृष्ण आये तो उनसे इस प्रकार का संवाद हुआ—

दूतः—**मुधा जहासि जीविकाम्।**

मालाकारः—**तृणीकृतजीवितस्य मे किं तया।**

दूतः—**इमानि तावत् कस्मै।**

मालाकारः—**भगवते वासुदेवाय।**

दूतः—**हन्त वध्याय सत्कारः।**

थोड़ी देर में मालाकार के पुत्र ने बताया कि कृष्ण और बलराम तो नहीं आये। तब तक उसकी भार्या ने कहा कि घर में पुष्पासन पर वासुदेव और बलदेव बैठे हैं। मालाकार ने उन्हें अमूल्य माल्य अर्पित किया। कृष्ण ने वर दिया—तुम्हारे वंश के सभी मुक्त हुए।

शिल्प

भास के नाटकों के समान लघु स्थापना द्वारा सूत्रधार इनके अभिनय का प्रारम्भ करता है।

प्रथम अङ्क का आरम्भ दधिमाण्ड नामक वृद्ध गोप की लघु एकोक्ति से होता है। वह कृष्ण के विषय में आत्म-प्रपत्ति निवेदित करता है कि मैं उन्हें पहचान गया हूँ। आरम्भ में ही विरल देहाती दृश्य गोकुल-सम्बन्धी हैं।

बालकृष्ण की चरितावली का निदर्शन करते हुए समीचीन संविधानों के द्वारा प्रचुर हास्य उत्पन्न करने में जग्गू को सफलता मिली है।[1]

---

१. कृष्ण ने मालाकार से मिलने के पहले बलराम से कहा—'अस्मद्भक्ताग्रेसरोऽयम्। आर्य, विनोदेन कञ्चित् कालमतिवाहयामः।' विनोद के मिस बलराम धनी वृद्ध बनकर और कृष्ण कंसके दूत बन कर मालाक्रय करने चले।

द्वितीय अङ्क में गोकुल और मथुरा दोनों का दृश्य है। ये दोनों स्थान १० मील से अधिक दूरी पर हैं। एक ही अंक में इतनी दूरी के स्थान नियमानुसार नहीं होने चाहिए। कृष्ण रथ से यह दूरी तय करते हैं।

द्वितीय अङ्क में कवि ने रजक और मालिक से कृष्ण को अज्ञात रखकर उनसे कृष्ण की जयगाथा गवाई है।

इस रूपक में संवादों की प्रत्येकशः लघुता और उनका चटपटी भाषा में प्रयुक्त होना विशेष कलापूर्ण है। बहुसंख्यक संवाद-वाक्य तो तीन-चार पदों तक ही सीमित हैं। यथा,

दामोदर—स्यामाम। पश्यामः। गच्छतु भवती।

छायातत्त्व प्रचुर मात्रा में जग्गू ने समाविष्ट किया है। भगवान् होकर भी बालकृष्ण बनना, मालाकार के सामने बलराम का वृद्ध धनी बनकर और कृष्ण का कंस का दूत बन कर उसमे छल-भरी बातें करना आदि छायातत्त्व के उदाहरण है।

रूपक के अन्त मे मालाकार का नृत्य लोकरंजन के लिए है।

अनङ्गदा-प्रहसन

जग्गू बकुल भूषण ने १९४८ ई० में अनङ्गदा-प्रहसन की रचना की।[1] उस समय वे *संस्कृत-पाठशाला यादवगिरि में अध्यापक थे। प्रहसन का आरम्भ* अनंगदा नामक वेश्या के तात धूर्त की एकोक्ति से होता है। उसपर किसी धनिक के दो सहोदर पुत्रों की दृष्टि पड़ चुकी है। अनंगदा की प्रशंसा करता है कि अपना अंग दिये बिना ही अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से अभीष्ट सिद्ध कर लेती है। धूर्त ने उन दोनों युवकों का सर्वस्व अनंगदा की सहायता से ले लिया था। उनको अब भगाना था। छोटे भाई से सब कुछ लेकर धूर्त ने कहा कि वह एकावली भी दो। एकावली लाने वह चलता बना। तब तक दूसरा आया। उसने धूर्त को सुवर्णाङ्गुलीयक दिया। धूर्त ने स्वयं तो अंगूठी पहन ली और उससे कहा कि सुवर्ण-मालिका लाइये तो कामिनी अनंगदा आपकी हो जाय। बड़े भाई ने कहा कि उसे तो पिताजी पहने हुए हैं। आज उसे लाने का अवसर नहीं है। धूर्त ने कहा कि उसके बिना काम नहीं चलेगा। बड़ा भाई, जैसे भी हो, उसे लाने के लिए चल पड़ा।

छोटे भाई ने चोरी करके एकावली धूर्त को दी और कहा कि अब तो अनङ्गदा मेरी हुई। धूर्त ने चिट्ठी लिखी और कहा कि इसे लेकर भीतर अनंगदा से मिलो। अनंगदा ने उससे मिलने पर अपनी अंगूठी के समान दूसरी अंगूठी की इच्छा प्रकट की। छोटे भाई ने तत्काल वैसी दूसरी अंगूठी उसे दे दी। अनंगदा ने कहा कि आपके पीताम्बर जैसा वस्त्र तात के लिए चाहिए। कहीं मिल नहीं रहा है। छोटे

१. इसका प्रकाशन जयपुर की भारती पत्रिका ९.१ में हो चुका है। पत्रिका के इस अंक की उपलब्धि गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय में हुई।

भाई ने वह भी उसे दे दिया। तब तक दूसरा भाई भी पत्रिका लेकर पहुँचा। अनंगदा ने छोटे भाई को घर में छिपा दिया। उसके पहले तिरोहित करने के लिए काली स्याही से उसका मुँह काला करवाया और कहा कि मैं भी पुरुष-वेष में स्याही के प्रयोग से छिपने के लिए शीघ्र ही आपके पास आती हूँ। तब अनंगदा ने बड़े भाई से घड़ी और शेष सर्वविध धन ले दिया। फिर अनंगदा ने कहा कि तिरोहित होने के लिए उसका भी मुँह काला करवाया और कहा कि मैं भी थोड़ी देर में मुँह काला करके पुरुष-वेष में आती हूँ। भीतर चलें।

भीतर जाकर उसने अपने ही छोटे भाई को अनंगदा समझ कर आलिंगन किया। छोटे भाई ने भी बड़े भाई को अनंगदा समझा। उसने भी बड़े भाई को अनंगदा कह कर सम्बोधित किया। दोनों ने एक दूसरे को प्रिये कह कर सम्बोधित किया। दोनों में कलह होने लगा कि कौन प्रिय है और कौन प्रिया है। दोनों ने स्याही धोकर अपने को प्रिय-विशेषणोपयुक्त सिद्ध करने का उपक्रम किया तो उन्हें प्रतीत हुआ—

वंचितोऽस्मि वराक्या वाराङ्गनया।
प्रमदासु प्रमादो न यूना कार्यः कदाचन।
दिगम्बरत्वं सिद्धं हि तथा यथावयोरिव॥

संविधान की दृष्टि से वकुलभूषण की प्रहसन की प्रवृत्ति नई दिशा में है।



रमानाथ मिश्र का नाट्यसाहित्य

रमानाथ मिश्र की प्रतिभा का विलास उत्कल की विद्वन्मण्डित नगरी बालेश्वर (*बालासोर*) *से उद्भूत हुआ। इस नगरी के समीप मणिखम्भ नामक गाँव में* १६०४ ई० में उनका जन्म हुआ। उनके पिता प० यदुनाथ मिश्र संस्कृत के विद्वान् थे। रमानाथ ने बालेश्वर के श्रीरामचन्द्र-संस्कृत-विद्यालय में संस्कृत की सर्वोच्च शिक्षा पाई और वहीं आजीवन अध्यापक रहे हैं। उन्होंने साहित्य-शास्त्री, आयुर्वेदशास्त्री और कर्मकाण्डाचार्य आदि उपाधियाँ प्राप्त कीं। उनका अंग्रेजी का ज्ञान उच्चकोटिक होने पर भी वे विदेशी रंग में नहीं रंगे। उनके एक पत्र से उनकी भारतीयता सुविदित है—

A returu to *Sanskrit* and *Sanskrit alone* can *reintegrate our* ancient tradition and values which can shield us from onslaughts of the occident.

रमानाथ ने अनेक रूपक लिखे, जिनमें से नीचे लिखे सुप्रसिद्ध हैं—चाणक्य-विजय, पुरातन बालेश्वर, समाधान, प्रायश्चित्त, आत्मविक्रय, कर्मफल तथा श्रीरामविजय।[1]

चाणक्य-विजय

चाणक्य-विजय कवि की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसका अभिनय आल-इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेन्स के बीसवें अधिवेशन के अवसर पर भुवनेश्वर में १६५६ ई० के *अक्टूबर मास में हुआ था। इसमें पाँच अङ्क हैं, जो दृश्यों में विभाजित हैं।* इसकी रचना १६३८ ई० में हुई थी।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में चाणक्य की उपलब्धियों को लेकर अनेक रूपकों का प्रणयन हुआ है। इन सबमें विशाखदत्त के मुद्राराक्षस की नाट्य कथा को यद्यपि आधार बनाया गया है, किन्तु अन्य ग्रन्थों की उपजीव्य बना कर अथवा प्रतिभा-विलास के चमत्कार से कथावस्तु को अंशतः नित्य नये-नये रूप दिये गये। रमानाथ ने भी इस दिशा में प्रशंसनीय योगदान दिया है। राघवन् के शब्दों में—

(It) departs from Viśākhadatta's Mudrārākṣasa considerably.

इसमें नन्द का वध, चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक और राक्षस की चन्द्रगुप्त के मन्त्रित्व की स्वीकृति प्रधान प्रकरण हैं।

---

१. इसका प्रकाशन बालेश्वर-मण्डल-संस्कृतनाट्यसंघ, बालेश्वर से १६५४ ई० में हुआ है। सम्भवतः समाधान, प्रायश्चित्त और आत्मविक्रय नामक नाटक १६६१ ई० में छप गये। कर्मफल और पुरातन-बालेश्वर तब तक नहीं छपे थे। *संस्कृतरंग भाग २ पृष्ठ २५*

चाणक्य-विजय के अनुसार नन्द अतिशय कामासक्त था। ऐसी स्थिति में चाणक्य की सूझबूझ से काम लेकर चन्द्रगुप्त उसका विनाश करने में तत्पर है। दो अङ्कों में इस कथांश का विकास करके आगे के तीन अंकों में बताया गया है कि चन्द्रगुप्त किस प्रकार सम्राट् बना। परवर्ती कथा बहुत कुछ मुद्राराक्षस का अनुवर्तन करती है।

श्रीरामविजय

रमानाथ ने श्रीरामविजय की रचना १९४० ई० में की। यह नाटक-कोटि का रूपक है, जिसमें पाँच अङ्क हैं। इसमें ताडका-वध से लेकर रावणवध तक की कथायें संग्रथित हैं। घटनाओं के संविधान का निरूपण रामायण के सर्वथा अनुसार नहीं है, अपितु यत्र-तत्र कवि ने नई बातें जोड़ दी हैं।

समाधान

रमानाथ का समाधान पाँच अङ्कों का नाटक है। कवि ने १९४५ ई० इसका प्रणयन किया। इसमें बीसवीं शती में योरपीय पद्धति पर छात्र और छात्राओं के गान्धर्व रीति से वैवाहिक समस्या का समाधान कर लेने की आँखोंदेखी चर्चा प्रस्तुत है।

पुरातन-बालेश्वर

रमानाथ ने १९५७ ई० में बालेश्वर नगरकी ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते हुए पुरातन बालेश्वर का प्रणयन किया। कवि का यह अपना नगर नैसर्गिक ऐश्वर्यशालिनी विभूतियों से समलंकृत है। नगर की वर्णना में कवि ने समुद्र और तदुत्थ रमणीयता और औदार्य की प्रकाम चर्चा की है। इस शान्त वातावरण को अंगरेज और मराठा राज्याभिलाषियों ने अपने युद्धात्मक संघर्षों के द्वारा अशान्त कर दिया। अंगरेजों के प्रभाव के कारण इस नगर की सांस्कृतिक गरिमा नष्टप्राय हो गई।

कथावस्तु की दृष्टि से इस नाटक की नवीन प्रवृत्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्त पाँच अङ्कों का नाटक है, यद्यपि इसकी कथावस्तु सर्वथा उत्पाद्य है। रमानाथ ने इसे १९५२ ई० में लिखा। यह नायिका-प्रधान नाटक है, जिसमें सारी कथा एक निराश्रित बालिका पर केन्द्रित है। गाँव का कोई किसान उसे आश्रय देता है। वहाँ का भूपति उस किसान को बहुविध यातनायें देता है। कन्या बड़ी होती है। भूपति का लड़का उससे प्रेम करने लगता है। भूपति के लिए अपने पुत्र का यह व्यवहार निम्नस्तर की बात लगती है और वह उसे घर से निर्वासित कर देता है।

कुछ दिनो मे लोगो के समझाने पर और युग के प्रभाव से भूपति की आँखें खुलती हैं और उसे अभास होता है कि न तो उस किसान का दोष है और न मेरे पुत्र का। सारा पाप मेरा है। इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए वह अपने पुत्र का विवाह निराश्रित, पर अभीष्ट कन्या से कर देता है और अपनी कन्या का विवाह उत्पीडित किसान युवक से कर देता है। इस प्रकार वह प्रसन्न है।

इसमे कोई सन्देह नही कि सस्कृत का पण्डित नाटक के लिए एक अशास्त्रीय कथा को चुनता है। वस्तु, नेता तथा रस तीनो की दृष्टि से यह नाटक अभूतपूर्व विशेषतायें लिए हुए है।

आत्मविक्रय

रमानाथ ने १९५३ ई० मे आत्मविक्रय नामक नाटक का प्रणयन किया। इसमे युग-युग से लोकरुचि के प्रणेता हरिश्चन्द्र नायक हैं। प्रसिद्ध पौराणिक कथा का सुरुचि पूर्ण विन्यास कवि ने पाँच अङ्को मे किया है।

कर्मफल

रमानाथ ने १९५५ ई० मे कर्मफल नामक प्रहसन लिखा। भारतीय समाज की विषमताओ का प्रभावपूर्ण चित्रण उनको दूर करने की दृष्टि से लेखक ने इसमे प्रस्तुत किया है।



अध्याय ११०

मथुराप्रसाद दीक्षित का नाट्य-साहित्य

उत्तरप्रदेश में महामहोपाध्याय मथुराप्रसाद दीक्षित का जन्म वैदिक कुल में हरदोई जिले के भगवन्तनगर गाँव में १८७८ ई० में हुआ था।[1] उनके पितामह हरिहर उच्चकोटिक आयुर्वेदाचार्य थे। मथुराप्रसाद के पिता बदरीनाथ और माता कुन्तीदेवी थीं। कवि के सुखी परिवार में उनकी पत्नी गौरीदेवी, तीन पुत्र और एक कन्या रहे हैं। फिर तो इनके नव पौत्र हुए। कवि के पुत्रों में सदाशिव दीक्षित संस्कृत-नाट्यकार हुए हैं। सदाशिव ने सरस्वती-नामक एकाङ्की का प्रणयन किया है।

मथुराप्रसाद विद्यार्थी-जीवन से ही आत्माभिव्यक्ति में प्रौढ थे। तभी से शास्त्रार्थ में उनकी अभिरुचि रही है। काव्य के अतिरिक्त साहित्य की अन्य शाखाओं और प्रशाखाओं में उनकी अमन्द प्रौढता का परिचय नीचे लिखी प्रकाशित कृतियों से लगता है—निर्णय-रत्नाकर, काशी-शास्त्रार्थ, नारायण-बलिनिर्णय, कुतर्कतरुकुठार, जैनरहस्य, कलिदूतमुखमर्दन, कुण्डगोल-निर्णय, जैन रहस्य, मन्दिरप्रवेश-निर्णय, आदर्श-लघुकौमुदी वर्णसंकर-जातिनिर्णय, पाणिनीय-सिद्धान्त-कौमुदी, मातृ-दर्शन, समास-चिन्तामणि, केलि-कुतूहल, प्राकृतप्रकाश, पालिप्राकृत-व्याकरण कविता-रहस्य, गौरी-व्याकरण, पृथ्वीराज-रासो की टीका (प्रसाद) रोगिमृत्यु-विज्ञान। उन्होंने अभिधानराजेन्द्रकोष का सम्पादन भी अंशतः किया था।

मथुराप्रसाद के रूपक हैं—वीरप्रताप, भारत-विजय, भक्तसुदर्शन, शंकरविजय, वीरपृथ्वीराजविजय, गान्धी-विजय, भूभारोद्धरण। ये सभी प्रकाशित हैं।[2]

पृथ्वीराज-रासो के सम्पादन की उच्च गवेषणात्मक उपलब्धियों का सम्मान करने के लिए मथुराप्रसाद को महामहोपाध्याय की राजकीय उपाधि से विभूषित किया गया।

मथुराप्रसाद ने अपनी कवि-प्रतिभा को कुछ समय तक हिमालय के रम्य

---

१. मथुराप्रसाद ने अपने कतिपय ग्रन्थों का प्रकाशन झाँसी के सरस्वती-सदन से किया है। वे १४६, हजरियाना झाँसी में रहते थे। १९६१ ई० के लगभग वे १८२, अस्सी, वाराणसी में रहते थे। वाराणसी से भी कतिपय ग्रन्थों का कवि ने प्रकाशन किया।

२. मथुराप्रसाद के अप्रकाशित नाटक है—जानकीपरिणय, युधिष्ठिर-राज्य, कौरवौचित्य-भ्रष्टाचार-साम्राज्य। इनके अतिरिक्त उन्होंने भगवद् नखशिख-वर्णन-शतक, नारदशिव-वर्णन आदि काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं।

प्रदेश मे शिमला के समीप सोलन की प्राकृतिक भूमा मे विलसित किया था। वे स्थानीय राजा के दरबार मे राजकवि थे।

वीरप्रताप

सात अङ्कों का वीर-प्रताप मयुराप्रसाद की प्रथम रचना १९३५ ई० में सम्पन्न हुई थी।

कथासार

प्रताप अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे, फिर भी पिता ने मरते समय उन्हें राज्याधिकारी न बनाकर जगन्मल्ल को उत्तराधिकारी बनाया[1]। उनके मरने के पश्चात् अनेक सामन्तों ने प्रताप की ज्येष्ठता और मातृ-भूमि-रक्षा की योग्यता और तदर्थ अनुपम उत्साह देख कर मन्त्रियों को सहमत कर लिया कि प्रताप का राज्याभिषेक हो। तदनन्तर वेश्या का नृत्य मनोरंजन के लिए प्रस्तुत हुआ। राना ने उसे हटा कर तलवार खींचते हुए कहा—

> यावन्मे धमनी-मुखेषु रुधिरक्लेदोऽपि सन्तिष्ठते
> मांसं वास्थनि तिष्ठति क्वचिदपि प्राणाः शरीरे स्थिताः।
> तावन्म्लेच्छपतेः कथंचिदपि न प्राप्स्याम्यहं निघ्नताम्
> स्वातन्त्र्यस्य पदं समस्तवसुधा नेतुं यतिष्ये भृशम्॥ १.२६

वेश्या ने प्रतिज्ञा की कि योगिनी बन कर भविष्य मे मेवाड़ में अपने गायन से स्फूर्ति और नव जागरण भर दूँगी।

द्वितीय अङ्क के अनुसार बुलाये हुए शक्तिसिंह और सालुम्ब प्रताप से मिलते है। सालुम्ब ने शक्तिसिंह की प्राणरक्षा करके उसे पुत्र बना लिया है। शक्तिसिंह प्रताप की सहायता करेगा—यह सालुम्ब ने बताया। प्रताप ने उसे अपना लिया। उसे १० गाँव दिये। शक्ति ने बताया कि राज्य के लोभ से आपका चाचा सागरसिंह अकबर के पास गया है।

भद्रमुख नामक चर ने आगरा से आकर बताया कि अकबर क्षत्रिय बनना चाहता है। ब्राह्मणों ने कह दिया कि पूर्वजन्म के कर्मानुसार क्षत्रिय होता है। यह संभव नहीं। तब तो अकबर ने क्षत्रियत्व की प्राप्ति के लिये क्षत्रिय राजकन्याओं को पत्नी बनाना आरम्भ किया। मानसिंह के पिता जयपुर के राजा ने अपनी बहिन अकबर को दी। मानसिंह को सेनापति बना दिया गया। वही मानसिंह अन्य क्षत्रिय राजाओं से भी कन्यायें दिलायेगा। भद्रमुख ने आगे बताया कि सागरसिंह को अकबर ने मिवाड का राजा बनाने का वचन दिया है और चित्तौड का दुर्ग उसे दे दिया है। प्रताप ने विचार किया कि चाचा ही तो है। चित्तौड में बना रहे।

१. उदय के २५ पुत्र थे, जिनसे राणावत वंश चला। जगन्मल्ल राजा तो बना, पर सामन्तों ने उसे हटा कर ज्येष्ठ प्रताप को अभिषिक्त किया।

फिर प्रताप से कर्णरावत और कृष्णपुरोहित मिलते है। कृष्ण ने कहा कि आज आप आखेट के लिए जायँ। आपके राज्यारोहण के प्रथम पर्व के शुभाशुभ के अनुसार आपका भावी शुभाशुभ होगा।

आखेट में किसी सूअर पर वाण प्रताप और शक्ति दोनों ने चलाया। किसके वाण से वह मरा—इस विवाद का शमन करने के लिए प्रताप ने उपाय वताया कि तलवार से द्वन्द्व-युद्ध में जो जीते, वही सूअर का मारने वाला है। उन दोनों के विनाशकारी युद्धोद्योग को देख कर राम गुरु ने उन दोनों के वीच जाकर अपने हृदय में कटार मार कर अपना अन्त कर लिया। दोनों विरत हुए। प्रताप ने शक्ति से कहा कि तुम्हारे कारण यह सब हुआ। तुम मेवाड छोड़ कर चले जाओ। शक्ति को शोकपूर्वक जाना पड़ा।[1]

अकबर के पास मुहम्मद नामक चर मेवाड़ से आकर मिलता है। वह बताता है कि शक्तिसिंह को मैं आपके पास लाया हूँ। शक्ति अकबर से मिला। अकबर ने उसे वचन दिया—

लङ्कामिवाहं मेवाडं जित्वा गर्वसमुद्धतम्।
अभिषेक्ष्यामि तत्र त्वां यथा रामो विभीषणम्॥ २.३६

उसे क्षत्रिय सेना का अधिपति वना दिया और कान्धार प्रदेश दिया गया।

तृतीय अङ्क में मानसिंह के आने के समाचार से क्षत्रिय सामन्त उसके विरुद्ध लड़ने की प्रतिज्ञा करते हैं—

क्षत्रियाणां कृते धर्म्यं यदि युद्धमुपागतम्।
अतः परमभीष्टं किं यत्स्यान्मोक्षपदास्पदम्॥ ३.६

मानसिंह का हार्दिक नहीं, किन्तु उच्चकोटिक कृत्रिम सम्मान हुआ। शिरोवेदना के वहाने प्रताप नहीं आया, जव मानसिंह को भोजन दिया गया। मान ने उन्हें वारंवार वुलवाया, पर प्रताप उसे अपांक्तेय समझते थे। मानसिंह ने प्रतिज्ञा की—

मानोऽहं त्वपमानभाजनमितोऽहंमानजीवातुकः।
स्वल्पैरेव दिनैः फलं फलयिता तापं प्रतापे स्वयम्॥ ३.९

मानसिंह की कटूक्तियों का उत्तर सालुम्व ने इस प्रकार दिया—

भर्त्तारमादाय पितृष्वसुस्त्वं संग्रामभूमिं समुपाश्रयेथाः।
तन्नाशतो वैरविधिः समाप्तो भवेत् सुखी स्यात् सकलोऽपि लोकः॥

---

१. शक्तिसिंह प्रताप का छोटा भाई था। वह उदयसिंह का पुत्र था। ज्योतिषियों ने इसके जन्म के समय कहा था कि यह मेवाड का कलंक होगा। उदयसिंह इसको मरवा डालना चाहता था। सालुम्व ने उसे वचाया था। आखेट करते समय प्रताप और शक्तिसिंह का झगड़ा हुआ। वृद्ध मन्त्री ने इनको एक-दूसरे की हत्या करने के लिए उद्यत देख तलवार मार कर आतम-हत्या कर ली। प्रताप की आज्ञानुसार शक्तिसिंह ने मेवाड़ छोड़ा। टाडः राजस्थान का इतिहास पृ० २१३

मानसिंह ने भोजन-पात्र से दो-चार भात के कण उत्तरीय में बाँध लिये थे और उठ पड़ा था। सालुम्ब ने मानसिंह को यह कहते सुना था—

मेवाडं ध्वंसयित्वा सकलमपि कुलं यावनं वो विधास्ये।

चतुर्थ अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे रामगुरु का पुत्र और इन्द्रौर-नरेश मिलते है। गुरुपुत्र बताता है कि कैसे किसी भट्ट ने प्रताप की उत्कृष्टता और अकबर की नीचता बताते हुए उसका तिरस्कार किया है। आगे इस अङ्क मे प्रताप की परिषद् का दृश्य है। प्रताप ने मत दिया कि शत्रु के मार्ग मे भोज्याभाव कर दिया जाय।

तत्सर्वं नाशनीय नहि भवतु यतो भक्ष्यलाभो रिपूणाम्। ४.१

अकबर की सैनानी परिषद् मे शक्तिसिंह ने प्रताप को जीतने के लिए उपाय बताया—

शतघ्न्यो दशसंख्याः स्युस्तुपका द्वे सहस्रके।
एवं सैन्यसमारोहे जयोऽस्माकं भविष्यति॥ ४.१८

अगले दृश्य मे अकबर अजमेर में है। उसे चर हल्दीघाटी युद्ध का पूरा वृत्त बताता है। घमासान युद्ध के पश्चात् राणा प्रताप युद्ध-भूमि से अपसरण करने लगा। प्रताप का पीछा दो मोगल महासैनिकों ने किया।

अगले दृश्य मे प्रताप का पीछा करने वाले दोनों महासैनिक घुड़सवारों को शक्तिसिंह मार डालता है और प्रताप को पुकारता है। प्रताप उसे पहचान कर कहते हैं—

रे रे निर्घृण देशघातक कुलाङ्गारक्षमाभारक
त्वं सज्जीकुरु कुन्तमाशु निपतत्यूर्ध्वं तवैप क्षणात्।
हत्वा त्वामवनेर्निरस्य कलुषं त्वत्पापशुद्धि चर-
न्नात्मज्ञातिविपक्षपक्षचरणे गर्वं च ते चूर्णये॥ ४.३६

शक्ति ने क्षमायाचना की। प्रताप ने उसे गले लगा लिया। वहाँ से प्रताप को सुरक्षित करके शक्ति लौटकर मानसिंह से मिला।

पचम अक मे सलीम अजमेर मे आकर बताता है कि प्रताप को मर्दित करके वन मे खदेड दिया गया है। अकबर ने आश्चर्य प्रकट किया कि मुलतानी और खुरासानी जब प्रताप का पीछा कर रहे थे और शक्तिसिंह भी उनके पीछे ही था तो प्रताप क्योकर मारा नही गया? मानसिंह ने कल्पना दौडाई कि शक्तिसिंह अपरिक्षत है। इसीने उन दो वीरो को मार कर प्रताप की रक्षा की होगी। शक्तिसिंह ने अकबर के समक्ष स्पष्ट स्वीकार कर लिया—

तौ भटौ निहत्य मया प्रतापो रक्षितः।

उसे मुगल-शासन-सत्ता से विरक्ति होने पर मुक्ति दे दी गई। वह प्रताप के पास मार्ग में किसरूर का दुर्ग जीत कर वहाँ मेवाड की ध्वजा फहराकर पहुँच गया। प्रताप ने वह दुर्ग शक्ति को दे दिया।

अगले दृश्य में प्रताप को ढूंढ़ते हुए इन्द्रपुर का अधिपति सामन्त प्रताप के सैनिक से अरण्यानी में मिलता है। उनकी बातचीत से सूचना मिलती है कि प्रताप जावरा के वन में जा पहुँचे हैं।[1] वहाँ एक दिन विपत्ति के मारे प्रताप के परिवार के लिए पकी रोटी को बिडाल लेकर भाग गया। प्रताप की भूखी कन्या उनकी गोद में रोने लगी। प्रताप अधीर हो उठे। प्रताप की एकोक्ति है—

सालुम्बे निहतेऽप्यभिन्नहृदये मन्नासखे स्वर्गते
युद्धे चापि पराजये प्रतिदिनं श्रान्तेऽद्रिकान्तारयोः।
किं चान्यत् क्षुभितेऽप्यनेकदिवसं धैर्यं न यत्कम्पितं
खिन्नां स्वामबलां सुतां च रुदतीं दृष्ट्वाद्य तल्लीयते ॥ ५.१२

प्रताप ने शोकाभिभूत होकर अकबर के लिए सन्धि पत्र लिखा—

दुःखादुद्विग्नचेताः क्षुभितनिजसुतां क्षीणकायं कलत्रं
दृष्ट्वोद्भ्रान्तः स्वरक्षाविधिमखिलमयं नैव कर्तुं समर्थः।
तस्माद् युद्धाद् विरक्तः शमय रणकथां ज्ञायतां वृत्तमेतत्।
साँगापौत्रः प्रतापो यवनपतिपदे याचते सन्धिचर्चाम् ॥ ५.१५

अगला दृश्य आगरे में अकबर की राजसभा में उपर्युक्त पत्र मिलने का है। अकबर ने सन्धि-चर्चा सुनकर विजय-महोत्सव कराने का आदेश दिया। पृथ्वी सिंह ने सुझाया कि यह नकली पत्र है। अकबर ने कहा—प्रताप को पत्र लिखकर समर्थन करा लें। पृथ्वीसिंह ने लिखा—

ऊर्ध्वाधोमध्यभागे निखिलबुधजनैः स्तूयमानां स्वकीर्तिम्।
हित्वा किं विग्रहार्थं त्रिदशसुखमनादृत्य यास्यात्मनाशम् ॥ ५.१६

अगले दृश्य में प्रताप को पृथ्वीसिंह का पत्र मिलता है। प्रताप पहले से ही अपने पत्र के कारण दुःखी थे कि यह अयोग्य कर्म क्या कर डाला। पृथ्वीसिंह का पत्र मिला तो प्रताप ने उत्तर दिया—

युक्तमुट्टंकितं काले प्रेम्णा साधु त्वयोदितम्।
अवेहि पत्रोत्तरणे क्रियां केवलमुत्तरम् ॥ ५.२४

अकबर को यह पत्र मिला। उसने प्रताप को डाँट लगाई कि तुम्हारे लिए प्रताप से वैर मोल लिया। तब तक तुम मेरी परिषद् में न आओ, जब तक प्रताप को न जीत लो या उसे मेवाड़ से बाहर न कर दो।

अकबर ने देखा कि पृथ्वीसिंह प्रताप का पक्ष पाती है। उसने मीनाबाजार में निमन्त्रित करके पृथ्वीसिंह की पत्नी को, जो मेवाड़-कन्या थी, अपनी कामवासना की परितृप्ति का साधन बनाना चाहा। बीरबल यह ताड़ गया। उसने अकबर से कहा—

अन्योपभुक्तां परकीयकान्तां भोक्तुं न ते यावतु चित्तवृत्तिः
उच्छिष्टभोजी खलु सारमेयस्तस्मात् परीवादपदं च मा गाः ॥

---

१. यह दृश्य अङ्क के बीच में होने पर भी विष्कम्भक है।

वीरवर ने कहा कि प्रच्छन्न वेश में कामचारी बनकर बाजार में घूमते समय किसी चण्डिका से भेंट हो जाने पर तुम्हारा प्राणान्त ही हो जायेगा। अकबर ने किसी निर्जन भवन में पृथ्वीसिंह की पत्नी चण्डिका का धर्षण करना चाहा। वह उसे पटक कर असिपुत्रिका से उसके हृदय को भोंकने ही वाली थी कि अकबर ने उससे क्षमा माँगी। उसे सद्वृत्त की शपथ लेनी पड़ी।

षष्ठ अङ्क में मानसिंह और शहबाज आदि के सम्मिलित आक्रमण से प्रताप, उनके पुत्र अमरसिंह आदि को मेवाड़ छोड़ देना पड़ा। योगिनी के गीत ने मेवाड़-जागरण कर दिया। उसने गाया—

धावत धावत भजत प्रतापम्

एनं धर्मकरणतो रक्षत सिन्धुशरणमुपयातम्। इत्यादि

इसको सुनकर भामागुप्त प्रताप को ढूँढ कर उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला कि आपके कोश में ४० कोटि धन है। इस धन से महती सेना, अस्त्र-शस्त्रादि तैयार करके शत्रुओं को परास्त करने की योजना बनी। भामा ने कहा कि इससे आप यदि प्रजा-रक्षण करने के लिए नहीं स्वीकार करते तो मैं प्राण-त्याग करूँगा। तब तो सभी युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। युद्ध में प्रताप मेवाड़ छोड़ कर सिन्धु-प्रदेश चला गया—यह समाचार मानसिंह ने अकबर को दिया। तभी चर ने अकबर को समाचार दिया कि प्रताप ने चारों ओर से आक्रमण करके आपकी सेना का प्रध्वंस कर दिया।

सप्तम अङ्क में सेनापति प्रताप को बताता है कि चित्तौड़ को छोड़ कर सभी दुर्ग जीत लिये गये। चित्तौर भी सरलता से जीता जा सकता है, पर इस समय क्या मानसिंह को पहले न जीत लिया जाय? प्रताप ने कहा कि चित्तौड़ तो हमारे चाचा सागर के अधिकार में अपना ही है। सम्प्रति मानसिंह के नगर आमेर को जीता जाय। मिले तो उसे भी बाँध कर लाया जाय। अगले दृश्य में अकबर की मन्त्रिपरिषद् का दृश्य है।

अकबर ने प्रताप की दैवी प्रतिमा देखकर उसके पास सन्धिपत्र भेजा।[1] इधर मानसिंह का नगर आमेर भी जीत लिया गया। तब योगिनी ने गाया—

हर हर जय जय देव।
जय प्रताप जयभारतभूषण जय वसुधाधिप देव!
जय जय माननगरविध्वंसक जय राजततारेश,

---

१. पत्र में अकबर ने लिखा था—

श्रीमत्सु श्रीतरमानं धर्मरक्षकेषु गोब्राह्मणप्रतिपालकेषु आर्यपतिप्रतापेषु सप्रणयमसौ प्रार्थ्यते—

स्वतन्त्राः सर्वतः सन्तो भवन्तो मम मानिनः।
पूज्याः सीमामनुल्लंघ्य शान्तिं कुर्वन्तु विश्वतः॥ ७.१६
इति भवदीयः प्रियसुहृदकबरः।

अकबर को प्रताप ने सन्देश भेजा—

स्वीकृतस्तेसन्धिः ।

नाट्यशिल्प

मथुराप्रसाद ने वीरप्रताप में एकोक्तियों का प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क में शक्ति और सालुम्ब के चले जाने के पश्चात् अकेले वह अकबर के विषय में कहता है—

'रे म्लेच्छाधिप दुर्विनीत फलितः । कौटिल्यजालाकुलः ।' इत्यादि ।

इसी अङ्क में आगे वह लघु एकोक्ति में भावी कार्यक्रम के विषय में सूचना देता है कि सागर को चित्तौर में बने रहने दूँगा। वह स्ववंशीय है।

इस अंक में आगे अकबर की एकोक्ति है, जिसमें वह बताता है—प्रताप के स्वतन्त्र रहते मुझे सुख कहाँ ? मानसिंह प्रताप को मेरे चरणों में लाकर गिरायेगा। दक्षिण विजय करके लौटते हुए मानसिंह टेढ़े मार्ग से चल कर भी मेवाड में प्रताप से मिलेगा और अनादृत होगा, मानसिंह तब मेवाड का नाश करेगा।[1] एकोक्ति द्वारा अङ्कभाग में यह सब सूच्य सामग्री प्रस्तुत है।

चतुर्थ अङ्क के एक दृश्य में अकबर अजमेर में है। उसकी एकोक्ति लघु है, जिसमें वह हल्दीघाटी के युद्ध के विषय में चिन्ता व्यक्त करता है। इस एकोक्ति के द्वारा अर्थोपक्षेपक के समान ही आगे की बातों के लिए भूमिका प्रस्तुत की गई है। पंचम अङ्क का आरम्भ अकबर की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह विकल्प करता है कि प्रताप के मारे जाने या पकड़े जाने पर मेरा राज्य अकण्टक हो जाता।

जैसे किरतनिया नाटकों में आद्यन्त रंगपीठ पर विराजमान सूत्रधार बीच-बीच में वर्णन प्रस्तुत करता है, वैसे ही पंचम अङ्क में निम्न श्लोक है—

स्वाङ्के निधाय रुदतीं परिलालयन्तीं दृष्ट्वाथ रोदिति स रोदते च सर्वान् ।
वृक्षा विहंगमगणाः पशवो विलोक्य क्रीडां विहाय विलपन्ति वनोद्भवाश्च॥५.१३

दृश्यों का प्रवर्तन पटोन्नयन के द्वारा किया गया है—यद्यपि दृश्यों के परिवर्तन को मुद्रित पुस्तक में अङ्कित नहीं किया गया है। द्वितीय अङ्क में आखेट के पूर्व पटोन्नयन से दृश्यपरिवर्तन विधेय है।

पटोन्नयन द्वारा द्वितीय अंक में मेवाड और आगरा इन दो सुदूरस्थ स्थानों की घटनायें दिखलाई गई हैं। चतुर्थ अंक में एक दृश्य में भिल्ल-प्रदेश और दूसरे में प्रताप की राजधानी की घटनायें हैं। आगे फिर इसी अंक में नये दृश्य में आगरा में अकबर की मन्त्रिपरिषद् की घटनायें दिखाई गई हैं।

दृश्य के परिवर्तन के द्वारा कई मास के पश्चात् की घटना पंचम अंक में

---

१. जितः कर्णाटको येन स मानः साभिमानिकः ।
  ध्रुवं सम्मानतः स्वल्पान्मेवाडं नाशयिष्यति ॥

दिखाई है। बीच के दृश्य पूर्णतया विष्कम्भक की भाँति अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है, यद्यपि उन्हें विष्कम्भक नाम नहीं दिया गया है।[1]

नाटक में गीतों का समावेश रमणीय है। तृतीय अङ्क में योगिनी (पहले की वेश्या) गाती है—

त्यज रे मान कपटमदजालम्।
भज शिवकरणमीशपदपंकजममरशिरोजयमालम्॥ इत्यादि

अन्य अङ्कों में भी योगिनी के गीत हैं। सप्तम अङ्क में अनेक गीत हैं। इन गीतों में भी भावी कार्यक्रम या भूतकाल की घटनाओं का भी आनुषंगिक संकेत है।

व्यर्थ के विवरणों के कारण वीरप्रताप नाटक शिथिल कथाबन्ध होने से नाट्यशिल्पोचित एकमुखता के अभाव में अनुत्कृष्ट है। चतुर्थ अंक में अकबर के दरबार में जो बातें हुईं, उनकी पुनरुक्तिमात्र इसी अंक में चार प्रताप के समक्ष करता है।

समसामयिकता

वीरप्रताप की रचना भारतीय स्वातन्त्र्य-सग्राम के युग में युवकों और क्षत्रियों को प्रोत्साहित करके भारतमाता की बेड़ियाँ काटने के उद्देश्य से की गई थी। प्रस्तावना में सूत्रधार करता है—

'इदानीं भारतदेशे हीनदीनदशापन्नानां वीराणां शौर्य-साहस-सहिष्णुता-गुणानामुद्योतनाय, परकाष्ठामापत्ति भजमानानां पौर्वकालिकक्षत्रियाणां शौर्यधैर्याद्यभिनयेन भाविनवयुवकेषु तत्तद्गुणसम्पादनाय' इत्यादि।

भाषा

मथुराप्रसाद की भाषा चटपटी है। लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा स्वाभाविकता निर्भर है। कतिपय लोकोक्तियाँ है—

(१) कुठारेणात्मपादौ छिनत्ति।
(२) मुमूर्षो: पिपीलिकाया: पक्षौ समुत्पद्यते।
(३) बकोऽपि हंसगतिमृच्छति।
(४) ईश्वरस्त्विदानीं पाश्चात्यदेशेषु परिभ्रमणार्थं गत:।
(५) वीराणां रणे मरणं प्राकृतमेव।

अन्यत्र भाषा की क्लिष्टता के द्वारा जावराप्रान्तीय पर्वतारण्य की विभीषिका बड़े-बड़े समास और परुषाक्षरों के द्वारा व्यंग्य है। यथा,

'काकोलूककपोत - कुक्कुटचटकखंजरीट - बककोकिलरथाङ्गकुररमयूर-तित्तिर-चकोर-वर्तकादि विविधपक्षिगण-संयुतम्'।

---

१. पंचम अङ्क के एकदृश्य में इन्दुपुर के सामन्त और प्रताप के सैनिक रुद्रसिंह का संवाद सर्वथा विष्कम्भक है। इसमें सूचनामात्र प्रेक्षकों के लिए मिलती है।

दोष

कवि ने राणा प्रताप के मुख से अशोभनीय बातें कहलवाई हैं—यह उचित नहीं है। रे रे नीच और धिक् आदि अकबर के लिए या किसी अन्य के लिए भी प्रताप जैसा नायक कहे—यह नहीं होना चाहिए था। नायक प्रताप में उच्चकोटिक माहात्म्य की अभिव्यक्ति उसके कार्य और वाणी से होनी चाहिए।

प्रथम अङ्क में चेतक का वर्णन चार पद्यों में करके कवि ने अपनी वर्णना-शक्ति भले सिद्ध की है, किन्तु नाट्यशिल्प की दृष्टि से ऐसे वर्णन व्यर्थ हैं।

अङ्क भाग में उत्तम कोटि के चरितनायकों को प्रायः रहना ही चाहिए। चतुर्थ अङ्क में ऐसा नहीं दिखाई देता। इसमें कुछ देर तक राजपुरुष, भिल्लपुत्र, भिल्लभगिनी, चारण, भिल्लनी का लघु भाई ही रहते हैं। लगभग एक दृश्य में इन्हीं की बातचीत चलती है। नायक रंगपीठ पर आता-जाता रहता है।

भारत-विजय

भारत-विजय की रचना १६३७ ई० में हुई।[१] इसका सर्वप्रथम अभिनय १६३७ ई० में सोलन की राजसभा के प्रीत्यर्थ हुआ था। स्वतन्त्रता १६४७ ई० में प्राप्त हुई। उसके १२ वर्ष पहले ही मथुराप्रसाद ने इस नाटक के अन्तिम अङ्क में दिखलाया था कि अंगरेज भारत का शासन-सूत्र महात्मा गाँधी के हाथों में सौंप कर चलते बने। सोलन के शासन की ओर से परतन्त्रता के उन दिनों में इस प्रकार की बातों से निर्भर नाटक को जब्त कर लिया गया और भारत के स्वतन्त्र होने पर १६४७ में इसे प्रकाशोन्मुख होने का अवसर मिला। इसे १६४२ ई० में पं० गोपीनाथ कविराज ने देखा था और इसकी प्रशंसा की थी। इसमें सात अङ्क हैं।

भारत-विजय ऐतिहासिक नाटक है। १८ वीं शती में अंगरेजों का भारत में पैर जमना आरम्भ हुआ। तब से १६४७ तक की घटनाओं की चर्चा इसमें पिरोई गई है। अंगरेजों ने किस प्रकार भ्रष्टाचार और दुर्नीति का अवलम्ब लेते हुए भारत में अपना शासन स्थापित किया। क्लाइव के काले कारनामे क्या थे, अमीचन्द को कैसे धोखा देकर ध्वस्त किया गया, भारतीय उद्योग-धन्धों का किस प्रकार निर्मूलन हुआ, नन्दकुमार को किस प्रकार फाँसी दी गई, भारत-माता स्त्री के रूप कैसे हेस्टिंग्ज के द्वारा कस कर बाँधी जाती है, रुहेलखण्ड और अवध कैसे जीते गये, भारतीय देशद्रोहियों ने किस प्रकार अंगरेजों के टुकड़ों पर भारत-माता की बेड़ी सर्वशः कसने में सहायता की, अवध की रानियों को कैसे निर्भूषण किया गया है—इन ऐतिहासिक प्रकरणों को कवि की दृष्टि से परखने का अपूर्व अवसर लेखक ने प्रस्तुत किया है।

पंचम अंक से भारत का स्वातन्त्र्य-संग्राम महत्त्वपूर्ण है। १८५७ ई० की

१. ऋष्यग्निनन्दनचन्द्रेऽब्दे भारतनाटकं कृतम्।

सैनिक क्रान्ति हुई। पाण्डेय नामक सैनिक के गाय और सूअर के मांस और चर्बी से सम्पृक्त कारतूस को निकालने मे अपनी असमर्थता प्रकट करने पर एक गौरण्ड ने उन्हे साला कहकर गाली दी। पाण्डेय ने उसे गोली दाग दी। वह ढेर हो गया। सारे देश मे जागरण की लहर उत्पन्न की गई। झांसी की रानी ने उदात्त पराक्रम दिखाए। पंजाबियो की सहायता से अंगरेजो ने शत्रुओ को जीता। बहादुरशाह को उसके लड़के का रक्त प्यास बुझाने के लिए दिया गया। झांसी की रानी अग्नि मे जल मरी। क्रान्ति को समाप्त कर देने के पश्चात् विक्टोरिया का फरमान आया।

छठें अङ्क मे भारताभ्युदय के लिए कांग्रेस की स्थापना होती है। आगे चल कर बगभग हुआ। उसे निरस्त करने के लिए देशप्रेमियो ने घोर प्रयास किया। देश मे दो नेता आगे बढ़े—तिलक और खुदीराम। तिलक ने कहा—जो थप्पड़ मारे, उसका प्रतिकार डण्डे से करना चाहिए। खुदीराम ने बम से एक गोरण्ड को मारा। उसको फांसी हो गई।

इतना होने पर भी १९१४-१९१८ के युद्ध मे भारतवासियो ने इगलैण्ड की भरपूर सहायता की। बदले मे भारत को कुछ न मिला। लोगो को घोर दण्ड देने के लिए रौलट ऐक्ट पास हुआ। गांधी को ठुकराया गया। फिर तो लोगो ने सरकार से प्राप्त उपाधियां लौटाई और जालियां वाला बाग मे गोलियां खाईं। ऐसे दमन-काण्डो से भारत मे राजद्रोह बढा और गान्धी के नेतृत्व मे देश को स्वतन्त्रता मिली।

भक्तसुदर्शन

मथुराप्रसाद के दूसरे नाटक छ अङ्कों के भक्तसुदर्शन मे जगदम्बिका भवानी दुर्गा के भक्त राजकुमार सुदर्शन की चरित-गाथा है। इसका प्रणयन कवि के आश्रय-दाता सोलन-नरेश की धर्मपत्नी की इच्छा के अनुसार हुआ। उन्ही रानी को कवि ने इसे समर्पित किया है।

कथासार

अयोध्या के राजा ध्रुवसन्धि की मृत्यु आखेट करते समय सिंह के प्रहार से हो गई। उनकी दो पत्नियों—मनोरमा और लीलावती से क्रमश दो पुत्र सुदर्शन और शत्रुजित् हुए। सुदर्शन ज्येष्ठ होने से उत्तराधिकारी था, किन्तु छोटे भाई शत्रुजित् के नाना युधाजित् अपने नाती को बलपूर्वक राजा बनाने के लिए उद्यत हो गये। तब तो सुदर्शन के नाना वीरसेन भी अपने नाती सुदर्शन को राज्या-धिकार दिलाने के लिए सन्नद्ध हुए। दोनो नानाओ मे घोर युद्ध हुआ। वीरसेन मारा गया। युधाजित् सुदर्शन को भी मार डालना चाहता था। मन्त्री विदल्ल की सहायता से मनोरमा सुदर्शन को लेकर भरद्वाज ऋषि के आश्रम मे पहुँची। ऋषि ने उनको शरण दी।

युधाजित् का मन्त्री और पश्चात् स्वयं युधाजित् ऋषि के पास गये कि सुदर्शन

को हमें सौंप दें। भरद्वाज ने कहा कि मैं तुम्हारे अभिप्राय को समझता हूँ, किन्तु सच तो यह है कि सुदर्शन को ही अयोध्या का राजा बनाना है। युधाजित् किसी तरह टला। भरद्वाज ने सुदर्शन की माता से कहा कि जगदम्बिका युधाजित् और शत्रुजित् को मार कर तुम्हारे पुत्र को राजा बनायेगी।

सुदर्शन भरद्वाज से जगदम्बिका के प्रीत्यर्थ दीक्षा-मन्त्र लेकर जप करने लगा। उसके जप से उसे सभी वेद, अस्त्र-प्रयोग आदि का स्वयं प्रतिभास हो गया। फिर तो वह जपमय हो गया—

पश्यन् गच्छन् पठंश्चापि स्मरन् . क्रीडन् वदन्नपि
सुखासीनः शयानश्च किंचिद्जपति सर्वदा।

उसको जगदम्बा सिद्ध हो गई। जगदम्बा ने उसे स्वयं प्रकट होकर कवच, तूणीर, धनुर्बाण आदि दिये और कहा कि यथासमय साक्षात् होकर तुम्हारी सहायता करूँगी। जगदम्बा दुर्गा ने सुदर्शन को रथ, सारथि, अश्वादि की व्यवस्था कर दी। उस अद्भुत रथ का परिचय है—

पयोनिधौ पोतसमानरूपधृक् वियत्यसौ विष्णुरथोपमः स्फुटम्।
प्रकम्पनो भूमिगतः प्रजायते निरुध्यते क्वापि न चास्य सङ्गतिः॥ ३.६

मनोरमा को स्वप्न के द्वारा संकेत मिला कि सुदर्शन अयोध्या का राजा होने वाला है। इधर वाराणसी में राजन्या शशिकला ने देखा कि भरद्वाज आश्रम का कुमार उसका प्रणयी है। स्वप्न में ही जगदम्बिका ने शशिकला का उससे पाणि-ग्रहण करा दिया। ब्राह्मण ने शशिकला से बताया कि भरद्वाज आश्रम में रहने वाला श्रेष्ठ युवक राजकुमार है। अयोध्या नरेश-ध्रुवसन्धि का पुत्र सुदर्शन है। शशिकला मदन-ताप से पीडित हुई। उसने सुदर्शन के लिए पत्र भेजा—

मनोभवो मे हृदयं क्षणे-क्षणे शिलीमुखैर्मन्दतरं निकृन्तति।
म्रिये समागत्य वृणीष्व रक्ष मां जगज्जनन्या त्वयि योजितास्म्यहम्॥

जगदम्बिका ने स्वप्न में सुदर्शन को वाराणसी में सम्पन्न होने वाले शशिकला के स्वयंवर में भाग लेने को कहा और बताया कि मैं स्वयं वहाँ तुम्हारी सहायता करूँगी।

पंचम अंक में स्वयंवर के लिए राजा आते हैं, किन्तु स्वयंवर नहीं होता। राजभवन में ही चुपचाप सुदर्शन का शशिकला से विवाह होने की संभावना है। इस पर राजा अपना अपमान समझ कर लड़ने को उद्यत होते हैं।[1] षष्ठ अंक में युद्ध में जगदम्बा युधाजित् और शत्रुजित् को मार डालती है।

सुबाहु ने जगदम्बा से वर माँगा कि आप यहीं रहें। वे तैयार हो गईं।

---

१. युधाजित् शशिकला के पिता सुबाहु से कहता है—

हठात् कन्यां हरिष्यामस्तत्रायातां स्वयंवरे।
सुदर्शनं हनिष्याम इत्येतत् संगिरामहे॥ ४.७

वाराणसी मे दुर्गाकुण्ड में वे विराजमान हैं। सुदर्शन भरद्वाज आश्रम में आ गये। वहाँ वह प्रजा का उपायन ग्रहण करते हुए सिंहासन पर बैठता है।

षष्ठ अंक मे भरद्वाज की आज्ञा से सुदर्शन मनोरमा और शशिकला के साथ साकेत जाते हैं।

नाट्यशिल्प

चतुर्थ अंक का पहला दृश्य सर्वथा प्रवेशक है। कवि ने इस नाटक मे अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग न करके क्वचित् दृश्यानुबन्ध से उनका काम किया है।

रंगपीठ पर युद्ध तथा मार-काट होती है। नाट्य-निर्देश है रंगपीठ पर वर्त्तमान जगदम्बिका के विषय मे—

पुनर्जगदम्बिका किंचिदग्रे गत्वा शत्रुजितं युधाजितं च हिनस्ति।

सूत्रधार या अन्य कोई निवेदक पंचम अङ्क में यह सुनाता है—

ततः सुदर्शनबाणैस्त्रस्ता युधाजित्-सेना पलायिता। यावत् केरलनरेशं हन्तुं सुदर्शनो बाणं सन्दधाति तावदम्बिकया निहतं तं भूमौ पतितं पश्यति।

जगदम्बिका को पात्र बनाकर कवि ने नायकजन्य नाट्यगरिमा की अभिवृद्धि की है।

इस नाटक मे संवाद लघुमात्रिक होने के कारण नाट्योचित और स्वाभाविक है।

दुर्गास्तुति के अनेक गीतो से नाटक मे प्रचुर मनोरंजन की सामग्री विद्यमान है।

शङ्कर-विजय

मथुराप्रसाद का शंकरविजय एक नये प्रकार का रूपक है। इसके छ: अङ्कों मे से प्रत्येक में शङ्कर का नये-नये प्रकार के प्रतिपक्षियो के मतो के विलोडन की चर्चा है।[1] सर्वप्रथम कुमारिल से मिलकर शंकर मण्डनमिश्र से मुठभेड करते हैं।[2] वे नर्मदा-तट पर स्थित माहिष्मती मे मण्डन मिश्र के मुहल्ले मे पहुँचते है। वहाँ पनहारिन से मण्डन का घर पूछा तो उसने बताया—

यत्र कीरमहिलाः श्रुतीनां साधयन्ति स्वत एव प्रमाणम्।

---

१. शंकर का व्रत है—

उद्धरिष्याम्यहं वेदांल्लोकानुग्रहकांक्षया।
वेदार्थान् स्थापयिष्यामि नास्तिकोन्मूलनं चरन्॥ १.९

२. कुमारिल मरणासन्न थे। वे तुषाग्नि मे जलने वाले थे। शंकर के दर्शन मात्र से उन्हे शंकर का अभिप्रेत ज्योति:स्वरूप ब्रह्म साक्षात्कार हो गया। कुमारिल ने शंकर को मण्डन के पास भेज दिया। मण्डन शङ्कर के अनुयायी बन गये।

शंकर के पूछने ने पर दासी ने आगे बताया—

यत्र वेदविहिते श्रुतित्त्वे वर्तते तिर्यग्भवेऽपि विचारः।
तत्र का कविकथावलानां वास्तु मानसगतमपि कथयन्ति ॥ २.३

मण्डन कर्मकण्ड में लीन थे। चारों ओर से द्वार बन्द थे। योगबल से उड़कर शंकर उनके पास पहुँचे। मण्डन ने उन्हें देखकर पूछा—मूँड़मुँड़ाये तुम कहाँ से ? ऐसी बातों से विवाद या कलह आरम्भ हुआ। पुरोहित के कहने पर श्राद्धकर्म पूरा करा कर मण्डन विवाद करने के लिए अपनी पत्नी की अध्यक्षता में बैठे।

शंकर ने ब्रह्मादिपथक वेदान्त के महावाक्यों को सुनाया–'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि। मण्डन ने कहा—जीव और ईश भिन्न होने से अनैक्य है। लम्बे शास्त्रार्थ के बाद शंकर का मत प्रभिन्न हुआ। तब तो देवरूप कुमारिल ने आकाश से दुन्दुभिनाद किया। मण्डन ने कहा—

संसार-सागरे मग्नो रक्षितोऽहं कृपानिधे
नाशितं हृदयध्वान्तं चक्षुरुन्मेपितं त्वया ॥ २.२

तृतीय अङ्क में शङ्कर दिग्विजय-पथ में उज्जयिनी पहुँचे। यहाँ के राजा सुधन्वा ने सभी राजाओं और दार्शनिकों को बुलाकर ऐकमत्य-स्थापना के लिए परिषद् की थी। सर्वप्रथम चार्वाक बोला—न स्वर्ग, न मोक्ष, न पुण्य, न पाप। केवल प्रत्यक्ष ही सब कुछ है। शंकर के उत्तर से चार्वाक परास्त हुआ। राजाज्ञा से वैतालिक ने सुनाया—

चार्वाको विजितोऽनेन शङ्करेण महात्मना।
ततः सहानुगैर्यातश्चार्वाकः शाङ्करं मतम् ॥ ३.४३

चतुर्थ अङ्क में जैन सूरि शङ्कर से भिड़ा। उसने कहा—

जीवाजीवयुगात्मकं जगदिदं स्याद्वादमुद्राङ्कितम्।

शंकर ने ब्रह्म-दर्शन द्वारा सूरि की सप्तभंगी को भग्न कर दिया। तब तो शिष्य बनने के लिए उत्सुक उसने कहा—

शिष्योऽहं प्रतिपालयस्व शरणायातं सदा शंकर ॥ ४.१७

पंचम अङ्क में बौद्धाचार्य ने पूर्वपक्ष प्रस्तुत किया—

मुक्तो जीवः कथंकारं ब्रह्मण्येव प्रलीयते।
ब्रह्मणः संभवत्वं चास्थाप्यतां तत्सयुक्तिकम् ॥ ५.६

शंकर का उत्तर था—

यस्माद् यत्तु समुत्पन्नं तत्तस्मिन्नेव लीयते
यथाकाशे घटाकाशः क्षितौ च शकलं क्षितेः ॥ ५.८

अन्त में बौद्ध हारे। बहुत से शंकर के अनुयायी बने और बहुत से भाग कर चीन चले गये।

षष्ठ अङ्क में कौलाचार्य ने शंकर से विवाद ठाना। वह पहले तो कृत्या बना

कर शकर को ध्वस्त कराना चाहता था, किन्तु कोई उसका सहायक न बना। उसने पोटाश लेकर उससे कृत्या की साधना आरम्भ की। उसने मंत्र पढ़ कर पोटाश पात्र में डाला तो उसमें अग्नि उत्पन्न हुई। उसने कौलाचार्य को जलाना शुरू किया।

अन्त मे व्यासादि ने शंकर का अभिनन्दन किया।

शङ्कर-विजय मनोरंजन के साथ बहुत कुछ सास्कृतिक ज्ञान अनायास ही प्राप्त करा देता है।

वीरपृथ्वीराज-नाटक

वीरपृथ्वीराज नाटक का प्रथम अभिनय दुर्गा-भगवती-महोत्सव में हुआ था। इसमें सोलन का राज-परिवार और विद्वान् प्रेक्षक थे। इसका प्रणयन १९४० ई० में हुआ।

कथासार

पृथ्वीराज अपने सामन्त वीरो के साथ आखेट कर रहे थे। वहाँ आये हुए रामदत्त नामक पुरोहित ने सूचना दी कि कोषाध्यक्ष भोदूंसाह ने गौरी महम्मद को निमन्त्रण दिया है कि 'इधर आक्रमण करो। पृथ्वीराज आखेट-यात्रा मे बाहर हैं। घग्घर-नदी से होकर वक्र पथ से दिल्ली पर धावा बोल दें। सामन्तादि कोई नही दिल्ली में है। शीघ्र आपकी विजय होगी।' गुप्तचर ने कहा कि दो-तीन दिनों मे गौरी को आप आया ही समझें।

गौरी के विरुद्ध लड़ने के लिए काककह्ल को सेनाध्यक्ष बनाया गया। सभी सामन्तों ने कहा—हम लोग गौरी को पकड़ लेंगे। प्रस्थान करते समय वीरो ने गाया—

> कुरुत सुवीरा रिपुकुलनाशं विदधत यशसो जगति विकासम्।
> अरिगणयवनान् विनिहतमूलाद् शूलाद्रहितान् गमयत महितान्॥

प्रथम अङ्क के दूसरे दृश्य में गौरी को पकड़ कर काककह्ल पृथ्वीराज के पास लाता है। पृथ्वीराज ने उसकी बेड़ी मुक्त करा दी। उसे कुर्सी पर बैठाया। उसको मार डालने का तथा आजीवन बन्दी रखने का प्रस्ताव मन्त्रियों ने रखा। गौरी ने राजा से प्राण भिक्षा माँगी, पैर पर गिर कर कुरान की शपथ ली कि अब ऐसा नही करूँगा। पृथ्वीराज ने उसे छोड दिया।[1] चामुण्ड ने विरोध किया और कहा इसे न छोड़ा जाय।

कन्नौज से आये चर ने तभी बताया कि जयचन्द ने अपनी भगिनी संयोगिता के स्वयंवर में द्वारपाल के स्थान पर आपकी मूर्ति स्थापित की है।

द्वितीय अङ्क मे पृथ्वीराज कुछ सामन्तो के साथ कान्यकुब्ज पहुँचे। वहाँ संयोगिता पृथ्वीराज को चाहती ही थी। संयोगिता ने जयचन्द से स्पष्ट कह दिया

१. इस प्रसंग मे विचारणीय था—

विपक्षगौरीहननेऽस्य सैन्ये पुत्रादिषु स्यात् प्रतिशोधलिप्सा।

कि मुझे तो पृथ्वीराज ही चाहिए। जयचन्द्र ने उसकी जान लेने के लिए तलवार निकाली तो उसकी महारानी ने उसे पकड़ लिया। जयचन्द्र अमर्षभरा बाहर गया तो प्रियंवदा नामक संयोगिता की सखी ने समझाया कि तुम तो स्वयंवर में चलो। वहाँ लोहे की पृथ्वीराज की प्रतिमा को ही जयमाल अर्पित करो। जब संयोगिता ने ऐसा किया तो जयचन्द्र ने वहीं उसका वध करना चाहा। पुरोहित और महारानी के समझाने से जयचन्द्र इस पर सहमत हुआ कि इसे गंगाप्रासाद में अकेले मरने के लिए छोड़ दिया।

इधर पृथ्वीराज को संयोगिता का पत्र मिला—

भवदायत्तप्राणां रक्षे मां मा व्यलम्बिष्ठाः ॥ २.८

तब तो क्षणभर में पृथ्वीराज उसके पास जाकर बोले—

तव प्रेम्णा सौन्दर्येण च क्रीतोऽस्मि।

तृतीय अङ्क में मन्त्रियों के परामर्शानुसार शंख बजाते हुए पृथ्वीराज संयोगिता को लेकर दिल्ली की ओर चले। चामुण्ड नायक सेनापति उनके पीछे शंख बजाता चला। जयचन्द की आज्ञा से उसकी महती सेना पृथ्वीराज को पकड़ कर लाने के लिए चली। युद्ध में सर्वश्रेष्ठ वीर कह्न मारा गया। निराश जयचन्द ने निर्णय लिया—

'अहं तु यवनराजेन सन्धाय दुर्मदमेनं नाशयिष्ये।'

किसी सहायक राजा ने जयचन्द्र से कहा कि ऐसी स्थिति में भारत यवनों के चंगुल में पराधीन हो जायेगा। जयचन्द ने कहा कि जैसा भी हो मैं तो ऐसा ही करूँगा।

चतुर्थ अङ्क में वीरों की मृत्यु से शोकग्रस्त होने पर भी पृथ्वीराज संयोगितासक्त होकर राजकार्य भी भूल बैठे। लाहौर का राजा धीरपुण्डीर स्वतन्त्र हो गया। हाहुलीराज गौरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए उत्साहित कर रहा था। दिल्ली की दुर्बलता देखकर मुहम्मद गौरी पुनः आक्रमण करने के लिए समुत्सुक हुआ।

चामुण्डादि को पृथ्वीराज ने छोटे अपराध के कारण कारागार में डाल दिया।

पंचम अङ्क में चाणक्य गौरी को एक पत्र द्वारा पृथ्वीराज की शक्तिहीनता और दुःस्थिति का वर्णन करता है और निवेदन करता है—

ससैन्यमभियातव्यं निगडीक्रियतामसौ।
आर्यदेशेऽत्र साम्राज्यं चिरं चर सुखी भव ॥ ५.२

मुहम्मद गौरी आक्रमण करने के लिए लाहौर तक आ पहुँचा। पृथ्वीराज को यह सूचना मिली भी तो वे चुप रहे। ऐसी स्थिति में समरसिंह ने पृथ्वीराज को एक जोरदार पत्र लिखा—

गोरीमहम्मदो वेगात् आक्रामन् परिवर्वते।
कथाशेषममुं नीत्वा प्रजायाः पालनं कुरु ॥ ५.५

पृथ्वीराज को वस्तुस्थिति का परिचय कराया गया। बात बिगड़ चुकी थी। सामन्त चले गये थे। चामुण्डा को कारागार से निकाला गया। लाहौर का राजा धीरपुण्डरीक भी गौरी से परास्त होकर भाग आया। लाहौर से आगे वह आ चुका था। सभी युद्ध के लिए सज्जित होने लगे।

षष्ठ अङ्क में युद्धभूमि में पृथ्वीराज पहुँचते हैं। समरसिंह सेनापति बनाये गये। जयचन्द ने पृथ्वीराज की ओर से लड़ने के लिए आते हुए कतिपय सामन्तों को रोक लिया। हाहुलीराय चन्दवरदाई के निवेदन करने पर भी गौरी के साथ रहा। धीरपुण्डीर को हाहुलीराय का सिर काटने का काम स्वयं पृथ्वीराज ने सौंपा। धीरपुण्डीर ने यह काम पूरा कर दिया। गौरी की सेना तितर-बितर हो गई। उसे हारा जान कर पृथ्वीराज की सेना के सामन्त विजयोल्लास में वीरपान करने लगे।[1] उसी समय गौरी के वीर आये और उन्होंने सभी वीर पायी ऊँघते हुए सामन्तों को मार डाला। पृथ्वीराज बन्दी बनाये गये। गौरी के मन्त्री ने आदेश दिया कि जयचन्द्र को भी मार डालो।

संयोगिता पतिपराजय को सुनकर विस्तब्ध होकर मर गई। अन्तःपुर दग्ध हो गया। चन्दवरदाई को पुनः जल्हण मिला। उसने पृथ्वीराजरासो की राजग्रहण तक षचित पुस्तक की प्रति देकर कहा कि आगे वैर शोधन का प्रकरण जुटना है। यथा,

जगदम्बाप्रसादेन पृथ्वीराजशरादहम्।
विनाश्य गौरीयवनं विधास्ये वैरशोधनम्॥ ६.७

पृथ्वीराज को गौरी अपनी राजधानी में ले गया। वहाँ सेनापति को आदेश दिया कि पृथ्वीराज की आँखें निकालें। कुछ दिनों के पश्चात् काषायाम्बरधारी चन्दवरदाई वहाँ पहुँचा। अपनी तेजस्विता, भूत और भविष्य विषयक वाणी से उसने एक शासनाधिकारी को प्रभावित किया। उसने मुहम्मद गौरी से उसे मिलाया। चन्द ने गौरी से निवेदन किया कि पृथ्वीराज को शब्दवेधी बाण का कौशल प्राप्त है। वक्रगत्या इतस्ततः उपनिबद्धानि सप्तापि घटीयन्त्राणि एकेनैव शरेण भेत्स्यति। गौरी की अनुमति लेकर वह पृथ्वीराज से मिला। उसने सांकेतिक भाषा में पृथ्वीराज से कहा कि आप शब्दवेधी बाण का कौशल हमें दिखाते हुए विजयी बनें।

चन्द ने सात घटिका-पात्र बँधवाये। पृथ्वीराज को बुलाकर उनके हाथ में धनुर्बाण दिया गया। इस अवसर पर अन्य धनुषों का तिरस्कार करके पृथ्वीराज ने अपना ही धनुष लिया। पृथ्वीराज ने उस धनुष का आलिंगन किया। उन्होंने जगदम्बा की स्तुति की—

---

१. वीरपान युद्ध के पहले या पीछे जोशीला पेय है। सम्भवतः यह पेय नशीला मद्यपान है।

शुम्भनिशुम्भ-विदारिणि जगदम्ब त्वां प्रपन्नोऽस्मि ।
मा लक्ष्यभेदपरतः कुत्रापि भवेच्च वाणोऽयम् ॥ ६.१२

गौरी ने शब्दवेधी वाण के प्रवर्तन के लिए सातों घंटाओं को वजाया पर पृथ्वीराज ने वाण नहीं चलाया। तव अधिकारी ने कहा कि जब आज्ञा देंगे तभी वाण चलेगा। सात घण्टियाँ पुनः वजाई गईं। गौरी ने कहा—वेधय और वाण ने उसके तालु को वींध दिया। वह मर ही गया।

पृथ्वीराज ने चन्द से कहा—तुम मेरी छुरी से मेरे हृदय को क्षत करो। ऐसा करने पर मरते-मरते चन्द की इच्छानुसार पृथ्वीराज ने चन्द को कटार के प्रहार से मार डाला।

चन्द के मुख से अन्तिम पद्य निकला—

लोकोत्तरप्रकारेण विहितं वैरशोधनम्।
स्थेयात्तत्ते यशस्तावद् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ६.१३

समसामयिकता

नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार ने कहा है—

दुःखान्तकं परमथापि सुखैकरूपं लोकप्रवोधजनकं समयानुकूलम्।
देशोत्थितिं च विदधत्सदसन्नयाढ्यं तस्मादिदं भवति मे वहुमानपात्रम् ॥

अर्थात् इस नाटक से लोकप्रवोध होगा। यह समयानुकूल है। इसमें देशोत्थान का प्रकल्पन है।

नाट्यशिल्प

रंगपीठ पर धनुर्विद्या की उच्चकोटिक उपलब्धियाँ दिखाई गई हैं। प्रथम अङ्क में पृथ्वीराज रात्रि के समय कैमास और उसकी धूर्त कर्णाटी—गणिका को वाण से मारते हैं।

रंगमंच पर अवाक् कार्य रोचक हैं। यथा पंचम अङ्क में—पृथ्वीराज एकमसि तत्कटौ वद्ध्वा अपरं तद्हस्ते ददाति। केसरवर्णमुष्णीषं च तच्छिरसि स्वयं वध्नाति। चामुण्डराजः सुप्रसन्नः सन् समरसिंहं प्रणिपत्य वक्षसालिंगति। उभौ परस्परमालिंगतः। पुनः पृथग्भूत्वा सर्वान् पश्यन्।

षष्ठ अंक में अवाक् कार्य का दूसरा उदाहरण है—

ततः कुतोऽपि तातारगोरीमहम्मदसहिताः कतिचन यवना आक्रमन्ते। सर्वेऽपि सामन्ता निरस्त्रा अनुत्थीयमाना अर्धोत्थिता वा हताः। पृथ्वीराजश्च निरस्त्र एव गृह्यमाणो भुजदण्डाघातेन कतिचन यवनान् निपातयति। परितः प्रतिगतैर्गौरीतातारप्रतिभिर्गृहीतो वद्ध्वा नीयते च।

रंगपीठ पर हत्या दिखलाना परवर्ती नाट्यशास्त्रियों को अभीष्ट नहीं था, जो इसमें दिखाया गया है।

षष्ठ अङ्क के प्रायः अन्त में एक दृश्य का आरम्भ पृथ्वीराज की एकोक्ति से होता है। जिसमें वे अपने भूतकालीन, भूलों पर पश्चात्ताप व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जो कुछ हुआ, वह शुभ के लिए ही अन्ततोगत्वा होगा।

गान्धीविजयनाटक

मथुराप्रसाद दीक्षित के गान्धी-विजयनाटक मे केवल दो अङ्क हैं। इसके दोनों अङ्कों में अनेक दृश्य है। इसकी घटनायें अफ्रीका और भारत में घटी हैं और १९१० से लेकर १९४७ ई० तक प्रचरित हैं। कवि ने राष्ट्रहितैकबद्ध-परिकर मनीषियो के प्रीत्यर्थ इसकी रचना की थी। इसमें भारत के स्वातन्त्र्य-प्राप्ति की कथा है।

कथासार

प्रथमाङ्क मे भारतमाता का बन्धन काटने मे तिलक, मालवीय आदि लगे हैं। तिलक ने कहा—

> यष्टचपेटां प्रहरतां दण्डैस्तस्य प्रतिक्रिया।
> मातः स्वल्पेन कालेन द्रक्ष्यस्येतान् हतानिव ॥

भारतमाता कहती है कि मेरी सन्तान मे से ही कुछ ऐसे है, जिनके कारण स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास विफल हुआ है। उन्ही ने खुदी राम को पकड़वाया और बङ्गाल के शस्त्रागार को बताया, जहां अंगरेजों को ध्वस्त करने के लिए सहस्रों बम थे। देशवासियो में स्वातन्त्र्य की भावना जगाना आवश्यक है। उसके बिना काम नही चलेगा।

अफ्रीका मे भारतीय सेठ अब्दुल्ला अपने काले कारनामे के लिए न्यायालय से दण्ड पाने के भय से चिन्तित होकर गान्धी को बुलाता है। गान्धी कहते हैं—न्यायाधीश के सामने सच-सच कह दो। तुम्हें बचा लूंगा।

गान्धी ऐसा कराने मे समर्थ हुए। वही अफ्रीका में गान्धी को गुण्डे गोरण्डो ने पीटा, गान्धी ने उनको क्षमा किया। वहाँ से गान्धी भारत आये, जहाँ चम्पारन में गौरण्डों का अत्याचार भीषण था। यथा—

> चम्पारण्ये दुरात्मानो वापयित्वैव नीलिकाम्।
> यथेच्छं स्वल्पमूल्येन गृह्णाना दुःखयन्त्यपि ॥ १.८ ॥

गान्धी ने अफ्रीका में भारतवासियो पर होते तीन अत्याचारो को बन्द करा दिया[1]। इसके लिए उन्हे अहिंसात्मक सत्याग्रह संचालन करना पडा। तब भारत आने के लिए गान्धी तैयार हुए। उपकृत भारतवासियो ने जो उपायन दिये, उनमे से एक बहुमूल्य हार गान्धी जी की पत्नी कस्तूरबा अपनी बहू के लिए रख लेना चाहती थीं। गान्धी ने कहा कि ऐसा करना उचित नही होगा। यह सारी निधि इसी देश के उपकार के लिए लगाई जाय।

द्वितीय अङ्क में गान्धी जी भारत में आकर चम्पारन मे निलहे गोरण्डों की प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हैं। गान्धी, राजेन्द्रप्रसाद एक ओर और गौरण्ड प्रतिनिधि दूसरी ओर पीडितों का साक्ष्य लिख रहे थे। वहाँ गौरण्डों का अत्याचार

---

१. तीन पौण्ड का कर, अंगूठे की निशानी और गौरण्डों की मार चुपचाप सहना।

प्रमाणित हुआ और वे भाग चले। अन्य दृश्य में विदेशी वस्त्रों की होली मालवीय जी के द्वारा जलाई गई।

पञ्जाब में जनता पर घोर अत्याचार हो रहा था। जालियाँवाला बाग में गोली चलने से हजारों निर्दोष लोग मारे गये। मालवीय जी ने उस अवसर पर कहा था—

अशान्ता मिलिताः सर्वे प्रतिशोधचिकीर्षया।
हिंसां चरन्तः सकलान् नाशयिष्यन्ति वः क्षणात्॥ २.३

गौरण्डों का तर्क था कि इस हिंसा से अवश्यभावी भविष्य की महती हिंसा रुक गई। यथा,

एवमिह विधानेन सर्वत्रैव जनेषु त्रासः संजातः। अन्यथा समस्ते भारते विद्रोहे संजाते तस्योपशमनार्थं महती हिंसा भविष्यति॥

अगले दृश्य में गान्धी लवण-निर्माण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वह गान्धी-निर्मित नमक दस हजार रुपये पर बिका। वहाँ गान्धी-पटेल आदि बन्दी बनाये गये। अगले दृश्य में गान्धी लार्ड इरविन् से मिलते हैं। गान्धी के समझाने पर लार्ड ने सभी राजनीतिक बन्दियों को मुक्त किया और लवण कर समाप्त किया।

अगले दृश्य में बम्बई की महासभा में क्विट इन्डिया का प्रस्ताव स्वीकार होने पर सभी उच्चकोटिक नेता बन्दी बनाये गये।

इसके पश्चात् नये दृश्य में क्रिप्स की कुटिलता का भण्डाफोड़ है। फिर दिल्ली में आई० एन० ए० के सेनाध्यक्षों का दिल्ली में न्याय दिखाया गया है। सभी छोड़े गये।

अन्तिम दृश्य में माउण्टबेटन्, जवाहरलाल, बलदेवसिंह और जिन्ना परामर्श करते हैं। भारत को विभाजित करके स्वतन्त्र बना दिया जाता है।

नाट्यशिल्प

कवि ने इस नाटक में महात्मा गान्धी, तिलक, मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, लार्ड इरविन्, क्रिप्स, भूलाभाई, और माउण्टबेटन आदि महामानवों को नायक बनाया है। पाठकों के हृदय में देश के उन्नायकों के प्रति श्रद्धा और आदर अंकुरित हो—इस उद्देश्य से इसकी रचना की गई है। इसमें भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करने वालों की चरित-गाथा है। इन सभी विशेषताओं से यह कृति समादरणीय है। निगडित भारत-माता का दृश्य भावुकतापूर्ण है।

इस में केवल दो अङ्क हैं, फिर भी इसे नाटक कहा गया है। यहाँ नाटक उपलक्षण मात्र है।

प्राकृत के स्थान पर इस नाटक में हिन्दी का प्रयोग किया गया है। इसमें हिन्दी खड़ी बोली है। अच्छा रहा होता कि आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं का

पात्रानुसार प्रयोग विविध प्राकृतों के स्थान पर होता। अन्यथा भाषा सर्वथा बालोचित है। इसकी रचना बालकों के चरित्र-निर्माण के उद्देश्य से की गई है।

भूभारोद्धरण

मथुराप्रसाद के भूभारोद्धरण में पाँच अङ्क हैं। यह दुखान्त नाटक है। इसमें गान्धारी के शाप—

'रे कृष्ण मम वंशस्य अष्टादशभिर्दिनैस्त्वया नाशः कारितः। परं तव वंशस्य त्वत्समक्षमेकेनैव दिनेन सर्वनो नाशो भविष्यति।' के अनुसार कृष्णान्त दिखाया गया है।

कथासार

रंगपीठ पर टेनिस खेलते हुए साम्ब अपने भाई के साथ वर्त्तमान है। उसे समाचार मिलता है कि राजोपवन में कोई दर्शनीय सर्वज्ञ ऋषि आये हैं। साम्ब उनकी परीक्षा लेने चला कि कहाँ तक सर्वज्ञ हैं। उसने पेट पर लोहे का तवा बाँधा और उसके ऊपर कपड़ा लपेटा, जिससे गर्भ सा ज्ञात हो। फिर स्त्री रूप धारण किया। दुर्वासा के पास पहुँच कर जब पुछवाया कि इसे लड़का होगा कि लड़की तो उन्होंने पैर पटकते हुए कहा—इससे तो वह उत्पन्न होगा, जिससे सभी यादवों का नाश होगा। विदूषक ने यह सारा समाचार कृष्ण को दिया।

द्वितीय अङ्क में कृष्ण से नारद मिल कर कहते हैं कि दुर्वासा की बात सच होगी। इधर कृष्ण ने उस तवे को चूर्णविचूर्ण कर दिया था। नारद ने बताया—

धूलिः स्याद्वा घनः स्याद्वा कठोरो मृदुरस्तु वा।
दुर्वासाः सत्यसंकल्पः सत्यवाक् विदितः क्षितौ॥ २.२

आगे चल कर कृष्ण ने नारद से पूछा कि आजकल अनिरुद्ध का कुछ समाचार नहीं मिल रहा है। नारद ने बताया कि बाणासुर की कन्या उषा के चक्कर में अनिरुद्ध घिर गया है। कृष्ण ने बाण से युद्ध किया। शिव ने दोनों का मेल कराया।

तृतीय अङ्क में साम्ब के तवे का चूर्ण बनाकर विदूषक ले आया। उसने बताया कि इसकी बिल्ली (शंकु) नहीं चूर्ण हुई। विदूषक उसे समुद्र में फेंक आया।

अर्जुन युधिष्ठिर के पास से कृष्ण की नगरी द्वारका आये और बोले कि किसी सर्वज्ञ ने महाराज से कहा है कि आज से सातवें दिन द्वारका समुद्र के जल में डूब जायेगी। तब तो कृष्ण ने नारद से पूछा कि द्वारका की इन स्त्रियों और पुरुषों का मैं क्या करूँगा? अर्जुन ने कहा—मेरे साथ भेज दें। नारद ने कहा कि इन्हें आप बचा नहीं सकते। क्यों?

पाटच्चराः सन्ति रणप्रवीणाः प्राणेषु ये निःस्पृहतामुपेताः।
त एव मार्गे परिवृत्य चैनाञ्जेष्यन्ति नेष्यन्ति हठाद् विधर्माः॥

चतुर्थ अङ्क में अर्जुन का द्वारका की रमणियों को लेकर शून्यारण्य में जाने

का दृश्य है। विदूषक साथ है। मार्ग में पाटच्चर मिले। उन्होंने अर्जुन से कहा—'रे धनुही वाले, ठहर! धनुही फेंक, नहीं तो सिर पर लट्ठ पड़ेगा।' अर्जुन ने वाण चलाया तो वचकर उसने अर्जुन के धनुष को पकड़ लिया और तोड़ कर फेंक दिया। उसके सिर पर एक लट्ठ मारा और एक पेड़ से बाँध दिया। यादवियों को वे ले भागे।

नारद ने अर्जुन को मुक्त किया। अर्जुन इन्द्रप्रस्थ अकेले लौट गया। इधर द्वारका में समुद्र की वाढ़ आ गई।

पंचम अङ्क में कृष्ण निष्काम कर्म योग की शिक्षा साम्ब को देते हैं। वे कहते हैं।

मयाप्येवं विधीयन्ते कर्माणि सकलान्यपि।
न मे तेषु स्पृहालेशो न मां तानि स्पृशन्त्यपि॥ ५.१

दूसरे दृश्य में वलरामादि मदिरा छक कर अपवाद में निरस्त हैं। नारद आकर साम्ब को भड़काते हैं कि यह सात्यकि तुम्हारे पिता की निन्दा क्यों करता है? साम्ब ने उसे खोटी-खरी सुनाई। वस, सात्यकि ने उसे चपेटा जड़ दिया। निकट समुद्र तट से क्षुपक उखाड़ कर वे लड़ने लगे। सभी उसके प्रहार से मर गये।

अगले दृश्य में कृष्ण पैर ऊँचा कर वृक्ष के नीचे वैठे थे। व्याधे ने पैर में जम्बू का चिह्न देखकर उसे हरिण का नेत्र समझ कर वाण मारा तो कृष्ण भी घायल होकर उससे वोले—

रामावतारे कपिरूपधारिणं हतोऽहनं त्वां युयुधानमन्तरा।
आज्ञापितस्तत्प्रतिशोधकर्मणे व्यधान्न ते किंचिदपीहि दुर्मतिः॥

वाण का लोहशंकु धीवर से मिला था। उसे मछली ने खाया था, जब विदूषक ने उसे समुद्र में फेंका था। कृष्ण की मरणासन्न स्थिति देखकर वलराम ने समुद्र में जल समाधि ले ली।

नाट्यशिल्प

इस नाटक में साम्ब के स्त्री रूप धारण करके नकली गर्भ का परीक्षण कराना छायातत्त्वानुसारी है।

प्रथम अङ्क में शापवृत्त दृश्य है। द्वितीय में उसे रंगमंच पर नारद और यादव के संवाद द्वारा सूचित किया जाता है। मथुरा प्रसाद इस प्रकार की द्विरुक्ति को प्रायः सभी कृतियों में अपनाये हुए हैं।

रंगपीठ पर टेनिस का खेल दिखाना कवि की आधुनिकता के प्रति रुचि का उदाहरण है।

व्यासराजशास्त्री का नाट्यसाहित्य

को० ला० व्यासराज शास्त्री की विद्यासागर उपाधि उनके सारस्वत-उत्कर्ष का प्रमाण है। इनकी अनेक रचनाओ मे महात्म-विजय श्रेष्ठ है। इनमे इनकी शैली और प्रतिभा का सर्वोपरि परिष्कार है। शास्त्री जो उत्साही और महाप्राण कवि रहे है। उन्होने रामायण पर आधारित लगभग २५ लघु नाटक लिखे, जिनका अभिनय प्राय दो घटे मे हो जाता हो।[1] सस्कृत के प्रति भारतवासियो की उपेक्षा उनके हृदय को कुरेदती थी। उन्होने सस्कृत के दस प्रकार के रूपको मे से अनेक के लुप्त हो जाने की चर्चा करते हुए कहा है—

Most of them have since Vanished presumably due to the disdainful attitude shown towards them by our Countrymen.

व्यासराज के अनेक नाटको मे विद्युन्माला, लीलाविलासप्रहसन, चामुण्डा, शार्दूल-सम्पात और निपुणिका प्रख्यात हैं।

विद्युन्माला

विद्युन्माला अनेक दृश्यों मे विभक्त एकाङ्की है।[2] इसमे रामायण के आधार पर राम को वनवास देने की कथा है।

राम के अभिषेक की सज्जा हो रही थी। मन्थरा ने कैकेयी के भवन मे प्रवेश किया। उसी समय लका मे महाभयकर भूकम्प अनिष्ट सूचक हुआ। इस प्रलयकर उत्पात मे रावण के प्रासाद का ध्वजकेतु गिर पडा और धूमकेतु रावण के हर्म्यशिखर पर गिरा।

अगले दृश्य मे मन्थरा कैकेयी को जगाती है कि विपत्ति आ पडी है। कल राम का राज्याभिषेक है। कैकेयी ने प्रसन्न होकर उसे प्रीतिदान मे कण्ठहार दिया। मन्थरा ने उसे सब प्रकार समझाया कि अब आगे आपकी दुर्गति होगी। इससे बचाने के लिए आपके भाई ने मुझे आपके पास भेजा है। मन्थरा की दाल न गली।

तृतीय दृश्य में बृहस्पति ने उपर्युक्त वृत्तान्त जब इन्द्र को सुनाया और कहा कि हम लोगों का नीतिवीज नष्ट हो गया, तब इन्द्र ने कैकेयी की प्रशसा की—

अभिरूपान्वयजाता सा सूक्तानि गिरतीति किं चित्रम्।
जातीलता हि सूते सुमनो जालानि सुरभिगन्धीनि॥

1. I have to my credit nearly twenty such dramas dealing with the main topics in Rāmāyaṇa.
२. इसका प्रकाशन विद्यासागर प्रकाशनालय, No १७, ४, मड्नरोडा राजा अण्णामलैपुरम्, मद्रास से १९५५-ई० मे हो चुका है।

वृहस्पति ने कहा कि राम राजा हुए तो राज्य के काम में इतने व्यस्त रहेंगे कि शत्रुओं का उच्छेद करने की चिन्ता ही उन्हें न रहेगी। अब उपाय यह है कि हम लोग विद्युन्माला नामक पिशाचिका को साकेत भेजकर कैकेयी के हृदय को उससे क्षोभित करायें।

चतुर्थ दृश्य में कैकेयी ने स्वयं अभिषेक-वैभव देखा तो तिलमिला उठी। कैकेयी ने मन्थरा के भड़काने पर पूछा कि राज्याभिषेक कैसे विघ्नित हो? उसने उपाय बताया, जिसके अनुसार कैकेयी कोपभवन में जा पहुँची। दशरथ के मनाने पर उसने दो वरों की चर्चा की। दशरथ के वर देने के लिए उद्यत होने पर कैकेयी ने भरत का अभिषेक और राम का चीरजटाधारी होकर १४ वर्ष का वनवास माँगा। दशरथ के मुंह से निकला—

नूनं वरद्वयोद्भिन्नौ राहुकेतू रविद्विषौ।
यौ सूर्यवंशं ग्रसितुं युगपद् भुवमागतौ॥

दशरथ मूर्छित हो गये। सुमन्त्र आये तो उनसे कैकेयी ने राम को झट बुलवाया और उनसे दो वर की बात कही। राम ने स्वीकृति दी। राम चले गये। दशरथ ने कहा—

अयि दुर्वृत्ते, अद्य विच्छिन्नः त्वया सह दशरथस्य संसारबन्धः। इदं पश्चिमं ते दर्शनम्।

षष्ठ दृश्य में सीता से राम मिलते हैं। सीता को राम नहीं ले जाना चाहते थे। सीता ने तर्क उपस्थित किया—

त्वदर्धमङ्गं यदि मां विहाय प्रयाति वन्यां भुवमार्यपुत्रः।
गुरोर्न वाक्यं परिपालितं स्यादर्धं कृतं चेदकृतेन तुल्यम्॥

अर्थात् आपका आधा अङ्ग मैं यहीं रह गई तो पिता की आज्ञा का पालन कैसे हुआ? अनेक तर्क-वितर्कों के पश्चात् सीता को जाने की आज्ञा मिली।

सप्तम दृश्य में लक्ष्मण से राम की मुठ-भेड़ होती है। उनके हाथ में पितृवध के लिए तलवार थी—

नासौ पिता किन्तु विपद्द्रुमोऽसौ भूपान्वयक्षोणिधरः प्ररूढः।
छेत्स्याम्यहं लोकभयावहं तं कृपाणपाणिः कृपया विहीनः॥

राम ने उन्हें समझाया कि दैव की यह लीला है कि यह सब हुआ है। लक्ष्मण मान तो गये, पर राम के साथ जाने के लिए उद्यत हो गये।

अष्टम दृश्य में प्रस्थान के लिए अनुमति लेती हुई सीता को कैकेयी ने पहनने के लिए वल्कल दिये। राम ने उसे सीता की प्रार्थना पर अंशुक के ऊपर पहना दिया। वसिष्ठ आये। उन्हें सीता का वनवास ठीक नहीं प्रतीत होता था। सीता ने उनसे कहा—राम ही मेरे साम्राज्य हैं।

रामस्वामी शास्त्री के अनुसार—The author's Sanskrit style is of the Vaidarbhi Riti and flows sweetlly and smoothly like that of

Kālidāsa. He has written beautiful stanzas in new and simple and *charmingmetres like रुक्मवती, श्रीवृत्त, विद्युन्माला etc. besides* the well known and traditional metres. His prose and vrses are alike simple, natural and charming.

शिल्प

दृश्यों के आरम्भ में प्रायः एकोक्ति है। प्रथम दृश्य का आरम्भ वज्रदंष्ट्र की एकोक्ति से होता है। तृतीय दृश्य का आरम्भ इन्द्र की एकोक्ति से होता है। एकोक्ति से *अर्थोपक्षेपण का काम भी लिया गया है। दृश्य के बीच में भी एकोक्ति है। तृतीय* दृश्य के बीच में बृहस्पति की और चतुर्थ दृश्य के बीच में सुमन्त्र की एकोक्ति है।

गीतों का समावेश नाटक में प्रचुर मात्रा में है। गीत सरल है। यथा,

अस्तु नमस्ते दानवशत्रो ब्रूहि हितं ते किं करवाणि।
कस्तव वध्यः कस्तव साध्यः कस्तव जेय. किं वद कार्यम् ॥

एकोक्ति गीतों में अर्थोपक्षेपक तत्त्व है। यथा चतुर्थ दृश्य में मन्थरा की एकोक्ति है—

रामे बलवानस्याः कैकेय्याः स्नेहपाशबन्धोऽयम्।
भूयः कृन्ताम्येनं हृदयं स्पृशता वचः कृपाणेन ॥

व्यास के संवाद लघु मार्मिक, प्रायः एक-दो छोटे वाक्यों तक सीमित हैं। यथा,
इन्द्र—गच्छ, विजयिनी भव।
विद्युन्माला—देवगुरो आशिषमनुयाचे भवन्तम्।
बृहस्पति—सर्वतस्ते कुशलं भूयात्।
विद्युन्माला—अनुगृहीतास्मि।

लोकोक्तियों का रमणीय प्रयोग मिलता है। यथा,
(१) कुक्कुट्या वशमापन्नोऽयम्।
(२) अलोहमयी शृङ्खला खलु कलत्रं नाम।

लीलाविलास-प्रहसन

सात अङ्कों के लीला-विलास में गौतम नामक पण्डित बन्धु की कन्या लीला का विवाह विलास से अनेक झंझटों के बाद हो पाता है।[1] गौतम लीला का विवाह वेदान्तभट्ट नामक सीधे पण्डित से करना चाहता था और उसकी पत्नी चन्द्रिका उसे सेमिल नामक मद्य पायी को देना चाहती थी। एक दिन वेदान्तभट्ट के सम्बन्धी लीला से विवाह में आये तो चन्द्रिका ने उन्हें अपमानित किया। विवाह का समय इधर निर्णय हो चुका था। लीला वेदान्तभट्ट और सेमिल दोनों से सम्बन्ध नहीं चाहती थी। उसके भाई सत्यव्रत ने उसकी रुचि जान कर अपने सहपाठी विलास-कुमार से उसका पाणिग्रहण तय किया। विवाह के पहले ही दस्यु बलि देने के

१. लीलाविलास का प्रकाशन पालघाट से १९३५ ई० में हुआ।

लिए लीला को भैरवी के मन्दिर में ले जाते हैं। वहाँ अपने प्राणों की बाजी लगाकर विलासकुमार उसकी रक्षा करता है। इसके पुरस्कार-स्वरूप उसे लीला मिल जाती है।

चामुण्डा

चामुण्डा में चार अङ्क हैं। प्रथम अङ्क में दो द्वितीय तृतीय और चतुर्थ अङ्कों में एक-एक दृश्य हैं।[1] इसकी कथा के अनुसार गाँव के लोग आधुनिक सभ्यता की देन के प्रति कुभाव रखते हैं, यद्यपि उनका उपभोग करने में नहीं चूकते। उनके बीच एक विधवा लन्दन से शिक्षा लेकर डाक्टर बनकर आ जाती है। गाँव के लोग उसे अपमानित करने के लिए योजना बनाते हैं। एक दिन विरोधियों के नेता की बहू बीमार पड़ती है। उस विधवा ने निःस्वार्थ भाव और लगन से उसकी उपचार करके उसे अच्छा कर दिया। तब तो सभी विरोधी उसको साधुवाद देते हुए उसके पक्ष में हो गये।

शार्दूल-सम्पात

को० ल० व्यासराज का शार्दूल-सम्पात एकाङ्की नाटक है। इसमें नान्दी, प्रस्तावना और अन्त में भरतवाक्य हैं। इसमें शार्दूल चर्मधारी विश्वामित्र दशरथ से राम को माँगने के लिए आते हैं। उन्हें राक्षसों से अपने यज्ञ की रक्षा करने के लिए परमवीर की आवश्यकता है। दशरथ ने कहा—

कृशतनुः खलु मे तनयोऽधुना न स विमुञ्चति मातृजनान्तिकम्।
विहरणैकपरो हि ममार्भकः कथमयं दनुजानभियास्यति ॥

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—रक्षः प्रहरणं नाम केवलं विहरणमेव रामस्य। पुत्रवात्सल्याद् गरीयः शिष्यवात्सल्यम्।

विश्वामित्र को क्रोध भी करना पड़ा। जब दशरथ ने कहा कि न वत्सः प्रेष्यते मया। भवांस्तु स्वार्थलालसः तं यज्ञपशुं चिकीर्षति।

यह कृति वस्तुतः व्यायोग कोटि का सफल रूपक है। क्योंकि इसमें वैचारिक वैषम्य क्रोधपूर्ण शब्दावली में व्यक्त किया गया है और युद्ध का वातावरण है।



१. इसका प्रकाशन चिन्ताद्रि पेट, मद्रास से हुआ है।

अध्याय ११२

वेङ्कटराम राघवन् का नाट्य-साहित्य

वेङ्कटराम राघवन् बीसवीं शती के संस्कृत के विश्वविख्यात साहित्यकारों में अनन्य है। इनके पिता वेङ्कटराम अय्यर और श्रीमती मीनाक्षी थीं। इनका जन्म २२ अगस्त १९०८ ई० को तन्जौर जिले में तिरुवायूर नगर में हुआ। प्रेसीडेन्सी कालेज मद्रास में महामहोपाध्याय कुप्पुशास्त्री के अधीन राघवन् ने सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करके १९३५ ई० में शृंगार प्रकाश पर पी-एच्० डी० उपाधि अर्जित की। १९३५ से ५५ तक योरप के सग्रहालयों में उन्होंने भारती पुरातत्त्व के ग्रन्थों का पर्यालोचन किया। इनके जीवन का अधिकांश अध्यापन में मद्रास विश्वविद्यालय में बीता है। डा० राघवन् मुख्य रूप से उच्चकोटिक अनुसन्धाता है। काव्य और साहित्य-शास्त्र उनके विशिष्ट कार्यक्षेत्र है। उन्होंने संस्कृत के कतिपय बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों को प्रकाश में लाकर उनके आधार पर भारतीय पुरातत्त्व और साहित्य को महिमा प्रदान की है।

डा० राघवन् को आशातीत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।[1] उनके व्यक्तित्व में प्रभविष्णु चमत्कार है। विश्व की सर्वोच्च सास्कृतिक सस्थायें उनको श्रेष्ठ पद प्रदान करके गौरवान्वित हुई है।[2]

डा० राघवन् की सर्जनात्मक कृतियाँ यद्यपि अल्प संख्यक हैं, किन्तु निस्सन्देह उनका काव्यात्मक स्तर पर्याप्त ऊँचा है। उनके व्यक्तित्व का एक प्रमुख अङ्ग नाटकीयता है। उनके संस्कृत-रङ्ग की स्थापना से यह प्रत्यक्ष है। उन्होंने विद्यार्थी-जीवन से ही संस्कृत नाटकों का प्रणयन आरम्भ किया। उनका प्रथम श्रेष्ठ नाटक अनार्कली है, जो उन्होंने २३ वर्ष की आयु में लिखा। यद्यपि इस नाटक का मूल रूप नहीं मिलता, किन्तु इसका परिवर्धित और सशोधित रूप, जो १९६८ में अभिनय के लिए बना, १९७२ ई० में प्रकाशित हुआ है। लेखक का इसके विषय में कहना है—

The play was written by me in 1931. For the most part the text of the play is the same as I wrote in 1931.[3]

अनार्कली के प्राय. समकालीन कवि के दो अन्य नाटक हैं—विमुक्ति तथा प्रतापरुद्रविजय।[4]

---

१. इनकी उपाधियाँ है—कवि-कोकिल, सकलकला-कलाप, विद्वत्कवीन्द्र और पद्मभूषण।

२. डा० राघवन् आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेन्स के श्रीनगर अधिवेशन के और विश्वसंस्कृत सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन के अध्यक्ष थे। विदेशी संस्कृत सस्थाओं के आह्वान पर वे प्रायशः वैदेशिक यात्रा करते रहते हैं।

३. अनार्कली की भूमिका से है।

4. The ms. of the Vimukti is dated 19th may 1931, This and

राघवन् ने १६५८ ई० में मद्रास में संस्कृत-रंग की स्थापना की, जिसमें उनके प्रायः सभी नाटकों का मंचन हुआ है। इसके अतिरिक्त उनके कई नाटकों का नभोवाणी द्वारा प्रसारण हुआ[१]। कतिपय नाटकों का उज्जैन में कालिदास-समारोह के अवसर पर और संस्कृत-कान्फरेन्स के अधिवेशनों में समागत विद्वानों के प्रीत्यर्थ अभिनय हुआ है। इन सबके लिए उच्चकोटिक प्रेक्षकों से लेखक को साधुवाद और बधाइयाँ प्राप्त हुई हैं।

राघवन् द्वारा विरचित रूपक हैं—विमुक्ति, रासलीला, कामशुद्धि, प्रेक्षण-कत्रयी (विज्जिका, विकटनितम्बा, अवन्तिसुन्दरी), लक्ष्मीस्वयंवर, पुनरुन्मेष, आषाढस्य प्रथमदिवसे, महाश्वेता, प्रतापरुद्रविजय, अनार्कली आदि। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वाल्मीकि-प्रतिभा और नदीपूजा नामक दो रूपकों का अनुवाद भी किया है।

राघवन् के लघु काव्य हैं—देववन्दीवरदराजः, महीपो मनुनीतिचोलः, सर्वधारी, फाल्गुनः, कावेरी, षोडशी-स्तुतिः, किं प्रियं कालिदासस्य, श्लिष्टप्रकीर्णक, कालः कविः, संक्रान्तिमहः, नरेन्द्रो विवेकानन्दः, कविः ज्ञानी ऋषिः, किमिदं तव कार्मणम्, विश्वभिक्षु-स्तवः, शब्दः (नृत्यगीत), कामकोटिकार्मणगृहीतमिवान्तरंगम्, ब्रह्मपत्र, वैवर्तपुराणम्, दम्भविभूतिः, गोपहम्पन्नः, स्वराज्यकेतुः, महात्मा, देववन्दीवरदराजः। राघवन् का महाकाव्य मुत्तुस्वामी दीक्षित-चरित उच्चकोटिक है, जिसे देखकर कांची के शंकराचार्य ने राघवन् को कविकोकिल की उपाधि प्रदान की। इनके अतिरिक्त राघवन् की संस्कृत भाषा में अनेक कृतियाँ-समावर्तन-भाषण, अनुवाद, टीकायें और गद्यात्म निबन्ध हैं।

राघवन् ने New Catalogus Catalogorum का सम्पादन किया है।

कामशुद्धि

डा० राघवन् की कामशुद्धि नामक कृति एकाङ्करूपक है। इसमें भारतीय परम्परा का योरोपीय नाट्यशास्त्रीय पद्धति से मिश्रण का सफल प्रयास है। इसका प्रथम अभिनय कालिदास महोत्सव पर समागत रसिकों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

रंगमंच पर यवनिका की दूसरी ओर रति मान किये बैठी है। काम उससे मिलने आता है। उससे रति कहती है कि आपके काम दोषपूर्ण हैं, जिनके कारण आपको बुरे नाम मिले हैं—मन्मथ, दर्पक, मदन आदि। काम ने बताया कि मेरे प्रसाद से संसार आनन्द पाता है। रति ने कहा—आनन्द नहीं, आनन्दाभास कहें। आप तो लोगों के लिये उन्माद हैं।

---

several other sanskrit compositions including the other plays prataparudriya—Vidambana and Anārkali which I wrote shortly after this were all lying buried in my note books,

१. कामशुद्धि और प्रेक्षणकत्रयी के तीन नाटक रेडियो पर प्रसारित हुए हैं।

इस बीच वहाँ मधु आ गया। उससे काम ने कहा कि मुझे तो विश्वामित्र को रम्भा का दास बनाने के लिए जाना है—यह इन्द्र का काम है, जो मुझे करना है। मेरी पत्नी रति मुझे भला बुरा कह रही है। वह साथ नहीं देगी इस पराक्रम में। अब तुम्हीं इन्हें समझाओ। रति ने उसे भी खोटी-खरी सुनाई। मधु के पूछने पर उसने बताया कि अब मैं तपस्या करूँगी।

प्रद्युम्न के प्रसाद में शिव के गण ने देखा कि कोई स्त्री उच्च कोटिक तप कर रही है। वह पहचान गया कि यह काम पत्नी रति तपस्विनी है। फिर तो वह शिव के पास यह संवाद देने गया। उसके तप से सारा चराचर लोक मन्दकाम हो गया था। वहाँ एक दिन शिव आये। उन्होंने कहा—

'इयं सा, यस्याः तपो मदीयमपि तपोदूरमधःकृत्य मामप्यत्र आचकर्ष।

यह रति मेरे आनन्द का विवर्त है। दुर्विनीत काम इसको बलात् अपनी सहचरी बनाना चाहता है।

रति ने परमज्योति, स्वरूप शिव के आते ही अपनी समाधि समाप्त की और स्तुति की—

धर्मेणार्थेन मोक्षेण सामरस्यं दधाति यः।
तादृक्कामस्वरूपाय नमो योगेश्वराय ते॥

रति ने कहा कि मेरा पति अधर्मपथ पर है। मैं उनके साथ रहूँ या छोड़ूँ। शिव ने कहा कि समीचीन पथ है काम को सच्चरित्र बनाना। यथा,

लोहान्तरैः धातुमिश्च दूषितमिति न हेमपरित्यक्तव्यम्। किन्तु पाकेन शोधयितव्यम्।

फिर शिव की दृष्टि में उपाय है—

यस्मिन् पापे जनः प्रवृत्तः, तत्रैव परां काष्ठां नीत्वा तत्पापं विनाशयितव्यम्। मैं तो अब इस प्रकार चक्र चलाता हूँ कि यह मेरी लपेट में आ जाये—

'मय्येव निजास्त्रबलं प्रकटयिष्यति।'

फिर तो मेरी दृष्टि की अग्नि से जलेगा, और पवित्र हो उठेगा। तब तुम्हारे अनुरूप पति और अनुकूल सेवक बनेगा। तुम दोनों के पुत्र-पुत्री शम और तुष्टि होंगे। वह शुद्ध होकर अनङ्ग होकर स्वयमेव परम पुरुषार्थ होगा। रति इस योजना से प्रसन्न हो गई। शिव ने तप की परम प्रशंसा की।

समीक्षा

लेखक के अनुसार कवि को इसके लिखने की प्रेरणा कालिदास के कुमारसम्भव से प्राप्त हुई। कदाचित् कवि इसको कतिपय अंशों के लिए कुमारसम्भव का पूरक मानता है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। कुमारसम्भव में कहीं कोई ऐसी बात नहीं मिलती, जिससे ऐसी कल्पित कथा अङ्कुरित हो। जहाँ तक कल्पित कथा का सम्बन्ध है, वह नितरां रोचक है।

राघवन् की भाषा और संवाद सर्वथा नाटचोचित है। पाठक या प्रेक्षक की उत्सुकता उन्होंने सर्वत्र उत्तेजित रखी है।

शिल्प

रूपक की प्रस्तावना में सूत्रधार-स्थानीय कवि और पारिपार्श्वक-स्थानीय उसका मित्र है। रङ्गमंच पर कवि अपनी प्रास्ताविक बातें कह लेता है। उसके पीछे एक यवनिका है, जो प्रस्तावना के प्रायः अन्त में अपसृत की जाती है।

अर्थोपक्षेपक का काम नन्दी की एकोक्ति से किया गया है। नन्दी सूचना देता है कि सती के दाह के पश्चात् शिव हिमालय पर तप कर रहे हैं। उन्होंने नन्दी को भेजा कि हमसे बढ़ कर तप कौन कर रहा है।

प्रतापरुद्र-विजय

प्रतापरुद्रविजय का अपर नाम विद्यानाथ-विडम्बन है। विद्यानाथ ने १४ वीं शती में प्रतापरुद्रयशोभूषण लिखा था। यह पुस्तक डा० राघवन् के एम० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित थी। विद्यानाथ की राजा के पराक्रम से सम्बद्ध ऊटपटांग प्रौढोक्तियों से डा० राघवन् का मन इतना ऊब गया कि उन्होंने उसी समय उन पर विडम्बनात्मक पद्य लिखे। कवि विद्यानाथ के काव्य को चाटु काव्य की गर्हित कोटि में रखता है। इसे परवर्ती युग की पतनोन्मुख संस्कृत-शैली का लक्षण बताता है और इसकी बुराइयों को वृहत्तम रूप में दिखाने के लिए उससे भी बढ़ कर उलूल-जलूल चाटु-प्रशंसापरक नाटक लिखता है, जो प्रताप-रुद्रविजय है। लेखक के शब्दों में—

The technique adopted is to extend further the stock रूपक, परिणाम, भ्रान्तिमान् , उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति and to make the imagin any world called up by these figures of poetry into actual facts; i. e. to put in the technical language of poetics, to make the कवि प्रौढोक्ति-मात्र-निष्पन्नवस्तु into a लोकसिद्ध-वस्तु and work out the consequences of the same into a humorous theme.

कवि के शब्दों में—Thus is the humorous story built out of all these absurdities.

इसमें वीररुद्र के विजय-प्रस्थान से साम्राज्याभिषेक की कथा है।

कथावस्तु

प्रतापरुद्र दिग्विजय के लिए प्रयाण करता है। सेना के द्वारा उड़ाई धूल से सूर्य आवृत हो जाता है। ऐसा लगता है कि पृथ्वी ही आकाश मण्डल की ओर उड़ी चली जा रही है। सूर्य के आवृत होने से मध्याह्न के थोड़ी ही देर पश्चात् सन्ध्या हो चली और ब्राह्मण सन्ध्या करने चल पड़े, स्त्रियां सायंकालीन प्रसाधन करने लगीं, पक्षी अपने नीड़ों में आने लगे, उल्लू अन्धकार में निकल पड़ा।

मन्दिर का भूखा पुजारी जल्दी से प्रसाद हथियाने के लिए शिवायतन में देव की पूजा समाप्त करने चला।

प्रथम अङ्क में नन्दनवन में महेन्द्र और पुलोमजा आम्रवृक्ष के नीचे शिला पर बैठ कर असमय प्रदोष आया देखकर सैलानी मुद्रा में हैं। तब तक धूल से शची की आँखें भर गईं। इन्द्र भी हवा में उड़ने लगा। वह अपनी सहस्र आँखों के विषय में कहता है—

अन्तःप्रविष्टरेणूनि अक्षीणि मे घुरुघुरायन्ते।

फिर तो इन्द्र ने अश्विद्वय को बुलवाया। अन्धी सी बनकर शची दौड़ती-भागती क्रीडासर में गिर पड़ी, जिसका पानी धूलि पड़ने से कीचड़-कीचड़ हो गया था। वह तो वहीं बेहोश लेट गई।

द्वितीय अङ्क में मनु राजा की राजधानी के पास अरण्य में राजकुल शरणार्थी बन कर पड़ा था। इस भीड़-भाड़ में गायें, मृग, वानप्रस्थी सभी अभावग्रस्त थे। यह कैसे—

एते मृगा अपपदा ह्यः केचन फलादिभिराहारमकुर्वन्। अन्ये केचन फलादीन्यलभमानाः सर्वमपि तृणं भुक्तवन्तः। अपरे केचित् तलोपरि किंचिदपि नासादयन्तः कन्दादिमृगयया भूमिमखनन्। पश्य, पश्य, अधस्तात् वराहकुलघोणोत्खाता इव गर्तास्तत्र तत्र विलोक्यन्ते।

इन्द्र की आखें धूल से भर जाने पर किसी-किसी प्रकार अश्विद्वय के द्वारा बचाई जा सकी। अभी उनकी चिकित्सा चल ही रही थी कि समाचार मिला कि कीचड़ में पड़ी हुई अकेली असुरक्षित शची को असुर उठा ले गये और अब उसके लिए आपको युद्ध करना पड़ेगा। इन्द्र के द्वारा प्रतिकार करने की प्रार्थना सुन कर बृहस्पति ने अपनी अक्षमता प्रकट की। इस बीच चारों ओर से अन्धकार घिरने लगा। ऐसा तो कभी हुआ नहीं। इन्द्र ने पूछा कि सूर्य कहाँ चला गया। चर ने बताया कि मेरु कन्दर में डर कर छिप गया है। निशाचरों ने धावा बोल दिया है। इन्द्र ने बृहस्पति से कहा कि प्राण बचाने के लिए आवश्यक है कि सन्धिवार्ता की जाय। इस बीच दैत्यपति आ गया। उसने चिग्घाड़ा—

आः क्वायं स देवेन्द्रहतकः। कुत्रास्ते स द्विजपाशः सुरगुरुः। आः तिष्ठत जर्जरनिर्जरकीटाः।

तृतीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में मातलि और नारद पात्र हैं। नारद ने मातलि से कहा कि इन्द्र की विपत्ति देखकर शिव ने मुझसे कहा है कि मातलि को भूलोक में भेजो और वह देवताओं की रक्षा के लिए वीररुद्र को ले आये। सब ठीक हो जायेगा। कहाँ वीररुद्र मिलेगा—यह नारद ने सङ्केत किया—

क्वचित् फुल्लं पद्मं क्वचिदपि च फुल्लं कुवलयं
स्फुरत् सूर्याश्मानः क्वचिदमृतः क्वचिच्चान्द्र उपलः।

क्वचित्कोकद्वन्द्वं प्रमुदितचकोरी च निकषा
विरुद्धानामेवं पथि निलय एकस्तव भवेत् ॥ ३.१०

इन्द्र कारागार में असुरों के द्वारा वन्दी बनाकर रखा गया। मातलि वीररुद्र को लेकर देवलोक में आ पहुँचा। नारद ने उन्हें विजयी होने का आशीर्वाद दिया। तीन देवताओं ने उसके महानुभाव की वर्णना की—

नृपः प्रतापरुद्रोऽयं लोकातीतगुणाम्बुधिः।
सहस्रांशुर्महोधामा स्फुलिंगोऽस्य द्युतेरिव ॥ ३:१८

उसके आते ही दानव भाग खड़े हुए।

चतुर्थ अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में मातलि-वृहस्पति से कहता है सब कुछ तो ठीक हो गया पर इन्द्र की आँखें ठीक न हुई। वीररुद्र की तेजस्विता को देखने से उसकी अनेक आँखें अन्धी हो गई हैं। वृहस्पति ने बताया कि अमृतशाली चन्द्रमा और अश्विद्वय असफल हो चुके हैं।

ऐसी विषम स्थिति में उन्हें चन्द्रिका असमय में दिखी।

चतुर्थ अंक में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवर्षि, वीररुद्र, इन्द्र आदि रंगपीठ पर विराजमान हैं। परमेश्वर ने इन्द्र को आदेश दिया कि वीररुद्र के साथ सिंहासन को समलंकृत करो। परमेश्वर ने उन दोनों की प्रशंसा की। इस बीच सन्ध्या हो गई। शिव ने वीररुद्र का परमेश्वर-प्रतिष्ठाभिषेक किया। परमेश्वर ने कहा—हम सभी चलकर एक शिला में वीररुद्र का साम्राज्याभिषेचन करें।

निस्सन्देह डा० राघवन् इस विडम्बन-काव्य में अपनी अद्वितीय प्रतिभा से सर्वोत्कृष्ट हैं।

शिल्प

यद्यपि प्रतारुद्र-विजय में चार अङ्क हैं, पर यह एक विशुद्ध प्रहसन है, जैसा लेखक ने स्वयं कहा है।

Thus is the humorous story built out of all these absurdities.[1]

नाट्यशास्त्रानुसार इस प्रकार की रचना में प्रवेशक और विष्कम्भक होने ही नहीं चाहिए। इसमें द्वितीय अङ्क के पूर्व का विष्कम्भक चार पृष्ठ लम्बा है और द्वितीय अंक में इससे कम पृष्ठ हैं।[2]

तृतीय अंक के पूर्व का विष्कम्भक केवल सूचना ही नहीं प्रस्तुत करता, अपितु कार्यपरक भी है। तृतीय अंक के आरम्भ में दो देवों की बातचीत अङ्कोचित नहीं है। यह सर्वथा अर्थोपक्षेपक है। राघवन् को अंक और अर्थोपक्षेपक का अन्तर करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई है। यह शास्त्रीय त्रुटि अपवादात्मक है। चतुर्थ अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है। इस में विष्कम्भक प्रायशः अङ्क के समान ही पड़ते हैं।

---

१. Preface page XVI.

२. भ्रान्ति वश विष्कम्भकों को अङ्क कहे भाग रूप में मुद्रित है।

विमुक्ति

राघवन् के विमुक्ति नामक प्रहसन का प्रणयन १६३१ ई० में और प्रथम मंचन १६६३ ई० मे संस्कृत-रंग के चतुर्थ स्थापना दिवस के अवसर पर थियेटर धर्म-प्रकाश, मद्रास में उच्च कोटि के विद्वानों और अभिनेताओं के समक्ष हुआ। मूल नाटक मे अभिनयोचित परिष्कार १६६३ ई० में किये गये। इसका नाम विमुक्ति पुरुष का प्रकृति से विमुक्त होने का द्योतक है। प्रकृति के सहारे पंच तत्त्व, मन, इन्द्रियाँ और आशापाश पुरुष को परवश कर लेते हैं। यही घटना मानवोचित प्रतीकों को लेकर रूपकायित है जिसमे ब्राह्मण गृहस्थ, उसकी चण्ड पत्नी, दुर्दमनीय पुत्र, बहू आदि नायक-नायिका हैं।

कथावस्तु

धार्मिक ब्राह्मण आत्मनाथ के छः दुःशील पुत्र थे। उन्होंने अपने पुत्र उलूकाक्ष से पूछा कि तालाब के किनारे क्या कर रहे थे? उसने कहा कि सुन्दरी तरुणी को स्नान करते देख रहा था। देखिये न उसे, नहा कर जाती हुई रमणी को, वह कौन है? कहाँ रहती है? ब्राह्मण ने उसे धिक्कारा। चलग्रोव, शुण्डाल, कण्डूल, दीर्घश्रवा आदि अन्य पुत्र भी ऐसी ही कुप्रवृत्तियों मे प्रातः काल बिता रहे थे।

ब्राह्मण पुत्र कण्डूल ने पिता से कहा कि आप व्यर्थ चिन्ता करते हैं। तब तक कुछ खाते हुए शाक की टोकरी कन्धे पर रखे चलग्रोव नामक पुत्र सामने से आता दिखाई पड़ा। पिता ने उसे डाँटा कि देर में आये और सभी वस्तुओं को जूठा कर दिया।

उधर से ब्राह्मण-पत्नी नहाकर सिर पर घड़ा लिए आई। उसे देखते ही ब्राह्मण की आत्मा काँप गई। भार्या ने पति को डाँटा उसने पत्नी को खोटी-खरी सुनाई। पर पत्नी ने उसकी बोलती बन्द कर दी। सभी लड़के माँ के पीछे-पीछे चलते बने।

पिता ने बड़े पुत्र लटकेश्वर के विषय मे पूछा तो पता लगा कि उसकी गति-विधि से सभी अपरिचित है। ब्राह्मण को भूख लगी थी। पत्नी को प्रसन्न करना था। उसकी स्तुति की—

नमस्तेऽस्तु महामाये नमस्तेऽस्तु महेश्वरि।
नमस्तेऽस्तु पराशक्ते नमस्ते विश्वनायिके॥

ब्राह्मण ने क्षमा माँगी।

अन्त मे जब ब्राह्मण ने कहा कि तुम्हारे साथ गृहस्थाश्रम ठीक नही चल रहा है। मैं तुम्हें छोड़ने वाला हूँ। पत्नी ने कहा कि तुम बुड्ढे को मैं स्वयं छोड़ देती, यदि ऐसा करना सम्भव होता। ब्राह्मण ने कहा कि तुम्हारे और, तुम्हारे पुत्रों के साथ रहने से तो अच्छा है कि वन मे चला जाय या मर जाय।

तब तक चलग्रोव आ पहुँचा। उसने कहा कि मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं।

ब्राह्मण ने कहा कि शाकक्रय के लिए गये थे तो आधे मूल्य की इधर-उधर की वस्तुयें खाली थीं। क्या तुम्हारे मुंह में भेड़िया है ?

तव तक ब्राह्मण का ज्येष्ठ पुत्र लटकेश्वर तीन स्त्रियों के साथ आ पहुँचे। उनमें से दो से तो पत्नी प्रेम से मिली और तीसरी चन्द्रिका को उसने कठोर दृष्टि से देखा। वे सभी ब्राह्मणपत्नी की वहिनें थीं। ब्राह्मण ने कहा कि तुम सभी चोर हो।

लटकेश्वर ने जव ब्राह्मण को प्रणाम किया तो उसने कहा कि तुम मरो। कहाँ से इन तीन स्त्रियों को लाये। एक ही स्त्री से घर रौरव वना है। लटकेश्वर ने स्त्री-प्रशंसा के पुल वाँधे और कहा कि आपने कभी इन सभी से विवाह किया था। ब्राह्मण ने विरोध किया। फिर लटकेश्वर ने कहा कि आप हटें। मैं समस्या का समाधान करता हूँ। उसने पिता के हट जाने के वाद सभी भाइयों को वुलाकर पूछा कि तुम अपनी जीविका के लिए क्या करना चाहते हो? चलग्रीथ ने कहा कि मैं खोमचा लगाना चाहता हूँ। उलूकाक्ष ने कहा कि मुझे नाटक में पर्दाकश का काम मिल जाय तो ठीक रहे। गुण्डाल ने कहा कि मैं इत्तरफरोश का काम कर सकता हूँ। कण्डूल ने गुण्डाल को सुझाव दिया कि तुम तो सुंघनी का धन्धा करो। तव तक उनकी माँ आ गई। उसने वड़े लड़के को डाँट कर कहा कि मेरे लड़के कोई काम नहीं करेंगे। मैं सवके भरण-पोषण का यथोचित प्रवन्ध करती रहूँगी।

द्वितीय अङ्क में ब्राह्मण नदी तीर पर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे वेदिका पर सन्ध्या कर रहा है। उसे याद आ रही है अपनी पत्नी वहिन चन्द्रिका की, जिसने घर आते ही प्रेम-निर्भर कटाक्ष से इन्हें तृप्त कर दिया था। उसके प्रति अपने पति का प्रेम जान कर ब्राह्मणी इनकी गतिविधि पर दृष्टि रखती थी। सन्ध्या करते हुए ब्राह्मण के पास चन्द्रिका आई तो उससे प्रेम का प्रसंग छेड़ दिया और आलिंगन की तैयारी की। तभी पत्नी आ झपटी। ब्राह्मण ने उससे चन्द्रिका को वचाने के लिए मठ में छिपा दिया। पत्नी ने पति को डाँटा कि इस नये प्रेम पथ पर आप चलेंगे तो आपकी टाँग टूट जायेगी।

उस समय दो अन्य जन आ गये। उन्होंने कहा कि यह ब्राह्मण पिशाची पत्नी के वश में मायावती के द्वारा किया गया है। इसके पश्चात् दंष्टी आया। उसने कहा कि आज से ही तुम यह जीर्ण घर छोड़ो। यह घर गिरने वाला है, जीर्ण है। कल प्रातः से तुम्हारा पति घर में नहीं मिलना चाहिए। यह सभी घरों के स्वामी की आज्ञा है। यह कह कर वह चलता वना। पत्नी ने पुरवासियों से पूछा की हम लोगों के घर का स्वामी भी कोई है क्या? उन्होंने अलग-अलग वातें वताई। तव तक उस ब्राह्मण को कोई मिला। ब्राह्मण ने उससे अपने घर और कुटुम्ब का दुखड़ा रोया कि इन सव को छोड़ कर चल देना चाहता हूँ। उसने पूछा—कहाँ जाओगे ? ब्राह्मण ने कहा कि नहीं तो मैं भी तुमसे पूछ रहा हूँ। ब्राह्मण ने कहा कि मैं आज अकेले चल देना चाहता हूँ। मित्र ने कहा कि गृहस्वामी की रीति है

है कि एक घर गिरने पर दूसरा घर बना कर देता है। ब्राह्मण ने कहा कि मैं तो अब किसी घर मे किसी भार्या के साथ नही रहना चाहता।

इस बीच ब्रह्मण के दु शील लडके अपनी मौसियो के विषय मे कामात्मक विवाद लेकर माता-पिता के पास आ पहुँचे। इनके विवाद मे व्यस्त होने पर वहाँ दण्ड्री (कोतवाल) और रक्षी आ गये। छ· गुण्डे लड़के पकड़कर बन्दी बनाये गये। मौसियो को नदी मे फेंक दिया गया। ब्राह्मण भी भाग कर दूर चला गया। उसे कुण्डली कर्मकाण्डी मिला। उसने कहा कि मैं तुम्हे सब कुछ सुखमय प्राप्त कर दूँगा। ब्राह्मण ने कहा कि आप क्षमा करें। कुछ नही चाहिए। वह प्रवाह मे कूद कर आत्महत्या करना चाहता है। चन्द्रिका ने उसे रोक लिया। वही जप करता वृद्ध मिला। उसने कहा कि अब तो सभी दुष्टो से मुक्त हो। उसने मायावती नामक सास को मारने का मन्त्र दिया। तभी पत्नी ने ब्राह्मण को आकर पुनः पकडा। उसने शपथ ली कि अब ठीक से रहूँगी। वृद्ध अपने शुद्ध रूप में आकर गृहस्वामी होकर बोला कि चन्द्रिका से तुम्हारा विवाह करा देता हूँ। उन सबको नूतन गृह मिला। अन्त में नाटक के प्रतीक को स्पष्ट करने के लिए भरत-वाक्य है—

ईशस्त्वं पुरुषोऽस्मि गेहमिह मे देहं स दंष्ट्री यमः
सा भार्या प्रकृतिः गुणा भगिनिका माया च तासां प्रसूः।
षट् पुत्रा मन इन्द्रियाणि, नगरं लोको वियुक्तये तत-
स्सत्त्वस्था प्रकृतिस्तथा प्रहसनं दृष्ट्वा जना जानताम् ॥

शिल्प

एकोक्ति का प्रयोग द्वितीय अङ्क के आरम्भ मे है। वैसे तो एकोक्ति सुरुचिपूर्ण है, किन्तु उसे इतनी लम्बी नही होनी चाहिए।

द्राविड़ लोकोक्तियो का सस्कृत अनुवाद बहुसंख्यक प्रयुक्त है। यथा,

१. लिकुचेन गाढं पर्यायिष्यामि ते शिरः।
२. सत्रे भोजनं मठे निद्रा।
३. को वा हस्तिनं गृहे निबध्य भोजयितुं प्रभवेत्।
४. पटोलपुष्पं ते नयनं भवतु।
५. मा उदरे ताडयन।

समीक्षा

भले ही परिहास में बातें कही गई हैं, उनमें से अधिकाश घोर सत्य हैं। यथा,

क्षनर्थाय सर्वविप्लवायैव आधुनिकैः संस्कृतं पठ्यते।

राघवन् प्रहसन को शृंगार की उद्दाम तरंगों से अछूता न रख सके—यह उनकी असमर्थता है। इस युग में वंगदेशीय प्रहसनों का स्तर पर्याप्त उदात्त है। उनमें शृंगार या ग्राम्यता का अभाव है। द्वितीय अंक में रंगमंच पर एक साथ

ही नव पात्रों का होना और एक बार एक या दो वाक्य कहकर चुप पड़े रहना ठीक नहीं है। कम पात्रों से ही यह काम लिया जा सकता था।

प्रहसन में शास्त्रानुसार एक ही अंक होना चाहिए। इसमें दो अंक हैं। प्रहसन साहित्य में विमुक्ति का स्थान अद्वितीय ही है। यह नये ढंग का प्रहसन है।

रासलीला

राघवन् की रासलीला प्रेक्षणक है। प्रेक्षणक से यहाँ तात्पर्य है संगीतिका या अंगरेजी में ओपेरा।[1] इसका प्रणयन मद्रास रेडियो स्टेशन के लिए हुआ था। भागवत के दशम स्कन्ध की रासलीला सुपरिचित है। इसमें कवि ने भागवत के श्लोकों को भी यथास्थान पिरोया है और साथ ही अपने श्लोक और सांगीतिक गद्यांशों को गूंथ दिया है। इसमें चार प्रेक्षणक हैं।

कथावस्तु

शरद ऋतु की चन्द्रिका में भगवान् की वनविहार की इच्छा हुई। उन्होंने वेणु से कामवर्धनी राग बजाया और गोपियाँ आ गई और कृष्ण की ओर उत्सुक हुई। कृष्ण ने कहा तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? पहली गोपी ने कहा—

भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥

कृष्ण नदी के तट पर बैठ कर गोपियों के साथ विहार करने लगे।

द्वितीय प्रेक्षणक में किसी गोपी ने कहा कि आप वेणु बजायें। हम आपको वनमाला से अलंकृत करेंगी। कृष्ण ने वेणु से यमुना-कल्याणीराग बजाया। उन्हें माला पहनाई गई। कृष्ण ने कहा कि आप सबकी आत्ममाला मैं हृदय से धारण करता हूँ। कृष्ण ने रासमण्डल में सबके साथ नृत्य किया।

तृतीय प्रेक्षणक में कृष्ण उनका अभिमान देखकर अन्तर्धान हो जाते हैं। गोपियों ने साल, तमाल आदि से पूछा। एक गोपी कृष्णमय होकर कालिय लीला का अभिनय करने लगी। एक ने कहा—कृष्ण ने मेरे साथ अकेले में विहार किया। फिर मुझे छोड़कर कहीं चलते बने।

चतुर्थ प्रेक्षणक में यमुना-तट पर गोपियाँ उन्हें ढूंढ़ने लगीं। वे कृष्ण गीत गाती हुई अन्त में रोने लगीं। अन्त में भगवान् कृष्ण पुनः प्रकट हुए और फिर—

अंगनामङ्गनामन्तरे माधवो माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पिते गोपिकामण्डले सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दन ॥

रासमण्डल में कृष्ण ने नृत्य किया।

विजयाङ्का

विजयाङ्का प्रेक्षणक है। राघवन के प्रेक्षणकत्रयी में इसका नाम सर्वप्रथम

१. राघवन् ने इसे Musical Playlet कहा है। इसका प्रकाशन अमृतवाणी पत्रिका में १९४५ ई० हुआ था।

समुदित है। अन्य प्रेक्षणकों की भांति इसका अभिनय क्वीन्स मेरी कालेज, मद्रास, संस्कृत-एकेडेमी, मद्रास तथा आल इण्डिया रेडियो, मद्रास के द्वारा निष्पन्न हुआ है।

विजयाङ्का कवयित्री थी। राजशेखर ने उसे कालिदास के समकक्ष रखा है। यह दक्षिण भारत में कर्णाट के शासक महाराज चन्द्रादित्य की पत्नी और पुलकेसी द्वितीय को वधू थी। इसका प्रादुर्भाव सातवी शती के उत्तरार्ध में हुआ था।

कथावस्तु

चन्द्रादित्य के प्रासाद के सरस्वती मन्दिर मे राजकवि कुछ पढ़ रहे हैं। सम्राट् चन्द्रादित्य ने उन्हे कविसम्राट् सम्बोधित करके प्रणाम किया। कवि ने बताया कि काञ्ची के पल्लवेश्वर के राजकवि दण्डी ने काव्यादर्श रचकर हम लोगो की समीक्षा के लिए भेजा है। उसे साम्राज्ञी के साथ देखना चाहता था। तभी विजयाङ्का आ गई। उसके सामने काव्यादर्श का मगलश्लोक पढा गया—

चतुर्मुखमुखाम्भोज-वनहंसवधू मम।
मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

इसे सुनकर विजयाङ्का ने कहा कि इसमे तो प्रत्यक्ष ही दोष है। यथा,

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

कविवर को पिछले दिन धान्य-कण्डन करती हुई स्त्रियो का वर्णन करने वाली अपनी रचना सुनाई—

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोःकन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्‌भुराः।
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभदत्तकम्पितोरः स्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डनीगीतयः ॥

आचार्य कवि की प्रशंसा सुनकर विजयाङ्का ने विनयपूर्वक बताया—

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम्।
वहद्‌भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियैर्जनस्य तूष्णीं भवतोऽयमञ्जलिः ॥

विकटनितम्बा

राघवन् की प्रेक्षणकत्रयी मे दूसरा प्रेक्षणक विकटनितम्बा है। विकटनितम्बा स्वयं तो उच्चकोटिक कवयित्री थी, किन्तु उसका पति निरक्षर था। वह संस्कृत नही बोल पाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि विकटनितम्बा के गुरु सुप्रसिद्ध आचार्य गोविन्द स्वामी थे।

विकटनितम्बा का कोई पूरा काव्य-ग्रन्थ नहीं मिलता। सूक्तिसंग्रहों में और अलकारशास्त्र के ग्रन्थो में उसके कतिपय पद्य मिलते हैं।

कथावस्तु

विकटनितम्बा अपने लेखक को कुछ लिखा रही थी, जब गोविन्द स्वामी उधर

आये। आचार्य ने वह सद्यःकृत श्लोक सुनना चाहा, जिसे उसकी सखी ने पढ़ा। श्लोक है—

क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे प्राणाधिको वसति यत्र मनःप्रियो मे।
एकाकिनी वद कथं न विभेषि वाले नन्वस्ति पुंखितशरो मदनस्सहायः॥

विकट नितम्वा के पति का भरपूर परिहास उसकी सखियों की मण्डली करती है। वह वेचारा प्राकृत-भापी है। संस्कृत के शब्दों का ठीक उच्चारण नहीं कर पाता। ऐसे अवसर पर किसी सखी ने कहा—

काले माषं सस्ये मासं वदति सकाशं यश्च शकासम्।
उष्ट्रे लुम्पति रं वा षं वा तस्मै दत्ता विकटनितम्वा॥

अवन्तिसुन्दरी

राघवन् का अवन्तिसुन्दरी नामक प्रेक्षणक महाकवि राजशेखर की पत्नी के लिखे हुए प्राप्त कतिपय श्लोकों का समाश्रय लेकर प्रणीत है।

कथावस्तु

राजशेखर ने एक वार कोई पुस्तक पढ़ती अवन्तिसुन्दरी को देखा। पूछने पर उसने वताया कि यह कविरत्नाकर की कृति है। कविरत्नाकर कौन हैं? इसका उत्तर मिला—

वालकविः कविराजः निर्भयराजस्य तथा उपाध्यायः। इत्यादि।

राजशेखर ने कहा कि यह कर्पूरमंजरी नामक सट्टक तुम्हारे ही लिए लिखा है। अवन्तिसुन्दरी ने कहा कि इसका मंचन भी होना चाहिये। राजशेखर ने भरताचार्य को सन्देश भेजा कि कर्पूरमंजरी का अभिनय करायें—

चाहमानकुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी।
भर्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतदिच्छति॥

राजशेखर से अवन्तिसुन्दरी ने पूछा कि इधर क्या लिखा है। उसने उत्तर दिया—अलङ्कारशास्त्र काव्यमीमांसा। इसमें विविध अलंकार-शास्त्रियों के मत मतान्तरों का परिशोधन किया है। तुम्हारी सूक्ष्म दृष्टि से कतिपय स्थलों पर विवेचन प्रस्तुत करना चाहता हूँ। अवन्तिसुन्दरी ने कहा कि लोग क्या कहेंगे कि राजशेखर ने अपनी पत्नी के मत प्रेमावेश के कारण व्यर्थ ही ठूँस दिये हैं? राजशेखर ने कहा कि ऐसा अपवाद तुम्हारे मतों की सारगर्भिता से धुल जायेगा। तुम तो वताओ, काव्य में कविवाणी-विषयक पाक क्या होता है? अवन्तिसुन्दरी ने वताया—

गुणालङ्काररीत्युक्तिशब्दार्थग्रथनक्रमः
स्वदते सुधियां येन वाक्यपाकः स मां प्रति।
सति वक्तरि सत्यर्थे शब्दे सति रसे सति
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु॥

यही मेरा मत है।

काव्यों की उपजीव्यता की चर्चा करते हुए उसने इसी उपयोगिता पर प्रकाश डाला—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः मधुमास इव द्रुमाः।
सर्वे नवा इवाभान्ति प्रतिभागुणसन्निभाः॥

लक्ष्मी-स्वयंवर

लक्ष्मीस्वयंवर प्रेक्षणक में लक्ष्मी के सुप्रसिद्ध पौराणिक आख्यान की चर्चा है। आकाशवाणी के मद्रास केन्द्र से १९५६ ई० में लक्ष्मीव्रत के अवसर पर इसका प्रसारण हुआ था।

कथावस्तु

दानवों से परास्त होने पर देव विष्णु के पास परामर्श के लिए गये। उन्होंने कहा कि आपलोग दानवों से सन्धि करके मिलकर समुद्र-मन्थन करें। देवताओं ने ऐसा किया। समुद्र से कालकूट विष निकला। शिव ने उसे ग्रहण किया। फिर से मन्थन होने लगा। चन्द्र निकला। उसे विष पीने के पराक्रम के लिए विजय-चिह्न रूप में दिया गया। कामधेनु को देवर्षियों ने पकड़ा। गजेन्द्र ऐरावत को इन्द्र ने लिया। कौस्तुभमणि दैत्येन्द्र ने विष्णु को दी, क्योंकि वे कमठ बन कर मन्दर को धारण कर रहे थे। पश्चात् पद्मवर्णा लक्ष्मी निकली। दैत्येन्द्र ने कहा कि अब तक हम लोगों को कुछ न मिला। इसे हम लेंगे। तब तक वारुणी भी निकल आई। उसे दैत्येन्द्र ने श्रान्ति मिटाने के लिए ग्रहण किया। वे लक्ष्मी को छोड़ कर चलते बने। तब तो लक्ष्मी का अभिषेक किया गया और उसे अवसर दिया गया कि वह अपने लिए स्वामी का स्वयंवर करे। लक्ष्मी ने सब के गुण दोष का विवेचन किया, किन्तु देवर्षियों के सकेत करने पर विष्णु को चुन लिया।

तस्यादेशं आधाय स्वयंवरणमालिकां कौस्तुभोद्भासि तद्वक्षश्चकार स्वं निकेतनम्।

विष्णु ने देखा कि धन्वन्तरि अमृतकलश लिए समुद्र से निकले। दैत्य उसे ले भागे। तब लक्ष्मी को मोहिनी बनना पड़ा। उसने दैत्यों की अपनी ओर ललचाई दृष्टि से देख कर कहा कि तुम्हारे ही लिए आई हूँ। दैत्यों ने उसका विश्वास भाजन बनने के लिए अमृतकलश उसके हाथ में दे दिया। उसे मोहिनी ने देवों को देकर उन्हें अमर बना दिया।

शिल्प

प्रेक्षणकों में नान्दी और प्रस्तावना राघवन् ने नहीं दी है। किन्तु लक्ष्मीस्वयंवर में नान्दी है। भरत-वाक्य सभी प्रेक्षणकों में मिलते हैं।

निवेदक के रूप में पौराणिक और गाथिक का उपयोग राघवन् ने किया है। जो कथांश सूच्य रूप में दिये जाते हैं और प्रायशः आगे घुमाने वाले कथांश की

भूमिका होते हैं, उन्हें पौराणिक और गाथिक कहते हैं। रासलीला में गाथिक है और लक्ष्मीस्वयंवर में पौराणिक है। कीर्तनिया और अंकिया नाटक में इस प्रकार का काम सूत्रधार करता था। इनका सूच्य अर्थोपक्षेपक से कुछ अंशो में समान अवश्य है पर उससे इनकी भिन्नता प्रत्यक्ष ही है। दोनों की विधि में पर्याप्त अन्तर हैं।

पुनरुन्मेप

राघवन् का पुनरुन्मेप नामक प्रेक्षणक नई विधा की रचना है। इसका अभिनय नई दिल्ली में १९६० ई० में ग्रीष्मनाटकोत्सव मालविकाग्निमित्र के प्रयोग के अनन्तर हुआ था।

कथावस्तु

भारतीय संस्कृति और अतीत गौरव का उपासक कोई आगन्तुक अपने अनुसन्धान के क्रम में दक्षिण भारत के विद्याराम नामक गांव में जा पहुँचता है। गाँव की गलित दशा देखकर उसे सन्देह होता है कि क्या यह वही प्रसिद्ध स्थान है, जिसकी खोज में मैं आया हूँ। गांव का एक ब्राह्मण मिल गया। उसने पूछने पर बताया यहाँ वेदघोष, शास्त्रचर्चा और काव्यवैखरी तो अब स्वप्न की वस्तुयें हैं, केवल मैं ही साक्षर हूँ। अन्य यदि कोई पढ़ा-लिखा हुआ तो जीविका की खोज में नगर में चला गया। आप कोई विचित्र कोटि के ही प्राणी लगते हैं कि गांव की ओर आ निकले। इस गांव में मेरे बाद कोई शास्त्राभ्यासी न मिलेगा। मेरा लड़का नगर में जा बसा है, उसको चिट्ठी लिख रहा हूँ कि मेरे घर में तालपत्र पर लिखित जो असंख्य ग्रन्थ हैं, उसे प्राचीन वस्तुओं को खरीद कर विदेशों में भेजने वाले को देने के लिए जो निर्णय तुमने लिया है, वह समीचीन है। मेरे पास यह जो सड़ी-गली तालपत्र की पोथियाँ हैं, उन्हें नदी में इस भय से फेंकने जा रहा हूँ कि मेरी पत्नी उनको इन्धन के अभाव में कहीं जला न दे। आगन्तुक ने उन्हें मांग कर देखा तो वे अमूल्य प्रतीत हुई और उन्हें अपने लिए ले लिया।

आगन्तुक को कोई संगीतज्ञ मिला, जो पटवारी बन गया था। उसने अपनी कौलिक कथा बताई कि पूर्वज तो बड़े संगीताचार्य राजाओं के द्वारा सम्मानित थे। अब राजा गये तो विद्या का सम्मान गया। मैंने भी वीणा छोड़ कर कलम हाथ में ले ली। उसने धूल-धक्कड़ में पड़ी वीणा दिखाई, जिसे खूंटी पर लटका दिया गया था। मैं भी संगीत-सम्प्रदाय का अन्तिम प्ररोह हूँ, जो सब कुछ भूलता जा रहा हूँ। आगन्तुक ने कला-साधना की दिशा में इस देश की महती क्षति बताई और कहा कि स्वतन्त्र भारत में इनका अभ्युदय होगा। मैं आपकी सर्वविध सहायता करूँगा कि आप अपनी कौलिक विद्या को अजर-अमर रखें।

आगे आगन्तुक को देवालय मिला। उसकी दीवाल पर चिपड़ी पाथने से उसके चोलवंशीय उत्कीर्ण लेख विनष्ट प्राय हो गये थे। वह लेख का जैसे-तैसे अध्ययन कर रहा था कि उसे कोई चोर दिखाई पड़ा, जो वहाँ से मूर्ति उपार कर चोरी-चोरी विदेश भेजने का धन्धा करता था। आगन्तुक ने उसे डराया

धमकाया और उसे कोई अच्छा सा धन्धा अपना कर जीविका चलाने की व्यवस्था कर दी।

आगे चल कर देवालय के पास ही कोई बुढ़िया अपनी सुन्दरी कन्या को डाँटती-फटकारती मिली। उनकी बातचीत से उसे ज्ञात हुआ कि यहाँ वह सुन्दर लड़की भूखों मर रही है। उसे नगर में ले जाकर रसिकों के बीच समृद्ध जीवन बिताने की व्यवस्था बुढ़िया कर रही थी, जिसके लिए लड़की तैयार नहीं हो रही थी। वह वहीं रह कर कौलिक नृत्याभिनय किसी आचार्य से सीखना चाहती थी। वृद्ध ने कन्या से कहा—तत्सर्वमादाय नगरं गच्छाव:। तत्र बहवो धनिका वर्तन्ते। अपि च चलच्चित्रप्रपञ्चे महानस्ति सम्भवो भाग्योदयाय।

आगन्तुक ने कहा कि कन्या को यथायोग्य शिक्षा के लिए यहीं पर योग्य आचार्य की नियुक्ति किये देता हूँ।

अन्त में सबने मिल-जुल कर गाया—

देवि भारतजननि जगति पुराण्ययापि च तुलना।
देवि भारतजननि मंगलदायिकेऽम्ब नमोऽस्तु ते॥

आषाढस्य प्रथमदिवसे

आषाढस्य प्रथमदिवसे नामक प्रेक्षणक में कालिदास और यक्ष की रामगिरि में मिलने की काल्पनिक कथा है। इसका प्रसारण मद्रास के आकाश वाणी-केन्द्र से हुआ था।

कथावस्तु

कालिदास एक पर्वत पर पहुँच गये, जिसका रामगिरि नाम यक्ष से जान कर उन्हें स्मृति हो आई कि यहाँ अब राम के पदचिह्न देखकर अपने को पवित्र कर लूँगा। दोनों ने अपने प्रवास की कथा परस्पर सुनाई। यक्ष ने अपनी मानसिक व्यथा बताई कि कैसे यह वर्षा बिताऊँगा। कालिदास ने उसे करिकलभ के समान मेघ पर्वत की चोटी पर स्थित दिखाया। यक्ष ने उसे देखा तो वह उन्मत्त सा होकर बोला—

अयि भगवन् मेघ, एष कोऽपि दूरबन्धुरर्यो प्रणमति। तत्र मत्कुशलमयीं प्रवृत्तिमन्तरा नोपायमन्यं प्रेक्षे, नव भवतोऽन्यं तत्सन्देशहारकम्।

कालिदास ने कहा—

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।

महाश्वेता

महाश्वेता नामक प्रेक्षणक का प्रसारण मद्रास के आकाश वाणीकेन्द्र से हुआ।

कथावस्तु

महाश्वेता ने शिव की स्तुति की। उसके वीणागान के द्वारा उत्पन्न हृदय-निर्वृति से चन्द्रापीड विस्मयालोक में निमज्जित हो गया। उसने महाश्वेता की

प्रत्येक प्रवृत्ति को अनन्य पाया। महाश्वेता ने चन्द्रापीड के महानुभाव से वासित होकर उसका सत्कार किया। पूछने पर उसने अपना वृत्तान्त चन्द्रापीड को सुनाया कि उच्च गन्धर्व और अप्सरा कुल में मैं उत्पन्न हुई। मैं ने मुनिकुमार को देखा। उसी से मेरा मन निबद्ध हो गया।

अनार्कली

अनार्कली नामक प्रकरण राघवन् की आरम्भिक रचनाओं में से है। १९३१ ई० में उन्होंने विद्यार्थी जीवन की परिसमाप्ति पर विमुक्ति, प्रतापरुद्र-विजय आदि के साथ इस की रचना की। इसका प्रयोग और प्रकाशन लगभग ४० वर्ष पश्चात् हुआ, जब संस्कृत-रंग की स्थापना उन्होंने की। मद्रास में दो बार इसका प्रयोग १९६९ ई० में हुआ और १९७२ ई० में विश्वसंस्कृत सम्मेलन के अवसर पर इसका प्रयोग दिल्ली में हुआ। भूमिका में लेखक ने इसकी विशेषताओं की वर्णना इस प्रकार की है—

A contemporary Sanskrit play which showed the living character of the language as the medium of creative expression to-day, the presentation of a Mohammdan story in Sanskrit and the over-all ideology of integration and harmony, all these made the production of Anārkalī most appropriate at a gathering at which scholars from every part of the world had assembeled to place flowers at the altar of the supreme integrator Sanskrit.

कथावस्तु

फतहपुर सिकरी में इबादतखाना (अध्यात्ममण्डप) में अकबर अपने मन्त्रियों से बातचीत कर रहा है। अकबर हिन्दुओं के प्रति अपने सम्मान का कारण बताता है कि मेरा जन्म हिन्दू के घर में हुआ। वहाँ मेरे पिता को शरण मिली थी। मेरी पत्नी योधाई हिन्दू हैं। मैंने अपनी बहू भी हिन्दू परिवार से चुनी है। मुल्ला हिन्दुओं के प्रति विष वमन कर रहे हैं। अकबर से सभी धर्मों के नेता मिलते हैं और उसकी प्रवृत्तियों को सात्त्विकता-प्रवण बनाते हैं। द्वितीय अङ्क में अनेक कलाविदों और शास्त्रियों के कृतित्व का साक्षात् परिचय अकबर प्राप्त करता है और नादिरा नामक परिचारिका को दक्षिण से आये हुए पुण्डरीक विट्ठल से शिक्षा लेकर सम्राट् के समक्ष गाने का का आदेश दिया जाता है।

चतुर्थ अङ्क में राजकुमार सलीम से अनार्कली (नादिरा) अकेले में मिलती है। नादिरा का वर्णन सलीम के मुँह से है—

नादिरा मदिरा नूनं मादिनी मनसो मम।
सत्यमेतावदप्राप्तपाकं त्वं पुण्यमेव मे ॥ ४.५

नादिरा के भाग्य में यह कहाँ था ?

पंचम अङ्क में विष्कम्भ में बताया गया है कि अकबर के हाथ से सत्ता छीन

कर सलीम को राजा बनाना, उसकी रानी एक मुसलमान कन्या मेहरुन्निसा को बनाना और रहीम को कोषाध्यक्ष बनाना इन सबको लेकर षड्यन्त्र चल रहा है। अनार्कली का महत्त्व बढ़ रहा था। सलीम के शयनगृह मे पानादि पहले मेहरुन्निसा ले जाती थी। अब अनार्कली यह काम करने लगी। मेहरुन्निसा की माता इस्मद्-बेगमके लिए यह सब असह्य था। उसने अक्बर को यह सब बताकर अपना मन्तव्य पूरा करने की ठानी।

षष्ठ अङ्क मे सलीम अनार्कली के लिए उद्विग्न था। अनार्कली आई तो सलीम ने उसके उपभोग के पहले कहा—

यदेव प्राप्यते कृच्छ्रात्तदेव परमं सुखम्।
वियोगविघ्नकष्टानि विना पुष्टी रसस्य का॥

अनार्कली से उसके संगीताचार्य पुण्डरीक विट्ठल मिले। उन्होंने देखा कि नृत्य-प्रदर्शन के पहले वह पर्याप्त प्रसन्न मुद्रा मे नहीं है। उनके जाने पर सखी ने उसका प्रसाधन किया। उसकी दु स्थिति सुनकर उसने कहा—

म्लायन्ति पुष्पाण्यपि गन्धवन्ति लोकप्रियः क्षीयत एव चन्द्रः।
परस्परं प्रेमवतां न योगो धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत्॥ ७.२

अष्टम अंक मे संगीत-मण्डप में अनार्कली आई—शरीर बद्धा भाव-समृद्धि मूर्त होकर। तानसेन गीत का नृत्तवन्य देखने के लिए उत्सुक थे। आचार्य ने कहा—अनार्कली नृत्याभिनय प्रारम्भ करो। उसी समय सलीम और अनार्कली की आँखें बार-बार मिली, जिसे रहीम ने अकबर को बताया। अकबर ने आज्ञा दी—इस वेश्या अनार्कली को कारागृह में ले जाओ। कल इसे दीवाल में चुन दिया जाय।

कारागार से अनार्कली को निकालकर सलीम उसके साथ भाग जाने की योजना नवम अङ्क में कार्यान्वित करने के लिए रात के समय उसके पास पहुँचता है। कहा कि अभी तुम्हारी रक्षा करता हूँ। चलो, हमारे साथी हैं और शीघ्र दुर पलायन करने के साधन प्रस्तुत हैं। अनार्कली ने समझाया कि इतना बड़ा संशय क्यों मोल ले रहे हो? मेरे लिए? उसने रघुवंश जैसी पंक्ति सलीम को सुनाई—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवंवयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु मास्तु हानं जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्॥

तभी उधर अकबर आ पहुँचा। सभी तितर-बितर हो गये। अनार्कली ने ऐसी स्थिति मे विष खाकर अपना अन्त करना चाहा, किन्तु अकबर ने उसे ऐसा करने से रोक दिया।

रहीम ने शराब में निद्राचूर्ण मिलाकर सलीम को पिला दिया। सलीम कारागृह की ओर पुनः अनार्कली को बचाने के लिए जाना चाहता था। प्रातः हुआ। सलीम को अनार्कली की चिन्ता थी कि उसका क्या हुआ? पुण्डरीक विट्ठल उससे मिले और बताया कि महाराज ने अनार्कली का मृत्युदण्ड निरस्त कर दिया।

महाराज को हिन्दू वहू ने उनसे प्रार्थना करके ऐसा करवाया है। सलीम ने अपनी पत्नी के विषय में कहा—

पतिव्रतायाः सौजन्यं तथावीर्यंवदेधते।
यथा वज्रकठोरेण नृपेण कुसुमायितम् ॥ १०.४

तानसेन ने आकर बताया कि महाराज आप से मिलने आ रहे हैं। अकवर ने उससे कहा—

किं ते भूयः प्रियमुपहरामि।

समीक्षा

इस प्रकरण में यदि आरम्भ के दो अंकों की सामग्री अर्थोपक्षेपक में देकर तृतीय अङ्क से इसे आरम्भ किया जाता तो कला की दृष्टि से यह अधिक रुचिकर और निर्दोष होता, भले ही लेखक की अकवर-प्रशंसा-प्रवृत्ति में अपूर्णता रह जाती।

शिल्प

अनार्कली की सात पृष्ठ की लम्वी प्रस्तावना में, अनेक ऐसी बातें समाविष्ट हैं, जो प्रेक्षकों की सहिष्णुता की परीक्षा लेने के लिए सिद्ध होंगी, न कि उन्हें उत्सुक या मन्त्रमुग्ध करने के लिए. इसमें सूत्रधार का २१ पंक्तियों का व्याख्यान नाट्योचित नहीं कहा जा सकता।[1]

इस रूपक में दृश्य और सूच्य का विवेक नहीं के वरावर दृष्टिगोचर होता है। इसके प्रथम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में सूच्य कम और दृश्य अधिक हैं। इसमें सुन्नी और शिया का कलह द्वन्द्वयुद्ध है। फिर इसमें अकवर का संन्यासी के वेश में रंगपीठ पर आना भी विष्कम्भक की मर्यादा के परे है। प्रत्येक पात्र अपने विषय में अधिक और दूसरे के विषय में कम बात करता है। ऐसा अर्थोपक्षेपक में नहीं होना चाहिए।[2]

तृतीय अङ्क में कोई सामग्री अङ्कोचित नहीं है। इसे तो लेखक को सुविधा पूर्वक प्रवेशक या विष्कम्भक रूप में प्रस्तुत करना चाहिए था।

पंचम अङ्क के आरम्भ से इस्मदवेगम की एकोक्ति अंक में न रखकर विष्कम्भक में होनी चाहिए थी। सप्तम अंक के पूर्व विष्कम्भक में सलीम जैसा उच्च कोटिक-पात्र नहीं होना चाहिए था।

छायातत्त्व की विशेषता इस प्रकरण में सविशेष है। प्रथम अंक पहले विष्कम्भक में अकवर संन्यासी का वेशधारण करके प्रकट होता है। द्वितीय अङ्क में वीरवर काना वनकर रंगपीठ पर आता है।

नाटक काव्य होता है, इतिहास नहीं। अनार्कली तो इतिहास हो गया है राघवन् ने इस नाटक को लिखने के पहले इतने इतिहास-ग्रन्थों को पढ़ा था कि

१. आगे भी ऐसे लम्वे व्याख्यानात्मक संवाद समीचीन नहीं है। यथा, प्रथम अंक में अकवर का सलीम को २७ पंक्तियों का उपदेश।
२. सप्तम अंक में अनार्कली की सखी से वातचीत कदापि अंकोचित नहीं है।

इस नाटक की कथावस्तु में नाट्योचित प्रातिभ विलास और काव्य-सौष्ठव का अभाव हो गया है। उद्देश्य-प्रवण घटनाओं को नाटक में ठूँसने से बेला का गला दब जाता है। उदाहरण के लिए लीजिये नीचे लिखी स्वामी सच्चिदानन्द की अधोलिखित उक्ति—

प्रयाग-वाराणस्यादितीर्थेषु स्नानमाचरतां हिन्दूनां यो जजियेति करो विहितः, स निवर्त्यताम्। एवमेव च गोवधो राष्ट्रे निषिध्यतामिति।

इसका आगे-पीछे की घटनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। द्वितीय अंक तो ऐसी अप्रासगिक बातों से पूर्णतया निर्भर है।

रंगपीठ पर एक ही समय दो-चार पात्र रहना ठीक है। इस नाटक के प्रथम अंक में लगभग १३ पात्र वर्तमान हैं। अङ्क में इनके निष्क्रमण की चर्चा लेखक के शब्दों में है—

निष्क्रान्तः अकबरः, तदनन्तरं सलीमः, तदनन्तरं तन्मन्त्रिणः, ततो हिन्दु-जैनादिविविधमतीयाः। इनके अतिरिक्त बहुत से मुसलमान या मुल्ले लोग थे।

नाटक में पात्रों को रंगमच पर यदि एक बार लाया गया तो उन्हें वहाँ से निष्क्रान्त नहीं किया गया। ऐसी स्थिति में द्वितीय अंक में रंगमच पर ११ पात्र अन्त तक इकट्ठे हो जाते हैं।

इतनी बड़ी पात्र-सख्या नाट्योचित नहीं है। लेखक को यह ध्यान नही रहता कि किसी भी पात्र को व्यर्थ ही बिना किसी काम के रंगमंच पर न ठहरने दे। पूरे प्रकरण में ५० से अधिक पात्र हैं।

अङ्क भाग में छोटी-मोटी कहानी सुना देना राघवन् की यह रीति मनोरजन के लिए भले ही हो, वस्तुतः ऐसा करना सूचनात्मक होने के कारण अङ्क की मर्यादा से परे है। द्वितीय अङ्क के आरम्भ मे अकबर बताता है कि कैसे मैंने किसी अपशकुनी का मुँह देखा और मुझे भोजन दिन भर नहीं नसीब हुआ तो मैंने उसे मृत्यु-दण्ड दिया। तब बीरबल ने मुझ से कहा कि आप तो इतने अपशकुनी हैं कि आपको प्रातः देखने से उसे मृत्यु-दण्ड मिला। कौन बड़ा अपशकुनी है? इसी के आगे बीरबर का काना बन कर प्रश्नोत्तर देकर अकबर को प्रसन्न करना भी ऐसी ही व्यर्थ की बात है, जो अंकोचित नही है। निस्सन्देह, यह सामग्री मनोरजन के लिए उपयुक्त है, पर कथावस्तु के प्रवाह में सर्वथा अनावश्यक है।

अनार्कली प्रकरण मे लम्बी-लम्बी एकोक्तियाँ प्रायशः प्रयुक्त हैं।[1] एकोक्ति का सौरभ अनार्कली में आद्यन्त उच्चकोटिक है। नादिरा (अनार्कली) के प्रेम में प्रस्निग्ध सलीम चतुर्थ अङ्क के आरम्भ मे कहता है—

धौताभ्रष्टमिदं मदीयं हृदयं संचारचन्द्राश्मवत्
हृष्टं वृक्षवदेतदङ्गमखिलं फुल्लं मनः पुष्पवत्।

---

१. सब से अधिक लम्बी एकोक्ति षष्ठ अंक के आरम्भ में सलीम् की ६५ पंक्तियों की है।

स्पन्दे लघ्वलसं विमुक्तवपुपा गन्धानिलोऽयं यथा
मच्चित्तोपरि कौमुदीव सुभगा काप्युत्कता लम्बते ॥ ४.२

सत्यमत्र शान्तोदारशोभना कापि सन्निहिता लक्ष्मीः या मामुद्घाटित-भावपूरं तरङ्गयति ।

इसी प्रकार की सलीम की एकोक्ति इस अङ्क के अन्त में भी है, जिसका अन्तिम वाक्य है—

दृष्टायामपि दुर्गमां विदधतो धिक् क्रौर्यमेतद्विधेः ॥ ४.११

पंचम अंक में अनार्कली और इस्मद्वेग की एक के बाद दूसरी एकोक्ति मात्र है, अन्य कुछ भी नहीं । ये एकोक्तियाँ प्रायशः सूच्य सामग्री प्रस्तुत करती हैं ।

सप्तम अंक के आरम्भ में अनार्कली की एकोक्ति सूच्य विशिष्ट है । इसमें वह बताती है कि सलीम ने उसे बताया है कि अकबर को हटाकर स्वयं राजा बनकर तुम्हें रानी बनाऊँगा । अष्टम अङ्क के अन्त में अकबर की एकोक्ति अतिशय मार्मिक है ।

नवम अङ्क के आरम्भ में कारागार में अनार्कली की एकोक्ति में उसकी बहुविध चिन्तना वर्णित है । दशम अंक के बीच में सलीम की एकोक्ति है । वह अकबर को भलाबुरा कहता है ।

सांगीतिक स्वर लहरी से प्रायः सभी रूपकों को राघवन् ने आपूरित किया है । अनार्कली में सलीम की ऐसी उक्ति है—

आताम्रकोमलकपोलयुगं प्रफुल्लनेत्रं स्फुरदपुटोल्लसदुत्स्मितश्रिः ।
कान्ते कथं तव मुखाम्बुजमेतदद्य सद्यो जगाम भयविह्वलपाण्डिमानम् ॥

भावी घटनाक्रम का संकेत पूर्ववर्ती घटनाओं से कराते चलना कलात्मक विधान है । इसके चतुर्थ अंक में जब सलीम नादिरा को छूने चलता है तो अंगुली में कांटा लग जाता है और आगे चल कर वह अनार्कली से कहता है—तदपि सकण्टकामिव पश्यामि अनार्कलीम् ।



सुन्दरार्य का नाट्यसाहित्य

सुब्रह्मण्यार्य के पुत्र इ० सु० सुन्दरार्य (सुन्दरेश) का जन्म तिरुचिरपल्ली मे हुआ था। वही वे अधिवक्ता रहे हैं। इनकी काव्य-चातुरी से प्रसन्न होकर महामहोपाध्याय पण्डितराज कृष्णमूर्ति शास्त्री, मद्रास के राजकवि ने इन्हे अभिनव जयदेव की उपाधि दी थी। संस्कृत-साहित्य-परिषद् ने इन्हे अभिनव कालिदास की उपाधि मे समलङ्कृत किया था।

सुन्दरार्य तिरुचिरपल्ली के संस्कृत-साहित्य-परिषद् के मन्त्री थे, जब उसके अध्यक्ष गोपालाचार्य थे। सुन्दरार्य कोरे कवि ही नही थे, अपितु स्वय अभिनेता और निर्देशक भी थे। उन्होने संस्कृत साहित्य-परिषद् का मन्त्री रहते हुए अनेक प्राचीन नाटको का निर्देशन करके अभिनय कराया था। उनका मत है कि आधुनिक रंगमच के योग्य बनाने के लिए संस्कृत के प्राचीन नाटको को कही-कही संक्षिप्त करना पड़ता है और कई स्थलो पर कुछ परिवर्तन विधेय हैं। कई पुराने नाटक आधुनिक प्रेक्षको के पल्ले नही पड़ते, क्योकि उनको समझने के लिए गभीर अध्ययन अपेक्षित है। लेखक की पहली नाट्यकृति उमापरिणय है।[1] इसके पश्चात् उन्होंने छः अङ्को मे मार्कण्डेय-विजय नामक नाटक की रचना की।[2]

उपर्युक्त कृतियो के अतिरिक्त सुन्दरार्य ने संस्कृत मे समुद्रस्य स्वावस्थावर्णन नामक काव्य, स्तोत्रमुक्तावली और गानमंजरी का प्रणयन किया। उन्होने तमिल भाषा मे तीन उपन्यासों का प्रणयन किया है।

उमापरिणय

उमापरिणय का तिरुचिर पल्ली मे संस्कृत-साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव मे दो बार अभिनय १९५२ ई० के पूर्व हो चुका था।

कथानक

हिमालय को अपनी कन्या पार्वती के विवाह की चिन्ता है, जिसे वह आगन्तुक महर्षि नारद के समक्ष व्यक्त करता है। नारद ने बताया कि पार्वती पूर्वजन्म की सती है, जो योगाग्नि से जल मरी शिव की पत्नी थी। वह पुनरपि उन्ही की पत्नी होगी। शिव सती के वियोग मे तप कर रहे थे। नारद ने कहा कि पार्वती को उनके पास भेज दें। वह उनकी सेवा करे।

तारकासुर ने देवलोक पर आक्रमण कर दिया। उसके भट ने रम्भा और कल्पतरु का अपहरण किया। इन्द्र के पूछने पर बृहस्पति ने बताया कि तारका-

---

१. इसका प्रकाशन १९५२ ई० मे हुआ था। इसकी प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

२. इसका प्रकाशन हो चुका है। इसकी प्रति सागर वि० वि० मे है।

सुर को शिवपुत्र जीत सकेगा, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। उपर्युक्त परिस्थितियों में कामदेव को पार्वती और शिव का विवाह कराने के लिए भेजने की योजना बनी।

तृतीय अङ्क में वासन्तिक सौरभ के बीच पार्वती को उत्सुकता होती है कि पंकज-बीज की माला आज शिव को पहनाऊँ।

रति ने काम से सुना कि मेरे पति शिव का पार्वती से विवाह कराने जा रहे हैं। वह बोली—

शक्यः किन्नु घटाम्भसा शमयितुं घोरस्स दावानलो
वज्रं वारयितुं पतन्तमथवा छत्रेण किं शक्यते।
यो वा कर्तुमपेक्षते च तपसो विघ्नं पुरारेरपि
क्रोधाग्नौ पतितुं स्वयं शलभतां प्राप्तुं स वांछत्यहो॥

उसका स्पष्ट मत था कि तुम्हारा प्रयास व्यर्थ है। रति भी साथ गई। ब्रह्मचारी शंकर की माता मीनाक्षी उनका विवाह कर देना चाहती थीं। शंकर ने कहा—'नूनं न फलिष्यति ते मनोरथः। दुःखकरो भवति संसारः। तपः कर्तुं यास्यामि।' तभी उधर से नटेश अपनी कन्या सुन्दरी को लिए आ गये। सुन्दरी भी विवाह नहीं करना चाहती थी। फिर भी मीनाक्षी और नटेश जातक-संघटन देखने के लिए ज्योतिषी के पास गये। इधर सुन्दरी पास ही दूसरी ओर मुँह करके भूमि पर लेट गई। रति और मन्मथ वहाँ आये और छिपकर मन्मथ ने शंकर पर पुष्पबाण चला ही दिया। शंकर ने मन्मथ को न देखकर समझा कि सुन्दरी पुष्पों को फेंककर सोने का बहाना कर रही है। वे उसके पास गये और उसे सोया देखकर जब जगा न सके तो उन पुष्पों को उसी के ऊपर फेंक दिया। जगने पर सुन्दरी बहुत बिगड़ी। शंकर ने कहा कि तुमने क्यों पुष्प मेरे ऊपर फेंके थे? इधर पुष्प-गन्ध लगते ही सुन्दरी का उनके प्रति आकर्षण होने लगा था। शंकर ने स्वयं उन पुष्पों से सुन्दरी का प्रसाधन कर दिया। उस समय आकर मीनाक्षी और नटेश ने यह देखा तो कहा कि अब ज्योतिषी की क्या आवश्यकता? मन्मथ ने छिपे-छिपे रति से कहा कि मेरा प्रभाव तुमने देख लिया। अभी पार्वती से शिव का विवाह कराना है। वे शिव की तपोभूमि में पहुँचे। वहाँ देखा—

न चलति तरुपर्णं मारुतो वाति नात्र न चरति मृगयूथं श्रूयते नापि शब्दः।
तपति च शितिकण्ठे तत्स्वरूपं समस्तं भवति भुवनमेतन्निश्चलं निर्विकारम्॥

शिव को देखकर मन्मथ के हाथ-पाँव ढीले पड़े। वहाँ पार्वती पंकज की बीज-माला और फल लिए आई और स्तुतिपूर्वक प्रणाम किया। शिव ने कहा कि अद्वितीय पति पाओ। माला भी उन्होंने पहन ली। माला पहनाते समय काम ने सम्मोहनास्त्र का प्रयोग किया, जिसके प्रभाव से शिव के मन में विकार उत्पन्न हुआ और काम को देखकर उन्होंने हुँ कहकर नेत्राग्निस्फुलिंग से उसे जला दिया। शिव अन्यत्र चले गये। हिमालय पार्वती को घर लाये। रति ने घोर विलाप किया।

आकाश वाणी हुई कि शिव के विवाह के समय तुम्हें पति पुनः मिलेंगे। शिव उन्हें पुनरुज्जीवित करेंगे।

नारद एक दिन उन सबसे मिले। नारद ने पार्वती के तप का अनुमोदन कर दिया। वे शिव के पास पहुँचे और उन्हें पार्वती का समाचार बताया कि वह घोर तपस्या आपके लिए कर रही है। शिव ने कहा कि यह सब देवताओं का षड्यन्त्र है। नारद के कहने पर शिव पार्वती से विवाह करने के लिए सहमत हो गये।

एक दिन एक ब्रह्मचारी पार्वती की तपोभूमि के समीप उसे देखने के लिए आया। उसने पार्वती के तप की अति प्रशंसा की। यह जानकर कि पार्वती का श्रेष्ठ निघृ्ण शिव है, उसने शिव की निन्दा करना आरम्भ किया कि कपालपाणि का लक्ष्मी-रूपिणी सौन्दर्य-देवता से विवाह कल्पनीय नहीं है। पार्वती उस पर बिगड़ी। ब्रह्मचारी शिव के रूप में आ गया। फिर तो शिव का विवाह देवताओं ने कराया और शिव ने काम को सप्राण किया।

उमापरिणय की प्रस्तावना सूत्रधार-विरचित है, जैसा प्रस्तावना के नीचे लिखे वक्तव्य से विदित होता है—

सूत्र०—अहो गृहीत-हिमवद्भूमिको मम भ्राता प्रविशति। इत्यादि

शिल्प

नाटक के आरम्भ में नृत्य और गीत का समावेश साग्रह प्रतीत होता है। नाटक में छोटे-छोटे दस अङ्क हैं।

शिव का ब्रह्मचारी बन कर पार्वती से बातें करना छायातत्त्वात्मक है। पार्वती ने कहा है—किमयं कपटवेषस्स्यात्।

पंचम अङ्क से संलग्न विष्कम्भक को कवि ने अंक क्यों नहीं बनाया—यह प्रश्न है। परिभाषानुसार दृश्य की बहुलता के कारण यह अर्थोपक्षेपक है ही नहीं। विष्कम्भक को अंक की परिधि के भीतर रखना चिन्त्य है। विष्कम्भक को अंक से अलग होना चाहिए।

सुन्दरार्य के संवादों की भाषा, चाहे गद्य हो या पद्य, नितान्त सरल और ललित होने के कारण सर्वथा नाट्योचित है। उनके आदर्श कवि कालिदास, वाल्मीकि और भर्तृहरि आदि रहे हैं, जिनकी रचनाओं में उन्होंने भाव के साथ ही साथ रोचक शब्दावली ली है।

सुन्दरार्य ने अपने नाटकीय शिल्प के विषय में कहा है—

With a view to presenting to the public a drama in Sanskrit written in a simple style and with all the modifications necessary to suit the modern stage and the tastes of the present day audience I wrote Umāpariṇaya for being enacted during the anniversary celebrations of the Parishad in 1950. The old classical

rules of the drama have also been adhered to except in minor details. The Prākṛt dialogue for the inferior characters is not given because it is not understood by the modern actors and the audience and is not used in acting. Staging takes less than three hours.

मार्कण्डेय-विजय

मार्कण्डेय-विजय का अभिनय स्थानीय संस्कृत-साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव के अवसर पर हुआ था। सूत्रधार के शब्दों में—शृंगार, करुण आदि रसों के नाटक पामर जन-रंजन के लिए हैं। नाटक तो होना चाहिए भक्ति रसोपेत-तत्त्वार्थ-बोधक। इसकी रचना काञ्चीकामकोटि-पीठाधिपति जगद्गुरुशंकराचार्य स्वामी के आदेश से हुआ था। नटी ने इसके विषय में कहा है—

> प्रसिद्धेयं शिवकथा प्रणेता रसभाववित्।
> प्रसादश्च गुरोर्लब्धः प्राप्स्यामो विजयं ध्रुवम्॥

कथावस्तु

मृकण्डु और उसकी पत्नी मृद्वती शिव की पूजा करते हैं। किसी अतिथि ने उनका आतिथ्य इसलिए नहीं ग्रहण किया कि मृकण्डु को पुत्र नहीं था। उन्होंने शिव की अर्चना करके पुत्र तो पाया पर शिव ने उसे १६ वर्ष की ही अल्पायु दी। पुत्र का नाम मार्कण्डेय था। वह शिव का ध्यान लगाता था।

१६ वें वर्ष का अन्त समीप ही था। यम ने चण्ड और वज्रदंष्ट्र को भेजा कि मार्कण्डेय को ले आओ। ये दोनों गये तो उन्हें किसी दैवी शक्ति ने रोका। तब इस काम को दुःसाध समझ कर मार्कण्डेय को लेने यम को स्वयं जाना पड़ा। यम ने उसके गले में पाश डाला और खींचने लगा तो मार्कण्डेय ने शिवलिंग का आलिंगन कर लिया। यम ने लिंग पर भी पाश फेंका और दोनों को खींचने लगा। लिंग फट पड़ा। उससे शिव आविर्भूत हुए और उन्होंने यम को एक लात मारा। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

शिव ने मार्कण्डेय के सिर पर हाथ रखकर कहा कि तुम कालपाश से मुक्त हो। तुम चिरजीवी हो। नारद ने शिव से प्रार्थना करके कालदेव यम को भी जीवित कराया। शिव ने यम से कहा कि मार्कण्डेय सदा १६ वर्ष का ही रहेगा।



विश्वनाथ सत्यनारायण का नाट्यसाहित्य

विश्वनाथ सत्यनारायण भारत-भारती के बीसवीं शती के श्रेष्ठ उन्नायकों में अग्रगण्य है। उनको भारत-शासन ने पद्मभूषण की उपाधि से समलङ्कृत किया था। १९३४ ई० मे मद्रास-विश्वविद्यालय ने उनके वेयि पदगलु नामक उपन्यास को पुरस्कृत किया था। ज्ञानपीठ ने उनके तेलुगु भाषा मे रचित श्रीरामायण-कल्पवृक्ष नामक रचना पर एक लाख का पुरस्कार दिया था। उनकी सर्वतोभद्र उपाधि कवि-सम्राट् उनकी लोकप्रियता व्यक्त करती है। आन्ध्रप्रदेश की सरकार ने उनको आजीवन राजकवि (पोएट-लारियट) बना रखा था।

विश्वनाथ सत्यनारायण के पिता विश्वनाथ शोभनाद्रि थे। इन नामों मे विश्वनाथ वंश का नाम है। उनका जन्म कृष्णा जिले के नन्दमुरु ग्राम मे हुआ था। इनके साहित्य-विद्या के आचार्य निरुपति वेङ्कट कवि थे। विश्वनाथ सत्यनारायण ने एम० ए० तक शिक्षा पाई थी। वे गुन्तूर में तेलुगु-पण्डित से उन्नति करके व्याख्याता हुए और अन्त मे करीमनगर के महाविद्यालय में प्राचार्य पद से विश्रान्त हुए।

सत्यनारायण मूलतः तेलुगु भाषा के कवि हैं, जिसमे उनकी शताधिक रचनायें हैं। उन्होने प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं मे वाङ्मय की सभी शाखाओं को पल्लवित और पुष्पित किया है। सूत्रधार ने उनकी प्रशसा में कहा—

सोऽशीति प्रकटाः समाः विधिवद्यूपादाङ्कूलाक्षास्फुर-
न्प्रेम्णांशुश्रुतीन्घनेतरमहान् वह्निर्मनुष्याकृतिः॥

गिरिकुमार नाम से उन्होने कतिपय श्रृंगारित रचनायें की हैं।

सत्यनारायण ने संस्कृत मे दो नाटक—गुप्तपाशुपत और अमृतशर्मिष्ठ लिखे।

गुप्तपाशुपत

गुप्तपाशुपत मे महाभारत युद्ध की कथा है। कवि को यह उचित नही प्रतीत होता कि आधुनिक युग मे महायुद्धो मे महामारण अस्त्र-शस्त्र प्रयुक्त हो। महाभारत मे अर्जुन को शिव का दिया महामारक अस्त्र पाशुपत प्राप्त हुआ, किन्तु अर्जुन ने ने उसका उपयोग नही किया। इसका अभिनय शरद् ऋतु में हुआ था।

अमृतशर्मिष्ठ

अमृतशर्मिष्ठ मे शर्मिष्ठा और देवयानी की कथा महाभारतानुसार है। इसमें शर्मिष्ठा ययाति के प्रेम मे रुग्ण होकर मरणासन्न हो जाती है। महाराज की आज्ञा से वैशम्पायन नामक मन्त्री उसके रोग की परीक्षा करने के लिए आता है। शर्मिष्ठा उससे बताती है कि मैं बोधायन नामक राजा के विदूषक की सहपाठिनी पूर्वजन्म में थी। उसने इन्द्र का पूर्वजन्म का शाप बताया कि मैं आगामी पूर्णिमा

को चन्द्रमा के तेज में मिल जाऊँगी। वैशम्पायन के अनुसार ययाति ही चन्द्रवंशी राजा है। वह स्वर्ग में देवताओं की सहायता करके राक्षसों को जीतकर अपने लोक में लौटकर शर्मिष्ठा से मिलता है। वह उसका आलिंगन करके मूर्छित होता है। नागवल्ली का पहले राजा ने, फिर शर्मिष्ठा ने, फिर राजा ने दंशन किया। इस प्रकार के अनेक नये संविधानों से यह नाटक मण्डित है।

नव अंकों के इस नाटक को कवि ने महानाटक कहा है। सत्यनारायण परम्परावादी नाट्यकार हैं। इनके नाटकों में नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य और विष्कम्भकादि मिलते है। एकोक्तियों की विशेपता है। अमृतशर्मिष्ठ में संवादों की चटुलता रुचिकर है।

गुप्तपाशुपत और अमृतशर्मिष्ठ दोनों नाटक प्रकाशित हैं।



अध्याय ११५

विष्णुपद भट्टाचार्य का नाट्यसाहित्य

विष्णुपद भट्टाचार्य चौबीस परगने में विद्वन्मण्डित भट्टपल्ली के निवासी थे। इनकी मृत्यु फरवरी १९६४ ई० में हुई। विष्णुपद संस्कृत के महान् विद्वान् महामहोपाध्याय राखाल दास न्यायरत्न की कन्या के पुत्र थे। इनके पिता का नाम हरिचरण विद्यारत्न था। वे कानुरग्राम के रहने वाले थे। विष्णुपद ने अनेक रूपकों की रचना की, जिनमें काञ्चनकुञ्चिक, धनञ्जयपुरञ्जय, कपालकुण्डला, मणिकाञ्चन-समन्वय, अनुकूलगलहस्तक आदि सुप्रसिद्ध हैं। वे संस्कृत-साहित्य-परिषद् पत्रिका के सम्पादकों में से थे। विष्णुपद के पूर्वज विद्यानुरागी थे। उनके पिता के सम्बन्ध में सूत्रधार ने कपालकुण्डला की प्रस्तावना में कहा है—

अनूद्य यो बंकिमचन्द्रनिर्मितां कथां मनोज्ञां हि कपालकुण्डलाम्।
काव्यं कवेरोमरखेयमस्य तद् गिरा सुराणामगमद् यशो महत्॥

काञ्चन-कुञ्चिक

काञ्चनकुञ्चिक की रचना १९५६ ई० में हुई थी, जब भारत को स्वतन्त्र हुए दस वर्ष हो चुके थे।[1] इस नाटक से विष्णुपद की नाट्यरचना की सर्वोच्च प्रतिभा प्रमाणित होती है। काञ्चनकुञ्चिक उनकी श्रेष्ठ उपलब्धि कही जा सकती है।

विष्णुपद के नव अंकों के काञ्चनकुञ्चिक प्रकरण की प्रस्तावना में बताया गया है कि कभी-कभी संस्कृत नाटकों का अभिनय करने वालों को प्रेक्षकों का अभाव महान् क्लेशकारक होता था। सूत्रधार पहले रंगमंच से नागरिकों को बुलाता है, फिर उनके न आने पर मारिष से कहता है—

त्वमेव गत्वा कतिपयान् नागरिकानत्र समानय।

सूत्रधार लम्बी साँस लेकर दुखड़ा रोता है—

भारतीयवचसां प्रसूरियं भव्यभावविभवैर्महीयसी।
सर्वपूर्वविदुषां गिरःस्थिता खर्वगर्वमधुनावसीदति॥

पकड़कर लाया गया प्रेक्षक विरूपाक्ष बिगड़ कर कहता है—

शङ्के मृतसंस्कृतभाषया निबन्धं रचयता नाट्यकारेण शवशरीरमुद्वर्तितम्।

सूत्रधार ने जब कहा कि यह क्या बकवास करते हो तो विरूपाक्ष और बिगड़कर बोला—

भद्र, संयतवाचा भवितव्यं भवता नो चेन्मुष्ट्याघातेन चूर्णीकृतमस्तकः पितुरपि नाम विस्मरिष्यामि।

बुलाये हुए अन्य प्रेक्षक विरूपाक्ष के साथ थे। उन्होंने कहा कि इस सूत्रधार के दुर्वचन का फल इसे मिलना ही चाहिए। सभी कमर कस कर उससे लड़ने चले।

---

१. इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन मंजूषा नामक पत्रिका में १९५६ ई० में हुआ।

विरूपाक्ष ने विवाद के बीच कहा कि यदि पहले ही जैसा जीवन के लिए उपयोगी वस्तुओं का अभाव रहा तो स्वतन्त्रता और परतन्त्रता में क्या भेद रहा ? हमारी दुर्गति देखकर तो सियार और कुक्कुर भी रोते हैं।

सूत्रधार के अनेक तर्क देने पर भी प्रेक्षक रुका नहीं। विरूपाक्ष ने अपना मन्तव्य सुनाया—

जनशून्य एव रंगालये रंगोऽयं प्रवर्तताम्।

और तो और, मारिष ने भी अकेले में सूत्रधार से कहा कि मैं भी प्रेक्षकों की भाँति सोचता हूँ। स्वतन्त्रता से बात कुछ बनी नहीं है।

गेहे गेहे तरुणा लब्धविद्याः कर्माभावान्नितरां मोहवन्तः।
दुःखान्मुक्तेरितरं मुख्य ार्गं न प्रेक्षन्ते स्वकृताज्जीवनान्तात्॥

सूत्रधार विवेकी था। 'इन निकम्मे तरुणों को लक्ष्मी कहाँ से मिले ? ये काम करना ही नहीं चाहते।' यह कह कर वह रंगमंच से चलता बना।

सूत्रधार ने इसे समयोचित प्रकरण कहा है। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि कुछ नाटककार अपनी कृतियों में समसामयिकता समापन्न करने का प्रयास करते थे।

इस प्रकरण का अभिनय वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था।

कथासार

सुकुमार नामक सुशिक्षित बेकार युवक बहूबाजार में कोई योग्य काम न पाकर तीन लड़कों को घर पर पढ़ाकर जैसे-तैसे जीविका चलाता था। माता-पिता मर गये। उसका मित्र प्रशान्त नामक चिकित्सक उसकी चिन्ता में भाग लेने आया। अपनी चिन्ता में निमग्न सुकुमार कुछ देर तक पास आये प्रशान्त को न देख सका। प्रशान्त ने कहा कि लगता है कि तुम्हारी आँख खराब हो गई है। उसने झट से एक चश्मा निकाला और उसकी आंख पर फिट किया। सुकुमार बोला कि यार, अन्धा नहीं हूँ। कहीं-कुछ और सोच रहा था और तुमको देख न सका। सुकुमार ने बेकारी का दुखड़ा रोया। किसी प्रभावशाली महापुरुष की सिफारिश विना कोरी योग्यता से काम नहीं मिलता। प्रशान्त ने यह कह कर सुझाया कि कोई व्यापार कर लो। मैं तुम्हें आवश्यक धन बिना सूद के ही देता हूँ। सुकुमार ने कहा कि मित्रों से पैसा लेने से मैत्री टूट जाती है। अन्त में सुकुमार ने बताया कि सुरञ्जन-वयन-यन्त्रालय में रासायनिक की आवश्यकता है। तुम्हें उसके अधिकारी से परिचय हो तो नियुक्ति दिला दो।

चिरञ्जीव के कार्यालय में बहुत सी चिट्टियाँ आई थीं। दस रुपये का विज्ञप्ति-बिल भी था। विज्ञप्ति उन्होंने नहीं भेजी थी, विद्युत्प्रतिमा ने अपने विवाह के लिए भेजी थी। उसी दिन जनार्दन ठाकुर चिरंजीव के विवाह का प्रस्ताव लेकर आये कि साठ के हुए तो क्या हुआ ? लड़का नहीं है। विवाह कर लें। मैंने चन्द्र-नगर में एक ७० वर्ष के प्रतापनारायण का विवाह पिछली साल कराया। इस

वर्ष उन्हें पुत्रोत्पत्ति हुई है। चिरंजीव ने कहा कि मुझे अपना विवाह बुढ़ापे में मे नहीं करना है। विद्युत्प्रतिमा के विवाह के विषय मे चिन्तित हूँ। विद्युत्प्रतिमा के बुलाये जाने पर सखी ने साथ आकर बताया कि इन्हें तो किसी कविवर को वर बनाना है। चिरंजीव ने कहा कि अपने काम की चिट्ठियाँ इनमे से चुन लें। जनार्दन ने कहा कि मेरे रहते विवाह की विज्ञप्ति क्यों कराते हैं? चिरजीव ने कहा कि कलिकाल के प्रभाव को कौन रोक सकता है? सब कुछ तो बिगड चुका है। आपकी पद्धति अब नहीं चलने की।

देशदुर्दशा बताने के लिए तृतीय अङ्क मे डाक्टर प्रशान्त के चिकित्सालय का दृश्य दिखाया गया है। इसमे सिद्धेश्वर नामक रोगी का अभिभावक साधु उसे दवा खरीद कर दे सकने की स्थिति मे नहीं है। उसे डाक्टर पाँच रुपये दवा खरीदने के लिए देता है।

चिकित्सालय मे बैठा सुकुमार डाक्टर प्रशान्त को वह विज्ञापन देता है, जिसमे विद्युत्प्रतिमा से विवाह करने के लिए आवेदन-पत्र की माँग है। डाक्टर ने सुकुमार से तत्काल आवेदन-पत्र लिखने को कहा तो वह अपनी अयोग्यता का रोना रोने लगा। प्रशान्त ने कहा—हाथ दिखाओ और उसकी हस्तरेखा देखकर कहा—

स्वभाग्येन ते धनं नास्ति, स्त्रीभाग्येन तु प्रभूतम्।

इस धनवती से तुम्हारा विवाह ब्रह्मा भी नहीं टाल सकता।

सुकुमार ने कहा कि मैं कवि नहीं हूँ। प्रशान्त का उत्तर था—

कवितारचनं मोदकभक्षणमिव सुकरम्।

इसके पश्चात् विद्युत्प्रतिमा का नौकर पूर्णचन्द्र आया कि मुझे बाल काला बनाने की दवा दें। दवा लेने के बाद प्रशान्त के पूछने पर उसने विद्युत्प्रतिमा के विषय मे सब कुछ बताया। सुकुमार को आगे सुरंजन-वयन-यन्त्रालय मे नौकरी के लिए अन्तर्व्यूह मे जाना पडा। साथ मे प्रशान्त भी था। सुकुमार ने वहाँ जब विकृति का प्रदर्शन किया तो प्रशान्त ने उसे समझाया—

दास्यं यस्येप्सितं तस्य रोषो दोषस्य कारणम्।
अतो न मतिपारुष्यं श्रीयते भूतिमिच्छता॥ ४.१

तभी एक आदमी बिजली का धक्का खाकर मूर्छित हो गया। प्रशान्त ने उसे जाते ही ठीक कर दिया।

सुकुमार के प्रत्यक्ष ही औद्धत्य करने पर भी प्रशान्त ने कारखाने के स्वामी धुरन्धर से उसके विषय मे निवेदन किया—

सखायमिष्टः सुकुमारनामा सुस्पष्टभाषी सरलश्च शिष्टः।
विज्ञानावारांनिधिपारदृश्वा सुधीश्च साधुश्च विशुद्धवृत्तः॥ ४.२

प्रशान्त के कहने से धुरन्धर ने २०० रुपये की नौकरी सुकुमार मित्र को दे दी। साथ ही काम दिया कि शाम को केवल दो घण्टे मेरी बी० ए० की परीक्षार्थिनी

कन्या को पढ़ाओ। उसके लिए कुछ नहीं मिलना था। धुरन्धर मुँहफट था। उसने कहा कि—

वपुपा त्वमहो मनोहरस्तनया मे नवयौवनान्विता।
प्रहिणोति शरं यदि स्मरो गतिरेका युवयोः करग्रहः ॥ ४.७

पंचम अङ्क में पूर्णचन्द्र ने खिजाव लगा कर वाल काला किया और अपनी पत्नी को हड़वड़ाने के लिए चोर की भाँति उसका हाथ पकड़ा। उसने गर्जनसिंह को पुकारा कि देखो यह कौन मेरे सतीत्व पर प्रहार कर रहा है? यह कोई दस्यु कन्या के अन्तःपुर में आ घुसा है। गर्जनसिंह लाठी लिये आ पहुँचा उसने पूर्णचन्द्र का घेंटुआ पकड़ा और पूछा—

कथय रे दास्याः पुत्र ! कस्त्वम् कथं वा मामतिक्रम्य गृहं प्रविष्टः।

तव तो पूर्णचन्द्र ने कहा—मैं पूर्णचन्द्र हूँ, दस्यु नहीं।

पूर्णचन्द्र ने पत्नी से कहा—तुमने मुझे वृद्ध जरद्गव कहना आरम्भ किया तो मुझे यही मार्ग दिखा।

एक दिन सुकुमार मित्र का पत्र विद्युत्प्रतिमा को मिला। उससे कुछ प्रभावित होती हुई भी उसके कविता न करने से नायिका उसकी ओर प्रवृत्त नहीं होती थी। अन्त में उसे उसकी इच्छानुसार एक मास का समय दिया गया कि वह अपनी काव्य-प्रतिभा में निखार का प्रदर्शन करे।

छठें अङ्क में सुकुमार को विद्युत्प्रतिमा से जो उत्तर मिला था, उसे वह प्रशान्त को सुनाता है—

गवामिव धियो येषां ते एव गविता-प्रियाः[1]।
अतः स्वकविताशक्तिः सप्रमाणं प्रदर्श्यताम् ॥

इस उत्तर से प्रशान्त को आशा हो चली कि सुकुमार का काम वन गया। सुकुमार ने एक कविता वनाई थी—

त्वं राजसे पल्लविनीव वल्ली तुच्छोऽहमासे तृणगुच्छतुल्यः।
यदस्ति नौ दुस्तरमन्तरं तन्न मेलनं सम्भवतीह लोके ॥ ६.५

सुकुमार ने कहा कि उसे देखने पर ही अच्छी कविता वनेगी। तव तो प्रशान्त ने कहा कि उसका चित्र प्राप्त करता हूँ। उसका उपयोग है—

चित्रार्पिते विकसदम्बुजशोभमाने तस्याः स्मितोज्ज्वलमुखे तव वद्धदृष्टेः।
स्वान्तोद्भवो गिरिवरोदरनिर्झराभोऽस्यन्दिष्यताप्रतिहतं कवितामृतोत्सः ॥

उस समय नायिका का नौकर पूर्णचन्द्र आ पहुँचा। उसकी पत्नी के दाँतदर्द की दवा देकर प्रशान्त ने कहा कि विद्युत्प्रतिमा का एक चित्र ला दो। उसी से प्रशान्त को उस चित्रकार का पता चला, जो एक मास पूर्व उसका चित्र वना चुका था।

एक दिन वंशी का निनाद सुनकर नायिका की रागमयी वृत्ति वढ़ी। कुन्द-

---

१. जो कविता गद्य में होती है, वह गविता है।

कलिका के प्रेमविषयक प्रश्न पूछने पर उसने कहा कि सुकुमार कविता नहीं करता और पुलक कविकुल तिलक है। कुन्दकलिका ने कहा कि आखिर कवि ही पति क्यों हो? विद्युत् ने बताया कि चिरकाल से कविपत्नी बनने का स्वप्न हृदय में सँजोई हुई हूँ। तभी नौकर ने एक चिट्ठी दी, जो कुन्दकलिका के पिता ने भेजी थी। पिता ने विद्युत्प्रतिमा को लिखा था कि जब हम लोग पंजाब से आये तो श्रीरामपुर में विश्वम्भर नामक पड़ोसी ने अपने पुत्र के लिए कुन्दकलिका की याचना की थी। विश्वम्भर का पुत्र प्रशान्त डाक्टर बनकर बहूबाजार में अपने ही घर में रहता है। यदि वह मान जाय तो उसे कुन्दकलिका देनी है। तुम्हारे ही घर से विवाह हो जायेगा। विद्युत् ने कुन्दकलिका से कहा कि प्रशान्त तो सुविदित है। उससे गान्धर्व-विवाह ही क्यों न हो जाय?

उसने डा० प्रशान्त को बुलवाया कि कुन्दकलिका को हृदय में दर्द है। डाक्टर प्रशान्त ने कहा कि रोगी हाथ निकाले। विद्युत् ने रोगी बनी कुन्दकलिका से कहा—

पाणिः प्रसार्यताम्। अत्र भवता ग्रहणीयः सः।

उसने जबरदस्ती उसका हाथ कपड़े के भीतर से निकाला और प्रशान्त के हाथ में दे दिया और कहा—

प्रायं दृढं धार्यतामयं पाणिर्नो चेत् पुनरपसारितो भवेत्।

उसने डाक्टर से पूछा—

करस्पर्शेन कीदृगुपलब्धिर्भवति।

प्रशान्त ने कहा कि हृदय की परीक्षा किये बिना कुछ भी नहीं कहा जा सकता। विद्युत्प्रतिमा के कहने से उसकी चारपाई पर बैठकर हृत्परीक्षण-यन्त्र को वस्त्रावृत छाती पर रखा और उसकी शाखा को कान पर लगाया। डाक्टर उपचार के लिए सूई लगाने ही वाला था कि उससे बचने के लिए कुन्दकलिका उठ बैठी। प्रशान्त ने उसका मुँह देखा तो लगा कि चिर परिचित सूरत है। मन ही मन कहने लगा—

पारिप्लवं मम मनः सहसा विधत्से।

कुन्दकलिका ने कहा कि बहुत हो चुका। मैं स्वस्थ हूँ। सूई नहीं लगवाऊँगी। प्रशान्त ने कहा कि खाने की ही दवा देकर काम चलेगा।

डाक्टर ने पूछा कि रोग कब से और कैसे आरम्भ हुआ? विद्युत् ने पत्र डाक्टर को दे दिया। उसे पढ़ कर डाक्टर ने विद्युत् से कहा कि आपने यह नाटक क्यों रचा? मैंने कब आपका कुछ बिगाड़ा था। पर बात बन गई। विद्युत् ने उन्हें मना लिया। प्रशान्त ने कहा कि सब कुछ तो ठीक है। पर एक बाधा है। जब तक मेरे मित्र का विवाह नहीं हो जाता, तब तक मैं विवाह नहीं करूँगा। उसने बताया—

सखा मे सुकुमाराख्यस्त्वदनुध्यानतत्परः।
कवितापक्षपातात्ते मग्नो नैराश्य-सागरे ॥ ७.११

विद्युत्प्रतिमा के लिए यह बड़ी समस्या थी कि कवि का स्वप्न कैसे पूरा होगा ?

इधर सुकुमार कविता बनाने में जुटे थे। एक दिन जो कविता बनाई तो प्रशान्त ने साधुवाद तो दिया, पर सम्मति दी कि इसमें कृत्रिमता है। तत्कवितान्तरं रचनीयम्। उसे विद्युत्प्रतिमा का चित्र भी दिया और कहा कि खरसांग में दूर जाकर कुमुदबान्धव नामक मेरे मित्र के खाली घर में रहो और कविता लिखो। सुकुमार को प्रशान्त ने बताया कि मैं विद्युत्प्रतिमा के घर चिकित्सा करने गया था। उसने बताया कि कुन्दकलिका से मेरा विवाह निश्चित है, किन्तु पहले तुम्हारा विवाह होगा।

नवम अङ्क में विद्युत्प्रतिमा का स्वयंवर होने वाला है—पुलक और सुकुमार में से कोई एक। पुलक का अन्तर्व्यूह नायिका ने पहले लिया। प्रश्नानुसार पुलक के उत्तर थे—विद्यार्थी जीवन मे कविता करता हूँ। कोई पुस्तक नहीं छपाई। आपने मेरी कवितायें तो पढ़ी होंगी। पुलक के उत्तरों से विद्युत् उसके विषय में बहुत अच्छे विचार न बना सकी। फिर प्रशान्त और सुकुमार अन्तर्व्यूह के लिए आये। विद्युत् ने प्रशान्त को पुस्तकालय में बैठाया और अपने सुकुमार का अन्तर्व्यूह लेने लगी।

सुकुमार ने छः पद्यों की जो कविता बनाई थी, वह वास्तव में अच्छी थी। उसका अन्तिम पद्य है—

दिष्ट्या सारथ्यमस्मिञ्छ्रयसि यदि मे जीवनरथे
पन्थानं स प्रयायाद्विषममपि विनोद्धातविपदः।
दैवात् प्रेमप्रवाहैः स्नपयसि यदि ममाभीप्सिततमे
साफल्येनाभिरामं सपदि मम भवेदूषरजनुः ॥ ९.६

कुन्दकलिका के पूछने पर सुकुमार ने बताया कि किसी तरुणी के चित्र को देखने मात्र से मेरी नवानुरक्ति बहुत बढ़ी। वही मेरी कल्पनालोकतोरण के उद्घाटन के लिए मेरी काञ्चनकुञ्चिका है।[1]

कुन्दकलिका ने पूछा कि आपने और भी कवितायें की हैं क्या ? आपकी ही यह रचना है—यह तभी प्रमाणित होगा, जब आप किसी निर्दिष्ट विषय पर यहाँ बैठे-बैठे कविता लिख दें। सुकुमार बिगड़ा। उसने कहा कि यदि आपको मेरी योग्यता पर सन्देह है तो मैं आग में कूद पड़ूँ, तब भी सन्देह न दूर होगा। मैं चला। वहाँ आगे बढ़ने पर दरवाजा रोके विद्युत्प्रतिमा पड़ी थी। अश्रुनिर्भर नेत्रों से विद्युत् ने कहा—आप अब नहीं जा सकते। आपका क्रोध कुन्दकलिका पर हो। मैंने आपका क्या बिगाड़ा ? तभी कुन्दकलिका ने आकर क्षमा माँग ली। तब तो सुकुमार ने कहा कि परिहास के तीर से मेरी हत्या करने का अधिकार

---

१. यह छायातत्त्वानुसारी है।

आपको किसने दिया है? कुन्द ने कहा कि मैं आपकी साली जो हूँ। उसने विद्युन् का हाथ उन्हें पकड़ा दिया। फिर पाणिग्रहण करके उसने कविता सुनाई—

शरीरिणी त्वं कविता श्रितासि मा यतस्ततोऽहं कविरेव शाश्वतः।
स्वकीयभासा रहितोऽपि चन्द्रमा यथा भवत्यर्करुचा चिरोज्ज्वलः॥

प्रशान्त ने कहा—अकेले ही अकेले पाणिग्रहण का आनन्द ले रहे हो। चिरजीव ने कुन्दकलिका का हाथ प्रशान्त को पकड़वा दिया। फिर तो माल्य-विनिमय हुआ।

नाट्यशिल्प

इस नाटक में रंगसंकेत अङ्कारम्भ में मिलते हैं, जो एक से लेकर छः पंक्तियों तक विस्तृत है। इतना लम्बा रङ्गसंकेत विदेशी प्रभाव का द्योतक है।

प्रस्तावना में अच्छा रङ्ग बाँधा गया है। सूत्रधार और उधार के प्रेक्षकों की गर्मागर्म बहस के बाद हाथापाई की नौबत आ हो जाती, यदि प्रस्तावना को समाप्त नहीं किया जाता।

विष्णुपद हँसोड़ कवि हैं। वे पदे-पदे हँसाने में समर्थ हैं, जहाँ अन्य लेखक कोरी गम्भीरता का रंग जमाता।

उदाहरण के लिए डा० प्रशान्त मधु नामक रोगी का परीक्षण करते हैं और आदेश देते हैं—'अधुना व्याघ्रराज इव मुखं व्यादेहि'। मुँह की परीक्षा करके जब वह मुह बन्द नहीं करता तो उससे डाक्टर कहता है—

'कथमधुनापि व्यात्तवदनस्तिष्ठसि। अपि नाम ग्रसितुमिच्छसि माम्।'

फिर कहता है—

मधो कालिकादर्शनमन्तरेण चिकित्सा नैव सिध्यति।[1] ततो कालिका-विग्रह इव सफल्लोलरसनां निष्कासय। जब मधु ने कहा कि जितनी भूख लगती है, उतना भोजन नहीं मिलता तो डाक्टर कहता है—

'अतएव मुखं व्यादाय मामपि ग्रसितुं व्यवसितस्त्वम्।'

डाक्टर की बातचीत में भी व्यञ्जना है। यथा, मधु दवा खाकर द्वितीय पाण्डव की भाँति बलवान् हो जाएगा। दाढ़ी और मूँछ बनाने के लिए प्रशान्त कहता है—

श्मश्रुगुम्फादिकं समूलघातं हन्तव्यम्। पञ्चम अङ्क में कुन्दलिका जब सभी प्रार्थियों को देखकर अयोग्य बताती है तो विद्युन्माला कहती है—

'त्वमेव मे पतीयस्व। एहि तर्पय मे तापदग्धं हृदयम्। कुन्दकलिकामुप-गूहते।'

आठवें अङ्क में सुकुमार की कविता सुनकर प्रशान्त साधुवाद देने के पश्चात् माल्यार्पण करना चाहता है। पर माला थी नहीं तो हृत्परीक्षण-यन्त्र को ही सुकुमार के कण्ठ में डाल दिया।

इस नाटक में एकोक्तियाँ अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है। पंचम अङ्क के आरम्भ में पूर्ण चन्द्र की पहले और इसके पश्चात् गणेशजननी की एकोक्ति है। सप्तम अङ्क

---

१. अन्यत्र प्रशान्त कहता है—**चिकित्सार्थं मस्तकमुण्डनमपि कार्यम्।**

के आरम्भ में विद्युत्प्रतिमा की मार्मिक एकोक्ति है, जिसमें वह एक गाना भी गाती है।

किसी भी अंक में कथा आद्यन्त सुश्रृंखलित नहीं है। बीच-बीच में एक ही अंक में नये पात्रों की नई बातें आती-जाती हैं।

नाटक छद्माश्रित है। इसमें नायक का मित्र छद्मपरायण है। वह अपने मित्र से कहता है—

त्वच्छ्रेयसे तुच्छलं वा थलं वा कौशलं वा न किमपि मया हेयम्।

इधर छली नायिका ने झूठे ही कुन्दकलिका का हृद्रोग बताकर डाक्टर प्रशान्त का उसके साथ एकान्त वास करा दिया।

अनेक स्थलों पर विष्णुपद ने रम्य गीतों का सन्निवेश किया है। सप्तम अङ्क के आरम्भ में नायिका गाती है—

रजनी-व्यतिकरभीतः रविरयमस्तं चलति विहस्तं
वाति च पवनः शीतः सुलभवितानं सुमधुरतानं
मनसि च मोहं परितन्वानं कोऽयं रचयति वंशीस्वानं
स्वप्नभुवनमुपनीतः ॥
रहसि च तदुरसि कृतचिरवासा
सम्प्रति वेणुस्वरधृतभाषा
स्फुरति किमर्थं प्रबलदुराशा
कथं न वासौ प्रीतः ॥

कवि ने रंगमंच पर शारीरिक काम भी आयोजित किया है। ऐसे कामों में अनेक स्थलों पर विशेष सरसता फूट पड़ी है। सप्तम अङ्क में विद्युत्प्रतिमा और कुन्दकलिका में पत्र के लिए छीना-झपटी एक ऐसा ही प्रकरण है। इस प्रकार के आयोजनों से नाटक की सारी प्रवृत्ति जीवन-सौरभ से सुवासित है।

प्रवेशक, विष्कम्भक, चूलिका आदि अर्थोपक्षेपकों का इसमें अभाव है। अर्थोपक्षेपकोचित सामग्री कहीं एकोक्ति से और कहीं पत्रादि द्वारा प्रेक्षक के समक्ष आती है।

अंगरेजी के शब्दों का संस्कृत अनुवाद सटीक मिलता है।
यथा—

Torchlight	=	वैद्युतोल्का
Office-room	=	करणप्रकोष्ठ
Postal peon	=	राष्ट्रियपत्रवाह
Registered	=	संरक्षित
Bottle	=	काचपात्र
Compounder	=	भेषजपरिवेशक
Total	=	कात्स्न्र्यं
Handkerchief	=	मुखमार्जनी

अनुरणनात्मक शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त है। यथा, फर्फरायसे।

शैली

सरल भाषा में प्रणीत कवि की रचना सर्वथा नाट्योचित है। क्वचित् वङ्गाली लोकोक्तियों का संस्कृत रूप सुप्रयुक्त है।

यथा,

(१) स्वचक्रे तैलं निपिच्यताम्।
(२) करस्थां लक्ष्मीं पद्भ्यामपाकरोषि।
(३) सर्वस्वमेव ते कुक्षिगतं भविष्यति।
(४) अन्नं गलाधः प्रणयत।
(५) तवैव प्रयत्नेन वृक्षारोहणे प्रवृत्तोऽहम्।
(६) सति संकल्पे व्याघ्रीदुग्धमपि न दुर्लभम्।
(७) कृतकसुप्तं प्रबोधयितुं न कोऽपि शक्तः।
(८) सर्पोपि म्रियेत लगुडोऽप्यभग्नः स्यात्।

कहीं-कहीं अपनी उत्प्रेक्षाओं के द्वारा कवि भावों को मूर्त रूप प्रदान करता है। यथा,

महानवमीविशस्य-छागशिशुरिव वेपमानः परीक्षायूपकाष्ठं प्राप्तः।

धनञ्जय-पुरञ्जय

विष्णुपद का धनञ्जय-पुरञ्जय सात अङ्कों का पारिवारिक रूपक है।[1] इसका प्रथम अभिनय शिवचतुर्दशी के मेले में हुआ था।

प्रस्तावना में सूत्रधार को मारिष से ज्ञात होता है कि कृपानाथ नामक पात्र ने अपनी शेखी बघारते हुए अन्य पात्रों को बाध्य किया कि उन्हें वे अलग कर दें। तब तो सूत्रधार ने आदेश दिया। उसे निकाल दें—

कीर्तयन्निजनैपुण्यं जनकं स्वं धनञ्जयम्।
निरयं प्रापयामास स्मयाविष्टः पुरञ्जयः॥

कथासार

पल्ली में कुटी के बरामदे में धनजय नामक वृद्ध ब्राह्मण अपने भाग्य को कोसता हुआ बैठा था। 'पत्नी मरे २० वर्ष हुए। पुरञ्जय को छोड़ मरी थी। मैंने तभी से उसे पालपोस कर बढ़ाया। अब वह मुझे पूछता तक नहीं। अब तो बनारस जाकर जीवन के शेष दिन बिताना चाहता हूँ। आँख रही नहीं। कैसे वहाँ पहुँचूँ?' तभी उसका पुत्र उधर से दिन भर बाहर रहने के बाद लौटा। पिता के पूछने पर उसने कहा—मैं आपकी भाँति कूपमण्डूक तो नहीं हूँ। मैं अखाड़े जा रहा हूँ। बाप ने कहा—मैं मरणासन्न हूँ। यदि मेरी सुन नहीं लेते तो पछताओगे। मुझे काशी-विश्वनाथ का दर्शन करा दो। पुरंजय ने कहा कि ठीक ही है। पर मैं साथ नहीं जा सकता। मैं

१. इसका प्रकाशन काचनकुंचिका के साथ हो चुका है।

तो अखाड़े के विना एक दिन भी नहीं रह सकता। वहुत कहने-सुनने पर पुरंजय अपने वाप को वाराणसी छोड़ने के लिए तैयार हो गया।

द्वितीय अङ्क की कथा धनंजय के मरने के वाद की है। पुरंजय पिता के प्रति अपने कर्तव्य के सम्यक् पालन से परितुष्ट होकर वाराणसी में गंगातटपर वृक्ष के नीचे वैठा-वैठा ऊँघकर सपने में ज्योतिर्मण्डलमध्य में भगवान् भूतभावन विश्वेश्वर को देखने लगा। शिव ने कहा—अरे मूर्ख, देखो, तुम्हारा पिता नरक में पड़ा है। धनंजय यमदूतों के पीटने पर रो रहा था कि मैं तो शिव की नगरी में मरा, फिर नरक क्यों? यह सव मेरे कुपुत्र के पापों के कारण है। इधर सपने में पुरञ्जय वड़वड़ाते हुए यमदूतों को डाँटने लगा—अभी तुम्हें पिता को मारने का मजा चखाता हूँ। मैं भारत-विख्यात मल्ल-प्रवीर हूँ। नरक का दूसरा दृश्य सामने आया। शिव ने डाँट लगाई कि तुम्हारे ही पापों से यह नरक दुःख भोग रहा है। वह पिशाच हो गया है। पुरंजय ने शिव के पैर पकड़कर कहा—पिता के त्राण का उपाय वतायें। शिव ने कहा कि माहिष्मती नगरी के राजा के पास जाओ। वह अतिथि-सेवा-परायण होकर एक दिन में जो पुण्य पाता है, उसे पिता के लिए प्राप्त कर लो। उतने से ही वह मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेगा।

तृतीय अङ्क में पुरंजय माहिष्मती के मार्ग में घोर जंगल में किसी धनुर्धर निषाद से मिला। निषाद ने उसके मार्ग पूछने पर कहा—आज रात में जंगल से नहीं निकल सकते। अभी मेरी कुटिया को पवित्र करें।

चतुर्थ अंक में निषाद की कुटी में पुरंजय ने देखा कि वह इतनी छोटी है कि उस अकेले के लिए अपर्याप्त है, फिर दो कैसे रहेंगे? निषाद ने वताया कि हाथ में धनुष लेकर वाहर मैं आपकी रक्षा करूँगा। पुरंजय ने कहा कि यह कैसा आतिथ्य? गृहस्वामी को कष्ट में डालकर मैं भीतर सोऊँ। यह नहीं होगा। मैं चला। पर निषाद ने उसे मना लिया। छीकें से उतार कर खाने के लिए फल दिये।

सवेरे उठकर पुरंजय ने कुटी से वाहर का दृश्य देखा कि निषाद रक्त से लथपथ मरा पड़ा है। उसे उस सिंह ने मार डाला है, जिसे उसने अपने वाण से मार डाला है। उसके मुँह से निकल पड़ा—

अभ्यागतार्थे त्यक्तासुस्त्वमाशु स्वर्गमुद्गतः।
दूयेऽहं वहुशो धन्यो मज्जन् पापमहार्णवे॥

पुरंजय निषाद का दाह करने के लिए ईंधन-संग्रह करने चला।

छठें अंक में पुरंजय माहिष्मती के राजप्रसाद में पहुँचा। उसने स्वागत करने के लिए आये हुए भृत्यों को डरा धमका कर दूर भगाया। उन्होंने कहा कि यदि आपका सत्कार नहीं किया गया तो राजा हम लोगों पर वहुत क्रुद्ध होगा।

पुरंजय ने कहा—राजा को भेजो।

राजा प्रतर्दन ने आकर पुरंजय के चरण छूकर प्रणाम किया। क्रोध का कारण पूछने पर पुरंजय ने वताया कि यह अच्छा आतिथ्य-विधान है कि आप नौकरों

से आतिथ्य कराते है। राजा ने क्षमा मांगते हुए कहा कि मेरी पत्नी आसन्न-प्रसवा है। उसी की देखभाल में पड़ा हूँ। नहीं तो ऐसी गलती न होती।

पुरजय ने अपनी मांग रखी कि मृत पिता के उद्धार के लिए एक दिन का पुण्य दे दें। राजा ने कहा कि विधिवत् कल आपको अपना आह्निक पुण्य दान में दे दूँगा। आज दिन मे आप आतिथ्य स्वीकार करें।

सप्तम अंक मे राजा के अतिथि-भवन मे पुरजय सो जाता है। उसे स्वप्न मे शिव पुन: दिखाई पड़ते हैं। शिव ने उसे सम्बोधित कर कहा—अपने पिता को अब देखो—ज्योतिर्मय शरीर दिव्यमाल्याम्बरधर।

धनंजय ने अपने पुत्र से कहा—मैं सर्वथा मोक्षलाभ करके शिवसायुज्य का सुख प्राप्त कर रहा हूँ।

पुरजय ने शिव से कहा-भगवन्, आपकी कृपा से मेरे पिता का उद्धार हुआ। शिव ने कहा कि यह प्रतर्दन का पुण्य-प्रभाव है। राजा को जो आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में पुत्र होगा, वह वही निषाद है, जिसने सिंहराज के मुख से तुम्हे बचाया था।

नाट्य-शिल्प

प्रथम अंक का आरम्भ धनञ्जय की एकोक्ति से होता है। द्वितीय अङ्क का का आरम्भ पुरंजय की एकोक्ति से होता है। पंचम तथा सप्तम अंक के आरम्भ में पुन: पुरजय की एकोक्ति है।

नाटक के अंक अतीव लघु हैं। तीसरे और पाँचवें अङ्क मे केवल १२ पंक्तियाँ है।

कवि रंगनिर्देश अंक से पहले और बीच मे देते चलता है। छठे अंक के पहले रंगनिर्देश चार पंक्तियों का है। इस अंक के बीच में तीन पंक्तियों का रंग निर्देश है।

चारित्रिक विकास की उच्चकोटिक कल्पना इस नाटक की विशेष देन है। हास्य-प्रवणता तो विष्णुपद के प्रत्येक पद मे निखरती ही है। पुरंजन के चरित्र का चित्रण रुचिकर है।

विष्णुपद ने सफलता पूर्वक नये नाट्य विधानो से सुसज्जित करके अपने रूपकों मे रस के साथ मानवता को चारु जीवन का जो सन्देश दिया है, उसके कारण उनका संस्कृत-नाट्यकारों मे अनुत्तम स्थान रहेगा।

कपालकुण्डला

कपाल-कुण्डला के मूल लेखक बंकिमचन्द्र है। यह कल्पित कथा बंगला भाषा मे अतिशय लोकप्रिय हुई। विष्णुपद के पिता हरिचरण विद्यारत्न ने इसका संस्कृत मे अनुवाद किया। इसका अभिनय संस्कृत-साहित्य-परिषद् के ३७ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर हुआ था।

कथासार

नवकुमार सिर पर इन्धन का भार लिए सन्ध्या के समय गंगा-तट पर पहुँचा तो वहाँ कोई भी मानव नहीं था। पार कराने वाली नौका नहीं थी। दूर पर प्रकाश देखकर वहाँ गया तो श्मशान में शवासीन कापालिक मिला। उसने नवकुमार को अपना कुटीर दिखाकर भोजनादि की व्यवस्था वहीं करके कहा कि जब तक लौटूं, यहीं रहना।

मार्ग में नवकुमार को कपालकुण्डला मिली। उसने कहा कि कापालिकों की पूजा नरमांस से होती है। आओ, तुम्हें पलायन करने का मार्ग दिखाऊँ। तब तक कापालिक उसे पुकारता हुआ दौड़ा आया। कपालकुण्डला डर कर भाग गई। डरे हुए भी नवकुमार ने हिम्मत करके कुटीर-पथ न छोड़ा। मार्ग में किसी भैरवी ने नियतिवर्णना का गान गाया।

अग्नि जल रही थी। कापालिक वहीं ध्यान मग्न था। नवकुमार यूप से बँधा था। कपालकण्डला चुपके से आई और खड्ग चुराकर भाग गई। कापालिक ने ध्यान टूटने पर नवकुमार के ललाट पर सिन्दूर-तिलक लगाया, कण्ठ में लाल माला पहनाई, नवकुमार को अपने को मुक्त करने के लिए प्रयास करते देख कापालिक ने कहा—मूर्ख,, आज तेरा जन्म सफल है। भैरवी-पूजा में तुम्हारा मांस उपहार में दूंगा। उसने खड्ग ढूंढ़ा तो न मिला। उसने कपालकुण्डला को बुलाया। वह उसे ढूंढने निकला तो तलवार लिये वह आई और नवकुमार को खोलकर साथ लेकर भाग गई। वहाँ कापालिक फिर लौट कर आया। उसे नवकुमार न मिला। उसने समझ लिया कि यह सब कपालकुण्डला की करतूत है।

अधिकारी (भवानी-पूजक) ने नवकुमार से कहा कि आज माता कपालकुण्डला ने जान पर खेलकर आपकी रक्षा की है। आप उसकी रक्षा करें। उससे विवाह कर लें। नवकुमार के स्वीकार कर लेने पर अधिकारी ने वैदिक मन्त्र पढ़ कर उन दोनों का विवाह करा दिया।

वनपथ से यात्रा करते हुए नवकुमार को मति नामक यवनी को अपने कन्धे पर लाद कर लाना पड़ा, क्योंकि चोरों के आघात से उसे पैर में गहरी चोट लगी थी। पान्थशाला में नवकुमार ने सबके ठहरने की सुव्यस्था की। पान्थशाला के एक कमरे में कपालकुण्डला ने गाया—

त्वयि जगदखिलं वसति सलीलं भुवनगतास्त्वन्मायामुग्धाः।
रविशशितारा: किंकरनिकरा: पालयन्ति तव नियममशेषम् ॥

मति ने कपालकुण्डला को देखा तो मन ही मन कहा—

नेदृशं दृश्यते रूपं राजान्तःपुरिकास्वपि।
ललामभूता नारीणां विधात्रैषा विनिर्मिता ॥

उसने अपने अंगों से गहने उतार कर उसे पहना दिये।

मति आगरा आ गई। उसने अकबर की बुद्धि के उत्कर्ष को कभी विफल

बनाया। जहाँगीर मेहरुन्निसा से विवाह करने वाला था। वह निराश होकर वंग देश जाकर किसी महानुभाव की पत्नी बनना चाहती थी। उसने अपनी परिचारिका से कहा कि अब यहाँ से वंग देश जाऊँगी।

जहाँगीर मति से मिला। मति ने बताया कि मेरा भाई उड़ीसा में घायल पड़ा है। मेहरुन्निसा आपके प्रेम को भूली नहीं है, किन्तु यदि आप मेरे पति को मरवा देते हैं तो आप से इस जन्म में मिलना न होगा। मति ने जहाँगीर से कहा कि मुझे विवाह करने की अनुमति दें। जहाँगीर ने उसके विषय में एकोक्ति द्वारा अपना विचार प्रकट किया—

अस्या रमण्या हृदयं नूनं पाषाणकल्पितम्।
अन्यथा नोपपद्येत प्रत्यादेशो ममेदृशः॥

मति नवकुमार से मिली और उसे गाकर रिझाया—

किमु मयि दयित कठोरः
चरणनतायाः शरणगतायाः नोचित इह परिहारः।

नवकुमार उसे छोड कर जाने लगा। मति ने कहा कि मुझे दासी बना लो। मुझे पत्नी का पद मिले। तुम्हें धन, मान, प्रणय, कौतुक आदि सब कुछ दूंगी। नवकुमार ने कहा—

दरिद्रो ब्राह्मणोऽहम्। इहजन्मनि दरिद्र एव स्थास्यामि। धनलोभात् नाहमिच्छामि यवनीवल्लभत्वम्॥

मति ने कहा—आपके लिए आगरे का राज सिंहासन भी छोड दिया। नवकुमार ने कहा—फिर आगरे जाओ। मति ने उत्तर दिया—अब आगरा नहीं। आपको प्राप्त करके रहूँगी।

नवकुमार को उस समय उसे देख कर आभास हुआ कि मैं अपनी पहली भार्या पद्मावती को शयनागार से निकाल रहा था तो उसका ऐसा ही रूप था। उसने पूछा—तुम कौन हो? मति ने उत्तर दिया—मैं वही पद्मावती हूँ।

पंचम अङ्क के अनुसार कपालकुण्डला की ननद श्यामासुन्दरी का पति उसके वश में नहीं था। उसे वशीभूत करने के लिए रात्रि के समय मुक्तकेशिनी कपालकुण्डला जब वन में घूम रही थी तो उसे मति मिली। इसके पहले ही मति उस वन में भग्न मन्दिर में प्रज्वलित अग्नि के समीप ध्यान लगाये कापालिक से मिल कर बात कर चुकी थी कि कपालकुण्डला मेरे प्रणय-पथ में कण्टक है। मैं उसे नवकुमार से अलग करना चाहती हूँ, पर उसकी मृत्यु नहीं चाहती, जो कापालिक का अभीष्ट था। कापालिक ने उससे कहा कि तुम्हें कुछ गूढ रहस्य बताऊँगा, पर पहले देख आओ कि बाहर कोई है तो नहीं। बाहर जाने पर उसे कपालकुण्डला मिली, जिससे उसने कापालिक की योजना बताई कि वह तुम्हारा अन्त करना चाहता है। उपर्युक्त प्रसंगों में मति ने ब्राह्मणकुमार का वेश धारण कर रखा था। उसे कपालकुण्डला विद्युत्प्रकाश में दिखी। उसका हाथ पकड़ कर दूर ले गई और कहा कि यहीं रहो,

जबतक मैं लौट कर नहीं आती। मैं पुरुष नहीं, स्त्री हूँ। घोर बादलों को आकाश में देख कर कपालकुण्डला अपने घर चली गई। मति ने आने पर उसे न देखकर उसके घर में एक पत्र डाल दिया।

छठें अङ्क में गृहकर्म सम्पादन करती हुई कपालकुण्डला को पत्र मिला, जिसे उसने अपने केशपाश में खोंस लिया कि पीछे पढ़ूँगी। वह कहीं गिर पड़ा और नवकुमार के हाथ लगा। पत्र में लिखा था—

कल जो बात सुनना चाहती थी, उसे क्या आज सुनोगी—तुम्हारा ब्राह्मण-वेषधारी। नवकुमार को लगा कि वह कोई प्रणयवार्ता है। कपालकुण्डला की स्वतन्त्र वृत्ति और रात्रिकालिक परिभ्रमण से उसके चरित्र के विषय में उसे सन्देह था। कपालकुण्डला के विश्वासघातिनी होने के विचार मात्र से उसका हृदय रो उठा। उसने निर्णय लिया कि उसके पीछे लगकर अपने सन्देह को दूर करूँगा।

जब कपालकुण्डला को पत्र कबरीबन्ध में न मिला तो वह ब्राह्मण-वेषधारी कुमार से मिलने बाहर चली। नवकुमार पीछे चला। उसे कापालिक मिला। उसने कहा कि तुम पापिष्ठा कपालकुण्डला के पीछे पड़े हो। चलो, उसे दिखाऊँ कि क्या कर रही है। कापालिक ने अपने मन्दिर में ले जाकर उसे बताया कि कैसे तुम दोनों को ढूँढने के प्रयास में बालुका-पर्वत शिखर से गिर कर मैं बाहों के टूट जाने से अशक्त हूँ। भवानी ने मुझे स्वप्न दिया है कि कपालकुण्डला की बलि दो, यही तुम्हारी उसके प्रति पापवासना का प्रायश्चित है। उसने तुम्हारे साथ भी विश्वासघात किया है। आज तुम्हीं अपने हाथों से उसकी बलि दो। मेरे हाथ अशक्त हैं। इस पुण्य कर्म से तुम्हारा पाप धुल जायेगा।

सप्तम अङ्क में भग्न मन्दिर में कपालकुण्डला को ब्राह्मण-वेषधारिणी मति अपना परिचय देती है कि मैं रामगोविन्द घोषाल की कन्या पद्मावती हूँ। मैंने ही तुमको पान्थशाला में आभरणों का उपहार दिया था। मैं तुम्हारी सपत्नी हूँ। नवकुमार का तुझ से विच्छेद कराने के लिए मैंने छद्म वेष धारण किया है। कापालिक भवानी के आदेश से तुम्हारी बलि अब भी देना चाहता है। तुम तो मेरे स्वामी नवकुमार को छोड़ो। मेरे जीवन की रक्षा करो।

कपालकुण्डला ने मन में सोचा—मुझे वैभव नहीं चाहिए। वनविहारिणी पहले थी, फिर वही बनूँगी। उसने मति को वचन दिया कि कल से हमारी प्रवृत्ति तुमको नहीं मिलेगी।

इधर कापालिक ने कपालकुण्डला के फेर में वहाँ नवकुमार को साथ लिए आकर दूर से ही ब्राह्मण-कुमार (मति) से सट कर बैठी कपालकुण्डला को दिखाया। नवकुमार यह देखकर छटपटा गया। उसे कापालिक ने मदिरा पिलाई। ब्राह्मण-वेशधारी मति ने कपालकुण्डला को प्रतिदान रूप में पद्मावती-संज्ञक अंगूठी दी। वह कपालकुण्डला का आलिंगन करके चलती बनी। नवकुमार को यह देख कर असह्य पीड़ा हुई। तब कापालिक ने उसे पुनः सुरा पिलाई।

थोड़ी देर में कपालकुण्डला को कापालिक और नवकुमार मिले। कापालिक ने

नवकुमार से कहा कि इसे नहला कर पूजा गृह में लाओ। मैं चलता हूँ। मार्ग में नवकुमार कपालकुण्डला के चरणों में गिर पड़ा और प्रार्थना की कि मेरी रक्षा करो—'सकृत् कथय, न त्वं विश्वासघातिनी।' और मैं तुम्हें हृदय से लगाकर घर ले चलूँ।

कपालकुण्डला का उत्तर था—'मैं विश्वासघातिनी नहीं हूँ। जिस ब्राह्मण वेषधारी को आपने देखा, वह पद्मावती है।' उसने उसकी अंगूठी दिखायी। नवकुमार के घर चलने की प्रार्थना ठुकरा कर उसने कहा कि नहीं, अब तो भवानीचरण-तल ही मेरा आश्रय है। नवकुमार ज्यों ही उसे बाहों में पकड़ने के लिए उद्यत हुआ, करार टूटा और कपालकुण्डला जलमग्न हो गई। नवकुमार भी जल में कूद पड़ा।

कथावस्तु में अनेक चरित-नायकों के विषय में दर्शक की आकांक्षायें अतृप्त रह जाती हैं। यही इस नाटक की कला का उत्कर्ष है।

शिल्प

नाटक पाठ्य भी है—इस का ध्यान रख कर विष्णु पद ने दृश्य वस्तुओं का भी वर्णन प्रस्तुत किया है। यथा, कापालिक को देखकर नवकुमार कहता है—

जाज्वल्यमानस्य हुताशनस्य स्थित्वा समीपे नयने निमील्य।
ध्याने निमग्नः स्थिरपूर्वकायो विभाति चित्रे लिखितो यथासौ॥

सात अङ्कों का यह नाटक है। अङ्क दृश्यों में विभक्त हैं। अनेक दृश्यों में एक ही पात्र है और वह अपना एकोक्ति-रूप वक्तव्य देकर चलता बनता है।

सप्तम अंक के प्रथम दृश्य में कपालकुण्डला की मार्मिक लघु एकोक्ति है। प्रायः एक गीतमात्र दृश्य के लिए पर्याप्त है। गीतों को कवि ने लोकरंजन के विशेष-साधन रूप में नाटकों में समाविष्ट किया है।

आकर्भाग में सूचना देने की रीति अपनाई गई है। अर्थोपक्षेपकों का विदेशी नाटकों की भाँति ही अभाव है।

मति के कार्यकलाप छाया-पात्रोचित है। वह कभी पद्मावती थी, फिर लुत्फोन्निसा हुई, फिर मति बनी और अन्त में ब्राह्मण-कुमार का वेष धारण करके कपालकुण्डला से छठें अङ्क में मिलती है।

सप्तम अङ्क में रंगपीठ के दो भागों में कथा का दृश्य है। एक में मति और कपालकुण्डला है और दूसरे में कापालिक और नवकुमार।

अनुकूल-गलहस्तक

विष्णुपद भट्टाचार्य का अनुकूलगलहस्तक दो अङ्कों का प्रहसन है।[1] इसके दो अङ्कों में नायक दिव्येन्दु-सुन्दर का यामिनी नामक नायिका से विवाह हो जाता है। इसका अभिनय विद्वान् सहृदयों के परितोष के लिए पूर्णिमा की रात्रि में हुआ था।

१. १९५९ ई० में मंजूषा में प्रकाशित।

कथावस्तु

नायक दिव्येन्दु सुन्दर राँची जाने वाला था। उसका मित्र यामिनीकान्त संक्षेप में यामिनी पुकारा जाता था। दिव्येन्दु ने उसे फोन लगाया। प्रमादवश वह यामिनी (आगे चल कर नायिका) के फोन से सम्वद्ध हो गया। दिव्येन्दु ने पूछा कि क्या यह यामिनी का घर है? यामिनी ने कहा कि हाँ, क्या आप मुझसे वात करना चाहते हैं? दिव्येन्दु ने कहा कि नहीं, नहीं। मैं यामिनी (यामिनीकान्त) से वात करना चाहता हूँ। एक महान् प्रयोजन है। यामिनी पूछती है—क्या प्रयोजन है? दिव्येन्दु ने कहा कि आज यामिनी के साथ राँची जाना था। वह मेरा प्राण है। यामिनी ने डाँटा—ढीठ, तुम नरक में जाओ। तुम जंगली हो। दिव्येन्दु ने कहा कि वी० ए० हूँ दिव्येन्दुसुन्दर। कुछ झड़प हुई। फिर तो उसने कहा कि आप तो यामिनीकान्त को वुला दें। यामिनी ने समझ लिया कि भूल की जड़ क्या है। उसने कहा कि यहाँ यामिनीकान्त नहीं हैं। दिव्येन्दु ने कहा कि उसके इस व्यवहार से मैं पागल हो गया हूँ। यामिनी ने कहा कि शीघ्र राँची जाकर दवा करा लें। दिव्येन्दु ने कहा कि आज सन्ध्या के समय जा तो रहा हूँ, पर यामिनी के विना वहाँ मजा नहीं आयेगा। आप उससे कह दें कि ट्रेन में स्थान संरक्षित है। यामिनी ने कहा कि यामिनी का जाना आज कैसे भी न सम्भव होगा। दो-तीन दिनों में यामिनी का जाना होगा। दिव्येन्दु ने कहा कि उससे कह दें कि राँची में मेरे साथ ही रहे। यामिनी ने कहा कि अनिवार्य कारणों से यह भी सम्भव न होगा। राँची में हिनुपल्ली में रंजनकुटीर में उसका रहना अलग से होगा। दिव्येन्दु ने कहा कि वहीं मिलूँगा।

यामिनी की सखी शाश्वती ने उसकी लिहाड़ी ली, जव उसे सव परिहास ज्ञात हुआ। उसने स्पष्ट किया कि परिहास के पीछे कुछ मामला है। दोनों राँची इसलिए पहुँचे कि दिव्येन्दु से कह दिया था।

द्वितीय अङ्क में यामिनी के राँची के घर का द्वारपाल रामावतार अपने साथी विन्ध्याचल से वताता है कि गृहस्वामिनी जलप्रपात देखने गई हैं। मुझे कहीं जाना नहीं है। विन्ध्याचल ने कहा कि नगर में भद्र वेश में मित्र वनकर आये हुए डाकू सव कुछ चुरा ले जाते हैं। तुम तो सावधानी से रक्षा करो। तभी दिव्येन्दु ने आकर यामिनी के विषय में पूछा। उसकी वातचीत से रामावतार ने समझा कि यह डाकू ही है और विन्ध्याचल की सहायता से उसे उस मोढ़े से वाँध दिया, जिस पर वह वैठाया गया था। उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया गया कि हल्ला न करे। पुलिस को वुलाने के लिए रामावतार जा रहा था कि मार्ग में यामिनी मिली। उसने आकर दिव्येन्दु से वातचीत की तो लगा कि उसे परिहास में ही घोर यातना देने का कारण मैं स्वयं हूँ। इसका दण्ड दिव्येन्दु ने वताया कि यह मेरे अवरोध में जीवन भर वन्दिनी रहे। शाश्वती ने इस अर्थ को उनका पाणिग्रहण कराकर पूरा किया। दिव्येन्दु ने कहा—

—— किंकरनिग्रहोऽपि मे साम्प्रतमनुकूलो गलहस्त इव प्रतिभाति।

शिल्प

प्रस्तावना में कथा का सार इस प्रकार बताया गया है—

परिहासकृतालापैर्लघुभिर्यन्त्रमध्यतः ।
तरुणीतरुणौ मीतावच्छेद्यं प्रेमबन्धनम् ॥

रंगमंचीय निर्देश पर्याप्त दीर्घ हैं। अंक के बीच में भी निर्देश हैं। एक ही रंगमंच पर दो घरों के लोग टेलीफोन पर एक दूसरे की बात सुनते हैं। प्रथम अंक के बीच में आधा रंग अदृश्य हो जाता है।

सूत्रधार का सहकारी नन्दक इसकी रचना-कोटि की चर्चा करते हुए कहता है कि यद्यपि इसको प्रहसन कहते हैं, किन्तु इसमें प्रहसन के सभी लक्षण पूरे नहीं घटते। सूत्रधार ने कहा कि इसमें हँसी की प्रचुरता तो है ही, अतएव प्रहसन नाम रहे।

एकोक्ति का सुष्ठुप्रयोग प्रथम अङ्क में है। यथा,

दूरान्निशम्य पिककाकलि-मंजुकंठं मन्ये नवेन वयसाद्य विकस्वरेयम् ।
रूपं तथैव सुपमं यदि नाम धत्ते धन्यस्तदीयवरमाल्यधरो धरायाम् ॥

प्रधान कथा के पात्रों की प्रवृत्तियों से जितना प्रहसन सम्भव है, उससे सन्तुष्ट न होकर कवि ने खैनी खाने वाले रामावतार और विन्ध्याचल की खैनी-विषयक वार्ता में प्रहसन की सृष्टि की है।

इस प्रहसन में संविधानों का जोड़-तोड़ नितान्त रोचक है।

चरित्रचित्रण में विष्णुपद निपुण हैं। उन्होंने भोजपुरिया रामावतार के व्यक्तित्व को साकार कर दिया है। वह गाता है—

जय रघुवंशज राम, दशमुखभंजन, जनगणरंजन पूरितमानस—काम। आदि

कितना स्वाभाविक है यह गान।

मणिकाञ्चन-समन्वय

दो अङ्कों के प्रहसन मणिकाञ्चन-समन्वय में पाँच दृश्य हैं।[1] इसके अभिनय की प्रस्तावना सूत्रधार ने लिखी है।

कथावस्तु

शर्शरीक और दर्दुरक दो धूर्त थे। पहला सिर पर हाँडी रखकर मधु बेचता फिरता था और दूसरा मिट्टी के घड़े में गुड़ बेचता था। दोनों एक ही मुहल्ले में पहुँचे। स्पर्धापूर्वक नोकझोंक हुई। शर्शरीक ने दर्दुरक के सिर से घड़ा गिरा दिया तब तो उसकी हँड़िया भी दर्दुरक ने गिरा दी। दोनों में मारपीट हुई। बीच में धनपति ने आकर निर्णय दिया कि परस्पर मूल्य दे डालो। शर्शरीक ने फूटे बरतन का गुड़ चखा तो थूक दिया और कहा कि यह सड़ा है। कीचड़ जैसा है। दर्दुरक ने वैसे ही चखकर मधु के विषय में कहा कि यह मधु नहीं है। कम आती

१. मंजूषा १४. ४ प्रकाशित।

है इसको खाने से। धनपति ने चखकर कहा कि तुम दोनों ठीक कह रहे हो। अब दोनों को पुलिस के हाथ सौंपता हूँ, क्योंकि तुम लोग सरल लोगों को ठगते हो। तब दोनों ने कान पकड़ कर शपथ ली कि अब ठगहारी बन्द करते हैं। पर उनका प्रश्न था कि अब जीविका कैसे चलायें? धनपति ने एक से कहा—मेरी गाय चराया करो और दूसरे से कहा—मेरे आम के पेड़ को ऐसे सींचो कि चारों ओर कीचड़ हो जाय। भोजन के साथ दस रुपये प्रतिमास वेतन मिलेगा।

दूसरे दृश्य में आम के पेड़ के नीचे गहरा गड्ढा दिखाई देता है। वहाँ की निकाली मिट्टी का स्तूप बना है और गड्ढे की तलहटी में दर्दुरक खुदाई कर रहा है। दर्दुरक की एकोक्ति है कि दिन भर तो पानी डालता रहा। इस ऊसर भूमि में आर्द्रता नहीं आई। प्यास लगी है। इस वृक्ष को जड़ से खोद कर गिरा देना है। उधर से शर्शरीक निकला। उसने पूछा कि कर क्या रहे हो? धनपति देखेगा तो अनर्थ होगा। दर्दुरक ने कहा कि यह पेड़ नहीं, राक्षस है। इसका विनाश करके दम लूँगा। धनपति के आने के पहले कई मील भाग जाऊँगा। उसी समय उसका फावड़ा किसी धातु के पात्र से लगा। शर्शरीक ने कहा कि कुछ माल छिपा है। दर्दुरक ने कहा कि कुछ नहीं है। शर्शरीक ने अपनी कथा सुनाई कि कपिला गाय चराते समय मेरे सो जाने पर वह भग गई। बड़ी दौड़-धूप करने पर किसी उद्यान को खाते-चबाते मिली और मैं चुपके से उसके पास पहुँचा। वह पूँछ उठा कर भागने लगी। उद्यानपाल ने मुझे पकड़ना चाहा। किसी प्रकार यहाँ भाग कर आ पहुँचा हूँ। वह अपने घर पर आ गई। मुझे भी यह प्राणान्तक काम छोड़ना है।

रात में दोनों साथ ही सो गये। दर्दुरक की गहरी नींद में नाक बजने लगी। शर्शरीक उसी आम के पेड़ के नीचे गड्ढे में पहुँचा और दियासलाई से प्रकाश करके देखा कि ताम्रकलश है—रुपये से भरापूरा। वह दर्दुरक के जगने के पहले उसे ले भगा। दर्दुरक ने जग कर पीछा किया और हाथ से कलश को पकड़ ही लिया। दोनों ने आधा-आधा बाँट लिया। कलश बेंच कर मूल्य का आधा-आधा ले लेने का निर्णय हुआ। शर्शरीक के घर उसे रखा गया।

द्वितीय अङ्क में शर्शरीक अपने पुत्र चतुरक को बताता है कि दर्दुरक आये तो उससे कह देना कि हैजा से शर्शरीक मर गया। उसका शरीर देख लो। कलश के विषय में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। वह चारपाई पर लेट गया। दर्दुरक के आने पर चतुरक ने उसे रोते हुए बताया कि पिता तो हैजा से मर गये। दर्दुरक ने द्वार पर खड़े रहकर पिता की आवाज सुनी थी। उसने कहा कि इसकी अच्छी दवा करता हूँ। उसने चतुरक से कहा कि छूत का रोग है। तुम तो दूर रहकर बचो। अकेले वंशवर्धक हो। मैं तुम्हारे पिता का बान्धव हूँ। सब कुछ मैं अकेले करूँगा। मैं मर जाऊंगा तो भी कुछ बूरा नहीं।

चतुरक ने कहा कि श्मशान में मैं इसका अग्निकृत्य करूँगा। दर्दुरक ने कहा कि नहीं। श्लोक है—

संक्रामकरुजा यो हि पुण्यात्मा गतजीवनः ।
तस्य सद्योविमुक्तस्य मुखाग्निर्न प्रशस्यते ॥

तुम तो जाकर अपनी माँ को सान्त्वना दो। मैं अकेले सब कुछ कर लूँगा। चतुरक ने कहा कि बुद्धिमान् पिता स्वयं कुछ उपाय करेंगे। वह चला गया। दर्दुरक ने उसके पैर बाँधे और स्वयं श्मशान पर ले गया। चिता पर उसका शरीर रख दिया गया। चिता जलाने वाला पाण्डुरक सुरा लेने के लिए दूर चला गया था। दर्दुरक ने सोचा कि मैं ही आग चिता मे लगा दूँ। तब तक लोगों से पीछा किया जाता हुआ डाकुओं का सरदार वहाँ निकट आ पहुँचा। दर्दुरक उसे दूर से देखकर ही मृतवत् सो गया। पीछा करने वालो के दूर चले जाने पर डाकुओं ने लूट मे प्राप्त सम्पत्ति का विभाजन करना आरम्भ किया। श्मशानाधिपति पाण्डुरक आ न आय—उसकी प्रवृत्ति जानने के लिए इधर-उधर घूमते हुए उन्हे चिता पर रखा शव मिला, जिसका वे स्वयं अग्निकर्म करने को उद्यत हुए क्योंकि—

गृह्णानाः परवित्तानि जाताः पातकिनो वयम् ।
प्रायश्चित्तमपि स्तोकं शवसत्कारतोऽस्तु नः ॥

यह देखकर शर्शरीक ने करवट बदलते हुए चिता पर ही ही, ही करने लगा। यह सुनकर दर्दुरक भी हा हा हो हो कहने लगा। डाकुओं ने सुना तो सभी सारी सम्पत्ति छोड़ कर भाग खड़े हुए कि ये सभी पिशाचाविष्ट है। शर्शरीक चिता से उतरा। दर्दुरक गुल्म से बाहर आया। उसने शर्शरीक से पूछा—अरे नराधम ! अपि नाम जीवसि त्वम्। शर्शरीक ने कहा—नाहं शर्शरीकः। मैं तो उसकी देह मे प्रविष्ट पिशाच हूँ। मैं तुमको अभी खाता हूँ। यह कह कर उसने दर्दुरक का आलिङ्गन किया। उन दोनो की फिर तो प्रेम से बातें हुई और डाकुओं के छोड़े धन का भी विभाजन कर लिया। यही उनका मणिकाचन का सयोग था।

ग्रामीण लोगो की जीवन-चर्या की झलक इस प्रहसन में है। बड़े लोगो से उतर कर छोटे लोगो की परिधि मे प्रहसन को लाना एक नवीनता है। साथ ही, इसकी घटनायें नित्य ही चलते-फिरते दिखाई देती है। अन्य पूर्व प्रहसनो की घटनायें इतनी साधारण नहीं होती और न जनसामान्य से सम्बद्ध होती हैं।

शिल्प

मणिकाञ्चन की मूलकथा बंगाल मे प्रचलित है। इसमे स्त्री की भूमिका नहीं है—यह एक बड़ी विशेषता नवीनता की दिशा मे है। पहले तो प्रायः प्रहसन भोंडे शृंगार की पिटारी होता था, जिसमे अनुचित शृंगार चर्चित होता था। यह प्रहसन शृंगार-विहीन है।

अध्याय ११६

लीलाराव का नाट्यसाहित्य

लीलाराव संस्कृत की सुप्रसिद्ध कवयित्री क्षमाराव की कन्या हैं। इनका विवाह हरीश्वर दयाल से हुआ है, जो सरकार की वैदेशिक सेवा में नियुक्त रहे हैं। श्रीदयाल उत्तरप्रदेश के एक सम्भ्रान्त और सुसंस्कृत माथुर परिवार में विलसित हुए। लीलाराव टेनिसकी उच्चकोटि की खिलाड़ी रही हैं। उनको संस्कृत लिखने की प्रेरणा अपनी माता से मिली। क्षमा की कथात्मक रचनाओं को नाटकीय रूप देना लीला का विशिष्ट कृतित्व है। उनकी रचनायें प्रायः १९५५ से १९६१ ई० तक मंजूषा नामक संस्कृत-पत्रिका में प्रकाशित हुई। लीला के रूपकों में नीचे लिखी कतिपय रचनायें सुप्रसिद्ध हैं—

गिरिजायाः प्रतिज्ञा, बालविधवा, होलिकोत्सव, क्षणिकविभ्रम, गणेशचतुर्थी, मिथ्याग्रहण, कटुविपाक, कपोतालय, वृत्तशंसिच्छत्र, स्वर्णपुस्तकपिबलाः, असूयिनी, वीरभा, तुकारामचरित, ज्ञानेश्वरचरित, मीराचरित, जयन्तु कमाउनीयाः।

क्षमा के नाटक आधुनिक शैली के हैं। उनमें नान्दी, प्रस्तावना और भरत-वाक्य का अभाव है। प्रायशः समसामयिक समस्याओं को लेकर नाट्यकथा विकसित की गई है। नाट्य-निर्देश और रंगनिर्देश की प्रचुरता है।

गिरिजायाः प्रतिज्ञा

क्षमाराव की लिखी गिरिजायाः प्रतिज्ञा नामक आख्यायिका इसमें रूपकायित है।

कथासार

पूना के समीप पर्वत-प्रदेश में गिरिजा नामक बुढ़िया अकेली रहती थी। उसके कमरे में उसके पुत्र का विशाल चित्र दीवाल से लटका था। वह कमरे में झाड़ू लगाती हुई चित्र से बात भी करती जाती थी, मानो वह सजीव हो। चिन्ता न करो। मैं तुम्हारी हत्या का बदला लूंगी। उस दिन जेल से भगा एक बन्दी उसकी शरण में आया। उसे बुढ़िया ने रस्सी के सहारे कुयें में उतार कर उसके अन्धेरे कोटर में छिपा दिया। ढूंढ़ने वाले आये। उसके घर का कोना-कोना छान डाला। कुयें में भी देखा। बुढ़िया ने कहा कि इसमें उतर कर देखो, पर अन्धकार के मारे कोई भीतर न घुसा। उनसे बातचीत करने पर बुढ़िया को ज्ञात हुआ कि इसने ही मेरे पुत्र को मारा था। यह सुनते ही बुढ़िया धाड़ मार-मार रोने लगी—

हा मम प्रतिज्ञाप्रतिशोधस्य, पुत्रवधप्रतीकारस्य।

उन्होंने पूछा कि क्या आपने उसे देखा? बुढ़िया ने उत्तर दिया—

जाल्मोऽसौ यदि दृष्टः स्यादर्पयेयं हितं ध्रुवम्।
कदापि नानुकम्प्योऽसौ पापिष्ठः पुत्रघातकः॥

उनके चले जाने पर वह कुयें के पास आकर रोषपूर्वक मुठ्ठी ऊँची करके प्रतिशोध की भावना से नितान्त पीडित हुई।

बन्दी ने पूछा—क्या वे चले गये। बुढिया ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया—हां। तुमने मेरे पुत्र को मारा था। उसका प्रतिशोध लेना है। बन्दी ने कहा क्षमा कर दें।

दापे मम जनन्या ते भद्रे विश्वस्यतां मयि।
दैवयोगात्तु द्वेपादात्मजस्ते हतो बत ॥

मेरी माता पर दया करें। मैं उसका एक ही पुत्र हूँ। अन्त में बुढ़िया ने उसे रस्सी के सहारे बाहर कर दिया। वह प्रणाम कर चलता बना। बुढ़िया ने पुत्र के चित्र को माला अर्पित की और कहा—क्षमस्व मां पुत्रक। क्षमस्व।

बालविधवा

पार्वती अापरूप सुन्दरी विधवा थी। अनूप उससे प्रेम करने लगा था और उससे विवाह करने की मन ही मन सोच रहा था। वह घर पर दीन दासी की भांति काम करती थी। रात गोबर के अन्धेरे कोने में बिताती थी।

पार्वती कुयें से जल लेकर आ रही थी। मार्ग में अनूप मिल गया। उससे सप्रेम बातचीत हुई। सस्नेह आलिंगन किया। पार्वती ने बताया कि मैंने बालपति का मुख भी नही देखा। प्रश्न था कि घर छोड़ कर पार्वती कैसे पतित बने? अनूप ने कहा कि पूना जाकर विवाह कर लेंगे, वहां से घर आयेंगे।

वे दोनों पूना गये। कोई पुरोहित धर्म के विलोप होने के भय से पुनर्विवाह कराने के लिए तैयार नही है। कई देश भेद के कारण विवाह नहीं कराने को तैयार हैं। तुम दाक्षिणात्य हो। मैं गुर्जर हूँ। केवल एक पुरोहित आया। उसने देखा कि वधू के केश नहीं हैं। उसने कहा कि विधवा का विवाह मैं नहीं कराता।

वह कैसे भी तैयार न हुआ। तब अनूप ने कहा कि कचहरी मे विवाह करलें। पार्वती ऐसे विवाह के लिए तैयार नही हुई। अनूप ने कहा कि बिना विवाह के ही हम लोग रह लेंगे। पार्वती ने कहा कि यह ठीक नहीं रहेगा—

नाहमिच्छामि नेतुं त्वामात्मना सह दुर्गतिम्।
मत्कृते न त्वया नाथ भोक्तव्या दुरवस्थितिः॥

मै तो अपने गांव जा रही हूँ। अपने घर पर उसे डांट मिली कि तुम हमारा कुल दूषित कर रही हो। तुम्हारे लिए यहां स्थान नही है। तुम कुयें मे कूद पडो। यहां न रहो।

वह घर से रात्रि के अन्धकार मे निकल पडी। उसका प्रिय कुत्ता पीछे-पीछे चला और पीछे से अन्धकार मे अनूप उसे पुकार रहा था।

पश्चिमी रीति-नीति से भले ठीक हो, रंगमंच पर नायक-नायिका का आलिंगन अभारतीय संविधान है, जो लीला के नाटकों मे विरल नहो है।

होलिकोत्सव

होलिकोत्सव एकाङ्की के तीन दृश्यों में होली के दिन के ग्रामीण श्रमिक परिवार की स्थिति का चित्रण है।

कथासार

श्रमिक परिवार के सदस्य थे गणु, उसकी पत्नी राधा और उनका पुत्र गोपाल यद्यपि दरिद्र परिवार था, किन्तु साधारणतः मानसोल्लास से प्रफुल्ल था। राधा ने पति को विना बताये अपना केयूर गिरवी रखकर उसके लिए और अपने पुत्र के लिए कुछ नये कपड़े मोल ले लिए थे। राधा की माता ने उसे उपदेश दिया था— रूखा भोजन और पत्थर पर सोना—इससे बढ़कर और क्या सुख हो सकता है? उसने सजाकर गोपाल को बाहर होली खेलने भेज दिया।

पति को होलिकोत्सव मनाने के लिए नये वस्त्रों में सजा कर बाहर भेजती हुई राधा ने कहा कि ताड़ीघर में न जाना। राधा मगन होकर नाचती हुई गृहकार्य में लगी रही।

ताड़ीघर क्लब ही था। वहाँ पीने के साथ जुआ खेलने की व्यवस्था थी। उसके स्वामी रंगु ने गणु को पहले तो आग्रह करके पिलाया—यह कहते हुए कि अपनी पत्नी को अपने वश में व्यर्थ समझते हो। देखो, उसने प्रेम करते हुए मुझे उपहार रूप में अपना केयूर दिया है।

गणु के पास जो कुछ धन था, उसे दाव पर रखकर उसने अपनी पत्नी का केयूर पाना चाहा, पर वह हार गया। वह अब अकिंचन था। उसने छक कर पी!

गणु घर पर नशे में चूर आया और अपनी पत्नी से कहा कि केयूर तुम अपने जार के पास दे आई हो। राधा ने छिपाना चाहा। फल उलटा हुआ। गणु भड़क उठा। उसने लातों से उसे मारा और कहा कि मेरे काम पर जाने पर वह प्रति दिन तुमसे मिलता है। उसने मारपीट कर उसे घर से भगा दिया। उसे विश्वास हो चला था कि वह व्यभिचारिणी है।

गोपाल जब घर आया तो उसके पिता ने पूछा कि तुम्हारा नया उष्णीष कहाँ से आया? उसने बताया कि कुसीदिक की दूकान के बगल से। हम दोनों साथ उस दूकान में गये थे।

गणु ने गोपाल के हाथ की कन्था के कोने में कुछ बँधा देखा। उसे खोला तो वह चिट्ठी मिली, जिसमें लिखा था कि केयूर दस रुपये पर गिरवी रखा गया। फिर तो अपनी भ्रान्ति समझ कर द्वार पर राधे, राधे कह कर रोने लगा।

इस एकाङ्की में श्रमिक परिवार की दुर्दशा का भावुकता-पूर्ण वर्णन संस्कृत-साहित्य के लिए अनूठी देन है।

वृत्तशंसिच्छत्र

योरपीय रीतिनीति पर आधारित कथानक वृत्तशंसिच्छत्र में पल्लवित है। इसमें एक दामाद अपनी विधवा सास से प्रेम करता दिखाया गया है। क्षमा और

और सीला जिस 'विदेशी' सांस्कृतिक वातावरण मे पली थीं, उसमें ऐसी विदेशी प्रवृत्ति वाले कथानक लेकर चलना अस्वाभाविक नही था। इसमे त्यागी बाबा का रामी से विवाह-प्रस्ताव भी अटपटा है।

कथावस्तु

रम्या ग्राम के पुरोहित की विधवा कन्या इन्दिरा की लडकी का विवाह अनुपम से हुआ था। सास और दामाद शतरंज खेल रहे थे। अनुपम इन्दिरा के प्रति प्रेमासक्त हो रहा था। इन्दिरा की लडकी मीरा १२ वर्ष की थी। अनुपम २८ वर्ष का और इन्दिरा २६ वर्ष की थी। अनुपम ने इन्दिरा से प्रस्ताव किया कि आप भी साथ चलें। इन्दिरा ने कहा कि मीरा तो साथ रहने के योग्य हो ही गई है। मेरा साथ रहना ठीक न होगा। यह कहते समय उसकी आँख से आँसू झड चले। अनुपम ने स्पष्ट कर दिया कि मुझे तो तुम से ही प्रेम है। छ: मास से तुम्हारे ही प्रेम मे मर रहा हूँ। क्रोधपूर्वक सास ने दामाद से कहा—पागल न बनो। तुम अमृत छोड कर विष की ओर क्यो प्रवृत्त हो रहे हो? अनुपम ने सास का चरण छूकर क्षमा माँगी कि भविष्य मे सदाचारी रहूँगा।

अनुपम इतना उद्विग्न हुआ कि उसने मरना ही अच्छा समझा। उसने वन के एकान्त मे रहकर प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया।

१८ वर्ष बाद की घटना है। खडकी नामक प्रदेश मे नदी के निकट दाढी बढाये हुए एक तपस्वी रहता है। वह बहुत पहले रेलगाडी से गिरा था, चेतना नष्ट हो गई थी, उसकी दवा पूना के अस्पताल मे हुई। वहाँ से निकल कर फल-मूल खाते हुए त्यागी बाबा नाम से वहाँ रहता था। कुछ छात्रों को पढ़ाता था। रामी नामक विधवा को कुछ मास पूर्व उसने नदी मे डूबने से बचाया था। रामी उस आश्रम मे आती-जाती थी। निकट के ही विधवाश्रम मे वह नौकरी करती थी। त्यागी बाबा ने उससे कहा—

साम्प्रतं तु त्वय्यायत्तं जीवनं मे क्षणमपि वियोगं न सहेत।

रामी ने बताया कि मैं विधवा नही हूँ। मेरे पति जीवित हैं। अपने पति से शैशव मे ही मैं वियुक्त हो गई। वही वे चले गये। गाँव-गाँव ढूढने पर भी न मिले। मैं भी दरिद्रता के कारण अर्थोपार्जन के लिए नाम बदलकर विधवा समझी जाती हुई यहाँ रहती हूँ। अब विधवाश्रम मे एक मास की छुट्टी होने वाली है। मैं अपने घर रम्याग्राम चली जाऊँगी। त्यागी बाबा ने प्रस्ताव किया कि इसी आश्रम मे रह जाओ। हम लोग विवाह कर लेंगे। रामी ने कहा—पुनर्विवाह नही हो सकता। रामी को घर पहुचाने के लिए त्यागी बाबा तैयार हो गये। रामी ने अस्वीकार किया। वह बडो से पूछ कर त्यागी से विवाह कर लेने के लिए स्वीकृति देगी। त्यागी बाबा ने कहा कि घर से शीघ्र लौट आना। तुम्हारे बिना यहाँ इतने दिनो तक कैसे रहूँगा?

मीरा के रथ्याग्राम आने के वाद ही त्यागी वावा वहाँ आ पहुँचे। इन्दिरा ने उनकी दाढ़ी होने पर भी उन्हें पहचान लिया। मीरा कहीं वाहर गई थी।

अनुपम (त्यागी वावा) ने वताया कि रेल-दुर्घटना में मस्तकाघात से पहले की सारी वातें मुझे विस्मृत हो गई। कष्ट में पड़ा हुआ एकान्त नदी तट पर रहने लगा था। वातचीत कर लेने के पश्चात् वह चला जाना चाहता था। इन्दिरा ने वताया कि तुम्हारी पत्नी मीरा भी अभी आने वाली है। अनुपम स्टेशन से अपना सामान लाने चला गया।

मीरा आई। उसने माँ से पुनर्विवाह की चर्चा की। वह अनुपम के आने का समाचार वताकर मीरा के हृदय को विषम आघात नहीं देना चाहती थी। उसने पहले वताया कि अनुपम के किसी मित्र ने उसका समाचार दिया है। फिर वताया कि अनुपम स्वयं आया है। मीरा को आश्रमवासी त्यागी वावा की ओर भी झुकाव था। वह असमंजस में पड़ी।

मीरा को भोजन के पूर्व द्वार वन्द करते समय एक छाता दिखाई पड़ा, जिसे वह पहचानती थी कि त्यागी वावा का है। इन्दिरा ने कहा कि वह अनुपम का है। इस वीच अनुपम (त्यागीवावा) आ गया। इन्दरा ने कहा—

मंगलं खल्विदं छत्रम्।

मीराचरित

मीरा चरित क्षमाराव की मीरालहरी पर आधारित है। इसमें लीला ने आरम्भ में मंगला चरण दिया है, जो नान्दी के समकक्ष है। इसके पश्चात् प्रस्तावना सूत्रधार द्वारा संक्षेप में प्रस्तुत है। अन्त में भरत वाक्य नहीं है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा वाले इस एकाङ्की में लेखिका ने भारतीय विधानों को अंशतः अपनाया है।

इस एकाङ्की के १३ दृश्यों में मीरा का वालपन से लेकर जीवन भर की हरिभक्ति-परक घटनाओं को आद्यन्त पद्यों के माध्यम से कहीं संवाद, कहीं नाट्य-निर्देश और कहीं चूडलिका के द्वारा चित्रित किया गया है। रूपक की भाषा नितान्त सरल, छोटे वाक्यों से मण्डित और सुवोध है।

स्वर्णपुर-कृपीवल

स्वर्णपुर-कृपीवल नामक तीन दृश्यों के एकाङ्की में स्वर्णपुर के किसानों के भूकर न देने का सत्याग्रह और उन पर अंगरेजी सरकार का विपत्ति ढाना वर्णित है। रेवा नामक विधवा अग्रणी है। उसके पुत्र पीटे जाते हैं। उसके गाँव में ग्रामणी आग लगवा देता है। तव भी रेवा कहती है—

ज्वालेयं जटिला पुण्या दीपिकेति विभाव्यताम्।
नीराज्यते ययास्माभिर्वुद्धिनेता वृहस्पतिः॥

गांव के सभी लोग सत्याग्रही वन जाते हैं और कहते हैं—

महात्मागान्धिर्जयतु स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

अमूयिनी

अमूयिनी नामक एकाङ्की के चार दृश्यों में रेविका नामक धीवरी के बहुत दिनों तक बच्चों के पैदा होते ही मर जाने पर अन्त मे पुत्रवती होने की कथा है। रेविका ने बच्चों को न मरने के लिए पड़ोसिन के बच्चे की बलि देने का उपक्रम किया। पर शीघ्र ही उसे प्रतीत हुआ कि दूसरो के बच्चो का अपने स्वार्थ के लिए हनन घोर पाप है। नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

कालिका यदि सम्प्रीता भवेन्मानवयज्ञतः।
न किं हि भावि सन्तानं कुर्यात् सा चिरजीविनम्॥

क्षणिक-विभ्रम

क्षणिक-विभ्रम विदेशी ढंग का नाटक है। सुनीति का पुत्र गोविन्द चोरी के अपराध मे कारावास में एक वर्ष तक रहा। सुनीति का पति रेल में यात्रा करते समय मार डाला गया—यह मिथ्या समाचार रामदास ने सुनीति को दिया। गोविन्द जेल की सजा काट कर घर आया। उसके साथ उसका स्नेही एक व्यक्ति आया, जिसके साथ सुनीति का व्यवहार अच्छा नही था। रामदास ने गोविन्द से बताया कि जिस व्यक्ति को तुम साथ लाये हो, वह तुम्हारा पिता है, जो २० वर्ष तक किसी अपराध मे दण्डित होने के कारण कारावास मे रहा है, यद्यपि वह निर्दोष था।

सुनीति के दुर्व्यवहार से खिन्न गोविन्द का पिता घर छोड़ कर चलता। बना। क्षणिकविभ्रम एकाङ्की है।

गणेश-चतुर्थी

गणेश चतुर्थी का चन्द्रदर्शन हरि को कुफल देता है। उसके घर भोजन के लिए कुछ नही था। वह भोजन अर्जित करने के लिए उसी रात कही जा रहा था। वह निर्दोष होने पर भी चोरी के अपराध मे पकड़ा गया, पर फिर प्रमाणाभाव मे छूट गया।

मिथ्याग्रहण

मिथ्याग्रहण नामक दो दृश्यो के एकाङ्की में मुहम्मद के बहुपत्नीत्व की चर्चा की गई है। मुहम्मद अपनी पत्नी अमीना की सखी सरला के घर अपनी दूसरी पत्नी से मिलने जाते हैं—यह ज्ञान अमीना को बाद मे हुआ। वह मुहम्मद के व्यवहार से क्षुभित हो गई।

कटुविपाक

क्षमाराव की ग्रामज्योति पर लीला का कटुविपाक आधारित है। ग्रामीण युवती रेवा सत्याग्रह आन्दोलन में प्राण खो देती है। उसका पिता सरकारी आदमी था। उसे अन्त मे यह देखकर कटु अनुभव होता है कि मेरे सभी सम्बन्धी सत्याग्रही हो गये।

कपोतालय

कपोतालय नामक प्रहसन का मूल जगदीशचन्द्र माथुर की कहानी है। लीला ने उसे रूपकायित किया है। रत्न ने अपनी सारी सम्पत्ति का वीमा कराया था। उसके घर चोरी हुई, किन्तु वीमा के सहारे सारा धन मिल जाने का भरोसा होने से वह निर्द्वन्द्व था।

वीरभा

वीरभा नामक एकाङ्की की नायिका वीरभा है। वह युवा अवस्था में सर्वस्व छोड़कर तपस्विनी का जीवन अपना कर देश की स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह आन्दोलन में अग्रणी बनती है।

तुकाराम-चरित

क्षमाराव के तुकाराम चरित पर आधारित यह नाटक है। इसमें आद्यन्त पद्यात्मक संवाद हैं। पूरे नाटक में ११ अङ्क हैं।

ज्ञानेश्वर-चरित

ज्ञानेश्वर-चरित चरितात्मक नाटक १४ दृश्यों में सम्पन्न है। इसमें सन्त ज्ञानेश्वर की सम्पूर्ण जीवन-गाथा रूपकायित है।

जयन्तु कुमाउनीयाः

जयन्तु कुमाउनीयाः लीलाराव की परवर्ती रचनाओं में अग्रगण्य है।[1] इसमें चीन और भारत के हिमालय पर युद्ध की कथा है। इसकी दृश्य-स्थली शिखरित-हिमानी-प्राकृतिक-हिमालय-प्रदेश है। दूर-दूर से गुलिकानाद सुनाई पड़ता है। कमाऊँ प्रदेश के सैनिक गाते-बजाते मानसिक तनाव को दूर कर रहे हैं। सैनिक जीवन का आँखों-देखा विवरण है।

कमाउनी सेना के सेनापती जेनरल हरीश्वर दयाल थे। उनमें सेना का अतिशय विश्वास था, यद्यपि सेना के समान अनेक संकट थे। कई वीर फुप्फुकास रोग, पल्मोनरीया अदिमा आदि से पीडित थे। सैनिकों को ऊनी वस्त्र नहीं दिये जा सके थे, अस्त्र-शस्त्र पुराने पड़े चुके थे और अपर्याप्त थे। वे शत्रुओं के कपट का प्रतिकार नहीं करते। वीरों को अपने बालकों की स्मृति हो आती थी कि उन्हें वैसी शोचनीय स्थिति में छोड़ आये हैं।

नार्बु नामक सिक्कम के गुप्तचार नीलांगल चोटी पर चढ़कर असंख्य संकटों का सामना करते हुए चीनियों के गुल्म में पहुँच कर उनकी योजनाओं का भेद लाया था।

नीलांगल जीतने के लिए हरीश्वर के नेतृत्व में सेना ने शिखरारोहण किया। कर्नल शिखेर साथ थे। नीलांगल पर राष्ट्रिय ध्वज फहराने लगा। अनेक वीर इस विजय-प्रयाण में खेत रहे।

---

१. विश्वसंस्कृतम् १९६६-६७ के अङ्कों में प्रकाशित।

विदेशमन्त्री वर्मा स्वयं नीलागल पहुँचे। वहाँ उन्होंने बताया कि इसे हम लोगों को छोड़ देना है, जैसा अमेरिकादि देशों के मन्त्री चाहते हैं।

तीन दृश्यों के इस नाटक में 'बेडूपाको' छानी खिलोटी आदि कमाऊनी गीत हैं। इसमें आङ्गिक अभिनय का अभाव सा है। कोरे सूचनात्मक रोचक सवाद भावुकता पूर्ण है।

तुलाचलाधिरोहण

लीलाराव दयालु ने तुलाचल-अधिरोहण की रचना १९७१ ई० में की।[1] नेपाल देश में घोरपाटन गाँव के निकट तुलाचल की घाटी है। यहाँ झरनों का गीत सुनाई पड़ता है। कोई पथिक पोटली लिये आता है। ऊपर वायुयान का घर्घर-निनाद सुनाई पड़ता है। यान की दुर्घटना हो जाती है।

तुलाचल ने पथिक से पूछा—क्या मुझे जीतने आये हो? पथिक ने कहा—मैं तो आपका दर्शन करने आया हूँ। अमर पर्वत को कौन जीत सकता है? तुलाचल ने पूछा कि यह यान कैसा? पथिक ने कहा कि बम्बई का यान संचालक भूला-भटका इधर आ गया है। संचालक ने तुलाचल को प्रणाम किया। एक राजदूत आया। उसने तुलाचल के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। दो अमरीकी नागरिक आये। उन्हें तुलाचल भयकर लगा। एक ललना बहुत दूर से आई। उसने कहा—अहो सुमहान् शीतलोऽयं प्रदेशः। उसने ऊनी परिधान धारण कर लिये।

वायुयान की दुर्घटना हुई। उसका कारण जानने के लिए विशेषज्ञ आये।

मायाजाल

क्षमाराव ने मायाजाल नामक कथा लिखी। उसे उनकी कन्या लीला ने रूपायित किया है। यह कृति नाट्य कम और सवाद अधिक है। रंगमंच पर कार्य (action) का अभाव है।

मायाजाल मे चार कन्यायें धूर्तों के हाथ मे पडकर अपना सर्वस्व खो बैठती हैं। मुग्धा नामक अपढ कन्या के पिता ने उसके पति को पेरिस तक पढाया। पेरिस जाकर उसने कुछ दिनो के बाद पत्नी से नाता तोड लिया। दूसरी कन्या मन्दा का विवाह किसी अज्ञात पुरुष से हो गया। उसने आरम्भ मे बडा आदर दिया। जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो पत्नी को भूल ही गया। मोहिनी सेठ की कन्या थी। उसके पति ने उसे पेरिस मे छोड दिया। दया वेश्या की कन्या थी। उसने माता को छोड दिया। एक ब्राह्मण के घर रही। पिता लाख प्रयास करने पर भी उसका विवाह न कर सके। उसने समुद्र-तट पर मूर्छित युवक की रक्षा की। उसने भी उससे विवाह न किया।



१. विश्वसस्कृत मे १९७२ ई० में प्रकाशित।

अध्याय ११७

विश्वेश्वर का नाट्य-साहित्य

विश्वेश्वर विद्याभूषण, काव्यतीर्थ चट्टला-नगरी के निवासी थे।[1] उनके पिता महा महाध्यापक कृष्णकान्त कृतिरत्न और माता कसुमकामिनी देवी थीं। इनके कुल-गुरु श्रीमन्महेशचन्द्र भट्टाचार्य थे। विश्वेर ने आरम्भ में अपने पिता से और फिर चट्टल-संस्कृत महाविद्यालय में संस्कृत शिक्षा पाई थी, जहाँ उनके प्रधान अध्यापक शास्त्राचार्य रजनीकान्त और रजनीकान्त तर्क चूडामणि थे। कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालय में उनके अध्यापक राजेन्द्रनाथ विद्याभूषण आदि थे।

विश्वेश्वर पश्चिम वंग-शिक्षाधिकार-सेवा से प्राध्यापक पद से विश्रान्त हुए थे। उनका अध्यापन कर्म चट्टल-संस्कृत-महाविद्यालय में प्रमुख रूप से था। विश्वेश्वर नितान्त विनयी स्वभाव के थे। उन्होंने अपने नाटकों के प्राक्कथन में निवेदक-रूप में दीन-ग्रन्थकार विशेषण अपने नाम के पहले रखा है। विश्रान्त हो कर वे हुग्ली में रहते हैं।

विश्वेश्वर की लेखनी अमन्द गति से चलती रही है। उन्होंने 'वाल्मीकि-संवर्धन' नाटक में अपने रचे हुए ग्रन्थों का नाम इस प्रकार दिया है—

रूपक

१. दस्युरत्नाकर, २. भरत-मेलन, ३. वाल्मीकि-संवर्धन, ४. चाणक्य-विजय ५. प्रवुद्ध हिमाचल, ६. विष्णुमाया, ७. राजर्षिभरत, ८. उमातपस्विनी, ९. द्वारावती, १०. ओङ्कारनाथमंगल, ११. मातृपूजन, १२. उत्तरकुरुक्षेत्र, १३. राजर्षिसुरथ, १४. काशी-कोशलेश, १५. अरुणाचल-केतन।

इनमें से मंजूषा-पत्रिका के अनुसार दस्युरत्नाकर और भरतमेलन की रचना में ध्यानेश नारायण सहयोगी रहे हैं।

खण्डकाव्य

१. काव्य कुसुमाञ्जलि २. गंगासुरतरंगिणी।

गीतिकाव्य

वनवेणु

कथा

मणिमालिका।

---

१. चट्टला का वर्णन है

सुश्यामा घननीलशैलशिखरा स्निग्धा सरिन्मालिनी
रम्या काननकुन्तला किसलयैश्चारक्तचेलाञ्चला।
लक्ष्मीमूर्तिमतीव सागरजलात् स्नातोत्थिता चट्टला
वालार्केन्दुमयूखरत्न-मुकुटा नक्तं दिवं शोभते॥

इनके अतिरिक्त विश्वेश्वर ने बंगला-भाषा में पद्मपुट और पुष्पराग लिखे हैं।

कवि का घर ही विद्यालय था, जहाँ उनके पिता कुल-परम्परा से रामायण-महाभारत-पुराण-महाकाव्य आदि पढ़ाते थे।

उनके पिता संगीत और नाट्य के रसग्राही थे। वहीं वे निकटवर्ती शिवमन्दिर के प्राङ्गण में दोपहर के बाद पल्लीनाट्य-गोष्ठी में अभिनय-प्रस्तुति में उत्साह प्रदाता थे।

चट्टलामहाविद्यालय में अध्यापक होने पर विश्वेश्वर ने सर्वप्रथम कृष्णार्जुन नाटक के प्रयोग में श्रीकृष्ण का अभिनय किया। पश्चात् बंगला और संस्कृत के अनेक नाटकों के प्रयोग में अभिनेता बने। कवि का व्यक्तित्व इस प्रकार सर्वशः नाट्यरंजित था।

विश्वेश्वर के नाटकों का अनेक संस्थाओं में अभिनय हुआ। कलकत्ता की आकाशवाणी से उसके संक्षिप्त संस्करण भी प्रसारित हुए हैं। लेखक को खेद है कि अर्थाभाव के कारण उनके अनेक नाटकों का प्रकाशन न हो सका।[1]

चाणक्य-विजय

सूत्रधार ने चाणक्य-विजय में कहा है—भारतीय संस्कृतेस्तथा भारतवर्षस्य महिमपूजनार्थं रसमञ्जुल संस्कृतनाटकमद्याभिनेतव्यम्।[2]

कथावस्तु

मुरा के पुत्र चन्द्रगुप्त के चचेरे भाई राजा नन्द उसके प्रति संशयाकुल होकर उसे कष्ट देने लगे, यद्यपि वह राजभक्त था। पाटलिपुत्र में उस समय चाणक्य रहता था। वह नन्द की प्रजापालन-वृत्ति की हीनता देखकर खिन्न था। एक दिन ज्योतिषी का वेष धारण कर वह चन्द्रगुप्त से मिला और उसे बताया कि तुम्हारी हस्तरेखा के अनुसार तुम्हें राजा बनना है। चन्द्रगुप्त की निराशा विगलित हुई।

द्वितीय अङ्क में नन्द चन्द्रगुप्त पर अभियोग चलाता है कि राजद्रोही तुम हमारे विरुद्ध काम कर रहे हो। चन्द्रगुप्त ने कहा कि मैं राजा का पुत्र होने के आधार पर अपना भागधेय चाहता हूँ। नन्द ने कहा कि तुम दासी पुत्र हो। पार्षदों ने चन्द्रगुप्त को दोषी ठहराया और दण्डनीय बताया। मुरा आ गई और नन्द से गिड़गिड़ाकर पुत्र की रक्षा के लिए प्रार्थना की, किन्तु राजा नन्द का आदेश हुआ —दोनों को हथकड़ी लगाओ और कारागार में डाल दो।

एक दिन रक्षियों के सो जाने पर मुरा चन्द्रगुप्त से मिली। उसी समय चाणक्य की शिष्या बालिका गुप्तमार्ग से कारागार में आई और उन दोनों को अपने पीछे-पीछे कारागार से बाहर निकाला।

तृतीय अङ्क में वनस्थली को दर्भहीन करते हुए चाणक्य से चन्द्रगुप्त की भेंट

१. अर्थसंगतेरभावाद् ग्रन्थानां मुद्रापणे मेऽसामर्थ्यमेव तत्कारणम्।

२. रूपकमंजरीग्रन्थमाला १ में १९६७ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित।

होती है। कुशों से चाणक्य का पैर छिद जाने से रक्त निकला और पितृश्राद्ध में बाधा पड़ी। अब इस वन में कुश नहीं रहेंगे। बात चीत में चन्द्रगुप्त ने अपनी भावी योजना प्रकट की—हृतराज्यं प्राप्तुमिच्छामि।

चाणक्य ने उसकी सहायता का वचन दिया। एक दिन नन्द को पितृश्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराना था। आमन्त्रित चाणक्य भी वहाँ पहुँचा। राजा के प्रासाद की एक भित्ति को रहस्यमयी पाया। उसमें गुप्त द्वार था। उसके छिद्र-पथ से बाहर के काम देखे जा सकते थे। थोड़ी देर में वहाँ नन्द आया। उससे पूछा कि आपको यहाँ किसने निमन्त्रित किया? यहाँ तो राजपुरोहित सब कार्य करते हैं। चाणक्य ने इसे अपमान समझा। नन्द ने उसके अशोभन आचरण पर उसे रक्षियों से बाहर निकलवा दिया। तब तो उसने नन्द को अपनी प्रतिज्ञा सुनाई—

मोचयामि शिखां चेमां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा।
सवंशे त्वयि संनष्टे ग्रन्थिष्यामि पुनश्च ताम्॥

चतुर्थ अङ्क में चन्द्रगुप्त अपने पल्ली-भवन से कुसुमपुर पर आक्रमण की योजना बनाता है। बालिका परिव्राजिका-रूपिणी बन कर वहाँ चन्द्रगुप्त से मिलती है। उसने चाणक्य की चिट्ठी उसे दी कि आप कुसुमपुर पर आक्रमण करें। चन्द्रगुप्त के सैनिक नये हथियारों से सज्जित थे। सब के साथ आक्रमण करते हुए चन्द्रगुप्त को चाणक्य से पूर्णिमा की रात्रि में मिलना है। उस समय सभी नागरिक उत्सव में प्रमत्त रहेंगे।

पञ्चम अङ्क में कौमुदी-महोत्सव में राजा, रानी और उसकी सहचरियाँ आनन्द-मग्न हैं। रानी भी वीणा वादन करके राजा को प्रसन्न करती है। विदूषक रानी के चारों ओर नाचता है।

चन्द्रगुप्त सेना-सहित कुसुमपुर की सीमा पर आकर चाणक्य के आगमन की प्रतीक्षा करता है। चाणक्य आ पहुँचा, परिव्राजिकावेशिनी बालिका भी आ गई। उसने बताया कि नगर-प्रवेशपथ और राजभवन का गुप्त मार्ग पता लगा आई हूँ। सैन्यबल की पूरी सूचना मेरे पास है। चाणक्य के आदेश से सर्वशः आक्रमण हो गया। उसने नीलकंचुक पहन लिया।

चन्द्रगुप्त की विजय हुई। उसे राजनीतिका उपदेश चाणक्य ने दिया। सप्तम अङ्क में चाणक्य नन्द के मन्त्री गुणसिन्धु को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बना देता है। अन्त में चन्द्रगुप्त चाणक्य के चरण पर अपना मुकुट रख देता है। चाणक्य अपनी शिखा बाँधता है। वह तप करने के लिए वन में चल देता है—

धर्मराज्यं प्रतिष्ठाप्य भारते श्रीगुणान्वितम्।
पूर्णव्रतोऽस्मि सानन्दं गच्छामि तपसे वनम्॥

चाणक्य ने बालिका को आदेश दिया—

खण्डच्छिन्नविक्षिप्तं भारतवर्षमैक्यं प्रापय।

अर्थात् भारत की एकता प्रतिष्ठापित करो।

शिल्प

इस नाटक मे सगीत, वीणावादन आदि के द्वारा रगमच पर विशेष मनोरञ्जन होता है। बालिका का गायन जैसे भी हो, रगपीठ पर होना ही चाहिए। इसके सगीतो मे भविष्य की घटनाओ का सकेत भी मिलता है। चन्द्रगुप्त ने इसके विषय मे कहा है—किमशरीरिणी एषा गीतिका सन्तप्तानां तापप्रशमनाय संचरति। प्रथम अङ्क के आरम्भ मे रानी की सहचरियाँ कौमुदीमहोत्सव के अवसर पर गाती है। रगपीठ पर कौमुदी-महोत्सव का अभिनय रुचिकर प्रसग है।[1]

चाणक्य का ज्योतिषी बनकर चन्द्रगुप्त से मिलना छायातत्वानुसारी है। चाणक्य की शिष्या बालिका परिव्राजिका बनकर चन्द्रगुप्त से चतुर्थ अङ्क के प्रथम दृश्य मे मिलती है। वह परिव्राजिका कुसुमपुर मे गुप्तचर का काम करती थी। यह प्रसग भी छायात्मक है।

नगरावरोध और राजधानीपर आक्रमण का आशिक रूप से अभिनय पंचम अंक के तृतीय दृश्य मे प्रस्तुत है। ऐसा अभिनय अतिविरल है। इसमें स्वयं आक्रमण करते हुए चन्द्रगुप्त रगमच पर है। चाणक्य भी रङ्गमञ्च पर आता है।

लेखक की पिष्ट पेषण की प्रवृत्ति अभिनयोचित नही है। चन्द्रगुप्त विषयक द्वितीय अङ्क के द्वितीय दृश्य की दण्डनीयता की बात पुनः पुनः कहना ठीक नही है।

संवाद लघुवाक्य वाले सरल भाषा मे हैं। दो-चार वाक्यो से अधिक किसी पात्र को एक साथ नही बोलना पडता।

नाटक में एकोक्तियो का सौरभ स्थान-स्थान पर कलात्मक और प्रसंगोचित है। प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में चाणक्य की, द्वितीय दृश्य में नन्दराज की, द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य मे चन्द्रगुप्त की, तृतीय अंक के प्रथम दृश्य मे चाणक्य और वही दूर खडे चन्द्रगुप्त की एकोक्तियाँ प्रमुख हैं।

इस नाटक मे प्राचीन परम्परानुसार नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य हैं। पाँच अङ्को मे इसका विभाजन है। प्रत्येक अंक दृश्यो मे विभक्त है। प्रवेशक और विष्कम्भक किसी अंक या दृश्य के पूर्व नही हैं। इनके द्वारा जो सूच्य सामग्री होनी चाहिए, वह एकोक्तियों मे या अङ्क के सवादों मे दी गई हैं। यथा, चतुर्थ अङ्क के द्वितीय दृश्य मे चाणक्य बताता है कि कैसे बालकपन मे दैववशात् मैं अनाथ हो गया। फिर मैं विद्वान् बना और शिष्यो के साथ मानो सपरिवार हुआ। राजा की अराजकता देखकर मैं राजनीति के क्षेत्र मे कूद पड़ा।

वाल्मीकि-संवर्धन

विश्वेश्वर ने वाल्मीकि-संवर्धन के विषय मे कहा है—[2]

---

१. इसमे रानी वीणा बजाती है, विदूषक नाचता है और लुकाछिपी का खेल होता है।

२. रूपकमंजरी ग्रन्थमाला २ कलकत्ते से १९६६ ई० में प्रकाशित।

कलुषनिपीडितस्य मानवात्मनो वन्धनमुक्तेरितिहासः। तत्साधनया मानवः पूर्णो भवतीति आख्यानस्यास्य शाश्वती वार्ता। सा हि वाल्मीकेः पुण्यचरितकथाभिषिक्ता प्रेमगंगा प्लावनेन चित्तं पावयति, प्लावयति च भूतलमानन्दमय-भक्तिरसप्रवाहेण।

आकाश-वाणी से तथा अन्य प्रतिष्ठानों से इसका अभिनय हुआ है। इसके अभिनय में अनेक अध्यापक और अध्यापिकाओं ने भाग लिया है।

कथावस्तु

नारद और ब्रह्मा वन में भ्रमण करते हुए दस्यु रत्नाकर के अनुचरों को मिले। नारद गा रहे थे—'हरे मुरारे मधुकैटभारे' आदि। अनुचरों ने वंशी के संकेत से अपनी कार्यदिशा का निर्धारण करके उनके मार्ग को रोक लिया। ब्रह्मा और नारद ने अनेक वार अपनी दीनहीनता की वात कही, पर डाकुओं को विश्वास नहीं पड़ा। उन्होंने नंगाझोरी ली और कहा कि इनके पास कुछ मिला नहीं।

ब्रह्मा ने कहा कि दस्युराज वताओ, तुम्हारे पाप में कोई भाग लेगा? इसका उत्तर पूछने के लिए रत्नाकर जाने के पहले उनको वँधवा गया कि कहीं ये भाग न जायँ।

दूसरे अंक में रत्नाकर कुटुम्बियों के बीच में है। उसके माता-पिता पहले से ही उसकी दस्युवृत्ति की पापमयी भयावहता से चिन्तित थे। उन्होंने पूछने पर स्पष्ट कह दिया कि पाप के फल का भागी पाप करने वाला होता है, उसके कुटुम्बी नहीं। यह सुनकर रत्नाकर रोने लगा। वह अपनी पत्नी के पास पहुँचा। रत्नाकर के साथ पापकर्मफलभाक् होने के लिए वह भी असमर्थ ही रही।

तृतीय अङ्क में नारद और ब्रह्मा के पास रत्नाकर पुनः पहुँचा, सारी वात कहकर उनके पैर पर गिर कर क्षमा माँगी और उद्धार का उपाय पूछा। ब्रह्मा ने कहा कि यहाँ तुम्हारे पास आने का हमारा उद्देश्य यही था कि तुम्हारा उद्धार करें। ब्रह्मा ने मन्त्र दिया—जय श्रीराम श्रीराम। रत्नाकर जयराम जयराम जपने लगा। इधर रत्नाकर की पत्नी अपने पति के न आने से उद्विग्न थी।

नारद और ब्रह्मा वहुत दिनों के पश्चात् उसी वन से निकले, जहाँ रत्नाकर जयराम किया करता था। समाधिस्थ रत्नाकर के दोनों हाथ पकड़ कर ब्रह्मा ने आदेश दिया—

उत्तिष्ठ ब्रह्मन्, परिहर योग-समाधिं जगतां कल्याणाय।

नारद और ब्रह्मा दोनों ने उनकी उच्चाध्यात्मिक उपलब्धियों पर उनका अभिनन्दन किया। नारद ने आनन्द से नाचते हुए गाया—

पतितपावनं कुरु नाम शरणं रामनाम मनोहारि।

चतुर्थ अङ्क में निषाद नीलकण्ठमिथुन पर वाण चलता है। विहङ्गी करुण नाद करने लगी। उसका पति कुछ दूर तक उड़कर गिर पड़ा। वाल्मीकि के सामने ही वह छटपटाकर मर गया। वाल्मीकि के मुख से निकला—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

अन्तिम पचम अङ्क मे शोकग्रस्त निषाद आता है। उसने वाल्मीकि से रक्षा के लिए निवेदन किया। वाल्मीकि को अपने किये पर खेद हुआ। उसे भारती ने यह कह कर दूर किया।

मच्छन्दादेव ते कण्ठान्निर्गतेयं सरस्वती ।

ब्रह्मा ने कहा कि इस निषाद प्रसग से वाग्देवी आपको रामायण लिखने के लिए प्रेरित कर रही है। नारद को सरस्वती ने रामकथा का गान करके सुनाने के लिए आदेश दिया।

इस नाटक मे बहुत सारी सामग्री केवल दर्शको के प्ररोचन मात्र के लिए है, उसका वाल्मीकि-सवर्धन से कोई सम्बन्ध साक्षात् नही है। सास्कृतिक महत्त्व की अभीष्ट चर्चाओ को कवि इधर-उधर से भरने का उपक्रम प्रायः सर्वत्र करता है। प्रकृति का वर्णन भी कवि को प्रिय है। वनलक्ष्मी का सुनन्दा और माधवी के द्वारा प्रस्तुत नृत्यगीत प्रेक्षको के मनोरजन मात्र के लिए है।

प्रबुद्ध-हिमाचल

उमामहेश्वर के यात्रा-प्रसङ्ग में समागत सामाजिको के विनोद के लिए प्रबुद्ध-हिमाचल का अभिनय हुआ।[1] आकाशवाणी से भी इसका प्रसारण हुआ है।

कथावस्तु

गन्धर्वराजकन्या मधुच्छन्दा शिव और पार्वती की पूजा कर चुकी है। उसके पिता चित्रभानु सपत्नीक आकर पूजा करते हैं। आगे चल कर कुमार विजयकेतु का अभिषेक होता है। देवस्थान के नये राजा का अभिनन्दन सबने किया कि राज्य के गौरव के लिए जयपताका की सभी रक्षा करें। सेनाध्यक्ष ने प्रतिज्ञा दुहराई कि मैं देवस्थान-गौरव और अरुणाचल दुर्ग की रक्षा करूँगा।

विशालपुर के राष्ट्रपाल ने आदेश निकाला है कि आज से सभी मठ, मन्दिर तथा उनकी सम्पत्तियाँ राष्ट्र के अधिकार मे रहेगी। उसमे रहने वाले लोग कृषि, शिल्प आदि काम करें। सभी श्रम करें। दूसरा आदेश था—सारी भूमि राष्ट्रायत्त होगी। लोग कृषि और शिल्पादि द्वारा अपनी जीविका अर्जित करेंगे।

द्वितीय अङ्क मे विशालपुर के राजप्रासाद मे राष्ट्रपति विक्रमवर्धन अपने अमात्य से मन्त्रणा करते हैं कि अपनी नई नीति से हमारे राष्ट्र का अभ्युदय तो हो गया, किन्तु पड़ोसी राज्य देवस्थान की समृद्धि हमारी आँखो मे खटकती है। हम अपनी बढ़ती जनसंख्या के लिए देवस्थान-गिरितटवर्ती विशाल प्रान्त को हथिया लें। मन्त्री ने कहा कि ठीक है। फिर सेनापति चण्डशासन राजाज्ञा से देवस्थान पर आक्रमण करने की सज्जा करने लगा।

---

१. प्रणव-पारिजात पत्रिका में १९६६, ६७ तथा ६८ मे प्रकाशित।

इस बीच एक दिन मदन्तिका अपनी सहचरी तृष्णा, मोहमयी, वह्नि शिखा आदि के साथ आकर विक्रमवर्धन का मनोरंजन अपने गायन से करती हैं—

कुसुमकुञ्जे पिको गायतु गानम् ।
निद्रिततरुवीथिर्मुञ्चतु ध्यानम् ॥
गायतु मधुकरः, विहरतु कनककरः
अपरूपमण्डनं विलसतु भुवनं वादय मधुतानम् ।
नृत्यविलासैः सफलय जीवनं विरचय सुखगानम् ॥

राजा ने उससे फिर जनमानस में उद्दीपन-संचार के लिए गीत गवाया—

अग्निवीणां वादय सखि अग्निज्वालामालिनि । इत्यादि

तृतीय अङ्क में गन्धर्व नगर की प्राकृतिक सौन्दर्य-विलासिनी छटा की चर्चा है। वहाँ मृगया-परायण विजय केतु आया। सभी साथी विछुड़ गये थे। वहाँ पान्थवेशी दस्यु से मुठ भेड़ हुई। उसके वताये मार्ग से चलने पर विजयकेतु को मधुच्छन्दादि गन्धर्व कुमारियों का अपहरण करते हुए डाकू मिले। विजयकेतु ने उन पर वाणवर्षा की। सभी डाकू भाग खड़े हुए। उन सव गन्धर्व राजकुमारियों को लेकर विजयकेतु गन्धर्वराज चित्रभानु के पास पहुँचे।

मधुच्छन्दा का विवाह चित्रभानु ने विजयकेतु से कर दिया।

चतुर्थ अङ्क में राजकवि सुधाकण्ठ देवस्थान के राजपथ पर वीणा-गायन पूर्वक विचरण करते हैं। विविध सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के नायक अपनी अपनी विचारधारा का समर्थन करते हुए राष्ट्रियजीवन के आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

पंचम अङ्क में विजयकेतु का आरम्भ में समाचार मिलता है कि विशालपुर के सैनिकों ने अरुणाचल-प्रान्त-देश पर आक्रमण कर दिया है। सिन्धु-कूटाधिपति भी उनसे मिला हुआ है। सेनापति पुरंजय ने समाचार दिया है कि शत्रु पीछे हटा दिये गये हैं। देवस्थान के सभी जन राष्ट्ररक्षा के लिए कटिवद्ध हो गये।

राष्ट्र की कन्याओं ने नवयुवकों का उत्साह वढ़ाने के लिए गाया—

वन्दे देश मातरम्
लक्षवीर-जन्मदात्रीं जगद्धात्रीं मातरम् ।
जय विश्ववन्दिते जय सुरनन्दिते
पुण्यमहिमसुषमामयीं वन्दे शुभ्रां मातरम् ॥ इत्यादि ।

पूर्वकूट-प्रदेश के शरणार्थी देवस्थान में प्रविष्ट हो गये। उनके लिए व्यवस्था की गई। सनातन और रत्नमंजरी ने इस दिशा में शोभन कार्य किया। विजयकेतु ने रत्नमञ्जरी का प्रार्थना-गान सुनकर आदेश दिया—

उन्मोचय मम नगरद्वारमनाथेभ्य आश्रयदानाय। अद्यप्रभृति राजभवनं शरणार्थिभ्यः स्थानदानाय सदोन्मुक्तं तिष्ठतु ।

रानी मधुच्छन्दा ने अपना पूरा सहयोग दिया। राजकवि सुधाकण्ठ ने लोक-जागरण के लिए गीति-रचना की।

छठें अङ्क में ब्रह्मानन्द सनातन से बताते हैं कि देवा अधुना योगनिद्रामाश्रयन्ते। देवतात्मा हिमाचलोऽपि समाधिलीनो निद्राति।

वे जगेंगे, तब मानव मोह निद्रा छोड़ेंगे। ब्रह्मानन्द ने सनातन को दिखाया—

एषां महातापसानां तपश्चरणं युष्माकं साधन-सम्पद्भिर्युक्तं महत् कल्याणमुद्भावयिष्यति।

पश्यैनां दिव्यालोकसमुद्भासितदिङ्मण्डलां देवीमूर्तिम्। चिन्मयी विश्वधात्री विश्वरूपा परमेश्वरीय भक्तजनैश्चिरमाराध्यते।

चित्रभानु के गान्धर्व वीरों ने विजयकेतु की विजय के लिए सहायता दी। सनातन ने स्थिर योगासन जमाकर, ध्यान लगाकर और सांस रोक कर महासमाधि ले ली। उसकी मृत्यु से मातृपूजा हुई, जिससे जनता-जनार्दन का कल्याण हो। सुधाकण्ठ ने कहा—न हि वीरस्यात्मदानं व्यर्थतां गच्छति।

प्रबुद्ध-हिमाचल नाटक अतिशय उच्चस्तरीय है। इसके द्वारा भारत को अपनी सनातन वैभवमयी और गौरवशालिनी उच्चता प्राप्त करने का सन्देश मिलता है।

शिल्प

संवाद की परिधि के बाहर नाट्य-निर्देश प्रायश: कार्य-(action) रूप रोचक हैं।[1] यथा तृतीय अङ्क के द्वितीय दृश्य में—

मधुच्छन्दा सखीहस्तान्माल्यं गृहीत्वा पतिं प्रणम्य तत्कण्ठे वरमाल्यमर्पयति। मधुपर्णा स्वर्णपात्रस्थ-कुकुमचन्दन-पात्रं राजपुत्र्याः करेऽर्पयति। मधुच्छन्दा च वरस्य ललाटे तिलकं ददाति विजयकेतुश्च स्वकीयं रत्नहारं कण्ठादुन्मोच्य राजपुत्र्याः कण्ठं भूषयति, ददाति वधूललाटे शुभतिलकं कुंकुमेन, ध्वनति चोलुरवसहितो मंगलशंखनादः।

लेखक ने स्थान-स्थान पर जीवन के सांस्कृतिक उच्चादर्शों को पात्रों के संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया है। तृतीय अङ्क के द्वितीय से चतुर्थ दृश्य में राजकवि सुधाकण्ठ, सुधाकर, विश्वमित्र और सनातन का विवाद इसी दृष्टि से समाविष्ट है।

छठें अङ्क में देशवासियों के द्वारा देश की दुर्दशा कराने की प्रवृत्तियों का बोधक वर्णन ब्रह्मानन्द और सनातन के संवाद में है।

नाटक में यद्यपि आङ्गिक कार्यों की विपुलता नहीं प्रकट होती, किन्तु वैचारिक कार्यसमृद्धि प्रचुर है।

उत्तर-कुरुक्षेत्र

रणभारपीडिता जर्जरमेदिनी करोति रक्तस्रोतःस्नानम्।
सुपमाहीना प्रकृतिर्दीना मुञ्चति तप्तमश्रुजालम्॥

विश्वेश्वर का उत्तर कुरुक्षेत्र कौरव, पाण्डव और कृष्ण—इन तीनों की महा

---

१. अन्यत्र मंचीय-निर्देश भी अनतिदीर्घ हैं, यथा चतुर्थ अङ्क के तृतीय दृश्य के पूर्व।

भारत के पश्चात् दुःस्थिति का चित्रण है।[1] जैसी कथावस्तु है, इस में नाटकीयता स्वल्प और संवाद विशेष है। इसमें कार्य (action) और फल-प्राप्ति के लिए विकासोन्मुख अवस्थायें हैं ही नहीं। प्रत्येक अंक की अलग-अलग कथा अननुबद्ध है। इसका अभिनय मधु-पूर्णिमा-महोत्सव के उपलक्ष्य में भक्तों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

कुरुक्षेत्र के युद्ध में सम्बन्धियों के मारे जाने से अर्जुन सन्तप्त हैं, पर कृष्ण इस धर्मयुद्ध को क्षत्रियों के लिए श्रेयस्कर मानते हैं। अर्जुन को कृष्ण गीतोपदेश का स्मरण कराते हैं। युधिष्ठिर ने कहा कि मैं भी परीक्षित् को राज्य देकर वानप्रस्थ लेना चाहता हूँ। कृष्ण ने कहा कि मुझे भी यादव बुला रहे हैं। मैं द्वारका जा रहा हूँ। 'धर्मो युष्मान् रक्षतु' यह कह कर श्रीकृष्ण द्वारका गये।

हस्तिनापुर-प्रासाद में धृतराष्ट्र सौ पुत्रों के मारे जाने से दुःखी हैं। उनसे गान्धारी, युधिष्ठिर आदि मिलते हैं। युधिष्ठिर तप के लिये वन में जाना चाहते हैं। उन्हें अन्यायी पुत्रों को समर्थन देने से कष्ट हो रहा है।

कुन्ती ने द्रौपदी से कहा—मैं वानप्रस्थ लेने के पहले आज तुम्हें गार्हस्थ्य भार समर्पित कर रही हूँ। गान्धारी ने उसे रोका, पर उसने कहा कि मैं बूढ़ी हुई और अब आपके साथ श्रेयःसाधन करूँगी।

द्वारका में कृष्ण रुक्मिणी और सत्यभामा को बताते हैं कि अब प्रभासक्षेत्र चला जाऊँगा, क्योंकि द्वारका डूब जायेगी। मेरे वंश के लोगों के अधर्माचरण से परस्पर कलह होगा। उसमें सब विनष्ट हो जायेंगे। मैं भी दूर जाकर अपनी नरलीला समाप्त करूँगा।

नारद आये। उनका सत्कार सत्यभामा और रुक्मिणी ने किया। वे निकले तो नारीवेश में कृष्ण के पुत्र शाम्ब को लिए हुए मदिरा-मत्त यादव-गण गाते हुए मिले। उन्होंने नारद से पूछा कि इस स्त्री को पुत्र होगा कि कन्या? नारद ने कहा कि इससे मूसल उत्पन्न होगा, जिससे तुम सबका नाश हो जायेगा।

अर्जुन द्वारका आये। दारुक ने उनसे कहा कि मरे यादवों की अन्त्येष्टि करने के लिए भगवान् ने आपको सन्देश दिया है। शेष यादव स्त्रियों और बालकों को योग्य स्थान पर प्रतिष्ठित कराने का काम भी कृष्ण ने अर्जुन को ही सौंपा था।

हस्तिनापुर आकर दारुक ने युधिष्ठिर को बताया कि कृष्ण ने इहलोक-लीला संहृत कर ली। द्वारका के यादव विनष्ट हो गये। यह सब गान्धारी के शाप के कारण हुआ। अर्जुन ने बताया कि मार्ग में यादव महिलाओं को दस्युओं ने लूट लिया। शेष को लेकर मैं यहाँ आया हूँ। युधिष्ठिर ने आदेश दिया कि सबके लिए उदक-दान का श्राद्ध अर्पित किया जाय। ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय।

चतुर्थ अङ्क में परिहासात्मक दृश्य है दधि और मिठाई बेचनेवालों का, जिनसे

१. संस्कृत-साहित्य-परिषद्-पत्रिका में वर्ष ५०, ५१ में प्रकाशित।

विदूषक को भोजन प्राप्त होता है। युधिष्ठिर परीक्षित् को राजा बनाकर वानप्रस्थ लेना चाहते हैं। अभिषेक की सारी प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

पंचम अङ्क में परीक्षित् मृगया करते हुए वनलक्ष्मी से मिलते हैं। वे उन्हें उस वन में मृगया करने से रोकती हैं। फिर अनुचरों को ढूँढते हुए परीक्षित् अज्ञानवशात् शृङ्गी ऋषि के पिता शमीक के गले में मृत सर्प डालकर सप्ताह के भीतर ही सर्पदंश से मरने का शाप अर्जित करते हैं।

शमीक ने पुत्र से कहा कि शाप निरस्त करो, क्योंकि अतिथि से ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। बात फिर बनी नहीं। परीक्षित् ने गंगातट पर भागवत की कथा शुकदेव से सुनी। वहाँ एक ब्राह्मण टोकरी में पुष्पफलादि लेकर आया और राजा को उपहार दिया। परीक्षित् को टोकरी से निकल कर सर्प ने काटा और वे दिवंगत हुए।

जनमेजय ने नागयज्ञ किया। आस्तिक ने राजा से वचन लिया कि जो माँगेंगे, वह दे दूँगा। उसने यज्ञ की समाप्ति का वर माँगा और जनमेजय यज्ञ से विरत हुए।

भरत-मेलन

विश्वेश्वर विद्याभूषण ने भरत के चारित्रिक आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए भरत-मेलन की रचना की।[1]

कथावस्तु

भरत को राम के वनवास से अतिशय सन्ताप है। वे अयोध्या से चल कर शृङ्गवेर पुर के समीप निषादराज गुह के अनुचरों से देखे जाते हैं। वे समझते हैं कि हमारे नगर पर कोई आक्रमण करने के लिए आ रहा है। निषादराज आदेश देता है—

एषा मे शोणितास्वादलोलुपा मर्मघातिनी।
नृत्यतु समरोल्लासाच्छल्यकी शितधारिणी॥

तबतक निषादराज ने देखा कि जटाचीरधारी कोई पुरुष आगे-आगे है। उसने सबको रोका और कहा कि यह तो कोई परिव्राजक है। भरत ने उससे कहा कि मैं दीन हूँ। आप भरत से मिलाने में मेरी सहायता करें। गुह ने उन्हें राम की पर्णशय्या दिखाई। भरत को रोना आ गया—

क्व वत स्वर्णपर्यङ्कं कोमला पुष्पशय्या।
क्व चेह रामभद्रस्य वृक्षमूलाधिवासः॥

सीता का नाम आने पर भरत के मुख से निकला—

यूथभ्रष्टा मृगी कान्ता चरत्येका यथा वने।
निःसहाया तथार्या मे संश्रिनेदं शिलानलम्॥

---

१. मंजूषा के १३ वें वर्ष के अंकों में प्रकाशित।

[illegible] भरत ने कहा [illegible] राम [illegible] भरत [illegible] भरत ने कहा— [illegible]

[illegible]

अन्त में भरत ने कहा—

[illegible] राम ने [illegible] कहा—

[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] भरत [illegible] कैकेयी [illegible] ।

भरत ने कहा—

[illegible]
[illegible] ।

[illegible] अयोध्या की ओर चल पड़े। [illegible]—

जय रघुकुलभूषण !
[illegible]
[illegible]
[illegible] !
[illegible] ॥

अध्याय ११८

यतीन्द्रविमल चौधुरी का नाट्य-साहित्य

यतीन्द्र का जन्म आज के बांगला देश मे कर्णफुली नदी के तट पर स्थित चिटवड़ागांव जिले के कधुखिल गाँव मे २ जनवरी १६०८ ई० मे हुआ था। उनके पिता रसिक चन्द्र चौधुरी और माता नयनतारा देवी थी। पिता प्राइमरी स्कूल के अध्यापक होने पर भी समाज मे समादृत थे और लोग उन्हे गौरव की दृष्टि से गुरु कहते थे। पिता ने अपना सर्वस्व देकर यतीन्द्र को कलकत्ते और लन्दन मे उच्च शिक्षा का व्यय वहन किया, यद्यपि यतीन्द्र स्वय भी विद्यार्थी-जीवन मे प्रायः अर्जन करते थे। यतीन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में अपने पिता के विद्यालय मे हुई। आरम्भ से ही पिता की प्रेरणा से वे सस्कृत मे विशेष रुचि लेने लगे। १६२५ ई० मे प्रथमश्रेणी मे मैट्रिक उत्तीर्ण करके यतीन्द्र प्रेसिडेन्सी कालेज के छात्र हुए। यहाँ उन्होने सातकड़ी मुखोपाध्याय से विशेष रूप से शिक्षा ग्रहण की और १६२६ ई० मे बी० ए० ऑनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण हुए। वे इसी वर्ष लन्दन विश्वविद्यालय में पीएच० डी० उपाधि के लिए छात्र हो गये। १६३४ ई० मे Women in Vedic Ritual विषय पर उपाधि प्राप्त की।

इस बीच वे इण्डिया-आफिस-लाइब्रेरी और लन्दन-विश्वविद्यालय मे विभिन्न पदों पर काम करते रहे, जो १६३७ ई० तक चलता रहा।

लन्दन से दर्शन-विषय पर डी० फिल० करने वाली रमा से १६३८ ई० मे यतीन्द्र का विवाह हुआ। भारत लौटने पर यतीन्द्र ने बंगाल में संस्कृतशिक्षा-समिति के मन्त्री, वगीय संस्कृत-शिक्षा परिषद के मन्त्री, संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य प्रेसिडेन्सी कालेज मे संस्कृत के प्राध्यापक और विभागाध्यक्ष तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत व्याख्याता आदि पदो पर काम किया। वे रामकृष्ण परमहंस और सारदा मणि के प्रति विशेष श्रद्धा करते थे और उनसे सम्बद्ध संस्थाओं के कार्यों मे योग देते थे।

यतीन्द्र ने १६४३ ई० मे प्राच्य वाणी नामक एक सस्था की स्थापना कराई जिसका अगरेजी नाम Institute of Oriental Learning था। उससे अंगरेजी मे प्राच्यवाणी नामक त्रैमासिक शोधपत्रिका निकलती थी, जिसके सम्पादक चौधुरी-दम्पती थे। इसमें सस्कृत-ग्रन्थो का सानुवाद प्रकाशन होता था, विविध भाषाओं मे भारतीय पुरातात्त्विक अनुसन्धान-विषयक लेख छपने थे और सस्कृत मे विरचित मौलिक कृतियों का अनुवाद प्रकाशित किया जाता था।

प्राच्यवाणी मे अनुसन्धान की वैज्ञानिक सरणि की शिक्षा शोधछात्रों और संस्कृत के पण्डितो को दी जाती थी। इसका एक प्रमुख काम सास्कृतिक भी था, जिसमे विश्व की सस्कृति और सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन सविशेष था। विश्व में सास्कृतिक सौमनस्य उत्पन्न करना, संस्कृत का प्रचार करना, तदर्थ सभायें

करना, पुस्तकालय और हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रहालय वनाना आदि काम प्राच्य वाणी–संस्थान के उद्देश्य थे।

अपर्युक्त उद्देश्य से प्राच्च वाणी का अध्यापन-विभाग वेद, हिन्दू-दर्शन, काव्य तथा साहित्य–शास्त्र, स्मृति-तन्त्र विपयक था, जिसमें यतीन्द्र दो विभागों में अध्यापन करते थे। उच्चकोटि के विद्वानों के भापण इस संस्थान में कराये जाते थे। छात्रों और विद्वानों से निवन्ध—प्रतियोगितायें कराई जाती थीं, जिनमें वे पुरस्कृत किये जाते थे।

प्राच्य वाणी के अध्यक्ष वी० सी० ला थे, किन्तु यतीन्द्र तो उसके प्राण ही थे। यतीन्द्र मूर्तिमान् सौहार्द थे। उनका हृदय करुणापूर था। शुचिता और कर्मण्यता के तो वे आदर्श थे। इन्हीं के वल पर उन्होंने वहुविध क्षेत्रों में जो ज्योति जगाई, वह संस्कृत के पण्डितों के लिए अनुहरणीय है। वास्तव में यतीन्द्र अपने युग के उन सर्वश्रेष्ठ मनीपियों में गण्यमान थे, जो ऋपिकोटि में परिगणित होते हैं।

यतीन्द्र का व्यक्तित्व संगीत और अभिनय की दिशा में भी समुदित हुआ था। वे विद्यार्थी-जीवन में हरगौरी और कालीनृत्य के अभिनयों का आयोजन करते थे और उनमें सक्रिय भाग लेते थे। तभी से चण्डी–मण्डप का संगीत उनके लिए सदा आकर्पक रहा।

यतीन्द्र का जीवन-दर्शन भारतीय संस्कृति के अनुरूप है—कर्मयोग के पथ में निरन्तर कठिनाइयों से जूझते रहना। वचपन से ही उनका रवीन्द्र-भारती से चुना हुआ आदर्श वाक्य था—

आमार सकल काँटा धन्य करे फुटवे गो फुल फुटवे।
आमार सकल व्यथा रंगीन होय गुलाव होय उठवे॥

उन्होंने नारी मात्र को माता की गरिमा से परिहित किया है और भारत–विवेक में कहा है—

अमृतमथितं सागर-जननं मातरि निहितं तुलनाहीनम्।
माक्षर कथनं कल्मषदहनं तृ सदा भवाब्धि-तरणे तरणम्॥

भारत–हृदयारविन्द में उन्होंने अपना विचार व्यक्त किया है कि देशप्रेम श्रेष्ठ धर्म है। उनका देशप्रेम विश्ववन्धुत्व से अनुलम्वित था। विश्व की मानवता को वे ईश्वर की सन्तान होने के नाते एक और समान मानते थे। छुआछूत, ऊँच-नीच आदि के वे विरोधी थे—वे मनोवल और मनःसंकल्प को अभ्युदय के लिए प्रथम सोपान मानते थे।

रचनायें

यतीन्द्र की रचनायें चार प्रकार की हैं—सर्जनात्मक काव्य, शोध-निवन्ध, सम्पादित ग्रन्थ और अनुवाद। आश्चर्य है कि उन्होंने अपने जीवन के प्रायः अन्तिम दस वर्षों में संस्कृत में तीस नाटकों का प्रणयन किया और एक नाटक पालि में भी

लिखा।[1] इनके अतिरिक्त उन्होंने शक्तिसाधन, मातृलीला-तत्त्व (गीत-संग्रह), विवेकानन्द-चरित (चम्पू) आदि काव्य ग्रन्थों की रचना की।

यतीन्द्र की शोधकृतियों में Contribution of Women to Sanskrit literature सात भागों में Contribution of Muslims to Sanskrit literature तीन भागों में, Muslim Patronage to Sanskrit learning तीन भागों में Contribution of Bengal to Sanskrit literature तीन भागों में प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने वंगीय दूत-काव्येतिहास लिखा।

यतीन्द्र के द्वारा सम्पादित ग्रन्थावली बहुविध है। उनका संस्कृत-कोश-काव्य-संग्रह चार भागों में प्रकाशित हुआ है। गीतिकाव्यों में उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने भ्रमरदूत-काव्य, वाङ्मण्डन-गुणदूतकाव्य, चन्द्रदूत काव्य, हंसदूत काव्य, पान्थदूत काव्य, घटकर्पर काव्य और पदाङ्कदूत काव्य का सम्पादन और प्रकाशन किया। ऐतिहासिक काव्यों में से अब्दुल्ला-चरित, सुरजन-चरित, वीरभद्र-चम्पू, जामविजय-काव्य आदि उनके द्वारा सम्पादित और प्रकाशित किये गये।

वंगला भाषा में यतीन्द्र ने नीचे लिखे ग्रन्थों की रचना की—पण्डितईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गौडीयवैष्णवेर संस्कृत-साहित्ये दान, प्रबन्धावली आठ भागों में, बुद्ध-यशोधरा, जननी-यशोधरा।

यतीन्द्र के लिए नाटक लिखना वैसे ही स्वाभाविक था, जैसे श्वास लेना। उनकी पत्नी ने शंकर-शंकर की प्रस्तावना में कहा है—

प्रणयादनुनीतो यो द्वित्रैरपि दिनैः कृती।
नाटकं स्रष्टुमीशोऽभूत् शैलूषाणां सुखावहम्॥

यतीन्द्र और उनकी सर्वविध अर्धाङ्गिनी रमाचौधुरी ने प्राच्यवाणी—संस्कृत-पालि—नाट्यसंघ की स्थापना की। इस संस्था ने भारत के विविध प्रदेशों में और विदेशों में भी नाटकों का अभिनय करते हुए संस्कृत—भाषा और भारतीय संस्कृति का प्रचार किया है। पालि-नाटक का अभिनय १९६० ई० में रंगून में हुआ।

यतीन्द्र १९६४ ई० में हृदय-गति के बन्द हो जाने से अकाल दिवंगत हुये। निस्सन्देह उनका जीवन अचिर होने पर भी पूर्ण था। भारतमाता को ऐसे कर्मठ मनीषियों पर गर्व होना स्वाभाविक है।

यतीन्द्र के नाटक कथावस्तु की दृष्टि से चार प्रकार के हैं—

(१) मातृभूमि-वर्णनात्मक
(२) लोकनायक-गाथात्मक
(३) नारी-गौरवात्मक
(४) वैष्णवभक्त-चरितात्मक

---

१. यतीन्द्र ने शेक्सपीयर के ओथेलो और (मर्चेण्ट आव वेनिस) का अनुवाद किया। दोनों प्रकाशित हैं।

महिममय-भारत

महिममय-भारत नामक उपरूपक की रचना १९५८ ई० में हुई और इसका प्रथम अभिनय प्राच्य वाणी के द्वारा तालकटोरा पार्क, नई दिल्ली में भारत सरकार के नाटक विभाग के आश्रय में २० अप्रैल १९५९ ई० में हुआ। इसका अभिनय देखने के लिए लोकसभा के स्पीकर अनन्त शयन आयंगर, सूचना और प्रसारण के मन्त्री केशकर आदि उपस्थित थे। इसका निर्देशन लेखक की पत्नी रमा चौधुरी ने किया था। अभिनय में प्रायः सभी पात्र प्रोफेसर और विद्यार्थी थे। नारीपात्र की भूमिका का निर्वाह स्त्रियों ने किया था।

कथावस्तु

प्रस्तावना में सूत्रधार ने कथावस्तु का परिचय देते हुए कहा है—'वैदिक-पौराणिक-महम्मदीय-वर्त्तमानयुगेषु नदी-मातृकापूजन-संयमनादिकमधिकृत्य विरचितं रूपकम्' आदि। सिन्धुक्षित् नामक वैदिक ऋषि सिन्धु नदी की पूजा करते हैं। नदियाँ ही पयोदान से देश का पालन करती हुई मातायें हैं। वे अपनी पत्नी को बताते हैं कि नदी की पूजा माता की पूजा की भाँति होती है।

द्वितीय अङ्क में गंगा के प्रादुर्भाव का इतिवृत्त है। राग—रागिणियों से संगीत-शिष्य नारद मिलते हैं। उनसे राग बताता है कि अनाड़ी गायकों के विगान से हम सभी विकलाङ्ग हैं। महादेव गायें और ब्रह्मा सुनें तो हम लोगों का विकार दूर हो। नारद ने महादेव की स्तुति की कि आप गायें। ब्रह्मा और विष्णु सुनने के लिए आ पहुँचे। शिव ने गाया—

जीवनं गीतकं जीवनोऽज्जीवनं चेतसो मंगलं तापसास्वादनम्।
सर्वशान्तिप्रदं साधना-सिद्धिदं जीवताद् भूतले सन्ततं सेवितम्॥

गान सुन कर विष्णु द्रवीभूत हुए। उस द्रव को ब्रह्मा ने कमण्डलु में संगृहीत कर लिया और बताया कि इसे लोककल्याण के लिए प्रवाहित करूँगा?

तृतीय अङ्क के आरम्भ में शाहजहाँ की कन्या जहाँनारा यमुना की स्तुति का गायन करती है—

सदानीरेयं यमुना लसति पूर्णजीवना रसवना प्रेमघना जागतविहारे।
कलिन्दकन्यका धीरा जगज्जन-सेवावीरा प्राणसमर्पण-परा विभूति-सागरे॥

शाहजहाँ के लाहौर से लौटने पर उसकी थकावट दूर करने के लिए वह यमुना का जल स्वयं लाना चाहती है। पर शाहजहाँ उसे इधर-उधर की बातों में लगा देता है। वह बताता है कि तुम्हारी दिवंगता माता ने मुझ से कहा था कि मैं नई नहर बनवाऊँ और पुरानी नहरों का संस्कार कर दूं। लाहौर के शासक अली-मर्दान खां को कन्धार की नहरों का पूरा परिचय है। उसे तुम्हारी माता की इच्छानुसार नहर बनाने के काम में मैंने लगा दिया है।

चतुर्थ अङ्क में राम और रहीम सड़क बनाने वाले दो कर्मकर बातें करते हैं

कि आज जहाँ यह महानगर है, वहाँ पहले अरण्य था। रहीम ने राष्ट्र पिता गान्धी की प्रशंसा की—

स्वाधीनतां स्थापयितुं स्वदेश आजीवनं यो युयुधे नयज्ञः।
दयालवे गान्धि महात्मने मे नमोऽस्तु जाते जनकाय तस्मै ॥

कुछ लड़के-लड़कियाँ आकर दामोदर-घाटी योजना देखकर विस्मित हैं। वे उन्नति के लिए नदी बन्धन-जलप्रवाहण, विद्युदुत्पादन, मत्स्य-पालन आदि की चर्चा करते हैं और माइथन-बन्ध, भाकरा-लाङ्गल-बन्ध, चम्बल-योजना, नागार्जुनसागर, और माचकुन्द-योजना से भारत के अभिनव निर्माण की आशंसा करते हैं।

शिल्प

एकोक्तियों के समीचीन प्रयोग में यतीन्द्र निष्णात हैं। महिममय भारत के तृतीय अङ्क के आरम्भ में जहाँनारा की एकोक्ति रसमयी है। वह यमुना की रसनिर्भर स्तुति करने के पश्चात् बताती है कि मेरे पिता अभी लाहौर गये हैं।

वङ्गवासी गीतप्रिय होते हैं। यतीन्द्र ने गीतों का प्रचुर समावेश रूपकों में किया है। महिममय भारत में राम भारत के प्रति उल्लास प्रकट करता है—

भ्रातरो द्रुतं जागृत भारतसन्तानाः
स्वराज्य-शासन-भार-ग्रहण-चिन्ताकातर-
मंगलसाधनपर-कठोर-यातनाः ॥ ४.२३

महिममयभारत परम्परा से सम्बन्ध जोड़ता हुआ एक नये प्रकार का नाटकीय रचना कहा जा सकता है। इसमें प्रस्तावना और भरतवाक्य तो परम्परानुसार हैं, किन्तु वस्तु, नेता और रस का स्वरूप परम्परा से मेल नहीं खाता। इसके छोटे-छोटे पाँच अङ्कों में परस्पर असम्बद्ध चार घटनायें क्रमशः वैदिक, पौराणिक, इस्लामी और आधुनिक युग की हैं। दृश्यस्थली देवलोक से पंजाब और दिल्ली तक प्रसारित है। नेता मजदूर से लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक हैं। मातृभूमि के प्रति प्रेम जाग्रत् करना कवि का उद्देश्य है। वह मातृपूजा में रस लेता है। बस यही उसकी रस-योजना है। वह नदीमातृक प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है।[1]

रूपक में कार्य (action) का अभाव सा है। केवल शाब्दिक और मानसिक व्यापार चलते हैं।

कवि की भाषा नितान्त सरल है। इस रूपक के विषय में प्रायः सत्य ही है कि असंस्कृतज्ञ भी भारतवासी इसे समझ सकें और इसकी भूरिशः प्रशंसा करें।

मेलनतीर्थ

विविधता को अपनाकर भारत और भारतीय संस्कृति वैशद्य प्रकट करते

---

१. कवि की दृष्टि में तीन मातायें हैं—

अम्बादिमा भवति सा ननु या प्रसूते
मध्या च देशजननी तटिनी तृतीया ॥ ४.२६

हुए लोककल्याण-परायण हैं—यह विचार प्रस्फुटित करने के लिए यतीन्द्र ने दस अङ्कों में मेलन-तीर्थ लिखा। मेल करने से, पृथक् करने से नहीं, भारत तीर्थ बना है—यह कविवर की आशंसा है। भारत-माता की गोद में आदिकाल से जो बसते गये, वे सभी इसकी सन्तान होने के कारण भाई-बहन हैं। ऐसे ही असंख्य संस्कृतियों का मिलन भी भारतभूमि की गोद में हुआ है।

कथावस्तु

प्रथम अङ्क में अथर्वा शिष्यों के साथ हैं और वैदिक संस्कृति का उपदेश दे रहे हैं। द्वितीय अङ्क में मलय पर्वत पर अगस्त्य अपनी पत्नी और शिष्यों के साथ वैदिक संस्कृति का प्रसार करते हुए प्रयत्नशील हैं। तृतीय अङ्क में अशोक का व्यक्तित्व समुदित हुआ है। उस महामानव ने सन्त्रास से मानवता का त्राण करने के लिए बुद्धपथ को दिग्दिगन्त तक निर्मित किया, जिस पर विश्व को चला कर वह स्वयं परिनिर्वाण की अनुभूति कर सका। उसके भाई-बहिन ने स्वयं लंका जाकर धर्मघोष किया। पंचम अङ्क में दीन-इलाही के प्रवर्तक अकबर को लोक-प्रशान्ति-कारिणी सर्वधर्मसमन्वय-नीति का प्ररोचन है।

मेलनतीर्थ के छठें अंक में चैतन्य महाप्रभु की वैष्णवी भक्ति की गंगा प्रवाहित की गई है। वे सारी मानवता को विष्णुपद-पांसु से पवित्र करके समता प्रदान करते हैं। सप्तम अङ्क में विवेकानन्द का विश्वोद्धार-मार्ग चर्चित है। आठवें अंक में रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्वजनीनता से अपने व्यक्तित्व को समुदित करके भारत को विश्वगुरु बनाने के लिए विश्वभारती प्रतिष्ठित करते हैं। नवम अङ्क में गान्धी की नोआखाली यात्रा का निदर्शन है और दिल्ली में आये हुए देश-विदेश के लोगों को विश्वमैत्री का सन्देश मिलता है। गान्धीजी की मृत्यु तक की बातें इसमें कही गई हैं। अन्तिम दशम अङ्क में जवाहरलाल नेहरु का विश्वमैत्री-प्रयास चर्चा का विषय है।

भारत-हृदयारविन्द

भारतहृदयारविन्द की रचना १९५९ ई० में हुई। इसका सर्वप्रथम अभिनय पाण्डिचेरी में अरविन्दाश्रम में हुआ। माता से इस अभिनय के लिए आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। इसके साथ ही यतीन्द्र के शक्तिशारद और महाप्रभुहरिदास का अभिनय १५ से १७ अक्टूबर १९५९ ई० में हुआ। इसी वर्ष दिसम्बर मास में भक्तिविष्णुप्रियनाटक का अभिनय अरविन्द-आश्रम में हुआ।

भारतहृदयारविन्द की कथावस्तु प्रायशः श्रीअरविन्द की वाणी और लेखों पर आधारित है। अरविन्द के जीवन पर किसी भी भाषा में लिखा हुआ यह प्रथम नाटक है। लेखक ने प्रस्तावनानुसार इसमें देशप्रेम और भगवत्प्रीति की एकता प्रमाणित की है।

कथावस्तु

केम्ब्रिज में विद्यार्थी रहकर अरविन्द ने भारत को स्वतन्त्र बनाने का स्वप्न

देखा था। उन्होने लोटस-डैगर नामक एक संस्था इस उद्देश्य से स्थापित की थी।[1] यह संस्था गुप्तकार्य करती थी। सदस्य थे विनयभूषण, मनोमोहन, मोरोपन्त योशी आदि।

अरविन्द भारत लौटे। बम्बई मे जलयान से उतरने के पहले ही उनके पिता दिवंगत हो गये। २९ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हो गया था। पत्नी का नाम मृणालिनी था। उसने भी पति के अनुरूप बनने के लिए देशसेवाव्रत अपनाया कि देशप्रेम श्रेष्ठ धर्म है। वे बड़ौदा मे आ गये। वहाँ उन्हें समाचार मिला कि बंगाल मे देशोद्धार के लिए महान् कार्य हो रहा है। अरविन्द ने अपने भाई बारीन्द्र को भी देश-सेवा की दीक्षा दी। बारीन्द्र ने संकल्प लिया—

नत्वा पादयुगे करालवदनां कालीमनन्यव्रतः
श्रीबारीन्द्रकुमार-घोषज इदं संकल्पयाम्यादृतः।
छेत्तुं भारतमण्डले कृतपदं वैदेशिकं शासनं
कार्यं जीवन-निर्व्यपेक्षमपि यत् कुर्यां तदद्यावधि ॥ २-३५

अरविन्द ने उनके दाहिने हाथ में गीता और बायें में तलवार पकड़ा दी और इनकी व्याख्या कर दी—

निष्कामस्य हि कर्मणः प्रतिकृतिर्गीतेत्यत्रेणोदिता
खड्गश्चात्मपशुत्वखण्डनफलः शक्तेः प्रतीकश्च सः।
गीता चेतसि संस्थिता करगतः खड्गश्च येषां सदा
सेवायामधिकारितामधिगतास्ते देशमातु ध्रुवम् ॥ २.३७

तृतीय अङ्क में सूरत के १९०२ ई० के कांग्रेस के अधिवेशन मे तिलक और अरविन्द की बातचीत होती है। गर्म दल के ये दोनों नायक लाला लाजपत राय को अध्यक्ष बनाना चाहते थे। नर्मदल के सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि रासविहारीघोष को यह पद देना चाहते थे।

अरविन्द का विचार था कि सारे भारत मे सशस्त्र जागरण होना चाहिए। वे उस अधिवेशन मे पूर्ण स्वातन्त्र्य की घोषणा कराना चाहते थे।

चतुर्थ अङ्क मे बगाल मे स्वातन्त्र्य-संग्राम के जोर पकड़ने पर मानिकतल्ला और मुजफ्फरपुर मे जो हत्यायें हुईं, उनमें अरविन्द का हाथ मानकर उनको बन्दी बनाया गया। उनको अंगरेज पुलिस कप्तान ने रस्सी से बँधवाया, जिसे नर्म दल के भूपेन्द्रवसु ने यह कहकर खुलवाया कि—

---

१. उसकी एक बैठक मे अरविन्द ने उद्देश्य बताया था—
विज्ञानैरथ धर्मदर्शनकलाशास्त्रैश्चिरादुन्नता-
प्येषा भारतभूमिरद्य भजते कष्टं पराधीनताम्।
छित्वा पाशमिमं तदीयवदनं फुल्लं विधातुं वयं
कुर्मः किंचन कर्म देशहितकृद् यद् यस्य योग्यं भवेत् ॥ १.१२

मुंचैनं द्रुतमन्यथा तु नयतो युष्मानिमं संयतं
संघीभूय जनाः प्रसह्य गणशो मार्गे निहन्युर्ध्रुवम् ॥

चतुर्थ अंक के द्वितीय दृश्य में अरविन्द न्यायालय में देशद्रोह के अपराध में लाये जाते हैं। चित्तरंजनदास ने पारिश्रमिक के विना ही उनकी ओर से वहस की। अरविन्द ने स्वीकार किया कि देशोद्धार के लिए मेरा सारा जीवन है। मैं इसके लिए सव कुछ करता हूँ। यदि यही अपराध है तो मैं दण्डनीय हूँ। चित्तरंजन ने उनकी ओर से कहा—

आद्योपान्तं वाच्यमेकं मर्मतदास्नां राजद्रोहवार्ता विदूरे।
देशप्रेमोद्‌वुद्धभावं विशुद्धं कोऽपि द्रोहः स्प्रष्टुमेनं न शक्तः ॥

निवेदिता ने अरविन्द से वताया कि सरकार आपको दूसरे द्वीप या देश में ले जाना चाहती है। फिर लोगों का क्या होगा? अरविन्द वताते हैं कि भारत को स्वतन्त्र तो होना ही है। उसे प्रत्यक्ष रूप से स्वतन्त्र वनाने वाले तो दूसरे ही होंगे, पर निमित्त वन कर मैं भी रहूँगा। वे अन्त में पाण्डिचेरी जाकर वहाँ देश के अभ्युदय के लिए आवश्यक आध्यात्मिक आयोजन में निरत होने के लिए समुद्यत हो गये।

पंचम अङ्क में अरविन्द पाण्डिचेरी में हैं। उनसे फरासीसी महिला मीरा २९ मार्च १९१४ ई० को मिलती हैं। उन्होंने स्वप्न में योगी अरविन्द को गुरु रूप में देखकर उनको ढूँढ़ती हुई भारत में उन्हें पाया था।

उन्होंने अपनी कथा वताई—

हित्वा जन्मभुवं विहाय जननीमुत्सृज्य वन्धूंस्तथा
त्वामन्वेष्टुमुपागतं ननु मया दूरान्तरं भारतम्।
देशाद् देशमहो पुरात् पुरमिमं मा भ्रामयन् भूयसा
स्वप्ने सन्निधिमागतः किमु भवान् दूरे दृशोर्वर्तते ॥ ५.१२

मीरा ने उनसे प्रश्न किया कि क्या आपने भगवान् को देखा है? अरविन्द ने कहा कि कई वर्ष पहले अलिपुर के सेण्ट्रल जेल में देखा था। आगे पूछने पर अरविन्द ने वताया कि पुनः राजनीति के क्षेत्र में नहीं जाना चाहता, क्योंकि—

न हि शाश्वतदिव्यजीवनादपरं ननु करणीयमस्ति मे। ५.८९

१९२३ ई० में एक दिन चित्तरंजनदास ने अरविन्द से कहा कि आप पुनः राजनीति में स्वराज-पार्टी का नेतृत्व करें। अरविन्द ने उत्तर दिया—

न मनो विषयान्तरमिच्छति। ५.९५

१९४७ ई० के १५ अगस्त के दिन भारत स्वतन्त्र हुआ। अरविन्द को अपने जीवन की अभीष्टतम उपलब्धि हो गई। वे देश के खण्डित होने से खिन्न थे। नेपथ्य से भक्तों ने गाया—

जन्मभूमि-भारतजननि गंगागोदावरीनर्मदाकावेरी-पुण्यधारा-पीयूषिणी
दशभुजविलासिनी दशदिशोल्लासिनी देववन्द्य-भारतजननी।

मीरा माता ने भारत-विजयपताका-धर्मपताका को श्री अरविन्द के आश्रम-कुटीर पर फहरा दिया।

शिल्प

यतीन्द्र ने इस नाटक के प्रथम अङ्क के द्वितीय दृश्य का आरम्भ अरविन्द की एकोक्ति से किया है।[1] वह रङ्गमंच पर अकेले ही है। अपनी एकोक्ति मे वह भारत माता की वन्दना करता है, अपने जीवन के प्रासंगिक पूर्ववृत्त की सूचना संक्षेप मे देता है कि कैसे सात वर्ष का ही मैं ब्रिटेन मे आया, १८ वर्ष की अवस्था में आई० सी० एस्० होते-होते बचा, ब्रिटिश-नियोग के प्रति अनास्था प्रकट करता है और अपनी हृदय की आकाक्षा प्रकट करता है कि—

> न्याय्ये वर्त्मन्यथ च पुनरुज्जीवने धर्ममार्गे
> संस्थाप्यैनां मम जनिभुवं कुर्वता च स्वतन्त्राम्।
> निर्वास्यास्याः प्रबलविहितं पीडनं दुर्बलानां
> पूर्तिं नेया पितुरपि मया वासनेयं सुतीव्रा॥ १.११

अन्त में वह अपने व्यक्तित्व के विकास की दिशा का प्ररोचन करता है। द्वितीय अङ्क का प्रथम दृश्य भी अरविन्द की सूचनात्मक एकोक्ति से आरम्भ होता है। चतुर्थ अङ्क के प्रथम दृश्य का आरम्भ भी अरविन्द की एकोक्ति से होता है, जिसमें वे माणिकतला और मुजफ्फरपुर की हत्याओं की सूचना देते हैं।

यतीन्द्र के नाटक भावुकता-प्रधान हैं। वे कथावस्तु को स्वल्प महत्त्व देते हुए कतिपय भावो को प्रेक्षकों और पाठको मे भरने के लिए तदनुकूल संवादों का जैसे-तैसे समाविष्ट कर देने मे निपुण हैं। यथा, मातृ-पूजा को महिमा प्रदान करने के लिए भारत-हृदयारविन्द के पहले अंक मे पुनः पुनः हेरफेर कर वही बातें कही गई हैं।

रूपक मे यत्र-तत्र स्तोत्र तथा गीतो का समावेश प्रचुर मात्रा में है। चतुर्थ अङ्क के प्रथम दृश्य मे नेपथ्य से भक्त कवि का गीत है—[2]

> नेत्रयुगल-गलदविरल-सलिलसिक्तवासा।
> ह्रीणवदनविदितदीन-भावमलिनहासा॥ ४.५३

अङ्क-विभाजन की रीति शास्त्रीय नही हैं। पहले तो प्रस्तावना को प्रथम अङ्क मे रखना अशास्त्रीय है। इस रूपक मे इसे प्रथम अंक का प्रथम दृश्य लिखा गया है, जो सर्वथा असमीचीन है। शेष अङ्कों का भी आवश्यकतानुसार दृश्यों में विभाजन किया गया है।

तृतीय अङ्क मे रगमंच पर मुष्टीमुष्टि जैसे युद्धात्मक कामो से अभिनय मे

---

१. प्रवेशक और विष्कम्भ को न रखकर एकोक्ति से उनका काम लेने का प्रयोग इनके रूपकों मे सफल है।

२. भक्त गायक को चतुर्थ अङ्क के तृतीय दृश्य में श्रान्त पुलिसों के विनोद के लिये गाना पड़ता है—जननी मे भारतभूमिः' इत्यादि।

विशेष रुचि उत्पन्न कराई गई है। अभिरुचि के लिए हास्य-सर्जन में यतीन्द्र निपुण हैं। जब अरविन्द को वन्दी बनाना था तो क्रेगान ने इन्हें जीर्ण वस्त्र पहने देख कर कहा—यह कोई और है। लन्दन में शिक्षा पाया हुआ ऐसा नहीं हो सकता। वह अरविन्द को उनका ही नौकर समझ कर उनसे पूछता है—कुत्रासौ तव प्रभुः? तब तो अरविन्द को कहना पड़ा—मैं ही अरविन्द भृत्य हूँ भारतमाता का। वह अंगरेज भभूत को बारूद समझता है। इसी अंक के नर्टन मिष्टान्न का अर्थ बम बताते हैं तो चित्तरंजन कहते हैं कि नर्टनमहोदयः श्रीरामपुरमहाविद्यालयं गत्वा सुचिरं वंगभाषाभ्यासं करोतु।

अङ्क भाग में सूच्य और दृश्य का भेद यतीन्द्र की दृष्टि में नहीं है। पंचम अङ्क में अरविन्द मीरा से बताते हैं कि मेरी योग-प्रवणता कैसे उद्‌बुद्ध हुई।

डा० सतकड़ी मुखर्जी ने इसकी प्रस्तावना में कहा है कि—

Reader will at once be charmed by the simplicity and sweetness of language, depth of thought, excellence of the plot—and above all, the spirit of intense devotion, permeating the whole work, raising it to the level of an Arghya or an offering from a devotee.

वास्तव में यतीन्द्र ने अपने नाटकों के द्वारा पाठकों और प्रेक्षकों को एक ऐसे अभिनय-जगत् में पहुँचा दिया है, जो अन्यत्र विरल है।

भास्करोदय

पन्द्रह अङ्कों के भास्करोदय नाटक में कवीन्द्र रवीन्द्र की प्रारम्भिक विकासमयी जीवन-गाथा है। १९६० ई० में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शतवार्षिकी के अवसर पर इसका प्रणयन और मंचन सारे भारत में ही नहीं, विदेशों में भी हुआ। भास्कर-भास नाम से रवीन्द्र पर तीन नाटक लिखे गये—भास्करोदय में २५ वर्ष तक की घटनाओं की चर्चा करते हुए; भारत-भास्कर में ५० वर्ष तक तथा तीसरे नाटक भुवन-भास्कर में पचास वर्ष से ऊपर की अवस्था की घटनाओं को लेते हुए।[1]

कवि यतीन्द्र को गौरव था कि हनुमन्नाटक जैसे महानाटक के पश्चात् वे पहले नाटककार हैं, जिनकी लेखनी महानाटक लिखने में व्यापृत हुई है। इसके पहले ही उन्होंने दो और महानाटक आनन्दराध तथा दीनदास-रघुनाथ लिखे थे।

भारत-भास्कर का प्रथम अभिनय १४ अप्रैल १९६१ ई० में महाजाति-सदन में प्राच्यवाणी के १८ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर हुआ था। वहाँ पतञ्जलि शास्त्री सुप्रीमकोर्ट के प्रधान प्राड्विवाक तथा पी० बी० काने भी दर्शक थे। उसी सदन में रवीन्द्र की शतवार्षिकी के अवसर पर ८ मई १९६१ को इसका पुनः अभिनय हुआ।

संस्कृत में नाटक के नाम से नटी काँप जाती है। सूत्रधार का कहना है कि संस्कृत भाषा तो रवीन्द्र के लिए प्राण-स्वरूप रही है। रवीन्द्र का कहना था कि—

१. इनमें से द्वितीय और तृतीय नाटक १९६१ ई० में प्रेस में थे।

भारतवर्षस्य शाश्वतवित्तस्याश्रयः संस्कृत-भाषा।
भास्करोदय चरितात्मक नाटक है।

कथावस्तु

प्रथम अङ्क की दृश्यस्थली कलकत्ते के उपनगर जोडासाँको मे महर्षि देवेन्द्रनाथ का भवन है। १८५४ ई० मे अखण्डानन्द जगत् मे विचरण करने वाले महर्षि देवेन्द्रनाथ के कोषाध्यक्ष ने कहा कि आपके द्वारा संचालित व्यवसाय-प्रतिष्ठान के बैठ जाने से १४००० मुद्रा देना है। उन्हे धन न देने पर शेरिफ के पास जाना पड़ा। द्वितीय अङ्क की दृश्यस्थली कलकत्ते मे पाथुरिया घाटा-मण्डल में प्रसन्नकुमार ठाकुर का घर है। १८५४ ई० में देवेन्द्रनाथ के चाचा प्रसन्नकुमार ठाकुर देवेन्द्र से कहते है कि लौकिक व्यवहार अपनाओ। उनका मत था कि पिता द्वारकानाथ के लाखो रुपये का ऋण चुकता करना व्यर्थ है। १४००० रुपये का ऋण बिहार या उडीसा प्रान्त की भूमि बेंच कर दे डालो। देवेन्द्र ने कहा कि वह भूमि मेरी नहीं रह गई है। असत्य पथ पर चलते हुए मैं जीवन-यापन नही करना चाहता हूँ। मेरे लिए सत्य ही जीवन है।

तृतीय अंक मे जोडासाँको का महर्षि-भवन दृश्यस्थली है। रवीन्द्र आठ वर्ष के है। रवीन्द्र को प्रकृति से प्रेम है। वे खिड़की से देखते है कि सारी प्रकृति ही मैत्री-भाव से मुझे सान्निध्य प्रदान कर रही है—

वटद्रुम जटालस्त्वं छायामायावपुर्धरः।
अन्तस्ते राजते कोऽसौ विभुर्विश्वविमोहनः॥ ३.१९

उन्होने गोपालिका तारा से कहा—

पुष्करिणी-दर्पणेऽहं पश्यामि विश्वचित्रम्।

गोपालिनी ने उन्हे आशीर्वाद दिया—

त्वं विश्वविजयी भव।

चतुर्थ अङ्क में बोलपुर का सप्तपर्णद्रुम दृश्य-स्थली है। १८७२ ई० में देवेन्द्र रवीन्द्र के साथ बोलपुर गये। वहाँ उग्र और क्षमृद कलकत्ते का वर्णन करते हैं—

अथवा यथेष्टविक्रान्ताः पौराणां वधसाधने
हयारूढा नितम्बिन्य कृतान्तपरिचारिकाः॥
अन्तर्विषं बहिः क्षौद्रं हृदयं दधतश्चिरम्
यत्र पौरा वसन्त्याहो सा पुरी विस्मयावहा॥

वे चर्चा करते हैं कि ठाकुर के घर पर मिश्रनाट्य-प्रयोजना चल रही है।

पंचम अंक में रवीन्द्र परिवार की, विशेषत स्त्रियों की, शैक्षणिक प्रवृत्ति और सुसंस्कृति का संवादात्मक परिचय है। इसमे रवीन्द्र का गीत है—

खेलदिन्दिर भुवनमन्दिरं विन्दति तनयो वदति सुन्दरम्।
जननि तत्र ते कृपा विजयते स्मरति क्षणं ते हृदयकन्दरम्॥

षष्ठ अङ्क में चैत्रमेला के एकादश अधिवेशन में रवीन्द्र ने गाया दिल्ली-दरबार-पद्य—

पश्यसि न भारतसागर भो हिमाद्रे पश्य कातरम्।
प्रलयकालनिविडान्धकारो भारतभालमावृणोति गाढम् ॥ आदि

रवीन्द्र के भाई सत्येन्द्रनाथ, आई० सी० एस्० ने गाया—

सम्मिलित-भारत-सन्ताना एकता नमन प्राणा
गायत भारतयशोगानम्।
भारतभूमितुल्यं कतमत् स्थानम् ?
कोऽद्रिर्हिमाद्रिसमानः ॥
फलवती वसुमती स्रोतस्वती पुण्यवती
शतखनी रत्ननिदानम् ॥ इत्यादि

सप्तम अंक में रवीन्द्र-परिवार वंगभाषा में भारती-पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ करता है। उसकी आदर्श प्रवृत्ति है—

देवीयं भारतीवाणी सर्वशुक्ला मनोरमा।
तमिस्रं कुरुतां दूरे देदीप्यतां मधुत्विषा ॥

अष्टम अंक में रवीन्द्र की भेंट कविवर विहारीलाल से होती है। विहारी ने रवीन्द्र की प्रवृत्तियों की प्रशंसा में कहा—

वासन्तिकः प्रतिनवः कुसुमप्रकाशः सद्यः प्रवाहिततटिनीमदमत्तहर्षः।
वर्षानतिक्रमण-कोमलजीवशात्रः प्राभातिकश्च पवनस्तुलनाविहीनः ॥

नवम अङ्क में १८७९ ई० में रवीन्द्र लन्दन में डॉ० स्काट के घर में रहकर विद्यार्थी जीवन विताते हैं। वे उस परिवार में घुलमिल गये थे। श्रीमती स्कॉट में वे अपनी ही माता का दर्शन करते थे। रवीन्द्र उनको भारतीय संगीत सुनाते थे। यथा,

गोलापपुष्पमास्ते प्रस्फुटितं मधुप मा मा तत्र गच्छ।
पुष्पमधुन आहरणव्रती कण्टकाघातं मा लभस्व ॥ ९.१०७

दशम अङ्क में २० वर्षीय रवीन्द्र पुनः भारत में हैं। घर में रवीन्द्र की वाल्मीकि-प्रतिभा नामक गीत-नाट्यकृति का अभिनय होता है। रवीन्द्रनाथ ने इस कृति से एक गीत गाया है—

श्मामे त्वां त्यक्त्वा चलामि मातः
प्रस्तर-कन्यासि प्रस्तरोऽविदित्वा त्वामाह्वयं मातः।
छलधरा दीर्घकाल-प्रस्तराकारमकरोर्मां
स्वमातरं दृष्ट्वाद्याहं नयनजलैर्गलितोऽतः ॥ ११.१२४

१८८२ ई० में कलकत्ते में रमेशचन्द्रदत्त के घर पर रवीन्द्र और वङ्किमचन्द्र हैं। रमेशचन्द्र की कन्या के विवाह के अवसर पर रवीन्द्रनाथ ने सान्ध्य-संगीत गाया। प्रसन्न होकर वंकिम बाबू ने अपनी माला रवीन्द्र के गले में पहना दी। उन्होंने कहा—

सान्ध्यगीतं तरुणकविना निर्मितं यस्त्वयेदं
कुत्र तस्मात् कविपरिषदि स्वागतं ते रवेऽहम् ।
एतस्मादप्यधिकरुचिरभावरम्यं प्रभात-
संगीतं संग्रथितुमनया मालया त्वां ब्रवीमि ॥

द्वादश अंक में १८८२ ई० में रवीन्द्र ज्योतिरिन्द्रनाथ के घर पर हैं। उन्होंने प्रभात-संगीत की रचना पूरी कर ली थी। वे प्रभात-सौन्दर्य का राग आलापते हैं—

प्रभातेऽद्यतने दिनमणिकरः कथं प्रविष्टो मयि प्राणपुष्पशरः
कथं प्रविशति गुहान्धकारे प्रभातविहगगानम् ।
न जाने कथं दीर्घकालान्तरे प्राणानां नु जागरणम् ॥ १२.१४२

त्रयोदश अंक में १८८३ ई० में रवीन्द्र की काव्य-रचना प्रकृति-प्रतिशोध का परिचय है। इसमें रवीन्द्र का समुद्र-वर्णन है—

रत्नाकरः समुद्रोऽसौ दारिद्र्यं वरयन् स्वयम् ।
क्षारजर्जरितात्मा भोस्तडागेभ्यो ददन्मधु ॥ १३.१५७

चतुर्दश अंक मे महर्षि-भवन का दृश्य है। १८८६ ई० में ज्ञानदानन्दिनी ने बालक नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रवर्तित किया। रवीन्द्रनाथ ने इसके लिए स्वस्त्ययन किया—

जीवताद् बालको नित्यं मधुक्रीडापरायणः ।
नक्तन्दिवं मधुस्रावि गानं तस्य मनोहरम् ॥

पंचदश अङ्क में १८८६ ई० में महर्षि देवेन्द्रनाथ का चुचुड़ा का भवन दृश्य है। महर्षि ने रवीन्द्र से कहा कि स्वरचित ब्रह्मोत्सव गीत गाओ। रवीन्द्र ने गाया—

निरीक्षणे नालं नयनयुगलं वर्तसे नयने नयने ।
ज्ञातुं नालं हृदयं चंचलं हृदये राजसे गोपने ।
मनोऽविरतं वासना-विवशमुन्मत्तसमं धावति चतुर्दिशं
त्वं स्थिरनयनो मर्मणि सततं जागर्षि शयने स्वपने ॥ १५.१६०

महर्षि ने इस गीत पर रवीन्द्र को ५०० रुपयों का पुरस्कार दिया।[1]

शिल्प

रवीन्द्रनाथ के समग्र जीवन का चित्रण करने में सभी घटनाओं को आद्यन्त अथ से इति तक देना असम्भव था। उनको प्रायः सर्वत्र अंशतः ही दिया गया है। केवल इसी नाटक में ही नहीं, अन्य नाटकों में भी यतीन्द्र किसी घटना या व्यक्ति के विषय में कुछ कह कर उसे वहीं छोड़ देते हैं और प्रेक्षक और पाठक आगे क्या हुआ—इस जिज्ञासा में डूबता-इतराता रहता है, जो कभी पूरी नहीं होती।

रङ्गपीठ पर कोई उच्चकोटि का या नायक कोटि का पात्र सदा होना ही

---

१. वंगभाषा मे गीत है—नयन तोमारे पायना देखिते रयेछ नयने नयने' इत्यादि।

चाहिए, यतीन्द्र को यह मान्य नहीं। प्रवेशक और विष्कम्भक वे रखते नहीं। आद्यन्त अंक में ही केवल डगुरु और झमरु दो पात्र बातें करते हैं।

यतीन्द्र प्राकृत का प्रयोग अपने रूपकों में नहीं करते वे ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग पात्रानुसार करते हैं। उनके डगुरु और झमरु नाचते-गाते हैं।

क्रोकायते ददरी गोंगायते शूकरी कुक्वरी स्पर्धते कर्णवेदनम्।
कुरु चारु कूजनं सप्रेमनर्तनं विहग पूर्णमधुवर्पणम्॥

कतिपय अंकों की कथा की भूमिका एकोक्ति-रूप गीतों से किया गया है। पन्द्रहवें अङ्क के आरम्भ में बाउल की सूर्य-स्तुति इसी कोटि में आती है। वह गाता है—

अहो मम सूर्यः शोभनो मम जीवनान्दनः
मम धर्मसन्दीपनः सकलज्ञानहरणो
मम रविर्विमोहनः॥ इत्यादि—

एकोक्तियों से अर्थोपक्षेपक का काम लिया गया है। पंचम अङ्क के आरम्भ में रंगमंच पर अकेली सारदा देवी की डेढ़ पृष्ठ की एकोक्ति है, जिसमें वे अपनी स्वाध्याय में अभिरुचि, पुत्रादिकों के लिए स्वस्तिकामना, उनकी सुसंस्कृति और परस्पर प्रेम-व्यवहार की चर्चा करती हैं। यथा—

नहि खलु सुतहीना वस्तुगत्या सुता ते
न तु विगुणसुतानां मातुरस्तीह शान्तिः।
तव चरणसरोजे प्रार्थनेयं ततो मे
गुणिगणगणनायामुत्तमाः स्युः सुता मे॥

बारहवें अङ्क के आरम्भ में रवीन्द्र की रमणीय लम्बी एकोक्ति डेढ़ पृष्ठों की है। वे इसमें प्राभातिकी सुषमा और आनन्द-रूप भूमा का संगीत सुनाते हैं।

प्रयोग में प्रेक्षकों को मनोविनोद प्रदान करना यतीन्द्र के नाटकों की विशेषता है। उन्हें हँसाने के लिए पात्रों को भी हँसाना है। उदाहरण के लिए सप्तम अङ्क में अक्षय का गीत लीजिये—

अक्षयः करद्वयेन पात्रमाहत्योच्चैर्गायति
हा हा हा हि हि हि, हो हो हो हि हि हि।
आनन्दभोजनं परमसुशोभनं केनापि कारणेन नोपेक्षणीयम्।
प्रतिवृक्षं विकसिता लजेन्स-लता सदा हिता।
शण्पेषु दृश्यते दलं चकलेटा पराद्ध्यम्। इत्यादि।

भारत-विवेक

यतीन्द्र ने भारतविवेक की रचना विवेकानन्द के व्यक्तित्व के विकास विषय पर की।[1] इसी का उत्तर भाग विश्वविवेक इस क्रम में दूसरा नाटक है, जिसमें

---

१. १९६३ ई० में प्राच्यवाणी से प्रकाशित।

विवेकानन्द का भारतोत्तर जीवन-चरित है। भारतविवेक की रचना १९६१ ई० मे विवेकानन्द की जन्मशताब्दी के अवसर पर हुई थी। इसका अभिनय प्राच्य-वाणी की नाट्य-समिति के द्वारा अनेक स्थलों पर वारवार हुआ है। सर्वप्रथम अभिनय २ नवम्बर १९६२ ई० मे विश्वरूप थियेटर मे हुआ। इसी वर्ष गोरखपुर में अखिल भारतीय वगाली साहित्य-समिति के द्वारा इसका अभिनय आयोजित हुआ। बंगाल के विविध नगरो मे और दिल्ली मे १९६३ ई० मे वारवार अभिनय हुए। पाण्डिचेरी मे अरविन्दाश्रम मे विशेष अभिनय हुआ।

स्वामी सवुद्धानन्द ने इसे जीवनचरितात्मक (biographical) नाटक कहा है और इसकी विशेषता बताई है कि इसमे ऐतिहासिकता के साथ ही नाट्यकला का वैपुल्य विशेष है।

विवेकानन्द का जन्म १८६२ ई० मे २ मई को हुआ था।

कथावस्तु

१८८१ ई० मे रामकृष्ण प्रथम बार तरुण गायक नरेन्द्रनाथ से कलकत्ते मे सुरेन्द्रनाथ मित्र के घर पर मिले। उन्हें देखते ही वे पहचान गये कि मेरी साधना का प्रचार यही शिष्य करेगा। उनके कहने पर नरेन्द्र ने गाया—

मनो निभृतं पश्य श्यामाजननीम्।
श्मशानवासनी नृमुण्डमालिनी हिमाचलनन्दिनी विश्वपालिनीम्।
मुहुः सौदामिनी-विलासिनी नित्यविलोलाट्टहासिनीं
पुण्यकोटिप्रसादनीं शिवाकोटिह्लादिनी
पादाक्रान्तशिवां शिवाकोटिह्लादिनीम्।
मनो मेऽहर्निशं पश्य जगद्धात्री
भवबन्धहारिणीशक्तिस्वरूपिणी जननीम्।

रामकृष्ण ने यह गीत सुनकर कहा—अपूर्वस्तव कण्ठस्वरः।

वे माता की स्तुति गाकर समाधिस्थ हो गये।

द्वितीय दृश्य में दक्षिणेश्वर के मन्दिर में सुरेन्द्रनाथ मित्र नरेन्द्र के साथ हैं। रामकृष्ण ने नरेन्द्र से गाने के लिए कहा। नरेन्द्र ने गाया

मनश्चल स्वीयनिकेतनम्
संसार-विदेशे वैदेशिकवेशे भ्रमसि कथमकारणम् ॥ २.३७
विषयपंचक तथा भूतगणः सर्वेऽनात्मीयाः कोऽपि न निजजनः।
परप्रेम्णा कथं जातमचेनन विस्मरस्यात्मजनम् ॥ २.३८

गीत सुनकर रामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। आत्मस्थ होने पर उन्होने नरेन्द्र को अनन्यतम बताया।

उस दिन रामकृष्ण से नरेन्द्र की बहस छिड़ गई। रामकृष्ण ने उसके प्रति जितना ही अपना प्रेम बताया, इतना ही वह उन्हें उपेक्षा दिखाने लगा। रामकृष्ण ने पुनः माता से पूछा कि नरेन्द्र की वास्तविकता क्या है? फिर तो माता से प्रकाश पाकर उन्होने नरेन्द्र को बताया—' . ''

सत्यं नारायणस्त्वं शिव इति सुतरामाद्रिये त्वामहं च।
स्नेहस्त्वय्येष मेयः स च तव शिवताहेतुकः सत्यमेव ॥

तुम एक और गीत सुनाओ। नरेन्द्र ने गाया—

जननि मम त्वं हि तारा त्रिगुणधरासि च परात्परा।
जानामि त्वां मातर्दीनदयामयि दुर्गमेऽसि त्वं दुःखहरा ॥ २.४०

रामकृष्ण सुनकर आनन्द-निर्भर होकर नृत्य करने लगे। वे नरेन्द्र के प्रेम में अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोने लगे। उन्होंने कहा कि तुम शिव हो। उन्होंने उसे मक्खन और मिठाई दी और उन्हें खिलाया।

एक दिन सहसा आकर नरेन्द्र ने रामकृष्ण से पूछा—क्या आपने भगवान् को देखा है? रामकृष्ण ने कहा—मैंने भगवान् को वैसे ही प्रत्यक्ष देखा है, जैसे तुम्हें देख रहा हूँ, पर ईश्वर को पाने के लिए ईश्वर की अकुण्ठ सेवा करनी होगी। यह सब सुनकर नरेन्द्र ने गाया—

त्वं त्रिभुवननाथः अहं भिक्षुकोऽनाथः
कथं वदिष्यामि त्वाम् एहि रे मम हृदये ॥ ३.५४
हृदय-कुटीर-द्वारं निरर्गलमनिवारं
सकृपमागत्य सकृद् हृदयं कुरु शीतलम् ॥ ३.५५

चतुर्थ दृश्य में रामकृष्ण के कमरे में नरेन्द्र है। रामकृष्ण के प्रति नरेन्द्र की दृढासक्ति है। वे रामकृष्ण का बनकर रहना चाहते हैं, किन्तु उनके सामने अपने दैन्याभिभूत परिवार का प्रश्न है—

दैन्यसागरमग्नस्य सचिन्तस्य निरन्तरम्।
तप्ताश्रुभिः कुटुम्बानां निर्वाणं मे कथं भवेत् ॥ ४६०.

यह जानकर रामकृष्ण ने कहा कि माँ के आसरे रहो। सब ठीक होगा। नरेन्द्र ने कहा कि मेरी ओर से आप ही माँ से कहें। रामकृष्ण ने ऐसा किया। नरेन्द्र ने भी माँ के सामने जाकर अपना कौटुम्बिक वैपम्य दूर करने की प्रार्थना के स्थान पर माँगा—

जननि, विवेकं वैराग्यं ज्ञानं भक्ति च मह्यं देहि।

रामकृष्ण ने कहा कि मेरी प्रार्थना पर माँ ने ऐसा कर दिया कि तुम्हारे परिवार को अन्नकष्ट नहीं रहेगा।

पंचम दृश्य में नरेन्द्र के विवाह की वार्ता है। वह १०,००० रुपये की प्राप्ति वाले विवाह के लिए उद्यत नहीं है।

दृश्यान्तर में रामकृष्ण ने बताया कि जैसे कटहल काटने के लिए तेल की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही निरासक्ति-तैल संसार का भोग करने के लिए अपने हाथ में लेप करना चाहिए। तभी आसक्ति निश्चित ही दूर चली जायेगी।

षष्ठ दृश्य रामकृष्ण का मरण बताने के लिए है। वे कहते हैं—

मातृवक्ष एव सन्तानानां चिरसुखस्थानम्।

उन्होंने नरेन्द्र से बताया कि मैं रामकृष्ण का अवतार हूँ। नरेन्द्र ने गाया—

जीवन-नदी मम वहति क्षुरधारा मध्यपथे प्राणतरणी विकर्णधारा।
ऊर्मिमाला दोललोला झञ्झासारा नीलकीला कूलजल-लुप्तपारा ॥
सुधा क्षरतु लोकेऽतुलाऽपारा दुःखदैन्य-पारावार-पारकरा

सप्तम दृश्य में सारदामणि से नरेन्द्र भारत-भ्रमण की अनुमति लेते हैं कि गुरुदेव के संकल्प को पूरा करना है। माता ने आज्ञा दी—श्रीठक्कुरस्तव मनोरथमवश्यमेव परिपूरयिष्यति।

अष्टम दृश्य में भारत-भ्रमण करते हुए स्वामी (नरेन्द्र) अलवर के महाराज से मिलते हैं। स्वामी जी ने कीर्तन किया।

महाराज ने स्वामी जी से पूछा कि आप लोकैश्वर्य-प्रसक्त होकर सुखी जीवन बिता सकते थे। क्यों संन्यासी बने ? स्वामी जी ने उत्तर दिया—

विहाय कार्याणि नृपोचितानि महाङ्गलैस्त्वं मृगयाविलासी।
अटाव्यसे किं नियतं समन्ताद् रसेन पानाशनयोः प्रमत्तः॥

फिर महाराज ने प्रश्न किया कि मूर्तिपूजा में मेरा विश्वास नहीं है। स्वामी जी ने कहा कि दीवान जी, आप राजा के सामने लटके चित्र पर थूकें। जब कोई थूकने पर तैयार नहीं हुआ तो स्वामी जी ने कहा कि जैसे चित्रगत राजा सम्माननीय है, वैसे ही मूर्तिगत देव भी पूजनीय है। यथा—

सर्वेऽपि उपासते परब्रह्मसत्ताम्। ब्रह्म भक्तभावानुक्रमेण स्वस्वरूपं व्यनक्ति। भक्ताः प्रस्तरधातुप्रभृतिमूर्तिं दृष्ट्वा स्मरन्ति चिन्मयेष्टदेवताम्। तत एव भक्ता मूर्तिं पूजयन्ति।

नवम दृश्य में स्वामीजी गुजरात में लिम्बडिनगर में साधु-निवास पर जा पहुँचते हैं। साधु भ्रष्ट थे। वहाँ स्त्रियों का प्रेमपूर्वक आना-जाना होता था। उन्होंने दो दिन रहकर शीघ्र वहाँ से भागने का विचार किया, पर उन्होंने देखा कि जिस कमरे में मैं हूँ वह बाहर से बन्द कर दिया गया है। आश्रमाध्यक्ष ने उन्हें बताया कि आप जैसे ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्यकी आधी रात के समय आज बलि दी जायेगी। बस एक ही काम आप को करना है कि ब्रह्मचर्य व्रत को खण्डित करना पड़ेगा। स्वामीजी को क्रोध आया। उन्होंने खोटी-खरी उसे सुनाई तो उसने कहा कि अब आप सर्वथा हमारे वश में है। आज सन्ध्या तक ब्रह्मचर्य खण्डन करने के लिए तैयार हो जायें, नहीं तो प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। यह कह कर वह चलता बना। तभी एक बालक वहाँ छिप कर आया। उसने पूछा कि आदेश दें। आपके लिए क्या करना है ? स्वामीजी ने कहा कि लिम्बडि-महाराज को मेरा सन्देश दे आओ। वह लिखित सन्देश ले गया। उनको निकालने के लिए राजा के भेजे दो प्रहरी आये और उन्हें बचाया।

दशम दृश्य में स्वामी जी विवेकानन्द-शिला पर पहुँचते हैं। वहीं कन्याकुमारी का मन्दिर था। स्वामी जी ने उसकी स्तुति की—

कन्या कुमारीति मनोज्ञनाम्ना मनोज्ञमूर्त्येह विभाति माता।
उद्गच्छता वाष्पभरेण कुण्ठो मामेति मे व्याहरतोऽत्र कण्ठः ॥

वहीं मछुए का गीत सुनकर उन्हें प्रतिभान हुआ कि एक ओर भारत में करोड़ों दीन-हीन लोग भूखों काल-कवलित होते हैं और दूसरी ओर प्रवल–विलासोन्मत्त लोग हैं। उन्हें भारतीय समाज की वे सारी विषमतायें स्पष्ट हुईं, जिससे लोग अपना धर्म छोड़ देते हैं या विदेशी सभ्यता को अपनाते हैं। एक कंकाल-मात्र धीवर वालक उनसे मिलता है और भिक्षा माँगता है—यदि कुछ भोज्य हो तो मुझे दें। स्वामी जी ने जो प्रसाद उसे दिया, उसे 'भूखे माता-पिता को खिला कर खाऊँगा' यह कह कर उसने ग्रहण किया। यह सब देख कर स्वामी जी की एकोक्ति है—

अहो ईदृशानि कति कति न पुण्यचित्राण्यखण्डसत्यव्यंजकानि मम दृष्टिपथं समागतानि। मम भारतवर्ष, सभ्यताकृष्टिसर्वोच्चशृंगारूढस्य तवाद्य कथमीदृशी दशा।

(पुनर्ध्यायन्)

अहो लक्ष-लक्ष-संन्यासिनो वयं भारतवर्षस्य कठोरश्रमलब्धान्नपुष्टा देशवासिनां हितार्थं किं कुर्मः। अपि वयं दर्शन-शास्त्र-जटिल-तथ्यमात्रोद्गरण-परा एतान् न वंचयामः। इत्यादि

उन्हें भारतोद्धार के लिए अर्थ की चिन्ता व्यापती गई। उन्होंने विदेशों में जाकर सहायता की भिक्षा लेने का कार्यक्रम बनाया।

एकादश दृश्य में स्वामी जी मद्रास में पहुँचते हैं। वहाँ मन्मथभट्टाचार्य के घर पर स्वप्न में उन्हें रामकृष्ण की अनुमति विदेश में जाकर भारतीय संस्कृति का सन्देश-प्रसारण करने के लिए मिल जाती है। शिकागो में धर्म-महासम्मेलन के अधिवेशन में हिन्दुप्रतिनिधि रूप में उनको उपस्थित होना है। धन कहाँ से आये? यह समस्या थी। माता सारदामणि की अनुमति भी पत्र द्वारा प्राप्त हो गई।

द्वादश दृश्य में स्वामी जी खेतडि नरेश से १८९३ ई० में मिले। राजा को स्वामी जी के आशीर्वाद से पुत्र हुआ था। उसके जन्मोत्सव में स्वामी जी को देखकर राजा प्रहृष्ट हुआ। नर्तकी ने दूर से ही स्वामी जी के लिए स्वागत गान किया—

यमुनाहृदयशोभि पुण्यमधुर-जलं
दूषितखातवाहि यदिदं समलं
गंगास्रोतसि जातं पवित्रं सकलं
हर हर दोषान् मम सर्वदोषहर ॥ १२. २१८
न भव देव मम दोषगणनतत्परो
भव सत्यं त्वं समदर्शि-नामधरः ॥

स्वामी जी ने राजा से अमेरिका जाने की अनुमति ली। इस अवसर पर राजा ने उनसे प्रार्थना की कि आप अब विवेकानन्द नाम से विख्यात हों। स्वामीजी ने यह प्रार्थना मान ली।

शिल्प

भारतविवेक अंकों के स्थान पर दृश्यों में विभक्त है। इसमें १२ दृश्य हैं। पंचम दृश्य में विष्कम्भक और दृश्यान्तर हैं।

यतीन्द्र के रूपकों में लोकरुचि-परायण संगीत और नृत्य का विपुल सम्भार है। इसके प्रथम दृश्य में रामकृष्ण का संगीत है और फिर आनन्द-विभोर होकर वे नृत्य करते हैं। रामकृष्ण के प्रीत्यर्थ नरेन्द्र का जननी-विषयक गीत है। फिर रामकृष्ण का गीत और अन्त में भक्त गायक का गीत है। दशम दृश्य में मछुए का गीत रमणीय है।[1]

विवेकानन्द-सम्बन्धी नाटक में भी हास्य की सृष्टि यतीन्द्र ने की है। उनके विवाह के विषय में नापित घटक और मालिक की बातचीत इसी प्रयोजन से प्रवर्तित है। नवम दृश्य में हास्य के लिए एक पात्र कहता है—

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियश्चैव विभूषणम्।
स्त्रीसंगिना सदा भाव्यं साधना मुक्तकामिना ॥ ६.१५
ओइम् हुं हुं खं खं वज्रमध्ये ढं ढं।
वज्रमणौ हुंहुं। चट चटाः चट् चट् फटा फट् ॥

छठें दृश्य के आरम्भ में रामकृष्ण की एकोक्ति (Soliloquy) है।[2] इसमें सूचना दी गई है कि नरेन्द्र को मैंने अपनी सारी शक्ति दे दी है। शिवावतार सदृश नरेन्द्र भविष्य में संसार को मेरा सांस्कृतिक सन्देश देगा। यह एकोक्ति सर्वथा अर्थोपक्षेपण करती है। नवम दृश्य का आरम्भ स्वामी जी की एकोक्ति से होता है, जब वे कमरे में अकेले बन्द हैं। इसमें वे अपने विषय में भूतकालीन सूचनायें देते हैं और उन कठिनाइयों की चर्चा करते हैं, जिनमें वे विपण्ण पड़े हैं, फिर भावी योजना बताते हैं। अन्त में भगवती की स्तुति करते हैं—

परमकरुणाखनिस्त्वमसि जननि सुधानिर्झरिणी भवाब्धितरणी।
विश्वविपत्तारिणी विषादहरणी रक्ष विकलधर्मं मां त्रिलोकीभरणी ॥

इसी दृश्य के बीच में पुनः उनकी एकोक्ति है, जब वे कमरे में अकेले रह जाते हैं। दशम दृश्य का आरम्भ स्वामी जी की उस श्रेष्ठ उक्ति से होता है, जो वे कन्याकुमारी में पहुँच कर भावविभोर होकर बोलते हैं। इस दृश्य का अन्त भी भारत-दुर्दशा-विषयक महत्वपूर्ण एकोक्ति से होता है। एकादश दृश्य का आरम्भ स्वामी जी की प्राभातिक एकोक्ति से होता है।

भारत-राजेन्द्र

भारत-राजेन्द्र नाटक में भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद का समग्र जीवन-चरित कथावस्तु है। राजेन्द्रप्रसाद कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षाओं

१. यतीन्द्र के शब्दों में—संगीतस्य मर्म ब्रह्म। तदेव मम चिरोपास्यं भवतु।
२. यतीन्द्र ने इसे स्वगत (aside) कहा है, जो अशुद्ध है।

में प्रथम स्थान प्राप्त करते हैं। उनके बड़े भाई उन्हें पढ़ने के लिए इंगलैण्ड भेजना चाहते थे, किन्तु कुटुम्ब के अन्य लोगों के असहमत होने के कारण वे विदेश न जा सके हैं। गान्धी जी के सम्पर्क में आकर वे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के सभी आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेते हैं। कारागार में उनके सच्चारित्र्य से सभी अधिकारी प्रभावित होते हैं। वे महात्मा गान्धी के साथ नमक-कानून भंग करते हैं और हिन्दु-मुसलमानों की एकता के लिए प्रयास करते हैं।

राजेन्द्र विश्वशान्ति सभा के अधिवेशन में सेण्टस्ट्रासवर्ग गये। सभास्थल को युद्ध-समर्थक दल के लोगों ने घेर लिया। वे कहते थे कि संसार दुर्बल नपुंसकों के लिए नहीं है। इस सभा में जो काला आदमी आया है, उसे समुचित शिक्षा देंगे। वे सभी राजेन्द्र पर आक्रमण करने के लिए उतावले थे। राजेन्द्र और उनके बचाने वाले डाक्टर स्टाण्डे नाथ और उनकी श्रीमती जी घायल हुए। राजेन्द्र के सिर से रक्तधारा प्रवाहित होने लगी। फिर भी उनके उत्तेजित न होने पर आक्रमणकारी उनसे प्रभावित हुए और उनकी चिकित्सा कराने के लिए उत्सुक हो गये। राजेन्द्र की दृष्टि में यह गान्धी-सिद्धान्त की विजय थी।

एक बार राजेन्द्रप्रसाद भागलपुर जिले के बिहपुर गाँव में गांजा की दुकान पर अन्य स्वयं सेवकों के साथ धरना दे रहे थे। पुलिसाध्यक्ष ने वहाँ आकर कहा कि यदि क्षण भर में आप लोग यहाँ से विगलित नहीं होते तो आप लोगों की मरम्मत होगी। पश्चात् राजेन्द्र पीटे गये। उनके साथी अब्दुलबारी हत होकर भूमि पर गिर पड़े।

राजेन्द्र छपरा जेल में रखे गये। वहाँ उन्हें देखने के लिए समागत जनता ने कोलाहल किया। कोई जेल की दीवाल फाँदने का प्रयास करता था। कोई जेल का द्वार तोड़ने लगा था। पुलिस के प्रहार से बहुत से लोग जर्जरित हुए। फिर तो हजारों लोग आ गये और पुलिसों को अपने प्राणों की आ पड़ी। काराध्यक्ष ने उत्तेजित भीड़ को शान्त करने के लिए राजेन्द्र को आगे किया। उनके अहिंसात्मक व्याख्यान को सुनकर सभी तदनुसार काम करने के लिए उनकी जय बोलते हुए चलते बने।

राजेन्द्र वार्धा में थे, जब उन्हें गान्धी जी की हत्या का समाचार मिला। तब तो वे रोने लगे।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बनते समय उन्हें अपने नेता गान्धी जी और भाई महेन्द्र प्रसाद का स्मरण पुनः पुनः हो रहा था। उन्होंने राष्ट्रपति बनने पर आभार प्रकट करने के लिए जो भाषण दिया, उससे प्रतीत होता है कि उनके शरीर के अणु-अणु में पूरा भारत परिव्याप्त था।

शिल्प

यतीन्द्र कुछ ऐसी बातें मानस-पटल पर अपने नाटकों के द्वारा प्रस्तुत कर देते हैं, जो अन्यत्र विरल हैं। यथा, कस्तूरबा का चूल्हा फूंकना—

फूत्कारशुष्करसना भसिताचिताङ्गी
चूल्लीमुखप्रसृतधूमसमाकुलास्या ।
दीप्यन्निमीलदवलोहितहर्षशोका
पर्याकुलास्ति जननी ज्वलनाय चुल्ल्याः ॥

सुभाष-सुभाष

यतीन्द्र के सुभाष-सुभाष में छः अंक हैं। इसमें उनके भारत में विद्यार्थी-जीवन के पश्चात् विदेश जाने की कथावस्तु है। वहाँ उच्चशिक्षा प्राप्त करके वे आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में सफल होकर प्रशिक्षण लेकर भी उसे छोड़ देते हैं और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अग्रणी होते हैं। इस नाटक में सुभाष का विदेशों में जाकर भारत की स्वतन्त्रता के लिए शक्ति-संचयन का चित्रण प्रधान रूप से किया गया है। उनकी आजाद-हिन्द-सेना का संघटन भारतीय राष्ट्रीय अभ्युत्थान का परम उज्ज्वल वीरान्त प्रकरण है। उन्होंने वीराङ्गणाओं की सेना, झाँसी-राज्ञी-वाहिनी के नाम से बनाई थी। इस नाटक में भारतीय वीरता और उसकी उपलब्धियों की प्रशंसनीय वर्णना है।

देशबन्धुदेशप्रिय

यतीन्द्र ने नव अंकों के इस नाटक में देशबन्धु-चित्तरंजन दास का महिममय निदर्शन किया है। चित्तरंजन ने देश की सेवा के लिए अपनी वकालत छोड़ दी, जिससे हजारों रुपयों की मासिक आय थी।

चित्तरंजन दास ने देशसेवा-व्रत अपना कर गान्धी जी के नेतृत्व में बंगाल के सर्वश्रेष्ठ स्वातन्त्र्य सेनानियों के साथ काम किया। रेलवे-मजदूरों की हड़ताल में उन्होंने सफल नेतृत्व किया था। विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर विक्रय रोकने के लिए धरना देने पर वे बन्दी बनाये गये। उनके जीवन का बहुमूल्य भाग कारागारोचित की तपस्विता में बीता।

रक्षक-श्रीगोरक्ष

सात अङ्कों के इस नाटक में यतीन्द्र ने विख्यात कनफटिया योगी महात्मा गोरखनाथ का चरित रूपकायित किया है। उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ शिष्य को ढूँढते हुए अयोध्या के समीप जयश्री नगरी में किसी सन्तानहीन ब्राह्मणी को भभूत देकर सपुत्र बनाते हैं, किन्तु उसने भभूत गड्ढे में डाल दी थी। १२ वर्ष के पश्चात् जब मत्स्येन्द्र आये तो उनके निर्देश पर ब्राह्मणी को गड्ढे से पुत्र मिला। उन्होंने उसे अपना शिष्य बनाया। गुरु ने कहा कि पृथ्वी ने तुम्हारी रक्षा की। अतएव तुम गोरक्षनाथ हो। तुम भी पृथ्वी की रक्षा करो। गोरक्षनाथ ने श्रेष्ठ योग-साधना के द्वारा गुरु को कृतार्थ किया। उन्होंने अफगानिस्तान तक भ्रमण करके गोरक्षा-संस्कृति का प्रचार किया।

निष्किंचन-यशोधर

सात अङ्कों के निष्किंचन-यशोधर में महात्मा गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा की महिमशालिनी गौरव-गाथा का आख्यान है। सुप्रसिद्ध नाटककार भारताचार्य महाकवि महामहोपाध्याय हरिदास; सिद्धान्त-वागीश, पद्मभूषण ने इस नाटक के लिए अपनी आशीर्वाणी में लिखा है—

तदेतन्न केवलं तं प्रति स्नेहप्रकटनार्थं न च केवलं तस्यैवंविधां ज्ञान-लिप्सामधिकृत्य मदभिप्रायप्रकटनार्थं वा, परं तस्यायं प्रयत्नः पण्डित-समाजस्य कियानुपकारक इत्यत्र जनानां प्रबोधजननार्थमपि।

यतीन्द्र ने यशोधरा पर दो अन्य ग्रन्थ पहले से ही लिखे थे—बुद्ध-यशोधरा तथा जननी-यशोधरा। इनमें ऐतिहासिक सामग्री यशोधरा के विषय में सम्पुटित है। यशोधरा पहले नाममात्र थी। किन्तु यतीन्द्र की खोजों से वह बहुविध-सुकृत-धन्या बन गई। उसने आजीवन लगभग ५० वर्षो तक अपने पति का काम अनवरत किया था धर्म और संघ की सुप्रतिष्ठा के लिए।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संस्कृत-विभागाध्यक्ष अमरेश्वर ठाकुर ने इस नाटक के आंग्लभाषीय अनुवाद की आवश्यकता के विषय में कहा है—

The whole world will not only get at once a beautiful and unsurpassable picture of the Mother Worship in India, and gather a very accurate impression about Indian culture and civilization, Bengali culture in particular, but also, will be able to understand our culture and civilization far better through a study of these translations of dramas than otherwise.

१९६० ई० तक इस नाटक का दो बार अभिनय हो चुका था। पहली बार रवीन्द्र-भारती में २९ अप्रैल १९५८ ई० में और दूसरी बार प्राच्यवाणी-मन्दिर के सदस्य अभिनेताओं के द्वारा १८ मई १९५८ में कलकत्ता-विश्वविद्यालय के हाल में।

कलकत्ते में इसके प्रथम अभिनय के अवसर पर सूत्रधार ने नाटक के अभिनय की चरम परिणति बताई है—

जातीयशक्तेः प्रोद्बोधनार्थं जातीयमिलनसूत्रस्य दृढीकरणार्थं चाभिनेष्यते।

कथावस्तु

प्रथम अंक में उपवन में यशोधरा गोपा अपनी सखी वनलतिका के साथ अपने जीवन में प्रकाश लाने वाले प्रियतम की बात सोचती है कि वे कहाँ हैं? शुद्धोदन का पुरोहित अपने राजकुमार सिद्धार्थ के लिए वधू की खोज में वहीं आ निकला। उसने गोपा से बातें करके जान लिया कि वही सिद्धार्थ की अभीष्ट संगिनी होने के योग्य है।

कपिलवस्तु में सिद्धार्थ और शुद्धोदन से राजपुरोहित मिलता है। वे विचार

प्रकट करते हैं कि यशोधरा श्रेष्ठ कन्या वधू रूप में ग्रहणीय है। यशोधरा के पिता दण्डपाणि ने निर्णय लिया था कि उसे ही कन्या प्रदान करेंगे, जो श्रेष्ठ धनुर्धर होगा। वह सिद्धार्थ को यशोधरा का पति नहीं बनने देना चाहता। उसकी घोषणा होती है कि यशोधरा का पिता दण्डपाणि उसी को कन्या देगा, जो वीर परीक्षा में सबको पराजित करे। एक मरे हाथी को शरसन्धान से दूर फेंककर सिद्धार्थ ने अपनी श्रेष्ठ वीरता प्रमाणित कर दी।

रात्रि के समय प्रेमोन्मत्त देवदत्त यशोधरा से मिलने के लिए उसके घर पर पहुँचा। वह बलात् उसके घर में घुस गया। यशोधरा के समक्ष होने पर उसने कहा कि आप का चरणसेवक बनना चाहता हूँ। यशोधरा ने कहा कि बात न करो, सीधे चले जाओ, नहीं तो द्वाररक्षक से निकलवाती हूँ। तब तो कुक्कुर की भाँति देवदत्त खिसका। तदनन्तर सिद्धार्थ का यशोधरा से विवाह हो गया। एक दिन सिद्धार्थ को यशोधरा से बातें करने पर ज्ञात हुआ कि उसे अपने पूर्वजीवनों का वर्त्तमान जीवन में और भविष्य का पूरा ज्ञान है।

प्रजावर्ग में कुछ लोगों को यशोधरा का अवगुण्ठन-विहीन होना अच्छा नहीं लगता था। एक दिन उसने शुद्धोदन की राजसभा में अपने व्याख्यान में प्रतिपादित किया कि मैं पति की आज्ञा से अवगुण्ठन नहीं करती। उसने आदि काल से नारी-शक्ति की श्रेष्ठता का वर्णन किया और बताया कि किस प्रकार चण्डी की पराक्रम-पूर्ण उपलब्धियाँ हैं। शुद्धोदन ने उसका भाषण सुना तो कहा—

गोपा विशुद्धगुणभूषणजातशोभा पुत्रोऽपि मे न समतामनया प्रयाति।
काले पुनः शमदमादिगुणर्वरिष्ठा भूयाद् वधूर्जगति शाश्वतपुण्यसेतुः॥

द्वितीय अङ्क में यशोधरा सिद्धार्थ से कहती है कि आप बहुत देर हमसे अलग-अलग रहते हैं। सिद्धार्थ ने अपनी अशान्ति की बात कही। यशोधरा ने अपना मत प्रकट किया कि हम दोनों सम्मिलित रूप से योजना बनाकर अपनी-अपनी अशान्ति को दूर करें। उस रात सोते समय यशोधरा ने जो उत्स्वप्नायित किया, उसकी शुभ व्यंजना गौतम ने बताई और कहा—

हर्षं लभस्व न च खेदमवाप्नुहि त्वं तुष्टिं च विन्द जनयाद्य ममापि हर्षम्।
तूर्णं भविष्यति धराखिलमोहमुक्ता गोपे प्रिये सकलमेव शुभं निमित्तम्॥

तृतीय अङ्क में कपिलवस्तु में राजसभा किसा गौतमी का गान सुनती है कि सिद्धार्थ के माता, पिता और पत्नी धन्य हैं। गौतम भी गीत सुनते हैं। उन्होंने चार दृश्य देख लिये थे, जिनके कारण वे वन में जाना चाहते थे। उन्होंने गीतानुसार अपने द्वारा आत्मशन्ति और लोकशान्ति प्रदान करने के लिए संन्यास लेना आवश्यक समझा। उनके विवाह के १३ वर्ष बीत गये। इस बीच यशोधरा पतिगृह में निरन्तर सेवा करती रही। वह सुखी रही। स्वयं शुद्धोदन उसे सुखी रखने के लिए पूरा ध्यान रखते हैं। सिद्धार्थ को पारमार्थिक शान्ति की पड़ी है। वे यशोधरा को भी पारमार्थिक शान्ति प्राप्त कराना चाहते है। अन्त में उन्होंने निर्णय लिया—

अहं जगतो दुःखस्य निराकरणाय उपायं निर्णेतुं शक्नुयाम् ।

उसी समय उन्हें वनलतिका ने शुभ संवाद दिया कि आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है। तव तो गौतम ने निर्णय लिया कि आज ही रात में निष्क्रमण करना है।

सिद्धार्थ सारथि छन्दक के रथ से रातों-रात अनोमा नदी के तट पर जा पहुँचे। छन्दक को सिद्धार्थ का वियोग खल रहा था। उसने यशोधरा के नाम पर उन्हें रोकना चाहा। सिद्धार्थ ने उसे समझाया। उसने रोना वन्द किया, पर प्रार्थना की कि आप फिर कपिलवस्तु में दर्शन देंगे। उस समय देव ने आकर उन्हें कषाय वस्त्र दिया। फिर उन्होंने छन्दक का विसर्जन करके अपनी यात्रा आरम्भ की।

यशोधरा ने विलाप किया। उसे छन्दक से वातचीत हुई। उसने कहा कि जहाँ स्वामी को ले गये, वहीं मुझे भी ले चलो। छन्दक ने वताया कि वे कहाँ चले गये, यह कौन जाने? तव यशोधरा ने तप करना आरम्भ किया। राजप्रासाद उसके लिए तपोवन वना। शुद्धोदन का पत्रोत्तर सिद्धार्थ देते हैं कि सात वर्षों के अनन्तर आऊँगा।

पंचम अङ्क में सात वर्षों के अनन्तर गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में आ पहुँचते हैं। राजकुल के सभी सदस्य उनसे मिलने के लिए एकत्र है—केवल यशोधरा नहीं है। वे सारिपुत्र और मोग्गलान के साथ उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ तपस्विनी यशोधरा थी। साथ में था राहुल। राहुल के पूछने पर उसने बुद्ध का परिचय दिया—

शाक्यकुमारो वरसुकुमारो लक्षणसंयुतपुण्यशरीरः ।
जनकल्याणमधुरसर्वेश्वर एष पिता ते वरनरवीरः ॥

राहुल ने पिता से दायाधिकार माँगा। मुझे संन्यास-धन दें। शुद्धोदन ने विरोध किया। अन्त में पिता को मानना पड़ा—

माता यस्य स्वयं गोपा पिता यस्य तथागतः ।
स सप्तवर्षकल्पोऽपि संन्यासी नियतं भवेत् ॥ ४.७७

राहुल की दीक्षा हो गई। मुण्डन के पश्चात् वह भिक्षुक वना दिया गया।

पंचम अङ्क में शुद्धोदन यशोधरा को अपना राज्याधिकारी वनाना चाहते हैं। यशोधरा ने स्पष्ट कहा कि संन्यासी की पत्नी को रानी नहीं वनना चाहिए। शुद्धोदन ने देखा कि देवदत्त दुश्चरित्र है। उन्होंने अपने वंश से भिन्न भद्रिक को युवराज वनाया।

यशोधरा की प्रार्थना पर गौतम ने भिक्षुणी-संघ वनाने की अनुमति दी।

सप्तम अंक में ७८ वर्ष की वृद्धा यशोधरा गौतम से इह लोकलीला समाप्त करने के लिए अनुमति लेती है और वताती है कि अपने स्वामी में मेरा अन्तर्भाव और विलय हो गया।

शिल्प

नाटक का आरम्भ यशोधरा गोपा की एकोक्ति से होता है। इस एकोक्ति में वह समय-परिचय देने के पश्चात् कथामुख की सूचना देती है कि मेरे प्रियतम कहाँ

हैं? उसी रंगमंच पर उसके बाद शुद्धोदन का पुरोहित अपनी एकोक्ति में अपने वर्तमान और भविष्य कार्य की सूचना-मात्र देता है।[1]

प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य के आरम्भ मे यशोधरा के लिए उन्मत्त देवदत्त की एकोक्ति है। तृतीय अंक का आरम्भ गौतम की सूचनात्मक एकोक्ति से होता है। इस अंक के बीच मे भी गौतम की एकोक्ति है।

रंगमंच पर लम्बे भाषण से नाटककार को बचना चाहिए था, किन्तु इस नाटक मे द्वितीय अक के द्वितीय दृश्य मे यशोधरा के लम्बे व्याख्यान हैं।

चतुर्थ अङ्क के पहले विष्कम्भक है, जिसमे शाक्यराज के दो गुप्तचर पात्र हैं। वे देवदत्त के विषय मे सूचना देते हैं।

हास्य के लिए रगपीठ पर मर्कटमुख का गीत रोचक है। वह नचाये जाने वाले वानर का सम्बोधन करके कहता है—

अहो जीव वृक्षचर कलिप्रिय
विकर्म ते प्रकाशय झम्पे-झम्पे हासय
धीमतो दर्शय वदनश्रियः। ४.५४

नाटक मे अद्भुत रस के लिए यशोधरा के जल छिडकते ही अन्धी प्रजापती का दृष्टि पाना अथवा निष्क्रमण-पथ मे सिद्धार्थ का देव से काषाय-वस्त्र-ग्रहण है।

शक्तिसारद

शक्तिसारद मे रामकृष्ण स्वामी की पत्नी सारदामणि की प्रेरणाप्रद चरितगाथा है। इसका प्रथम अभिनय २० जून, १९५८ ई० मे पुरी में अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद् के अधिवेशन के अवसर पर हुआ था। उस समय रथयात्रा-उत्सव मे देश के विविध भागो से विद्वान् पधारे थे। उसके पश्चात् तमलुक, कोन्टाई, बांकुड़ा, चित्तरंजन, मद्रास, बंगलौर, पाण्डिचेरी, रगून आदि नगरों में इसके अभिनय हुए। १९५९ ई० मे सारदामणि के शताब्दी उत्सव के उपलक्ष में २०,००० प्रेक्षकों की उपस्थिति में दक्षिणेश्वर की कालीबाडी मन्दिर मे इसका अभिनय हुआ। यतीन्द्र की इच्छा उन्ही के शब्दो में थी—

We may carry her Eternal Message of Love and Peace through this drama to other parts of the world.

कथावस्तु

प्रत्येक नारी जगज्जननी का अंशीभूत है और सारदामणि महाजननी हैं। इन्ही का चरित्र-रूपायण प्रतिपाद्य है। एक दिन सारदा के पिता कन्या को लेकर रामकृष्ण के पास आये कि यह रोगिणी है। इसकी देखभाल करें। सारदा पति की संगति में बहुत प्रसन्न है।

सारदा कुछ दिनों में अच्छी हो गई। उन्होने पूछने पर रामकृष्ण को बताया

१. कवि ने इसे स्वगत कहा है, जो सापवाद है।

कि चार वर्ष पहले जो उपदेश आपने दिया था, उसका सर्वथा प्रतिपालन मैं करती रही हूँ। उन्होंने रामकृष्ण से पूछा कि मैं आपकी कौन हूँ? रामकृष्ण ने उत्तर दिया—

येयं सृष्टिलयस्थितिप्रणयिनी काली करालानना
या चेदं कृपया शरीरमसृजत् सर्वार्थसंसावनम्।
सा मे मन्दिरवासिनी 'नहवत' स्था चापि मे यादृशी
त्वं तादृश्यसि लेशतोऽपि न ततो भिन्नेति मन्ये ध्रुवम्॥

अर्थात् जैसी काली वैसी आप। कोई अन्तर नहीं।

ज्येष्ठामावस्या को अर्धरात्र के समय सारदा को त्रिपुर-सुन्दरी के रूप में सजाकर रामकृष्ण उनकी पूजा करते हैं। पूजा के अनन्तर दोनों समाधिस्थ हो गये। समाधि के पश्चात् रामकृष्ण ने सारदामणि को साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

तृतीय अंक के अनुसार एक दिन सारदामणि जयरामवती से दक्षिणेश्वर आ रही थीं। मार्ग में रात्रि के समय डाकू कालू वागड़ी ने उनसे पूछा कि तुम कौन हो? सारदा ने कहा—आपकी कन्या हूँ, पिताजी! तव से कालू भक्त वन गया। उसने कहा है—

आस्तां नारकजीवनं मम चिरान्न्यस्तं जनन्याः पदे
काली सेयमतः परं हृदि परं मे राजतां पूजिता।
पूज्या चेत् प्रतिमा तपोधननिधिस्तत्रावलम्ब्यो मया
कामक्रोधमुखा भवन्तु वलयो नच्छागमेषादयः॥ ३.४६

दस्यु-पत्नी ने अपनी कन्यारूप में उन्हें उपहार देकर दामाद रामकृष्ण के पास भेज दिया।

पंचम अंक में लक्ष्मीनारायण मारवाडी से रामकृष्ण और उनकी पत्नी सारदा में से किसी ने १०,००० रुपये नहीं लिए। दूसरे दृश्य में रामकृष्ण समझाते हैं कि भक्त और भगवान्, शक्ति और ब्रह्म एक हैं। माता की महिमा का गायन रामकृष्ण ने किया—

किमिह मधुरमास्ते मातृनाम्नो वरायां
किमिह च कमनीयं वर्तते मातृचित्तात्।
किमिह भवति शीतं मातुरंकादशङ्कान्
किमिह कलुषमुक्तं मातुरंघ्रिद्वयाद्वा॥ ५.७४

नरेन्द्र ने पूछा कि धर्मसाधन का मूलमन्त्र क्या है? रामकृष्ण ने उत्तर दिया कि जीव-पूजा द्वार से शिवपूजा। किसी अन्य के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि विद्यारूपिणी पत्नी ब्रह्म प्राप्त कराती है, अविद्या-रूपिणी वन्धन में डालती है।

अन्त में रामकृष्ण रुग्ण हैं। उनकी अपनी इच्छा नहीं है कि मैं रोग से मुक्त हो जाऊँ। रामकृष्ण ने सारदा से वचन लिया कि मेरे मरने पर तुम सती न

होना। तुमको मेरा कार्य पूरा करना है। तुम्हीं मेरी शक्ति हो। सारदा ने कहा—
अनन्तोऽपारो महासमुद्रस्त्वम्, तत्राहं केवलं एको जललव एव।
सुकठोरमवशिष्टं कर्तव्यं कथं मया एकाकिन्या समापयिष्यते।

रामकृष्ण ने उत्तर दिया—न त्वं बिन्दुः। सिन्धुरेव त्वम्। त्वमेव मे शक्तिः, मम साधना मम सिद्धिश्च। जीवनव्रतं मे त्वय्येव प्रभूतं जातम्।

शिल्प

यतीन्द्र की सरस भाषा नाट्योचित है। अपनी बातों को पाठकों के हृदय तक पहुँचा देने के लिए ऐसे शब्दों का वे कहीं-कहीं प्रयोग करते हैं, जिनकी अविस्मृति के साथ उनके भाव चिरस्मरणीय रह जाते हैं। उदाहरण के लिए मन की परिभाषा है—

जपसमये मनो वानरवल्लम्फ-झम्पं वांछति।

यह नाटक गीतों से भरा-पूरा है।

अपने रूपकों में प्रायशः हास्य उत्पन्न करने के लिए चेट-चेटी के समकक्ष कुछ ग्रामीण, मत्स्यजीवी, किसान आदि या तथाकथित सभ्यता के तृतीय स्तर के नायकों को किसी न किसी दृश्य में लाने की प्रवृत्ति यतीन्द्र के हृदय में उनके प्रति खिंचाव को व्यक्त करता है। इस रूपक के तृतीय अंक के पूर्व विष्कम्भक में धर्मप्राण नामक कृषिजीवी और केवलकृष्ण नामक मत्स्यजीवी पात्र हैं। निस्सन्देह नाटक में ऐसे नायक उत्तम कोटि के नायकों से बढ़कर अभिरुचि उत्पन्न करते हैं। ऐसे पात्रों की भाषा और भाव भी उनकी स्थिति के अनुरूप हैं। धर्मप्राण कहता है—'चमक-प्रदा घटनेयम्।' यहाँ 'चमक' शब्द धर्मप्राण के लिए ही योग्य है।

अङ्क के पूर्व का विष्कम्भक विशेष रोचक है। इसमें दो नकली साहबों की रोचक प्रणय-गाथा है। बातें हास्यास्पद हैं। यथा,

धारलीन पथि पथि पथि नारी-विघूर्णनम्।
ऊनविंश-शताब्द्याः सविशेषघटनम्॥ ५.६२

इस विष्कम्भक में कथाधारा से पृथक् बातें कही गई हैं। साथ ही इसमें सूचनात्मकता तो तनिक नहीं है। सब कुछ दृश्य है।

इस रूपक में 'मेरी' पहले नारी-वेश में रहकर प्रेम करता है, फिर अपने वास्तविक पुरुष-वेष में आ जाता है। यह संविधान छायातत्त्वानुसारी है।

अंक में इधर-उधर की कहानी भी संक्षेप में सुनाई गई है। स्वयं रामकृष्ण मछली की गंध के अभाव में न सो सकनेवाली धीवरी की कथा सुनाते हैं।

आनन्दराध

कथावस्तु

गोचारण करते समय कभी घनघोर दुर्दिन में राधा ने स्वयं प्रकट होकर नन्द के हाथों से कृष्ण को लेकर उनकी रक्षा की। तुलसी ने नेपथ्य से उसे आशीर्वाद दिया—

श्रीकृष्णः सर्वदा तव हृद्देशलग्नो विलसिष्यति। त्वां समाश्रित्यैव स राधावल्लभ इति परमशोभनामभिधामवाप्स्यति।

उसी समय नटवर कृष्ण गोपदेवता बनकर नारीवेष में उपस्थित हुए। राधा के पूछने पर उन्होंने कहा—मेरा नाम गोपदेवता है। मैं तुम्हें देखने मात्र से कृतार्थ हुआ। बातचीत में राधा ने प्रियतम कृष्ण की बहुत प्रशंसा की, यद्यपि गोपदेवता उनके विषय में अटपट कहते रहे। अन्त में कृष्ण ने अपने को वास्तविक रूप में प्रकट होकर राधा को प्रहर्ष प्रदान किया। कृष्ण ने कहा—मैं तेरा दास हूँ। राधा ने कहा—मैं आपकी चरणदासी हूँ।

द्वितीय अङ्क में राधा कृष्ण को खोज रही है। घनघोर दुर्दिन में असहाय वह कृष्ण के लिए रोती है। कृष्ण प्रकट होते हैं। उससे क्षमा माँगते हैं कि काम से विलम्ब हो गया। मैं असुर-दलन के लिए निकल गया था। राधा ने कहा—मैं तुम्हारे प्रतिदिन के असुर-दलन से भर पाई।

राधा ने कहा कि आपके हृदय पर एकाधिपत्य चाहती हूँ। कृष्ण ने बात टाली और कहा कि मैं तुम्हें सारे वृन्दावन की साम्राज्ञी बनी हुई देखना चाहता हूँ।

विशाखा ने आकर राधा से बताया कि तुम्हारा वनराज्याभिषेक करने के लिए गोपवधुयें आ रही हैं। यह सब कृष्ण की इच्छा के अनुसार सम्पन्न हुआ।

एक दिन महर्षि भागुरि के यज्ञ के लिए घी लेकर राधा और उसकी सखियाँ वन से होकर जा रही थीं। मार्ग में कृष्ण और उसके साथियों ने उन पर बनावटी रोक लगाई कि चुंगी दो। राधा की सखियों ने कहा कि तुम्हीं कर दो। अन्त में कृष्ण की स्तुति करने पर ही उनको आगे जाने की आज्ञा मिली।

तृतीय अङ्क में वृन्दावन के राधाकुञ्ज में श्रीकृष्ण को राधा से मिलना था। पर वे समय से नहीं आये। तब तो मान करके राधा ने शपथ ली कि अब किसी कृष्ण वस्तु को नहीं देखूंगी—काले केश का मुण्डन, तमाल का श्वेतीकरण, यमुना का अश्रुपात से श्वेतीकरण आदि की योजनायें बन ही रही थीं कि बनमाली आ टपके। राधा को जैसे-तैसे इस शर्त पर मनाया गया कि अब भविष्य में कृष्ण कभी ऐसी गड़बड़ी नहीं करेंगे। श्रावण-पूर्णिमा को हिन्दोल-यात्रा हुई। ललिता ने राधा को सुझाव दिया—

यमुनातीरनिकुंजे पाटलीवाणीरपुंजे।
रक्ष राधे प्राणराधे श्रीकृष्णजीवनम्॥

फिर तो हिन्दोल-लीला आरम्भ हुई। राधा और श्याम दोलान्दोलन में रस-निमग्न हुए। कृष्ण के मित्रों और राधा की सखियों में पर्याप्त परिहास हुआ। गाना हुआ। अन्त में गोपियों की परीक्षा के बाद रासलीला होती है। कृष्ण की मुरलिका का प्रभाव है कि—

परामृतास्वादसहोदरान् स्वरान् आपीय वेणोः सुन्नपीन-धेनवः।
क्षरत्स्तनक्षीरखरोष्णधारया सिचन्ति वृन्दावन-पुष्पवीरुधः॥

बीच में कृष्ण अन्तर्धान हो गये। गोपियां रोने लगीं। फिर कृष्ण प्रकट हुए। कृष्ण के साथ व्रजबालाओं का नृत्य हुआ।

चतुर्थ अंक मे इधर कृष्ण माता-पिता से विश्वमंगल की चर्चा करते हैं। उधर मथुरा मे नारद, कंस और चाणूर देवकी-पुत्र से भय की आशंका करते हैं। चाणूर ने पूछने पर कंस से बताया कि वह मोटल्ली पूतना हृद्गति बन्द होने से मरी होगी। अन्य असुरो का क्या हुआ—यह बताने के लिए नारद आ पहुँचे। उन्होंने स्पष्ट बताया कि तुमको मारने वाला कृष्ण गोकुल मे है।

कंस ने धनुर्यज्ञ की योजना कृष्ण को मारने के लिए प्रवर्तित की। अक्रूर से योजना पर परामर्श लिया और उन्हें बलराम और कृष्ण को धनुर्यज्ञ में लाने का काम सौंपा।

पंचम अङ्क मे अक्रूर वृन्दावन पहुँचे। उन्होंने नन्द को कंस का सन्देश दिया कि वह बलराम और कृष्ण को धनुर्यज्ञ में उपस्थित देखना चाहता है। नन्द ने उन्हें बताया कि कृष्ण की अनुपस्थिति मे गोकुल की क्या दुर्दशा होगी। नन्द ने यशोदा को यह समाचार दिया तो उसने कहा—कभी नही। पर कृष्ण ने कहा कि जाने मे तो अच्छा रहेगा। अन्यथा कंस के अत्याचारो से लोकत्राण कैसे होगा? कृष्ण का जाना निश्चित हो गया।

छठें अंक मे कृष्ण की विदाई है। पहले राधा से अनुमति लेनी थी। उसने कहा कि तुम्हारे वियोग मे अब मैं मर ही जाऊँगी। राधा ने लोकमारोन्मूलक कृष्ण को जाने की अनुमति तो दी, पर इस शर्त पर कि कंस को मार कर तत्काल लौट आयेंगे।

सप्तम अङ्क में कृष्ण वृन्दावन के राजमार्ग पर हैं। उन्होंने सबसे यही कहा—प्रत्यागमे द्रुतमहं नियतं यतिष्ये। अर्थात् शीघ्र लौट आने का प्रयास करूँगा। अष्टम अङ्क में यज्ञभूमि मे कंस और चाणूर पहुँचते हैं। तब तो कृष्ण और कंस मे अपशब्दों की बौछार हुई। अन्त मे रंगपीठ पर ही युद्ध में कंस को कृष्ण दिवंगत करते हैं।

नवम अंक मे उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर गोकुल पहुँचे। फिर गोपियों ने अपनी ओर से वृन्दा को कृष्ण के पास भेजा कि कह दे कि तुम्हारे बिना राधा मर रही है। एकादश अंक मे वृन्दा बलराम के साथ नन्द और यशोदा के पास लौट आई। बलराम से माता-पिता को कुछ सान्त्वना मिली। अन्त मे राधा को कहना पड़ा—

मायाविदारि-विमोचनकारि-करुणाकर-श्यामः।
श्रीपदधारी नन्दनचारी जयतु भक्तिकामः॥

शिल्प

द्वितीय अङ्क का आरम्भ कृष्ण को खोजती हुई राधा की एकोक्ति से होता है। इसमें वह अपनी पारिवारिक स्थिति की चर्चा करती है। चारों ओर नैसर्गिक विषमता और दारुणता का परिचय वह देती है और विपत्ति में पड़ी गाती है—

नाथ रे त्वमेव मे जीवनशरणम्
पलेऽनुपले च विपले नभोनीले जले स्थले
सर्वत्र राजते तव रूपविलसनम्।
दिशि दिशि प्राणनाथप्राण-स्फुरणम् ॥ २.३२

वह रोती है।

छायातत्त्व का वैशिष्ट्य यतीन्द्र के प्रायः अन्य नाटकों की भाँति आनन्दराध में भी प्रचुर मात्रा में है। कृष्ण राधा से गोपदेवता के रूप में स्त्री बनकर मिलते हैं।

रंगपीठ पर कंस कृष्ण पर तीर चलाता है, वहीं कृष्ण उस पर आक्रमण करते हैं और मार डालते हैं। इसके पहले रंगपीठ पर मुष्टीमुष्टि युद्ध होता है। बलदेव मुष्टिक को और कृष्ण चाणूर को मार डालते हैं। रंगपीठ पर ये दृश्य कतिपय नाट्यशास्त्रकारों के अनुसार वर्जित हैं। ऐसे दृश्यों से लोकरंजन विशेष होता है। कृष्ण और कंस का गाली-गलौज भी रोचक प्रकरण है। यद्यपि अभिनय की दृष्टि से इसमें कोई त्रुटि नहीं है, किन्तु यह काम कृष्ण के उदात्त व्यक्तित्व के योग्य नहीं कहा जा सकता।

प्रीतिविष्णु-प्रिय

प्रीतिविष्णुप्रिय में चैतन्य की पत्नी विष्णुप्रिया की चरितगाथा है।[1] इसमें कथा ११ अङ्कों में प्रपंचित है।

कथावस्तु

गौराङ्ग महाप्रभु ने २२ वर्ष की अवस्था में १४ वर्ष की विष्णुप्रिया से माता की इच्छानुसार विवाह किया। गौराङ्ग की जीवन-विधि देखकर विष्णुप्रिया को आभास होता है कि वे सर्वथा उसके होकर न रह सकेंगे। उन्होंने एक रात स्वप्न देखा कि पति मुझे छोड़ कर जा रहे हैं। उन्होंने पति से स्वप्न की बात बताई और कहा कि आपके वियोग में मेरा जीवन असम्भव है। गौराङ्ग ने कहा कि हम दोनों का वियोग नहीं होगा।

भक्तिविष्णुप्रिय

'भक्तिविष्णु-प्रिय' में प्रीतिविष्णु-प्रिय की कथा आगे प्ररोचित है।[2] इसका अभिनय दिसम्बर १९५९ में पाण्डिचेरी में अरविन्दाश्रम में तथा। १९६२ ई० में नई दिल्ली में सप्रू हाउस में हुआ था, जिसमें तत्कालीन उपराष्ट्रपति प्रेक्षक थे।[3]

कथावस्तु

चैतन्य ने गयाधाम का दर्शन किया। उन्हें भगवान् की तन्मयता का जिस क्षण आभास होता था, वे विपन्न-से होकर रोने लगते थे। संसार का दुःख दूर करने

---

१. प्राच्यवाणी से १९५९ ई० में और मंजूषा में १९६१ में प्रकाशित।

२. मंजूषा में १९५९ ई० में प्रकाशित।

३. प्राच्यवाणी द्वारा इसका प्रयोग लगभग १२ बार हो चुका है।

के लिए उन्होने संन्यास लेने का निश्चय किया और एतदर्थ अपनी माता और पत्नी से पूछा। जैसे-तैसे उन्हे अनुमति मिली। उन्होने विष्णुप्रिया को अपनी माता की देखरेख का काम दिया और भक्तो को सुख-सुविधा प्रदान करते रहने के लिए कहा। गृहस्थाश्रम छोडकर वे परिभ्रमण करने लगे। विष्णुप्रिया ने यावज्जीवन वैष्णवधर्म का प्रचार किया और महाप्रभु के आदर्श पर सदाचार-निष्ठ जीवन बिताकर परमधाम सिधारी।

मुक्तिसारद

सारदामणि के उस जीवन-चरित की कथा १२ अङ्कों में 'मुक्तिसारद' में है, जिसमे वे रामकृष्ण के दिवगत होने के पश्चात् उनके विचारो का प्रचार करती रही। उन्होने स्वयं रामकृष्ण का स्थान ले लिया था, यद्यपि सधवा स्त्री की भाँति वेष-भूषा धारण करती थी। कामारपुकुर के लोगो ने इसका विरोध किया, किन्तु उनकी भक्ति से भीत होकर चुप बैठ गये। वे विवेकानन्द को पुत्र मानती थी और विवेक उन्हे माता मानते थे। आरम्भ मे उन्होने विवेकानन्द को विदेश जाने की अनुमति नही दी, किन्तु पीछे रामकृष्ण की अशरीरिणी वाणी से प्रभावित होकर उन्हे भारतीय संस्कृति का प्रसार करने के लिए विदेश-यात्रा की अनुमति दे दी है।

सारदामणि ने शरीरान्तक रोग से आक्रान्त होने पर दुग्धपानादि छोड़कर शान्तिपूर्वक इहलोक लीला संवरण की।

अमरमीर

मीराबाई की विवाहोत्तर जीवन-गाथा अमरमीर के १२ अङ्कों मे विस्तारपूर्वक प्रपञ्चित है।[1]

कथावस्तु

मीरा ने कृष्ण को अपना पति बना लिया है। उनकी सास और ननद को उनका कृष्णप्रेम फूटी आँखो भी नही सुहाता था। वे उनके पति भोजराज को भी भड़काती हैं कि उसका कृष्णप्रेम अनुचित है और मीरा को कुलकलंकिनी कहती हैं। मीरा कृष्णमन्दिर में कृष्ण का ध्यान करती हैं। अकबर कभी उनका दर्शन करने आता है और अपना नामाङ्कित कण्ठहार कृष्ण की मूर्ति को चुपचाप अर्पित करके चल देता है। वह हार मीरा के पति की दृष्टि मे आता है और वह मीरा को आत्म-हत्या करने का आदेश देता है। वह नदी में कूदना ही चाहती है कि भक्त रामदास उसे रोकते हैं। मीरा उनके आश्रम मे चली जाती है। वह रामदास की शिष्या बन जाती है।

भोजराज को अपना प्रमाद प्रतीत हुआ। वे मीरा को पुनः मेवाड मे लाना चाहते थे। उन्होंने पुनर्विवाह नही किया। अन्त मे संन्यासी का वेष धारण करके

१. प्राच्यवाणी, मन्दिर, कलकत्ते से प्रकाशित।

वे वृन्दावन पहुँचे। पतिव्रता मीरा इच्छा न होने पर भी पति की आज्ञा मानकर मेवाड़ लौट आईं।

मीरा को पतिसुख नहीं बदा था। भोजराज के दिवंगत होने पर उसका छोटा भाई विक्रमदेव शासनाधिकारी होकर मीरा को तङ्ग करने लगा। उसने मीरा को मारने के लिए विष भेजा। मीरा विषपान करके भी मरी नहीं। उसने मीरा को राजप्रासाद से निकाल दिया।

मीरा वृन्दावन में रूपगोस्वामी के आश्रय में आ पहुँचीं। अन्त में वे कृष्णमूर्ति में विलीन होकर अपनी इहलोक लीला संवरण करती हैं।

भारत-लक्ष्मी

यतीन्द्र ने दस अङ्कों में झाँसी की सुप्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई की चरितगाथा का वर्णन किया है।[1]

कथावस्तु

लक्ष्मीबाई का एकलौता पुत्र मर गया। उन्होंने जिस लड़के को गोद लिया, उसे अंगरेज शासकों ने मान्यता नहीं दी। उन्हें आदेश दिया गया कि झाँसी छोड़ दो। रानी ने प्रतिज्ञा की कि युद्ध करते-करते मर जाऊँगी, पर झाँसी न छोड़ूँगी। उन्होंने झाँसी का सर्वाधिकार प्राप्त होने तक अपना शृङ्गार-प्रसाधन छोड़ दिया। उनके दुलाजि नामक कर्मचारी ने विश्वासघात किया और अङ्गरेजों से मिलकर रानी के उन्मूलन के सूत्र बताये। सेना के वीरों के साथ महारानी अङ्गरेजी सेना से लड़ती रहीं। उन्होंने नारी-सेना बनाई और पुत्र को पीठ पर बाँधे हुई शत्रुओं से लड़ती रहीं। उनको ग्वालियर में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त हुई।

महाप्रभु हरिदास

यतीन्द्र ने 'महाप्रभुहरिदास' की रचना १९५८ ई० में रथयात्रोत्सव के अवसर पर पुरी में की थी। इसका प्रयोग १९६० ई० की फरवरी तक दस स्थानों पर हो चुका था, जिनमें से प्रसिद्ध हैं १९५८ ई० में पुरी, मिदनापुर, १९५९ ई० में, कलकत्ते में विश्वविद्यालय, संस्कृत-शिक्षा-परिषद्-हाल, विश्वरूप थियेटर हाल में, मद्रास में रसिकरंजनी-हाल में पाण्डिचेरी में अरविन्दाश्रम में, २४ परगना में गोवर्धन-कालेज में, १९६० ई० में; चिन्सुरा-पण्डित-महासम्मेल में तथा शासकीय जनता कालेज में।

कथावस्तु

वनग्राम के जमींदार रामचन्द्र ने लक्षहीरा नामक वेश्या को भेजा कि भक्त हरिदास को तपोमय पद्धति से च्युत करो। हरिदास ने उससे कहा—माँ, प्रतिमास एक कोटि हरिनाम जप करता हूँ। आज पूरा होगा। फिर जो कहोगी, उसके लिए पूरा प्रयत्न होगा। जाती हुई लक्षहीरा ने गाया—

---

१. १९६७ ई० में प्रकाशित।

सकलं गरलं लभते विलयं महिमा तुलनो भजनाश्रयिणः।
जगदीशपदाश्रितभक्तवर भजते भगवानतुलादतुलम् ॥ १.६

हरिदास ने सुना तो कहा कि माता, यही हरिभजन करती हुई रहो। जप समाप्त होने पर हरिदास की आज्ञा से वेश्या ने गाया—

देव कुरु मयि कृपां भवाब्धिकराम्
नाम्नास्मि लक्षहोरा सत्यं हि लक्ष्यहारा
तारय दुस्तर-पारावारातुराम ॥ इत्यादि

फिर तो सिर मुडा कर वह सन्यासिनी बनकर वही रहने लगी।

द्वितीय अङ्क मे हरिदास ने भक्ति को मुक्ति से श्रेयस्कर बताया है।

भक्ता मुक्तिं न वांछन्ति भक्तेस्तेषां हि याचनम्। १.३२

गोवर्धनदास का लडका रघुनाथदास भगवद्भक्त बनकर गार्हस्थ्य धर्म की उपेक्षा करता था। उसकी पत्नी भी उसे योग्य पथ पर चलनेवाला समझती थी। माता कुल का नाश देखकर दुःखी थी। पिता पुत्र का प्रशंसक था।

तृतीय अङ्क मे हरिदास की सिद्धियो की निन्दा उसके विद्वेषक करते हैं। तब तक उधर से डंकटक नामक सँपेरा निकला। उसने बताया कि मैंने देखा है कि शुक के समान साँप को हरिदास शिर पर रखकर उसका दुलार करते हैं। गुम्फराज नामक वितण्डावादी ने कहा कि मैं भी ऐसा कर सकता हूँ। तब तो सँपेरे ने एक विषधर अपनी झँपोली से निकाला। उसने सँपेरे के आदेश का पालन करते हुए पापी को ढूँढते हुए गुम्फराज का पीछा किया। उसने क्षमा माँगी कि अब साधु जनों का अपवाद नही करूँगा। तब डकटक ने साँपो को रोका और गुम्फराज को समझाया—

नामाचार्यो हरेर्दासो ब्रह्मा स्वयमुपागतः
लीलापूर्वामनुस्मृत्य स्वप्रतिज्ञानुसारतः ॥ ३.४४

एक दिन हरिदास को पुलिस कर्मचारी करीम और रहीम ने पकड़ा और हथकड़ी लगाकर हुसेनशाह के पास पहुँचाया। हरिनाम संकीर्तन-पूर्वक नाचते हुए वे मार्ग मे गये। कारागार मे वन्दियों को उन्होने कृष्णभक्त बनने की प्रेरणा दी। न्यायालय मे दण्ड दिया गया कि इसे २२ हट्ट स्थानों पर बेंत मारा जाय। कारण यह था कि काजी के कहने पर भी उन्होने हरिनाम-संकीर्तन छोडना नही स्वीकार किया। ऐसा किया गया। तब भी हरिदास मरा नही तो उसे गगा मे फेंक दिया गया।

चतुर्थ अङ्क में हरिदास नदिया मे महाप्रभु चैतन्य के साथ है। दोनो साथ ही स्तुति-पूर्वक नृत्य करते है। वहाँ से हरिदास कुलीन ग्राम मे पहुँचे। वहाँ मालाधर-वसु ने श्रीकृष्ण-विजय नामक ग्रन्थ लिखा था। पंचम अक में हरिदास नवद्वीप में महाप्रभु से मिलते है। वहाँ भगवान् ने उन्हे अपनी पीठ दिखाई कि कैसे मैंने २२ स्थानो पर बेंत खाई। यह सुनकर हरिदास रोने लगे। महाप्रभु ने अपनी जन्म जन्मान्तर की भक्तसंगति का उल्लेख किया।

एक दिन नित्यानन्द के साथ हरिदास नवद्वीप में गुण्डे जगाइ-माधाइ नामक भ्रष्टचरित्र ब्राह्मण-भाइयों के पास पहुँचे। नित्यानन्द से उनकी मुठभेड़ हुई। माधव ने उन्हें मारा तभी महाप्रभु चैतन्य उपस्थित हो गये। जगन्नाथ ने देखा कि उसके समक्ष शंख-चक्र-गदा-पद्मधर विष्णु विराजमान हैं। नित्यानन्द ने भगवान् से प्रार्थना की कि माधव पर कृपा करें। उन्होंने दोनों का आलिंगन करा दिया। भगवान् ने उनके पाप अपने ऊपर ले लिए। तबसे वे कृष्ण वर्ण के हो गये। राधा के कीर्तन से पुनः उनका वर्ण गौर हुआ।

पंचम अंक के तृतीय दृश्य में गर्भनाटक छायातत्त्वानुसारी है। इसमें श्रीवास नारद बनते हैं और हरिदास नगर-रक्षक हैं। महाप्रभु चैतन्य स्वयं लक्ष्मी का रूप धारण करके प्रकृतिभाव से नृत्य करते हैं। रुक्मिणी (लक्ष्मी) कहती हैं कि हे कृष्ण, शिशुपाल-व्याघ्र से मुभक कुरंगिणी की रक्षा करें। इसके पश्चात् फिर महाप्रभु राधा (लक्ष्मी) रूप में आते हैं और कहते हैं—इयं तवैव राधाहं भाग्यवशाद् दूरं नीता त्वत्पादपद्मे चिरेणैव लीना भविष्यामि। (इति मुह्यति)।

मूर्छोत्थिता आद्याशक्तिः नरीनृत्यते।

अगला दृश्य चाँदकाजि के दमन का है। नवद्वीप की राजवीथी पर महाप्रभु भक्त अनुयायियों के साथ मार्दङ्गिक तालानुसार नृत्य करते हुए चाँदकाजि के महल की ओर चले। कट्टर काजी भी परिवर्तित होकर मुकुन्द के हरिनाम-कीर्तन के पहले बोला—भवदुद्दिष्ट-हरिनाम-कीर्तनमेव मम प्राणाराम-कारणं भविष्यति मुकुन्द ने गाया—

स्मरणं मधुरं मननं मधुरं जपनं मधुरं लपनं मधुरम्।
हरिनाम शुभं रमणं मधुरं मधुरं मधुरं मधुरान्मधुरम्॥

शचीदेवी और विष्णुप्रिया ने हरिदास को पुरी भेजा कि आप शीघ्र चैतन्य को यहाँ लायें। हरिदास पुरी में कुछ दूर ही रुक गये। चैतन्य जाकर उनसे मिले और उनका आलिंगन किया। उनकी सुव्यवस्था की।

एक दिन हरिदास मथुरावासी सनातन से मिले और बातचीत की। दाद के कारण कण्डूशोणिताप्लुत देहवाले सनातन महाप्रभु चैतन्य के लिए विशेषतः सेवा-भाजन प्रतीत हुए।

सातवें अंक में वृद्धावस्था में दौर्बल्य के कारण हरिदास तीन लाख नाम जप नहीं कर पाते थे। चैतन्य उनसे मिलने के पहले कहते हैं—

न हरिदासमृते मम जीवनम्।

मरने के पहले हरिदास ने चैतन्य के पादपद्म को छाती पर रखा और सभी भक्तों का चरणरज लिया। उनके दिवंगत होने पर चैतन्य ने कहा—

हरिदास, तव पादस्पर्शेन धन्या जाता धरणी। तव स्पर्शादहमपि अस्मि धन्यतमः। अद्यप्रभृति तव भक्तिः प्रवहतु नदीकल्लोलेषु, वहतु च सा पवन-

गतौ। काननपुष्पेषु भवतु सा विकसिता, पक्षिकण्ठेषु ध्वनिता, पार्थिवरजःसु प्रतिकणमुल्लसिता।

शिल्प

नाटक का आरम्भ हीरा की प्रायशः सूचनात्मक एकोक्ति से होता है। द्वितीय अङ्क का आरम्भ गोवर्धनदास की एकोक्ति से होता है।

संवादों मे शिष्टाचार की रीति सम्भवत: इस उद्देश्य से अपनाई गई है कि लोग आदरपूर्वक बातचीत करना सीखें। उदाहरण के लिए महाप्रभु हरिदास के चतुर्थ अंक के द्वितीय दृश्य मे हरिदास की पहले ग्रामिक से, फिर मल्लराज से बातचीत होती है।

पञ्चम अङ्क के तृतीय दृश्य में छायातत्त्वानुसारी गर्भाङ्क है। इसमे कृष्ण रुक्मिणी और राधा की भूमिका में क्रमशः रंगमंच पर आकर नृत्य करते हैं।

अर्थोपक्षेपकों से सूच्य की सूचना दी जाय—इस विधान को यतीन्द्र नहीं अपनाते। पञ्चम अङ्क के पंचम दृश्य में जगदानन्द महाप्रभु की माता शचीदेवी को महाप्रभु की पुरी मे रहते समय की स्थिति का ज्ञान कराते हैं। यह सारा सूच्य दो पृष्ठों का है, जो अङ्क भाग मे है।

पञ्चम अङ्क के पंचम दृश्य मे एक नये प्रकार की एकोक्ति है, जिसमें रंगपीठ पर दो पात्र शची और विष्णुप्रिया हैं। इनमें से विष्णुप्रिया मूर्छित है और शची की एकोक्ति है, पहले अपनी दुःस्थिति के विषय मे, फिर विष्णुप्रिया की मूर्च्छा के विषय मे। नाटक की अनेक एकोक्तियो को भ्रान्तिवशात् स्वगत लिखा गया है। सप्तम अंक के प्रथम दृश्य मे चैतन्य की एकोक्ति ऐसी ही है।

विमलयतीन्द्र

विमलयतीन्द्र मे रामानुजाचार्य की चरितगाथा है। इसका प्रथम अभिनय अखिल-भारतीय-वैष्णव-सम्मेलन के लिए २५ दिसम्बर १९६१ ई० में और द्वितीय अभिनय २७ दिसम्बर १९६१ ई० मे अरविन्द-आश्रम मे हुआ। इसमे अङ्कों की संख्या १७ है, यद्यपि नाटक बहुत बड़ा नहीं है।

कथावस्तु

काञ्चीपुर मे यादवप्रकाश के शिष्य थे लक्ष्मण (रामानुज)। किसी दिन किसी दूसरे शिष्य को यादवप्रकाश ने उपनिषद्-मंत्र का अर्थ अशुद्ध बताया। रामानुज को खेद हुआ। उन्होने आचार्य से कहा कि आप जो अर्थ बताते हैं, वह चिन्त्य है। तब तो रामानुज ने उनके पूछने पर शुद्ध व्याख्या की और यादव ने कहा—

धन्या मनीषास्य यतः प्रसूते परैरनाविष्कृतपूर्वमर्थम्।
पूर्वैः कृताश्चापि न रम्य एष प्रयाति चेतो न तथापि तृप्तिम्॥

गुरु ने मन ही मन समझ लिया कि रामानुज विधेय नहीं है। उसकी सात्त्विक प्रज्ञा विशेष है। वह मेरे शिष्यों के सामने प्रकट कर देगा कि मेरा ज्ञान सर्वथा

शुद्ध नहीं है। उन्होंने रामानुज की हत्या करने के लिए सन्नद्ध किसी शिष्य को प्रोत्साहित कर दिया।

यादव ने शिष्यों की तीर्थयात्रा का आयोजन करा दिया। इसमें घोर अरण्य के बीच लक्ष्मण (रामानुज) को मार डालने की योजना उसके मौसेरे भाई ने उस वन में पहुँचने पर रामानुज को बता दी। उसने रामानुज से कहा कि भाग कर प्राण बचाओ। रामानुज ने ऐसा ही किया। दूर जाने पर उन्हें शरण दी व्याध-दम्पती ने।

भगवान् और भगवती ने व्याधदम्पती के रूप में रामानुज को आशीर्वाद दिया—

तीक्ष्णा ते प्रतिभापुत्र शास्त्रेषु क्रमतां चिरम्।
प्रतिविद्याविवादं त्वं जयलक्ष्म्याः पतिर्भव॥

फिर रामानुज घर आये तो माता का प्रेम देखकर कहा—

विषावते खलु संसारे जननीकरुणामृतम्।
प्रोज्जीवयति सन्तानं विपन्नं विषवेगतः॥

किसी राजकुमारी को ब्रह्मराक्षसने पकड़ा था। उसे यादव प्रकाश नहीं ठीक कर सके, पर रामानुज ने ठीक कर दिया।

सप्तम अङ्क में यामुनाचार्य के मरने पर उनकी तीन अंगुलियाँ मुष्टिबद्ध थीं, क्योंकि उनकी तीन इच्छायें अपूर्ण थीं। रामानुज ने अंगुलियों को सीधा किया तीन प्रतिज्ञायें करके (१) ब्रह्मसूत्र का वैष्णवभाष्य लिखूंगा (२) द्राविडाम्नाय का प्रचार करूँगा और (३) पराशर और शठकोप नाम से दो परवर्ती आचार्यों की प्रतिष्ठा करूँगा। वे यामुनाचार्य के अनुयायियों के नेता बन गये।

आठवें अङ्क में वे काञ्चिपूर्ण रामानुज को अपना जीवन-दर्शन स्पष्ट करते हैं। रामानुज ने प्रार्थना की तो महापूर्ण और उनकी सहधर्मिणी दर्शन देने के लिए आ गये। उनके सामने प्रश्न था कि ब्राह्मण रामानुज को अब्राह्मण मत्स्यजीवी हम लोग दीक्षा कैसे दें? महापूर्ण ने दीक्षा-मन्त्र देने का निश्चय किया। मदुरा के श्रीविष्णु मन्दिर में दीक्षा दी गई रामानुज और उनकी पत्नी जमाम्बा को। जमाम्बा कैसी कठोर थी— उसकी एकोक्ति से परिचय है—

स्त्रीपुंसौ परिणीय संसृति-सुखं स्वैरेवपुत्रादिभिः
सेवेत सततं न कोऽपि पथिकान् गेहे स्वके वासयेत्।
दुर्दैवात् पतिरेष मे परभृता तुल्यः परान् पोषयन्
आसक्ति तनुमप्यहो न तनुते दारेष्वगारेषु च॥ ९. ८६

यह जमाम्बा ने तब कहा, जब उसे अपने गुरु और गुरुपत्नी की पति द्वारा अपने घर में सेवा असह्य हो उठी। उसके अपवादों से वहाँ से गुरु और गुरुपत्नी चलते बने। तब जमाम्बा ने कहा—

अहो महान् मे मनसः प्रसादो मयि प्रसादाभिमुखश्च धाता।
चिराय चित्ते मम कीलितो यो बहिष्कृतः सोऽद्य गुरुः सदारः॥ ९.९०

थोड़ी देर में बाजार से गुरु के सत्कार के लिए वस्तुयें लेकर जब रामानुज आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि कैसे जमाम्बा ने गुरुपत्नी का अनादर करके उन्हें भगाया है। उन्होंने पत्नी को छोड़कर संन्यास लेने का निर्णय लिया और विमल यतीन्द्र नाम धारण किया।

वरदराज ने यादवप्रकाश को स्वप्न दिया कि तुम रामानुज के शिष्य बनो, तभी कल्याण होगा। यादव रामानुज से मिले। रामानुज ने उनके पूछने पर सगुण ब्रह्म का विवेचन किया और मुक्त जीव की स्थिति स्पष्ट की। रामानुज के शिष्य कुरेश ने भी यादव के कतिपय प्रश्नों का समाधान किया। रामानुज ने उनका नवीन नामकरण किया गोविन्ददास और उनसे यतिधर्म-समुच्चय लिखवाया।

यज्ञमूर्ति ने १८ दिनों तक रामानुज से विवाद किया और अन्त में उनकी समझ में बात आई कि व्यर्थ है विवाद। रामानुज के पैरों पर वे गिर पड़े। उनका नवीन नाम रामानुज ने देवराज रख दिया।

एकादश अंक में गोष्ठीपूर्ण से रामानुज का सवाद हुआ। रामानुज ने उनसे दीक्षा ली। आचार्य ने कहा कि इसे किसी को बताना मत, पर रामानुज ने उसे सबको सुनाने का काम सफलतापूर्वक निष्पन्न किया। मन्त्र है—नमो नारायणाय। गुरु को क्रोध आया कि मन्त्र का यह दुरुपयोग कर रहा है। उन्होंने कहा कि रहस्य-मन्त्र का प्रकाशन करने से तुम नरक में जाओगे। रामानुज ने कहा कि मैं नरक में जाऊँ—यह दुःखप्रद नहीं है, किन्तु मन्त्र सुनने वाले तो स्वर्ग में जायेंगे ही—यह सुख का विषय है। फिर तो गोष्ठीपूर्ण ने कहा कि मेरे गुरु आप हैं। रामानुज के असहमत होने पर उन्होंने अपने पुत्र सौम्यनारायण को शिष्य बनवा दिया।

कश्मीर से बोधायन-वृत्ति रामानुज को मिली। कश्मीरियों ने वह ग्रन्थ उनसे बलात् ले लिया। पर इस बीच में शिष्य कुरेश ने इस ग्रन्थ को कण्ठाग्र कर लिया था। रामानुज ने कुरेश को बताया कि जीव स्वरूपतः नित्य और ज्ञाता है। श्रीरंग में रामानुज ने ब्रह्मसूत्र का वैष्णव भाष्य लिखना आरम्भ किया।

त्रयोदश अङ्क में रामानुज के दिग्विजय का वर्णन है। दक्षिण देशों में भ्रमण करके रामानुज भूस्वर्ग कश्मीर में पहुँचे। वहाँ कश्मीर नरेश से वे मिले। राजा को शोक था कि वहाँ के पण्डितों ने रामानुज का समुचित सम्मान नहीं किया। वहाँ सरस्वती ने आकाशवाणी की कि बोधायनवृत्त्यनुसारी ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य अनुत्तम है।

चतुर्दश अङ्क के अनुसार भारत के कोने-कोने में भागवत धर्म का प्रचार हो गया है।

कुरेश के दो पुत्र हुए—पराशर और शठकोप। रामानुज ने इनके लिए आशीर्वाद दिया—

पराशरोऽयं क्षुरधारबुद्धिः सर्वज्ञभट्टप्रभृतीन् सुधीरान्
विद्याविवादे परिभूय बाल्ये काले यशस्वी भविता विशेषात् ॥

धनुर्दास अपनी सुन्दरी हेमाम्वा के नयनयुग्म पर मुग्ध था। रामानुज ने उसे श्रीरंगनाथ स्वामी को पास से दिखाया। वह उनका दासानुदास बन गया। उसे रामानुज ने अपने घर के समीप आश्रय दिया। किसी रात चोर आये और उसकी पत्नी के गहने पूरे नहीं चुरा पाये, क्योंकि उसने उन्हें बचाने के लिए करवट बदल कर यह प्रकट किया कि मैं जग रही हूँ। धनुर्दास ने कहा कि ममत्व बुद्धि छोड़ो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। रामानुज ने इनका आदर्श शिष्यों के समक्ष रखकर समझाया—

न जातिः कारणं लोके गुणाः कल्याणहेतवः।

षोडश अङ्क में रामानुज के वैरी चोल-नरेश से कुरेश की मुठभेड़ होती है। कुरेश रामानुज के वेश में है। चोलनरेश कृमिकण्ठ शैव था। रामानुज ने उसकी बहिन को ब्रह्मराक्षस के ग्राह से मुक्त किया। कृमिकण्ठ यह आभार मानता था। कुरेश ने आते ही कहा—सबको विष्णु की पूजा करनी चाहिए। यह सुनकर कृमिकण्ठ ने कहा—तुम भाँड़ हो, जो शिव छोड़कर विष्णु के समर्थक हो। चोलराज ने आदेश दिया कि इसे अन्धा करो। उसकी आँख निकाली गई। उसी समय घनघोर तूफान आया। उसने राजा का उपकार माना कि अब मनश्चक्षु से केवल भगवान् को देखूँगा। तभी किसी भिक्षु ने आकर राजा को धिक्कारा। वह कुरेश को लेकर रामानुज के पास श्रीरंग के सान्निध्य में पहुँचा।

सप्तदश अङ्क में श्रीरंग-मन्दिर के परिसर में रामानुज उस चाण्डाली रमणी को देखते हैं, जो उनसे मिलना चाहती थी, किन्तु पति के यह कहने पर उनके पास नहीं गई कि ये ब्राह्मण हैं। रामानुज ने पास खड़े सभी चाण्डालों को हरिनाम-कीर्तन करने के लिए निकट बुला लिया। उस चाण्डाल-रमणी के पूछने पर रामानुज ने उसे बताया—

सर्वे वयं भगवत्सन्तानाः।

और भी—चाण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः॥

चाण्डाल पत्नी धन्य हो गई।

सोलहवें अङ्क में कुरेश का रामानुज बनकर कृमिकण्ठ नाथ से संवाद करना छायातत्त्वानुसारी है।[1] इस अङ्क के आरम्भ में कतिपय अन्य अङ्कों के समान ही एकोक्ति विष्कम्भक रूप में सूचनार्थ भी प्रयुक्त है।

विमलयतीन्द्र जीवन-चरितात्मक नाटकों में सविशेष प्रभाविष्णु है।

दीनदास-रघुनाथ

यतीन्द्र का 'दीनदास-रघुनाथ' उनके कतिपय अन्य नाटकों की भाँति वैष्णव

---

१. वेषः कैतवतो यदेष विहितस्तन्मे गुरुर्मृष्यतु। १६. १३४

विचारधारा का प्रतिपादक है।[1] इसका अभिनय महाप्रभु चैतन्य के ४७४ वर्षीय जन्मदिवस पर हुआ था। फाल्गुन-पूर्णिमा की रात्रि थी। इसके पहले महाप्रभु हरिदास का अभिनय हो चुका था। कवि ने इसमें १२ अङ्क होने के कारण इसे महानाटक कहा है।

कथावस्तु

कथानायक रघुनाथ कोटिपति का पुत्र होते हुए दैन्यमूर्ति-त्यागावतार सप्तग्रामस्थ कृष्णपुर निवासी है। उसकी पत्नी साधुवृत्ति वाली थी। पति राधा भक्त और पत्नी कृष्ण-भक्त थी। गोवर्धनदास, रघुनाथ के पिता ने देखा कि रघुनाथ हाथ के बाहर जा रहा है। उसके अतिरिक्त कोई उत्तराधिकारी नहीं था। उसे घर में रोके रखने के लिए क्षण-क्षण की खबर रखने वाले नौकर-चाकर रखे गये।

एक दिन रघुनाथ माता से मिला और बोला कि मुझे तो चैतन्य महाप्रभु के उपदेश स्मरण आ रहे हैं। उनसे मिलने जाना है। इस बीच भूस्वामी मुसलमान ने र्ुनाथ के पिता को बन्दी बनाना चाहा। वे घर छोड़ कर भाग गये, पर रघुनाथ वहाँ मिले। उन्हें कारागार में भेज दिया गया। अपने पिता और चाचा का पता बताने पर वे जेल से छूट सकते थे, पर ऐसा नहीं किया। उजिर ने कहा—

सर्पस्य तुण्डे लघुदर्दुरस्त्वं करोषि लम्फं नितरामशान्तम्।
कण्ठस्तथायं न चिराय रुद्धो यथा भवेत्तन्न भव प्रबुद्धः॥ १.३७

रघुनाथ ने कहा—श्रीराधिका की जैसी इच्छा हो, वही हो। चौधुरी ने उन्हें देखा तो प्रसन्न होकर उन्हें कारागार से बाहर कर दिया और सारी सम्पत्ति दे दी।

रघुनाथ विराग के कारण घर से बाहर रहने लगा था। उसने पिता की अनुमति लेकर नित्यानन्द से भेंट की। नित्यानन्द ने उनके कभी छिप जाने पर दण्ड दिया कि पानिहाटी के सभी निवासी दही और चिउड़े से उसका स्वागत करेंगे। तभी से वहाँ दण्ड-महोत्सव का प्रवर्तन हुआ। इसमें दही, चिउड़ा, केला और मिठाई लोग खाते-खिलाते हैं।

चतुर्थ अङ्क में रघुनाथ पिता की आज्ञा लेकर महाप्रभु से मिलने के लिए पुरीधाम की ओर चले। मार्ग में चौथे दिन दस्युदलपति से भेंट हुई। रघुनाथ ने अपने पिता का परिचय दिया, जिसे दस्यु जानते थे कि बहुत समृद्धिशाली है। दस्यु की आज्ञा हुई कि अपना सर्वस्व दे दो। रघुनाथ ने कहा कि मेरे पास तो कानी कौडी भी नहीं है। दस्यु ने कहा कि बाप को चिट्ठी लिख दो कि एक लाख स्वर्ण मुद्रा मेरी मुक्ति के लिए पत्रवाहक के हाथ भेज दें। रघुनाथ ने कहा कि मेरे बाप का धन मेरा तो नहीं है। मैं इस विषय में उन्हें कुछ भी नहीं लिखूंगा। तब तो रघुनाथ को पेड़ से बाँधा गया और उनका प्राण लेने के लिए धनुष पर तीर चढ़ाया गया। वहीं कपिलाक्ष नामक एक डाकू था, जिसके पुत्र की आकृति

१. १९६२ ई० में प्राच्यवाणी से कलकत्ते से प्रकाशित।

रघुनाथ से मिलती थी। उसने दस्युपति से कहा कि आपके वाण से मर गया तो सोने की चिड़िया उड़ गई। मारिये मत। इसके घर जाकर मैं स्वयं धनराशि लाता हूँ। उसको भी मारने के लिए दस्युदल उद्यत हो गया। तब तक दस्युपति की स्त्री आई। उसने रघुनाथ के महानुभाव को जान और देखकर पति से कहा—इस महात्मा को न मारो। इस प्रकार रघुनाथ छूटे। दौड़-धूप कर १२ दिनों में वे पुरी पहुँचे।

पुरी में महाप्रभु ने आनन्द-निर्भर होकर उनका आलिंगन किया और उनके लिए सुव्यवस्था कर दी। महाप्रभु ने उन्हें स्वरूप से शिक्षा ग्रहण करने का आदेश दिया—

यथोपयुक्ता शिक्षा तस्मै देया त्वया सयत्नेन ॥ ६.६२

एक दिन महाप्रभु ने उन्हें शिला और गुंजा दिये, जो क्रमशः कृष्ण और राधा के प्रतीक थे। रघुनाथ उनका चरण छूकर आनन्द-निर्भर होकर मूर्छित हो गये।

मरने के पहले रघुनाथ वृन्दावन आ गये। वहाँ उन्होंने महाप्रभु की सच्ची चरित-गाथा रामानन्द, स्वरूप, दामोदर आदि भक्तों को सुनाई। दसवें अंक में रूप, सनातन और रघुनाथ बातचीत करते हैं। रघुनाथ राधा के विशेष भक्त होने के कारण राधाकुण्ड पर रहने लगे थे। उन्होंने श्रीजीव और रघुनाथ भट्ट को मातृ-आराधना का माहात्म्य समझाया। मरने के कुछ दिन पहले रघुनाथ नित्यानन्द की पत्नी जाह्नवी देवी के सम्पर्क में आये। दोनों एक दूसरे को देखकर रोते रहे। अन्त में जननी का गीत है—

जननी स्वर्गः क्षितितलगर्वः
शमयतु सुतगण मानसदुःखम् ॥

यतीन्द्र का 'धृतिसीतम्' सम्भवतः १९७० ई० तक प्रकाशित नहीं हुआ। इसमें सीता की चरित गाथा है।

समीक्षा

अपने नाटकों के विषय में लेखक यतीन्द्र का अभिमत प्रेरणाप्रद है। यथा,

It has been my ambition to popularise Sanskrit amongst all sections of people of India. And it is for this purpose that our dramas have been composed. The easy flow of Sanskrit must not fin any impediment in the rocky thickets of obsolete words or cross-currents of peculiar uses and easy Sanskrit, I have learnt from experience, is quite intelligible to Indians with an average education. Ānandarādham Page VIII Preface.

जहाँ तक यतीन्द्र के नाटकों में शास्त्रीय विधानों की मान्यता का प्रश्न है, यह असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि उन्हें शास्त्र की चिन्ता कम थी। उनको अपनी बात कहनी थी और उन बातों का समावेश येन-केन प्रकारेण वे कर ही देते थे, चाहे नाटकीयता ऐसा करने से हीन ही क्यों न होती हो। लोकरुचि का उन्हें

विशेष ध्यान था। इसके लिए वे हास्य रस की निष्पत्ति के लिए छोटे स्तर के पात्रों की बेतुकी या अनावश्यक बातो का समावेश करने मे नही चूकते थे। प्रेक्षकों को नृत्य-गीत का बडा चाव होता है। नृत्य-गीतों और स्तुतियो का जितना बडा संग्रह यतीन्द्र के नाटको मे है, उतना अन्यत्र दुर्लभ ही है।

जीवन-चरितात्मक नाटको में चुस्ती नही होती और न वह कार्य-क्रम-विन्यास होता है, जो स्वाभाविक उत्सुकता आपादित करे। यतीन्द्र को ऐसे ही नाटक लिखने थे। ऐसी स्थिति मे वे जानबूझ कर एक अनगढ़ मार्ग पर चले, जिस पर कलात्मक सौष्ठव की उपलब्धि दुष्प्राप्य है। शृंगारित प्रवृत्तियो से नाटक को अछूता रख कर यतीन्द्र ने सस्कृत के नाटककारो को प्राचीन गड्डरिका से बाहर निकलने की दिशा दी है। निस्सन्देह जिस उद्देश्य को लेकर नाटक लिखना यतीन्द्र ने आरम्भ किया था, उसमे उनको यथेष्ट सफलता मिली है।



अध्याय ११९

रमाचौधुरी का नाट्यसाहित्य

डा० यतीन्द्र विमल चौधुरी की पत्नी रमाचौधुरी ने भी अपने पति के समान ही बहुसंख्यक संस्कृत नाटकों की रचना की है। उन्होंने यतीन्द्र के साथ इंग्लैण्ड में अध्ययन करके दर्शन-विषय पर आक्सफोर्ड से डी० फिल० की उपाधि ली थी। वे ३० वर्षों तक लेडी ब्राबोर्न कालेज में प्रिंसिपल रहीं और सात वर्षों तक रवीन्द्र-भारती-विश्वविद्यालय का कुलपति थीं। वे भारत की उन गण्यमान आदर्श महिलाओं में अद्वितीय हैं, जिनकी कर्मठता, कला-साधना और औदात्त्य से भारत-भारती महिमान्वित है।

डा० रमा के पितामह आनन्द-मोहन वोस उच्चकोटिक विद्वान् बैरिस्टर होने के साथ ही इण्डियन नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे। वे साधारण ब्रह्मसमाज के संस्थापकों में से एक थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा इंगलैण्ड में भी हुई थी, जहाँ उन्होंने गणित-विषय में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से रैंगलर उपाधि अर्जित की थी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र वसु उनके पिता के मामा थे। रमा के मामा प्रयाग-विश्वविद्यालय के अध्यक्ष प्रोफेसर ए० सी० वनर्जी थे। रमा के पिता सुधांशु-मोहन वोस बैरिस्टर थे और वंगीय पब्लिक-सर्विस-कमीशन के अध्यक्ष थे। ऐसे अभिजात कुल में उत्पन्न रमा का विद्यार्थी-जीवन प्रतिभापूर्ण उपलब्धियों से मण्डित है। कलकत्ता-विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सदा सर्वप्रथम स्थान पाती हुई उन्होंने दर्शन-विषय से तब तक के सभी वर्षों के उत्तीर्ण छात्रों से अधिक अङ्क प्राप्त किये।

गत बीस वर्षों से रमा प्रतिवर्ष भारत और विदेशों में भी अपने और यतीन्द्र के नाटकों का महान् स्तर पर बीसों बार मंचन करा कर भारतीय सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को पुरातन और कल्याणमय मोड़ देने में जीवन की सार्थकता मानती रही हैं। उनके व्यक्तित्व की महिमा के फल-स्वरूप उनको बीसों सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओं का सदस्य और अध्यक्षादि बनाया गया। १९७० ई० में जर्मन-सरकार के द्वारा उनका उच्चकोटिक भारतीय नागरिक के रूप में सम्मान किया गया। १९७१ ई० में रूसी सरकार के निमन्त्रण पर दो अन्य कुलपतियों के साथ वे रूस गई थीं।

संस्कृत नाटकों के अतिरिक्त रमाचौधुरी की प्रकाशित कृतियाँ अधोलिखित हैं—

अंगरेजी में

1. Doctrines of Nimbārka and his Followers in 3 Vols.
2. Sufism and Vedānta.
3. An Indo-islamic Synthetic philosophy.
4. Doctrines of Śrikaṇṭha in 3 Vols.
5. Sanskrit and prakrit poetesses.

6. Philosophical Essays.

7. Ten Schools of Vedānta 3 Vols.

बङ्गाली में

७. दशवेदान्त सम्प्रदाय ओ बंगदेश

८. साहित्यकण

९. संस्कृताङ्कुरोम

१०. निम्बार्कदर्शन

११. वेदान्तदर्शन

१२. सूफीदर्शन ओ वेदान्त

ऐसा लगता है कि नाटक लिखने का काम रमा चौधुरी ने अपने पति की नाट्य-सम्बन्धी-प्रवृत्तियों को अपनाकर उन्हें अमर करने के उद्देश्य से अपने ऊपर लिया। रमा के नाटकों को देखने से प्रतीत होता है कि उनमें यतीन्द्र के नाट्यकार के अंश की अवतारणा हुई है।[1] पति के दिवंगत होने के चार वर्ष के भीतर उन्होंने लगभग २० नाटक लिखे।

शङ्कर-शङ्कर

रमा के 'शंकर-शंकर' का प्रथम प्रयोग प्राच्यवाणी के १९६५ ई० में २२ वें प्रतिष्ठा-दिवस के उपलक्ष में हुआ था। यह रमा की सम्भवतः द्वितीय नाट्य-रचना है। पहला नाटक उनके पति के नाम पर 'यतीन्द्र-यतीन्द्र' है। भारतीय दूतावास के तत्त्वावधान में इसका अभिनय रमा ने कराया था, जिसके प्रेक्षकों में नेपाल-नरेश महाराज महेन्द्र सकुटुम्ब विराजमान थे। महाराज ने सभी पात्रों को प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपनी ओर से पुरस्कार वितरण किया था।

कथावस्तु

शिवगुरु ने महादेव के प्रत्यक्ष होने पर वर माँगा कि मुझे पुत्र उत्पन्न हो। शिव ने सर्वज्ञ किन्तु अल्पायु पुत्र दे दिया। शंकर की कृपा से प्राप्त पुत्र का नाम शङ्कर रखा गया।

शंकर आठ वर्ष के हुए। एक दिन वे निकट ही नदी में स्नान करने गये। शङ्कर ब्रह्मचारी बन चुके थे। वहीं केरल का राजा राजशेखर उनका दर्शन करने आया। उसने कहा कि आप श्रेष्ठ संन्यासी हैं। मेरे घर को अपने चरण रज से पवित्र करें। राजा एक हाथी, बहुत सारी स्वर्ण-मुद्रायें आदि शंकर को देने के

१. रमा के 'शंकर-शंकर' की प्रस्तावना के अधोलिखित वाक्य से यही ध्वनित होता है—

यतो यतिश्रेष्ठ-यतीन्द्र-विमलस्य पुण्य-जीवनसाधनापि न म्लाना शुष्का च भविष्यति कदापि। सा प्रस्फुटिता राजिष्यते निरन्तरं यतीन्द्रविमल-जीवन-सर्वस्वाया यतीन्द्रविमलैकजीवनाया डाक्टर-रमाया रमणीय-जीवने।

लिये लाया था। शंकर ने उसे छुआ भी नहीं। वह राजा शंकर से उपदेश लेकर चला गया। तब तक शंकर की माता विशिष्टा वहाँ आईं। उन्होंने कहा कि आठवें वर्ष में आपको मृत्यु-योग है। इसी डर से आ गई। शंकर ने कहा कि मुझे संन्यासी बन जाने दें। संन्यासी को मृत्यु-भय नहीं होता। माता ने कहा कि मैं विधवा हूँ, फिर मेरा क्या होगा ?

शङ्कर माता की अनुमति लेकर नदी में स्नान करने पहुँचे। वहां उन्हें ग्राहने पकड़ा। उन्होंने माता की पुकार की। कोई शंकर को बचा न सका। शंकर ने माता से कहा कि अब तो मरना ही है। संन्यासी बन जाने की अनुमति दें तो मोक्ष मिले। माता ने लाचार होकर अनुमति दी। शङ्कर बच गये। पर फिर माता उन्हें नहीं छोड़ रही थीं। इस शर्त पर शंकर को छुट्टी मिली कि माता कभी स्मरण करें तो शंकर उपस्थित हो जायें। शंकर ने प्रव्रज्या ली।

तृतीय दृश्य का आरम्भ शङ्कर की एकोक्ति से होता है, जिसमें वे गुरुवन्दना करते हैं, दिवस-लक्ष्मी की चर्चा करते हैं, अपने आश्रमावास के दो मास की अनुभूतियाँ बताते हैं, नर्मदा–तपोविभूति की वर्णना करते हैं और नर्मदा की स्तुति करते हैं। वहीं उनको कतिपय संन्यासी ओङ्कार नाथ नामक स्थान पर मिलते हैं। एक ने उन्हें देखा—

कान्तेः स्फुटत्वान्न शशाङ्क एष द्युतेरतैक्ष्ण्यान्न सहस्त्ररश्मिः।
स्फुटप्रकाशोऽखरदीप्ति-रम्यः क एष तेजस्विवरोऽतिसौम्यः ।।

उन्हें आश्चर्य था कि केरल से बालक संन्यासी बनकर इतनी दूर आये। शङ्कर ने उनका समाधान किया—भगवता सह मेलनकामि प्रेमैव कारणम्।

शङ्कर के मनोनीत आचार्य गोविन्दपाद चिरकाल से समाधि-मग्न थे। उनकी समाधि की स्थिति समाप्त होने में अनेक संन्यासियों की उत्सुकता थी। गुरु की अन्धेरी गुफा में दीप लेकर शंकर ने प्रवेश किया। शङ्कर ने स्तुति से उनकी अर्चना की और उनके पूछने पर अपना परिचय दिया—

नादिर्ममान्तो न च देशकालौ न नामरूपे विदिते मम स्तः।
द्वितीयहीनं पुनरस्मि तत्त्वं सत्तास्मि सत्यं च तथाद्वितीयम् ।। ३.४२

नाम सुनकर आचार्य ने कहा कि चिरकाल से मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम शिव हो।

गोविन्दपाद के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और 'तत्त्वमसि' कहते ही शंकर जीवन्मुक्त हो गये, पर गुरु के आदेशानुसार लोकहितार्थ पार्थिव जीवन-धारण कुछ समय के लिए करने को उद्यत हो गये। आचार्य ने आदेश दिया—

दिग्विजयं कुरु, प्रचारय महिममयं ब्रह्मतत्त्वम्—सर्वमेव ब्रह्म।

चतुर्थ दृश्य में शङ्कर वाराणसी आते हैं। साथ में उनके शिष्य पद्मपाद-सनन्दन हैं। उनको शिक्षा देने के लिए सद्योविधवा मिली, जो अपने पति के शव के पास पड़ी रो रही थी। शव को हटाने के लिए कहने पर उसने उत्तर दिया कि यह भी

तो ब्रह्म ही है। वह हटे, उसी को ऐसा आदेश दें। तब उसके समझाने पर शंकर को ज्ञान हुआ कि ब्रह्म के अतिरिक्त शक्ति भी है। यथा,

तत्र शक्तिस्वरूपिणी जगज्जननी एव कर्त्री, धर्त्री हर्त्री। जगति सर्वमेव सा। सा हि केवलम्।

आगे उन्हें चार कुक्कुरो के साथ चाण्डालराज मिला। शिष्य ने उसे डाँटा कि अपवित्र कुत्तो के साथ तुम अपने को मार्ग से हटाओ। चाण्डाल उस पर और अधिक बिगडा और शंकर से प्रश्न पूछे—तुम मेरे शरीर या मेरी आत्मा को कुक्कुर हटाने का आदेश दे रहे हो। मैं, चाण्डाल और मेरे कुक्कुर भी तो ब्रह्म ही हैं। इनसे घृणा कैसी? यह कहकर वह अन्तर्धान हो गया।

शङ्कर की समझ मे आ गया कि सब कुछ ब्रह्म है—यह ज्ञान के स्तर पर तो ठीक है, किन्तु व्यवहारत कठिन है।

आगे शंकर को प्रत्यक्ष हुए शिव मिले। उन्होने कहा कि पहले तो ब्रह्मसूत्र का नवीन भाष्य लिखो। वहाँ से शिव की आज्ञानुसार ब्रह्मसूत्रभाष्य लिखने के लिए शङ्कर बदरिकाश्रम चलते बने।

पञ्चम दृश्य मे शंकर बदरिकाश्रम के व्यासतीर्थ में हैं। ब्रह्मसूत्र-भाष्य पूरा हो गया। वे शिष्यो के साथ दिग्विजय के लिए चल पड़े। इस बीच उन्होंने उपनिषदादि का भाष्य भी लिख दिया।

षष्ठ दृश्य में शङ्कर गोमुखी-तीर्थ मे जा पहुँचे। वहाँ हिमाचल, भागीरथी और द्यौ का मजुल मिलन शंकर को परानन्द में परास्त कर रहा था। सप्तम दृश्य में शङ्कर का आनन्दगिरि के गुरु वृद्ध ब्राह्मण से उत्तरकाशी मे विवाद होता है। गुरु ने बताया कि आचार्य शंकर की आयु सोलह वर्ष और बढ गई। उनकी जीवन-अवधि अब ३२ वर्ष हो गई। वह वृद्ध ब्राह्मण वेदव्यास था। वेदव्यास ने शंकर-कृत ब्रह्मसूत्र-भाष्य पढा।

अष्टम दृश्य मे प्रयाग मे शंकर कुमारिल से शास्त्रार्थ करते है। वे तुपानल में आत्मदाह करने ही वाले थे, तभी शंकर वहाँ उनके पास आ पहुँचे। शंकर उनको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। कुमारिल ने प्रसन्नता का कारण पूछा तो उन्होने कहा कि आज आपकी बलि दूँगा। मेरे वेदान्त-यज्ञ की बलि के लिए आप सर्वोत्तम हैं। कुमारिल ने कहा कि मैं तो चितारोहण कर रहा हूँ, अपने दो पापों के प्रायश्चित्त स्वरूप—पहले तो मैं मीमासा पढ कर निरीश्वरवादी हो गया और दूसरा पाप है बौद्ध गुरु-वध। कुमारिल बौद्ध विहार में धर्मपाल नामक आचार्य से पढते थे। धर्मपाल ने वेद की निन्दा की। कुमारिल को यह असह्य था। उनके प्रतिवाद करने पर धर्मपाल ने उन्हे उच्च प्रासाद से नीचे पटकवा दिया, पर वह अक्षत रहे। फिर धर्मपाल ने उनसे शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ में हारे तो समयानुसार तुपानल मे जल मरे। उपर्युक्त वृत्तान्त बताकर कुमारिल जल मरे। उन्होने कहा कि मेरे शिष्य मण्डन से विवाद करो। उसकी पराजय मेरी पराजय होगी।

माहिष्मती में १८ दिन विवाद करने पर भी शंकर न हारे तो मण्डन ने अपनी पत्नी उभय-भारती की सहायता ली। मण्डन पराजित होते दिखाई पड़े। उभय-भारती ने कहा कि मैं मण्डन की अर्धाङ्गिनी हूँ। मुझे पराजित करें तो मेरे पति पराजित माने जायेंगे। थोड़ी देर विवाद करके उभय-भारती भी शंकर से हारती दिखाई पड़ी। तब तो उसने कामशास्त्रीय प्रश्न किया। शंकर ने कहा कि मैं ब्रह्मचारी हूँ। कामशास्त्र के प्रश्न का उत्तर देने के लिए एक मास की अवधि दें।

दशम दृश्य में शंकर शैलतीर्थ में कापालिक उग्रभैरव से मिले। उग्रभैरव ने कहा कि शिव ने हमसे कहा है कि मोक्ष चाहते हो तो किसी सर्वज्ञ की बलि दो। शंकर अपनी बलि देने के लिए भैरवपीठ में पहुँचे। जब उग्रभैरव उनको मारने चला, तो शंकर के शिष्य वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उग्रभैरव को यमातिथि बना दिया।

एकादश दृश्य में शंकर कश्मीर में शारदापीठ जा पहुँचे। वहाँ मन्दिर-द्वार पर समागत विविध शास्त्रों के पण्डितों को पराजित करके ही वे भीतर जा सकते थे। शंकर ने उन सबको परास्त किया।

द्वादश दृश्य में शंकर कामरूप में तान्त्रिकों पर विजय प्राप्त करते हैं। तेरहवें दृश्य में नेपाल के पशुपति-मन्दिर में वामाचारी बौद्ध श्रमणों को वे पराजित करते हैं। वहाँ किसी श्रमण ने मारण-मन्त्र का उच्चारण करके शंकर को डराना चाहा। पर, उसके मन्त्र उसी को जलाने लगे। नेपालराज ने कहा कि वस्तुतः आप दिग्विजयी शंकर हैं।

चौदहवें दृश्य में शङ्कर केदारनाथ पहुँचते हैं। वहाँ ३२ वर्ष की अवस्था पूरी हो जाने पर अपने मरने के दिन वे अपनी उपलब्धियाँ बताते हैं कि चार प्रान्तों में चार मठों की स्थापना की—द्वारका में शारदा मठ, पुरी में गोवर्धन मठ, विष्णु-प्रयाग में ज्योतिर्मठ और रामेश्वर में शृंगेरी मठ। उनमें साम, ऋक्, अथर्व और यजुर्वेद का अध्ययन-अध्यापन विशेष रूप से करने की व्यवस्था की गई है। वे श्रीविग्रह में विलीन हो गये।

शिल्प

डॉ० रमा चौधुरी को संस्कृत में आधुनिक शैली के नाटक लिखने का अभ्यास है, यद्यपि वे आधुनिक तथाकथित पाश्चात्य शैली के साथ सौविध्यपूर्वक भारतीय शैली की नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य अवश्य जोड़ती हैं। उनके नाटकों का विभाजन अङ्कों में न होकर दृश्यों और पट-परिवर्तनों में हुआ है। डॉ० सतकड़ी मुकर्जी ने शंकर-शंकरम् की विशेषताओं का आकलन करते हुए कहा है—

But what has surprised me most is the wonderful ease and flow with which the present work represents to us the most abstruse philosophy of the great Advaitin Śankara. Who could have ever thought that any one would be able to serve the same under the guise of a Drama? But the supremely efficient and infinitely coura-

geous Dr. Ramā has been able to perform. Who could have thought her capable of producing such a superb dramatic work on Śaṅkara's holy life and teachings, in such a beautiful, poetic, enchanting easily intelligible language? Further, the numerous verses in different metres as well as the songs add much to the great glory of this exhilarating work of great literary and other kinds of merits.

But who could have ever thought that even Sanskrit dramas, generally supposed to be very difficult dead language dramas, could be made so very popular, and so very attractive to all, scholars and laymen, sanskritists and non-sanskritists, Indians and foreigners alike, with equal glory and grandeur, equal sweetness and softness, equal serenity and sublimity to no mean extent.[1]

यतीन्द्र के नाटकों की भाँति रमा के नाटक भी संगीत और स्तुति-बहुल है। जैसे भी हो, प्रत्येक अङ्क या दृश्य में दो-चार सांगीतिक स्वरलहरी सुनाई ही पड़ती है।

यतीन्द्र के नाटको की भाँति रमा के नाटको मे भी एकोक्तियो का विलास समुदित हुआ है। किसी नायक को अकेले मे रखकर उसके मनोभावों को सुनाने की कला रस की दृष्टि से पर्याप्त समर्थ है। अनेक दृश्यो का आरम्भ शंकर की एकोक्ति से होता है। एकोक्तियो मे वर्णना के माध्यम से कवि-हृदय स्वयं प्रकृति से संवाद करता है। यथा,

सुनीलगगने कोमलपवने चलति ज्योत्स्ना-तरणी।
ऊर्मिमूलिका मेघमालिका नृत्यति मानस-भरणी॥ ५.५०

शङ्कर की उपस्थिति में शंकर के शिष्य का चाण्डाल को मारने-कूटने की बात कहना अशोभनीय है। यह प्रकरण हास्य की दृष्टि से भले रोचक हो, किसी उच्च कोटिक नाटक में ऐसे प्रसंग नही पिरोना चाहिए था।

पहले के अपने वृत्तान्त को नायक से बताने के लिए कोई पात्र उसकी सूचना न देकर उसका अभिनय रंगपीठ पर कर देता है। पूर्ववृत्त के सम्बद्ध नायक पटान्तरण के द्वारा समक्षित कर दिए जाते हैं। शंकरशंकरम् के अष्टम दृश्य में इस उद्देश्य से दृश्याभ्यन्तर दृश्य का प्रयोग करके कुमारिल के भूतपूर्व गुरुवध-पाप का *वृत्तान्त बताया गया है।*

दशम दृश्य मे रगमंच पर शिरश्छेद करने का दृश्य दिखाना अपवादात्मक घटना है। ऐसे दृश्यो मे इन्द्रजालिक प्रदर्शन रोचक होता है।

नाटक मे कतिपय स्थलों पर अनावश्यक प्रसंग अतिशिथिल ढंग से विन्यस्त होने के कारण असमीचीन प्रतीत होते हैं। एकादश दृश्य मे पण्डितों से शंकर का विवाद ऐसा ही प्रसंग है।

---

१. Blessings प्रकाशित शंकरशंकरम् में संसक्त।

देशदीपम्

देशदीप में उन भारतीय वीरों की जीवन-गाथा पर प्रकाश डाला गया है, जो देश-रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं। इसका अभिनय डॉ० यतीन्द्र-विमल चौधुरी के जन्मोत्सव के उपलक्ष में हुआ था।

कथावस्तु

किसी गाँव में ब्रह्मबल, उसकी पत्नी आराधना, पुत्र चम्पकवदन और कन्या पंकजनयना का किसान परिवार रहता था। चम्पक-वदन कलकत्ता-विश्वविद्यालय का छात्र था और अवकाश में अपने धनी साथी अभ्रप्रतिम के साथ आया था। उन्हीं दिनों भारत को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध करना पड़ा। उस गाँव में रेडियो से समाचार मिला कि देश की रक्षा के लिए अधिकाधिक दान दें। ग्रामवासियों के सभी नरनारियों की एक सभा हुई, जिसमें अभ्रप्रतिम ने अतिशय विनय-पूर्वक व्याख्यान दिया कि हम अपना सर्वस्व इस देश-रक्षा-यज्ञ में होम कर दें। ग्रामवासी रहीम ने ग्रामवासियों की भावधारा का परिचय इन शब्दों में दिया—

श्रेष्ठं व्रतं तत् खलु जीवनस्य स्वदेशमातुर्नियतार्चनं यत्।
आलोकरेखा फलमम्बु वायुर्यस्याः सदा रक्षति जीवनं नः॥
धन्यं भवेदर्जनमर्पणेन दानेन धन्यं ग्रहणं हि लोके।
यदर्जितं जीवनमद्य मातुर्देयं तदस्यै बहुमानपूर्वम्॥ ३.११

चम्पकवदन और अभ्रप्रतिम दोनों ने देशरक्षा का व्रत लिया। चम्पकवदन पदचारी सैनिक बनने के लिए निकल पड़ा और अभ्रप्रतिम वायुसेना में भर्ती होने के लिए चल पड़ा। चम्पकवदन की माता ने इस अवसर पर आशीर्वाद दिया—

सर्वोपरिष्ठाद् भव देशदीप आलोकधारां वितरात्र देशे।
मार्गच्युतो द्रक्ष्यति येन मार्गं जनिष्यते येन च विश्वमिद्धम्॥

पंचम दृश्य में विपुलविक्रम नामक धनी लम्पट पंकजनयना का विवाहार्थी बन कर उसके घर आता है। आराधना ने कहा कि हम लोगों का एक आचाराचरण का स्तर है। उसके समरूप वर को ही कन्या दी जायेगी। मेरी सरल कन्या का आपकी अर्धाङ्गिनी बनना ठीक न रहेगा। मेरी कन्या देशभक्त है और आप विपरीत हैं। तब तो विपुल विक्रम के रोष का पारावार नहीं रहा। उसने कहा कि चींटी की भाँति तुम लोगों को पीस दूँगा।

छठें दृश्य में पंकजनयना युद्धक्षेत्र में चली जाती है। लड़का तो चला ही गया था। माता-पिता ने हृदय पर पत्थर रखकर लड़की को भी घायल सैनिकों की शुश्रूषा करने के लिए जाने की अनुमति दे दी। उसी समय विपुल विक्रम आ पहुँचा। उसके पूर्व प्रस्ताव की चर्चा करने पर पंकजनयना ने कहा कि मैं परिचारिका बनकर युद्ध-भूमि में जवानों की सेवा करने के लिए जा रही हूँ।

सप्तम दृश्य में कुक्कुट और पेचक नामक दो ठग सड़ी मछली और सड़े फल को

धोखा-धड़ी से अच्छे के भाव पर बेचने की योजना को झाड़ू लगाने वाली ध्वस्त करती है। अष्टम अङ्क में हिमाञ्चलीय प्रत्यन्त देश में युद्धभूमि मे चम्पकवदन डटा हुआ है। जहाँगीर नामक साथी सैनिक से उसकी बातचीत होती है कि हमारा संग्राम आदर्श की रक्षा करने के लिए है। यह संग्राम नही, तपस्या है, साधना है, आराधना है।

उनके पास कोई कुटिल गुप्तचर आता है, जो राह भूला ग्रामवासी बनकर उनके सेनासन्निवेश मे शरण चाहता है। चम्पकवदन ने उसको भागने के लिए उद्यत देख कर बन्दी करना चाहा। उसने पिस्तौल से उसकी हत्या करने के लिए आक्रमण किया। जहाँगीर ने चम्पक की रक्षा कर ली। गुप्तचर मारा गया। इस समय अभ्रप्रतिम वायुयान से उनके पास आ गया। सभी प्रेम से सानन्द मिले।

नवम दृश्य मे चम्पकवदन के जन्म दिवस की घटनायें हैं। उसे अपने ग्रामकुटीर की स्मृति हो आती है। इस दिन वह कुछ कर गुजरना चाहता था। वह मातृभूमि की गौरव-पताका फहराने के लिए निकल पड़ा। निकट ही घोर युद्ध हो रहा था। समीप ही उसने भारतीय झण्डा गाड़ दिया और 'वन्दे मातरम्' गाया। तभी चम्पक-वदन शत्रु के शस्त्र से घायल होकर जहाँगीर को पुकारने लगा। वह चिकित्सालय मे लाया गया। उसके वाक्य थे—

अस्तं गच्छति मम जीवन-सूर्योऽपि। परन्तु कदापि नास्तं गमिष्यति भारतमातुर्महागौरवच्छविः।

वहीं अभ्रप्रतिम और पकजनयना भी आ गए। पंकज ने कहा—

न पार्थिवो जात्वसि चम्पकस्त्वं त्वं पारिजातः सुरलोकप्रजातः।
देशस्य चेतः सरसि प्ररूढ-पयोजवत्तिष्ठ चिरप्रकाशः॥ ९.८२

चम्पक ने पंकज से कहा कि माता से कह देना कि तुम्हारा देश-दीप सार्थक हो गया।

अन्त मे एक दिन पकज माता-पिता से मिली। उसके भाई के अमर होने का समाचार देने पर माता ने कहा—देशदीपो जातः।

शिल्प

संस्कृत-नाटकों मे गावो की ओर झुकाव कम ही दिखाई देता है। रमा ने इस नाटक मे गाँव को प्रमुख कार्यस्थली बनाया है।

हास्य प्रस्तुत करने की दिशा मे लेखिका ने कतिपय पात्रों के नाम पशुपक्षियों के नाम पर रखे हैं। यथा, मर्कट, वृक, कुक्कुट, पेचक इत्यादि। वे परस्पर सोपाधिक सम्बोधन करते है—प्राणनिर्झर, ज्ञानमार्तण्ड, जीवन-रस, प्राणसख, प्राज्ञश्रेष्ठ, हृदय-भास्कर, प्राणप्रदीप, हृदय-निकुंज-कोकिल, बुद्धिसरित्सागर, संसारार्णव-पोत, आनन्द-रत्नाकर, जीवन-सौरभ, हृदय-रंजक, गर्दभ-पुङ्गव, खिखरी-शोभिनी, छुछुन्दरी, रससागर। कतिपय पात्र अर्धविदूषक-से है। विपुल-विक्रम, कुक्कुट और पेचक ऐसे पात्रों में प्रमुख हैं।

रंगमंच पर ओयाक्, थुः थुः आदि से जो काम रमा ने लिया है, यह व्यंजना के द्वारा अथवा अनुभावों को ध्वनित करके लेना चाहिए था। अभिधा द्वारा वीभत्स की निष्पत्ति ठीक नहीं है। ऐसे ही गाली-गलौज का वातावरण सप्तम दृश्य में चिन्त्य है।

सड़े फल और सड़ी मछली को नदी में फेंकवाने के लिए सप्तम दृश्य पूरा का पूरा लेना गौण और सूच्य वस्तुको अनुचित महत्त्व प्रदान करना है। ऐसा नहीं होना चाहिए था।

अष्टम दृश्य में हिमाञ्चलीय प्रत्यन्त देश में युद्ध-भूमि में चम्पकवदन डटा हुआ है। यह नितान्त आदर्श-निर्भर दृश्य है।

दृश्यों का आरम्भ अनेकशः अकेले नायक के संगीत से अथवा समवेत संगीत से होता है। गीतराशि की मंजुलता पूरे नाटक में सुरुचिपूर्ण है।

नेता, कार्य स्थली और कथावस्तु की दृष्टि से इस नाटक की नवीन प्रवृत्तियाँ नाट्यसाहित्य की नई दिशा को इंगित करती हैं।

पल्लीकमल

पल्लीकमल नव दृश्यों का नाटक है। इसमें नायक रूपकुमार का नायिका कमलकलिका से विवाह की परिणति होती है। इसका अभिनय प्राच्यवाणी के सदस्यों के प्रीत्यर्थ सम्पन्न हुआ था।

कथासार

मधुमालती पल्ली की कन्या कमलकलिका प्रकृति के सौन्दर्य में खोई हुई सी सुप्रसन्न है। वह उषा को आनन्द-मालिका और अमृत-कलिका आदि कहती है। नदी उसके लिए मायाविनी है। उसकी माता तरंगिणी का उसका काव्यमय जीवन नहीं सुहाता। उसे फटकारती है कि यह सब क्या? चलो, घर के काम पड़े हैं। वह कहती है—

नाद्यापि लिप्ता गृहभित्तिभूमिर्न चाङ्गनं गोमय-तोयसिक्तम्।
निर्णेजनं भोजन-भाजनानामपेक्षते मामिह सा मयां किम्॥ १.१५

कमलकलिका रोने लगती है। गृहपति ब्रह्मबल उसका पक्ष लेता है और पूछता है कि क्यों रो रही है मेरी बिटिया? तरङ्गिणी उत्तर देती है—कहाँ की तेरी बिटिया? कहाँ मिली थी तुमको यह? इन सब बातों से कमलकलिका के मन में अपने विषय में कुछ प्रश्न उठे थे। इन प्रश्नों को लेकर एक दिन वह नदी तट पर ऊहापोह में पड़ी थी, जब उसकी सखी काञ्चनकणिका ने उसे उलाहना दिया कि आज तक तुमने अपने विवाह की बात न कही। कमलकलिका ने कहा कि मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं इस विषय में। कांचनकणिका अपनी साड़ी लाने घर की ओर गई। इस बीच कमलकलिका की साड़ी उड़कर नदी में जा गिरी। तब भी उस चोर नदी की उसने स्तुति की—

कलकलकलना हिमगिरि-ललना ललति ललिता लोभना।
विलुलित-चलना विलसित-वलना ललाटाभरण-शोभना ॥ आदि

थोड़ी देर में नायक रूपकुमार नौका-संगीत गाते हुए उसकी साड़ी लिये हुए वहाँ पहुँचा। प्रथम दृष्टि में कमलकलिका उसकी हो गई। पुनर्मिलन की आकांक्षा वाली कमलकलिका से उसने कहा कि परसों पूर्णिमा-रजनी में मेरी मयूख-मालिका नौका का जन्मोत्सव अर्धरात्र में यहीं होगा। आ जाओ।

तृतीय दृश्य में कमलकलिका ने अपने माता-पिता से स्पष्ट कह दिया कि मेरा विवाह नहीं होना है। मैं आप लोगों की चरणसेवा करती हुई जीवन बिता दूंगी। तरङ्गिणी ने बताया कि तुम्हारा वर तो भूम्यधिकारी राजा है। कलकत्ते में उसकी बड़ी कोठियाँ है। फिर भी वह तुम्हारी जैसी पल्ली-बाला से विवाह करने के लिए तैयार हो गया है। वह तुम पर मुग्ध है। कमलिनी ने स्पष्ट कहा—मुझे नहीं चाहिए वह ऐश्वर्य। एक दिन भूम्यधिकारी मार्तण्ड महोदय कन्या को देखने आये। उसके बाप प्रभंजन को वहाँ बैठने के लिए कुर्सी न मिली तो उसने तूफान खड़ा किया। अन्त में मार्तण्ड के चाहने पर वे सभी शान्त हुए और कमलकलिका सामने आ गई। प्रभजन के कहने पर उसने गाया—

विभुपद-वहनां दुष्कृत-दहनां नमामि जननीं पल्लीम्।
घनवन-गहनां परमत-सहनां विकसितकुन्दकमल्लीम् ॥ आदि

उन्होंने कन्या को सुयोग्य मान कर विवाह का दिन निर्णय करने के लिए कहा। कमलकलिका ने मन में सोचा—

को मां रक्षति व्याघ्र-कवलात्।

कन्या के मन को कुछ-कुछ समझने वाले पिता ने वरपक्ष की प्रार्थना को टाल दिया यह कहकर कि मुझे थोड़ा समय चाहिए। कन्या की सम्मति लेनी है।

चतुर्थ दृश्य कृष्ण के लिए प्रमत्त राधा की भाँति नायिका रूपकुमार का गीत सुनकर नदीतट पर आधी रात के समय जा पहुँची। वह रूपकुमार से प्रस्ताव करती है कि तुम्हारे साथ नौकाविहार इस निशीथ का सर्वोपरि वरदान है। फिर वे दोनों नाव पर चल पड़े। कमलकलिका ने अपने जीवन को उस क्षण सार्थक जाना।

रूपकुमार ने अपना परिचय दिया कि जब सात वर्ष का था तो एक शारद पूर्णिमा को इस नाव पर अपने को अकेला पाया। तब से यही मेरी सर्वस्व है। इसी दिन को मैं अपनी नौका की जन्मतिथि मानता हूँ। मैं सवेरे से आधी रात तक मनोमानुष और प्राणबन्धु को पाने के लिए मायाविनी में परिभ्रमण करता हूँ। वह प्राणबन्धु मेरी आत्मा, अन्तर-देवता, प्राण, देह और जीवन है। उसी का सौन्दर्य अखिल ब्रह्माण्ड में विच्छुरित हो रहा है। कमलकलिका ने कहा कि मैं भी उसे तुम्हारे साथ ढूंढूंगी। रूपकुमार ने उसकी प्रार्थना न मानी और उसे पल्ली-घाट पर उतार दिया।

वहीं उस अन्धेरी रात में कमलकलिका की मार्तण्ड से भेंट हुई, जो यह कहते

हुए बरस पड़े कि मैंने समझ लिया कि क्यों तुम विवाह नहीं करना चाहती हो। मेरे लिए वाग्दत्ता होने पर भी तुम स्वैरिणी हो। कमलकलिका उनको निराश करके चलती बनी।

छठें दृश्य में कर्कट और मर्कट उपहास प्रस्तुत करते हैं। कर्कट ने कहा कि एक दिन रूपकुमार ने मुझसे कहा कि मैं आत्मा और ब्रह्म हूँ। दोनों हँसते हैं।

सप्तम दृश्य में मार्तण्ड का कालचक्र चलता है। उसने एक दिन कर न देने का झूठा दोष लगाकर ब्रह्मपद को वन्दी बनाया। ब्रह्मपद ने मन में सोचा—

मां मेषशावं भृशमेव दष्टुं फणां समुन्नाम्यति कालसर्पः।
तस्य प्रकोपोपशमे समर्थं प्रेक्षे न कश्चिद् विषवैद्यमद्य ॥ ७.७६

कमलकलिका ने अपनी रत्नमाला देकर ब्रह्मपद को वचाने का प्रयास किया।

अष्टम दृश्य में कमलकलिका का रहस्योद्घाटन होता है कि वह कौन है। ब्रह्मपद पकड़कर जब मार्तण्ड के पास लाया गया तो उसने कहा कि कर तो हमने सब पटा दिया है, किन्तु यदि आपकी समझ में नहीं दिया है तो मेरी कन्या की इस रत्नमाला को वन्धक रूप में रख लें। उसे देखकर प्रभञ्जन को कुछ स्मरण हो आया। उन्होंने पूछा कि यह तुम्हें कहाँ मिली? ब्रह्मपद ने कहा कि यह रहस्य न बताने के लिए मैं शपथ-बद्ध हूँ। पर उसे बताना ही पड़ा कि नदी-तट पर कभी सद्योजात कन्या मिली थी। वही है यह कलिका। ब्रह्मपद के बहुत समझाने पर उनकी पत्नी तरंगिणी उसे घर पर रखने को सहमत हो गई। उसके गले में रत्नखचिता माला पड़ी थी। यह मेरे जीवन की अमृतधारा है। प्रभंजन ने बताया कि यह मेरी ही कन्या है। कनकचम्पा देवी से वह उत्पन्न हुई थी। उसके पति प्रभंजन को सन्देह था कि वह मुझसे नहीं उत्पन्न है। उसे नदी पट पर वह छोड़ आई थी।

नवम दृश्य में संध्या के समय मायाविनी के तीर पर अकेली कलिका नायक रूपकुमार को ढूँढ़ रही थी। वह गीत गाता आ मिला। उसने कहा कि राजकुमारी, आज पल्ली छोड़कर जा रहा हूँ। कलिका ने कहा कि मैं भी तुम्हारे साथ हूँ। रूप ने कहा—मुझ दरिद्र के साथ? कलिका ने कहा कि तुम्हारे घर में नित्य प्राणवन्धु और मनोमानुष रहते हैं। तुम्हें किसका अभाव है। फिर तो दोनों एक हो गये।

शिल्प

कतिपय बङ्गाली कहावतों का रोचक अनुवाद इस नाटक में मिलता है। यथा—

१. आकाशचन्द्रः पतितः करे मे।
२. कुक्षौ क्षुधा मुखे लज्जा।
३. पथिठक्कुर आद्रियमाणो मस्तकमारोहति।

सभी दृश्य एकोक्ति-मण्डित हैं। पंचम दृश्य में कमलकलिका की एकोक्ति

अतीव प्रभविष्णु है। इसमें नायिका देश-काल के साथ अपनी स्थिति की चर्चा करती है कि प्रेम-साधना, प्रीति-भावना और मिलनाराधना के वशीभूत प्राणी *'यन्त्रारूढेन मायया'* आचरण करता है। वह अपने प्राणप्रिय को ढूंढती है। तभी रूपकुमार आ जाता है।

प्रहसन को लेखिका संगीत के समान ही लोकरुचि के लिए महत्त्वपूर्ण मानती है। छठें दृश्य को उसने प्रहसन-दृश्य बनाया है। इसका कथांश किसी प्रकार भी प्रधान कथा के लिए उपयोगी नहीं है। देहाती ढंग के परिहास वस्तुतः रोचक हैं।

पूर्वकथा को आधुनिक चलचित्रों की भाँति पट-परिवर्तन के द्वारा पूर्व दृश्य में दिखाया गया है। इस नाटक में कमलकलिका के रहस्य को अष्टम दृश्य में पट-परिवर्तन के द्वारा ब्रह्मपद और तरंगिणी के द्वारा रंगमंचीय संवाद के माध्यम से सूचित किया गया है। अष्टम दृश्य में दो पूर्व दृश्य हैं। दूसरे पूर्व दृश्य में प्रभंजन बताता है कि कैसे कमलकलिका मेरी ही कन्या है।

कविकुल-कोकिल

रमा के कविकुल-कोकिल में दश दृश्य हैं। इसका अभिनय प्राच्यवाणी के आदेश से हुआ था। १९६७ ई० में उज्जयिनी के कालिदास-समारोह में इसके अभिनय पर स्वर्णकलश पुरस्कार मिला था।

कथावस्तु

उज्जयिनी के निकट पौण्ड्रग्राम में बालक कालिदास अपने ऊधम के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके पिता सदाशिव प्रातः काल उषा की वन्दना करने के पश्चात् देखते हैं कि ताली बजाकर कालिदास नाच रहे हैं। पिता के पूछने पर उन्होंने आनन्द का कारण बताया कि गाँव की सीमा पर कोने में जो पोखरी है, उसमें विशाल शतदल खिला है। पिता की समझ में नहीं आ सका कि इसमें आनन्दित होने की कोई बात है। तब तक कालिदास के अध्यापक उन्हें भरपूर गाली देते हुए उनसे मिले और सूचना दी कि तुम्हारे लड़के को संस्था से निकाल दिया है, क्योंकि वह संस्था का दुष्टतम, मूर्खतम और अयोग्यतम छात्र है। पिता के पूछने पर कालिदास ने कहा कि इन गुरुजी की शिक्षा से मेरे दोनों कान जल जाते हैं। कालिदास ने उनकी नकल उतारी। तब तो जला-भुना अध्यापक कालिदास को भलाबुरा कह कर चलता बना। पिता के पूछने पर कालिदास ने कहा कि विद्यालय में जाकर सोटा-पण्डित से नहीं पढूंगा। पिता ने कहा कि आज से तुम्हारा मुंह न देखूंगा। कालिदास की स्नेहमयी माता उसे प्रेमपूर्वक बात करने के लिए ले गई। कालिदास ने प्रतिज्ञा की कि आपकी आज्ञाएँ सर्वशः मानूंगा।

द्वितीय दृश्य में कालिदास कहते हैं कि पाठशाला क्या है—कारागार का दूसरा नाम। अब अध्यापक के हाथ नहीं पडूंगा। कालिदास की माता उधर से आ निकली। उन्होंने कालिदास से कहा—इतनी धूप में यहाँ क्या पड़े हो? कालिदास ने माता से कह दिया कि विद्यालय नहीं जाऊंगा। मैं प्रकृति-जननी के वन-विद्यालय

में पढ़ूँगा। वहाँ प्राकृतिक विषय रसमय, रमणीय और रोमाञ्चक हैं। इसके अनंतर दो महाशय आये, जिन्होंने कालिदास पर पुष्प और फल चुराने का दोष पिता के समक्ष लगाया। पिता ने क्षमा माँगी, पर कालिदास ने कहा कि इससे क्या हुआ? मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। दो महाशयों ने कालिदास को चोर कहा। कालिदास ने कहा कि चोर तो तुम दोनों हो। प्रकृतिमाता की सम्पत्ति में सबका समान अधिकार है। उन दोनों ने बात बढ़ने पर नगरपाल के पास अभियोग करने की धमकी दी।

एक दिन कालिदास की माता ने कहा कि घर पर कुछ खाने को नहीं रह गया कालिदास वन गये। वहाँ एक काष्ट-विक्रेता मिला। उसी की भाँति लकड़ी इकट्ठा करके बेंचकर जीविका चलाने की योजना कालिदास ने भी अपनाई। उसी की कुल्हाड़ी ली और लकड़ी इकट्ठी करके ढोने के पहले सो गये। वहाँ दो वन-विहार करने वाले आये। उन्हें भोजन पकाने के लिए लकड़ी चाहिए थी। उन्होंने कालिदास को जगा कर बातें कीं और उन्हें धिक्कारा कि तुम पण्डित-पुत्र लकड़िहारा बन गये। कालिदास को उन्होंने परिहास में सुझाया कि दरिद्रता दूर करने के लिए गौडाधिपति की कन्या विद्यावती से विवाह स्वयंवर में कर लो।

चतुर्थ दृश्य में विद्यावती के स्वयंवर में पण्डित लज्जित होते हैं। वे मूर्ख-सम्राट् का अन्वेषण करने के लिए कटिबद्ध होते हैं। पंचम दृश्य में कालिदास से मिलते हैं। उनको उसी डाल पर बैठे हुए देखकर प्रसन्न होते हैं, जिसका मूल वे काट रहे थे। षष्ठ दृश्य में अंगुली दिखा कर जो शास्त्रार्थ होता है, उसमें कालिदास विजयी होकर विद्यावती से पाणिग्रहण करते हैं। सप्तम दृश्य में रात्रि के समय वासक-गृह में विद्यावती से उनकी भेंट होती है। विद्यावती ने कहा कि इस रमणीय निशीथ में दर्शन-कथा हो। कालिदास पर उलटी पड़ी। उन्होंने मन ही मन कहा—देवि सरस्वति देवि-भारति, आविर्भव मम रसनायां मुहूर्तमात्रमपि आविर्भव। रक्ष माम्, रक्ष रक्ष। कालिदास पुनः पुनः कोंचने पर भी चुप रहे। तभी ऊँट बोल पड़ा। विद्यावती ने पूछा—यह क्या बोल रहा है? कालिदास ने उत्तर दिया उट्रः। विद्यावती पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। उसने कालिदास से कहा—अपना परिचय दें। विद्यावती ने माथा ठोक लिया और बोली—

किं न करोति विधिर्यदि रुष्टः किं न करोति स एव हि तुष्टः।
उष्ट्रे लुम्पति र वा ष वा तस्मै दत्ता विपुलनितम्बा॥ ७.५२

कालिदास ने अपना परिचय दिया। तब तो विद्यावती ने उन्हें महावंचक धूर्तादि अपशब्द कहे और आज्ञा दी कि फिर यहाँ अपना मुँह न दिखाना। आठवें दृश्य में कालिदास ने स्तुति के बाद सरस्वती का दर्शन किया। सरस्वती ने प्रसन्नता से कहा कि इस कुण्ड में तीन बार निमग्न होकर देखो, तुम्हें क्या मिलता है। कालिदास को जो उत्पल मिले, उनसे उन्होंने सरस्वती की अर्चना की। सरस्वती ने आशीर्वाद दिया कि तुम कविकुल-कोकिल बनो। नवें दृश्य में कालिदास कवि बन

गये और विद्यावती के राजप्रासाद में पहुँचे। वहाँ विद्यावती अपने किये पर परितप्त थी। कालिदास ने उसका द्वार थपथपाया। स्वर पहचान कर उनके अस्तिकश्चिद् वाग्विशेषः कहने पर विद्यावती प्रसन्न हो गई। वह धन्य हो गई।

दसवें दृश्य में सम्राट् विक्रमादित्य की सभा मे अपने काव्योत्कर्ष के कारण उन्हे कविसार्वभौम की उपाधि मिलती है। वे उनके नवरत्नों मे सम्मिलित हुए। यहाँ कालिदास ने सिद्ध किया कि काव्य ही श्रेष्ठ शास्त्र है। काव्य ही जीवन का श्रेष्ठ सत्य है। अन्य शास्त्र पीछे आते है।

शिल्प

रमा की एकोक्तियाँ भावुकता पूर्ण हैं। तृतीय दृश्य में कालिदास लकड़ी काटकर उसे ढोते हुए एकोक्ति परायण है। वे प्रकृति की प्रत्येक गतिविधि से स्पन्दित होते हैं। वे वनस्पति को प्रणाम करते हैं। यथा—

भो भो वनस्पतयः प्रणमामि भवतः। श्यामल-कोमल-पत्रदल-सज्जित-शाखा-प्रशाखा-रम्या हि भवन्तः—उन्नत-मस्तका विस्तृतवक्षसः प्रसारितकराः सुदृढपादाश्च। तथापि क्षुद्रातिक्षुद्रोऽहं भवतां श्रीशरीरेषु कुठाराघातं कृत्वा ममाधन्यं जीवनं धारयितुमिच्छामि। अहो लज्जा मम। ततः कृपया क्षमन्तां मामधमजनम्। सन्तानो हि भवत्पदनतः। आशिषं ददतु, तस्मै कृपया।

इस एकोक्ति मे कालिदास वृक्षों से बात करते हैं। अष्टम अंक के आरम्भ मे कालिदास की तीन पृष्ठ की एकोक्ति सार्थक है।

सप्तम अङ्क के आरम्भ मे स्वगत का एक विरल रूप है, जिसमें दो पात्र रंगमच पर मौन हैं और एक दूसरे के विषय मे और अपने विषय में स्वगत विधि से कुछ कहते हैं। साधारणतः स्वगत किसी प्रश्न के उत्तर में होना चाहिए। यह एकोक्ति नही कहा जा सकता, क्योंकि एकोक्ति मे वक्ता यह प्रयास नही करता है कि मेरी बात कोई सुन न ले।

समीक्षा

आधुनिकता के नाम पर प्रेक्षक को गाली देने का अभ्यास करा देने की रमा की अपवादात्मक रीति है। कालिदास का शिक्षक आकर कालिदास के पिता के घर पर विद्यार्थी को गालियाँ देता है—कृमिकीट, कृकलास, शठशृगाल, बर्बर, मर्कट, गर्दभ।

इस नाटक की प्रशंसा अभिनय-प्रेक्षकों के मुँह से इस प्रकार है—

It was an enjoyable play, full of witty dialogues as well as petty songs exquisitely sung.

B. K. Bhattacharya: Foreword of Kālidāsacaritam p. VII.

मेघमेदुरमेदिनीय

रमा का *मेघमेदुरमेदिनीय* नाटक नव दृश्यों में निष्पन्न है। इसमे मेघदूत की

कथा के पूर्व की घटनायें, संक्षेप में मेघदूत की कथावस्तु और उसके आगे मेघदूत की कथा के पश्चात् यक्ष और यक्षिणी के मिलने का प्रसंग है। इसका अभिनय उज्जयिनी में कालिदास-समारोह के अवसर पर समागत विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

हिमालय पर नूपुर-निक्वणा नामक नदी के तीर पर अकेली कमलकलिका-नामक यक्ष-कन्या नदी की वन्दना के अनन्तर ललितलतिका नामक सखी से मिलती है। नदी की रमणीयता से विमुग्ध होकर उसने उसमें अवगाहन करने की योजना कार्यान्वित की, यद्यपि कमलकलिका की इस योजना का विरोध ललितलतिका ने किया। ललित-लतिका का कहना है—क्रूरा, कुटिला, कराला नदी न विश्वास-योग्या। नदी में कमलकलिका डूबने लगी। उसने त्राहि त्राहि का आर्तनाद किया। उस समय नदी-तट पर जल-विहार के लिए आये हुए यक्ष अरुणकिरण ने उसे डूबते देखा और नदी में कूदकर उसे बचा लाया।

द्वितीय दृश्य में रंगपीठ पर अकेली कमलकलिका अरुणकिरण के ध्यान में निमग्न है। अरुणकिरण भी उसके ध्यान में उद्भ्रान्त है। दोनों मिलने पर सौहार्द की बात करते हैं। इस बीच कुवेर का निकटवर्ती प्रचण्ड-प्रताप वहाँ आता है। वह कमल-कलिका को अपने प्रेमपाश में फँसा कर उसे विलासोपकरण बनाना चाहता था। अरुणकिरण को उसकी अभद्रता सह्य न थी। लाग-डाँट की बातें उनमें हुईं। कमल-कलिका ने भी उसे धिक्कारा—दूरं गच्छ। उसके न मानने पर अरुण ने कहा—ततोऽहं त्वा निमेषेण चूर्णं चूर्विणं करिष्यामि। अन्त में प्रचण्ड-प्रताप यह कह कर चलता बना कि तुम्हें छोड़ूँगा नहीं।

तृतीय दृश्य में प्रचण्ड-प्रताप ने कमलकलिका का अपहरण कराने में असफल होकर उसके पिता के घर आकर कन्या से विवाह प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि विवाह की बात कन्या जाने। पश्चात् कमलकलिका के साथ वहाँ अरुणकिरण से उसकी मुठभेड़ हुई। उसने प्रचण्डप्रताप को पहले ही अस्वीकार कर रखा था। उसे देखते ही उसने घृणा प्रकट की। माता-पिता ने उसका समर्थन किया। फिर तो वह भगाया गया और अरुण-किरण से उसका विवाह पक्का हो गया।

चतुर्थ दृश्य में पूर्णिमा-रात्रि में नायक और नायिका कुञ्ज में मिलते हैं। उनकी प्रेमनिशा में व्यावहारिक जगत् की सुध नहीं रहती। अरुण-किरण को राजा कुवेर के मायामदिर नामक कमलवन की रक्षा उस रात में करनी थी। प्रणय-व्यापार में निमग्न वह वनरक्षा का काम न कर सका। प्रचण्ड-प्रताप ने अपने हाथियों से कमल-वन को ध्वस्त करा दिया। दूसरे दिन श्रीमती कुवेर को काम की पूजा के लिए विशेषोपहार-रूप चन्द्रिका-सुरभित और अरुण-विकसित उत्पल न मिल सका। पंचम दृश्य में राजा कुवेर के पास यह वाद निर्णय के लिए पहुँचता है। वैसे तो प्रेमोन्मादी अरुण को क्षमा मिल सकती थी, पर प्रचण्ड प्रताप के प्रयास से वह दण्डित हुआ—एक वर्ष तक प्रेयसी से दूरवास।

छठें दृश्य में अरुण यक्ष विदा लेकर रामगिरि पर्वत पर आता है। सप्तम दृश्य में आठ मास का दूरवास भोग लेने पर बरसाती मेघ को उसने अपना सन्देश प्रेयसी के पास ले जाने के लिए भेजा।

अष्टम दृश्य में यक्षिणी की विरह-वेदना की चर्चा है। उससे यक्ष का सन्देश लेकर मेघ मिलता है। यक्षपत्नी सन्देश पाकर आनन्दित है।

नवम दृश्य में यक्ष लौटकर पुन अलकापुरी मे नायिका से मिलता है। उनका मिलन शाश्वत है।

एकोक्तियों की बहुलता अन्य नाटको की भाँति ही इसमे भी मिलती है। पूरे सप्तम अङ्क में ढाई पृष्ठो की यक्ष की एकोक्ति आद्यन्त है। वह अपने मानसिक असन्तुलन, आषाढ के प्रथम दिवस, मेघदर्शन, सन्देश आदि का वर्णन करता है। एकोक्ति का ऐसा प्रयोग अतिशय विरल है। इसी के समान पूरे आठवें दृश्य मे यक्षिणी की एकोक्ति है।

युगजीवन

युगजीवन में वर्तमान शताब्दी के जीवन और आत्मा का रूपकायण है।[1] इसके दस दृश्यों मे स्वामी रामकृष्ण का जीवन-चरित वर्णित है। प्रमुख घटनायें है—काली के मन्दिर में पुरोहित का काम करना, भैरवी ब्राह्मणी के द्वारा उनको तान्त्रिक दीक्षा, तोतापुरी के द्वारा उनको अद्वैत वेदान्त की शिक्षा देना, सारदा-मणि के साथ दिव्य दाम्पत्य-जीवन, नरेन्द्रनाथ (भावी विवेकानन्द) की प्राप्ति और रामकृष्ण की समाधि।

रामकृष्ण मठ के अध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द ने १९६७ ई० मे इसके प्रथम अभिनय का उद्घाटन कलकत्ते मे किया था। भारत में सैकड़ों बार इसका अभिनय हो चुका है।

निवेदित-निवेदितम्

निवेदित-निवेदितम् मे भगिनी निवेदिता की चरित-गाथा १२ दृश्यो मे रूपकायित है। निवेदिता विदेशी महिला थी। वे लन्दन मे विवेकानन्द से मिलीं और उनसे प्रभावित होकर पूर्णतया भारत की हो गई। उन्होने अपना समग्र जीवन भारत की सेवा में अर्पित कर दिया। विशेषतः दरिद्रनारायण और उपेक्षित महिलाओं का उत्थान उनका कार्यक्रम था। विवेकानन्द ने उन्हें दीक्षा दी और वे भारत मे आ गईं। उनका निवेदिता नाम विवेकानन्द का दिया हुआ है। वे अपने अन्तिम दिनों मे दार्जिलिंग में सर जगदीश चन्द्र वसु के साथ रहीं।

अभेदानन्द

अभेदानन्द नामक नाटक के १२ दृश्यों मे रामकृष्ण के प्रमुख शिष्य स्वामी अभेदानन्द के सम्पूर्ण जीवन की चरित-गाथा है। उन्होने रामकृष्ण-वेदान्त-मठ की

१. प्राच्यवाणी से १९७७ ई० में प्रकाशित।

स्थापना की थी। उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ जागरणमयी हैं। उन्होंने संन्यास लेकर स्वदेश और विदेश-विजय की।

रामचरितमानस

बारह दृश्यों के रामचरित-मानस नाटक में तुलसीदास की चरित-गाथा है। रामचरितमानस तुलसीदास का पर्याय है—जिसका मानस रामचरितमय है। इसकी प्रमुख घटनायें हैं तुलसी की पत्नी के प्रति प्रगाढ आसक्ति, उसकी भर्त्सना पर गृहत्याग, तपस्या और भक्ति के द्वारा रामचन्द्र का दर्शन, रामचरितमानस की रचना आदि। प्रस्तुत नाटक में तुलसीदास के कतिपय उच्चकोटिक भजनों को संस्कृत में रूपान्तरित करके प्रस्तुत किया गया है।

रसमय-रासमणि

रानी रासमणि की उज्ज्वल चरितगाथा रसमय-रासमणि में रूपकायित है। इसमें आठ दृश्य हैं। रासमणि विधवा थी। अत्याचारी नीलहे गोरण्ड उनकी प्रजा को बहुविध सताते थे। उन्होंने अकेले उत्साहपूर्वक उनसे अपनी प्रजा की रक्षा की। एक बार मद्यपी गोरण्ड सैनिकों ने उनकी राजधानी पर आक्रमण कर दिया। रानी ने उन्हें परास्त किया। उन्होंने दक्षिणेश्वर में १२ मन्दिरों का निर्माण किया और रामकृष्ण को उनका प्रधान पुजारी बनाया। अन्त में उनकी महासमाधि का वर्णन है।

चैतन्य-चैतन्यम्

चैतन्यचैतन्य के पाँच दृश्यों में महाप्रभु चैतन्य की चारुचरितावली चित्रित है। उनका आविर्भाव, बाललीला, दिग्विजय और महासमाधि प्रमुख घटनायें हैं।

संसारामृत

संसारामृत के सात दृश्यों में केलि नामक दरिद्र परिवार की कन्या की विपत्तियों की कथा है। मयूख नामक व्यक्ति उसे धोखा दे जाता है। अन्त में उसे मयूर नामक अपना अभीष्ट प्रियतम पतिरूप में मिलता है। मयूर समृद्ध है, किन्तु उसकी चारित्रिक दुर्बलतायें कष्ट देती हैं। शनैः शनैः उसके चरित्र का परिमार्जन हो जाता है।

नगर-नूपुर

नगरनूपुर के दस अङ्कों में मेखला नामक अपूर्व सुन्दरी गणिका के गीत और नृत्य से समाज में चमत्कार उत्पन्न करने की घटनायें हैं। वह नित्य अनिश बहुशः कार्यक्रम बिजली की भाँति स्फूर्ति से सम्पन्न कर डालती है। अन्त में उसे आभास होता है कि यह सारी हाय-हाय वस्तुतः व्यर्थ है। इसमें सार कुछ भी नहीं। हरिद्वार के एक महात्मा के उपदेशों से उसे जीवन के वास्तविक तत्त्वों का ज्ञान होता है। वह शान्ति के लिए संन्यासिनी बन जाती है।

भारत-पथिक

पाँच दृश्यों के भारत-पथिक में राजा राममोहन राय की चरित-गाथा है। प्रमुख घटनायें है सती-प्रथा के उन्मूलन का प्रयास, लोगों को अंगरेजी पढ़ने-पढ़ाने के लिए प्रेरणा प्रदान करना, ब्रह्मसमाज की स्थापना, विदेश-यात्रा और ब्रिस्टल में स्वर्गवास।

कविकुलकमल

कविकुलकमल के आठ दृश्यों मे कालिदास की उत्तरकालीन चरित-गाथा है, जिसमे वे घटकर्पर और विद्यावारिधि नामक कवियों की प्रतिद्वन्द्विता मे आते हैं। इन दो विरोधियों ने आगे चलकर पश्चात्ताप-पथ पर कालिदास के प्राणों की रक्षा की। विक्रमादित्य को कुमारसम्भव का उपहार देकर उनका प्रिय पात्र बनना नाटक की अन्तिम घटना है।

भारताचार्य

भारताचार्य के १२ दृश्यों मे भारत के द्वितीय राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की पावन चरित-गाथा वर्णित है। उसकी प्रमुख घटनायें हैं चरित नायक का दर्शन की ओर प्रवृत्त होना, दर्शन का सर्वोच्च विद्वान् बनना, भारत का राष्ट्रपति बनना और यशस्वी होना। १९६६ ई० मे राष्ट्रपति-भवन मे रमा के द्वारा निर्देशित होकर यह अभिनीत हुआ। इसके प्रेक्षक सकुटुम्ब स्वयं राष्ट्रपति ने पुरस्कार रूप मे १५०० रुपयों की धनराशि प्राच्यवाणी को प्रदान की।

अग्निवीणा-नाटक

अग्निवीणानाटक मे बागला देश के महाकवि नजरुलिस्लाम की चरित-गाथा है। यह नाम कवि की एक कृति पर आधारित है।

गणदेवता-नाटक

गणदेवता नाटक बंगाल के महान् उपन्यासकार ताराशंकर वन्द्योपाध्याय के जीवन-चरित पर आधारित है।

यतीन्द्रम्

रमा के पति यतीन्द्र वास्तव मे यतीन्द्र थे। उनकी मृत्यु १९६४ ई० में हुई। रमा ने तभी इस नाटक मे उनकी चारुचरितावली को निबद्ध किया। उसी वर्ष यतीन्द्र के शिष्यों द्वारा इसका प्रथम अभिनय हुआ।

भारततातम्

भारततात के छः अङ्कों मे पूज्य बापू महात्मा गान्धी के जीवन-चरित की पावन झाँकी प्रस्तुत की गई है। इसकी प्रमुख घटनायें हैं—हरिजनोद्धार, साम्प्रदायिक

मिलन-प्रचेष्टा, सुभाषचन्द्र वोस तथा देशवन्धु चित्तरञ्जन दास से मिलन, लवण-सत्याग्रह और नोआखाली-अभिज्ञा। इसका मंचन वापू-शताब्दी महोत्सव के अवसर पर भारत-सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय के तत्त्वावधान में हुआ था।

प्रसन्न-प्रसाद

प्रसन्न-प्रसाद के दस दृश्यों में बंगाल के विश्रुत गायक श्री रामप्रसाद के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। रामप्रसाद को गुरु के प्रसाद से जगदीश्वरी और अन्नपूर्णा का साक्षात्कार हुआ था। इसके लिए रामप्रसाद ने समुचित साधना की थी। रामप्रसाद ने प्रतिस्पर्धा में महान् गायक अजु गोस्वामी को जीता था। महाराज कृष्ण चन्द्र उनका सम्मान करते थे। समाधि के पश्चात् रामप्रसाद का माँ जगदीश्वरी से तादात्म्य हो गया। इस नाटक में रामप्रसाद का प्रसिद्ध गीत रामप्रसादी का संस्कृत रूप समाविष्ट है।

रमा ने वसुधैव कुटुम्व की दृष्टि से लेनिनविजय का रूपकायन लेनिन की प्रथम शताब्दी के महोत्सव के अवसर पर किया। उनके भारतवीरम् में शिवाजी की चरित-गाथा का आदर्श युवकों के समक्ष रखा गया है। तानसेन के संगीतमय जीवन की झाँकी तानतनु नामक नाटक में मिलती है।

इन सभी नाटकों का समय-समय पर मंचन हुआ है और ये प्राच्यवाणी से प्रकाशित हैं।

उपर्युक्त विवेचन से रमा के विषय में नीचे लिखी प्रशस्ति चरितार्थ होती है—

The only lady dramatist, poet, ballet-writer and drama organiser etc. of India and outside of great fame and universal approbation, Pioneer of Modern Sanskrit Drama Movement in India.



सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय का नाट्य-साहित्य

प्रो० सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय एम० ए०, डी० फिल्०, डी० लिट्० काव्यतीर्थ का जन्म पूर्वबङ्गाल में १९१८ ई० में हुआ था।[1] उनकी शिक्षा-दीक्षा प्रधानतः कलकत्ते में हुई। अपने स्पृहणीय अध्यापन कर्म में प्रगति करते हुए वे सम्प्रति वर्धमान-विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर पद को समलङ्कृत कर रहे हैं। उनका सामाजिक सेवा-कार्य सफल है। वे कतिपय वर्षों से कलकत्ते की अनुत्तम सांस्कृतिक-संस्था संस्कृत-साहित्य-परिषद् के सचिव हैं। उन्होंने अंगरेजी, बंगला और संस्कृत में उच्च-कोटिक निबन्धों का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं में किया है। सिद्धेश्वर ने चार रूपक लिखे हैं—

धरित्री-पति-निर्वाचन, अथकिम्, ननाविताडन और स्वर्गीय-हसन। सिद्धेश्वर नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ हैं। उन्होंने Nāṭakalakṣaṇa-ratnakośa in the *Perspective of Ancient Indian Drama and Dramaturgy* नामक पुस्तक में नाट्यशास्त्रीय ऊहापोह की अनुसन्धानात्मक गवेषणा की है।

धरित्रीपति-निर्वाचन

लेखक ने इसे व्यंग्य-नाटिका नाम दिया है।[2] इसकी रचना १९६७ ई० में हुई। इसका प्रथम अभिनय संस्कृत साहित्य-परिषद् के सदस्यों ने १९६९ ई० में संस्था के ५२ वें वार्षिकोत्सव में किया। अभिनय में सिद्धेश्वर विश्वकर्मा बने। अन्य प्रमुख अभिनेता थे गोपिका-मोहन भट्टाचार्य, ध्यानेश नारायण चक्रवर्ती आदि।

इस व्यंग्यनाटिका में कार्यस्थली है भवपान्थशाला, अर्थात् यह दुनिया, जो सराय के रूप में है। उसके अध्यक्ष भगवान् कान में कपास की गोली डाल कर कुछ सुनने में असमर्थ हैं, क्यों? सभी दो, दो यह हल्ला मचा रहे हैं और भीषण मारणास्त्र-विदारण शब्द हो रहे हैं। पान्थशाला के चौकीदार विश्वकर्मा ने भगवान् के कर्ण-प्रदाह को दूर करने के लिए गुडमुधालेप का प्रयोग किया है। विश्वकर्मा गाजा पीते हैं। उनकी चिकित्सा-विद्या इससे प्रखर हो गई है।

भगवान् की कन्या और विश्वकर्मा की बहिन धरित्री है। उसका पति-निर्वाचन करने के लिए दो बार स्वयंवरार्थियों की सभा हो चुकी है। पिछली बार की सभा में आसन आदि टूट चुके थे। बारूद के धुएँ से विश्वकर्मा की आँख फूटते-फूटते बची थी। विश्वकर्मा ऐसी सभा का विरोध करते हैं। भगवान् कहते हैं—यह तो मेरे लिए उत्सव है। प्रतिद्वन्द्वी ऐसी सभा चाहते हों तो फिर हो सभा। इसी अवसर पर सभी प्रत्याशियों से बिल का पैसा ले लेने का स्वर्ण अवसर भगवान की दृष्टि

१. इनका प्रचलित नाम बुड़ोदा है, जो बूढ़ा दादा की प्यार-भरी संज्ञा है।

२. संस्कृत-साहित्य-परिषद् से १९७१ में प्रकाशित।

में था। सभा में प्रत्याशियों की आपस में वढ़-वढ़ कर वातों से रोष का वातावरण वनता गया। उनकी वातचीत और आचरण का स्तर उनके नाम से ज्ञात हो सकता है—गाड्डोलक, युयुधान, वरण्डलम्बुक, लघुवञ्चक, धुरन्धर, हयंगल। सभी घातक हथियारों को चमकाते थे। वे पान्थशाला में धरित्री के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर आते थे, अन्यथा वहाँ का भोजन-पेय अरुचिकर था। इनकी वातें पर्याप्त समय तक उनकी अशालीनता का परिचय देती हुई चलीं। अन्त में गाड्डोलक ने अपने मामा धुरन्धर से कहा कि व्यर्थ की वातों से क्या? मैं धरित्री का केश पकड़कर उसे खींच ले जाता हूँ। वरण्डलम्बुक ने उसे एक मुक्का मारा कि क्या वक रहे हो। वह रोने लगा। लघुवंचक, हयंगल, युयुधान आदि ने वरण्ड की निन्दा की कि ऐसा नहीं करना चाहिए।

इस हड़वड़ी में युयुधान ने कहा कि मैं वलपूर्वक धरित्री को ले चला। वरण्ड ने कहा कि यह हृदय का प्रश्न है कि धरित्री किसके साथ रहे, वल का नहीं। सभी युयुधान पर विगड़ खड़े हुए। सवने कहा कि कैसे ले जाते हो? देखता हूँ। युयुधान ने कहा—'एष नयामि, रक्ष त्वं हयंगल।' वह आगे वढा तो हयंगल ने रोका। फिर तो मारपीट होने लगी। वरण्ड भगवान् के आसन के नीचे जा छिपा। मार-पीट में सवको चोट आई। वे आर्तनाद करने लगे।

भगवान् ने कान से गोली निकाली और विश्वकर्मा से कहा कि सवको गर्दनिया कर वाहर करो। धरित्री ने भगवान् से पूछा कि ये क्यों लड़ कर हाथ-पैर तुड़वाते हैं? भगवान् ने कहा—यही तो प्रहसन है। शक्तिगर्वित की शक्ति का क्षय इसी प्रकार होता है।

नाटिका का व्यंग्य अर्थ सहृदय के लिए अनायास परिचेय है।

शिल्प

लेखक ने इसे आधुनिक नाट्यरीति की रचना वताई है, यद्यपि इसमें नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य हैं। नई रीति के अनुकरण पर रंगनिर्देश की प्रचुरता है।

नाटिका में कतिपय नाट्य-निर्देश हैं। उनमें सवसे वड़ा दस पंक्तियों का युद्धात्मक वर्णन नाट्यनिर्देश के रूप में है।

अथ किम्

'अथ किम्' वुड़ोदा की दूसरी परिहासाश्रित व्यंग्य-नाटिका है।[1] धरित्रीपति निर्वाचन का अभिनय देखने वाले उच्च कोटिक प्रेक्षकों ने लेखक को उत्साहित किया—आधुनिकीं नाट्यशैलीमनुसृत्य रूपकरचनाय मां समादिष्टवन्तः। इसका अभिनय संस्कृत-साहित्य-परिषद् के ५५ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर अप्रैल १९७२ ई० में हुआ। परिषद् के सदस्य अभिनेता वने थे। स्वयं लेखक

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद् कलकत्ते से १९७४ ई० में हुआ है। इसकी रचना १९७० ई० में हुई थी।

सूत्रधार था, प्रो० ध्यानेशनारायण चक्रवर्ती, प्रो० प्रतापचन्द्र वन्द्योपाध्याय आदि अन्य पात्र थे। मञ्च की व्यवस्था डा० हेरम्बनाथ चट्टोपाध्याय ने की थी।

लेखक का कहना है—परमश्चत्वे सर्वं जातमसंस्कृतम्। देहे, चित्ते, समाजे संस्कृतस्य गन्धोऽपि नास्ति।

कथावस्तु

आशा नामक तरुणी पुस्तक पढती हुई कारखाने जा रही थी। मार्ग मे वह कमल के ऊपर गिर पडी और उस पर बिगडी। कमल ने कहा कि विधाता ने मुझे आँख देकर गलती की। आशा ने कहा कि सीग न देकर गलती की। कमल ने कहा कि सीग तो दी थी, किन्तु जहाँ-तहाँ प्रयोग करते-करते वह भग्न हो गई। पर आज तो उसका प्रयोग करना ही पडेगा। यह कह कर सीग मारने की मुद्रा बनाता है। आशा डरकर बोली कि तुम्हें समुचित शिक्षा मिलेगी।

अपनी दीन-हीनता और कौटुम्बिक परिस्थितियो का मारा खड्ग सडक पर बडबडा रहा था। कमल को उसने बताया कि पहले से ही कुटुम्ब मे गरीबी से विरक्ति थी। आज पाँचवी कन्या उत्पन्न हुई है। आशा ने कहा कि तुमको तो दण्ड मिलना चाहिए। सभी कुटुम्बी जन ऐसे हैं कि पत्थर भी पचा लें।

थोडी देर मे गण्डक और उनके पीछे धनक आये। गण्डक का वोट धनक चाहते थे। गण्डक ने कहा कि पहले कई बार तो एक ही नाम के आगे चिह्न लगाता था। इस बार सबके आगे लगाऊँगा। धनक प्रगतिशील वामपन्थियों के लिए वोट चाहता था।

डकार के आने से बात की दिशा बदलती है। कालजीर्ण प्राचीन रीति को बदलना है, सब कुछ नवीन होगा। सभी खाद्यादि वस्तुयें सस्ती होगी, उनकी अधिकता होगी, नये-नये कारखाने, नई नौकरियाँ, ऊँचा वेतन होगा। शेष जनो ने कहा कि घेराव के बिना कुछ न होगा।

धनक ने प्रश्न पूछने की व्यर्थता बताते हुए कहा—परीक्षा न हो, प्रश्न न किये जायँ। जिन्हें शिक्षण संस्था मे प्रवेश दिया जाय, उन्हें सर्टिफिकेट दिया जाय। परीक्षा-वैतरणी कोई पार करें, कोई उसमे डूब जायँ—यह भेदनीति ठीक नही।

तब तक ऊर्मिला देवी अपने पति चंचल को खीचकर रंगमंच पर आ विराजती है। उन्होने कहा कि विश्वविद्यालय मे पढाते हुए तुमने क्यो नही विचार किया कि विलम्ब करने से काम बिगड़ता है? उसने बीच-बिचाव करने वालो से कहा कि बहुत दिनो से पढाते-पढाते इनका दिमाग घिस गया है। इन्हें वास्तविक ज्ञान नही है। कमल ने कहा कि बालकपन से ही आपको सीग नही थी।

सभा का सभापति कौन हो? ऊर्मिला देवी ने कहा—मेरा पति ही इसके योग्य है। सभा हुई। भाषण सभी देंगे, सुनेगा कौन? गण्डक भाषण देने लगे। चचल को ऊर्मिला ने भाषण देने के लिए बाध्य किया। बीच मे खड्ग बोलने लगे कि

भाषण की आवश्यकता नहीं, भोजन चाहिए। आशा ने कहा मिट्टी से पेट के गड्ढे भरो। धनक ने कहा—वोट देकर नवीन को विजयी बनाओ। सब ठीक कर देगा।

अन्त में ऊर्मिला के कहने से चंचल ने भाषण में भारत का पुराना गौरवपूर्ण इतिहास सुना दिया। काव्य का इतिहास सुनाया, नवीन मत सुनाया कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में माहेश्वर सूत्र क्या हैं? अपने भाषण में सबने सभा के आयोजन के भिन्न-भिन्न प्रयोजन बताये। तब तक आशा ने ऊर्मिला को वृद्धा कह दिया। फिर तो ऊर्मिला ने कहा कि क्या मैं बूढ़ी हूँ रे मार्जारी? चंचल से शिष्टाचार बरतने की बात सुनकर ऊर्मिला ने उस पर आक्रमण कर दिया। सभा भंग हुई।

शिल्प

जो पात्र रंगमंच पर आये, उनको निष्क्रान्त न करने पर भीड़ सी हो जाती है।[1] एक या दो पात्र संवाद में व्यापृत हैं और शेष पात्रों में से अनेक बड़ी देर तक मूर्तिवत् रंगपीठ पर बने रहते हैं। यह नाट्योचित नहीं है। आशा के कार्य उदाहरण रूप में लें। आठवें, ११ वें, १३ वें और २३ वें पृष्ठ पर वह कुछ भी नहीं बोलती है। जहाँ बोलती भी है, पृष्ठ में अधिकांशतः एक बार।

नना-विताडन

नना-विताडन में सूत्रधार अजीब वेष में रंगमंच पर आकर कहता है—अभिनयो न भविष्यति।[2] फिर तो दर्शकों में से एक पण्डित, एक शिक्षक और एक तरुण पूछ बैठे—क्यों नहीं अभिनय होगा? सूत्रधार के कहने पर कि सकारण-अकारण कभी-कभी सभा में त्रुटि आ ही जाती है। तरुण ने उसे वानर कह कर सम्बोधित किया और कहा कि अभिनय होना ही चाहिए। सूत्रधार ने इन सबको रङ्गमञ्च पर बुला लिया कि आइये, मिलकर विचार कर लें।

सूत्रधार ने बहुत खींचातानी करने पर कहा—अहह, नना मे अधुनापि न सुमृता-परं मरिष्यत्येव। तरुण ने कहा कि कैसे मरेगी? अभी वैद्य ले आता हूँ? मैं चला, पर उसे रोक लिया गया। तीन वैद्यों के लिए एक-एक आग्रह करने लगे। सूत्रधार ने कहा कि सबको बुलाओ। पण्डित, शिक्षक और तरुण अपने-अपने वैद्य को बुलाने गये। फिर तो सूत्रधार ने नटों से कहा कि ध्रुवागीति गाओ। वह स्वयं गाता है। इस बीच रंगमंच पर नना आ गई और उत्तरा, पूरवी और विदेशिनी भी आ पहुँची। सूत्रधार नाचते हुए चलता बना।

रंगमंच में दो समूहों में मन्त्रणात्मक संवाद होने लगा—नना और विदेशिनी का एक ओर और पूरवी और उत्तरा का दूसरे छोर पर। उत्तरा ने कहा कि

---

१. अन्त तक आठ पात्रों की सभा बन गई। इनमें से अन्त में ही सब बाहर निकले।

२. इसका प्रकाशन सं० सा० परिषद् से १९७४ ई० में हुआ है।

साम्राज्य-वादिनी विदेशिनी मीठी बातों से नना को वश में कर लेगी। उत्तरा और पूरवी की बातचीत में गाली का प्रयोग होने पर नना ने कहा कि तुमको गहना दूँगी। शान्त रहो।

उत्तरा ने विदेशिनी से कहा कि नना पूरवी का पक्षपात करती है। दोनों की ताड़ना करनी है। तुम मेरा साथ दो। तुम्हारा भी लाभ होगा। घर में कलह का वातावरण देखकर नना घबड़ा गई। उसके हृदय में पीडा उत्पन्न हुई। उत्तरा ने कहा कि मरती हुई भी यह नहीं मरती। पूरवी उसकी सेवा करने लगी।

उत्तरा ने नना को विष देने की योजना वैद्यों की सहायता से बनाई। जब विदेशिनी नना के पास गई तो पूरवी से उत्तरा ने कहा कि तुम्हें अपने स्वार्थ की रक्षा करनी है। मैं विदेशिनी को पिटवाती हूँ। तुम मेरे साथ रहो। हम चारो साथ नहीं रह सकते।

स्वकुम्भ नामक वैद्य आये। थोड़ी देर में वसुकुम्भ नामक वैद्य आये। फिर मकुम्भ नामक वैद्य आ पहुँचे। तीनो वैद्य नना के पास पहुँचे।

मकुम्भ ने नना की परीक्षा करके कहा कि मानसी पीडा के कारण दुर्बलता है। बच्चों के साथ हँसे, खेले—बस यही उपचार है। कुम्भ ने कहा कि छोटे बच्चों की चंचलता से इनका हृदय-यन्त्र विकल होगा। यह ठीक नहीं। बूढ़ों के साथ रहे नना तो कुछ दिन चलेगी। मकुम्भ ने कहा कि मेरी बात ही ठीक है, आपकी नहीं। विदेशी ने कहा कि यदि तरुण समाज से इन्हें अलग किया गया तो अपने आप मर जायेंगी। मकुम्भ चलते बने। उत्तरा ने नना का शरीर छूकर रोना आरम्भ किया कि यह तो शीतल हो गया। सूई लगाने में वैद्यों को सफलता न मिली। नना के शव को जलाया न जाय, उसे सुरक्षित रखा जाय—इस बात पर विमर्श हो रहा था कि नना उठ खड़ी हुई। उसे प्रेताविष्ट समझ कर वैद्य डर कर भाग गये। उत्तरा ने कहा कि अब वह मेरा गला मरोड़ेगी।

स्वर्गीय-हसन

स्वर्गीय-हसन यथानाम एक प्रहसन है[१]। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वर्गीय-प्रहसन लिखा था। उसी के अनुकरण पर सिद्धेश्वर ने स्वर्गीय-हसन लिखा है। हास्य की स्वरलहरी में सूत्रधार ने बताया है—

स्वर्गे लोके वसतिमधुना राजनीतिरवाप्ता।
मत्ता देवाः सतत-कलहे कुत्र नाट्यावकाशः॥

अपने देश के राजनीतिज्ञों के बीच जैसी उठा-पटक होती है, दल बनते हैं और उनके सदस्य दल बदलते हैं, वैसी ही स्थिति स्वर्ग में भी नये-नये दलनायकों और

१. संस्कृत-साहित्य-परिषद् से प्रकाशित।

गणेशों के द्वारा उत्पन्न कर दी गई है। बृहस्पति वृद्ध होने पर भी देवराज बनने की इच्छा से कुटिल चालें चलने में नहीं चूकते।

इन्द्र समझ चुके हैं—**सर्वानर्थस्य मूलमयमेव**। अशोक और अकबर महत्त्वपूर्ण विभागों का मन्त्री बनना चाहते हैं। धुन्ध और पुञ्ज क्रमशः श्रमिकों और किसानों के नेता नरक के प्रतिनिधि बनकर देवसभा में पहुँचे हुए हैं। देवराज कौन हो? जनसंख्या कैसे कम हो? नरक और स्वर्ग का भेद-भाव मिटाना ही पड़ेगा आदि समस्याओं पर विचार करते हुए स्वार्थपूर्ण और साथ ही बेतुके सुझावों को समेटने वाले और पद-पद पर हँसा देने वाले संवादों और संविधानों का आनन्द इस प्रहसन में मिलता है। उर्वशी और अदिति बीच-बीच में ऊँघ कर सदस्यों को अपनी बेवुझी का परिचय देती हुई हँसा देती हैं। अन्त में वैतालिक का गीत है—

जयतु जयतु देवराजो जयतु जनकल्याणकारी।
ध्वस्तो भेदः स्वनर्गरकयोर्लब्धा सहायता धुन्धपुंगयोः।
स जयतु संकटोत्तीर्णो वज्रपाशधारी॥ इत्यादि।



वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का नाट्य-साहित्य

वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का जन्म वङ्गाल के सिलहट जिले में १९१७ ई० में हुआ था। उनकी उच्च शिक्षा कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे हुई, जहाँ उन्होंने सभी परीक्षायें सर्वोच्च सफलता के साथ उत्तीर्ण की। १९३७ ई० मे उन्होंने बी० ए० ह्रानर्स परीक्षा दर्शन से प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। तभी से सरकारी नौकरी की चिन्ता मे १९३९ ई० मे केन्द्रीय प्रतियोगिता में सफल हुए, किन्तु नेत्र-दौर्बल्य के कारण नियुक्ति प्राप्त न कर सके। १९४० ई० में उन्होंने एम० एम० की परीक्षा दर्शन-विषय लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। १९४६ ई० में उन्होंने डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की।

डा० वीरेन्द्र का अध्यापन-काल १९४२ से १९४६ ई० तक रहा। वे कलकत्ते के सेण्ट पाल कालेज मे दर्शन-विभाग के अध्यक्ष रहे। अध्यापन के कार्य से उन्होंने १९४६ ई० मे मुक्ति ली, जब केन्द्रीय शासकीय सेवा मे इनका चयन हो गया। तब से लेकर विश्रान्ति के समय तक वे विभिन्न महत्त्व पूर्ण पदो पर प्रशसित प्रशासक रहे। वीरेन्द्र की उच्चकोटिक सात्त्विकता और निर्भीकता उनके नीचे लिखे वाक्य से प्रमाणित है—अस्माभिर्लब्धा महात्मसदृशाः पथिप्रज्ञा नेतृवर-सुभाष-तुल्या वीरनायकाः। तथापि तिष्ठन्ति भारतवासिनः अन्यायाचलायतने सेवमाना यथापूर्वं तथा परम्।

वीरेन्द्र वस्तुतः दर्शन के विद्वान् और दार्शनिक कवि हैं। दर्शन और काव्य के क्षेत्र में उनकी लेखनी अंगरेजी, बगला और संस्कृत मे चली। शासकीय तन्त्रणा मे उनकी काव्यात्मक प्रतिभा चूर्णित नही हुई और सेवाकाल मे उन्होंने अच्छे से अच्छे ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनकी काव्य-कला की प्रवृत्ति तर्कगर्भित है।

संस्कृत मे लिखने के पहले उनके नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे—

अंगरेजी में

1. Logic, Value and Reality.
2. Casuality in Science and Philosophy.

बङ्गाली में

३. ए देहमन्दिर।
४. सुरा ओ साकी।
५. स्वप्नसंहार।
६. पवनदूत।
७. रामफकिरेर छड़ा।
८. दूतीप्रणय-शतक।

संस्कृत मे उन्होंने १९६७ ई० से लिखना आरम्भ किया और अनेक नाटक लिखे।

नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने उमर खय्याम-काव्य लिखा और कलापिका नाम से ५० सानेट गीत शेक्सपीयर के अदर्श पर लिखे।

वीरेन्द्र ने संस्कृत में पहला नाटक कवि कालिदास लिखा और उसके पश्चात् क्रम से शार्दूल-शकट, सिद्धार्थ-चरित, वेप्टन-व्यायोग, गीतगौराङ्ग, शरणार्थि-संवाद और शूर्पणखाभिसार की रचना की।

वीरेन्द्र के काव्योत्कर्ष से प्रभावित विद्वान् प्रशंसकों ने उन्हें साहित्य-सूरी उपाधि से समलंकृत किया है।

वीरेन्द्र का कविदर्शन उनके शब्दों में है—

हर्षमात्रं न कापि कल्पते निःश्रेयस-कामिनां प्रपञ्चनिर्वृतये।
तीव्रदुःखं कारुण्य-हेतुकं स्फूर्तं यदि मानसे महात्मनस्तु कवेः।
निःसेवं स्यात् काव्यामृतक्षरो वाल्मीकिमुखाद्यथा विनिर्गतश्च पुरा॥

वीरेन्द्र विश्रान्त होकर अब ६०, ब्लाक बी, लेकटाउन, कलकत्ता में निवास करते हैं और नित्य संस्कृत-नाटक-सर्जन में व्यापृत हैं।

कालिदास-चरित

कालिदास-चरित १९६७ ई० में लिखा गया। यह वीरेन्द्र की संस्कृत में आदिम रचनाओं में से है। इसके प्रणयन की कहानी लेखक ने पुस्तक के प्राक्कथन में बताई है कि मैंने कलकत्ते में रमाचौधुरी का कविकुलकोकिल नामक संस्कृत नाटक का अभिनय देखा। इसमें कालिदास को मुख्यतया मूर्ख दिखाया गया है और उन्हें देवी के वरदान से ज्ञानप्राप्ति सूचित है। यह बात मुझे असंगत लगी। मैंने कल्पना-शक्ति के द्वारा उस सत्य का अनुसन्धान किया कि किस प्रकार एक ऐसी सर्वक्षेत्रीय प्रतिभा का विकास और विलास हुआ, जो महाकवि की रचनाओं में प्रकट होती है।[1]

वीरेन्द्र ने अपने शासकीय कार्यभार की अतिशयता होने पर भी केवल तीन मास में इस नाटक को पूरा लिख डाला था। इसका अभिनय निखिल-भारतप्राच्य विद्या-सम्मेलन के रजत-जयन्ती-महोत्सव में हुआ था। श्रेष्ठ पण्डित अभिनेता बने थे।

कथावस्तु

उज्जयिनी में दरिद्र किन्तु काव्य-प्रतिभा से देदीप्यमान कालिदास यह निर्णय नहीं कर पाते थे कि कविता का विषय किसे बनाऊँ? किसी देवता को या मानव को।

उन्हें महाराज विक्रमादित्य के प्रति कुछ आकर्षण था। इस ऊहापोह में पड़े कवि को वररुचि नामक युवक दिखाई पड़ा, जो पिता के आदेशानुसार अपनी

१. जिस समय वीरेन्द्र का यह नाटक लिखा गया, उस समय अनेक कवियों ने कालिदास पर नाटक लिखे। जीवन्यायतीर्थ और श्रीरामवेलणकर के कालिदास-विषयक नाटक सुप्रसिद्ध हैं।

काव्यशक्ति दिखाकर कुछ पारितोषिक पाने की आशा से विक्रमादित्य की रत्नपरिषद् के समक्ष अपने को प्रस्तुत करने जा रहा था। दोनों ने परस्पर बातचीत करके अपनी कवितायें सुनाकर एक दूसरे की योग्यता जान ली। वे साथ ही विक्रमादित्य से मिलने चले।

द्वितीय अङ्क में विक्रमादित्य सभा में चर्चा करते हैं कि सात रत्न तो हैं। अन्य भी रत्न चाहिए। उस समय उपर्युक्त कविद्वय पहुँचे। कालिदास ने विक्रम को अपना परिचय दिया—

पयोदेभ्यः सलिलं याचते तृषातुरश्चातको
हिमांशोः कामयते कौमुदीं मिथश्चकोरो यथा।
यथा क्षीरं सुरभेरीहते ऋतुकामी याजक-
स्तथैव च रवेरर्चिषं तमोहतः प्रार्थये॥ २.१८

विक्रम यह सुनकर उछल पड़े। उनके मुँह से निकल पड़ा—उपनीतमत्र महारत्नम्। वररुचि ने कविता सुनाई। उसका समादर हुआ। फिर पहले के अन्य रत्नों ने अपनी अकविता सुनाई। कालिदास की प्रार्थना पर मंजुभाषिणी ने नीरस काव्यों के अनन्तर अपना गीत सुनाया—

वरमेलीनः शशी नर्मदा रोधसि स्निग्धपवनो वाति छन्दसा मन्दम्।
सुप्तमीनामले दीप्तरेवाजले फुल्लकुमुदो वहति चन्द्रिकागन्धम्॥
हंसिके मा कुरु कान्तेन मानद्वन्द्वम।

वररुचि ने अपनी कविता सुनाई और आठवें रत्न नियुक्त हुए। कालिदास ने विक्रम की कन्या मंजुभाषिणी के विषय में कविता बनाई।

कलकोकिला न यदि कूजने रता यदि हंसिकापि चलिता न लीलया।
मुनये च साम यदि वा न रोचते तरुणी तथापि चिरमंजुभाषिणी॥

इस पर तो कालिदास को रत्नमण्डल में मध्यमणि नियुक्त किया गया।

तृतीय अंक में मंजुभाषिणी का कालिदास से प्रेम उत्पन्न होने की चर्चा है। कालिदास मंजुभाषिणी को काव्य-शिक्षा देते हुए उसे अपने प्रति नित्य आकृष्ट कर रहे हैं। कालिदास के सद्योविरचित ऋतुसंहार को मंजु बहुत चाहती है। आगे कालिदास कुमारसम्भव लिखने वाले हैं। उसके बाद विक्रमोर्वशीय की रचना करेंगे और फिर रघुवंश की। कालिदास ने मंजु से कहा—

त्वमेव मे शक्तिः प्रेरणारूपा अघटनघटनपटीयसी मायेव चानिर्वचनीया।

फिर उसके विरह के कारण अपना तनुकार्श्य बताया। कवि का सोचना है—ऋते प्रमदायाः कोऽन्यः समर्थो रसोन्मादं प्रचेतयितुं कविमनसि।

मंजुभाषिणी ने कहा कि मेरा विरह भी तो आपको काव्यरचना की प्रेरणा देता है। कालिदास ने कहा कि ऐसा नहीं है।

ऐसी मनःस्थिति में वाचा वे एक-दूसरे के हो गये। कालिदास मंजु का पाणिग्रहण करके मन्त्र पढ़ते हैं—

कुसुमैरर्च्यसे च कविना वरार्थं प्रणयरागताम्रै-
र्यदिदं मामकं हि हृदयं तदेवास्तु सुचिरं तवैव ॥ ३.४६

इस अवसर पर वहाँ महाराज विक्रम आ गये। उन्होंने कुमारसम्भव के कतिपय पद्य शिव और पार्वती के प्रणय-विषयक सुने और बोले कि परमतोष हुआ। उनसे विदाय लेकर कालिदास किसी दूरस्थ पल्ली में अपने काम से चलते बने।

विक्रम ने मंजु से कहा कि तुम्हारे लिए स्वयंवर होने वाला है। मञ्जु ने कहा कि मैं तो पिता के घर रहकर काव्यचर्चा में जीवन बिताना चाहती हूँ। अधिक पूछने पर उसने कहा कि मैंने तो पति रूप में किसी लोकोत्तरचरित का वरण कर लिया है। विक्रम ने समझ लिया कि कालिदास ने इसका मन हर लिया है। उन्होंने दण्ड दिया—तुम इसी घर में वन्दी रहो और कालिदास का एक वर्ष तक निर्वासन हो।

चतुर्थ अङ्क में निर्वासित कालिदास रामगिरि पर रहते हैं। वहाँ उनसे वररुचि मिलते हैं। समाचार जानने के पश्चात् कालिदास को मेघ दिखाई पड़ा। उसे देखकर मंजु की स्मृति हो आई। कालिदास रोने लगे। वे विक्रमोर्वशीय के पुरूरवा की भाँति मेघ से बातें करने लगे।[1] वररुचि के निवेदन पर कालिदास ने मेघदूत की रचना का आरम्भ किया। वहाँ उसे वनदेवी सानुमती से मैत्री हो गई।

पंचम अङ्क में विक्रम के दिग्विजय-प्रयाण के आरम्भ में वररुचि कालिदास के पास से लौट कर मिलते हैं।

मंजुभाषिणी ने पूछा कि कालिदास कहाँ है? वररुचि ने बताया कि निर्वासन अवधि के बीत जाने पर यहीं मालिन के घर पर लौट कर ठहरे हैं। विक्रम स्वयं कालिदास को लेने गये कि मेरे साथ आप दिग्विजय-प्रयाण में चलें। उन्होंने मंजुभाषिणी को विवाह की स्वीकृति प्रदान की।

भारत्या वरपुत्रो यः कालिदासो महाकविः।
तस्यैव योग्यभार्या स्यात् सर्वथा मंजुभाषिणी ॥ ५.८४

सप्तम अङ्क में कालिदास और मंजुभाषिणी अन्तःपुर में मिलते हैं। सभी रचनाओं की चर्चा कवि और उसकी पत्नी कर लेते हैं। अन्त में मंजुभाषिणी कालिदासके निर्वासन के समय रचे हुए नलोदय काव्य की चर्चा करती है। कालिदास ने कहा कि इसे किसी दूसरे कवि ने लिखा है और बीच-बीच में मेरे श्लोकों को समाविष्ट किया है।

विक्रमादित्य विजय के पश्चात् उज्जयिनी लौटे। कालिदास ने गाया—

प्रत्यावृत्तः समरविजयी विक्रमार्को विशाला-
मुड्डीयन्ते प्रकृतिनिवहे वैजयन्त्यो विचित्राः।

---

१. श्रीरामवेलणकर ने कालिदास-चरित में ऐसी ही उद्भावना की थी। सम्भवतः यही वीरेन्द्र का आदर्श हो।

शंखारावो ध्वनति मधुरं नृत्तमत्तास्तरुण्यः
स्वर्गान्मन्ये पतति मरुतां पेशला पुष्पवृष्टिः ॥

कालिदास ने बताया कि महाराज की विजय ही रघुवंश में रघुविजय रूप में वर्णित है। विक्रम का कालिदास के विषय में कहना है—

कुमारसम्भवे मत्पुत्रस्य कुमारस्योल्लेखः कृतः। मेघदूते च पौत्रस्य स्कन्दस्य स्थान-प्राप्तिः काव्यकौशलेन। विक्रमोर्वशीयस्य नाम स्वयमधिवसामि। कालिदासस्य कृपया सर्वेऽपि वयममृतत्वं लभेमहि।

समीक्षा

कालिदास की मूर्खता का वर्णन कविकुलकोकिल में देखकर वीरेन्द्र ने कवि कालिदास की रचना की, क्योंकि उस नाटक की कथावस्तु में असमंजसता है। ऐसी विचारणा वाले वीरेन्द्र क्योंकर उस कथानक की कल्पना करते हैं, जिसमें कालिदास अपनी शिष्या मंजुभाषिणी को अपनी कलात्मक प्रेरणा का स्रोत बनाकर उसे मेघदूत की यक्षिणी रूप में प्रेयसी बना लेते हैं? यह अभारतीय निदर्शन हेय है। चतुर्थ अङ्क में सानुमती कालिदास के चरित्र पर अमिट लाञ्छन थोपती है। यथा,

कथं च दर्शितानि विविधानि स्नेहचिह्नानि। कथं न वारितं मदागमनमुपसि सायं च। किमर्थं भाषिताहं गद्गदेन वचसा पुष्पवीथिकासु तथा निभृतदरीषु शैलशिखरेषु निर्जनवर्त्मसु च।[1]

वीरेन्द्र का कालिदास कहता है—

स्थानकालपात्रभेदं नो जानाति मन्मथो
वशयतां कथं नु नेष्यामि प्रेमार्तमानसम्। ४.६४

वीरेन्द्र के इस नाटक के कथानक पर श्री रामवेलणकर के कालिदासचरितम् के कथानक का प्रभाव परिलक्षित होता है।

शिल्प

नाटक का आरम्भ कालिदास की एकोक्ति से होता है। यह अंशतः सूचनात्मक है, परन्तु प्रधान रूप से इसमें कालिदास के सङ्कल्प-विकल्प की चर्चा है कि मैं अपनी कविता का विषय किसे बनाऊँ? तृतीय अङ्क के आरम्भ में मंजुभाषिणी की सूचनात्मक एकोक्ति है। वह कालिदास की संगति में अपने काव्याभ्यास की चर्चा करती है। तृतीय अङ्क के अन्त में कालिदास का उसके कारण निर्वासन होने पर वह उसके लिए अकेले में विलाप करती और गाती है—यह सब एकोक्ति द्वारा। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में कालिदास रामगिरि पर एकान्तवास करते हुए मंजु के लिए सन्तप्त है। उनकी इस अवसर पर एकोक्ति सूचनात्मक भी है। यथा, मैंने कुमारसम्भव पूरा कर लिया। फिर बतलाते हैं कि हिमालय को देखने की इच्छा होती है। चतुर्थ अङ्क के अन्त में कालिदास एकोक्ति द्वारा आषाढ में मंजुभाषिणी की अवस्था कैसी होगी—यह विचारणा करते हैं।

१. ऐसा लगता है कि वीरेन्द्र कामशास्त्र का पाठ पढ़ा रहे हैं।

रंगमंच पर नायक को अकेले छोड़कर उसे दैव-दुर्विलसित पर आत्मखेद प्रकट करने का अवसर अङ्क के बीच में प्रायशः इस नाटक में दिया गया है।

कवि ने पुराने वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त अपनी ओर से कतिपय नये छन्दों में पद्यों की रचना की है। उनका इस सम्बन्ध में कहना है—

I have used recognised metres in abouthalf of my verses, but found it necessary to invent new ones wherever my thought could not be expressed through the former without Procrustean distortion.

इसमें कालिदास के ग्रन्थों से २५ पद्य उद्धृत किये गये हैं।

कवि गीतों की उपयोगिता से परिचित है। उसने सिद्धार्थचरित के मुखबन्ध में कहा है—'वर्त्तमानयुगाभिनेतव्यं नाटकं गीतैस्तथा नृत्यैर्विना नादृतं स्यात् प्रायेण'। उसने इस नाटक में बहुशः गीतों को पिरोया है। गीत का उपयोग कतिपय स्थलों पर महत्त्वपूर्ण पात्रों के रंगमंच पर आने के पूर्व उनका परिचय देने के लिए हुआ है। यथा, द्वितीय अङ्क के पूर्व विक्रम-विषयक वन्दियों का गान है—

जय कमलापदाम्बुजधारण कृतविद्याभातिचारण
सितकर कोविदगणतारण
हृत्कीर्तितूर्य,
जय जय विक्रमसूर्य।

ऐसा ही गीत पंचम अङ्क के आरम्भ में वन्दी गाते हैं। यथा,

जयतु जयतु विक्रमनृपतिः धराधिपतिः। इत्यादि।

ऐसे गीत अंकिया और किरतनिया नाटकों की पद्धति पर प्रशंसानुयोगी हैं।

इस नाटक में कवि कथा-प्रवाह के सौष्ठव को अक्षुण्ण बनाने में असमर्थ दिखता है। इधर-उधर के वक्तव्य-रूपी निकुञ्जों में कथा-धारा रुकती हुई नाट्योचित नहीं रह जाती। द्वितीय अङ्क इसका उदाहरण है।

कालिदास अपने को मंजुभाषिणी का कृपायाचक तीसरे अंक में कहता है। यह कवि के लिए अशोभनीय है। कवि कालिदास इस नाटक में सिनेमा के प्रणयी नायक के आदर्श बना दिये गये हैं।

मेघदूत के अधिकाधिक पद्यों को वीरेन्द्र ने अपने नाटक के कथानक में सौष्ठव-पूर्वक गूँथा है।

नाटक के कथानक में घटनायें पूर्व घटनाओं से आकांक्षित होकर सानुबन्ध आनी चाहिए। इस नाटक में ऐसा नहीं हुआ है। इसमें तो घटनाचक्र यदृच्छात्मक है। चतुर्थ अङ्क का पंचम अङ्क से कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता।

षष्ठ अङ्क की पूरी सामग्री शास्त्रानुसार अङ्कोचित नहीं है। इस सामग्री को संक्षेप में अर्थोपक्षेपक में रखना चाहिए था। कवि ने इस अंक का नाम जन-विचारण रखा है।

गीत गौराङ्ग

वीरेन्द्र की दसवी संस्कृत-रचना गीतगौराङ्ग नामक गेय नाटक है। उन्होने १६ जनवरी १६७४ मे इसकी रचना आरम्भ की थी और मार्च ७४ में इसे निष्पन्न किया था। उनकी कन्या वैजयन्ती ने इस कृति को वर्तमान रूप देने मे योग दिया था। उसकी इच्छानुसार इसमे अधिक से अधिक गीत रखे गये, जिनकी सख्या ८१ है, जो छः रागो और ७५ रागिणियो मे गेय है।

इस नाटक की रचना के पूर्व कवि ने अनेक ग्रन्थो का अध्ययन करके सामग्री संगृहीत की। कृष्णदास का चैतन्य-चरितामृत, स्वामी प्रज्ञानन्द का राग-ओ-रूप, और गोपेश्वरवन्द्योपाध्याय की संगीतचन्द्रिका से लेखक को प्रचुर सहायता इसके प्रणयन मे प्राप्त हुई।

अनेक विद्वानो ने नाटक को परिनिष्ठित करने मे वीरेन्द्र कुमार की सहायता की थी।[1]

कवि ने गौराङ्ग महाप्रभु को व्यक्तिगत दृष्टि से जैसा पाया है, वैसा निरूपित किया है। उसका कहना है —

I have depicted Gouränga as an extra-ordinary dedicated rebel (—not a god in human garb) who primarily aimed at a social revolution through abolition of the perniciously custom-ridden cast system and preaching the lesson of universal love which he himself practised.[2]

गीतगौराङ्ग गीतिनाट्य है। इसके पाँचो अङ्क आदि से अन्त तक पद्यात्मक हैं। कही भी गद्य का प्रयोग नही हुआ है।

कथावस्तु

देश का सांस्कृतिक ह्रास हो चला था। यथा,

विप्राणां व्यभिचारश्च समादृतोऽस्ति पामरैः।
नास्ति मतिर्द्विजातीना स्तोकेन लोकसंग्रहे।
दण्डभीतैस्तथाप्यद्य परधर्मः श्रितो नरैः।
सनातनं विधिं रक्षेत् कः प्लावे पापदुःसहे॥

ऐसी स्थिति मे स्वस्थ समाज की रचना करना है—

रच्यते मन्त्रयोगेन स्वस्थं समाजबन्धनम्।
मर्म बध्नाति न न्यायः केवलं प्रेममन्त्रणम्॥

अद्वैताचार्य का विश्वास है, कि ऐसा महामानव आने वाला है, जिसके द्वारा देश सुपथ पर प्रवर्तित होगा। यथा,

१. संस्कृत-पुस्तक-भण्डार कलकत्ता से १६७४ ई० प्रकाशित।
२. पुस्तक के प्राक्कथन से।

आगच्छति महामानवः सद्यो
दिशि दिशि तस्य पादसरणं सुमन्द्रितम् ।
जागर्ति निखिलं विश्वहृदय
प्रकृतिः कुसुमिता तृणं च रोमाञ्चितम् ।
पूर्वाचलो गायति ह्यभयमन्त्रं
चकितं नवजीवनाश्वास-समन्वितम् ।
प्रातरम्वरं च भणति गततन्द्रं
जयतु जयतु मनुजाभ्युदय-प्रेमहितम् ॥

महामानव का जन्म शची-जगन्नाथ मिश्र के पुत्र रूप में नवद्वीप में हुआ । शीघ्र ही वह अपना घर-द्वार छोड़ कर निकल पड़ा अपने काम पर—

विहाय स्वनिकेतं परिवार-समेतं भवति यौवने क्षौमधारी ।

अन्नप्राशन के समय पिता के द्वारा सामने रखी असंख्य वस्तुओं को छोड़कर उन्होंने श्रीमद्भागवत को हाथ में लिया ।

माता-पिता ने गौराङ्ग की संन्यास-वृत्ति देखी । पिता ने कहा—

सद्यो विवाहो रूपवत्यैव हिताय कल्पते
वध्नाति मन्ये केवलं प्रेम मुमुक्षुनन्दनम् ॥

एक दिन गौराङ्ग-गुप्त हो गये । माँ रोने लगी । गौरांग उसे मिले गाते हुए—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
एतदेव कलौ जाने साधनं सिद्धि-वत्सलम् ॥

माँ उनकी प्रवृत्तियाँ देखकर रोने लगीं । गौराङ्ग ने समझाया—

न खलु न खलु मातः साम्प्रतं तवेदृशरोदनं
प्रियवरतनयश्चेन्मोक्षमोदमात्मन ईप्सते ।
अहमपि तव पुत्रः प्रार्थये पदाम्वुजपूजनं
न किमपि भुवि मन्ये मातृपूजनादतिरिच्यते ॥

पिता का वक्षःपीड़ा से स्वर्गवास हो गया ।

प्रथम अङ्क के चतुर्थ दृश्य के अनुसार गौराङ्ग का प्रथम विवाह लक्ष्मी नामक कन्या से हुआ था, जो उनके साथ वचपन में गंगा तट पर खेला करती थी । लक्ष्मी ने श्यामकान्ता नामक नवद्वीप की वैष्णवी से कहा—

देशे देशे भ्रमन्नाथो लभते कीर्तिमालिकाम् ।
क्लिश्नाति विरहाग्निस्तु मामनाथां हि वालिकाम् ॥
त्वमसि मम दुःखहन्ता भाग्यनियन्ता त्वमसि मर्मभूषणम् ।
ज्वालानाशं दत्त्वा श्लेषचुम्वनं यच्छ मे नूतनजीवनम् ॥

एक दिन सर्पदंश से लक्ष्मी सुरधाम चली गई ।

दूसरे अङ्क में दूसरी पत्नी विष्णुप्रिया आती है । गौराङ्ग के यह कहने पर कि तुम भी मेरी सहयोगिनी वनकर पढ़ाओ, विष्णुप्रिया ने स्पष्ट कहा—

अध्यापनां सपत्नीं मे श्रेयसीं गणये कथम् ।
विस्मृत्य मां सदैव त्वं साधयसे निजव्रतम् ॥

विष्णुप्रिया ने अन्ततोगत्वा गौराङ्ग के जीवन-दर्शन को अपनाया। उसने गाया—

यत्र यत्र कान्तः करोति पदपातमवनौ क्षणम् ।
तत्र तत्र मार्गे विदधामि निजतनुं पांशुकणम् ॥
यस्मिञ्च तडागे दयिता मे करोत्यवगाहनम् ।
तस्मिंस्तु सरागं सलिलकायेन मम सरणम् ॥

गौराङ्ग ने उसका संगीत सुनकर कहा—

सुकण्ठि तव संगीतं मम प्रियमहर्निशम् ।
प्रविश्य मम कर्णे नु प्राणान् मूर्छयते भृशम् ॥

रघुनाथ नामक नव्यन्याय के प्रतिष्ठापक ने अपनी दीधिति नामक टीका गौराङ्ग को दिखलाई। उन्होंने गौराङ्ग से कहा—

अहं तु शोकसन्तप्तः श्रीगौराङ्ग क्षमस्व माम् ।
न्यायटीकां लिखित्वापि न लब्धवानहं प्रमाम् ॥

गौराग ने पुस्तक नदी के जल में फेंक दी और रघुनाथ को समझाया—

अशोच्यं शोचसे तु त्वं दीधितिर्मया रक्ष्यते ।
पुस्तकान्मे चिरं विश्वे बन्धुप्रेम विशिष्यते ॥

फिर कभी गौराङ्ग से कश्मीरी पण्डित केशव मिले। उसने कहा कि दिग्विजयी पण्डित हूँ। आप मेरे शिष्य बनें। गौरांग ने कहा कि आप गंगा का रसमय वर्णन करें। केशव ने अपना एक श्लोक सुनाया। गौराङ्ग ने कहा कि इसका गुण-दोष भी बतायें। केशव दोष के नाम से भड़क उठा। पर गौराङ्ग से समझाये जाने पर अपनी भूल समझ कर लज्जित हुआ। वह यह कहकर चलता बना—

दिग्विजयः पराजितस्तव करे सुपण्डितः ।
वर्धसे नितरां दिष्ट्या शास्त्रज्ञैराशु वन्दितः ॥

श्रीवास और अद्वैताचार्य गौराङ्ग से मिले। अद्वैत ने श्रीवास को बताया कि एक दिन श्रीश्वरपुरी ने गौरांग को श्रीकृष्ण लीलापरक एक पुस्तक दी। वहाँ से गया जाकर उन्होंने विष्णु के चरण पर मस्तक रखा। तत्काल मूर्छित हो गये। तबसे उनकी भक्ति बढ़ गई। पुरी ने उन्हें कृष्ण-मन्त्र दिया। फिर तो गौराङ्ग चिन्मय हो गये। यथा,

पश्यति मानसे नित्यं कृष्णाभं शिशु-सत्तमम् ।
दूरागतं शृणोतीव वेणुरवं मनोरमम् ॥

शची का सोचना था कि मेरा घर नष्ट हो गया। वह गौराङ्ग की वृत्ति से प्रसन्न नहीं थी। उसने कहा है—

शोकार्तमाता स्वगृहे हि यस्य
साध्वी च भार्या प्रणयान्निरस्ता।
लोकार्तिनाशे प्रणयस्तु तस्य
पुत्रस्य वृत्तिर्न मया प्रशस्ता॥

द्वितीय अङ्क के चतुर्थ दृश्य में गौराङ्ग दर्शनाचार्यों को सिखाते हैं—

प्रेमामृतं वितर विमलं निखिलनरेषु नित्यम्।
पुष्पोपमः किर परिमलं हृदयक्षरितवित्तम्॥

वे हरि का नाम लेते हुए नाचने लगे तो वेदान्ती ने कहा—

साधु साधु नटश्रेष्ठ नृत्यं तव सुशिक्षितम्।
शास्त्रपाठस्य चित्रं वै फलमिदं तवेप्सितम्॥

गौरांग का प्रत्युत्तर था—

नामगानं सनृत्यं हि चित्तशौचाय कल्पते॥

सभी विरोधी भाग खड़े हुए।

पंचम दृश्य में शान्तिपुर में अद्वैत के घर पर श्रीवास आता है। वह गौरांग से मिलने के लिए विशेष चिन्तित था। तभी वे आ पहुँचे और बोले—

अद्वैताचार्य भक्त्यर्घ्यं प्रीणाति मां हि तावकम्।
आगतोऽस्मि स्वयं भ्रातर्लभस्व प्रेम मामकम्॥

षष्ठ दृश्य में नवद्वीप के राजमार्ग पर जगा और माधा नामक पुलिस कहते हैं कि गौरांग बचपन में कुछ दुर्दम था। अब साधु हो गया है। तभी वेदान्तवागीश ने उन्हें समझाया कि गौराङ्ग कहाँ का साधु है—

व्यभिचारे सुरापाने रमते गौरपण्डितः
कुलाङ्गारस्ततोऽस्माभिर्भवतु पथि दण्डितः॥

तब दोनों ने छक कर मदिरा पी और खप्पर से नित्यानन्द को आहत किया। नित्यानन्द ने कहा कि तुम्हारे ऊपर अब भी मेरा प्रेम प्रवाहित हो रहा है। उनके प्रेम को देखकर वे दोनों कठोर पुलिस कर्मचारी नित्यानन्द के पैर पर गिर पड़े। उनके नाम जगन्नाथ और माधव रख दिये गये। वे गौराङ्ग के शिष्य बन गये।

सप्तम दृश्य में धर्माधिकारी काजी के पास वेदान्तवागीश और तर्कचुञ्चु पहुँचते हैं। इन्होंने उनके अपवाद सुनकर उनको दण्ड देने की बात कही। जब गौराङ्ग 'प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्' इत्यादि गाते उधर से निकले तो उन्हें संवाद मिला कि काजी ने राजमार्ग पर कीर्तन पर रोक लगा दी है। गौराङ्ग ने कहा—

रक्षति वैष्णवान् विष्णुर्नास्ति संशयकारणम्।
निःसंगोऽहं स्वयं मार्गे करोमि नाम कीर्तनम्॥

जयतु प्रेमभूयिष्ठा विष्णुभक्तिर्धरातले ।
स्फुटतु हृदयाम्भोजं कलेश्च पापपल्वले ॥

गौरांग गाते हैं। काजी आ टकराता है। गौराङ्ग ने उससे कहा—

विजयतां महाकालो धर्माधिकार-रश्मिना ।

काजी ने गौराङ्ग की बातें सुनकर कहा—

मम साहायकं बन्धो लभतां विजयाय ते ।

तृतीय अङ्क मे प्रथम दृश्य मिश्रभवन है। वहाँ गौराङ्ग की माता शची और पत्नी विष्णुप्रिया है। वही गौराङ्ग आकर विष्णुप्रिया से बोले—

नास्ति प्रेयः प्रिये विश्वे विश्वनाथस्य पूजनात् ।

विष्णुप्रिया ने कहा—

त्वमेव मम ललाटतिलकं नयनयोर्मदुरमञ्जनम् ।
त्वमसि च मर्मणः कोरकं प्रेमपरागरसरंजनम् ॥

शची ने पुत्र गौराङ्ग को संन्यास की अनुमति देते हुए कहा—

तथास्तु लोकदुःखार्त-जननीमपि विस्मर ।
विश्वक्लेशविनाशार्थं सन्न्यासं त्वरितं वर ॥

अपनी पत्नी को छोड़ना गौराङ्ग के लिए कठिन हो रहा था। उन्ही के शब्दों में पत्नी है—

इयमतिसरलात्मा बालिका प्रेमसत्त्वा
मयि चिरमनुरक्ता विप्रयोगे विषण्णा ।

फिर भी लोकहित के लिए गौराङ्ग चलते बने तो विष्णुप्रिया ने भाग्य को कोसा—

भालं विष्णुप्रियायाः किं दग्धमद्य निरन्तरम् ।
सन्यासं श्रूयते नाथो रिक्तं मम चराचरम् ॥
यौवनं यामि मे वन्ध्यं जीवनं च प्रवंचितम् ।

गौराङ्ग ने केशव से दीक्षा ली कञ्चनपुर में। वे नवाश्रम मे कृष्णचैतन्य हो गये। वहाँ से वे काञ्चनपुर चले गये। उनकी माता को यह समाचार देकर सभी अनुयायी काचनपुर चले।

तृतीय दृश्य मे काञ्चन पुर मे वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ चैतन्य बैठे है। फिर कृष्ण का कीर्तन करने लगे। वही केशवभारती आ पहुंचे। उन्होने चैतन्य से कहा कि आश्रम मे पुनः आ जाओ। चैतन्य ने कहा कि अब तो वृन्दावन जाना है। केशव ने आशीर्वाद दिया—

गच्छ विजयलाभार्थं प्राप्नोषि कीर्तिगौरवम् ॥

चैतन्य का विश्वास है—

कृष्णो सराधिको विहरति धरायामद्यापि वृन्दावने ।

वहीं नित्यानन्द आ गये। नित्यानन्द से उन्होंने वृन्दावन का मार्ग पूछा तो उन्होंने वहाँ न ले जाकर चैतन्य को शान्तिपुर ले जाने का उपक्रम किया।

चतुर्थ दृश्य नवद्वीप में मिश्रभवन का है। गौराङ्ग की पत्नी विष्णुप्रिया ने देखा कि संन्यासी वन कर चैतन्य पुनः अपने घर पर आ पहुँचे। वे कहती हैं—

वेणुं को वाद्य वादयते भूयो मम छिन्ने कानने।
वेपथुर्मानसे जायते कान्तपदचारप्रतिस्वने॥

वहीं माता शची आ पहुंची। इनसे नित्यानन्द ने कहा कि चलें अपने पुत्र को देख लें।

शान्तिपुर के राजपथ पर चैतन्य हैं। वहाँ अद्वैत आकर उनसे मिले। अब तक चैतन्य को भ्रम में रखा गया था कि आप वृन्दावन पहुँच रहे हैं। अद्वैत से उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तो उन्हें क्रोध हुआ—

नित्यानन्दस्य कूटेन तर्ह्यहं हि प्रवञ्चितः।

वहाँ से वे अद्वैत के घर पहुंचे। वहीं शची देवी उनसे मिलीं। उन्होंने वताया कि माँ और पत्नी पर उनके घर छोड़ने से क्या बीत रही है। चैतन्य ने अपनी वात कही कि संन्यासी को अपने लोगों से दूर रहना चाहिए। तव उनकी मां ने कहा—

श्रीक्षेत्रधाम तीर्थं तु वंगान्तिके हि वर्तते।
कुरुष्व वसतिं तत्र निश्रेःयसाय पुत्र ते॥

चैतन्य ने उनकी वात मान ली। वे जगन्नाथ जाने के लिए कतिपय भक्तों के साथ चले। मार्ग में सीमा पर रामचन्द्र भी आ पहुंचा। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा।

चतुर्थ अङ्क में चैतन्य की श्रीक्षेत्र की चरितगाथा है।

वहाँ उनसे सार्वभौम वासुदेव नामक राजगुरु मिला। वह प्रगल्भवाक् था, और चैतन्य को ही शिक्षा देने पर तुला था। उसने चैतन्य से कहा—

शास्त्रज्ञानप्रदानार्थं भवामि तव शिक्षक।

उसके अटपट कहने पर चैतन्य ने हरि भक्तिभाव की लहरी वहाई—

गायतु मे सतृपमानसं हरिनामरागं ललितम्।
हा विना नामगीतरसं जीवनमिह विफलीकृतम्॥

चैतन्य ने उनकी चतुष्पाठी में एक सप्ताह तक वेदांत विषयक प्रवचन सुना। तब तो एक दिन उन्होंने सार्वभौम से कह दिया।

अनधिकारिणं मन्ये भ्रान्तं त्वां खलु शिक्षकम्।

सार्वभौम आग वबूला हो गया। चैतन्य ने उसे फिर समझाया—

प्रमां दत्ते विपश्चिद्भ्यः कृष्णकृपात्र केवलम्।
कैवल्यदायिनी सैका जनयेत् प्रेमपुष्कलम्॥

किसी दिन सार्वभौम अपनी भगिनी और कन्या को उनके दुर्दान्त पतियों के

द्वारा अवहेलित देखकर उनकी दुर्दशा से घबड़ा कर आत्महत्या करने वाला ही था कि चैतन्य की हरिनामवासित वाणी सुनाई पडी। वह उनके चरणो मे प्रणत हो गया। चैतन्य ने उन्हे जगन्नाथ का प्रसाद दिया और गाया—

जयतां जगति प्रेमधर्मः, लभतां निखिलं शान्तिशर्म।

वहाँ से चैतन्य अकेले दक्षिणापथ जाने की सोचने लगे। भक्तो ने कहा—अकेले जाना ठीक नही, तो कृष्ण ने कहा—

कृष्णः सहायः प्रतिमार्गमास्ते।

फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन प्रतिवर्षानुसार विष्णुप्रिया चैतन्य का कीर्तन देखने के लिए उत्सुक हो उठी। वह प्रतिमास के प्राकृतिक सौरभ का वर्णन करती है और उन दिनों का स्मरण करती है, जब उसे पति का साहचर्य प्राप्त था। यथा—

मार्गशीर्षे जायते कनकधान्यं
सर्वसद्मसु विहितं नर्वनवान्नम्।
लभसे त्वमपि बहुधन हृदयरमणं
कुरुषे च सुखशयनं निशि मया कान्त
श्रयामि तवाङ्कं विचित्रजल्पा
विभावरी याति मुहूर्तकल्पा
वचस्ते चाटुचतुरं हससि मधुरं
मर्म ते जय विधुर त्वमसि चिरशान्तः।
तदानीं प्रभो विष्णुप्रियाया
निलये मातं स्वर्गदुर्लभमपि सुखम्
इदानीं भक्तशरण वंचिताया
हृदये जातं रौरवसुलभं दुःखम्॥

चैतन्य जगन्नाथ से चलकर गोदावरी तट पर विद्यानगर पहुचे। वहाँ उनकी भेंट शिष्यो के साथ रामानन्द से हुई। रामानन्द उनसे प्रभावित हुए और बोले—

प्रणमामि महाभक्तं दिव्यार्चिषा प्रकाशितम्।
रामानन्दं विजानीहि तवैतं चरणाश्रितम्॥

रामानन्द ने अपने को शूद्र कहा तो चैतन्य ने प्रबोध किया—

शूद्रोऽपि स्याद् द्विजाच्छ्रेयान् कृष्णभक्तिपरायणः॥

और भी—

आगतः स्वमेवाद्य रामानन्दस्य हेतवे।
मतिरास्तां हि भक्तानां प्रेमार्णवस्य गौरवे॥

तब तो रामानन्द ने कहा—

दासानुदास आयातो भक्तानां मनुजाधमः।
वन्दते प्रणिपातेन दीनस्त्वां भक्तसत्तम॥

जीवनमद्य मे धन्यं मेदिन्यां लक्षितः सुरः।
पिबामि प्रेमपीयूषं नेत्रसृतं तृषातुरः॥

इस दृश्य को वहाँ पर उपस्थित कतिपय ब्राह्मणों ने देखा तो बोले—

नूनं प्रेमावतारोऽयं श्रीचैतन्यो द्विजात्मजः।
वन्द्यं सर्वैरहोऽस्माभिस्तत्पदाम्बुजयोः रजः॥

दक्षिणापथ में चैतन्य को दूसरे वैष्णव मिले कृष्णकिंकर। उन्होंने चैतन्य से आत्म-परिचय दिया—

गुरोरादेशतो नित्यं गीतां पठामि सज्जन।
पठन्नेव हि पश्यामि कृष्णं श्यामलसुन्दरम्।
तर्पयते च मे चित्तं रसपीयूषनिर्झरम्॥

चैतन्य ने उन्हें गले लगा लिया।

अन्यत्र रामानन्द से चैतन्य ने भक्ति-विषयक तत्त्वचर्चा की। कृष्ण ने उनकी कतिपय उक्तियों को बाह्य बताया और बहुत-सी उक्तियों को साध्य और श्रेय बताया। रामानन्द की नीचे लिखी उक्ति सुन कर चैतन्य गद्गद हो गये—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ—
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजसुन्दरीणाम्॥

इस प्रसंग में राधा और कृष्ण के सम्बन्ध की विवृति चैतन्य के मुख से परिचेय है—

राधामाधवयोः परश्चिरनवः प्रेमा स्वभेदात्मकः
कान्ता खलु कश्च वल्लभवरः पार्थवयमूनं द्वयोः।
वैवर्तो रमणाम्बुधिप्रतिकरः स्यान्न प्रमासूचको
ह्लादिन्या अपि लीयते स्मृतिलवो भोक्तुश्च तादृग्नयः॥

चतुर्थ अङ्क के अन्तिम आठवें दृश्य में श्रीक्षेत्र (जगन्नाथ) में राजसभा स्थान है। राजा प्रतापरुद्र ने अपने राजगुरु सार्वभौम से पूछा कि क्या आप चैतन्य को जानते हैं? उन्होंने ने कहा कि मैं तो अपना सर्वस्व छोड़ कर उनके श्रीचरणों में समर्पित हूँ। प्रताप ने सार्वभौम से चैतन्य के विरोध में इधर-उधर के प्रश्न पूछे, जिनके समाधान में सार्वभौम ने भक्ति की महिमा प्रतिपादित की। उसी समय वहाँ रामानन्द भी आ गये। रामानन्द ने प्रतापरुद्र को बताया—

स्मरामि केवलं परां हरेः सरागचातुरीम्

सार्वभौम ने उन्हें बताया कि बंगाल के रूप और सनातन यवनराज द्वारा वहु सम्मानित थे। वे भी अब चैतन्य की शरण में आ चुके हैं। रामानन्द ने कहा—

वृन्दावनं शरीरं मे राधिका मर्मकन्दरे।
वेणुं वादयते कृष्णो नित्यं तथा हरे हरे॥

पञ्चम अङ्क का प्रथम दृश्य गम्भीरा कुटीर का प्रांगण है, जहाँ चैतन्य, सार्वभौम, रामानन्द, नित्यानन्द, राजपुत्र, मुकुन्द अद्वैत, श्रीवास, मुरारि, हरिदास, प्रतापरुद्र आदि इधर-उधर से आते-जाते मिलते हैं।

राजगुरु सार्वभौम चैतन्य से कहते हैं कि उत्कल के राजा प्रतापरुद्र आपका दर्शन चाहते हैं। चैतन्य ने कहा—

गर्हिततरं कालकूटास्वादनात् तस्य।
शक्तिमन्तो नृपाः प्रायः प्रकृत्या सर्पतां श्रिताः
जनयन्ति विकारं वै नार्योऽपि दारु निर्मिताः॥

चैतन्य कृष्ण-विषयक सगीत सुनकर भाव-समाधि में निमग्न हो गये। फिर उन्होंने गाया—

वैकुण्ठमपि विहाय त्वरया श्रयस्व मामकहृदयम्।
चन्दनरसेन लिपितं मया कुरुष्व तन्निजनिलयम्॥

तब रामानन्द राजा रुद्र के पुत्र को लेकर आये। चैतन्य ने कहा कि तुम क्या मुरारि हो? यह कह कर उनका आलिंगन कर लिया। यह देखकर रामानन्द ने कहा—

धन्योऽयं राजसुतोऽद्य धन्यः स्वयं च भूपतिः।
इदमालोक्य सर्वेषां वर्धते श्रीहरौ मतिः॥

जगन्नाथपुरी में रथयात्रा का समय आया। बंगाल से अद्वैताचार्य और श्रीवास आदि आये। चैतन्य ने प्रत्युद्गमन पूर्वक उनका सवर्धन और आलिंगन किया। चैतन्य ने पूछा कि हरिदास क्यों नहीं आये? वे बाहर वृक्ष के नीचे थे।[1] उनसे मिलने के लिए चैतन्य दौड़ पड़े। चैतन्य ने उनसे कहा—

शोधयितुं निज देह हृदयं किंच मानसम्।
श्लिष्यामि त्वां मुहुर्दिष्ट्या गृह्णामि त्वत्परं रसम्॥

अर्थात् अपने शरीर को पवित्र करने के लिए आप का आलिंगन कर रहा हूँ।

एक दिन स्वयं राजा प्रतापरुद्र चैतन्य के पास आये—राजभूषण-रिक्त और नंगे पाँव। प्रताप उनके चरणों में गिर पड़ा। रामानन्द ने कहा कि राजा आपका करुणा-लव चाहते हैं। चैतन्य ने उनका आलिंगन किया। राजा ने कहा—

जीवनं मम राज्यं च तव पदे समर्पितम्।
चुम्बति मुकुटं धूलि भगवत्पदलाञ्छितम्॥

फिर नित्यानन्द ने कहा कि वगवासी भक्त रथयात्रा के बाद लौट जाना चाहते हैं। चैतन्य ने उनके हाथ अपनी माता के लिए वस्त्र भेजा, जो उनकी पूजा के लिए अर्घ-स्वरूप था।

द्वितीय दृश्य नवद्वीप में मिश्र का घर है। विष्णुप्रिया, चैतन्य की पत्नी,

---

१. हरिदास से यवन थे। इस संकोच से भीतर नहीं आये।

विरहिणी अपने पति के विषय में चिन्ता करती है और उनकी पूजा करती है। सखी कांचनी ने उनसे कहा—

श्यामाङ्गो द्वापरं किंच कलौ गौरतनुस्तथा।
वल्लभस्ते चिरं विष्णु राजसे कमला यथा॥

उसने विष्णुप्रिया को आश्वासन दिया—

प्राप्स्यसि प्रेमशोकार्ते वाञ्छितं किंच गौरवम्॥

शची देवी ने आकर संवाद दिया—

गौराङ्गः पुनरायातो नीलाचलाद्धि साम्प्रतम्।

वे मां से मिले। मां ने उन्हें पत्नी विष्णुप्रिया के पास ला दिया। चैतन्य ने उनसे कहा—

विष्णुप्रिये वियोगार्ते कृष्णप्रिया भवेश्चिरम्।
हरिनाम करोत्वार्ये मञ्जुलां ते तनुं गिरम्॥

तृतीय दृश्य में कतिपय भक्तों के साथ वाराणसी, प्रयाग और मथुरा होते हुए चैतन्य वृन्दावन पहुँचे। काशी में तपन मिश्र और प्रकाशानन्द शास्त्री से चैतन्य का समागम हुआ। प्रयाग में त्रिवेणी में स्नान करके चैतन्य ने यमुना के गर्भ में मन्दिर की भाँति प्रवेश किया।

मथुरा की सड़कों की धूलि में प्रेम-विह्वल होकर वे लोटते थे और वृन्दावन में—

वृन्दावने प्रभुरियं रमते पथि कानने
निरीक्षे दिव्यदीप्ति च प्रीतिस्मिते तदानने॥
स्निह्यति पादपे वल्ल्यां निकुंजे विहगे पशौ।
वृन्दावनं परित्यज्य कुत्रापि न व्रजत्यसौ॥

प्रयाग में चैतन्य से रूप और वल्लभ मिले, जिन्हें प्रभु ने अपने सम्प्रदाय में दीक्षा दी।

काशी में चैतन्य चन्द्रशेखर के घर पर आये। काशी के विषय में चैतन्य ने कहा—

वाराणसी महास्थानं जाह्नवीनीरसेवितम्।
अत्रागत्य हि संजातं सार्थकं मम जीवितम्॥

वहाँ से चैतन्य श्रीक्षेत्र लौट आये। वहाँ वृद्ध, हरिदास यवन-भक्त रोगी थे। वे चैतन्य की रूपमाधुरी देखकर मरना चाहता था। चैतन्य ने वहाँ आकर उनका आलिंगन किया और कहा—

भागवतीं तनुं श्लिष्ट्वा जातो मे पुलकोद्गमः।
वन्दे त्वां हरिदासाख्यं महात्मानं प्रियोत्तम॥

उन्होंने मृत हरिदास का शरीर कन्धे पर रखकर नृत्य किया।[1]।

---

१. हरिदास-देहं स्कन्धे स्थापयित्वा नृत्यति।

पटपरिवर्तन के पश्चात् इसी अङ्क में गम्भीरा-प्राङ्गण की घटनाओं का दृश्य समुपस्थित है। चैतन्य दुर्बल हो चले थे। उनका शरीर जल रहा था। तभी रघुनाथ के द्वारा लाई हुई देवदासी ने कृष्ण-भक्ति-विषयक भजन गाते हुए नृत्य किया, जिसे सुन कर चैतन्य मूर्छित हो गये। सचेत होने पर उन्होंने फिर मेघराग में गाया—

आयाहि, कृष्ण हे नटवर, सत्वरं रमस्व मयैव समं होलिका-खेलायाम्।
स्थापय तृषितौष्ठे तव रक्ताधरं करोति रासपरमं राधिका-रोलायाम्॥

उन्होंने पुरुरवा के स्वर में तुलसी को देखकर गाया—

त्वमसि तुलसि, तन्वी मञ्जरी कृष्णकान्ता,
भ्रमर कुलमपि त्वां दूरतो नित्यमेति।
श्रवणविषयतां ते किं गता तस्य वार्ता—
कुरु सखि करुणां मे सोऽपि कान्तो ममेति॥

उन्होंने फुल्लमल्लिका, हरिणी और वृक्षों को भी मार्ग में देखकर उनसे पूछा कि क्या कृष्ण को कहीं देखा?

चैतन्य ने कहा—

कृष्णः कर्षति मे प्रसह्य सखि हे पंचेन्द्रियाणीश्वरः॥

वे गाते हुए झम्पपूर्वक समुद्र में कूद पड़े। कवि का अन्तिम सम्बोधन है—

असीमो हि यथा कामयते सलीलसीमालिंगनम्।
ससीमस्तथा प्रार्थयते तस्मिन् कृत्स्न-निमज्जनम्॥ ५.८१

नाट्यशिल्प

गीतगौराङ्ग गीतनाट्य कोटिका अनूठा रूपक है। इसमें पाँच अङ्क है, जो चार से लेकर आठ दृश्यों में विभक्त है। पूरे नाटक में ३० दृश्य हैं। कतिपय दृश्यों में पटपरिवर्तन द्वारा दो स्थलों की घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है। बिना पट-परिवर्तन के भी विभिन्न दिनों की घटनायें एक ही दृश्य में दिखाई गई है। पंचम अंक के प्रथम दृश्य में बंगाल के भक्त पुरी में रथयात्रा देखने आते है और चले भी जाते है।

नाटक में एकोक्तियों का बाहुल्य है। यथा प्रथम अङ्क के द्वितीय दृश्य के आरम्भ में विष्णुदास रंगमंच पर अकेले रामकेली-रागिणी में गाता है—

न शशिनं रोचयितुमलं निरवधिनिवासनभसम्।
श्रयते वसुधातलं सुधानिधिः श्यामलं लोकाशुलावण्यरभसम्॥

नाटक के प्रायः सभी गीत एकोक्तियों के रूप में प्रस्तुत है।

चतुर्थ अंक में 'अव्यक्तभापं कुरुते कटूक्तिम्' आदि चैतन्य की एकोक्ति है।[1]

पंचम अङ्क का आरम्भ चैतन्य की बहादुरी-तोडी-रागिणी में गाई हुई एकोक्ति से होता है।

---

१. इस नाटक के कतिपय स्वगत एकोक्ति-कोटिक हैं। यथा पृष्ठ १०६ पर रामानन्द का।

प्रवेशक, विष्कम्भकादि अर्थोपक्षपकों का समावेश इसमें नहीं है। द्वितीय अङ्क के तृतीय दृश्य श्रीवास और अद्वैत गौराङ्ग के पूर्वचरितों का समाकलनात्मक संवाद प्रस्तुत हैं, जो वस्तुतः अर्थोपक्षेपकोचित है। पंचम अङ्क के तृतीय दृश्य में सेवक और वलभद्र के संवाद में चैतन्य की वाराणसी-प्रयाग-मथुरा की यात्रा की घटनाओं का वर्णन है।

अङ्क में नायक कोटि के पात्रों का सदा ध्यान नहीं रखा गया है। द्वितीय अङ्क में द्वितीय दृश्य के वाद गौराङ्ग के चले जाने पर मध्यम कोटि के पात्र श्रीवास और अद्वैत वातें करते हैं। एक ही दृश्य में पात्रों के जाने के वाद नये पात्रों के आने तक रंगमच रिक्त रहता है। द्वितीय अङ्क के तृतीय दृश्य में श्रीवास और अद्वैत के निष्क्रान्त होने पर शची और विष्णुप्रिया आती हैं। इस दृश्य में स्थल भी अनेक हैं। आरम्भ में राजपथ है, फिर गंगा की ओर जाने वाले पथिकों का मार्ग है। रंगपीठ पर कई पात्र वहुत देर तक चुपचाप खड़े रहते हैं। फिर संवाद समाप्त होने पर वे अपनी मनोगत भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

वीरेन्द्र कुमार की भाषा में असाधारण सरलता और सुवोधता है। विरली ही नाटकीय कृतियाँ इस दृष्टि से वीरेन्द्र के रूपकों की समता में आ सकती हैं। उनके पद्यों में सांगतिक पदक्रम के साथ गद्यात्मक पदविन्यास की छटा अनुपम विराजती है। अलंकारों का अतिविरल प्रयोग है। सर्वत्र प्रसाद गुण वैदर्भी रीति से सुसज्जित है। उदाहरण लें—

आयाति यदा तु मरणं कोऽपि न भवति शरणम्।
कृष्ण केशव हे स्मरामि ते चरणतरणीम्॥

कहीं-कहीं लोकोक्तियों के प्रयोग से प्रभविष्णुता उत्पन्न की गई है। यथा—

समुद्रे पात्यते शय्या कथं शङ्के तु गोष्पदम्।

चैतन्य को पंचम अङ्क में श्रीमती वैष्णवी शुकसारी-संवाद गाकर सुनाती है, जिसमें कृष्ण कीर्तन-मालिका है।

इस नाटक में गीतों के वाहुल्य के साथ नृत्य की भी प्रचुरता है। प्रायशः भावाविष्ट चैतन्य के नृत्य हैं। पंचम अङ्क में देवदासी जयजयन्ती-रागिणी में गाते हुए नृत्य करती है।

भारतीय विधानों का अतिक्रम कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है। तृतीय अङ्क में गौराङ्ग गृहस्थाश्रम छोड़ते समय अपनी पत्नी का आलिंगन और चुम्बन करते हैं।[1] वे फिर उसके चूर्णकुन्तल का चुम्बन करते हैं।[2]

कर्णपूर के चैतन्य-चन्द्रोदय का प्रभाव कथावस्तु को रूपित करने में दिखाई

१. आश्लिष्य चुम्वति विष्णुप्रियाम्।
२. विष्णुप्रियाया चूर्णकुन्तलं चुम्वति।

देता है। वीरेन्द्र ने चैतन्य के सम्पूर्ण जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को भावुकता से वासित करके प्रेक्षकों को रसमय विधि से मनोरंजन प्रदान किया है।[1]

वीरेन्द्र का कविहृदय भावों के विम्बात्मक अनुबन्धों की प्रतीति करता है। यथा गौराङ्ग की प्रव्रज्या के अवसर पर—

कानने लतासु पुष्पाणि न मोदन्ते मन्थरपवनो गायति करुणसंगीतम्।
शष्पाणि गतासुकल्पानि म्लायन्ते पार्थिवरुदितं नु वियति किं प्रतिध्वनितम्॥

वीरेन्द्र ने कालिदास के पुरुरवा की भाँति चैतन्य से कृष्ण के विषय में पिकवर और शुक से प्रश्न कराया है। यथा,

अयि शुक त्वया दृष्टा निकुंजस्थेन केशवः।
कदा लभ्यो मया तस्य दयानिधेः कृपालवः॥

इस नाटक के द्वारा कवि ने समाज का चरित्र-निर्माण करने की योजना कार्यान्वित की है। यथा, मानव की विनय-वृत्ति कैसी हो—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

जगन्नाथ की ओर जाते हुए पाथेय की चर्चा करने पर जब चैतन्य से नित्यानन्द ने कहा—

मधुकरी प्रभो नूनं पेटिकासु हि संचिता

तो चैतन्य ने कहा—

अवधूत गृहस्थस्त्वं सञ्जातः खाद्यलिप्सया।
त्वया वन्द्यो न गन्तव्यं संन्यासिना समं मया॥

चैतन्य ने उनके क्षमा माँगने पर कहा कि अच्छा, तत्काल ही मधुकरी पेटिका को नदीजल में फेंक दो।[1]

नेपथ्य से कुहू-ध्वनि का प्रवर्तन उद्दीपन विभाव के लिए प्रयुक्त है।

आवश्यक न भी हो तो क्या हुआ? स्त्री विषयक कारुण्य के अवसर वीरेन्द्र ने निकालें हैं और सविवरण मार्मिक वर्णन किया है। विष्णुप्रिया के प्रसंग इस दृष्टि से बृहत्तम हैं

कवि की दृष्टि स्वामी रामतीर्थ की प्रकृति-विषयक धारणा से भी स्थान-स्थान पर प्रभावित प्रतीत होती है। कवि सबको प्रेमरस-निर्भर करके मानवता के नाते समान बनाना चाहता है। यथा,

जायन्ते यवना भक्ताः किमाश्चर्यमतः परम्।
गण्यते प्रेम सर्वेभ्यो धर्मेभ्यो मनुजैर्वरम्॥

---

१. ऐसे रूपकों की एक विशेषता यह होती है कि अनेक दृश्य अपने आप में पूर्ण होते हैं और अनेक कथापुरुष नायकवत् प्राधान्य प्राप्त करते हैं।

२. रामतीर्थ की विचारधारा से यह प्रवृत्ति सम्पृक्त है।

निस्सन्देह इस कृति के द्वारा वीरेन्द्र ने चैतन्य के व्यक्तित्व को समुदित किया है।

सिद्धार्थ-चरित

वीरेन्द्र ने १९६७ से १९६९ ई० तक संस्कृत में छः पुस्तकें लिखी, जिनमें से सिद्धार्थ-चरित पाँचवाँ है। लेखक की दार्शनिक दृष्टि में बुद्ध सर्वोच्च महानुभाव हैं, जिनका जीवन-दर्शन आधुनिक तत्त्वानुशीलन पर खरा उतरता है। मानवता के प्रति सदाशयता और सहानुभूति का सर्वश्रेष्ठ प्रभाव उन्होंने गौतम बुद्ध को माना है और उनका अभिनंदन करने के लिए उनके जीवन-चरित से सम्बद्ध यह नाटक लिखा है।

वीरेन्द्र का नाटक सोद्देश्य है। हिंसा-प्रमत्त मानवता को गौतम का जीवन-चरित ही नहीं, उनके द्वारा प्रचारित दर्शन का भी बोध कराने के उद्देश्य से उन्होंने यह नाटक लिखा है।[1] इसकी रचना में लेखक को केवल दो मास लगे थे। इसके पहले उन्होंने दो रूपक और लिखे थे—कालिदास-चरित और शार्दूल-शकट। मानवता के लिए उद्बोधक और दर्शन-परक नाटक की परम्परा कोई नई नहीं है। अश्वघोष का सारिपुत्र-प्रकरण इस कोटि की प्रथम रचना है। प्रबोध-चन्द्रोदय, संकल्प-सूर्योदय और अमृतोदय आदि अनेक रचनायें इसी उद्देश्य को लेकर प्रवर्तित हैं।

कथावस्तु

सिद्धार्थ के भाई देवदत्त ने तीर से मराल-शावक पर निशाना लगाया। वह रक्त वमन कर रहा था। सिद्धार्थ को वह पड़ा मिला। उन्होंने उसे गोद में ले लिया। उनके नेत्र अश्रुनिर्झर थे। उसकी शुश्रूषा करने के लिए वे उसे घर ले जाने को तत्पर हैं।

वे शिशु के क्षताङ्ग को चूमते हैं। उधर से धनुर्धर देवदत्त आ जाता है और कहता है कि हंस मेरे बाण से मारा गया है। मुझे दे दो। सिद्धार्थ ने कहा कि प्राणी पर मारने वाले का अधिकार नहीं होता, बचाने वाले का अधिकार होता है। देवदत्त ने मृगया के निन्दक गौतम को फटकारा कि तुम राजा होने के योग्य नहीं हो—

मयैव मार्गितव्यं राजमुकुटं यतो हि वीरभोग्या कृत्स्नधरणी।
स किं नृपो न शत्रुर्येन विजितः प्रजाः सुरक्षिता या वर्षिकबलात्॥

द्वितीय अङ्क में सिद्धार्थ के विवाहित और सपुत्र होने के साथ ही वैराग्य की सूचना है। शुद्धोदन चिन्तित हैं। थोड़ी देर में गौतमी रानी उनसे मिलती

---

१. हिंसा-प्रमत्ते जगत्याधुनिके चामिताभस्यास्ति निःसंशयं महत् प्रयोजनम्। ग्रन्थोऽयं शुद्धोदनसूनोर्लोकोत्तरजीवनं तथा बौद्धमतं वर्णयति वाक्या-लापकविता-संगीत-माध्यमैः॥ मुखबन्धः पृष्ठ ९।

हैं। दोनों सिद्धार्थ की वानप्रस्थ-प्रवृत्ति से चिन्तित हैं। शुद्धोदन ने स्पष्ट कहा—चेष्टेऽहं सर्वार्थसिद्धं संसार-पाशेन वन्दीकर्त्तुम्। वहीं यशोधरा आ गई। वह प्रसन्न थी। उससे गौतमी ने कहा कि सिद्धार्थ को अपने घर में बाँधे रखो। शुद्धोदन ने यत्न करके उसके प्रभाव से सिद्धार्थ को घर रोकना चाहा। उन्होंने सिद्धार्थ को बुलवाया। कुशल पूछने पर सिद्धार्थ ने कहा—

हृदयं क्षुभ्णाति नियतं जीव-दुःखदर्शनात्।

शुद्धोदन ने कहा कि मैं तुम पर राज्य-भार छोड़कर वानप्रस्थ लेना चाहता हूँ। सिद्धार्थ से धार्मिक उद्देश्यों पर विवाद हुआ। सिद्धार्थ का अन्तिम निष्कर्ष था—

ग्राह्यं न सर्वं प्राक्तनताया हेतोर्ज्ञानं क्वसान्तं विश्वे विशाले।
नव्यं च तत्त्वं दद्युर्नवीना नृभ्यो नार्यं तथापि श्रेयो भवेत्तत्॥ २.५६

वे चलते बने।

तृतीय अंक के पूर्व प्रवेश के अनुसार सिद्धार्थ रथ पर बैठकर राजपथ पर जाने वाले हैं। इस अङ्क में सिद्धार्थ राजपथ से कुछ दूर नेपथ्य में देखते हैं—पलितकेश, भ्रूसंवृताक्ष, दन्तविहीन, कम्पित-यष्टिहस्त, अवनताङ्ग और स्खलितपद से चलने वाले वृद्ध को। यह कौन है—यह पूछने पर सारथि छन्दक ने बताया—जराग्रस्तो नरः। नेपथ्य से उस वृद्ध ने गाया—

सर्वाङ्गं लुलितं स्खलन्ति दशनाः स्वेदस्रुतिर्वर्धिता
दृष्टेर्ज्योतिरपि श्रितं विफलतां कर्णेन नाप्तः स्वनः।
वक्षः पिञ्जरतः प्रियासुविहगो निष्क्रान्तये क्रन्दति
दुर्दैवं मम हन्त जीर्णवयसः शार्दूलभीरोर्यथा॥ ३.७३

निकट के पुष्पोद्यान में छन्दक ने सिद्धार्थ को दिखलाया क्रीडापरायण निश्चिन्त बालमण्डली को। उन्हें देख कर सिद्धार्थ को आभास हुआ—

यदि नरमनः शिशुचित्तवदभविष्यत् तर्हि मानवास्त्रिदिवं पृथिव्याम-रचयिष्यन्।

उपर्युक्त अनुभव के पश्चात् उन्हें किसी रोगी की आर्त वाणी सुनाई पड़ती है—

यदि मम जीवनं भवति सर्वथार्तिकारं।
नियमपवांछितस्तदवनाय कृतः प्रयत्नः॥

छन्दक ने उन्हें बताया कि यह रोगजर्जर व्यक्ति दिनरात शय्या पर पड़ा रहता है। वह आपको देखने के लिए घर से बाहर आना चाहता है, किन्तु चल नहीं पाता। सबको रोग होना ही स्वाभाविक है। सिद्धार्थ इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रोग बिना बुढ़ापे के ही बूढ़ा बना देते हैं।

आगे सिद्धार्थ को शवयात्रा का हरिनाम सुनाई पड़ा। उन्होंने मृत व्यक्ति को टिकठी पर ढोये जाते देखा। प्रश्न के उत्तर में उन्हें ज्ञात हुआ कि इस मृत शरीर को जला दिया जायेगा।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

उन्होंने छन्दक से पुनः पूछा कि क्या सभी को मरना ही पड़ेगा? छन्दक ने कहा—हाँ।

आगे सिद्धार्थ को जटाजूटधारी संन्यासी दिखा। उसका गाना सिद्धार्थ ने सुना—

भिक्षितमशनं गैरिकवसनं तरुतलवसतिस्तृणेषु शयनम्।
भोगविरागस्तपोऽनुरागः संन्यासः खलु सुखतृपशरणम्॥

उनकी समझ में आया कि संन्यासी को ही परम सुख प्राप्त है। उन्होंने अपना निश्चय व्यक्त किया—

मयैव च संन्यासो ग्रहणीयः।

मैं घर छोड़ दूंगा।

चतुर्थ अङ्क में प्रमोदोद्यान में जलकुल्या के तीर पर सिद्धार्थ रमणियों के बीच में मनोरंजन की खोज में हैं। तरलिका, मन्दारिका और मालविका मन्त्री से नियोजित होकर इसके लिए प्रयत्नशील हैं। मालविका नाचती गाती है। उसका नाच बर्हिनृत्त है। पहले तो सिद्धार्थ कुछ आनन्दित से लगे, पर थोड़ी देर के बाद उन्होंने कहा—न मया स्थातव्यं क्षणमात्रमिह। रमणियों के सिद्धार्थ को फँसाने के नये-नये उपाय थे। यथा, मालविका का यह कहना कि मेरी दाहिनी आँख में पतङ्गी पड़ गयी है। फिर तो सिद्धार्थ चम्पवेदिका पर बायें हाथ से मालविका का मुख पकड़ कर दाहिने हाथ से आँख खोलते हैं। उसकी दोनों सखियाँ हँसती हैं कि काम बना। मालविका ने कहा—रोमहर्षो जातो मे सर्वाङ्गेषु तव स्पर्शनादेव कान्त।

तब जाकर सिद्धार्थ ने समझा कि यह छलना है। उनकी क्षीण रुचि देखकर वे भग चलीं। सिद्धार्थ ने वहीं निर्णय लिया कि अद्यैव निशीथे गृहान्निर्गच्छामि।

पंचम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में सूचित किया गया है कि सिद्धार्थ वन चले गये। छन्दक उन्हें वन में छोड़ कर सन्तप्त है। वन में सिद्धार्थ ध्यान लगाये हुए जलती हुई अग्नि के सम्मुख तपोवन में हैं। उन्होंने कठोरतम तप किया। उनका अडिग निश्चय है—

इहैव भुवि शुष्यतु प्रतपसा शरीरं मम
प्रयातु च परां मनोऽविषयतां सबाह्येन्द्रियम्।
ज्वलेन्नियतमात्मभा निपवनाङ्गने दीपवद्
वृणीय मरणं शुचः प्रशमं लभेयं हि वा॥ ५.१३७

उनके पास कलसी हाथ में लिये सुजाता आई। उसने देखा कि ध्यानमग्न सिद्धार्थ के पास महानाग बैठा है। वह डर कर भाग गई। उस समय उन्होंने सोचा कि यदि सर्वशक्तिमान् ईश्वर होता तो संसार में व्याधि, जरा, मरणादि क्यों कर होते। सुजाता फिर आई। वहाँ नाग नहीं था। वह उनके लिए भोजन लाने गई। इस बीच उनका ध्यान टूट चुका था। उन्होंने खंज बालक को शाल्यलिपुष्प तोड़ कर दिये थे। सुजाता उनके लिए भोजन लेकर आ गई। उन्होंने उसे ग्रहण किया। वे वहाँ से राजगृह चले गये।

छठें अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे छन्दक ने सिद्धार्थ से वियुक्त होने पर सभी सम्बन्धियों और नागरिकों के दुखी होने की चर्चा की है। शुद्धोदन ने उन्हें ढूँढने के लिए चरों को सर्वत्र भेजा। वह भी इसीलिए छ वर्षों से घूम रहा था। उसे काश्यप नामक शिष्य से भेंट हुई। उसने सिद्धार्थ का पता बताया। दोनो वहाँ पहुँचे, जहाँ सिद्धार्थ थे। सिद्धार्थ को ध्यान से च्युत करने के लिए रमा-सेना आई और भाँति-भाँति के प्रलोभन प्रस्तुत किये। यथा, कौनिकुण्डला मायाकन्या यशोधरा का रूप धारण करके आ पहुँची। उसकी न चली। मायाकन्या मार के पास लौट गई। तब तो मार के प्रभाव से बिजली चमकने लगी, वज्र-गर्जन हुआ और राक्षस आये। यही राक्षस शक्र का दास मार था। सिद्धार्थ ने चार आर्यसत्य का घोष किया। सिद्धार्थ छन्दक और कश्यप से मिले।

सप्तम अङ्क के पूर्व प्रवेशक मे अश्वजित् और उपालि सारनाथ में गौतम के पास पहुचते हैं। इस अङ्क मे सिद्धार्थ बुद्ध बन कर आसन पर शिष्यों के साथ बैठे हैं। उन्होने शिष्यो को दु ख दूर करने के उपाय बताये। सारिपुत्र, मौद्गल्यायन आदि को प्रबोध हुआ। राजा बिम्बिसार आये। उन्हें राज्य मे उतना सुख नहीं था, जितना बुद्ध की शरण मे। बुद्ध ने धर्म-व्याख्यान दिया।

अष्टम अङ्क मे नालागिरि नामक प्रमत्त हाथी को बुद्ध प्रशान्त करते हैं। इसमे राहुल को वे भिक्षु बनाते है। स्वयं शुद्धोदन ने बुद्ध से कहा—

सपुत्रा सा भिक्षुत्वं कांक्षते तथागताशीर्वादं च

बुद्ध ने कहा कि—

पिता भिक्षुस्तथा पुत्रो भिक्षुणीमतस्य जन्मदा।
भिक्षोर्हि गौतमस्याद्य भिक्षवः सर्वबान्धवाः॥

समीक्षा

इस नाटक की कथावस्तु समसामयिक परिस्थितियों मे उपयोगी होगी—इस दृष्टि से रूपकायित है। सूत्रधार ने प्रस्तावना मे कहा कि लोग हिंसोन्मत्त हैं। वे परमाणु-निर्मित आग्नेयास्त्रो से पृथ्वी को चूर्णित करने के लिए उद्यत हैं। कवि का सोचना है कि यह रूपक ऐसे पागलो की दवा है। नटी के अनुसार बुद्धदेव की वाणी सुधा-वर्षिणी है।

शिल्प

सिद्धार्थचरित के गीत विचित्र लय-तानोचित हैं और नृत्त के लिए उपयुक्त हैं। सुप्रिया गाती हुई हर्ष से नाचती है—

शिंजिनी-परिहितवाछितमराल पद्मिनी-विलसित-कुञ्चितमृणाल त्वमसि मम प्राणरत्नम्। इत्यादि प्रवेशक का उपयोग मध्यम कोटि के पात्रों के संगीत के लिए तृतीय अङ्क के पहले किया है। अन्यथा इसका कोई उपयोग नही है। कला की दृष्टि से यह न रखा जाता तो नाटक मे कोई त्रुटि नही आती।

वीरेन्द्र ने अपने अन्य रूपकों की भाँति सिद्धार्थ-चरित में भी एकोक्तियाँ भरी

हैं। नाटक का आरम्भ सिद्धार्थ की एकोक्ति से होता है। यह एकोक्ति कुछ विचित्र सी है, जो घायल हंसशिशु को सम्बोधित करके कही गई है। शिशु वहीं रङ्गपीठ पर है, पर वह सिद्धार्थ की वातों के या प्रश्नों के भी उत्तर देने के लिए समर्थ वाणी से विहीन है।[1] द्वितीय अङ्क का आरम्भ शुद्धोदन की एकोक्ति से होता है। वे सिद्धार्थ की वैराग्य-द्योतक प्रवृत्तियाँ देखकर चिन्तित हैं। वैसे एकोक्ति सूचनात्मक है। इसमें सिद्धार्थ के विवाह, पुत्र होने आदि की चर्चा भी है। वे अपनी किंकर्तव्यविमूढता व्यक्त करते हैं। चतुर्थ अङ्क का आरम्भ सिद्धार्थ की दर्दभरी एकोक्ति से होता है। उन्हें नेपथ्य से गायिका का मोहक गान भी सुनाई पड़ता है। यह सब सुनकर सिद्धार्थ कहते हैं—

विह्वलीभवति मनो मे अज्ञातव्यथादीर्णम्।

चतुर्थ अङ्क के अन्तिम भाग में रंगपीठ पर अकेले सिद्धार्थ की एकोक्ति है, जिसमें वे बताते हैं कि आज रात को घर छोड़ देना है।[2]

लेखक की दृष्टि में रंगपीठ पर उच्चकोटिक पात्र का होना आवश्यक नहीं है। प्रथम अङ्क के अन्तिम भाग में सारथि छन्दक और नन्हीं लड़की सुप्रिया—केवल दो पात्र बातें करते हैं।

अर्धनग्न स्त्रीपात्रों को संस्कृत रंगमंच पर लाना कोई नई बात भले न हो, किन्तु आधुनिकता के नाम पर भी ऐसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना उचित न होगा। इस नाटक में मन्दारिका ऐसी नायिका है। उसके विषय में तरलिका कहती है—

ऊषोदयवदनवगुण्ठितां कुण्ठाहीनामुर्वशीमिव मन्ये नर्मालीं मे मन्दारिकाम्।
दिगञ्चलां ज्वलोद्भासं तडिल्लेखां रुचिस्मिताम्।
मन्ये मन्दारिकां दिव्यामुर्वशीमिन्द्रचर्चिताम्॥
अभिनन्दयतेऽत्र सा स्वयमरिन्दमं गौतमीनन्दनम्।

पट परिवर्तन के द्वारा संकेतित दृश्यों से अङ्क विभाजित हैं।

बंगवासी कवियों ने बीसवीं शती में प्राकृत भाषाओं का प्रयोग छोड़ ही दिया है। वीरेन्द्र ने अपने नाटकों में प्राकृत को स्थान नहीं दिया है। उनकी भाषा में आधुनिकता की पुट कतिपय स्थलों पर मिलती है, जो चिन्त्य प्रयोग हैं। यथा, मिनति, प्रश्रय।

इस नाटक में बहुविध छन्द प्रयुक्त हैं। असाधारण छन्द है—कुसुमलता—वेल्लिता, मधुमती, चलोर्मिका, शशगति, नन्दिता, नन्दिनी, वेणुमती, तरस्विनी,

१. सिद्धार्थ उस शावक से प्रश्न पूछते हैं—
किं त्वं गृहपालितो मरालशावकः ?[2]

२. अन्य प्रधान एकोक्तियाँ हैं पंचम अंक के आरम्भ में सिद्धार्थ की, उसके ठीक बाद व्याध की एकोक्ति, फिर सुजाता और पश्चात् सिद्धार्थ की एकोक्ति हैं। सप्तम अङ्क के आरम्भ में सिद्धार्थ की एकोक्ति है।

तूर्यवाद, नवशशिरुचि, जयन्तिका, मन्त्रिणी, मंजरिणी, मन्दारिका, काणिनी, रत्नद्युति, क्रन्दित, नर्तन, मधुक्षरा, सुरजना, रसवल्लरी, सुलोचना, कुरंगमा।

शूर्पणखाभिसार

शूर्पणखाभिसार गीतिनाटच है।[1] गीतगौराङ्ग की भाँति इसमें आद्यन्त गेय पद्य हैं। सूत्रधार ने नये नाटकों की लोकरञ्जकता की विशेषता की चर्चा इस प्रकार की है।

नवीनमाहो रसिकाय रोचते न हर्षदं स्यात् सततं सनातनम्।

पाँच दृश्यों का यह नाटक लेखक के शब्दों में नृत्यगीत-पूर्ण है। नटी नृत्य करती हुई प्रस्तावना में गाती है—

रश्मि-सौवर्णं किरति सूर्यो वसन्ते सिन्धोः सुस्निग्धं वहति वात्या दिगन्ते।
रसालतरौ रुवन्ति पिका मधुरं सुनीलं गगनं विभाति मेदुरम्॥

कथावस्तु

राम और सीता गोदावरी के समीप आश्रम में हैं। प्रसंगवश सीता से राम कहते हैं कि तुमसे विच्छेद का कारण कहाँ है? तभी लक्ष्मण आये। उन्हें सीता ने फलमूल लाने के लिए गोदावरी-तीर पर भेज दिया। इधर विधवा शूर्पणखा राम के सौन्दर्य को देखकर लुट चुकी थी। उसके भाई खर-दूषण आये। उन्होंने बहिन के मनोगत को जानकर कहा—

गच्छाभिसारिके तत्र यत्र तिष्ठति नायकः।

खर ने उसके सौन्दर्य को निहार कर कहा कि नायक तुमको देखकर अपनी स्त्री को बन्दरिया समझेगा। शूर्पणखा बढ़ चली यह सोचते हुए कि—

प्रेम्णो रणे किं न जयं लभेयम्।

विरूपाक्षी नामक सखी ने आशीर्वाद दिया—

सैवापाङ्गशिखा ददातु विजयं तुभ्यं रणे साम्प्रतम्।
याहि सखि वीरं विजेतुम्।

तृतीय दृश्य में शूर्पणखा बन-ठन कर राम के सामने आती है और गाकर नाचती है—

सौरवंशदीपं दुर्जन-प्रतीपं श्रीरामं रम्यतनुं भूपगौरवम्।
नौमि मर्मतोषं रिक्तसर्वदोषं वन्दे त्वां कल्पतरु प्रेमसौरभम्॥

राम से प्रणय की चर्चा की तो राम ने कहा कि मैं तो एकदार व्रती हूँ। पत्नी मेरे साथ है। वहीं सीता आ गईं। राम और सीता दोनों ने मिल-जुलकर उसे परिहास में लक्ष्मण के पीछे लगा दिया।

चतुर्थ दृश्य में लक्ष्मण से शूर्पणखा मिलती है और अपना प्रणय-प्रस्ताव रखती है। लक्ष्मण उसे सुनकर रोने लगे—

---

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-प्रतिभा १०.२ में हुआ है।

रक्ष मां जानकीनाथ मायाविनीकराद्द्रुतम् ।

उसकी सखियों ने लक्ष्मण को समझाया कि इसे अपनायें। लक्ष्मण उसके सौन्दर्य से प्रभावित हुए और उसका पाणिग्रहण किया। लक्ष्मण ने प्रेमोन्माद के अन्धेरे में निमग्न होकर कहा—

झटिति किमपि किरति सुहसमतनुर्लसति मुखमपि तव सखि सह मया।
नयन-विशिखमिह न कुरु विपयुतं तव चरण-युजमयि मम हि शरणम् ॥

वे उसके पैर पर गिरने ही वाले थे कि राम की आवाज सुनाई पड़ी—भाई लक्ष्मण, इस स्वैरिणी के जाल में न फँसना।

फिर तो शूर्पणखा के पैर पर गिर कर उन्होंने क्षमा माँगी कि बड़े भाई के बुलाने पर मुझे जाना पड़ रहा है। शूर्पणखा ने कहा कि क्षणिक मिलन के बाद यह विरह तो असह्य है। दूर से फिर राम ने तार स्वर से कहा—

धर्मपत्नी तव श्रीमन् सरयूतीरवासिनी।
ऊर्मिलामेकवेणीं तां कथं त्वं विस्मरिष्यसि ॥

यह सुन कर शूर्पणखा ने कहा कि यह तो राम ने धोखा दिया है। फिर राम ने सुनाया—इसे विरूप करो। प्रेमी लक्ष्मण को यह सुन कर रोना आ गया—

क्रूरादेशं कथमहमये पालयामि स्वतन्त्रः।
क्षन्तव्योऽयं सखि खरनरः क्षात्रधर्मप्रतीपः ॥

लक्ष्मण यह कह कर चलते बने—

यास्यामि कान्ते विपिने कुटीरं भाग्यं विनिन्द्य प्रणयप्रकम्पः।
श्रेयो लभस्व स्वजनाश्रये त्वं माभूत् तवैवं भुवि विप्रलम्भः ॥

शूर्पणखा भी पीछे-पीछे गई। थोड़ी देर में उसका रोदन सुनाई पड़ा कि मेरी नाक और कान कटे।

पंचम अंक में शूर्पणखा से खरदूषण को ज्ञात हुआ कि छल से लक्ष्मण ने उसे विरूपायित किया है। उन्होंने योजना बनाई कि अब तो सीता को रावण की विनोद-सामग्री बनना है। भरत-वाक्य शूर्पणखा ने कहा—

आर्याख्या मनुजास्त्यजन्तु तरसा मिथ्याव्रतं पैशुनं।
जम्बूद्वीपनिवासिभिः शुभकृते सम्प्रीतिराश्रीयताम् ॥

शिल्प

वीरेन्द्र जैसा आधुनिक कवि भी संस्कृत के क्षेत्र में यत्र-तत्र परम्परा-निगडित है। यथा कुचकलश आदि की उत्थापना में—

श्रोणिभ्यां कदलीयुगं विलसितं धत्ते कुचः कुम्भताम्।
छिनत्ति मे यौवनं वक्षोज-बन्धनम्।
वैदूर्यहारं कृत्वा मुखरितं वक्षोजवीचिस्पन्दनैः
काञ्चीलतायाः पीनोद्धतजघने धृत्वा निनादं काञ्चनम्।
वक्षोयुग्मं सरोजाभमहो दुनोति हिमांशुस्तव
हृदयज युग्मं स्फायते रश्मिपीतम्।

नायिका नायक को फँसाने के लिए अग्रसर है—यह इस नाटक की विरल विशेषता है।

अन्योक्ति के द्वारा कविवाणी प्रभविष्णु है। शूर्पणखा राम से कहती है—

पुष्पं त्वयाप्तं सितचन्दनाक्त देवार्चनार्थं कलितं भवेद् यत्।
जाने न मूढ प्रणय-प्ररिक्त-धूलौ कथं तत् क्षिपसीह नूनम्॥

दृश्यों का आरम्भ प्रायशः एकोक्ति से होता है। तृतीय दृश्य के आरम्भ में रामचन्द्र और चतुर्थ के आरम्भ मे लक्ष्मण की एकोक्ति है।

वीरेन्द्र ने लक्ष्मण के चरित्र को उठाया नहीं, गिराया है। ऐसा करना भारतीयता और कला की दृष्टि से सर्वथा अनुचित है।

शार्दूल-शकट

पाँच अङ्कों का प्रकरण—शार्दूलशकट वीरेन्द्र का द्वितीय रूपक है।[1] नवीन प्रेक्षकों को नवीन दृश्यकाव्य चाहिए—यह सूत्रधार का मत है। यथा,

नवीनैः काम्यते नवयुगकथा नूतनं दृश्यकाव्यम्।

इस रूपक मे प्रवहण-संस्था के कर्मचारियों की जीवन-यात्रा वर्णित है। लेखक उन दिनों राष्ट्रिय-परिवहन-संस्था के सर्वाध्यक्ष थे। उसका चरित्र-चित्रण सार्थक है, क्योंकि पात्रों में उसकी निजी अन्तर्दृष्टि है। वह स्वयं भी परिवहन का ही व्यक्ति है। सूत्रधार ने मन्तव्य प्रकट किया है—

संघो जिष्णुर्भवति नितान्तं नान्यः पन्थाः कलियुगसंस्थे॥

कथावस्तु

श्रमिकों की शोभा यात्रा नीचे लिखा विप्लव-संगीत गाती हुई चलती है—

विनश्यतु चक्रं विद्वेषिणां नो निःशेषम्।
दिगन्ते व्रजामो रात्रिन्दिवं लक्ष्योद्देशम्॥

उनका नेता दिवाकर व्याख्यान देता है—मिल मालिक लालची है। वे अपने लिए अधिकाधिक धन संग्रह करते हैं, हमारे लिए स्वल्प देते है, जैसे भोगविलासी कुक्कुरों को देता है। हम सभी दास बन चुके है। हमें स्वयं अपनी स्थिति सुधारनी है। श्रमिक स्वयं अपनी शक्ति-संवर्धन के लिए प्रयास करें। शक्ति संघशक्ति है। सभी गाते हैं—

वाद्यं ध्वनन्तु विमर्द्य मलयं हर्षैः स्वनतु विमथ्य हृदयम्।
यास्यामो वीथिं नृत्यचारेण कम्पयित्वावनीम्॥

द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक मे हड़ताल से परिचालक चिन्तित हो उठा है। उसके सहायक उपचालक ने कहा कि हड़ताल समाप्त करने के लिए पुलिस बुलाई जाय। परिचालक ने कहा कि ऐसा नही होगा। मैं मुख्य परिचालक को सूचित करता हूँ।

---

१. संस्कृत-साहित्य-परिषद् कलकत्ता से १९६९ ई० मे प्रकाशित।

द्वितीय अंक के अनुसार श्रमिकों के प्रति न्याय नहीं हो रहा है। श्रमिक श्रमिकों को सहायता दें, यह आह्वान हुआ। धनञ्जय नामक श्रमिक ने नारा लगाया—

श्रमिका नः पितरः पितामहास्तथा श्रमिका भवन्ति बन्धवः।
ह्रियते येन धनं द्विपास्मदीयकं लभतां स एव जाल्मकः॥

सर्वाध्यक्ष ने आकर कहा कि यह लड़ाई का वातावरण क्यों? मैं तो आप सबके हित के लिए काम करता ही हूँ। आप लोगों के द्वारा बस-यान के न चलाने से यात्रियों को कितनी असुविधा हो रही है—यह तो सोचें। संस्था की भी कितनी हानि हो रही है। यदि संस्था के शासकों को उचित व्यवहार करते नहीं देखते तो उनसे संलाप करके समस्याओं का समाधान कीजिये। अमृत नामक श्रमिक ने उसकी बातों से प्रभावित होकर आदेश दिया कि बसें फिर चलें सबकी सुविधा के लिए। सबने सर्वाध्यक्ष की जय-जय ध्वनि की। बसें चलने लगीं।

तृतीय अङ्क के अनुसार आदिशूर नामक सर्वाध्यक्ष कलकत्ता, दुर्गापुर और उत्तर बंग—इन तीनों प्रदेशों के बस-संचालन में दिन-रात संलग्न है। फिर हड़ताल की खबर उसे मिलती है। नेताओं को दण्ड दें। आदिशूर यह सब नहीं करने का। उसे एक बड़ी चिन्ता यह आ पड़ी कि शिलापत्तनोत्सव में जिलाधीश और राजधानी में राज्यपाल बस के कर्मचारियों को सम्बोधित करने वाले थे। हड़ताल होने पर यह भाषण कैसे चलेगा? निमन्त्रण-पत्र बँट चुके थे। आदिशूर श्रमिक नेताओं को बुला कर बातें करने वाला है। इस बीच दुर्गापुर के हड़ताल की समाप्ति की सूचना मिलती है।

अतिरिक्त काम के भत्ते के विषय में आदिशूर ने श्रमसंघ के नेताओं से चर्चा की। सभी नेताओं ने आदिशूर से प्रेमपूर्वक बातें कीं। आदिशूर का मन्तव्य था—

परस्परविश्वास एव संस्थायाः श्रेष्ठवित्तम्।

अपनी मधुर वाणी और व्यवहार से सभी नेताओं को प्रसन्न करके उसने लौटाया। सभी संकट दूर हुए। उद्बोधन-भाषण के आरम्भ होने के पहले आदिशूर-विरचित संस्थागीत कर्मचारियों के द्वारा गाया जायेगा।

चतुर्थ अङ्क के पूर्व प्रवेशक के अनुसार श्रमिकान्दोलन में चित्रभानु मारा गया। उसके बाल-बच्चों का पालन-पोषण कैसे हो? कोई बीमार है। इस प्रकार की समस्यायें उनकी हैं।

चतुर्थ अङ्क में बस के कर्मचारियों के दैनन्दिन दुर्दशा-ग्रस्त जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है। यथा, दुःखेऽपि हसितुं प्रवृत्तोऽहम्। क्षणिक-सुखं ददाति नो मदिरैव वंचितेभ्यः। श्रमिकाणां जीवनं दुःखपूर्णम्। अभावस्तेषां नित्य-संगी। विषादश्च सहोदर एव।

पंचम अंक के पूर्व प्रवेशक के अनुसार पुलिस-कर्मचारियों के बस में बिना किराया दिये बैठने की चर्चा है। यथा,

श्रूयते यदि रक्षणकर्त्ता भक्षकवृत्तिमपि स्वपदे।
क्रियते खलु केन तु राष्ट्रे शिष्टजनस्य रिपोर्दमनम् ॥ ५.८१

पुलिस निर्दोष श्रमिकों को पीड़ित करती है।

पंचम अङ्क में सर्वाध्यक्ष आदिशूर कर्मियों की शोभायात्रा को शान्त करते हैं। आदिशूर को अपनी विफलता लगी कि शोभायात्रा राज्यपाल के भवन तक पहुँचे। उसे सूचना दी गई कि शोभायात्रा गणेशमार्ग पर केन्द्रीय कर्मालय के सामने रुकेगी। आदिशूर उनसे मिला और बोला कि हमलोगों की आलोचना फलवती रही। तथ्यनिर्णायक नियुक्त होगा और उसके वचनानुसार समुचित सुविधायें दी जायेंगी।

आदिशूर ने व्याख्यान दिया कि मेरा दौत्य सफल हुआ। सब कुछ मंगल हुआ। सभी ने अन्त में संस्थागीत गाया। इस प्रकरण में आदिशूर तो लेखक स्वयं हैं।

शिल्प

शार्दूलशकट सभी दृष्टियों से नवयुगीन नाटक है। इसमें नये युग की समस्यायें हड़ताल आदि का वातावरण है। रंगमंच पर नये साधन टेलीफोन आदि [illegible]।

भाव-सम्प्रेषण के लिए एकोक्तियों का प्रयोग लेखक ने अंक के आदि, मध्य और अन्त में किया है। काम समाप्त होने पर सब लोगों को निष्क्रान्त करके किसी प्रमुख व्यक्ति को रंगमंच पर रख कर उसकी मानसिक प्रतिक्रिया सुनवाने में वीरेन्द्र निपुण हैं।

वेष्टन-व्यायोग

वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का वेष्टन-व्यायोग श्रमिकों का अत्याधुनिक शस्त्र घेराव-विषयक है। शिल्पियों ने घेराव किया था। लेखक कभी शिल्पाधिकारी रह चुका था।

कथावस्तु

आरम्भिक प्रवेशक में वेष्टन की उपयोगिता का विवेचन किया गया है। पाँच श्रमिक गाने-बजाने के बाद निर्णय करते हैं कि शिल्पाधिकारी को वन्दी बना कर अपना अधिकार स्थापित किया जाय। शिल्पाध्यक्ष का मन्तव्य है—

शिक्षिता अपि कर्महीना सन्ति बहवो युवान इदानीम्।
परन्तु नियोगरता वर्तन-वृद्ध्यै सततं घटयन्ति कर्मव्याघातम् ॥

शिल्पाध्यक्ष के पास पांच श्रमिक संजय के नेतृत्व में आये और उन्होंने कहा कि मेरी मांगें इस अन्तिमपत्र के अनुसार तत्काल स्वीकार करें। श्रमिकों ने शिल्पाध्यक्ष और श्रमाध्यक्ष का घेराव कर लिया।

श्रमिकों के गर्म होकर बात करने पर शिल्पाध्यक्ष ने कहा कि यदि कर्मसंस्था नष्ट हो जायेगी तो इसमें काम करने वाले संकट में पड़ेंगे। शिल्पाध्यक्ष ने कहा कि मैं पत्र शिल्प-स्वामी के पास भेजता हूँ। संजय ने कहा कि पत्र मैं ले जाऊँगा और उत्तर लाऊँगा।

घेराव करने के पश्चात् श्रमिक मिलजुल कर गाते हैं। शिल्पाध्यक्ष ने पत्र लिखकर भेजा—

शिल्पललामः कर्मिगणो नाद्रियते चेत् वित्तवता।
गच्छति संस्था लुप्तिपथं राष्ट्रधनं च क्षामदशाम् ॥

इसके पश्चात् कल्कि नामक नेता आये। सबने उनका अभिनन्दन किया। शिल्पाध्यक्ष ने कहा कि श्रमिकों की विजय से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।

शिल्प

वीरेन्द्र ने इस व्यायोग को क्या-क्या नहीं कहा है ? व्यायोग तो यह है ही, साथ ही यह प्रहसन, एकाङ्की, नाटिका और नाटक है।[1]

इस व्यायोग का नायक कल्कि भगवान् का अवतार है। इसका आयुध वेष्टन (घेराव) है। लेखक ने इस कृति के मुखबन्ध में कहा है कि संस्कृत नाटकों में आधुनिक जीवन की चर्चा विरल है। इस रूपक में मैं दैनन्दिन जीवन का चित्रण कर रहा हूँ।

इस व्यायोग में प्रवेशक होना अशास्त्रीय विधान है। प्रवेशक तो केवल नाटक, प्रकरण और नाटिका में ही होना चाहिए।

एकोक्ति का उपयोग रूपक के आरम्भ में है। शिल्पाध्यक्ष अपनी मार्मिक एकोक्ति में वेष्टन के प्रपञ्च की व्याख्या करता है।

वीरेन्द्र के कतिपय नाटक अप्रकाशित हैं। इनका संक्षिप्त परिचय अधोलिखित है—

मर्जिना-चातुर्य

मर्जिना=चातुर्य सांगीतिक नाटक है। इसमें अलीबाबा और चालीस चोरों का कथानक है। कलकत्ता की आकाशवाणी से इसका प्रसारण हो चुका है।

चार्वाकताण्डव

आठ अङ्कों में विभाजित चार्वाकताण्डव दार्शनिक नाटक है। इसमें चार्वाक का षड्दर्शनों के प्रवर्तकों से विवाद हुआ है। इसका प्रसारण कलकत्ता की नभोवाणी से हो चुका है।

सुप्रभा-स्वयंवर

सुप्रभा-स्वयंवर नाटक में महाभारत का एक प्रसिद्ध आख्यान रूपकायित है, जिसमें सुप्रभा तथा अष्टावक्र की प्रणय-गाथा है।

मेघदौत्य

मेघदौत्य नाम सांगीतिक नाटक कालिदास के मेघदूत पर आधारित है।

---

१. वेष्टन व्यायोग के मुखबन्ध से।

लक्षण-व्यायोग

लक्षण-व्यायोग में नक्सलवादी आन्दोलन की चर्चा है। इनके अतिरिक्त वीरेन्द्र ने झंझावृत्त नाटक शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट के आधार पर लिखा है।

शरणार्थि-संवाद[1]

वङ्गवासियों ने स्वधीनता प्राप्त कर ली है। अब वे आनन्द-पूर्वक विचरण कर रहे हैं। शीघ्र ही उनके नेता मुजिब भी आने वाले हैं। इतना सब होने पर भी अभी वे पाकिस्तान द्वारा किये गये क्रूर कर्म को नहीं भूल पाये हैं।

''डरोथी'' के अनुसार—क्या उनकी माता-पत्नी-बहन पुत्री नहीं है, जो स्त्रियों के साथ उन्होंने गर्हित कर्म किया।'

चिन्मय के अनुसार—'पाकिस्तान के सैनिकों के किस कर्म को सर्वाधिक निष्ठुर कहा जाये। किसी ने पिता के देखते-देखते सन्तान का सिर काट लिया। किसी ने लड़कों के सामने माता-पिता की हत्या की। दूसरी ओर भारत देश है, जिसने अपने देशवासियों पर कर बढ़ा कर शरणार्थियों की रक्षा की। उनके लिए चिकित्सा, भोजन-आवास आदि की व्यवस्था की। इस विषय में फरीद ने आदिशूर से कहा—'कृतज्ञता प्रकाशन की भाषा हमारे पास नहीं हैं'। आदिशूर का उत्तर था—

शिबिर-वसतिः कुत्र महतः सुखाय कल्पते।
क्लेशो न गण्यते क्लेशो भवद्भूरिति नः सुखम्॥

इस रूपक में हर्ष, दुःख व्यङ्ग्य, द्वेष, क्रूरता, उदारता, कृतज्ञता आदि का वर्णन प्राप्त होता है। ''यतो धर्मस्ततो जयः'' की भावना यहाँ सफल रूप से वर्णित है। लेखक का यथार्थ चित्रण दर्शनीय है।



1. संस्कृत-साहित्य-परिषद् पत्रिका १९७२ में प्रकाशित।

नित्यानन्द का नाट्य-साहित्य

वङ्गवासी महाकवि नित्यानन्द ने अनेक रूपकों का प्रणयन करके संस्कृत-भारती को समृद्ध किया। वे कलकत्ते के शासकीय संस्कृत-महाविद्यालय के भारती-भवन में अध्यापक हैं। नित्यानन्द के पिता भारद्वाज गोत्रोत्पन्न रामगोपाल-स्मृतिरत्न थे। इनकी वसति बंगाल में सुप्रसिद्ध यशोर नगरी थी। रामगोपाल के पितामह मधुसूदन पैदल ही वाराणसी जा पहुँचे। रामगोपाल सदान्नदानव्रत-परायण थे और उन्होंने अपने कठोर तप से अनेक वार भवानी की मूर्ति का प्रत्यक्ष दर्शन किया था।

नित्यानन्द द्वारा विरचित मेघदूत, तपोवैभव, प्रह्लाद-विनोदन, सीतारामाविर्भाव आदि नाटक सुप्रसिद्ध हैं।

कवि ने पाँच अङ्कों के अपने मेघदूत नाटक में कालिदास के मेघदूत को रूपकायित किया हैं।[1] उन्होंने कालिदास के भाव, वाक्य, छन्द और श्लोकों को निःसंकोच भाव से इस नाटक में समाविष्ट किया है। किन्तु अनेक अभिनव संविधानों के संयोजन से उन्होंने इस कृति को नवरंग प्रदान करने में सफलता पाई है।

कथावस्तु

यक्षपति भृत्य यक्ष को कर्तव्यच्युत देखकर आषाढ में निर्वासित कर देता है। अकेली यक्षपत्नी उसे ढूँढ़ती हुई वन में जा पहुँचती है। वह अपनी एकोक्ति के बीच वृक्ष से पति के विषय में पूछती है—

हे वृक्ष वार्तां भण मे वयस्य जानासि पीडां पतिहीननार्याः।
हीना त्वया याति लता गतिं यां स्मृत्वा सखे स्वीयगतां कथां ताम्॥

वृक्ष ने उत्तर नहीं दिया। उसकी पत्नी लता से पूछती है—

कथय लते सखि जीवितेश वार्ता भवति तवापि च कोमलाङ्गकान्तिः।
पतिरहितां कृपणां सुदीनवेषां समवसखीं पतिगां कथां प्रभाष्य॥

तृतीय अङ्क में यक्ष शरद् ऋतु में रामगिरि में अपने वियोग की कालातिक्रान्ति पर अकेले विचार कर रहा है। यथा,

भवसि हतविधे त्वं सर्वतः क्रूर एव यदि न
खलु तथा स्या निर्दयो मे कथं वा।
स्वयमतिपरिखेदात् खिन्नकान्तिं प्रयातां
दहसि मधुमुग्धां ग्रीष्मतापैः प्रियां ताम्॥

उसे आकाश में नवीन मेघ दिखाई देता है, जो वस्तुतः कृष्ण ही हैं और मेघ रूप धारण करके यक्ष तथा यक्षिणी की सहायता करने आये हैं। वह मेघ को दौत्य

१. इसका प्रकाशन प्रणव-पारिजात के चतुर्थ वर्ष में हुआ है।

के लिए बुलाता है और उसके न आने पर वह अपने जीवन को सम्भव नहीं मानता है। वह पर्वत शृङ्ग से कूद कर प्राण देना चाहता है। मेघ रूपी कृष्ण ने उसे रोका और पूछने पर बताया कि मैं तुम्हारा सखा हूँ। मेघ ने उसे यक्षिणी की सारी प्रवृत्तियाँ बताईं, जो किसी सती वियोगिनी के विषय मे सत्य होती हैं। तब तो यक्ष ने उसे दूत बनने की प्रार्थना की—

वार्तां तावद् वह जलधर प्राणहेतोः प्रियाया
दौत्ये भ्रातर्नहि कुरु घृणां तत्कृतं माधवेन।
माहात्म्यात्त्वं कृत इह मया प्रार्थनां पूरय त्वं
नो चेद् बन्धो यमगृहगता बन्धुजाया भवेत्ते॥

मेघ ने मार्ग पूछा और उज्जयिनी होकर अलका जाने का पथ यक्ष ने बता दिया।

अलका मे मेघरूपी कृष्ण पहुँचा और विरहिणी यक्ष-पत्नी को मरने के लिए उद्यत देखा। उसे यही चिन्ता थी कि मैं मर गई और फिर मेरे प्रियतम आये तो वे भी मर जायेंगे। मेघ ने अपना परिचय दिया कि मैं तो प्रियतम का सखा हूँ। उसने पूछने पर पति का सन्देश दिया और उससे यक्ष के लिए सन्देश लिया—

तवैवार्थं प्रिय प्राणा ध्रियन्ते तव कान्तया।
तव मार्गं प्रपश्यन्त्या दास्या तेऽपेक्ष्यते सदा॥

शिल्प

मेघदूत भूरिशः गीतात्मक नाटक है। इसमे गद्यात्मक वाक्य विरल हैं। कथानक प्रायशः गेय पदो मे निबद्ध है। स्त्री-पुरुषो के गान अलग से समाविष्ट हैं। चतुर्थ अंक मे देवदासियो का गान के साथ नृत्य भी कराया गया है।

मेघदूत में एकोक्तियों की प्रचुरता है। प्रायशः एक ही पात्र रंगपीठ पर रह कर अपनी मनोदशा का वर्णन करता रहता है और घटनाओं का संकेत गौण रूप से कर देता है। कृष्ण मेघ की एकोक्ति है—

जाने दुःखं विरहहृदिजं पूर्वबोधान्ममैव
वृन्दारण्ये व्रजकुलवधूप्रेमबद्धः पुराहम्।
कीदृग्ज्वालाहृदयमभितः संगतासीत्तदामे
तस्याः प्राप्त्यै किमिह न कृतं चिन्तितं वा मयापि॥

नाटक में छायातत्त्व की विशेषता है। मेघरूपी कृष्ण के कार्यकलाप छायातत्त्वानुसारी हैं।

पाँच अङ्को का यह नाटक दृश्यो मे भी विभक्त है। एक ही उज्जयिनी के लिए राजपथ और महाकाल मन्दिर के लिए दो दृश्य प्रयुक्त हैं।

प्रह्लाद-विनोदन

पाँच अङ्को के प्रह्लाद-विनोदन मे पुराण-प्रसिद्ध प्रह्लाद की चरित-गाथा है। इसका अभिनय परिषद् के सदस्यो के समक्ष हुआ था।

कथावस्तु

वालखिल्य मुनि हरिदर्शन के लिए वैकुण्ठ द्वार पर पहुँचे। वहाँ द्वारपाल जय-विजय ने उनको जाने नहीं दिया। उनकी राक्षसी वृत्ति देखकर मुनियों ने उन्हें राक्षस होने का शाप दिया। ब्रह्मा ने शाप जाना तो संशोधन कर दिया कि मित्र वनकर रहो तो सात जन्मों तक और शत्रु वन कर रहो तो तीन जन्मों तक शाप सार्थक रहेगा। दोनों ने शत्रु रहना ही समीचीन माना।

हिरण्यकशिपु के भाई हिरण्याक्ष को वराह ने मार डाला। शुक्राचार्य ने वताया कि वराह को विष्णु का अवतार समझें। उसने विष्णु-पूजा पर रोक लगा दी। हिरण्यकशिपु देवताओं से युद्ध करने की लिए उन्हीं के समान तप करने चल पड़ा।

एक दिन नारद ने नारायण से वताया कि शंकर ने हिरण्यकशिपु को वर दिया है कि वह जलचर-स्थावर-जंगम से न मरे, देव-यक्ष-विहग-मानव-पशु से न मरे, जो दिख जाय उससे भी वह निःशंक रहे। वह देवताओं और ऋषियों को कष्ट दे रहा है उसने हरिनाम-कीर्तन पर रोक लगा दी है।

नारायण ने वताया कि पुत्र प्रह्लाद परम हरिभक्त है। वस्तुतः प्रह्लाद अपनी माता की शिक्षा के अनुसार हरि से लगन लगाकर उनका दर्शन करना चाहते थे। नारद ने नारायण के आदेशानुसार उन्हें मन्त्रराज की दीक्षा दी। इससे प्रह्लाद विष्णुमय हो गये।

गुरु से अधीत तत्त्वों को प्रह्लाद ने कम ग्रहण किया। उन्होंने विष्णु को सर्वस्व माना। यह हिरण्यकशिपु को सह्य न था। पिता ने उन्हें मार डालने की अनेक योजनायें कार्यन्वित कीं, पर वे सब व्यर्थ गईं। एक दिन विष भेजा। उसे लाने वाले वालक ने कह दिया कि यह विष आपको मारने के लिए है। प्रह्लाद ने मन में सोचा कि विष कैसे नारायण को अर्पित करूँ? वे विना अर्पण किये ही खाने को उद्यत हुए तो वालक-वेषी नारायण प्रकट हुए और बोले कि ऐसा न करो। मुझे दिये विना तुम्हें नहीं खाना चाहिए। वे उसे लेकर अंशतः खा गये। पूछने पर जब प्रह्लाद ने वताया कि भगवान् का नाम लेने के कारण मुझे यह खाने की आज्ञा दी गई है तो वालक ने कहा कि ऐसे नाम लेने से क्या लाभ? नारायण भगवान् तुमको बचा भी नहीं सकता। प्रह्लाद ने प्रतिवाद किया—

हरावकृष्टचित्तस्य रक्षणं स विधास्यति।
संशयो वर्तते कोऽत्र दयालुः श्रीहरिर्मम ॥

नारायण ने कहा कि तुम्हारा नारायण निष्ठुर है। वह अवतक क्यों नहीं कुछ करता? प्रह्लाद ने वालनारायण को डाँट लगाई कि दूर हट जा। मैं तुमसे भगवान् की निन्दा नहीं सुनता। यह सुन कर वालनारायण अदृश्य हो गया। प्रह्लाद को आश्चर्य हुआ कि वह मरा क्यों नहीं? अवशिष्ट विष अपने खाया तो अमृत सा स्वादिष्ट लगा। उन्होंने पद-चिह्नों से जाना कि वालक साक्षात् नारायण थे। वे उन्हें ढूंढने चल पड़े।

हिरण्यकशिपु ने सुना कि विषाग्र भक्षण करके भी प्रह्लाद मरा नहीं। उसने समझ लिया कि यह दुष्ट हरि की माया है। उसकी आज्ञा से अग्नि प्रज्वलित की गई और उसमें प्रह्लाद को झोक दिया गया। प्रह्लाद जले नहीं—

कान्तिमान् पुरुषः कश्चिन् विनिष्क्रान्तो हुताशनात्।
प्रह्लादमङ्क आधाय विहसन्निव तिष्ठते॥

वे तो हँसते हुए अग्नि से बाहर आ गये। मारने के लिए नियुक्त सिंह और हाथी भी प्रह्लाद का समादर करके दूर हट गये। कोठरी में साँप भर कर उसमें प्रह्लाद को फेंक दिया गया। वे सभी माला की भाँति उनके गले में लिपट गये। जब हाथ-पाँव बाँध कर समुद्र में फेंका गया तो—

अगाधसलिलात् किंचिदुद्भूतं कमलं महत्।
सस्थितः पुरुषस्तत्र प्रह्लादं धृतवान् द्रुतम्॥

एक दिन प्रह्लाद को बुलाकर हिरण्यकशिपु उनसे बात करने लगा। प्रह्लाद ने कहा कि नारायण सर्वत्र है। हिरण्यकशिपु ने कहा कि इस स्फटिक-स्तम्भ से भगवान् को निकालो। इसे ही चूर्ण कर देता हूँ। उससे नृसिंह भगवान् प्रकट हुए। तब तो उसके मुँह से निकला—

मुखेन सिंहो वपुषा नरोऽयं भयंकरस्त्रासकरो जनानाम्।
अभूतपूर्वो नरसिंह एष आयाति शीघ्रं मम सन्निधिं हा॥

नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार डाला। प्रह्लाद ने पूछा कि तुम मेरे पिता को मारने वाले कौन होते हो? नारद ने बताया कि ये तुम्हारा उपास्य नारायण हैं। हिरण्यकशिपु दिव्य देह धारी पुरुष बन गया। नारद ने उसके पूर्व जन्म की कथा बता दी। नारद और प्रह्लाद ने गाया—

जय वेदविधारक मीनमयधरणीधरणे धृतकूर्मगते।
भवतारणकारक देव हरे जय दिव्यशरीर विदेह सदा॥ इत्यादि।

शिल्प

नाटक में अर्थोपक्षेपक कहीं भी प्रयुक्त नहीं है। इसमें नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य भारतीय परम्परानुसार हैं। प्राकृत भाषा तो बीसवीं शती में प्रायशः नाटकों में परित्यक्त हो ही रही थी। इसमें भी प्राकृत नहीं है।

सीतारामाविर्भाव

सीताराम नाटक का अभिनय सीतारामदासोङ्कारनाथदेव के पुण्याविर्भाव-दिवस के उपलक्ष्य में समागत लोगों के प्रीत्यर्थ हुआ था। सीतारामदास ने प्रणव-पारिजात-पत्रिका का प्रवर्तन करके संस्कृत और भारतीय-संस्कृति के उन्नयन के लिए महान् प्रयास किया है। उन्हीं के नाम पर इस कृति का नाम रखा गया है। इसमें आधुनिक नागरिक या अन्ता राष्ट्रिय सभ्यता और संस्कृति के विषम प्रभावों का विवेचन किया गया है।

कथावस्तु

राजा कलि लोभ, मोह आदि के साथ चर्चा करता है कि हमारा प्रभाव क्यों नहीं वढ़ रहा है। विवेक को कारण जानकर उसे वन्दी वनाने का आदेश हुआ। विवेक ने जाते-जाते कहा कि महाराज, आप प्रजापालक हैं। सवको सुखी रखें। विवेक को पीटा गया कि क्यों ऐसा वोलता है। कलि ने कहा कि धर्म को मिटाना है। इसके लिए स्त्रियों में व्यभिचार फैलाना है, उन्हें घरों से वाहर निकालना है। ब्राह्मणों को लोभी वनाओ तो वेदविद्या का अध्ययन छोड़ देंगे।

द्वितीय अङ्क में श्यामलाल और गुणधर नामक दो नास्तिकों की वातचीत होती है कि धार्मिक नियमन से मुक्त होकर हम लोग कितने निर्वाध हो गये हैं। जिससे चाहो विवाह करो, जो चाहो खाओ। वे शराव पीने का कार्यक्रम आरम्भ ही करने वाले थे कि कोई भिखमंगा आ पहुँचा। उसे वेंत मार कर दूर भगाया गया। तव फिर कोई स्नातक नौकरी माँगने आया। उसे भी गरदनियाना पड़ा। चर्चा हुई कि मशीनों के द्वारा हजारों का काम एक व्यक्ति कर देता है। गुणधर के उपदेशानुसार भोजन-पान पर संयम छोड़ देने पर विमलेन्दु को मरणान्तक रोग ने ग्रस्त किया था और ज्ञानप्रकाश ने असवर्ण विवाह किया तो पत्नी ने दूसरे से विवाह कर लिया और उसके लड़के उसकी खोपड़ी पर तड़ातड़ प्रहार करने में आनन्द लाभ करने लगे। गुणधर ने परामर्श दिया—लड़कों को मार भगाओ और दूसरा विवाह कर लो। ज्ञानप्रकाश ने यह सुनकर गुणधर की खोपड़ी-भंजन करने का उपक्रम किया। तव तक समाचार मिला कि शत्रुओं ने गुणधर की पत्नी को मार डाला और सारी सम्पत्ति चुरा ली।

ज्ञानमूर्ति और आनन्दमूर्ति कलियुग में बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्तियों की चर्चा करते हैं कि भारतीयता विलुप्त होती जा रही है। उनको असित और विकास नामक नास्तिक युवकों ने धूर्त और भण्ड नाम से सम्वोधित करके भगवान् की सत्ता और शास्त्रों की प्रामाणिकता पर विवाद करके डाँटा-फटकारा।

तृतीय अङ्क में वैकुण्ठ में नारद और धर्म नारायण से मिलते हैं। स्तुति सुन कर नारायण ने नारद से कहा—

अहं धर्मस्वरूपेण पालयामि जगत्त्रयम्।
लोका धर्मपथभ्रष्टा मृत्युपथं व्रजन्त्यहो॥ ३.४७

नारद ने कहा कि पृथ्वीलोक में धर्म की ग्लनि हो चुकी है। अपनी प्रतिज्ञानुसार आप अवतार लें। भगवान् ने आश्वासन दिया—

सनातन-वर्णाश्रमधर्मसंरक्षणाय ममैवांशमवतारयामि अचिरादेव भारतवर्षे।

नाटक में छोटे-छोटे तीन अङ्क हैं, जो लघुतर दृश्यों में विभक्त हैं। प्रत्येक अङ्क की कथा अपने आप में स्वतन्त्र है।

तपोवैभव

तपोवैभव मे नित्यानन्द ने अपने पिता तपस्वी रामगोपाल की चरित-गाथा रूपकायित की है।[1] यह पर्वन् के सदस्यो के प्रीत्यर्थ अभिनीत हुआ था।

कथासार

रामगोपाल ने व्याकरणशास्त्र का गम्भीर अध्ययन करके अपने पिता यज्ञेश्वर से अनुमति माँगी कि मैं विद्यार्जन के लिए गुरु के पास जाना चाहता हूँ। वे न्याय पढ कर आगे धर्मशास्त्र पढना चाहते थे। पिता ने कहा कि केवल ज्ञान से सिद्धि नही मिलती।

धर्म का स्वरूप पिता ने समझाया—

अन्नदानं परो धर्मः कलावस्मिन् युगे किल।
अन्नदानाय तेनात्र यतितव्यं त्वया सदा॥

रामगोपाल ने पहले वीरेश्वर तर्कालंकार से शिक्षा ली।

तर्कालंकार ने उन्हें ज्ञानशरीर देकर कहा—वंशलोपभयग्रस्तोऽहमपि कृतार्थः। उन्होने कारण बताया—

वंशादर्शविमुखपुत्रस्यापि मम त्वादृशपुत्रलाभेन निर्वंशाशङ्का दूरीभूता।

तर्कालंकार ने कहा कि इस विद्यालय मे तुमने पढा है। यही अध्यापन करो—यही भार तुम्हें देता हूँ। मेरे विद्यालय का तुम पालन करो।

रामगोपाल की पत्नी दीनतारिणी सर्वथा उनके अनुरूप थी। एक दिन सभी भोजन कर चुके थे, केवल उन्होने भोजन नही किया था। उस दिन तीन दिन का भूखा भिक्षुक पति के द्वारा भोजन देने के लिए भेजा गया। दीनतारिणी ने अपना भोजन उसे दे दिया और स्वयं सहर्ष भूखी रह गई।

रामगोपाल के जिज्ञासा करने पर राखाल ने शान्ति पाने के लिए आगमधर्म का उपदेश करने वाले स्वामी सच्चिदानन्द का नाम बताया और कहा कि वे भयंकर श्मशान में रहते हैं। उन्होंने देवी की आराधना करके जो शक्ति पाई है, उससे रेल को रोक दिया था। महान् योगी और साधक स्वामी सच्चिदानन्द के शिष्य बन गये।

रामगोपाल ने साधना का पथ अपनाया। वे देवी की स्तुति में निरत हो गये। जब देवी ने दर्शन नही दिया तो एक दिन उन्होने माता से कहा कि इस जीवन मे शुद्धि न हुई। अतएव अब जन्मान्तर में सिद्धि होगी। ऐसा वर्तमान जीवन अब चलाते जाना ठीक नही है। उन्होंने निश्चय किया कि माता के चरण-तल पर जीवन-अर्पित कर दूँगा। उसी समय महान् योगिराज सच्चिदानन्द वहाँ प्रकट हुए। उन्होने कहा कि तुम्हें परमेश्वरी माता का दर्शन होगा। उनके पूछने पर कि कब दर्शन होगा। स्वामी जी ने कहा कि सामने देखो, ये माता प्रकट हैं। वे पुनः पुनः तुम्हे दर्शन देंगी।

कथानक की दृष्टि से यह संस्कृत के विरल नाटको मे से है।

●

---

१. इसका प्रकाशन कलकत्ते की संस्कृत-साहित्य-परिषद्-पत्रिका के ५०.१२ तथा ५१.१, ४ अङ्कों में हो चुका है।

अध्याय १२३

श्रीराम वेलणकर का नाट्य-साहित्य

श्रीराम वेलणकर का जन्म १९१५ ई० में महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के सारन्द ग्राम में हुआ था। इनके पिता संस्कृतानुरागी थे और उन्होंने श्रीराम को संस्कृताध्ययन की ओर प्रवृत्त किया। संगीतसौभद्र को अपने पिता के चरणों में समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है—

देववाण्यां यतः प्रेम्णा शैशवेऽहं प्रवेशितः।
तस्मात्तस्मिन् पितृपदे कृतिरेषा वितीर्यते॥

उनकी उच्च शिक्षा बम्बई के विल्सन कालेज में हुई। उन्होंने बी० ए० और एम० ए० में सर्वोच्च सफलता पाई। १९३७ ई० में एम० ए० और १९४० में एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण करके वे भारतीय-शासन-सेवा में डाक-तार-विभाग में नियुक्त हुए।[1] उनके परमाचार्य डा० हरिदामोदर वेलणकर की इच्छा थी कि वे संस्कृत के अध्ययन और अध्यापन में अपना जीवन लगायें। उन्होंने आचार्य की इच्छा की पूर्ति के लिए यावज्जीवन जहाँ-कही भी रहे, संस्कृताध्ययन और लेखन का व्रत निभाया है। वे भारतीय शासन की सेवा में सर्वोच्च पदोन्नति प्राप्त करके अब विश्रान्त होकर बम्बई में एकमात्र संस्कृत-सेवा साधना में लगे हैं। विद्यार्थी-जीवन से ही गणित में उनकी की विशेष रुचि रही है। अब भी वे गणित-विषयक अनुसन्धान में निरत रहते हैं।

श्रीराम का रचना-क्रम का प्रथम प्रसून विष्णुवर्धापन १९४७ में और गुरुवर्धापन १९५३ ई० में प्रकाशित हुए। गुरुवर्धापन में उन्होंने अपने आचार्य को बधाई दी है। १९५९ ई० में उन्होंने महाराष्ट्र-कवि यशवन्त की जयमंगला का संस्कृतानुवाद किया और १९६० ई में श्रीकाणे के लिए जीवन-सागर नामक ग्रन्थ के द्वारा प्रशस्ति प्रस्तुत की। यह रचना गीतात्मक है। इसके पश्चात् उन्होंने अन्नासाहब किर्लोस्कर द्वारा विरचित सौभद्र नामक मराठी नाटक का संस्कृत में गीतनिर्भर अनुवाद किया।

श्रीराम की बहुविध रचनायें हैं, जिनके नाम नीचे निर्दिष्ट हैं—

संस्कृत में—

काव्य—विष्णुवर्धापन, गुरुवर्धापन, जयमंगला (अनुवाद), जीवनसागर, जवाहरचिन्तन, विरहलहरी, जवाहर-गीता, गीर्वाण-सुधा, अहोरात्र।

संगीतनाटक—संगीत-सौभद्र (अनुवाद), कालिदास-चरित, कालिन्दी।

---

१. डाक-तार-विभाग में पिन-कोड का प्रचलन वेलणकर की देन है।

संगीत-नभोनाट्य—कैलास-कम्प, स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी, हुतात्मा दधीचि, राज्ञी दुर्गावती, स्वातन्त्र्य-चिन्ता, स्वातन्त्र्य-मणि, मध्यमपाण्डव।

संगीत—बालनाट्य—जन्म रामायणस्य।

गीत नाट्य—मेघदूतोत्तर।

मराठी में

जन तेचे दास जसे, कलालहरी निमाली, पैठण चा नाथ, वनिता-विकास, श्रीराम-सुधा, राधा-माधव, रेवती।

अंगरेजी में—

Similes in the Rgveda, Contract Bridge.

श्रीराम की रचनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि उनका ज्ञान बहुक्षेत्रीय और गम्भीर है। उनकी प्रतिभा और कल्पना-शक्ति असीम है और उनका संगीत-शास्त्र पर काव्योचित अधिकार है। कवि की अनुसन्धान-शक्ति और गम्भीर अध्ययन उल्लेखनीय हैं।

कवि संस्कृत को अवास्तविक माध्यम समझता है। उसी के शब्दों में—

Once an unrealistic medium like the Sanskrit language is used to-day etc.

वह प्राकृत भाषा का नाटकों में प्रयोग करने के विरुद्ध है। श्रीराम ने अपने नाटकों को प्रायशः उच्चकोटिक विद्वानों के सुझाव लेकर उनका परिष्कार करने के पश्चात् प्रकाशित किया है।

श्रीराम अनेक सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओं के सदस्य हैं। उन्होंने अनेक संस्थाओं को जन्म दिया है और उनका पोषण किया है। उनके उदार व्यक्तित्व और उच्चकोटिक कृतित्व के कारण उनको जीवन काल में ही बहुविध सम्मान प्राप्त हुआ है।

श्रीराम की सात्विकता और निर्भीकता का परिचय उनके नीचे लिखे वाक्य से मिलता है—

Perhaps the modern politics need heroic deeds to be kept dark and unsung.[1]

प्राणाय प्रथमाहुतिर्हि विहिता स्वाहेति भुक्तिक्षणे।
प्राणानां परमाहुतिस्तु निहिताभूमातृमुक्ते रणे॥
सदा जीवनं ये जनानां प्रसन्नं मुधा विघ्नधर्मा निरुन्धन्ति केचित्।
प्रभुं प्रार्थयेऽहं विनाशाय तेषामुदेतुं प्रशास्ता हुतात्मा दधीचिः॥

श्रीराम उच्चकोटिक देशभक्त हैं। भारत के आदर्श उन्नायकों को श्रद्धापूर्वक काव्यप्रसूनार्पण उनके कविजीवन का लक्ष्य रहा है।

---

१. प्राणाहुति की भूमिका से।

कालिदास-चरित

श्रीराम ने अब तक १६ नाटक छोटे-बड़े लिखे हैं, जिनमें अन्तिम लोकमान्य-तिलकचरित है।

कालिदास-चरित की रचना श्रीराम ने १९६१ ई० में संस्कृति-समिति के द्वारा संस्कृत-नाट्य-महोत्सव में प्रयोग करने के लिए की। लेखक के अनुसार यह नाटक ऐतिहासिक नहीं है, किन्तु कालिदास की रचनाओं से कवि के जीवन-चरित की जो मानसिक कल्पना श्रीराम को हुई, उसी का रूप इसमें मिलता है।

कथावस्तु

उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य के शासन में कालिदास मूलतः परराष्ट्र-कार्यालय में उपसचिव थे। वे अपने काव्य-कौशल के कारण पण्डित-सभा में प्रवेश पा गये। विक्रमादित्य की पत्नी वसुधा ने यह सुना तो असहमति प्रकट करते हुए कहा—

न हि चतुःशालस्थिता सम्मार्जनी देवगृहे स्थापनीया।

उनके अमर्ष का तात्कालिक कारण था कि कालिदास की संगति में महाराज भूल जाते थे कि उनकी पत्नी भी है, जिसे उनसे कुछ काम है। बात कुछ और बिगड़ी। वसुधा के माता-पिता के घर से एक पण्डितराज उसके साथ आया था; जो पण्डितसभा का प्रधान था। कालिदास के सामने उसकी प्रतिभा फीकी हो गई। उसने सबसे पहले वसुधा के सामने दुखड़ा रोया कि अब तो मेरा यहाँ निर्वाह दुष्कर है। वसुधा ने ढाढ़स बँधाया कि कालिदास कहाँ का कवि? उसे पराजित कीजिये। तभी महाराज आ गये और फिर कालिदास भी। महाराज ने विषय दिये और आशुकविता में तीन-चार बार कालिदास ने पण्डितराज से अधिक अच्छी रचनायें बनाकर सुना दीं। कालिदास ने शिप्रा का वर्णन किया—

शिप्रा नटी जीवननृत्यसक्ता विलासिनी स्वादनयाचमाना।
पयोधरा शीतलवातदूता विवर्तते विक्रम ते पुरस्तात्॥ १.१६

वसुधा ने भी कालिदास की कविता सुन कर कहा—

जितं कालिदासेन।

तभी विदर्भ से आये हुए गुप्तचर ने समाचार दिया कि वहाँ का राजा हमारे शत्रुओं से मिलकर हमारी हानि करने की योजना बना रहा है। हमारा शत्रु कोशलेश्वर है। अमात्य के चाहने पर भी महाराज ने विदर्भ पर आक्रमण करने की अनुमति न दी। युद्ध की तैयारी रखना ठीक है और वस्तुस्थिति का ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए राजपुरुष को भेजा जाय। वसुधा के जोर देने पर कालिदास

१. इसका प्रयोग उज्जैन में कालिदास-समारोह में और ब्राह्मण-महासभा, बम्बई में हुआ है।

का विदर्भ जाना निश्चित हुआ। विक्रम ने कहा कि विदर्भ से कालिदास के लौटने तक वसन्तोत्सव नहीं होगा। कालिदास ने अपनी स्वीकृति इन शब्दों में दी—

मातृभूमिविजयः प्रियो हि मे पर्वकाल उदितोऽद्य सर्वथा।
प्रेषयेत् त्वरितमेव मां भवान् आर्यये सफलजीवनोत्सुकः॥

वसुधा इतने से ही शान्त न हुई। उसने ठान लिया कि कुछ ऐसा करना है कि कालिदास फिर विदर्भ से न लौटें।

एक दिन पण्डितराज अपने गुट के गोपाल से मिला और उसकी समस्या जानी कि प्रेयसी विवाह करने के पहले धन चाहती है। पण्डितराज ने उसके कान में धनी बनने की योजना बताई कि कालिदास के घर से उसके द्वारा विरचित ग्रन्थों को चुरा लाओ। फिर तुम्हें अभीष्ट धन दूँगा।

कालिदास की पत्नी अलका ने बहुत कहने-सुनने पर उन्हें विदर्भ जाने की अनुमति दी। उनके साथ उनके भाई रघुनाथ भी विदर्भ गये। वियोगारम्भ में अलका ने गाया—

देव तव चरणरजसि विलीना विपदि निपतिता दासी दीना।
सुदूरदेशं प्रयाति भर्ता त्वया विना न च रक्षणकर्ता
महाकाल अबला त्वदधीना॥ १.४०

द्वितीय अङ्क में कालिदास सुकीर्ति नामक विदर्भराज से मिलते हैं। उसे स्वस्ति भवते कहते हैं, प्रणाम नहीं करते और सन्देश देते हैं।

यदि न च परिहार्यः संगरः सर्वयत्नैः समरचतुरसेना नः सदा सिद्धशस्त्रा।
अनुभवतु स नित्यं सौहृदं स्वेच्छया नो न तु विभवविनाशं श्रीविदर्भावनीशः॥

कालिदास ने कहा कि आपने हमारे देश का अपहरण किया है और परिणामतः जो युद्ध हो सकता है, वह आपकी प्रजा के लिये कष्टदायी होगा।

कालिदास को कारागार में डाल दिया गया। कालिदास से मालवा की बातें जानने के लिये विदिशा से आई हुई सरस्वती नामक महारानी की दासी को स्वयं राजा ने नियुक्त किया। उसे ज्ञात करना था कि कालिदास किस काम से विदर्भ आये हैं। उन्होंने आत्मरक्षा के लिए उसे अपनी राजकीय मुद्रा दी, जिससे पूरे विदर्भ में वह सुरक्षित रह सकती थी।

अपने काम में सरस्वती की मुठभेड़ प्रासाद के बाहर सब से पहले गोविन्द और गोपाल से हुई। गोविन्द उसे पकड़कर अपनाना चाहता था। उसी समय वहाँ कालिदास के भाई रघुनाथ आ गये और उन्होंने उसकी रक्षा की।

अगला दृश्य कालिदास के कारावास का है। उनको चिन्ता है कि यहाँ का समाचार उज्जयिनी कैसे भेजूँ। उन्हें तभी मेघ दिखाई पड़ा। कवि ने मेघदूत की कल्पना की। सन्देश की चर्चा की। मार्ग बताया। उस समय वहाँ सरस्वती आ पहुँची। उसके नूपुर-स्वर की वर्णना कवि ने की—

सरस्वतीनूपुर-झंकृतिर्मे बिभर्ति काव्ये मधुरं निनादम्।
न कालिदासप्रतिभाविलासो व्रजेद्विकासं भुवने विनैनाम्॥ २.१८

दोनों की प्रारम्भिक प्रशंसात्मक वार्ता श्लोकवद्ध हुई। उसके पश्चात् साभिप्राय बातें हुईं। सरस्वती ने अलका से अपने सख्य की चर्चा की और बताया कि विदिशा से यहाँ कैसे आ गई—विदिशा के राजा ने कोशलनरेश के प्रीत्यर्थ मुझे भेजा और उसने विदर्भ-नरेश के प्रीत्यर्थ प्रेषित किया। विदर्भ-नरेश ने मुझे कारावास में भेज दिया है आपके लिए। कालिदास ने उससे अपना काम बताया कि मालवनरेश को मेरा सन्देश देना है। उन्हें सन्देह हुआ कि यह शत्रु के द्वारा नियोजित हो सकती है। सरस्वती ने कहा कि जो कुछ आप कहें, वह सत्य है। मैं अपनी विदिशा की रक्षा चाहती हूँ और आप विदिशा की रक्षा के लिए प्रयत्न-परायण हैं। और भी, अलका मेरी सखी है। उसने चर्मण्वती में डूबती हुई मुझे बचाया था। कालिदास ने कहा कि वह सन्देश किसी दूसरे से कहने योग्य नहीं है। मेरा स्वयं उज्जयिनी जाना आवश्यक है। तब तक कालिदास के पुकारने पर वहाँ रघुनाथ आ गया। योजना कार्यान्वित हुई कि रघुनाथ कालिदास के वेष में कारागृह में रहे और कालिदास विदर्भनरेश की मुद्रा सरस्वती से लेकर भाग निकलें और उज्जयिनी पहुँचे। कालिदास के चले जाने पर सरस्वती ने रघुनाथ से बताया कि आपकी भाभी मुझे आपके लिए चुन चुकी हैं। रघुनाथ ने कहा कि आपके गुणों से मैं परिचित हूँ। आप मुझे चुन लें।

तृतीय अंक के अनुसार युद्ध की विभीषिका से प्रजाको बचाने के लिए मालवाधिप विक्रम युद्ध नहीं करना चाहते। गोविन्द और गोपाल ने विदर्भ से लौटकर विक्रम को बताया कि वहाँ कालिदास वन्दी है।

वसुधा ने निर्णय लिया कि अब कालिदास फिर उज्जयिनी का मुँह न देख सकेंगे—ऐसा उपाय करना है।

तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य में राजप्रासाद के बाहर पण्डितराज और गोविन्द दोनों गोपाल से कनकमाला अपने लिए हथियाना चाहते हैं। पण्डितराज ने कहा कि मैंने गोविन्द के लिए रानी से माला माँगी थी। इसी बीच रानी की परिचारिका मदनिका वहाँ आ गई। गोपाल ने उससे कहा कि तुम्हारे लिए यह माला बड़ी कठिनाइयों से मैंने प्राप्त की। अब यह इसे माँग रहा है। मदनिका को गोपाल ने उसे देने के पहले विवाह की बात पक्की करनी चाही। इन सब समस्याओं के साथ मदनिका और गोपाल अलका के पास पहुँचे। गोविन्द से गोपाल ने कहा कि आज रात को कालिदास के घर में जाकर तुम वह माला कालिदास के ग्रन्थों के साथ चुरा लाओ।

तृतीय दृश्य कालिदास के घर का है। वहाँ अलका और मदनिका की बातचीत से ज्ञात होता है कि महाराज विक्रम ने सेना के साथ विदर्भ देश पहुँच कर वहाँ राजा से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने की योजना कार्यान्वित की है। वहाँ रात्रि का समय है। गोविन्द भट्ट कालिदास के ग्रन्थों को चुराने के लिए पहुँचते हैं। वहीं गोपाल भी आ पहुँचा। उसे मदनिका ने मिलने का संकेत किया था। मदनिका

उससे मिली और प्रेमी के साथ उपवन मे चली गई। द्वार खुला तो गोविन्द चोरी के लिए भीतर घुसे। उसी समय कालिदास सैनिक वेष मे वहाँ आ पहुँचे। गोविन्द ने बताया कि पण्डितराज की इच्छा से चोर बना हूँ। छोड देने पर वह चलता बना। प्रच्छन्न कालिदास की प्रेमगर्भित बातों से अलका पहचान गई कि ये मेरे पतिदेवता ही हो सकते हैं। बातचीत में कालिदास ने कहा कि कालिदास तो मर गये। इस झूठी खबर से अलका मूछित हो गई। तब जाकर कालिदास ने कहा कि मैं तुम्हारा पति हूँ।

चतुर्थ अङ्क मे कालिदास कुन्तल देश के राजा के पास दूत बन गये। इधर उज्जयिनी में उनके ऊपर आरोप लगाया गया कि वे विदर्भराज के गुप्तचर है। यह किया पण्डितराज ने। उन्होंने महारानी से कहा—तस्य विदर्भबन्धनान्मुक्तिकाले राष्ट्रद्रोहिण्या सरस्वत्या स निजबन्धने दृढीकृतः। विदर्भशगूढप्रणिधिः सा। अतस्तस्या उज्जयिनीतो निष्कासनेऽवश्यं यतितव्यम्।

रानी असमजस में पडी। उसकी विचारणा है—

कालिदासचरितं न च जाने चेतो दोलायतीव पवने।
महाद्रिशिखरे सुखमासीनो निपतितो दरीतले वा घने॥ ४.१०

अगले दृश्य मे विक्रमादित्य और नयाध्यक्ष ब्रह्मदत्त शर्मा स्वाध्याय-मन्दिर में हैं। वहाँ वसुधा पण्डितराज को लेकर कालिदास-विषयक दोष लेकर पहुँची। पण्डितराज ने कहा कि विदर्भेश के कारागार से कालिदास को मुक्त किया जिस ललना ने, वह सरस्वती है। सरस्वती जो उज्जयिनी मे अब कालिदास के घर मे है, वह विदर्भेश की गुप्त प्रणिधि है। कालिदास ने यह प्रतिज्ञा की कि विदर्भेश्वर को मालवा के वृत्तान्त सरस्वती के साथ-साथ मैं भेजूँगा। तब वह छोडा गया। यह सुनकर महाराज विक्रम ने कहा—यह हो नही सकता।

सवितुर्नैव किरणस्तमोरूपेण सम्भवेत्।
अमरत्वप्रदाय्येतदमृतं न विषं भवेत्॥ ४.१२

ब्रह्मदत्त का विचार था कि कालिदास के आने पर उनका साक्ष्य लेकर निर्णय होगा, पर महारानी वसुधा ने कहा—सरस्वती से पूछ लें तो सभी दूषण प्रमाणित हो जायें।

सरस्वती आई और ब्रह्मदत्त ने कहा कि आप पर विदर्भेश का गुप्त प्रणिधि होने का दोषारोप है। ब्रह्मदत्त ने कार्यकारण-मीमांसा की—

भवती विदर्भेशगुप्तचरत्वेनैव कालिदासं दृष्टवती। तं निजगुणैर्मोहितवती। तेन सह चास्मिन् राज्ये वासं कृतवती।

सरस्वती के साक्ष्य के पहले उसके स्मरण करते ही रघुनाथ आ गये। सरस्वती ने कहा कि ये रघुनाथ मेरे पति हैं। इन्ही के साथ कालिदास के घर मे रहती हूँ। विदर्भ के कारागार मे इनके साथ मेरा गान्धर्व विवाह हुआ था। महाराज और कालिदास की सम्मति से यह बात अब तक छिपा कर रखी गई थी। मैं उज्जयिनी-स्नुषा बनकर यहाँ रहती हूँ।

वसुधा ने कहा कि यह विदर्भेश की मुद्रिका धारण करती है। इसका क्या कारण है? इसका उत्तर विक्रम ने स्वयं दिया कि जो कोई विदेशी कालिदास से मिलने आता उसे राजाज्ञा से पहले कालिदास से मिलना पड़ता हैं। इस प्रकार वे उज्जयिनी का अहित नहीं कर पाते। सरस्वती ने कहा कि यह मुद्रा राष्ट्रकार्य में लगाई जाती थी। अब इसे राजा के चरणों में अर्पित करती हूँ।

पंचम अङ्क में राजा की ओर से कालिदास की राजकीय और काव्यात्मक उपलब्धियों के लिए सम्मान होने वाला है। 'कवि-मत्सर-ग्रस्तः सेनापतिः' इस न्याय से कालिदास को सेनापति फूटी आँखों नहीं देखता था।

पण्डित-परिषद् में कालिदास के सम्मान में सर्वप्रथम पण्डितराज ने भाषण दिया। दूसरा भाषण सेनापति का था। उसका मन्तव्य था—

अधीत्य शास्त्रसंभारं वाङ्मयं जनयेत् कविः।
गृहीत्वा शस्त्रसंभारं राष्ट्रं रक्षति सैनिकः॥ ५.१२

इस झगड़े में कालिदास को बोलना पड़ा—

सम्मानो यदि मे कवेः परिषदे नास्यै क्वचिद्रोचते
कामं देव विसृज्यतां पुनरियं माभून्ममात्रादरः।
यत्काव्यं मम लेखपंक्तिषु भवेद् ज्ञास्यन्ति तत्सज्जना
यान्त्येते मधुलोलुपा हि भ्रमराः पद्मं न तत् षट्पदान्॥

महाराज, आप तो मुझे आज्ञा दें। मैं घर जाऊँ।

महाराज ने सेनापति को समझाया कि राजा और सेनापति को भी अमरता प्रदान करने वाला कवि है।

अतः सम्माननीयः कालिदासः।

सेनापति की आँख खुल गई। तब तो कालिदास की प्रशस्ति और विक्रमादित्य के शासन-पत्र को अमात्यराज ने पढ़ा, जिसमें कालिदास को कविकुलगुरु की उपाधि दी गई थी।

वे नवरत्नपरिषद् के प्रथम सदस्य रूप में प्रतिष्ठित हुए। जो कुछ अलंकारादि कालिदास को दिये गये, उसे उन्होंने सत्पात्र अर्थियों को देने का आदेश दिया।

महारानी वसुधा ने कालिदास को एक रत्नमाला दी और कहा कि इसे किसी को न दें, अपने हाथ से अलका को पहना दें।

अगले दृश्य में निपुणिका, मदनिका, गोपाल, गोविन्द और पण्डितराज की हास्य-प्रवण व्यर्थ की बातें हैं। इसके बाद के दृश्य में कालिदास राजा की उस उक्ति को लेकर खिन्न हैं कि वह राजाओं को अमर बनाता है। कालिदास ने निर्णय लिया कि राजाओं के नाम पर काव्य न लिखूँगा। नवरत्न—परिषद् को छोड़ कर स्वतन्त्र रूप से राष्ट्रहित के लिए कवितः करना है।

सरस्वती ने आकर कालिदास को बताया कि राजा विक्रमादित्य पर काव्य चाहते हैं। महारानी उसको एक पत्नीव्रती रखना चाहती हैं। कालिदास ने

कहा कि अब मैं किसी की आज्ञा से काव्य नही लिखूंगा। उन्होंने परिषद् की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया।

तभी सेनापति का त्यागपत्र महाराज ने कालिदास के पास भेजा कि यदि कालिदास शान्तिदूत है तो मेरी क्या आवश्यकता रही ? उसको रखने के लिए महाराज ने आपको परराष्ट्र कार्यालय के भार से मुक्त कर दिया है। वह बना-बनाया त्यागपत्र लाया था, जिस पर कालिदास ने हस्ताक्षर कर दिया। कालिदास को प्रसन्नता हुई कि अब बन्धनविमुक्त हूँ। कालिदास ने रघुवंश लिखने की योजना बनाई।

अनेक कवियों ने कालिदास-चरित पर नाटक लिखे। श्रीराम का रूपक कथावस्तु की दृष्टि से एक निराला ही नाटक है।

इसमें कोई सन्देह नही कि श्रीराम की प्रतिभा का यह सर्वोत्तम प्राञ्जल प्रसाद है।

समीक्षा

श्रीराम ने इस रूपक को संगीत-नाटक कहा है। इसके प्रायशः उच्च पात्रों का व्यक्तित्व संगीतमय है—केवल वाणी से ही नही हृदय से भी वे इतने रसिक हैं कि उनके सारे कार्यकलाप मे हार्दिक्य है।

श्रीराम ने कथानक मे कालिदास के व्यक्तित्व को जो रूप दिया, उसमें उसके निजी व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया है। वह स्वयं शासकीय तन्त्र मे रहते हुए कवि था। प्रौढोक्ति से कहा जा सकता है कि स्वरचित कालिदास के प्रतिसंस्करण स्वयं श्रीराम है।

कथावस्तु को जिस निपुणता के साथ श्रीराम ने गूँथा है और जैसे रुचिकर संविधानों से सभी अङ्गों को सुनिबद्ध किया है। वह स्पृहणीय है।

अङ्कों मे का विभाजन दृश्य मे लिखा नही गया है, किन्तु वस्तुविन्यास से दृश्य-विभाजन स्पष्ट है। प्रत्येक अङ्क तीन दृश्य मे विभक्त हैं। पाँचवें अङ्क के पूर्व एक प्रवेशक है, जो निर्दिष्ट नही है।[1]

अपनी उच्च कोटिक काव्यरचना का परिचय श्रीराम ने स्थान-स्थान पर दिया है। कारावास मे कालिदास और सरस्वती की श्लोकबद्ध बातचीत ऐसा ही रमणीय प्रकरण है।

एकोक्तियों का प्रायशः प्रयोग इस नाटक मे है। अंक के बीच मे दूसरे दृश्य के आरम्भ मे गोपालभट्ट की एकोक्ति है, जिसमें वह कालिदास की निन्दा और उसकी समस्या-पूर्ति की त्रुटि बताता है। प्रथम अक में द्वितीय दृश्य के अन्त मे पण्डितराज की और तृतीय दृश्य के आरम्भ मे अलका की लघु एकोक्तियाँ है। द्वितीय अक मे कालिदास की एकोक्ति चतुर्थ दृश्य के आरम्भ मे है। इस एकोक्ति मे वे अपनी दुःस्थिति, मनश्चिन्ता के साथ मेघ को देखकर मेघदूत की पंक्तियाँ गुनगुनाते है।

---

१. भ्रान्तिवश लेखक ने इस प्रवेशक को अङ्क का भाग दिखाया है।

यह एकोक्ति बहुत कुछ विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क में पुरूरवा के पत्नी-वियोग में बात करने के समान पड़ती है। वे एकोक्ति में अलका का ध्यान करके विह्वल हो जाते हैं—प्रिये, अलके, आदि कहते हैं। तृतीय अंक के प्रथम दृश्य के अन्त में वसुधा की सूचनात्मक लघु एकोक्ति अर्थोपक्षेपक-स्थानीय है। चतुर्थ दृश्य में गोविन्द की एकोक्ति समानधर्मा शर्विलक की मृच्छकटिक की एकोक्ति के समान है।

कवि ने शिष्टाचारात्मक वचनों को भास के समान ही पूरे नाटक में गूंथ रखा है। यथा, भवच्चरणरजो मस्तके धारयामि यशसे। [तथा करोति] कालिदासः—चिरंजीव।

संस्कृत के लेखक बीसवीं शताब्दी में भी भले ही आधुनिक शैली के नाटक क्यों न लिखते हों, अपनी पारम्परिक भोंडे शृंगार की वर्णना से बाहर नहीं निकलना चाहते श्रीराम भी उन्हीं की पद्धति पर चलते हुए नायिकावर्णन करते हैं—

प्रोन्नतपयोधरा, रम्भोरुजघना इत्यादि।

व्यर्थ की बातों में हास्याभिरुचि उत्पन्न करने के उद्देश्य से प्रेक्षकों को वह भी अतिदीर्घ काल तक चलने वाले संवादों में श्रीराम लगाये रखते हैं। द्वितीय अंक में गोपाल, गोविन्द और सरस्वती की बातें कुछ ऐसी ही हैं। तृतीय अङ्क में वसुधा की गोपाल की दी हुई कनकमाला-विषयक लम्बी चर्चा अनावश्यक है। इसमें केवल हँसने-हँसाने की बातें हैं, जो गम्भीर परिस्थिति की विचारणा में निमज्जित प्रेक्षकों के योग्य सामग्री नहीं है। ऐसी सामग्री नातिदीर्घ होनी चाहिए थी। पञ्चम अंक में मदनिका, निपुणिका गोपाल, गोविन्द, पण्डितराज आदि की लम्बी बकवास व्यर्थ की है।

तृतीय अंक का द्वितीय दृश्य विस्तृत है और हास्य-प्रवण है। इसमें मध्यम और अधम कोटि के पात्र हैं। उत्तम कोटिका या उच्च व्यक्तित्व का कोई पुरुष इसमें नहीं है। ऐसा अंश अंक में नहीं होना चाहिए। यह प्रवेश-कथा विष्कम्भक के योग्य है। इसका प्रधान कथा से दूरान्वय-मात्र ही सम्बन्ध है।

इस नाटक में कंचुकी कतिपय स्थलों पर निवेदक का काम करता है। यथा

नवरत्नसभापतिर्नृपः सहदेव्या समुपैति शत्रुहा।
अरुणस्तिमिरारिरुत्थित उषसा संगत एति भासुरः॥ ५.८

श्रीराम छायातत्त्व का यथोचित प्रयोग करते हैं। उनका छायातत्त्व सूक्ष्म और प्रत्यक्ष दोनों प्रकार का है। द्वितीय अंक में रघुनाथ का कालिदास के वेष में कारागार में रहना छायातत्त्वानुसारी है। तृतीय अङ्क में नगर-रक्षक कालिदास का और द्वितीय अंक में तीर्थयात्री गोपाल का सैनिक वेष में प्रकट होना छायात्मक है। कालिदास की भाव-प्रच्छन्नता है अपनी पत्नी से पूछना—

कुत्र वर्तते गृहस्वामी। कथं भवतीमेवंविधां विहाय गतोऽयमरसिकः। अन्त में परीक्षा लेने के लिए यहां तक कह डाला कि कालिदास मर गया इसी

प्रकरण मे अलका कालिदास को पहचान कर भी उनकी प्रेमभरी बातें सुनकर उन्हें झिड़कती है—

विरमास्मात्प्रिलापात्। व्यर्थं स गोविन्दभट्टो निष्कासितः। इत्यादि। यह अलका की भावप्रच्छन्नता है।

रंगमंच पर आलिंगन का दृश्य अभारतीय है, किन्तु श्रीराम इस शास्त्रीय विधान को नहीं मानते। उनकी अलका कालिदास का आलिंगन तृतीय अंक में करती है।

नाटक में विवाहों की अधिकता है। इतने विवाह भी एक ही नाटक मे नहीं होने चाहिए। तृतीय अंक के अन्त मे सरस्वती-सम्बन्धी कथांश की पुनरावृत्ति कालिदास और अलका के संवाद में होता है। नाटक मे इस प्रकार की पुनरावृत्ति अभीष्ट नहीं है।

इस नाटक में सबसे अधिक खटकने वाली वस्तु है पण्डितराज का चरित-चित्रण। क्या प्राचीन भारत के संस्कृत-पण्डित इतने चरित्रहीन थे? इस प्रकार के चरित-चित्रण से राष्ट्र का चारित्रिक ह्रास होता है।

कालिदास अपने को राजा का चरणदास कहे—यह उनके उदात्त व्यक्तित्व से हीनतर भावना लगती है।[1]

शैली

'किसी शब्द के प्रयोग द्वारा वक्ता कुछ और कहे और श्रोता कुछ और समझे इस विधि से श्रीराम संवादों मे सुरुचि निष्पन्न करते हैं। यथा, तृतीय अङ्क में कालिदासः—सुकीर्ति-बन्धनात्। अलका—या सुकीर्तिकृतबन्धनान्मोचयित्वा' आदि कालिदास के वाक्य में सुकीर्ति विदर्भनरेश है, किन्तु इसका अर्थ अलका समझती है सुयश और तदनुसार उत्तर देती है।

ताना मारने की वाक्यावली भी प्रेक्षकों के लिए मनोरंजक रहती है।

यथा,

कालिदासः—भवत्सखी।

अलका—कैपा। सपत्नी कविता भवेत्।

कालिदासः—त्वया तु बन्धने निक्षेपितः। न विदर्भेशस्य सा बहुमता।

कतिपय अतिशय रोचक हास्यात्मक कवितायें यद्यपि बड़े लोगों के मुँह से निःसृत हैं, फिर भी उनमें बच्चों का भोलापन निबद्ध है। यथा,

सरस्वती—

यस्य बालकस्य पिता स्याद् गोपालः स्वयमजापालः भवितासौ ॥ ४.४

मदनिका—

यस्य बालिकायाः सरस्वती माता सरःपद्मगता भवतीयम् ॥ ४.५ इत्यादि।

श्रीराम की छान्दसी प्रवृत्ति वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने संस्कृत के अनुष्टुप्,

---

१. चरणे भवतां दासो बध्नाति विनयाञ्जलिम्। ४.१६

इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, द्रुतविलम्बित, पृथ्वी, भुजंगप्रयात, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, रथोद्धता, विघ्यङ्गमाला, वैतालीय, वसन्ततिलका, वंशस्थवृत्त, शालिनी, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, स्वागता और हरिणी छन्दों के अतिरिक्त प्राकृत के दिण्डी और साकी छन्दों का प्रयोग किया है। हिन्दुस्तानी शैली के गीत विविध रागों में हैं। यथा, कर्नाटकी, काफी, कामोद, खमाज, खंवावती, जयजयवन्ती, जोगी, तिलककामोद, तिलंग, दुर्गा, देश, वागेश्री, विहाग, भीमपलासी, भूप, भैरवी, मांड, मालकंस, यमन-कल्याण, सारंग, सोहनी, शंकरा आदि। मराठी के ओवी छन्द में स्त्रियों के गीत हैं।

मेघदूतोत्तर

श्रीराम वेलणकर का मेघदूतोत्तर गीत नाट्य (Opera) है। १९६८ ई० में प्रकाशन के पूर्व इसका पाँच वार अभिनय सुरभारती नामक संस्था के द्वारा जवलपुर, भोपाल और इन्दौर में हो चुका था। भोपाल में सम्पन्न अभिनय में मध्यप्रदेश के राज्यपाल और सभी विश्वविद्यालयों के कुलपति भी दर्शक थे।

आरम्भ से ही श्रीराम का विश्वास रहा है कि कालिदास ने मेघ की कथा के साथ कुछ अन्याय किया है। कवि ने यक्ष को रामगिरि में विपत्तियों के थपेड़े खाता हुआ क्यों छोड़ दिया? यह वताकर कि यक्ष वहाँ क्यों कर पड़ा है, कवि ने यह नहीं वताया कि अपनी प्रियतमा से उसका संयोग भी हुआ। मेघदूतोत्तर के प्रथम अङ्क में मेघदूत की कथा की भूमिका प्रस्तुत कर दी गई है और आगे के दो अङ्कों में परिणति दे दी गई है। इस प्रकार मेघदूत पढ़ने वाले की जिज्ञासा पूर्ण होती है। इसके द्वारा कालिदास की अपूर्ण रचना पूर्ण की गई है। इसमें ३८ राग और आठ तालों का प्रयोग हुआ है। सारा नाट्य ५१ पद्यात्मक गीतों में हैं, जिन्हें ३० लघु गद्य-वाक्यों से जोड़ा गया है।

कथावस्तु

अलका नगरी में कार्तिक मास में शुल्कपक्ष में द्वादशी के दिन सन्ध्या के समय यक्ष अपनी सर्वविध सम्पन्नता से प्रसन्न है। आनन्द-विहार के साधन उपलब्ध हैं। उसकी प्रेयसी व्रतनियमोद्यापन में लगी है। वह यक्ष से कहती है—

पतिदुरितवारणं स्वीकृतं मया व्रतोपासनम्।
भवत्पूजया नाथ साङ्गता पीडाशंका स्यात् समाहिता
भवतु देवताराधनम्॥ १.४

पति को देवाराधन अनावश्यक प्रतीत होता है, पर पत्नी के आग्रह पर वह पूजा करने को तत्पर हो जाता है। तभी स्वयं कुवेर उसे काम पर बुलाता है। पत्नी कहती है कि छोड़ कर नहीं जाना है। तव तो वहाँ आकर कुवेर दण्डाज्ञा सुनाता है—

स्त्री-विरहे भूमितलं नित्यमधिवसेः

पत्नी ने कुवेर से करुणा की भीख माँगी—

किंकरजाया दयां याचते नाथ कृपया रक्षतु घोरात्।
शाश्वतविरहाद् भवान् अधिपते ॥ १.१४

कुवेर ने कहा—एक वर्ष तक ही रमणीय रामगिरि मे रहो। यक्ष चलता बना।

द्वितीय अङ्क मे यक्ष के रामगिरि मे एक वर्ष रह लेने के बाद की कथा है। प्रबोधिनी एकादशी के दिन शापमोक्षदिवस है। उसे चार मास पूर्व अपनी पत्नी को मेघ द्वारा भेजा सन्देश स्मरण हो आता है। अपनी पत्नी के विषय मे सोचता है कि वह कैसी होगी—

संन्यस्ताभरणा करुणा मूर्तिमती सा मनोदारुणा।
प्रथमविरहिणी नवप्रणयिनी निरंजनाक्षी रुक्षालकिना
जीवने विशार्णा ॥ २.२७

द्वितीय दृश्य मे अलकापुरी मे यक्षपत्नी आज विरही पति से मिलने की उत्सुकता में उत्फुल्ल है। वहाँ कुवेर ने प्रकट होकर कहा—

वत्से किमेव विर्षासि
स्वाधिकारे प्रमाद विधाय विन्देत् कुतः प्रमोदम्।
जीवसि जायासुते अविधवा कुरुष्व भर्तुः श्रमापनोदम् ॥ २.३१

भावी प्रणय-सुख की कल्पना से वह रस-निर्भर गान करती है—

मोदतां मे मानसं विकसतु सवितरि वामरसम्।
एकान्ते संगतेऽत्र कान्ते जीवनं न हि नीरसम् ॥

तृतीय अङ्क में कुवेर रामगिरि मे यक्ष के सामने प्रकट होकर उसे आदेश देता है—

यक्ष याहि द्रुतचरणं चिररहितं ते सदनम्।
प्रतीक्षमाणां जायां सान्त्वय तामलकायाम् ॥

अर्थात् अपनी विरहिणी को सान्त्वना प्रदान करो।

अगले दृश्य मे वह पत्नी के समीप अलकापुरी मे है। वहाँ उसकी पत्नी है—

एकवेणी करे बधान धृत्वा मेलननिकरे।
दर्शनोपगमसमाश्लेषणैः वसात्र सद्यः सुखभृतशिखरे ॥

दोनों एक हुए। कुवेर ने उन्हे आशीर्वाद दिया।

यक्षपत्नी ने यक्ष से कहा—

स्वाधिकृतो मा कुरुतात् स्खलितं भो अतिप्रणयात्।
जीवेन्न पुनर्ललना ॥ ३.४७

हारयिता वारिदेन निजवार्तां जडमुखेन।
जयतु पतिश्चतुरमनाः ॥ ३.४६

पूरे नाट्य में केवल दो प्रधान पात्र हैं। कुवेर नाममात्र के लिए आता है।

हुतात्मा दधीचि

श्रीराम का हुतात्मा दधीचि रेडियो-नाटक है।[1] इसमें पौराणिक ऋषि दधीचि के बलिदान की कथा है। कवि ने ऋग्वेद-संहिता से लेकर अनेक पुराणों में वर्णित दधीचि की आख्यान-धारा में अवगाहन करके महाभारत के वनपर्व की कथा को अपनाया है।

कथावस्तु

व्यग्रचित्त दधीचि प्रार्थना करते हुए समुद्र के तट पर चिन्ता-निमग्न बैठे हैं कि दैत्यों ने जल को छिपा रखा है। संसार तृषाहत है। शत्रु इतना शक्तिशाली और मैं अकेला। मुझे तो नये बादलों का जल संसार को देना है। दधीचि के शिष्य प्रभञ्जन ने आकर बताया—

रत्नाकराद् वारिकरभारं संहर्तुमेनं समुपयातः।
मेघव्रतो व्योमपदराजः कारागृहे तेन परिबद्धः॥

अर्थात् मेघव्रत नामक राजा समुद्र से वारिकर लेने आया तो समुद्र ने उसे कारागृह में बन्द कर दिया। उसे छुड़ाने की प्रार्थना शिष्य ने की। मेघव्रत की पत्नी सौदामिनी ने आकर दधीचि से दुखड़ा रोया। दधीचि ने सौदामिनी से कहा कि तुम्हारा पति स्वतन्त्र होकर तुम्हें मिलेगा।

तब तक समुद्र की पत्नी कल्लोलिनी आई। उसने निवेदन किया कि मेरे पति विमनस्क हैं। अतएव मैं चिन्तित हूँ। आप उन्हें स्वस्थ करें। पत्नी को वहाँ आया देख समुद्र भी वहाँ आ पहुँचा और बेतुकी बातें करने लगा। दधीचि ने उससे प्रार्थना की—

भूमेः प्रयाति सहस्रधा पाथोनिधिं सरितां गणैः।
तस्माज्जलं जनजीवनं याचे भवन्तं निर्धनः॥

अर्थात् लोकरक्षा के लिए जल दें। समुद्र ने मेघराज की पत्नी सौदामिनी से कहा कि तुम्हारे पति मेघव्रत को वृत्रासुर ने बन्दी बना कर रखा है। उसे कैसे छोड़ूँ। फिर उसने पहले की इन्द्र से कुछ झगड़े की बातें बताईं। दधीचि ने उससे कहा—

विस्मर चरितं कलहपरं। ननु विजय हरम्।
भूमिजलं किल सलिलविलुलितः
नेयं मेघैर्भूकुहरम्।
सुखिनः सर्वे सन्तु सज्जनाः, अन्या नीत्या निरन्तरम्॥

इसके पश्चात् वहाँ वृत्रासुर आया और बोला कि यदि लोगों को जल चाहिये तो वे वृत्र-यज्ञ करें। अन्यथा मेघ मेरे पास समुद्र के अधीन बन्दी रहेगा। तब तो गर्वपूर्वक प्रभञ्जन को कहना पड़ा—

स्वातन्त्र्यार्थं सकलजनता प्राणदानं हि कुर्यात्।

---

१. दिल्ली आकाशवाणी केन्द्र से १९६३ ई० में इसका प्रसारण हुआ था।

दधीचि ने अपना निश्चय समुद्र के समक्ष प्रकट किया—

मानवाहुतिरेवैषा वाञ्छिता चेत् त्वयासुर।
प्रीतेन मनसा देहं त्यजेय तव तोषणे॥
भूजलं सागरं वायात् ततो याति तदम्बरं।
तस्माच्च भूमिं मधुरं जीवनं निपतेत् पुनः॥

वृत्रासुर को क्रोध हो आया। उसने कहा कि आपके हाथों को पकड़ने वाली मेरी मुष्टि को कोई योद्धा खोल ही दे। तत्काल वैखरी ने कहा कि वृत्र, तुमने क्या किया? तपस्तेज से मुनि तुमको जला देंगे। तभी शरीर-संघर्षज अग्नि से वृत्रासुर जला दिया गया। दधीचि ने भी उसके साथ अग्नि में अपनी इहलोक लीला समाप्त कर दी।

हुतात्मा संगीतिका (Musical Play) है। इसमें आद्यन्त गेय पद हैं। इसका आरम्भ नान्दी के ठीक पश्चात् निवेदयित्री के गेय निवेदन से होता है।

राष्ट्र-सन्देश

नाटक के अन्त मे श्रीराम ने राष्ट्र को उदात्त सन्देश दिया है। यथा,

यदा यदा रिपुरुदेति भूमे वीरसुतः स्वं जुहोति होमे।
स्वातन्त्र्ये मुक्तिः सति नियमे स्मरणमिदं स्यादनवरतम्॥
दिने दिने सम्भवन्तु भुवने दधीचि-मुनयो मातृ-रक्षणे।
तत्यागोज्ज्वलजीवनगाने श्रीरामसुधाव्रतचरितम्॥

राज्ञी दुर्गावती

राज्ञी दुर्गावती गेय नाटक या संगीतिका का प्रसारण १९६४ ई० में आकाशवाणी, दिल्ली से हुआ था। इसकी रचना का उद्देश्य लेखक के शब्दो मे है—

नेतारो बहवो वसन्ति भुवने सत्तासनाधिष्ठिता
नित्य सर्वजनोपदेशचतुराः स्वार्थार्जनैर्निर्जिताः।
त्यक्तासुर्विरला तु भूमितनया राज्ञीव दुर्गावती
तस्या जीवन-मृत्यु-काव्यचरितं स्फूर्तिप्रदं स्यादिह॥

इस नाटक मे रानी दुर्गावती की कहानी है। वह १५२५ से १५६४ ई० तक थी और गोंडवाना प्रदेश पर शासन करती थी। उसकी राजधानी गढा (जबलपुर) मे थी। दुर्गावती के पिता शालिवाहन उत्तरप्रदेश मे महोबा के राजा थे और पति गोण्डराज दलपति थे। पति का शीघ्र देहान्त हो जाने से विधवा रानी को शत्रु राजाओं के आक्रमण से आत्मरक्षा करनी पड़ी। छोटे-मोटे राजाओं को तो उसने दूर भगाया, पर अकबर के दुर्नीति-भरे आक्रमण से उसे जबलपुर छोड़कर मण्डला की ओर भागना पड़ा।

नरही नदी की बाढ के कारण वह अभीष्ट स्थान पर न पहुँच सकी। बीच मे युद्ध करती हुई रानी ने घायल होने पर शत्रु के हाथ में पड़ने की अपेक्षा आत्महत्या

करना समीचीन समझ कर इहलीला समाप्त कर ली। १९६४ ई० में जून में उसका चतुःशताब्दी स्मृति-दिवस मनाया गया। उसी अवसर पर इसका आकाशवाणी, दिल्ली से प्रसारण हुआ।

कथावस्तु

विधवा दुर्गावती का पुत्र वीरनारायण था। मण्डला में दुर्गावती के ससुर की रखैलिन का पुत्र चन्द्रराज जबलपुर के सिंहासन का युवराज बनना चाहता था। विरोधी भी रानी की सभा में थे। वह रायगढ़ में सभी सेनाओं को इकट्ठी करके व्यूह बना रहा था।

रानी दुर्गावती ने योजना बनाई कि चन्द्रराज की अनुपस्थिति में मण्डला पर आक्रमण कर दें। उसने चन्द्रराज को पराजित किया। रानी की बहिन कमलावती ने कहा कि चन्द्रराज मेरा मनोनीत वर है। इस बीच अकबर की ओर से आसफ खान नामक मुगल सेनापति ने दुर्गावती पर आक्रमण कर दिया। मण्डला की ओर जाती हुई रानी नरही नदी न पार कर सकने पर वहीं से देवलोक चली गई।

इस नाटक में ४० वर्ष की रानी दुर्गावती का यह चिन्ता करना कि यदि मुझे पौत्र न हो तो कौन युवराज बनेगा? यह समीचीन नहीं है। उसका पुत्र वीर-नारायण अभी केवल २० वर्ष का था।

कवि ने प्रकृति में सर्वत्र मानव का सहारा देखा है। यथा,

गोण्डानामविता पुराणविहितो विन्ध्याचलः संकटे
रेवातुङ्गपदस्थिता शुचिजला लीलारता प्रीतिदा।
वह्निः सप्तपुटः सखा समरसः शश्वत् प्रजानां प्रिय-
स्ते रक्षन्त्वधुना गिरीन्द्रकृपया मत्प्राणहारैरपि॥

कालिन्दी

कालिन्दी नामक नाटक की रचना में जो उद्देश्य व्यक्त है, वह कवि के शब्दों में है—

भारतीयाचारविचाराणामैक्यं कथमृध्यते तदप्यहिंसा-हिंसा विवादेन नाटकेऽस्मिन् दर्शितम्। प्रार्थ्ये च—

विचरितोच्चरिताचरितादिना सकलसज्जनकार्यपरम्परा।
विविधतां परिरक्ष्य जनप्रियां प्रतनुतामवनौ हृदयंकताम्॥

कथावस्तु

अयोध्या के राजा चन्द्रप्रताप की दो कन्यायें थीं—मन्दाकिनी और कालिन्दी। मन्दाकिनी का विवाह मगधराज सुधांशु से हुआ था और कालिन्दी के विवाह के लिए उन्होंने वङ्गराज दुर्गेश्वर को चुना था। अयोध्या में सुधांशु और दुर्गेश्वर दोनों आये। सुधांशु ने चन्द्रप्रताप के पूछने पर बताया कि मुझे कालिन्दी से दुर्गेश्वर का विवाह अच्छा नहीं लगता, क्योंकि हम अहिंसक हैं और वह मृगयालु तथा युद्धप्रिय है। सुधांशु ने दुर्गेश्वर से भी कहा कि आप शूर और धनुर्विद्या-पारङ्गत

हैं, फिर भी मैं कालिन्दी का आप से विवाह ठीक नहीं समझता, क्योंकि हम लोग अहिंसा-परायण हैं। आप लोग शक्तिभक्त हैं। दुर्गेश्वर ने पूछा कि क्या आप आक्रमण होने पर भी युद्ध न करेंगे। सुधांशु ने कहा कि युद्ध का प्रश्न ही नहीं उठता। मगध तो राजमण्डल में श्रेष्ठ है। तब तो दुर्गेश्वर ने कहा कि आपको हराने के पश्चात् ही अब कालिन्दी से विवाह होगा। मैं मगध पर आक्रमण करूँगा। यह सुनकर सुधांशु हट गया। उसकी अनुमति बिना सब के चाहते हुए भी कालिन्दी का विवाह न हो सका। दुर्गेश्वर ने भी वहाँ से प्रस्थान करते समय कहा—

नान्याङ्गना मे महिषी भविन्नी नान्या च वङ्गश्रियमाश्रयन्ती।
कन्या ह्ययोध्याधिपतेर्विनीया धन्यां च कुर्वीत ममायुराशाम्॥

उसने चण्डप्रताप को बताया कि अब वङ्ग और मगध का युद्ध होगा ही। मन्दाग्नि ने कहा कि सुधांशु तो आप से युद्ध करने से रहा। मुझे प्रजा की रक्षा के लिये स्वयं युद्धभूमि में उतरना पड़ेगा। यथा,

धृत्वा धनुर्यविदहं रणाग्रे स्थिता न तावद्विजयो रिपोः स्यात्।
कृत्वा स्वकार्यं मगधप्रजानां हिताय देहोऽपि पतत्वयं मे॥

सुधांशु ने चण्डप्रताप से कहा कि वंगेश्वर को बन्दी बनायें। कहीं वह हिंसात्मक प्रवृत्ति न अपनायें। जब युद्ध न करने का वचन दे, तब छोड़ें।

द्वितीय अङ्क में दुर्गेश्वर पाटलिपुत्र पर आक्रमण करता है। मन्दाकिनी समर-भूमि में उत्तर आई है। स्कन्धावार में एक दिन अयोध्यापति चण्डप्रताप मिलता है। उसने बतलाया कि सुधांशु ने राज्य-त्याग कर दिया है। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग कर देना चाहिए। अतएव तुम मेरे वध का आदेश देकर वंगेश्वर को शान्त करो, मगध की रक्षा करो और हिंसा का परिहार करो। यह सब न सह सकने के कारण मैं तुम्हारे पास आ गया हूँ। मैं आपको कालिन्दी देता हूँ। आपका अपमान हुआ—इस क्षतिपूर्ति के लिए आपको अयोध्या का राज्य देता हूँ। इस बीच सेनापति के द्वारा पकड़ा हुआ सुधांशु भी वहाँ लाया गया। उसने कहा कि मेरे ही आचरण से मगध की प्रजा संकट में पड़ी है। मैंने अहिंसा-व्रत पालन करने के लिए राजपद छोड़ दिया है। दुर्गेश्वर के मुँह से सहसा निकल पड़ा—

विरलाः पुरुषा भवादृशा जनतार्थे निजगौरवत्यजः।
व्रतपालनदक्षतां कलौ न हि कश्चित् वृणुते प्रशासकः॥ २.८

सुधांशु ने प्रार्थना की कि अपराध हमारा है। मगध क्यों ध्वस्त हो? आप जो दण्ड चाहें, मुझे दें। मैं तो मगधसेना को युद्ध से विरत करने के लिए उनके सामने छाती खोलकर खड़ा हो जाऊँगा कि तीर मारो तो मेरी छाती पर। ऐसी स्थिति में युद्ध बन्द होकर रहेगा।

इसके अनन्तर मन्दाकिनी भी वहाँ आ गई। उसने दुर्गेश्वर के पूछने पर इच्छा व्यक्त की—

सेना प्रयातु भवतो निजवंशवैरी युद्धं च या विलयं व्रजतु निहेतु ।
नो चेद् रणाय भगवान् ज्ञानिमयान्तु वक्तुं—
पंथ् नाथे रम् भवतु नो निरतिश्रुयैव ॥ ३.१२

चन्द्रप्रताप और अयोध्यापति दोनों मेरे साथ आ जायें तो युद्ध बन्द हो सकता है। मन्दाकिनी ने कहा कि चन्द्रप्रताप सुधांशु को नहीं जाने देंगे। आप सबको छोड़ दें, केवल मुझे अपना अनुचर ले चलें तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। जब कालिन्दी से आपका विवाह हो जाय तो फिर मुझे स्वतन्त्र कर दें।

सुधांशु ने कहा कि यह नहीं हो सकता। मुझे ले चलें। पत्नी को नहीं। पत्नी को क्यों व्यर्थ भोगना पड़े? मैं तो अहिंसा छोड़कर अब युद्ध करके पत्नी की रक्षा करूँगा। दुर्गेश्वर ने देखा कि सुधांशु ने अहिंसा छोड़ दी। तब उसने कहा कि मेरा मन्तव्य पूरा हुआ। युद्ध समाप्त है।

तृतीय अङ्क में दुर्गेश्वर कालिन्दी के वध करने से एकान्त खिन्न है। उधर सुधांशु में परिवर्तन हुआ है। उसे अहिंसाव्रत का अभिप्राय पूर्णतः ज्ञात हो चुका है कि—

हिंसानिवारणाय यत्क्रियतेऽहिंसाव्रतस्थेन, न तेन दरुह्यतीति। न हिंसैवात्र, हिंसा कार्या।

मन्दाकिनी ने बताया कि कालिन्दी जीवित है। वह देशान्तर से मन्दाकिनी-परिवार में रहने लगी थी। वह परिवार युद्धकाल में सरस्वती के हाथों सौंप दिया गया था। सरस्वती उसे यहाँ लाई है।

कथानक में अहिंसा और हिंसा के विवेचन के लिए इतना अधिक स्थान देना समीचीन नहीं है। अहिंसा और हिंसा की उपयोगिता की परिधि को व्यंग्य रखना सर्वोत्तम होता। यदि अभिधा से ही कहना था तो इसको इतना विस्तार नहीं देना था।

शिल्प

लेखक ने इसे प्रतीकात्मक रूपक कहा है। इसमें पात्र-कल्पना एवंविध है—

पात्र	प्राकृतिक रूप	मानव रूप
चन्द्र प्रताप	सूर्य	अयोध्या-नरेश
हिमानी	बर्फ	अयोध्या-रानी
कालिन्दी	यमुना	चन्द्रप्रताप की कन्या
मन्दाकिनी	गंगा	चन्द्रप्रताप की पत्नी

इस युग में अपनी कोटि का यह मौलिक और लाक्षणिक नाटक निराला ही है। वैसे लाक्षणिक नाटकों की परम्परा अतिशय प्राचीन है। नाटक सोद्देश्य है। लेखक के शब्दों में हिंसा-अहिंसा-विवेक इसका प्रधान विषय है। सभी पात्र कल्पित हैं और घटना भी कहीं पुराणेतिहास में वर्णित नहीं है। इसमें प्रस्तावना का अभाव है। नान्दी के बाद सीधे कथारम्भ होता है। निर्वहण लघु है, पर साधारण नाटकों से सुन्दरतर और अधिक सार्थक है।

श्रीराम ने इसे नाटिका कहा है, क्योंकि भरत ने नाटिका में तीन अङ्क माने हैं और कालिन्दी में तीन अङ्क हैं।[1] यथा,

Kālindī is a Nāṭikā according to Bharata's Nāṭyaśāstra because it has only three acts.

ऐसी आधुनिक कृतियों का नाम भरत के लक्षणों के अनुसार नहीं रखा जाना चाहिए। वस्तुतः इसमें नाटिका के लक्षणों की विशेषता स्वल्प हैं।

इसकी नान्दी में रूपक की पूरी कथा का सारांश एक पद्य मात्र में दिया गया है।

द्वितीय अङ्क का आरम्भ दुर्गेश्वर की लघु एकोक्ति से होता है। इसमें उसके मानसिक ऊहापोह की चर्चा है। किंकर्तव्यविमूढ राजा 'न जाने का गतिः समुचिता।' इत्यादि मन ही मन कहता है। तृतीय अङ्क के आरम्भ में दुर्गेश्वर की उच्चकोटिक एकोक्ति है।[2] वे इसमें कालिन्दी के विषय में चिन्ता करते हैं—

कालिन्दि, त्वत्कृते सर्वोऽयं समुद्यमः समारब्ध आसीत्' इत्यादि।

स्त्रियों को वीराङ्गना बनाने की मनीषा श्रीराम के नाटकों में प्रबल है। दुर्गावती विषयक रूपक इस दिशा में उच्चतर प्रयास है।

पात्र रंगमंच पर आते हैं, अपना काम करते हैं और जाते नहीं। इसी बीच दूसरे पात्र भी आते हैं और रंगमंच पर अपना काम करके वहीं पड़े रहते हैं कि तीसरा पात्र आता है। प्रश्न है कि पहले से आये पात्र बिना किसी काम के रंगमंच पड़े रहे—यह अभिनय कला के लिए त्रुटि है। द्वितीय अङ्क में दुर्गेश्वर, चण्डप्रताप, सुधांशु, मन्दाकिनी और हिमानी ये पाँच पात्र अन्त तक इकट्ठे हो जाते हैं।

कालीप्रसाद और कैलासदास के कार्यकलाप कहीं-कहीं मनोरंजन के लिए आवश्यक हैं, किन्तु ऐसे गम्भीर नाटक में इनके जैसे छोटे व्यक्तित्व के पात्रों को इतना स्थान नहीं मिलना चाहिए।

पात्रों के चरित्र का विकास संस्कृत नाटकों में विरल ही दृष्टि गोचर होता है। इस रूपक में सुधांशु का चारित्रिक विकास दिखाया गया है।

इस रूपक में पक्के गाने नहीं है। इसमें वार्णिक छन्दों का सुरुचिपूर्ण वैविध्य है। यथा, अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, औपच्छन्दसिक, द्रुतविलम्बित,

---

१. लेखक का यह वक्तव्य निराधार है। भरत ने चार अंक नाटिका में माने है। यथा,

स्त्री प्राय चतुरङ्का ललिताभिनयात्मिका सुविहिताङ्गी।
बहुनृत्तगीतपाठ्या रतिसम्भोगात्मिका चैव॥ १८.५६

२. लेखक ने इस एकोक्ति को भ्रान्तिवश आत्मगत कहा है। आत्मगत (Aside) और एकोक्ति (Soliloquy) में अन्तर होता है।

पृथ्वी, भुजङ्गप्रयात, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, स्रग्धरा तथा हरिणी।

इसका प्रयोग रंगमंच पर दो घंटों में सम्पन्न हो जाता है। सारी कथा एक वर्ष की अवधि की है।

कालिन्दी अपने-आप में एक रमणीय कलाकृति है। लेखक को यशस्वी बनाने के लिए यह एकमात्र रचना पर्याप्त है।

कैलास-कम्प

अखिल भारतीय आकाशवाणी के आवेदन पर श्रीराम ने इस रेडियो-नाटक का प्रणयन किया, जिस समय चीन ने भारत पर आक्रमण किया था। दिल्ली से मार्च १९६३ ई० में इसका प्रसारण हुआ। इसकी दृश्य-स्थली कैलास पर शिव का आवास है।

कथावस्तु

चीन ने भारत पर आक्रमण किया। जनता शिव से कहती है कि हमारी रक्षा करें। शिव जगकर पार्वती से पूछते हैं—

उमे कोलाहलं कोऽयमकाले कर्त्तुमुद्यमः।
को नु वा ताण्डवे देवि कैलासेऽत्र प्रवर्तते॥

उमा ने कहा कि यह तो प्रलय है। चीन के असुरों ने भारत से युद्ध कर दिया है। कैलास ने हल्ला किया कि मुझे जड़ से उखाड़ने का प्रयास हो रहा है। मैं नष्ट हुआ। शशाङ्क, स्वर्गङ्गा, गणेश, आदि सभी पड़ोसियों ने अपनी भयग्रस्त स्थिति बताई। इन्द्र ने वस्तु-स्थिति बताई कि भारत पर आक्रमण हो गया है।

द्वितीय अङ्क में कैलास कहता है—

आकाशयानैर्विचरन्नरातिर्निरीक्षते भारतभूमिमार्गम्।
न्यस्यत्यरातिः प्रखराग्निगोलानयोमयांस्तान् करवह्निशूलान्॥

शंकर के शब्दों में भारत की रक्षा करने में हिमालय की कीर्ति है—

देवाधीश प्रकटितमहा उत्तरस्यां दिशायां
देवावासः प्रवितततनुर्यः स्थितो देवतात्मा।
अस्त्रं हैमं स्वयमिदमुमानाथ एष प्रतस्थो
न्यस्यत्युग्रं भरतवसुधारक्षणे दक्षिणोऽसौ॥ २.७१

तीसरे अङ्क में चीन-भारत-युद्ध की समाप्ति हो जाती है। कैलास पर शान्ति विराजती है। सभी देवता और भारतीय जनता शिव का आभार प्रकट करते हैं कि इस सुखद परिणाम के कारण शिव हैं।

शिल्प

पूरा रूपक पद्यात्मक है। श्रीराम ने इस रूपक में सुपरिचित वार्णिक छन्दों के अतिरिक्त कुछ नये छन्दों का प्रयोग भी किया है, जिनके नाम उमानाथ, सम्पात,

नयन और शस्त्र-सन्धि रखा है। इसके पद्यों को विविध रागों में गेय बताया गया है।

कथा का आरम्भ निवेदयित्री की प्रस्तावना से होता है। श्रोत्री का प्रश्न है—किमभूत् और उत्तर है शृणुध्वम्।

पात्र के रूप में जनता भी है।

श्रीराम हास्य-प्रेमी है। उन्होंने शशाङ्क और गणेश से परस्पर अपवादारोपण हास्य के लिए किया है। यथा शशाङ्क का कहना है—

> विख्यातं यज्जननमभवन् मृत्तिकापिण्डतस्ते
> देवी माता हिमगिरिसुता त्वं मलेनाबभार।
> मूर्धा लब्धो मृतमजतनोर्मूषकारोहकस्त्वं
> शान्ता वाणी भवतु किमहो निष्फलैः शब्दगुल्मैः ॥ २.५४

अन्य रूपकों की भाँति इसमें भी युद्ध-कला में नारी की रुचि दिखलाई है। उमा का कहना है—

> आरुह्य गिरिकूटानि प्रोल्लङ्घ्य च महादरीः
> रिपवः पुर आयान्ति कुत्र रक्षादलं निजम् ॥ २.५५

इधर-उधर की अनावश्यक बातें अप्रासंगिक होने पर कवि को यदि अच्छी लगती हैं तो उन्हें समाविष्ट करने में नहीं हिचकता। शशाङ्क और गणेश का झगड़ा व्यर्थ की बकवास है।

सत्पुरुष क्या करे—यह सन्देश कवि के शब्दों में है—

> संयोजनं राष्ट्रबलस्य भूत्यै उद्योजनं बुद्धिबलस्य तत्र।
> नियोजनं शत्रुबलस्य शक्त्या प्रयोजनं सत्पुरुषायुषोऽदः ॥ ३.६१

भारत को किसी महान् सुधारक की आवश्यकता है। उसके काम होंगे—

> विधाता बलानां नियन्ता खलानां
> निहन्ता रिपूणां प्रणेता शुभानाम्।
> अनन्तावधिः शान्तितेजाः प्रजानां
> विनेता प्रभो जायतां भारतानाम् ॥

स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी

श्रीराम स्त्रियों की यशोगाथा के श्रेष्ठ गायक हैं। स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी रेडियो नाटक में सुप्रसिद्ध झाँसी की रानी की १८५७ ई० की क्रान्ति-विषयक प्रवृत्तियों की चर्चा है। दिल्ली आकाशवाणी से दिसम्बर १९६२ ई० में इसका प्रसारण हुआ था। आकाशवाणी-प्रसारण के साथ ही यह रंगमंच पर प्रयोग के लिए भी ठीक है, जैसा लेखक ने कहा है—

The play has been written so as to suit the stage and could be rendered by the students in about an hour's time as a good pastime.

जिस उदार भाव से श्रीराम ने रानी के चरित-चित्रण को निष्पन्न किया है, वह प्रशस्य है। कवि के शब्दों में वह है—

श्रीमातृक्षितिरक्षणे क्षतिरपि क्षान्त्या यथा लक्षिता
राष्ट्रैक्याय यया स्वकायविलयो धैर्यप्रकर्षो वृतः।
मर्यादामवलापि दर्शितवती त्यागस्य या देवता
साध्यास्तां हृदयानि देशजनुषां स्वातन्त्र्य-लक्ष्मीरिह ॥

कथावस्तु

लक्ष्मीबाई का विवाह झाँसी के राजा गङ्गाधर पन्त से हुआ था। लक्ष्मी १८५४ ई० में २५ वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई। उसे कोई पुत्र नहीं था। गंगाधर ने सात वर्ष के बालक दामोदर को गोद लिया था, जो लार्ड डलहौजी को मान्य नहीं था। उसने झाँसी को ब्रिटिशराज में मिलाने का आदेश दे दिया था।

निकटवर्ती दतिया के राजा ने झाँसी-राज्य से शत्रुता बढ़ा ली थी। उसे झाँसी की सेना ने परास्त किया था। पिहारी के राजा ने झाँसी राज्य का कुछ भाग हड़पा था। उसे भी हरा दिया गया था। ओरछा की रानी लढी को पराजित करके सेनापति झाँसी ले आया था। लक्ष्मी ने उससे कहा कि पारस्परिक वैरभाव छोड़कर भारत के शत्रुओं का सामना करने के लिए हमें एक होना चाहिए। लढी ने हृदय से रानी की सहायता करने का वचन दिया। सम्मान-पूर्वक उसे पुनः ओरछा पहुँचा दिया गया।

द्वितीय अङ्क में झाँसी-दुर्ग शत्रुसेना से घिरा बताया गया है। तोप के गोले चल रहे हैं। रानी दिन भर युद्ध करती है और रात में भग्न दुर्ग की प्रतिरचना करवाती है। न खाती है, न सोती है। अमात्य ने परामर्श दिया कि सन्धि करलें। रानी ने उसे फटकारा कि मातृभूमि को पीडा पहुँचाने वाले के साथ कैसी सन्धि? इससे तो अच्छा है मर जाना। दुर्ग के मर्म भाग की रक्षा के लिए घनगर्जना नामक तोप लगा दी गई। इस विषम स्थिति में झाँसी की रक्षा करने के लिए कालपी से तात्या टोपे आ गया। पर वह पेशवा सेना अंगरेजों के द्वारा परास्त कर दी गई। रानी की कठिनाई चरम सीमा पर थी। उसके सेनापति ने कहा कि मुझसे अब लड़ाई नहीं चलाई जा सकती। मैं असमर्थ हो गया।

तृतीय अङ्क के अनुसार पुरुष का वेष धारण करके झाँसी की रानी दुर्ग से बाहर चली गई। उसकी सखी चेतना रानी लक्ष्मी बाई बनकर दुर्ग में रही। झाँसी का दुर्ग छोड़ते समय रानी ने अपने पिता से अन्तिम बात कही—

यावज्जीवं जनहितपरा नित्यनिःस्वार्थचर्या
शक्ता नासीज्जनकचरणौ सेवितुं स्वेच्छया यत्।
राज्ञीस्थाने महति निहिता तात बाला भवद्भिः
क्षन्तव्या सा निज 'मनु' सुता लालिता पादलग्ना ॥

उसके सकुशल चले जाने पर शस्त्राघात से चेतना मर गई।

शिल्प

स्वातन्त्र्यलक्ष्मी का आरम्भ निवेदयित्री की तीन पदों की प्रस्तावना से होता है। अन्तिम पद है—

केवलललना ध्रुवा तारका नरवीराणां मार्गदीपिका।
शृणुत तदीयं चरितं रसिकाः श्रीरामवचः प्रियसुहृदः॥

प्रस्तावना के पश्चात् नान्दी है, जिसमे रूपक की पूरी कथा निश्चुतित है।

रानी के उदात्त कार्यों की प्रशंसा निवेदन रूप में तानपण्डी और चेतना प्रस्तुत करती हैं—

न वारिणा निर्वाणा रविकिरणाः कीर्णाः
सुरधनुषा धरजनुषा भान्ति विभापूर्णा।
पराजयेऽप्यनादरो नास्तिगतो रिपुणा
स्वागतमातिथ्यमहो प्रियभगिनीप्रेम्णा॥
वारिदानैर्नदी सन्तृपिततोयिका
अनिललहरी तथा श्रान्तिविश्रामिका।
पीडितालोकने तापहरणार्थिता
रीतिरेषा सतां सन्तता स्वीकृता॥

श्रीराम वेलणकर ने कतिपय अन्य नाटकों की भी रचना की है, जिनमें कतिपय नाटक नीचे संक्षेप में वर्णित हैं—

स्वातन्त्र्य-चिन्ता

स्वातन्त्र्य-चिन्ता मूलतः रेडियो नाटक है।[1] इसमें राणाप्रताप और मानसिंह की कमलमीर में मिलने की कथा है। राणा की सात्त्विक तपस्विता और मानसिंह की राष्ट्रघातक ऐश्वर्य-विलास-लिप्सा का निदर्शन इस रचना का उद्देश्य है।

इस एकाङ्की मे पाँच पात्र हैं। इसमे ११ पद्य रागमय हैं। सारी रचना ओजो गुण से परिप्लुत है।

स्वातन्त्र्य-मणि

रेडियो-नाटक स्वातन्त्र्य-मणि में बुन्देल-खण्ड के महाराज छत्रसाल के पिता की हत्या कौटुम्बिक कुचक्र के कारण हुई और वे दक्षिण की ओर चले गये। इसमे नव गीत रागबद्ध हैं।

स्वातन्त्र्य-चिन्तामणि मे स्वातन्त्र्य-चिन्ता तथा स्वातन्त्र्यमणि समाविष्ट हैं।

इसकी भूमिका में लेखक ने कहा है—

The spirit of patriotism and the acceptance of suffering in order to serve the people are virtues required even to day. It is for such

१. इसका प्रकाशन सुरभारती-भोपाल से १९६६ ई० में हो चुका है।

an undaunted spirit that we honour and admire these heroes even today. Glories of the past must provide inspiration for the future.

तत्त्वमसि

तत्त्वमसि चार लघु रूपकों का संग्रह मूलतः रेडियो-नाटक हैं। इनका मंचन भी समय-समय पर हुआ है।[1]

जन्म रामायणस्य

इसमें वाल्मीकि रामायण के अनुसार, क्रौञ्चवध की कथा है। इसमें पाँच पुरुष-पात्र हैं और पाँच ही रागवद्ध गीत हैं। इसका अभिनय २५ मिनट में हो जाता हैं।

आषाढस्य प्रथम दिवसे

इसमें मेघदूत के पूर्वमेघ की कथा है। मेघदूतोत्तर नामक पूर्वचर्चित नाटक में उत्तरमेघ की पूर्वपीठिका प्रधानतः है। इसमें पूर्वमेघ का अनुसरण है। इसमें मेघदूत पर आधारित १७ गीत हैं।

तनयो राजा भवति कथं मे

इस लघु रूपक की कथा जातक में वर्णित धनपरा नाम के रानी की स्वार्थपरता को लेकर विकसित की गई है। इसमें छः पात्र और चार गीत हैं।

तत्त्वमसि

इस एकाङ्की में छान्दोग्य उपनिषद् की सुप्रसिद्ध कथा रूपकायित है, जिसमें आरुणेय अपने पुत्र श्वेतकेतु को तत्त्वमसि की शिक्षा अनेक उदाहरणों को लेकर स्पष्ट करता है। इसमें आठ पात्र और ४ गीत निवद्ध हैं।

छत्रपति-शिवराज

शिवाजी भारतीय ऐतिहासिक राजाओं में सर्वप्रथम हैं, जिन्होंने अधिकाधिक हिन्दी और संस्कृत के कवियों का ध्यान आकृष्ट किया है। श्रीराम वेलणकर ने छत्रपति शिवराज नामक पांच अङ्कों के नाटक का प्रणयन १९७४ ई० में किया। इस ऐतिहासिक नाटक में १७ वीं शताब्दी में शिवाजी के द्वारा राज्य-स्थापन और प्रजापालन की सुनीति का रोचक वर्णन है। शिवाजी को औरंगजेब, अंग्रेज और बीजापुराधीश का समय-समय पर सामना पड़ा। इसमें १६६२ ई० में बीजापुर की जीत से लेकर १६७४ ई० में शिवाजी के राज्याभिषेक की प्रधानतः चर्चा है।

नाटक में शिवाजी के स्वराज्य की उपलब्धि और लोककल्याण की योजनाओं का कार्यान्वियन चारुतापूर्वक व्यक्त किये गये है। इसमें सन्त रामदास, शेख मुहम्मद आदि के भावों को श्रीराम ने अपने अनेक पद्यों में नूतनाया है।

---

१. इसका प्रकाशन सुरभारती, भोपाल से १९७२ ई० में हुआ है।

२. इसका प्रकाशन देववाणी मन्दिर से १९७४ ई० और भारतीय विद्याभवन से १९७५ ई० में हो चुका है। १९७४ ई० में शिवाजी के अभिषेक के ३०० वर्ष पूरे हो चुके थे।

संस्कृत के प्राचीन छन्दो के अतिरिक्त अनेक नये छन्दो का अनुसन्धान करके कवि ने इस कृति को अन्य रूपको की भाँति ही मण्डित किया है।

आधुनिक युग के बडे नाटको मे यह नाटक अद्वितीय ही कहा जा सकता है। एक ही दिन मे इस का पूरा अभिनय सम्भव नही है। पाठ्य नाटक की कोटि में इस दृष्टि से यह गिना जा सकता है। इसमे २० दृश्य और लगभग २५ पात्र है। मंचन होने के पूर्व ही इसका प्रथम सस्करण बिक गया।

तिलकायन

श्रीराम का तिलकायन तीन अङ्को मे १८९७ और १९०८ ई० के तिलक के ऊपर चलाये हुए अभियोगो के परीक्षण पर आधारित है। कचहरी मे न्यायप्रक्रिया किस प्रकार सम्पन्न हुई—यह सरस विधि से प्ररोचित है। इसमे साक्षी वे ही रखे गये है, जो मूल व्यहार-दर्शन मे वर्णित है। पहले अङ्क के अन्तिम दृश्य मे १८९७ ई० का मुकदमा है। दूसरे अङ्क के पहले दृश्य में १९०८ ई० के मुकदमे का इतिवृत्त है। तृतीय अङ्क मे मण्डाले कारावास का दृश्य है। नाटक के अन्त मे तिलक ने प्रजा की प्रशस्ति की है कि किस प्रकार उन्होने उन पर अपने प्रेम-प्रसून की बौछार की है। अनेक दृश्यों मे तिलक स्वयं पात्र बन कर आते है। इस नाटक में गीत नही है और न कोई स्त्री-पात्र है।[1]

श्रीलोकमान्य-स्मृति

दो अङ्को के इस लघु रूपक मे सगीत है और नारी-पात्र हैं। लोकमान्य केवल अन्तिम दृश्य मे रंगमंच पर आते हैं। वहाँ अपनी एकोक्ति मे प्रजा को धन्यवाद देते हैं। इसकी भूमिका कुछ कल्पित और कुछ वास्तविक जनों की है। इसका प्रमुख उद्देश्य है तिलक की स्मृति को प्रकाश मे लाना और बताना कि जनता का उनके प्रति कितना सम्मान था।

तिलक की पत्नी दो दृश्यो मे रंगपीठ पर आती हैं, जिनमे से एक दृश्य मे उनको मण्डाले कारावास मे लिखा तिलक का पत्र मिलता है। इसमे किसी प्रसिद्ध नायक का चरित्र-चित्रण नही है।

इस नाटक का अभिनय और प्रकाशन १९७७ ई० के एक अगस्त को नायक-निधन-वार्षिकी के समय पूना-तिलक स्मारक मन्दिर मे हुआ। दो घटे मे अभिनय सम्पन्न हुआ।



---

१. इस नाटक का अभिनय या प्रकाशन १९७७ ई० तक नही हुआ है। श्रीराम वेलणकर से इसका परिचय प्राप्त हुआ है।

अध्याय १२४

कालिदास-महोत्साह

कालिदास महोत्साह के लेखक ग्वालियर के महापण्डित डा० हरिरामचन्द्र दिवेकर हैं। डा० दिवेकर ने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए०, डी० लिट् की उपाधि पाई और मध्यभारत में सर्वोच्च शैक्षणिक पदों पर राजकीय सेवा करते हुए विश्रान्त हुए।

इस नाटक का अभिनय कालिदास महोत्सव में उज्जयिनी में हुआ था।

दिवेकर ने इस में सर्वथा काल्पनिक कथानक प्रस्तुत किया है। सूत्रधार ने इसे नवीन नाटक कह कर इसका लक्षण बताया है—

यस्मिन्न स्यान्नायको नायिका वा।
त्यक्ता धारा नाट्यशास्त्रस्य यस्मिन् ॥

अर्थात् इसमें नायक और नायिका नहीं है और भारतीय नाट्यशास्त्र के नियम नहीं लागू होते।

इस नाटक में भारतीय संस्कृति की आधुनिक दुर्दशा देखने के लिए कालिदास स्वर्ग से उतरे हैं। नारद भी पीछे हो लिये हैं। कालिदास वस्तुओं को अपनी तात्त्विक दृष्टि से देखते हैं। यथा, अमृत देवताओं के लिए शाप है। इसी के कारण देवताओं को दुःख नहीं होता। वे सुख को नहीं समझ पाते। मैं बहुत समय तक स्वर्ग में रहने से विरक्त हो गया हूँ। मैं मातृभूमि की ओर चला आया। मैं अपने पहले के नाटकों से भी अच्छा नाटक लिखना चाहता हूँ। नवीन भारत को फिर से देखने से नवीन कल्पनायें आविर्भूत होंगी।

कालिदास ने नारद से पूछा कि आप वेष-परिवर्तन करके क्यों आये? नारद ने कहा कि यदि पौराणिक वेष में आता तो मेरे ऊपर लोग पत्थर बरसाते।

हस्तपत्रक-वितरक से ज्ञात हुआ कि कालिदास के जन्मदिवस पर कालिदास ने जन्मस्थान पर कालिदास-स्मारक का निर्णय करने के लिए विशाल सभा का आयोजन होना है। जन्मदिन और जन्मस्थान का निर्णय लोगों ने कैसे किया—इसका समाधान नारद ने किया कि आपने ही आषाढस्य प्रथम दिवसे लिखा। इससे जन्मदिन का ज्ञान हुआ। किन्तु यह सर्वसमर्थित न हुआ। कार्तिक की एकादशी को यक्ष बन्धन-विमुक्त हुआ और आप ही मेघदूत के यक्ष हैं। अतएव कार्तिक एकादशी जन्मदिवस निर्णीत हुआ

कहाँ जन्म हुआ? कालिदास का उत्तर था—

भारतवासी कविरहमिति पर्याप्तं हि मद्विपये।

आपने मेघदूत में जिस विशाला की सर्वोपरि चर्चा की है, वही जन्मभूमि निर्णीत है।

इतने में ही कोई घोषक आया और उसने कहा कि कालिदास के स्मारक के

विषय में होनेवाली सभा न होगी, न होगी, न होगी। वहाँ जाने का कष्ट न करें। कालिदास उस सभा में जाना चाहते थे। इस घोषणा से उन्हें उदास देखकर नारद ने समझाया कि सभा होगी। घोषणा से क्या होती है?

संस्थाओं के नाम के पहले अयथार्थ ही अखिल विशेषण जोड़कर अखिल-भारतीय-नापित-समिति, अखिलभारतीय महाराष्ट्र-समाज, अखिलभारतीय हरिजनोद्धारक मण्डल आदि नामों का कालिदास के द्वारा परिहास किया गया है। नारद ने समझाया—नाम्नो विचारो न बहुकर्तव्यः।

विश्वविद्यालय में प्रवेशार्थी कालिदास ने समझा कि यहाँ सब कुछ पढ़ाया जाता है। नारद ने पूछा कि क्या मैट्रिक पास हो, क्या फीस देने के लिए पर्याप्त धन राशि है? कालिदास ने कहा कि नहीं। नारद ने कहा कि तब प्रवेश का नाम न लो। घण्टा बजा तो नारद और कालिदास किसी कक्षा में घुस गये। वहाँ सह-शिक्षा के वातावरण में प्रेमालाप में युवक और युवती मग्न थे। अभिभावक से *झूठ बोल कर अपने मित्र युवक के साथ रात में सिनेमा देखने की छुट्टी एक लड़की* ने ली। एक लड़के ने किसी लड़की को पुष्पोपहार दिया। कक्षा में अध्यापन आरम्भ हुआ तो शिक्षक ने अपने विषय में स्वगत कहा—

कवेर्नाम न जानामि सूत्रं व्याकरणस्य न।
नैकः श्लोकोऽपि कण्ठस्थाः किन्तु प्राध्यापकोऽस्म्यहम्॥

कालिदास ने नारद से कहा कि इस विश्वविद्यालय में तो चारों ओर दुष्यन्त और शकुन्तला ही हैं।

तृतीय अंक में नटवर ने सर्वज्ञ भट्टाचार्य से समारोह में प्रवेश के लिए दो निमन्त्रण पत्र माँगे। सर्वज्ञ ने पूछा कि किन सुन्दरियों को देना है। नटवर ने कहा—कुमारियों को नहीं, अपितु अपने को नारद और कालिदास बताने वालों को देना है। सर्वज्ञ ने कहा कि टिकट नहीं बचे। उन दिनों को गेट पर प्रवेश-संयमन के लिए खड़ा कर दो।

कालिदास द्वाररक्षक हुए तो श्लोक बोलने लगे—

यस्मिन्नवन्तिनगरे नृपतेः सभायां यन्नामसंस्मरणतः चकिताः सदस्याः।
तत्रैव तस्य च महोत्सवसुप्रसंगे जातः स एव विधिनानुचराद्विहीनः॥

उस सभा को नवयुवकों ने कोलाहल करके भंग कर दिया। कालिदास ने उस अवसर पर खेद व्यक्त करते हुए कहा—

मज्जन्मभूमौ मम जन्मनो दिने मत्स्मारकार्थं च सभा नियोजिता।
प्रेक्षागृहोद्घाटनहेतवे या द्वे चापि भग्ने कथमेष उत्सवः॥

जिन तरुणों ने यह कार्य किया, उनका तर्क था कि उद्घाटक कालिदास से अपरिचित था, संस्कृत नहीं जानता था, लोगों ने उसके नाम का आरम्भ में ही *विरोध किया था, उर्दू पढ़ा-लिखा था, देवनागरी लिपि जैसे-तैसे पढ़ सकता था।* कालिदास ने भी तरुणों के सभा-विध्वंसन का समर्थन किया। छात्रों को जब यह बात ज्ञात हुई तो वे तथाकथित कालिदास से प्रभावित हुए। उनका प्रयास

चल रहा था कि तरुणविद्यार्थी-वर्य-माहात्म्य स्थापित हो। इसके लिए उन्होंने मालविका का नग्न नृत्य आयोजित किया। नारद प्राश्निक बनाये गये। सूत्रधारिणी ने नारद का वर्णन किया—

यो लोकत्रितये सदैव चलति स्थाल्यां यथा पारदः
यो लग्नः परमेश्वरे भवजले लोकस्य यः पारदः।
यो वर्णेन विराजते भुवि सदा चन्द्रो यथा शारदः
सोऽत्रैवैष विराजते मम पुरः साक्षाद् भवान् नारदः॥

नारद ने कहा कि नर्तकी ज्यों ज्यों अवगुण्ठन फेंकती जायेगी, मैं सुन्दरी का नया नया वर्णन करता चलूंगा। आप लोग विना पलक गिराये देखें।

कालिदास को अगले दिन के कार्यक्रम में व्याख्यान देना पड़ा। नारद को उन्होंने तैयार कर लिया कि व्याख्यान उनसे संवाद-रूप में होगा। कालिदास ने व्याख्यान आरम्भ किया—

लोके ख्याता या विशाला पुरीयं प्राज्ञैः पूर्णा सूरिभिः पण्डितैश्च।
एषामग्रे मादृशो नैवशक्तः किंचिद्वक्तुं मौनमेवाश्रयेऽतः॥

नारद ने देखा कि वेताल फिर डाल पर ही रहा।

कालिदास ने कुछ पते की बातें कहीं। एक तो यह कि कभी कालिदास सर्वश्रेष्ठ कवि था, किन्तु आज ऐसा नहीं है—

अपार एष संसारे स्वाभिमानो वृथा भवेत्।
न ज्ञायते किमासीन् अस्ति किं किं भविष्यति॥

कालिदास महोत्सव कालिदास-महोत्साह रूप में हो—

या या भाषाः सुविज्ञाता अस्माभिः पठिताश्च याः
तासु तासु च भाषासु ये ये सन्ति च सूरयः।
तेषां सन्तुलनं कृत्वा भिन्नेषु विषयेषु च
प्राप्ता ये सन्ति निष्कर्षाः संस्थाप्याः पुरतः सताम्॥

भरतवाक्य कालिदास और नारद ने प्रस्तुत किया—

अग्रेऽग्रे गन्तुमिच्छूनां हितार्थं तन्निरोधिनाम्।
संगतं युववृद्धानामस्तु प्रीतियुतं सदा॥

लेखक ने इस नाटक को अभारतीय बताया है, पर इसमें नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य तथा अर्थोपक्षेपकों में विष्कम्भक और चूलिका आदि भारतीय परम्परानुसारी हैं। परम्परा के विरोध में है कथावस्तु का सर्वथा उत्पाद्य होना, सन्धि और सन्ध्यङ्ग, कार्यावस्था आदि का न होना और हास्य रस का प्रधान होना। प्रथम और द्वितीय अङ्क के बीच में जो विष्कम्भक है, उसमें कालिदास और नारद जैसे प्रधान नायक कोटि के पात्रों को रखा गया है, यह समीचीन नहीं है। इसमें सूच्य के अतिरिक्त दृश्य सामग्री प्रचुरमात्रा में हैं।

सुबोधता और रोचकता की दृष्टि से कालिदास-महोत्साह नाटक सफल कृति है।

अमियनाथ चक्रवर्ती का नाट्य-साहित्य

सूत्रधार ने हरिनामामृत की प्रस्तावना मे अमियनाथ और उनके कृतित्व का वर्णन किया है। यथा,

परिषदः स्वकीयेन सदस्येन परात्मना
दुर्गानाथात्मजेनैव सतीनाथानुजेन च।
श्रीमताभियनाथेन रचितं चक्रवर्तिना
सुबोधसंस्कृतैर्नाट्यं प्रतिवर्षं प्रदर्श्यते ॥

प्रस्तावना मे सूत्रधार ने लेखक की अन्य नाट्यकृतियों की चर्चा की है। धर्मराज्य, सम्भवामि युगे-युगे, श्रीकृष्ण चैतन्य और मेघनाद-वध रूपक लिखे और उन्होने उनका प्रयोग किया। उनकी कन्या डॉ० वाणी भट्टाचार्य विश्वविद्यालय मे अध्यापक हैं। अमियनाथ एम० ए० और काव्यतीर्थ उपाधियों से समलंकृत थे। वे राजकीय महाविद्यालय के अध्यापक थे। उन्होने हुगली-नगरी मे संस्कृत-परिषद् की स्थापना की थी और सरल संस्कृत भाषा मे नाटक का अभिनय प्रचारार्थ कराते थे। उन्होने हुगली में संस्कृत महासम्मेलन कराया था। उनके उज्ज्वल जीवन का अन्त १९७० ईसवी में हुआ।

हरिनामामृत

हरिनामामृत का अभिनय पश्चिमबंग-संस्कृत-नाट्य-परिषद् मे प्रथम बार हुआ था। अमिय उसके संस्थापक सदस्यों मे थे। इसमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुचैतन्य का संसारत्याग-पर्यन्त चरित रूपकायित है।[1] आरम्भ मे नित्यानन्द वृन्दावन मे कृष्ण को ढूंढ़ते हुए नाचते-गाते हैं। ईश्वरपुरी उन्हें बताते हैं कि कृष्ण नवद्वीप मे हैं। नित्यानन्द उन्हें ढूंढ़ने चले। नवद्वीप मे नन्दनाचार्य के घर के सम्मुख वे नाचते-गाते हुए पहुँचते हैं। नन्दन से उन्होने आत्म-परिचय दिया—

पथि पथि परिगच्छन् प्रेमयाच्ञां करोमि।
प्रियजन-सखिभावं दर्शयन् मां गृहाण।
भजन-निरतबन्धो बंगदेशे सुभाग्ये
यदुपतिसुतजन्म प्राप्य धन्योऽसि भक्तः ॥

नन्दन ने कहा—

चरणप्रसादेन धन्यं कुरु मम कुटीरम्।

नित्यानन्द नन्दन के घर मे चले जाते हैं। पश्चात् भैरवानन्द और वक्रेश्वर चिन्ता व्यक्त करते हैं कि इन वैष्णवों के हरे राम से तो हम लोगों के कान फटे जा रहे हैं। सुना है कि कोई यवन भी वैष्णव हो गया है। वह भी हरि-हरि

१. इसका प्रकाशन प्रणव पारिजात के १३ वें वर्ष में हुआ है।

बोल रहा है। हमारे समाज को महाभय उपस्थित हो गया है। नवद्वीप उन्मादपूर्ण हो गया है।

पश्चात् जगन्नाथ और माधव नामक नगरपाल आ गये। उन्होंने भैरवानन्द और वक्रेश्वर से कहा कि तुम शाक्तों की कृपा से हम लोगों को मद्य का अभाव हो गया है। माधव ने उनके प्रीत्यर्थ कहा कि इन कोलाहलकारी वैष्णवों को एक-एक करके मद्य में डुबाकर शाक्त बनाना है।

जगन्नाथ मिश्र के घर पर विश्वम्भर गौराङ्ग की पदसेवा विष्णुप्रिया करती हैं। वे कहती हैं कि जब से आप गया से लौटे, तब से केवल अश्रुविसर्जन करते हैं। क्यों रोते हैं? मैंने क्या अपराध किया? गौराङ्ग ने कहा कि तुमको देखता हूँ तो अपूर्व ज्योतिष्मती मूर्ति सामने आ जाती है। मैं अपने को भूल जाता हूँ। मैं उन्मत्त होकर रोने लगता हूँ। यह सब गया में अद्‌भुत दृश्य देखने के कारण है।

शिष्यों को पढ़ाते समय गौराङ्ग ने उनसे कहा कि जब पाठारम्भ होता है तो मेरे समक्ष परमसुन्दर श्याम शिशु वंशीवादन करते हुए नाचने लगता है। उनके कहने पर भी शिष्यों ने उन्हें छोड़ा नहीं। फिर कीर्तन होने लगा। कीर्तन के पश्चात् गौराङ्ग-गुरु गंगादास आये। उन्होंने कहा कि बहुजन्मनां तपोभिः कश्चिद-ध्यापको भवति। तुम्हें हरिभजन में अधिक तल्लीन होकर अध्यापन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

लोगों ने डरा दिया कि वायुरोग के कारण गौराङ्ग की ऐसी स्थिति है। इसे सुनकर श्रीवास ने कहा इस वायु रोग की कामना तो ब्रह्मादि भी करते हैं। यह वायुरोग नहीं, कृष्णप्रेम है। हरिकीर्तन होने लगा।

काजी ने सुना कि कोई मुसलमान हिन्दू हो गया। कोई वैष्णव अपने को खुदा कहता है। भैरवाननन्द और वक्रेश्वर ने कहा कि राज्यविपर्यय हो गया। वैष्णवों के कारण हम सभी नवद्वीप में भयग्रस्त हैं। काजी के मन्त्री ने दुर्दान्त को आदेश दिया कि वैष्णवों को ध्वस्त कर दो।

मुलुकपति से हरिदास यवन की मुठभेड़ हुई। उसका ही हरि प्रेम सुनकर उसे बेंत लगाये गये। वह मरणासन्न हो गया। उसका शरीर चौराहे पर फेंक दिया गया।

ईश्वर गौराङ्ग को प्रतीत हुआ कि कोई कृष्णभक्त बुरी तरह मारा जा रहा है। खोजने पर हरिदास चौराहे पर उनके कीर्तन-दल को मिले। गौराङ्ग ने उन्हें छाती से लगा लिया। गौराङ्ग के शरीर पर कशाघात के चिह्न थे। कीर्तन-दल को आगे बढ़ने पर नन्दन के घर पर नित्यानन्द गाते हुए मिले—

श्रीराधारमण भक्तजनजीवन जीवगणोद्धारण गौर।
श्रीहरिकीर्तन गतयामिनीदिन आगच्छ प्राणधन गौर॥ इत्यादि

गौराङ्ग को देखते ही नित्यानन्द ने कहा—

अयम् अयमेव स व्रजगोपालकृष्णः।

गौराङ्ग ने कहा—

प्राप्तवान् , प्राप्तवानहं तं महापुरुषम् ।

नित्यानन्द के पैर पर गौराग गिर पड़े और गौराङ्ग के चरणों में नित्यानन्द का सिर था। सबका सम्मिलित गान हुआ—

जय जय सुन्दर पीतवसनधर हे व्रजभूषण वंकिमलोचन
वेणुविनोदन मदन-भूपाल । इत्यादि ।

नित्यानन्द अपना दण्ड और कमण्डलु दूर फेंककर सन्यास-चिह्न से मुक्त हुए।

कीर्तनयात्रा मे चाण्डालद्वय को गौराङ्ग ने अपनाया। उसे छाती से लगा लिया। यह सब वक्केश्वर और भैरवानन्द को सह्य नही था। पर जब वक्केश्वर ने गौराङ्ग के हृदयानन्द की परीक्षा करने के लिए उनकी छाती पर कान लगाया तो स्पर्श मात्र से पुलकित होकर गाने लगा—

भज गौराङ्गं स्मर गौराङ्गम् ।

एक दिन काजी के नौकर दुर्दान्त ने कीर्तन-मृदंग को तोड दिया। सभी काजी के पास पहुँचे।

गौराङ्ग ने अपनी माता शची और पत्नी विष्णुप्रिया से संन्यास लेने की अनुमति माँगी। माता ने अनुमति दी। पत्नी ने भी कहा—तव मंगले मम मंगलम्। सब भक्तो को छोड़ कर सहसा अन्तर्धान होकर गौराङ्ग निकल पड़े। नित्यानन्द ने उन्हें लौटाने की प्रतिज्ञा की। कण्टक नदी के तटपर केशव भारती मिले। वे अवस्था कम होने के कारण पहले दीक्षा नही दे रहे थे, पर पीछे संन्यास-दीक्षा दी। उन्होने उनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य रख दिया। वे गया पहुँचे। उन्हें ढूंढते हुए श्रेष्ठ भक्तो के साथ नित्यानन्द वहाँ पहुँचे। जगन्नाथ देव का आलिंगन करते हुए चैतन्य मृतप्राय हो गये थे। उन्हें राजपण्डित वासुदेव सार्वभौम के पास पहुँचा दिया गया।

सार्वभौम ने कहा कि इस अल्पावस्था मे आपका सन्यास लेना उचित नहीं है। चैतन्य ने कहा कि मैं अबोध हूँ। कृष्णोन्माद से ऐसा कर लिया। आप मुझे सत्पथ बतायें। सार्वभौम ने कहा कि ज्ञानमार्गी आपको बनाऊँगा। प्रतिदिन मुझसे वेद सुनें।

आठ दिन तक वेद-श्रवण सर्वथा मौन रहकर चैतन्य ने किया। सार्वभौम ने पूछा कि मौन क्यो रहते है। चैतन्य ने कहा कि आपका आदेश वेद सुनने का था। वह सुन लिया। आप की वेदव्याख्या मेरे पल्ले नही पडती। शकर ने जो वेदव्याख्या की, उसके अनुसार मैं ही वह हूँ और वह ही मैं हूँ। मेरी समझ मे तो सत्य यह है कि मैं उसका हूँ, वह मेरा है। आप शकर के अनुसार व्याख्या करते हैं। इससे मेरा मन व्याकुल है। मेरी दृष्टि मे भक्ति ज्ञान से बढ कर है।

सार्वभौम ने चमत्कार देखा—सहसा धनुर्धर राम, गोपालकृष्ण और नवद्वीपावतार गौराङ्ग प्रकट हुए। उन्होने मान लिया कि चैतन्य वस्तुतः अवतार हैं। सार्वभौम उनके शिष्य बन गये और नृत्य करते हुए हरे राम करने लगे।

नित्यानन्द ने चैतन्य को बहका कर नवद्वीप ला दिया, जब वे समझते थे कि वृन्दावन जा रहा हूँ। गंगा मार्ग में मिली तो उसे यमुना बता दिया। चैतन्य प्रसन्न तो हुए किन्तु शीघ्र ही उन्होंने समझ लिया कि यह गंगा है। वे कुछ उद्विग्न हुए। कुछ दिनों में नवद्वीप अपने घर के समीप शान्तिपुर पहुँचे। शान्तिपुर में उनकी माता उनसे मिलीं। माता ने पहले तो कहा कि संन्यास छोड़ कर घर चलो। फिर सोचकर कहा—ऐसा करने से तुम्हारा धर्म नष्ट होगा। माता ने उन्हें नीलाचल जाकर रहने की अनुमति दे दी। मार्ग में एक धोबी कपड़े धो रहा था। गौराङ्ग ने उससे कहा—बोलो हरिनाम। धोबी ने कहा—ठाकुर, तुमको कोई काम नहीं। मैं कपड़े धोऊँ या हरि नाम लूँ। गौराङ्ग ने कहा कि यदि तुम हरि नाम और वस्त्र-प्रक्षालन दोनों नहीं कर सकते तो लाओ, मैं कपड़े धोता हूँ और तुम हरिनाम लो। धोबी ने कहा कि मैं हरिनाम लेकर उन्मत्त हो जाऊँगा तो तुम कपड़े लेकर चलते बनोगे। समझाने-बुझाने पर वह हरिहरि कहने लगा। वह नाचने-गाने लगा। तब तक धोबिन उसका खाद्य लेकर आई। उसने पूछा कि यह नाचना-गाना कब सीखा। तब तो उस धोबी ने गाँव के अनेक जनों से हरिहरि कहला कर उन्हें उन्मत्त बना दिया। सभी नाचने-गाने लगे। धोबिन यह सब देखकर दंग रह गई।

शिल्प

नाट्य-निर्देश और रंग-निर्देश दृश्यों के आरम्भ में पर्याप्त लम्बे हैं। बीच-बीच में भी उनका समावेशः बहुधा अधिक स्थलों पर है। आङ्गिक अभिनयों की बहुलता नाट्य निर्देशों में है। यथा,

रसनां दन्तैश्छित्त्वा, साश्चर्यं कर्णौ स्पृष्ट्वा च। क्रन्दति आवेगेन। हुङ्कारैः लम्फति आनन्देन, नाट्येनापसारयति, अपसारणकाले आवेगेन कर्म करोति, अपसार्य पश्यति न तु दृश्यते शून्यसिंहासने श्रीकृष्णो राधिकापि वा।

सूत्रधार के शब्दों में इस नाटक की शैली है—

नाटकमिदं सरलं सुबोधं मनोरमं च। जनगणसमक्षं नाटकमाध्यमेन अतिसरलसंस्कृत-प्रचारार्थं पश्चिमवङ्गसंस्कृतनाट्यपरिषद् इति नूतनप्रतिष्ठानमस्माभिरधुना प्रतिष्ठितम्।

अमिय के संवादों में चटुलता है। कहीं-कहीं वे अपनी भावोचित शब्दावली मात्र से हास्य-सर्जन करते हैं। यथा,

वक्केश्वर—जानामि। नैयायिका घटपट-वटपटान् इति कच-कचायन्ते। यवनराजपुरुषा अधऊर्ध्वं च देहान् नमयन्त उत्तोलयन्तश्च मुर्ब्बविड्-विडायन्ते।

कीर्तन के साथ ही इस नाटक में नृत्य और गीत की प्रचुरता होने से इसका अभिनय विशेष रुचिकर है। हास्य-सर्जन में अमिय को नैपुण्य प्राप्त है। धोबी

से हरिनाम कीर्तन कराने का प्रसग शिष्ट हास्य का आदर्श है और स्वाभाविक है। इसी प्रकार नरसुन्दर नाई का मुण्डन-प्रकरण हास्योत्पादन के लिए उपयुक्त है।

अङ्को का विभाजन दृश्यो मे हुआ है। प्रथम अङ्क मे ६ दृश्य हैं। नाटक दो भागों में है। प्रथम भाग तृतीय अङ्क तक चलता है।

नाटक को लोकरंजक बनाने के लिए तनाव का वातावरण उपस्थित किया गया है। युवको ने दुराग्रह किया कि केशवभारती गौराग को संन्यास-दीक्षा न दें। वे बारंबार लाठी तानते थे कि यदि आप नही मानते तो लाठी के प्रयोग से मानना ही पड़ेगा।

धर्मराज्य

महाभारत से कथा लेकर अमियनाथ चक्रवर्ती ने धर्मराज्य की रचना की।[1] *इसका अभिनय लेखक के द्वारा स्थापित पश्चिम बंगाल की संस्कृत-नाट्य-परिषद् के* द्वारा किया गया था।

कथावस्तु

धर्मराज ने इन्द्रप्रस्थ मे सभागृह बनवाया। उसमे भाइयो के सहित विराजमान धर्मराज को उनसे ज्ञात होता है कि प्रजा सर्वविध सुख-सम्पन्न है। नारद स्वर्ग से आये और उनसे कहा कि आपके पिता पाण्डु की इच्छा है कि आप राजसूय यज्ञ करें। पाण्डव राजसूय की कल्पना पर विचार कर ही रहे थे कि श्रीकृष्ण आ गये।

उन्हें नारद से यह चर्चा विदित हो चुकी थी। उन्होने कहा कि एक लाख राजा इसके लिए समर्थक होने चाहिए। १६००० राजाओं को जरासन्ध ने बन्दी बनाया है। उसे मारकर इनको वश मे किया जाय। जरासन्ध से युद्ध का विरोध केवल धर्मराज ने किया। सबका समर्थन देखकर उन्होने भी कह दिया—यद् भवते रोचते।

दिग्विजय कर लेने के पश्चात् राजसूय का समारम्भ हुआ। भीष्म ने सबको कार्य बाँटा और दुर्योधन को भाण्डाराधिकार तथा दुःशासन को खाद्यभण्डाराधिकार सौंप दिया। दुर्योधन को यह अच्छा नही लगा। फिर कृष्ण को युधिष्ठिर ने अर्घ्यदान दिया। शिशुपाल को यह अनुचित प्रतीत हुआ। उसने कृष्ण की निन्दा की। सभी गुरुजनो ने उसे समझाया कि तुम्हारा ऐसा सोचना ठीक नहीं। भीम उस पर बिगड़े और कहा कि तुम्हें अभी ध्वस्त करता हूँ। बात बढती गई। शिशुपाल ने कहा—

आत्मानं रक्ष निर्लज्ज विज्ञवाक्यं परित्यज।
अनेनास्त्रेण छिन्दामि शिरस्ते देहमध्यतः॥

---

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद्-पत्रिका के ५२.६ से ५५.४ तक पूरा हुआ है।

तब तो कृष्ण ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया। उसने आज्ञानुसार शिशुपाल को दिवंगत बना दिया। यज्ञ समाप्त हुआ।

पाण्डवों का ऐश्वर्य दुर्योधन के लिए असह्य था। उसने शकुनि और कर्ण से मन्त्रणा की कि हमें विभ्रान्त करने के लिए युधिष्ठिर ने ऐन्द्रजालिक स्फटिक गृह बनवाया था। मैं स्फटिक चत्वर को जलाशय समझकर जब अपना वस्त्र ऊपर करने लगा तो पाण्डव उल्लास से हँसे। अब तो इसका बदला लेना है। मैं तो लज्जा से आत्महत्या कर लेना चाहता हूँ। युद्ध में हम उन्हें नहीं जीत सकते। शकुनि ने कहा कि उपाय है द्यूत-क्रीडा। धृतराष्ट्र को सहमत कराने के लिए दुर्योधन चल पड़ा। उनके पैर पर सिर रख कर रोते हुए उसने अपनी मनोव्यथा कही कि पाण्डव हम लोगों का अनादर करते हैं। उनको द्यूत में जीतना है। धृतराष्ट्र के सहमति न देने पर दुर्योधन ने आत्महत्या की धमकी दी। शकुनि ने कहा कि आप द्यूत के लिए सहमति दे दें। उसी समय विदुर आ गये। उन्होंने द्यूत की भूरिशः निन्दा करके कहा कि इससे कौरव वंश का सर्वनाश हो जायेगा। गान्धारी ने भी दुर्योधन को समझाया। अन्त में धृतराष्ट्र ने द्यूत के लिए स्वकृति दे दी।

दुर्योधन के हस्तिनापुर के राज्य में प्रजा सताई जा रही थी। लोग भाग कर पाण्डवों के धर्मराज्य इन्द्रप्रस्थ में पहुँच रहे थे। सभी के सिर पर अपनी वस्तुओं का बोझ लदा था। तभी कोई पथिक उनके पीछे आ पहुँचा। अष्टावक्र अपनी पत्नी छिन्नमस्ता, पुत्र शूलपाणि और शिष्य पीताम्बर के साथ धीरे-धीरे भगे जा रहे थे। बुढ़िया छिन्नमस्ता से चला नहीं जा रहा था। उस पथिक को दुर्योधन या दुःशासन समझ कर वे सभी प्रायः निष्प्राण से हो गये।

द्यूत में द्रौपदी को भी हार कर पाण्डव असहाय हुए। दुःशासन ने द्रौपदी का केश पकड़ कर दुर्योधन के पास पहुँचाया। द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की कि जब तक दुःशासन के रक्त से केश न धोये जायेंगे, तब तक उनको नहीं सँवारूँगी। दुर्योधन ने संकेत किया कि मेरी बांई जांघ पर बैठो। यह देखकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि युद्ध में तुम्हारी इस टाँग को तोड़ूँगा, तभी शान्ति मिलेगी।

केवल विकर्ण ने ललकार कर कहा कि द्रौपदी के प्रति यह अत्याचार हो रहा है। उसने अन्य गुरुजनों को सम्बोधित किया कि आप लोग चुप क्यों हैं। इस अन्याय को कैसे सहते हैं ?

द्रौपदी के गहने उतार लिये गये। उसके वस्त्र उतार कर दासीवस्त्र पहनाने की योजना दुःशासन ने कार्यान्वित करनी चाही। वहाँ गान्धारी आ गई। उसने द्रौपदी को छाती से लगा कर बचाया और दुःशासन को अलग किया। उसने युधिष्ठिर, भीम, कृष्ण आदि को फटकारा कि धिक्कार है धर्मराज्य के प्रतिष्ठापक तुम लोगों को कि तुम अबला नारी का अपमान देख रहे हो। यही तुम्हारी अहिंसा है। उसने धृतराष्ट्र को फटकारा कि तुम केवल आँख के ही अन्धे नहीं हो, स्नेह से भी अन्धे हो। इस दुर्योधन ने मेरे गर्भ को कलंकित किया है। इस राज्य का शीघ्र विनाश होगा।

विवस्त्र की जाती हुई द्रौपदी ने कृष्ण का स्मरण किया। ज्योतिर्मय रूप से आकर कृष्ण ने ज्योति विस्तारित की। धृतराष्ट्र ने आदेश दिया—द्यूत से उत्पन्न सभी विषमताओ को मैं निरस्त करता हूँ। दुर्योधन की सारी योजना व्यर्थ गई।

दुर्योधन यहीं से रुकने वाला नहीं था। उसने धृतराष्ट्र को पुन. बाध्य करके पाण्डवो को द्यूत के लिए आने का आदेश दिया। पण था कि १२ वर्ष तक पराजित पक्ष वनवास करे। गान्धारी और विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा कि आत्म-विनाश का बीज आपने फिर बो दिया। आप सबकी रक्षा के लिए दुर्योधन को मरवा दें। यदि द्यूत को आप रोकते नही तो सबका सर्वनाश होगा। एक दुर्योधन मरे तो शेष सभी बचें। विदुर ने समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने अपने को असमर्थ बताया।

दूसरी बार द्यूत हुआ। शकुनि जीता। धर्मराज हारे। द्रौपदी के साथ वल्कलवस्त्र पहन कर सभी पाण्डव वन की ओर चले। नारद बीच में मिले। उन्होने कहा कि युधिष्ठिर का धर्मराज्य पाँच गाँवो तक सीमित रहे—यह कहाँ तक समीचीन है? अब तो सारे भारत मे धर्मराज्य होकर रहेगा—मेरी यही योजना है। पाण्डव वन मे तपस्वी का जीवन बिताते हुए शक्ति-संचय करेंगे। इधर दुर्योधन अपनी दुर्नीति से सारी प्रजा को शत्रु बना लेगा।

ऐसी स्थिति मे कौरवों का अधर्मराज्य समाप्त होगा और सारे भारत में धर्मराज्य होगा।



अध्याय १२६

बीसवीं शती के अन्य नाटक

गणेश-परिणय

गणेश-परिणय के प्रणेता वाराणसी के विद्वान् वैद्यनाथ शर्मा व्यास हैं।[1] व्यास वारणसी के प्रसिद्ध, पण्डित घरानों में से हैं। इनके गुरु आन्ध्र-पण्डि रामशास्त्री थे। वैद्यनाथ बालावस्था से कविकर्म में निपुण थे। अतएव इन्हें बालकवि की उपधि दी गई थी।

वैद्यनाथ ने गणेशसम्भव नामक काव्य की रचना १९०२ ई० में की थी। उनकी यह रचना विशेष लोकप्रिय हुई। इससे उनका साहस बढ़ा और उन्होंने पहली रूपक-रचना की—गणेश-परिणय। इस नाटक पर मिथिला-राजवंश के जनेश्वर सिंह ने १०० रुपये का पुरस्कार दिया था।

सूत्रधार के शब्दों में—

तेन मिथिलाभूमिभूषणायमान् श्रीजनेश्वरसिंहमदोदय-प्रोत्साहितेन साम्प्रतमेव विरचितमिदं नाटकम्।

कवि ने सविनय कहा है—

द्राक्षामाधुर्यधिक्कारपटुकाव्यातिभोजने।
रसान्तराय-लेह्यत्वं लभतां मामिका कृतिः॥

इसमें ब्रह्मा की कन्या सिद्धि और बुद्धि का गणेश से विवाह वर्णित है। वे नारद को शिव के पास गणेश से उनके विवाह का प्रस्ताव लेकर भेजते हैं। इधर शिव और पार्वती गणेश की युवावस्था देखकर उनके लिए वहू की चिन्ता में निमग्न थे। नारद के प्रस्ताव को शिव ने स्वीकार किया। शिव ने विवाह की सज्जा आरम्भ कर दी।

एक दिन गणेश का दूत नन्दी सिन्धुराज के पास आया और सन्देश दिया कि आप कारागार से इन्द्रादि देवताओं को मुक्त करें। सिन्धुराज को क्रोध आया। उसने गणेश को खोटी-खरी सुनाई। बस, नन्दी युद्ध के वातावरण का निर्माण करने के लिये कैलास लौट गया। नन्दी के समाचार देने पर गणेश ने सेना-सन्नाह करवाया।

इधर सिन्धुराज की पत्नी उससे मिली। उसने युद्ध की व्यर्थता बताई। सिन्धुराज माना नहीं। इस बीच गणेश के योद्धाओं ने सिन्धुराज का कारागार तोड़ कर देवताओं को मुक्त किया। सिन्धुराज पराजित हुआ।

---

१. इसका प्रकाशन १९०४ ई० में इण्डियन प्रेस प्रयाग से हुआ। इसकी प्रति प्रयाग-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है। सूर्योदय-पत्रिका में इसका प्रकाशन १९६३ से १९६४ ई० तक के अङ्कों में हुआ।

गणेश के विवाह मे मुक्तदेव सम्मिलित हुए। विवाह हो गया। यह नाटक सात अङ्कों में निष्पन्न है।

पुष्पसेन-तनय-राज्याधिरोहण

पुष्पसेनतनय-राज्याधिरोहण के प्रणेता जोशी गोविन्द कवि हैं।[1] गोविन्द के पिता गुराचार्य थे। गोविन्द वैष्णव भक्त थे। उन्होने पुष्पाञ्जलि नामक वैष्णव स्तोत्र की रचना पहले की थी। प्रस्तुत नाटक लेखक के शब्दों में तत्त्वज्ञानप्राप्ति अथवा भक्ति के उत्पादन के लिए है।

पुष्पावती के राजा पुष्पसेन वीर अमरेश्वर को जीतने के लिए आक्रमण करता है। उनकी रानी चिन्ता करती है कि राजा विजयी होकर लौटेंगे कि नही? पुष्पसेन की सैकड़ों पत्नियों से कोई पुत्र न था। युद्ध मे अमरेश्वर पराजित होकर पुष्पसेन की शरण मे आया। पुष्पसेन ने उसे मुक्त कर दिया। राजा के गुरु सुधन्वा ने उसे बताया कि दरिद्र ब्राह्मणों की सेवा से पुत्र होगा। ऐसा करने पर उसे पुत्रवान् होने का आशीर्वाद मिला। इसके लिए उसने नीलसेन की कन्या बालावती से गान्धर्व विवाह किया। पर शीघ्र ही मर गया दुष्टबुद्धि नामक सचिव पर नीलसेन की गर्भवती कन्यादि के पालन का काम आ पड़ा। वह स्वयं राजा बनना चाहता था। बालावती अमरेश्वर की शरण मे गई। अमरेश्वर ने उसे दुष्टबुद्धि को सौंप दिया। मार्ग मे वह उसे मारना चाहता था, पर सेनापति ने उसे ऐसा करने से रोका। बालावती को मरा पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु सुधन्वा के हाथ मे जीवित हो उठा। उसने दुष्ट सचिव को मार कर शासन किया।

इस नाटक में घटना-चक्र प्रखर गति से चलता है। एक ही अंक मे अनेक स्थानों और कालों की घटनायें संकलित है। नाटकीय सविधान की दृष्टि से यह नेपाली कवि शक्तिवल्लभ के जयरत्नाकर के समान पड़ता है। इसके कथा-प्रवाह में सन्धि; सन्ध्यग, अर्थप्रकृति और कार्यावस्थादि की कोई योजना नही है।

इसमे कवि ने वृत्तरत्नाकर के सभी छन्दों मे बद्ध श्लोक समाविष्ट किये हैं। लेखक ने इसमे प्राकृत भाषा का प्रयोग नही किया है। पूरा नाटक संस्कृत में है।

वसन्तमित्रभाण

वसन्तमित्रभाण के रचयिता मङ्गलगिरि कृष्ण द्वैपायनाचार्य बीसवी शती के प्रथम चरण मे थे।[2] उन्होने संस्कृत और तेलुगु मे अनेक रचनायें की हैं। उनका नाटक श्रीकृष्ण दानामृत हैं। उनका श्रीकृष्णचरित काव्य है और स्तुति-परक हयग्रीवाष्टक है। उनकी तेलुगु की रचनायें है—राका-परिणय या भीमसेन-विजय नामक नाटक, एकावली और पार्वतीपति-शतक।

---

१. इसका प्रकाशन १९०५ ई० मे पूना से हुआ था। इसकी प्रति गुरुकुल कांगडी के पुस्तकालय में है।

२. इस भाण का प्रकाशन विजयनगरम् से हो चुका है।

कवि के पिता कौशिकगोत्रीय वेङ्कटरमणार्य थे। उनका मूलनिवास आन्ध्र प्रदेश में विशाखापट्टन जिले में विजयनगरम् था। इनकी काव्य-प्रतिभा से मैसूरराज्य आलोकित हुआ था।

इस भाण में कवि ने अपने नगर को दृश्यस्थली बनाया है। मंगलगिरि[1] के स्वामी नृसिंह के मन्दिर की देवदासी माधवी की छोटी बहिन का वेश्या-वृत्ति में दीक्षित होने के उत्सव में विट सम्मिलित होने के लिए अनेक वीथियों और वारपथों से घूमता हुआ नरनारियों से शृङ्गारात्मक चर्चायें करता चलता है।

इस भाण में पूर्ववर्ती भाणों के शृंगारात्मक सामान्य वृत्तों के अतिरिक्त विशेष है काञ्ची के गारुडोत्सव का वर्णन, जिसे विट के मित्र ने उसे सुनाया है। इसमें देवदासियों का परिचय दिया गया है। वे नृत्य, संगीत और काव्य-साहित्य में प्रवीण होती थीं। नर्तकियों की चर्चा है, जो अपने कलाविलास के प्रदर्शन से धन अर्जित करती थीं और विटों की कामपिपासा की परितृप्ति का साधन भी थीं। महानगर की वारवधुओं का दर्शन करने के लिए मनचले लोग दूर-दूर से आ जाते थे। ऐसी कलाविलासिनी अपवाद-रूप से ही शरीर-विक्रय करती थी।

कुट्टनियों के द्वारा प्रचारित वेश्यायें मनचले विटों से धन-दोहन करके अपना व्यवसाय करती थीं। कुट्टनियाँ झगड़ा-झंझट करके भी विटों से सौदा पटाती थीं।

कभी गृहपत्नी रही हुई रमणियाँ विषम परिस्थितियों में पड़कर वेश्या-वृत्ति अपना लेती हैं। कोकिलवाणी का विवाह पाँच वर्ष की अवस्था में उसकी माँ ने १२०० रुपये लेकर ८८ वर्ष के बुड्ढे से करा दिया था। विवाह के बाद कोकिल-वाणी ने कलाविलास की दिशा में उच्च कोटि की शिक्षा ली। तेरह वर्ष की अवस्था में जब वह ९४ वर्ष के पति के गृह में पहुँची तो एक दिन उसकी सखी सुन्दरी उसको विषम स्थिति से उबारने के लिए मिली। मरने के लिए उद्यत कोकिलवाणी को सुन्दरी ने वारपथ दिखाया। कोकिलवाणी वाराङ्गना बन गई।

पतियों के दुर्व्यवहार से परित्रस्त अनेक रमणियाँ वारपथ पर चलती थीं। वसन्तसुकुमारा पहले तो प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल की पत्नी थी। वह पतिगृह की ऐश्वर्यशालिनी लक्ष्मी बन कर आई। उसका पति अपनी पत्नी की उपेक्षा करके वेश्याओं की संगति में कामाग्नि में अपना सर्वस्व होम करने लगा। वसन्तसुकुमारा ने यह सब देखकर अपने को वसन्ततिलका नाम से वेश्याओं की गली में प्रतिष्ठित किया। एक दिन अपने पति को नशे में चूर करके उसने उनसे १० लाख रुपयों की सारी सम्पत्ति ले ली।

कवि ने विधवा-विवाह पर व्यंग्य किया है। वृद्धों से सुकुमारियों का विवाह वेश्यालय की संख्या बढाने के लिए है—यह उदाहरणों से सिद्ध किया गया है। चरित्रभ्रष्ट विधवायें ही पुनर्विवाह के लिए सहमत होती हैं। यदि विधवा विवाहित होकर गृहस्थ बने तो उनका पतन न हो। वे सुखी हो सकती हैं।

---

१. यह नगर आन्ध्र में कृष्णा जिले में विजयवाडा के समीप है।

इस भाण में ईश्वरवल्ली नामक मादक द्रव्य की चर्चा की गई है, जिसके बहुविध उपयोगों से लोग आत्म-विस्मृति का आनन्द लेते थे।

भाण की भाषा में पात्रोचित शब्दावली है। सँपेरे की भाषा में हिन्दी के शब्द हैं और अंगरेज महिला की वाक्यावली अंगरेजी के शब्दों से मण्डित है।

कुक्कुट-युद्ध और मेष-युद्ध की लोकप्रियता तेलुगु प्रदेश में है। इनका सविस्तर वर्णन लोकरुचि-संवर्धन के लिए है। अनेक प्रदेशों की युवतियों की वेश-भूषा का परिचय इस कृति से प्राप्त होता है।

भाण का नाम वसन्तमित्र काम के साक्षी होने की घटना से सम्बद्ध है।[1]

वेङ्कटरमणार्य के नाटक

कमला-विजयनाटक और जीवसंजीवनी नाटक वेङ्कटरमणार्य के द्वारा प्रणीत हैं। वे मैसूर की संस्कृतशाला में उपदेष्टा पद से विश्रान्त हुए। उनका निवास-स्थान चेन्नराय नामक नगरी थी। वे राजा के द्वारा सम्मानित थे। वेङ्कटरमणार्य ने बहुविध संस्कृत-काव्यों की रचना की थी। उन्होंने कमलाविजय नामक नाटक की रचना १९०९ ई० में की।[2] यह आल्फ्रेड टेनिसन के Cup (तीर्थपात्र) नामक दो अंकों के रूपक का संस्कृत भाषा में परिष्कृत रूप है। इसमें कवि ने अपनी ओर से अभिनव संविधानों का संयोजन करके इसका भारतीयकरण किया है। उस समय रमणार्य बंगलौर में चामराजेन्द्र संस्कृत-महापाठशाला में अध्यक्ष थे। इसके पश्चात् वे मैसूर की संस्कृत-पाठशालों के निरीक्षक हो गये थे।

प्रयागविश्वविद्यालय के कुलपति म० म० गंगानाथ झा ने रमणार्य के विषय में कहा है—[3]

It is a great consolation to find among us such writers of Sanskrit. His poems bear true mark of the true poet and bear testimony to his wonderfull command over the language and its niceties.

रमणार्य की अन्य रचनायें हैं—स्तुतिकुसुमाञ्जलि, सर्वसमवृत्तप्रभाव, हरिश्चन्द्रकाव्य आदि।

जीवसंजीवनी नाटक में लेखक ने वेद और शास्त्रों में बताये हुए आयुर्वेद के तत्त्वों को समाविष्ट किया है। इसके कथानायक जीवदेव जीव हैं, जो सभी प्राणियों में है।[4]

संजीवनीलता उत्तम औषधि है। जीव की रक्षा के लिए शास्त्रानुसार उसका उपयोग होना है।

---

१. इस भाण का विस्तृत परिचय १९७४ वर्ष के The Mysore Orientalist में प्रकाशित है।

२. इसको १९३८ ई० में लेखक ने स्वयं प्रकाशित किया।

३. कमलाविजयनाटक में छपी सम्मति से।

४. लेखक ने अपने व्यय से १९४५ ई० में इसका प्रकाशन किया।

मुकुटाभिषेक

मुकुटाभिषेक के लेखक श्वेतरण्य नारायण दीक्षित मद्रास के संस्कृत-महाविद्यालय में प्रधानाध्यापक थे।[1] वे मूलतः कांची के निवासी थे। उसे छोड़कर कावेरी के तट पर तंजौर में श्वेतरण्य में वे आ बसे थे। उन्होंने काशी में बालुशास्त्री और विश्वनाथ नाथ शास्त्री से शिक्षा पाई और वेदों में परं पाण्डित्य प्राप्त किया। आगे चलकर स्वयं सोमयज्ञ निष्पन्न किया। दीक्षित ने अनेक काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन किया। उन्होंने सात कथाओं को गद्य में निबद्ध किया था, जिनमें हरिश्चन्द्रादि कथानायक थे। कवि ने कुमारशतक और नक्षत्र-मालिका आदि पद्यात्मक काव्य लिखे।

मुकुटाभिषेक में जार्जपंचम के पाँच अङ्कों में दिल्ली में अभिषिक्त होने की कथा है।

दीक्षित ने अंगरेजी शब्दों का भारतीकरण किया है। यथा तिसा (Thames) वाष्पनौका (Steamer), अकुबर (Akbar), अधिशासक (Viceroy)।

नलविजय

नलविजय के प्रणेता रामशास्त्री कर्नाटक में चिरकाल से विद्वानों के द्वारा सुशोभित मण्डिकल नामक नगर के निवासी थे।[2] इसी नगर के नाम पर इनका नाम मण्डिकल रामशास्त्री है। इनके पिता वेङ्कट सुब्बार्य सुधीमणि श्रोत्रिय-ब्रह्मवादी थे। राम ने बालावस्था में ही मैसूर नगर में आकर सोलह वर्ष की अवस्था तक वेद पढ़ा और ३० वर्ष की अवस्था तक तर्क, व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन करके अद्वैत-वेदान्त में विशेषज्ञता प्राप्त की। वे महाराज कृष्णराज के सभापण्डित थे। महाराज ने इन्हें महद् विद्वत् पद पर प्रतिष्ठित किया था और इनके लिए गृहाराम और अग्रहार दिये थे। राम महाराज-कालेज-महापाठशाला में संस्कृत-प्रथमोपाध्याय पद पर नियुक्त थे।

राम ने नलविजय नाटक की रचना वृद्धावस्था में की। इसके पूर्व उन्होंने आर्यधर्म प्रकाशिका आदि ग्रन्थों को लिखा था। नलविजय का प्रथम अभिनय कपिलातीर पर स्थित श्रीकण्ठेश्वर की यात्रा समाप्त करके आये हुए महाजनों के प्रीत्यर्थ हुआ था। उस समय नवरात्र-महोत्सव आस्थान-मण्डप में आयोजित हुआ था। महाराज कृष्णराज के आस्थान-प्रमुख और महाराज के मामा कान्तराज ने नाटक के अभिनय के लिए आदेश दिया था।

---

१. इसका प्रकाशन १९१२ ई० में मद्रास से हुआ। इसकी प्रति रामनगर-महाराज के पुस्तकालय में है।

२. इसका प्रकाशन १९१४ ई० मैसूर से हुआ था। इसकी प्रति प्रयाग-विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय में है। लेखक ने स्वयं इसकी विज्ञापना लिखी है।

नलविजय परम्परानुसारी नाटक है। लेखक ने स्वयं अपनी परम्परा-भक्ति की चर्चा की है। लेखक के शब्दों में—

'नाटकेऽस्मिन् तत्रतत्र संवाद-मुद्रया, निदर्शन-मुद्रया, निषेधमुद्रया, प्रशंसनादिमुद्रया च भावक-भावानुभाव्यास्ते ते रसभावादयः तास्ता नीतयश्च प्राकाशिषत।'

दस अङ्कों के इस रूपक को महानाटक भी कहते हैं। इसका प्रसिद्ध नाम भैमी-परिणय है। इसमें नलदमयन्ती के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन की सुप्रसिद्ध कथा सरस ढंग से प्रस्तुत की गई है।

वल्लीपरिणय

वल्लीपरिणय की रचना टी० ए० विश्वनाथ ने की।[1] इस नाटक के पाँच अङ्कों में किरातराज की कन्या वल्ली से कार्तिकेय के परिणय की सुपरिचित कथा है। अङ्कों का विभाजन अनेक दृश्यों में हुआ है। इसमें प्राकृतों का उपयोग सवादों में भारतीय नियमानुसार हुआ है।

वेङ्कटकृष्ण तम्पी का नाट्यसाहित्य

केरल के वेङ्कटकृष्ण तम्पी का जीवनकाल १८६० से १९३८ ई० है। उन्होंने बी० ए० तक शिक्षा पाई। वे त्रिवेन्द्रम् के संस्कृत कालेज में अध्यापक और प्राचार्य हो गये। उन्होंने श्रीरामकृष्ण-चरित की रचना की। मलयालम भाषा में भी उन्होंने कतिपय ग्रन्थों की रचना की। संस्कृत में तम्पीने चार रूपक लिखे। ललिता, प्रतिक्रिया, वनज्योत्स्ना तथा धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः।[2] इनमें राजपूत-इस्लामी युग के कथानक हैं और आधुनिक योरपीय शैली का पदे-पदे अनुसरण किया गया है। किसी रूपक में प्रस्तावना और भरतवाक्य नहीं है। जैसे वनज्योत्स्ना अंक तीन भाग प्रातः, सायम् तथा नक्तम् में यवनिकापात द्वारा विभक्त है। धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः तीन अंकों में विभक्त है। कवि ने द्वितीय अङ्क शीर्षक के पूर्व अथ द्वितीयाङ्कस्य विष्कम्भः देकर अर्थोपक्षेपक और अंक की शास्त्रीय मर्यादा का बोध प्रकट किया है, जो परवर्ती और पूर्ववर्ती प्रकाशित नाटकों में विरल है। विष्कम्भक भारतीय परम्परानुसार है। इससे प्रकट होता है कि लेखक ने भारतीय और योरपीय दोनों परम्पराओं को सम्मिश्रित किया है।

दुर्गाभ्युदय

दुर्गाभ्युदय[3] नामक सात अङ्कों के नाटक के प्रणेता छज्जूराम शास्त्री का जन्म

---

१. इसका प्रकाशन १९२१ ई० में कुम्भकोनम् से हुआ है।

२. इनका प्रकाशन १९२४ ई० में हुआ। इनकी प्रति प्रयाग-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

३. इसका प्रकाशन १९३१ ई० में लेखक ने स्वयं किया था।

१८६५ में कुरुक्षेत्र-प्रदेश में करनाल जनपद में शेखपुर-लोवला में हुआ था। उनके पिता मोक्षराम थे। कर्मकाण्ड-प्रवण कुटुम्ब में छज्जूराम के व्यक्तित्व का विकास पौराणिक आदर्शों के अनुरूप हुआ। अनेक स्थानों पर संस्कृत का अध्यापन करते हुए शास्त्री जी दिल्ली से सम्बद्ध हुए और यमुनातटवर्ती गौरीशंकर-मन्दिर विद्यालय में अध्यापन करते हुए उन्होंने इस नाटक की रचना की। भागवती कथा का प्रवचन वे मन लगाकर करते थे।

छज्जूराम संस्कृत के उन्नायकों में से रहे हैं।[1] उनका ग्रन्थ संस्कृत-साहित्योपाख्यान संस्कृत-पण्डितों को पुरातत्त्व का ज्ञान कराने के लिए है। उन्होंने साहित्यशास्त्रीय मर्म का उद्घाटन करने के लिए साहित्य-बिन्दु लिखा। इनका सुलतान-चरित अच्छा महाकाव्य है।

शास्त्री जी आशुकवि थे और इसी निपुणता के कारण इन्हें कविरत्न की उपाधि से विभूषित किया गया था। भारतीय संस्कृति की प्रतिमूर्ति शास्त्री जी का अप्रतिम सत्कार लोगों के बीच था। विद्वानों के बीच वे बहुविध सम्मानित थे। अपने षड्दर्शन-विषयक भाषण से उन्होंने जगद्गुरु शंकराचार्य का मन मोहकर २५ वर्ष की अवस्था में उनसे विद्यासागर की उपाधि पाई। छज्जू की शक्ति शास्त्रार्थों में अक्षीण थी।

दुर्गाभ्युदय नाटक कवि की अभीष्टतम देवी दुर्गा की सर्वोत्कर्षातिशायिनी शक्तियों का काव्यात्मक निदर्शन करने के लिए लिखा गया है। इसमें दुर्गासप्तशती में वर्णित चरित प्रेक्षणीय बनाने में कवि को सफलता मिली है।

सहस्रबुद्धे के नाटक

धारवाड के सहस्रबुद्धे ने अब्दुलमर्दन नाटक और प्रतीकार नाटक की रचना की। इन दोनों नाटकों में छत्रपति शिवाजी की उपलब्धियों का वर्णन है।

इनकी रचना १९३३ ई० के लगभग हुई।

कन्यादान

कन्यादान के प्रणेता नाशिक पाटिल हैं। इस एकाङ्की में लेखक ने राजपूत कन्या कृष्णाकुमारी का कर्मनिष्ठ चरित रूपित किया है।

प्रकृति-सौन्दर्य

प्रकृति-सौन्दर्य के रचयिता मेधाव्रत शास्त्री बीसवीं शती के सर्वोच्च संस्कृत-उन्नायकों में से गिने जा सकते हैं। मूलतः गुजराती, पर चिरकाल से महाराष्ट्र में नासिक के समीप येवला-ग्रामवासी सनातनी परिवार में जगजीवन के पुत्र रूप में

१. शास्त्री जी का आदर्श था—

ग्रामे ग्रामे पाठशाला ग्रामे ग्रामे च मन्दिरम्।
ग्रामे ग्रामे धर्मसभा ग्रामे ग्रामे कथाः शुभाः ॥

उनका जन्म १८६३ ई० मे हुआ। वे दयानन्द का व्याख्यान सुनकर आर्य समाज की ओर प्रवृत्त हुए। उन्होने येवला मे आर्यसमाज की स्थापना की। मेधाव्रत की माता सरस्वती भी पति के विचारो से वासित थी। १९२३ ई० मे जगजीवन सन्यास लेकर हरद्वार चले गये और नित्यानन्द बन गये। वे अन्त मे हिमालय की कन्दराओं मे अन्तर्धान हो गये।

अपनी ग्रामीण शिक्षा के बाद १९०५ ई० मे मेधाव्रत सिकन्दराबाद के गुरुकुल मे प्रविष्ट हुए। १९१० ई० मे गुरुकुल के साथ मेधाव्रत वृन्दावन आ गये। १९१६ ई० मे रोगाक्रान्त होने पर उन्होने पढाई छोड दी। वे १९१८ ई० मे कोल्हापुर के वैदिक विद्यालय के अध्यक्ष बने और १९२० से १९२५ ई० तक सूरत मे अध्यापक रहे। १९२५ मे वे इटोला गुरुकुल के आचार्य बने। यह सस्था विकसित होकर १९२९ ई० से आर्यकन्या महाविद्यालय बनकर बडौदा मे विकसित हो रही है। १९४१ ई० मे यह विद्यालय छोडकर अध्ययन अध्यापन करते हुए उन्होने अनेक प्रदेशो मे भ्रमण करते हुए वेदो का प्रचार किया। सस्कार आदि कराने मे वे निष्णात थे।

१९४७ ई० में मेधाव्रत ने वानप्रस्थ आश्रम अपनाया। फिर तो वेदाभ्यास के साथ योगाभ्यास करने लगे। पश्चात् नरेला और चित्तौडगढ के गुरुकुलो मे आचार्य रहे। अपनी साहित्यिक और आध्यात्मिक साधना के लिए मेधाव्रत ने दण्डकारण्य पर्वत के निकट कुसूर ग्राम मे दिव्यकुञ्ज उपवन बनाया, जिसमे फल और पुष्प के पादपो की अतिशय रमणीय समृद्धि थी। यह महादेवी नामक नदी के तट पर था और अब ग्रामवासियो के लिए पुण्यदायक तीर्थ बन गया है।

मेधाव्रत ने बालावस्था मे काव्य-सर्जन आरम्भ किया। पचम, सप्तम तथा अष्टम वर्ष मे उन्होने क्रमशः देशोन्नति काव्य, ब्रह्मचर्यशतक और प्रकृति-सौन्दर्य की रचना कर डाली। अपनी रचनाओ को प्रकाशित करने के लिए अदम्य उत्साह मेधाव्रत मे था। अपनी पत्नी के आभरण बेंचकर उन्होने अपनी सर्वोत्तम कृति कुमुदिनी चन्द्र का प्रकाशन-व्यय-वहन किया। मेधाव्रत की साहित्य-साधना उच्चकोटिक है। उनके ग्रन्थो की नामावली अधोलिखित है—

चरित-ग्रन्थ—दयानन्द-दिग्विजय-महाकाव्य, ब्रह्मर्षि-विरजानन्दचरित, नारायणस्वामि-चरित, नित्यानन्द-चरित, ज्ञानेन्द्रचरित, विश्वकर्माद्भुत-चरित, संस्कृतकथा-मंजरी।

लहरी या काव्य—दयानन्दलहरी, दिव्यानन्दलहरी और सुखानन्दलहरी[1]।

शतक-काव्य—ब्रह्मचर्यशतक, गुरुकुलशतक, ब्रह्मचर्यमहत्त्व।

लघुकाव्य—वैदिक राष्ट्रकाव्य, मातः प्रसीद, प्रसीद, मातः का ते दशा, वाङ्मन्दाकिनी, सरस्वती-स्तवन, श्रीरामचरितामृत, श्रीकृष्णस्तुति, श्रीकृष्णचन्द्र-कीर्तन, नर्मदा-स्तवन, विक्रमादित्य-स्तवन, सत्यार्थप्रकाश-महिमा, दिव्यकुञ्जयोगाश्रमवर्णन, लालबहादुरशास्त्रिप्रशस्तिः, श्रीवल्ल-

१. सुखानन्द-गिरि मेवाड का रमणीय स्थल साधु-सन्तो के द्वारा वासित है।

भाण्टक, दामोदर-शुभाभिनन्दन, मातृविलाप, विमानयात्रा, चित्तौडदुर्ग, तद् भारत वैभवम् ।

गद्यकाव्य—कुमुदिनीचन्द्र, शुद्धिगङ्गावतार, हिन्दूस्वराज्यस्य प्रभातकालः ।

मेधाव्रत ने केवल एक नाटक लिखा प्रकृति-सौन्दर्यम् । इसका प्रथम अभिनय वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था । छः अङ्कों के इस काल्पनिक इतिवृत्त के नाटक में प्रकृति का रसमय वर्णन राजा चन्द्रमौलि और उनके मित्र चन्द्रवर्ण की विमान-यात्रा के प्रसङ्ग में हिमालय-तपोवन, वसन्तोत्सव, ग्रीष्म आदि षड् ऋतुओं के परिदर्शन के द्वारा किया गया है ।

मेधाव्रत की मृत्यु २२ नवम्बर १९६४ ई० में हुई ।

कामकन्दल

कामकन्दल नाटक[1] के प्रणेता कृष्णपन्त पहले धर्माधिकारी रह चुके थे । उन्होंने रत्नावली गद्य काव्य और कालिकामन्दाक्रान्ताशतक लिखा है । इनके गुरु थे रंगप्प वालाजी काशी के महाराष्ट्र-पण्डित । कृष्णपन्त के पिता वैद्यनाथ और पितामह विश्वनाथ थे । कृष्णपन्त का जन्म १९ वीं शती ई० के पूर्वार्ध में हुआ था । इनकी रचनाओं का युग उन्नीसवीं ई० शती का उत्तरार्ध और बीसवीं शती का आरम्भिक भाग है ।

तीन अंक के कामकन्दल में श्रीपति शर्मा विलासी ब्राह्मण था । उसने प्रकामा-नगरी के राजा कामसेन के भवन में कामकन्दला नामक नर्तकी-वारविलासिनी का संगीत सुना और उसके प्रणयपाश में निगडित हो गया । राजा को श्रीपति का यह व्यवहार अच्छा न लगा । उसने श्रीपति को राजसभा से निकाल दिया । वह अपने मित्र रत्नसेन के पास गया । उसकी सहायता से वह उस उपवन में जा पहुँचा, जहाँ कामकन्दला के साथ राजा था । उसका कामकन्दला से प्रेम बढ़ता गया । इसे देखकर राजा ने उसे नगर से बाहर कर दिया । उसने विक्रमादित्य को इस आशय का पत्र दिया कि मुझे गुरु से धर्म और अन्य राजाओं से अर्थ बहुत मिला है । आप मुझे काम नामक वर्ग प्रदान कीजिये । राजा ने उसकी याचना समझ कर आदेश दिया कि कामसेन पर आक्रमण हो । कामसेन ने युद्ध में अतिशय पीडित होने पर कामकन्दला विक्रम को दे दी और उसके साथ श्रीपति का जीवन सुख से बीता ।

इस नाटक की प्रस्तावना की नीचे लिखी बातों से प्रमाणित होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है—

भरत—आर्ये स्मृतं स्मृतम् । पूर्वं धर्माधिकारि-कृष्णकविना कामकन्दलं नाटकं निर्मायास्मभ्यं समर्पितमासीत ।

---

१. इसका प्रकाशन काव्यमंजूषा चौखम्भा-संस्कृत-ग्रन्थमाला ग्रन्थ-संख्या ७८ में हुआ । इसकी प्रति गुरुकुल-कांगड़ी के पुस्तकालय में है ।

इस नाटक में रगनिर्देश तो नहीं के बराबर है, किन्तु निवेदनों का बाहुल्य है और उनमें से कतिपय पर्याप्त लम्बे भी हैं। यथा,

ततः उत्तुङ्गपूर्वगिरिवक्षोरुहारक्तपौरन्दरीरक्तपद्मिनीवल्लभे प्रादुर्भूते श्रीपतिरुत्थाय तामाश्वास्य गृहं गतः। पुनरस्ताचलचूडचुम्बिवारुणी-रक्तचण्डांशौ तथा चलितः। तदा कश्चिद्राजचारोऽपि गतवांस्तत्र। तेनोभयोः स्नेहातिशयं वीक्ष्य क्रूरचित्तेन राज्ञे निवेदितम्। राज्ञा सामर्ष नगरतोऽपि निष्कासितः श्रीपतिः 'कदापि प्राप्स्यामि ताम्' इत्युक्त्वा गतः। कामकन्दला पुनः—

'गते प्रियतमेऽबलानववियोगदुःखार्दिता' इत्यादि।[1]

इस में सूच्य तत्त्व वर्त्तमान हैं। इस दृष्टि से यह निवेदन है। निवेदन के नियमानुसार इसका वक्ता कोइ पात्र निर्दिष्ट नहीं है।

रंगाचार्य के नाटक

रगाचार्य ने दो नाटक लिखे हैं—श्री शिवाजीविजय तथा श्रीहर्षबाणभट्टीय। रगाचार्य परम देशभक्त रहे हैं। शिवाजीचरित मे केवल दो अङ्क है। नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य का अभाव है, संवाद अतिशय लम्बे और प्रायशः सूच्यात्मक हैं और पद्य नहीं हैं।[2] नाटक के आरम्भ मे सूच्य, नाट्य और रङ्गनिर्देश को समाविष्ट करने वाली बहुत बड़ी परिचयात्मक भूमिका है।

इस नाटक का आरम्भ शिवाजी के आगरे मे बन्दी होने के समय से होता है। मिठाइयों की पेटी मे बैठकर वे बन्दीगृह से निकले और साधु बन कर छिपे-छिपे मायात्मक वेष मे पुनः अपनी राजधानी में पहुँचे। वहाँ थोड़ी देर के लिए अपनी माता से भी ऐसे ही बातें कीं, मानो आशीर्वाद देने वाले साधु हों। अन्त मे—

शिवाजी-देव्याः पुरस्तात् तिष्ठन् झटिति स्वकीयं शिरोवेष्टनमपनयति।

जीजा देवी—(साश्चर्यम्) हा! प्रमोदः, संमोदः आमोदः। हा प्रत्यागत मे जीवितम्।

इस नाटक मे छायातत्त्व सविशेष है।

हर्षबाणभट्टीय की प्रस्तावना एक निराले ढग से लिखी गई है।[3] नान्दी तो इसमे है ही नहीं। इसके प्रथम अङ्क का आरम्भ श्रीहर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन की रुग्णता के दृश्य से होता है। हर्ष को दुर्निमित्त होते हैं। महाराज अब हर्ष को पहचान भी नहीं रहे हैं। हर्ष को आभास होने लगा कि महाराज की इहलोक-

---

१. प्रथम अङ्क के अन्तिम भाग मे।

२. संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका में कलकत्ते से १९३८ ई० मे प्रकाशित।

३. संस्कृत साहित्य-परिषद् पत्रिका मे २१.९ प्रकाशित।

लीला अब समाप्त हो रही है। उन्हें प्रतिहारी बताती है कि आपकी माता पिता के जीवन-काल में ही कुछ करने जा रही हैं। माता यशोवती ने मरणचिह्न धारण कर रखा है। माता को हर्ष ने समझाया और हर्ष ने माता को। तबतक मन्त्री ने आकर कहा कि महाराज आपका अभिषेक चाहते हैं। द्वितीय अङ्क में हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्धन ने मन्त्री का समर्थन किया और कहा कि मैं तो संन्यास लेता हूँ। आप राजा हों। इसी बीच राज्यश्री के विषय में समाचार मिला कि मालवराज ने राज्यश्री के पति गृहवर्मा को मारकर उसे कान्यकुब्ज के कारावास में बन्दी बनाया है। तब राज्यवर्धन मालवराज से लड़ने चल पड़ा।

तृतीय अङ्क में कुन्तल नामक दूत संवाद देता है कि राज्यवर्धन मारे गये। भण्डि समाचार देता है कि राज्यश्री विन्ध्याटवी में प्रवेश कर गई। हर्ष विन्ध्याटवी में राज्यश्री को ढूँढने लगे। दिवाकरमित्र नामक आचार्य के आश्रम के समीप राज्यश्री जलने ही जा रही थी कि हर्ष उससे मिला। अन्तिम चतुर्थ अङ्क में बाणभट्ट हर्ष से मिलता है। वह हर्ष का कृपापात्र बन गया।

प्रस्तुत नाटक में रंगाचार्य ने हर्षचरित को अपने कथानक के लिए उपजीव्य बनाया है और निःसंकोच भाव से बाण के भावों और शब्दावली को अपने परिष्कार से सरलतम बनाकर रूपकायित किया है।

पाण्डित्य-ताण्डवित

काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय के प्राध्यापक स्वर्गीय बटुकनाथ शर्मा अपने युग के काशी के पण्डितों और विद्यार्थियों में अपनी विद्वत्ता और सच्चारित्र्य के कारण विशेष सम्मानित थे। उनका उपनाम बालेन्द्र था।

बटुकनाथ के पिता ईश्वरीप्रसाद मिश्र वाराणसी के निवासी थे। शर्मा जी का जन्म वाराणसी में १८६५ ई० में हुआ। उनकी प्रमुख काव्यात्मक रचनायें बल्लवदूत, शतकसप्तक, कालिकाष्टक, आत्मनिवेदनशतक और सीतास्वयंवर नामक महाकाव्य हैं। पाण्डित्य-ताण्डवित उनकी एकमात्र रूपक-रचना प्रसिद्ध है।[1] शर्मा ने भरत के नाट्यशास्त्र का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया था।

इस प्रहसन में बलिया के हलधर मिश्र के शिष्य दण्डधर मिश्र सोंटाधारी महान् आचार्य बनकर सारी पृथ्वी पर घूमकर मूर्ख पण्डितों की बोलती बन्द कर देनेवाले हैं, जैसे साँप मेंढकों का मुंह बन्द कर देता है। काशी में उन्हें कैयटकैरव नामक वैयाकरण शिष्य मिलता है। उन्हें बालक गाते हुए मिलते हैं—

धावसि धनलव हेतोः, अनुकुरुषे वृषकेतोः हृदयं वसते तान्तम्।

---

१. इसका प्रकाशन प्रथम बार वल्लरी में हुआ था। द्वितीय बार काशी की सूर्योदय नामक पत्रिका में १९७२ ई० के अगस्त अङ्क में हुआ।

उन बालकों के कहने पर दण्डधर नाचते हैं और बालक गाते हैं—

वनमाली वनमाली वनमाली खेलति हे वनमाली
तीरे तीरे धीरसमीरे यमुनातीरे वनमाली।
कुंजे कुंजे मंजुलगुञ्जे वंजुलकुञ्जे वनमाली।

साहित्य-सैरिभ ने दण्डधर के विषय मे सुना कि कोई जन्तु-विशेष आया है। उसे देखकर साहित्य-सैरिभ श्लोक बोलने लगे—

सखे, अपूर्वोऽयं दृश्यते पक्षी,
काकैर्मा कलहायतामयमिति स्वान्तं न तान्तं भवेत्।
सत्साहित्यजुषां स्वरैः कटुरवैरस्येति पूर्णं सखे।
गेहं स्वं नय तत्र पंजरगतस्त्वद्गेहिनी-स्नेहभाक्
सौख्यं तण्डुलचूर्णभक्षणकृतं दीर्घायुरभ्यस्यतु॥

वटुकनाथ का यह प्रहसन शृङ्गार की परिधि से सर्वथा निर्मुक्त है। इसमें कहीं अश्लीलता नहीं है। साधारण प्रेक्षकों के मनोरञ्जन के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री है।

शिल्प

हँसी उत्पन्न कराने वाले कार्य भी हैं। दण्डधर कीचड में गिरता है तो शिष्यों का कहना है—

मृतं पाण्डित्येन। खण्डिता भूः, मण्डिता द्यौः। इत्यादि

हास्य उत्पन्न करने के लिए कवि ने नायकों के नाम यथोचित रखे हैं। प्रथम नायक हैं दण्डधर मिश्र। इनके गुरु थे बलियावासी हलधर शर्मा। कैयट-कैरव, कुदन्तदत्त, तद्धितदत्त, प्रचण्डस्फोट, साहित्य-सैरिभ (भैंसा) आदि अन्य नायक हैं।

पात्रों की वेषभूषा भी हास्यास्पद है। यथा दण्डधर है—

हस्तन्यस्तं पृथुललगुडं चालयन्नेति दर्पाद्
दम्भारम्भः सकपटवटुः कूटकोटौ पटीयान्।

शब्दों के प्रयोग भी हास्यास्पद हैं। यथा, गमिकर्मीकृत्य, सरीसर्ति घोरणी, शङ्कातङ्काटङ्कित। एक वाक्य है—दुर्घर्षोपर्बुधप्रवृद्धज्वालामाला-सहस्रैरिव तमस्तिरस्करिणी-तिरस्क्रियायै प्रभूयतां ते शास्त्रावबोधैः।

देशस्वातन्त्र्य-समरकाले राष्ट्रधर्मः

देशस्वातन्त्र्य-समरकाले राष्ट्रधर्मः नामक-एकाङ्की के प्रणेता का० र० वैशम्पायन कान्हे जनपद के भालोद ग्राम के माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक थे।[१] उन्होंने वार्षिक स्नेह-सम्मेलन के अवसर पर अपने निर्देशन मे इस एकाङ्की का अभिनय कराया था।

१. शारदा में १९७० ई० में प्रकाशित।

इसकी नान्दी में सूत्रधार कहता है—

पश्यतु नवनाटकमिह यदि कुतूहलम् ।
व्यथितां जननीम् । अतिमथिताम् ॥

इसकी कथा का आरम्भ ब्राह्मण के देवालय जाने से होता है। मार्ग में किसी राष्ट्रसेवक को देखकर वह बिगड़ पड़ता है कि मुझे छूना चाहता है। राष्ट्रसेवक ने कहा कि ऐसा क्यों सोचते हैं कि मैं आपको छूना चाहता हूँ। मैं भी तो ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण ने कहा कि ब्राह्मण होने से क्या होता है ? मेरे बाप सभी कांग्रेस भक्तों को भ्रष्टाचारी मानते थे।

राष्ट्रभक्त से बातचीत करते हुए संवाद का विषय बना कि यदि परमेश्वर के बनाये अस्पृश्य भी हैं तो उन्हें देवदर्शन का अधिकार क्यों नहीं है। ब्राह्मण राष्ट्रभक्त की बात से प्रभावित होकर उसे अपने साथ देवालय में ले जाता है।

द्वितीय दृश्य में गोसेवक 'गोमाता विजयते' कहते हुए चाय की दूकान से आता है। चाय-निषेधक उससे भिड़ जाता है कि तुम चाय पीना क्यों नहीं छोड़ते ? चायनिषेधक के पास बोतल में मदिरा रखी थी। निषेधक ने कहा कि बीड़ी पी लेने दो, फिर बात करता हूँ। उन दोनों में बात बढ़ने पर चपतबाजी हुई। आगे भाषा-शुद्धिप्रचारक, समाजसुधारक और साम्यवादी आये। अन्त में आये स्त्रीस्वातन्त्र्यवादी। इन सबका घोर कोलाहल हुआ। तबतक ब्राह्मण और राष्ट्रसेवक मन्दिर से बाहर आये। सब राष्ट्रधर्म पालन करने के लिए तत्पर हो गये।

वैशम्पायन का लघु एकाङ्की रंगमच पर सर्वसाधारण के लिए अपने युग में रोचक और शिक्षाप्रद रहा होगा।

विक्रमाश्वत्थामीय

विक्रमाश्वत्थामीय नामक व्यायोग के प्रणेता नारायणराय चिलुकुरी, एम० ए०, पीएच्० डी०, एल० टी० कर्नाटक से अनन्तपुर की प्रभुत्वकला-शाला में संस्कृत और कर्नाटक भाषा के अध्यापक थे।[1] नारायण संस्कृत संवर्धन के लिए परम उत्साही थे। उन्होंने इस रूपक की भूमिका में कहा है—

This is the first of a series of Sanskrit plays written by me for the entertainment of my students and the public. I venture to publish this in the hope that greater interest will be created in this country for the study and staging of Sanskrit Dramas.

इस युग में लेखक के अनुसार संस्कृत-रंगमंच के नवजीवन के प्रति कुछ विद्वान् अभिरुचि ले रहे थे।

डा० नारायणराव को विश्व-कलापरिषद् से अनेक उपाधियाँ प्राप्त हो चुकी थीं।

---

१. इसकी १९३८ ई० में प्रकाशित प्रति सागर-विश्वविद्यालय पुस्तकालय में है।

इस व्यायोग का प्रथम अभिनय कलाशाला के अध्यक्ष कृष्णमार्य की आज्ञा के अनुसार उत्सव-दिवस पर हुआ था। नया रूपक ही खेला जाय—यह अध्यक्ष की आज्ञा थी। इसके अनुसार मरणासन्न दुर्योधन के पास अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ पहुँचता है। जल माँगने पर अश्वत्थामा ने जब जल पिलाया तो उसने उन सबको पहचाना। पूछने पर उसने अपनी स्थिति आदि से बताई कि कैसे ह्रद में छिपे हुए मुझको युद्ध के लिये कुरुक्षेत्र में लाकर भीम से लड़ाया गया। वहाँ आये बलराम को धर्माध्यक्ष बनाकर युद्ध हुआ। मैं भीम का अन्त करने ही वाला था, कि कृष्ण के संकेत से भीम ने मेरी यह गति कर दी। अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि आप के परितोषार्थ भीम का सिर काटकर लाता हूँ। दुर्योधन ने उसका सेनापतिपद पर अभिषेक किया। आधी रात के समय वृक्ष के नीचे लेटे हुए अश्वत्थामा ने उलूक का पक्षिसंहार देखकर रात में ही पाण्डवों का संहार करने की योजना कार्यान्वित की। सबको मार कर भीम का सिर लेकर दुर्योधन को दिखाया और वह सन्तुष्ट होकर मर गया। तब कृपाचार्य ने अश्वत्थामा को बतलाया कि यह नकली सिर है।

व्यायोग में अनेक दृश्य हैं। इसमें भीम के कृत्रिम शिर का समानयन छायातत्त्वानुसारी है। संवाद और भाषा सर्वथा नाट्योचित हैं।

मणिमंजूषा

मणिमंजूषा के लेखक एस० के० रामनाथशास्त्री हैं।[1] इसमें १८ दृश्य हैं। यह नाटक आद्यन्त प्रभावशाली और गीत-निर्भर है। इसमें अपहार वर्मा की साहसपूर्ण चरितावली कथावस्तु है। इसका उपजीव्य दण्डी का दशकुमार-चरित है।

संस्कृत-वाग्विजय

संस्कृत-वाग्विजय के प्रणेता प्रभुदत्तशास्त्री इम्पीरियल बैंक कालनी, दरीबाँ कला, दिल्ली के निवासी रहे हैं।[2] इसके पाँचों अङ्क अनेक दृश्यों में विभक्त हैं। इसमें संस्कृत के साथ हिन्दी भाषा प्राकृत के स्थान में प्रयुक्त है। इस नाटक में पाणिनि और भोज के युग की और आधुनिक युग की संस्कृत की उच्चावच स्थिति का विश्लेषण है। आधुनिक भाषाओं और अंगरेजी का उससे वैषम्य दिखाया गया है। इसमें विदूषक और विदूषिका हास्य-सर्जन करते हैं।

अलब्ध कर्मीय

अलब्धकर्मीय के प्रणेता महोपाध्याय के० आर० नेयर अलवाये दक्षिण भारतीय विद्वान् हैं। इसमें भावना, गैर्वाणी और यशोद्युम्न चरित-नायक हैं। कवि नामक अकर्मक (बेकार) नायक है।

---

१. १९४१ ई० में संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका में प्रकाशित।
२. १९४२ ई० में दिल्ली से प्रकाशित।

भावना अपने पुत्र काव्यकुमार को मंच पर रखकर आन्दोलन करती है और ललितलवङ्गलता की रीति पर गाती जाती है—

स्वपिहि निशां सुकुमार कुमार
सुखेन मनोहरमंचे सरभसमयि
कलहंस इवामलमानसमंजुलकंजे ।

भावना गीतों का गायन करती है और काव्यकुमार को सुलाने का प्रयास करती हुई एकोक्ति द्वारा अपने पति कवि की दुर्दशा का समीक्षण करती है कि कैसे वे घूम-घूम कर जीविका के चक्कर में हैं। उसे भय है कि कहीं वे योरपीय महायुद्ध के सैनिक न बन जायें। फिर कवि, चित्रकार और उनका कलासाधक शरीर युद्ध की भयंकरता से कैसे समंजसित होंगे। आधी रात तक पति के न आने पर उसके पास गैर्वाणी नामक वुढ़िया आती है और कहती है कि तुम खा-पीकर सो जाओ, तुम्हारे पति का क्या ठिकाना कि वेचारा कब तक लौटेगा? तब तक कवि आया और भावना ने प्रश्न ठोक ही दिया कि क्या कहीं काम मिला? कवि को गैर्वाणी की वर्तमान-कालिक दशा पर रोना आता है। वह कहता है—कर्पकवृत्ति अच्छी है, किन्तु मेरे पास उसका भी साधन नहीं है। भावना ने उसके सेना में भर्ती होने का विरोध किया। हम सबको और शिशु काव्यकुमार को छोड़ कर जाना विडम्बनात्मक है। वह भोजन करने जा ही रहा था कि दग्धग्राम की संस्कृत पाठशाला का संचालक आया। उन्हें भोजन दिया गया। उसने १५ रुपये मासिक की नौकरी देने का प्रस्ताव किया। कवि चल पड़ा काम पर।

भाव और भाषा की दृष्टि से यह प्रहसन विशेष रोचक है।[1]

ऋद्धिनाथ झा के नाटक

मिथिला में शारदापुर में सकराढ़ि कुल में ऋद्धिनाथ का जन्म हुआ था। इनके पिता महामहोपाध्याय हर्षनाथ शर्मा स्वयं उच्चकोटि के कवि थे। उन्होंने मैथिली के अनेक नाटक लिखे। उषाहरण उनकी प्रसिद्ध रचना है। वे राजसभा-पण्डित थे। ऋद्धिनाथ राजकुमार के प्रारम्भिक शिक्षक थे और महाराज की माता को पुराण सुनाते थे।

ऋद्धिनाथ साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त करके महारानी महेश्वरलता-महाविद्यालय में आचार्य नियुक्त हुए थे। इनके पूर्व वे लोहना-विद्यापीठ में प्रधानाध्यापक थे।

ऋद्धिनाथ के दो नाटक मिलते हैं—शशिकला-परिणय और पूर्णकाम। शशिकलापरिणय का अपर नाम यज्ञोपवीत है, क्योंकि मिथिलाधिप कामेश्वरसिंह के

१. १९४२ ई० में त्रिवेन्द्रम् से श्रीचित्रा में प्रकाशित। इसकी प्रति सागर विश्वविद्यालय में है।

छोटे भाई के पुत्र जीवेश्वरसिंह के यज्ञोपवीत के उपलक्ष में इसका प्रथम अभिनय हुआ था। जीवेश्वर के गुरु लेखक ऋद्धिनाथ थे। नाटक के अभिनय के दर्शक अनेक राजा-महाराज थे, जो अतिथि बन कर आये थे।[1]

शशिकला-परिणय के पाँच अङ्कों में शशिकला का भक्तसुदर्शन से विवाह पौराणिक कथानुसार वर्णित है।[2] इसकी रचना १९४१ ई० में हुई थी।

मैथिली नाट्य से वासित पूर्णकाम झा की द्वितीय रचना एकाङ्की है।[3] इसका नायक पूर्णकाम ऋषिकुमार तपस्वी था। उसकी तपस्या से डरकर इन्द्र ने काम, वसन्त और अप्सराओं को नियुक्त किया कि तपोभंग करें। पर उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। इन्द्र ने मातलि को भेज कर पूर्णकाम को स्वर्ग में मँगा लिया। वहाँ मन्दाकिनी-तट पर उसने तपस्या की। नारद और विष्णु उन्हें विष्णुलोक में ले गये। इसमें भारत के आध्यात्मिक गौरव की चर्चा विशेष है।

इसकी रचना और अभिनय उमानाथ के पौत्र रत्ननाथ के जन्मोत्सव के उपलक्ष में हुए थे। यह दृश्यों में विभाजित है। बीच-बीच में भी मंचनिर्देश दीर्घ हैं। मैथिली-पद्धति पर संस्कृत-गीतों का समावेश और सरल भाषा सर्वथा नाट्योचित हैं।

विद्याधरशास्त्री के नाटक

विद्याधर शास्त्री का जन्म राजस्थान में चूरू नामक नगरी में १९०१ ई० में हुआ। उनके पूर्वज गौड़ ब्राह्मण उत्तरप्रदेश से आकर वहाँ बस गये थे। उनके पितामह हरनामदत्त शास्त्री अपने युग के महान् आचार्य थे। विद्याधर के पिता विद्यावाचस्पति देवीप्रसाद शास्त्री थे। वे बीकानेर के नोबेलविद्यालय तथा डूंगर-महाविद्यालय में प्राध्यापक थे। विश्रान्त होने पर उन्होंने बीकानेर में हिन्दी-विश्वभारती-शोधसंस्थान का कार्य चलाया है। सांस्कृतिक और सामाजिक कल्याण की योजनाओं से सम्बद्ध होने के कारण विद्याधर को जीवन काल में अतिशय सम्मान मिला है।

विद्याधर ने नाटकों के अतिरिक्त अधोलिखित ग्रन्थों का प्रणयन किया—

शिवपुष्पाञ्जलि-स्तोत्र, हरनामामृत-महाकाव्य, विद्याधरनीतिरत्न, मत्तलहरी, आनन्दमन्दाकिनी, विक्रमाभ्युदय चम्पू, हिमाद्रिमाहात्म्य, लीलालहरी।

विद्याधर के प्रसिद्ध नाटक हैं *कलिपलायन, पूर्णानन्द* और *दुर्बल-बल।*

---

१. आहूता मिथिलेश्वरेण महता यज्ञोपवीतक्षणे
यत्रानेकविधास्स्वतन्त्रपृथ्वीपालास्तमालोकितुम्।

२. इसका प्रकाशन दरभंगा से १९८७ ई० में हुआ है।

३. इसका प्रकाशन दरभंगा से १९६० ई० में हुआ है।

कलिपलायन चार अङ्कों का रूपक है। इसमें भागवत की प्रसिद्ध कथा परीक्षित और कलि के वैषम्य-विषयक है। कलि राजनीति विशारद है। उसे परीक्षित ने प्राणदान दिया।

पाँच अङ्कों के पूर्णानन्द में लोकप्रचलित भक्त पूरनमल की कथा रूपकायित है। इसकी रचना १९४५ ई० में हुई। इसमें आधुनिक प्रणय-पद्धति की पतनोन्मुख प्रवृत्तियों का निदर्शन है।

विद्याधर ने १९६२ ई० में दुर्वलवल की रचना चार अङ्कों में निष्पन्न की। इसमें चीन के द्वारा तिब्बत को हड़पने की कथा है। इसका कथानायक आनन्द काश्यप नामक बौद्ध अतिशय कर्मण्य है।

कृष्णार्जुन-विजय

कृष्णार्जुन-विजय नामक पाँच अङ्कों के नाटक के रचयिता पालघाट के निवासी सी० वी० वेङ्कट राम दीक्षितार हैं।[1] इसके प्रथम चार अङ्कों में से प्रत्येक में दो दृश्य और पंचम में तीन दृश्य हैं। इसमें युधिष्ठिर के द्वारा गय नामक गन्धर्व की रक्षा करने की कथावस्तु है। कृष्ण गय पर क्रुद्ध थे। कृष्ण और अर्जुन में युद्ध हुआ। ब्रह्मा ने उन दोनों के बीच पड़ कर युद्ध शान्त कराया।

परिणाम

परिणाम नामक सप्ताङ्की नाटक के रचयिता चूडानाथ भट्टाचार्य हैं।[2] चूडानाथ काठमाण्डू में शासकीय संस्कृत-महाविद्यालय के प्राचार्य थे। इसमें योरपीय सभ्यता और संस्कृति की मृगमरीचिका में पाशित नवयुवक और युवतियों की पतनोन्मुख प्रवृत्तियों का निरूपण किया गया है।

सुन्दरेश शर्मा के नाटक

तंजौर में राम के भक्त और रामप्रवण सुन्दरेश का काव्य-विकास स्फुरित हुआ। उनकी सर्वप्रथम उत्कृष्ट रचना त्यागराज-चरित १५ सर्गों का महाकाव्य १९३७ ई० में प्रकाशित हुआ। इनकी दूसरी रचना रामामृत-तरंगिणी है। इसमें स्तोत्रों का संकलन है। इनकी तीसरी रचना शृङ्गार-शेखर भाण है। प्रेमविजय

---

१. १९४४ ई० में पालघाट से प्रकाशित।

२. इसका प्रकाशन १९५४-५५ ई० में श्रीमती नूतनश्री, ८।३१५ प्यूरवटोल, काठमाण्डू, नेपाल से हुआ है।

के पूर्व उन्होंने राघव-गुणरत्नाकर की रचना की।[1] सुन्दरेश ने तंजौर में संस्कृत एकेडेमी का प्रवर्तन किया। इस एकेडेमी के द्वारा प्रेमविजय का प्रथम अभिनय हुआ था। इसके अध्यक्ष पी० एस० विश्वनाथ थे। इसका प्रकाशन १६४३ ई० में तंजौर से हुआ।

सात अङ्को के प्रेमविजय की कथावस्तु कल्पित है।[2] इसका चरितनायक हेमचन्द्र कविकुमार था। उसे मगध के राजा प्रतापरुद्र ने अपना रक्षक नियुक्त किया था। वैदेह युद्ध में उसने अपने युद्ध कौशल से राज की रक्षा की। राजा ने प्रसन्न होकर उसे रत्नकृपाण का पारितोषिक दिया। यह देखकर सेनापति दुर्मति को ईर्ष्या हुई। उसने हेमचन्द्र को खेलने के बहाने निर्जन उपवन में वृषसेन से बुलवाया, जहाँ वह उसे मार डालना चाहता था। वहाँ दुर्मति को सफलता न मिली। पर राजकुमारी ने उसे वहाँ देखा और प्रेमपरवश होकर उसे उद्यान में बुलाकर बातचीत की।

नायक और नायिका का प्रेम बढता गया—यह दुर्मति ने महाराज से कहा। एक दिन हेमचन्द्र ने दुर्मति को कलह में मार डाला। उसे चन्द्रलेखा से मिलन तो हुआ, किन्तु महाराज ने उसे कारागार मे डाल दिया। कुछ दिनों के पश्चात् शत्रु राजा का विध्वंस करने के लिए राजा ने हेमचन्द्र को भेजा। उसके विजयी होने पर अपनी कन्या उसे विवाह में दे दी। राघवन् के अनुसार इस नाटक की विशेषता है—A romantic theme, a replica of the Bilhaṇa's story.[3]

यज्ञनारायण ने इस नाटक की आलोचना करते हुए कहा है—

You have written a learned drama which would serve as a good illustration of what a drama ought to be according to the rules. It is a good imitation of our classical dramas, but it is produced in an artificial atmosphere. It is not rooted in the soil of South India and has nothing to do with the variegated life of our country as it is being lived to-day.

इस नाटक में कवि ने प्राकृत का उपयोग नहीं किया है। सभी पात्र संस्कृत बोलते है।

सुन्दरेश के इस भाण का प्रथम अभिनय बृहदीश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर

१. इन सभी पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। शृङ्गार-शेखरभाण और प्रेमविजय काशी-नरेश के पुस्तकालय में हैं।

2. The author has taken for the plot of his play a new and original creation of his own dealing with the oldest and most hackneyed of all themes viz. *human love*.—K. S. Ramaswami's comments.

3. Contemporary Indian Lit. P. 235.

पर समागत नागरिकों के परितोष के लिए हुआ था। इसमें शृङ्गार के साथ हास्य रस की निष्पत्ति हुई है। कवि की आर्थिक दुःस्थिति का वर्णन करते हुए इस भाण की प्रस्तावना में सूत्रधार ने कहा है—

निजोदरकपूर्तये विहितनव्यचेलापणः।
प्रभौ रघुकुलोत्तमे वितनुते हि भक्ति पराम् ॥ ६

कवि क्योंकर भाणादि लिखते हैं? इसका उत्तर सूत्रधार के मुख से सुनें—

दीनास्ते कवयो निजोदरकृते कुर्वन्ति तास्ताः कृतीः। ७.

श्रीकृष्णार्जुनविजय-नाटक

श्रीकृष्णार्जुन विजय-नाटक के प्रणेता वेङ्कटराम यज्वा सुब्रह्मण्य यज्वा नामक महान् दार्शनिक विद्वान् के कुल में उत्पन्न हुए थे।[1] इनके पितामह वेङ्कटराम यज्वा भी अद्वितीय विद्वान् थे। इनके पिता का नाम वैद्यनाथ यज्वा था। विजय के अतिरिक्त इनकी प्रसिद्ध रचना अष्टप्रासरामायण है।

इस नाटक का अभिनय कवि की जन्मभूमि चित्पुरी में हुआ था, जिसका वर्णन सूत्रधार के शब्दों में है—

रम्ये भार्गवरामनिर्मितमहापुण्ये महीमण्डले
क्षीरारण्यसमीपतो विजयते सेयं पुरी चित्पुरी।
कुल्यामार्गसमापतन्नदपयःपूरप्लवामोदित—
श्रीमत्कुञ्जरदन्तधान्यविलसत्केदारखण्डावृता ॥

इसका अभिनय नवरात्र महोत्सव के दिन वहाँ एकत्र हुए विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

इस नाटक के अनुसार दुर्योधन को बड़ी चिन्ता है कि पाण्डव कृष्ण की सहायता से हमारा विनाश कर देंगे। उनमें शत्रुता कैसे हो? उसने चार्वाक से गय नामक गन्धर्व को नियुक्त कराया कि यमुना में सूर्य को अर्घ्य देते हुए उनकी अञ्जलि में थूक दो। ऐसा करने पर कृष्ण ने कहा कि आज सन्ध्या तक इसे मार डालूंगा। गन्धर्व ने इन्द्र, विधाता, और शिव से शरणागति की प्रार्थना की कि मुझे बचायें। कोई तैयार न हुआ। वह युधिष्ठिर की शरण में पहुँचा। युधिष्ठिर ने उसे बिना यह पूछे ही शरण दी कि क्यों कर तुम विपन्न हो।

नारद ने कृष्ण को बताया कि युधिष्ठिर ने शरण दी है। बलराम ने कहा कि जो कोई हो, उससे युद्ध होगा। सुना गया कि दुर्योधन सेना-सहित पाण्डवों के साथ रहेगा। यादवों की सेना के साथ कृष्ण और बलराम पाण्डवों से लड़ने के लिए

---

१. १६४८ ई० में पालघाट से प्रकाशित। इसकी प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

द्वैतवन की ओर चले। उनके पहुँचते ही उनका सत्कार अर्जुन ने किया। बलभद्र ने डाँट लगाई। कृष्ण ने लड़ाई का आदेश दिया। युद्ध होने ही वाला था। ब्रह्मा ने गय को कृष्ण के सामने कर दिया। फिर लड़ाई न हो सकी। सभी सप्रेम मिले।

कवि ने नाट्योचित सरल भाषा का प्रयोग आद्यन्त किया है। वेङ्कटराम यज्वा ने संवादों में प्राकृत भाषा को स्थान नहीं दिया है। इस नाटक मे चार्वाक का तापस वेष मे होना छायातत्त्वानुसारी है। अर्थोपक्षेपकों के अतिरिक्त एकोक्तियों के द्वारा भी सूच्यवस्तु प्रकाशित की गई है।

नाटक में कार्य (action) का अभाव है। कार्यों की सूचना मात्र आद्यन्त है। यह नाटक संवाद के अधिक निकट है।

गुरुदक्षिणा

गुरुदक्षिणा के लेखक श्रीनिवासरंगार्य को पारिपार्श्वक ने कविजन मनोहारी बताया है।[1] सूत्रधार ने इसकी प्रस्तावना में बताया है कि चिरन्तन-पौराणिक-नाटको को देखने से लोग ऊब चुके हैं। वे आधुनिक सामाजिक नाटक देखना चाहते हैं। इसके लिए कौशिक-वंशतिलक, भाषाद्वय-पण्डित श्रीनिवासरंगार्य का गुरुदक्षिणा-नाटक चुना गया।

गुरुदक्षिणा के तीन अङ्को में रघुवंश के पंचम सर्ग की वरतन्तु-शिष्य कौत्स की कथा कतिपय अभिनव संविधानो के साथ वर्णित है। इसमे व्याध से कौत्स को ज्ञात होता है कि रघु ने विश्वजित् यज्ञ मे अपनी सारी सम्पत्ति दान में दे डाली है तब तो कौत्स आत्महत्या करना चाहता है। वहीं मृगया करते हुए राजा रघु आ जाते हैं। उन्होंने दूर से कौत्स की आत्महत्या-विषयक बातें सुन ली। रघु ने कुबेर की सहायता लेनी चाही। वहीं नलकूबर कुबेर के साथ आ गये और उन सब ने कौत्स की आवश्यकता पूरी कर दी। कौत्स वरतन्तु से मिलता है और आचार्य का भूरिशः आशीर्वाद पाता है।

मुकुन्दलीलामृत-नाटक

मुकुन्दलीलामृत के प्रणेता विश्वेश्वर दयालु चिकित्सक,चूडामणि का निवास-स्थान हरिहर-भवन, बरालोकपुर इटावा, उत्तर प्रदेश मे है।[2] लेखक अदम्य उत्साही रहे हैं। वे संस्कृत में नवीन साहित्य के प्रति मन्दादर से दुःखी होने पर भी संस्कृत मे लिखने के लिए बद्धपरिकर हैं, अपने प्रेस मे छपाते हैं और उनके विक्रय के लिए अनुनय-विनय करते है। वे अनुभूत-योगमाला नामक पत्रिका का सम्पादन करते थे। वैद्य-सम्मेलन मे उनकी उपस्थिति अध्यक्ष-रूप में प्रायशः होती थी।

विश्वेश्वर भारतीय स्वातन्त्र्य के पक्के समर्थक और विदेशी शासको के परम विरोधी थे। उन्होने विदेशी शासको की दुर्नीति का परिचय इन शब्दो मे दिया है—

१. अमृतवाणी-पत्रिका में १६४६ ई० मे प्रकाशित।
२. इसका प्रकाशन १६४५ ई० में इटावा से हो चुका है।

तेषां विलीना करुणा प्रजासु लतेव हा वत्सलतापि दग्धा।
दूरंगता पोषकता च रक्षा नीतिः प्रजाशोणित-चोषणी च ॥

मुकुन्दलीला का अभिनय श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर हुआ था।

सात अङ्कों के इस नाटक में वसुदेव-देवकी के विवाह से लेकर कृष्णजन्म और कंसवध तक की कथा है। प्रथम अङ्क में भगवदवतार, द्वितीय में वृंदावन-प्रवेश, तृतीय में कृष्ण का गोचारण और वनविहार और कालिय-दमन, चतुर्थ अंक में इन्द्रगर्व-ध्वंसन, प्रञ्चम अङ्क में मथुरा-गमन, षष्ठ अंक में कंसवध, कुब्जागृह-प्रवेश और सप्तम अंक में राधादि से मिलन का वर्णन है।

कवि ने कंस को विदेशी शासक और कृष्ण को महात्मा गान्धी की तुलना में रखकर भारत को राष्ट्र जागरण का सन्देश दिया है।

विश्वेश्वर का दूसरा रूपक प्रसन्नहनुमन्नाटक है।[1] इसमें रामकथा कही गई है। 'वर्त्तमानभारतं न त्यजतीति वैशिष्ट्यम्' लेखक के शब्दों में इसका मूल्याङ्कन है। कवि की यह प्रथम नाट्य कृति भारतोद्धार के उद्देश्य से विरचित है।

महर्षिचरितामृत

महर्षि-चरितामृत नाटक के प्रणेता सत्यव्रत वेदविशारद बम्बई के निवासी हैं।[2] लेखक को संस्कृत के उच्च कोटिक कवि मेधाव्रत शास्त्री से लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। सत्यव्रत आरम्भ में माता-पिता से विहीन बालक गुजरात में अमरेली ग्राम के निवासी थे। उन्होंने बम्बई की आर्यविद्या-सभा के द्वारा संचालित गुरुकुल में १४ वर्ष की अवस्था से मायाशंकर के आचार्यत्व में अध्ययन किया और वैदिक धर्म में दीक्षित हो गये। वे १९२६ ई० में वेदविशारद हुए। उन्होंने अध्यापन और आर्यधर्म के प्रचार में अपना अधिकतम समय लगाया।

नाटक के पाँच अङ्कों में क्रमशः शिवरात्र्युत्सव, महाभिनिष्क्रमण, गुरुदक्षिणा, पाखण्ड-खण्डन तथा मृत्युंजय नामक महर्षि दयानन्द स्वामी-विषयक प्रकरण हैं। नाटक प्रेरणाप्रद है। इसके अनुसार—

विद्या तेजो वयः शौर्यं समुत्साह-यशस्विनः।
भवन्तु क्षेमसंसर्गान् भारतीया मनस्विनः ॥ ५.२

शिविवैभव

शिविवैभव के लेखक जग्गू शिंगरार्य का जन्म १९०२ और मृत्यु १९६० ई० में हुई। इनका निवास-स्थान यदुशैलपुर (मेलकोट) है। इनका ध्रुवचरित नाटक

१. इसका प्रकाशन इटावा से हो चुका है।
२. इसका प्रकाशन १९६५ ई० में बम्बई से हुआ है। इसकी प्रति गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट प्रयाग में है।

अप्रकाशित । इनकी अन्य अमुद्रित रचनायें है—पुरुषकार-वैभव (स्तोत्र), अन्योक्तिमाला, ऋतुवर्णन, ग्रन्थिज्वरचरित, वेदान्तविचारमाला इत्यादि ।

तीन अङ्को का शिबिवैभव भारतीय परम्परानुसार नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य से संवलित है।[1] इसका अभिनय स्वातन्त्र्य-दिन-स्मरणमहोत्सव के अवसर पर विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था ।

कवि विनयी थे, जैसा सूत्रधार के इनके विषय में नीचे लिखे वाक्य से स्पष्ट है—
अनेक काव्य-नाटकजातं विरचय्यापि न कुत्रापि प्रसिद्धिशुद्धिमध्यगच्छत ।

इसके पहले अङ्क मे शिवि का देश-विदेश मे आदर और प्रभाव बताया गया है । दूसरे अक मे मनोरंजक क्रीडाओ की चर्चा है ।

तृतीय अंक मे पालित कपोतद्वय लाये जाते है । उन्हे राजा उडाता है । महाश्वेत और मेघोदय नामक दो कबूतरो मे से कौन अधिक ऊँचाई तक उड़कर जाता है—यह राजारानी देख रहे थे । आकाश मे श्येन ने आकर एक कबूतर को मारकर नीचे गिरा दिया । राजा से श्येन का विवाद हुआ । राजा को अपना मास देना पड़ा । आगे की कथा पौराणिक रीति पर है ।

इसमे चलचित्र और दूरदर्शक यन्त्र की चर्चायें है । पहले और दूसरे अंक के बीच मे शुद्ध विष्कम्भक और उसके बाद उपविष्कम्भक है । यह विरल प्रयोग है ।

इस नाटक मे कही-कही एक ही पात्र लगभग २० पक्तियो का सवाद लगातार बोलता जाता है । यह समीचीन नही है । नाट्य निर्देश कतिपय स्थलो पर पाँच पंक्ति तक लम्बे हैं ।

परिवर्तन

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के धर्मशास्त्र विभाग के प्रथम अध्यक्ष राधाप्रसाद शास्त्री के पुत्र कपिलदेव द्विवेदी परिवर्तन नामक नाटक के प्रणेता हैं ।[2] इस सास्कृतिक परिवार मे पले कवि को स्वभावत आशा थी कि स्वतन्त्र भारत मे भारतीय संस्कृति का प्रेम जगेगा, पर उसे निराशा हुई और उसने इसी मनोवृत्ति मे १६५० ई० मे इस नाटक का प्रणयन किया है ।

लेखक के आरम्भिक दिन पजाब मे बीते, जहाँ उनके पिता वेद-वेदाङ्ग के अध्यापक थे । वहीं से पिता के श्रीचरण मे रहकर एम ए, शास्त्री, एम ओ. एल. एल-एल. बी आदि की उपाधियाँ प्राप्त करके वे भारत सरकार के न्याय-विभाग के विशेष कार्याधिकारी नियुक्त थे । फिर वे उत्तरप्रदेश सरकार के विदेश-कार्याधिकारी रहे । उन्होने सस्कृत-परिषद् की स्थापना और प्रवर्तन किया है । सूत्रधार के शब्दो मे कवि की यह रचना समय-प्रतिबिम्बी है । लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष प्रो० सुब्रह्मण्य अय्यर ने इसकी प्रशंसा मे कहा है—

पाश्चात्यसभ्यता-सम्पर्केण भारते यानि सामाजिकपरिवर्तनानि संजातानि

---

१. सस्कृत-प्रतिभा १६६१ ई० मे प्रकाशित ।

२. चतुर्थ सस्करण १६६६ ई० मे लखनऊ से प्रकाशित ।

तत्प्रतिबिम्बकमिदं रूपकं परिवर्तनमित्यन्वर्थं नाम बिभ्राणं सर्वेषां पाठकानां रसप्रतीतिं जनयतु ।

परिवर्तन में स्नेहलता नामक कन्या का विवाह उसके पिता शङ्कर अपना सर्वस्व बेंचकर १०,००० रुपये की कार दामाद शम्भुदत्त को देकर सम्पन्न कर लेते है। उन्हें अपना घर सेठ को बेंच देना पड़ता है। घर से लगे कुयें और उसकी सीढ़ी को ये नहीं देने के लिए सेठ को कह चुके थे, पर सेठ ने लेखक को घूस देकर उसे भी लिखा लिया। पत्नी को उसकी आय से जीविका चलाने के लिए कह कर शंकर बम्बई गये। वहाँ प्रचुर धन कमाकर लौटे तो सेठ के अधिकार में कुयें को देखा और पत्नी को सेवावृत्ति से काम चलाते पाया। न्यायालय में अभियोग सेठ के पक्ष में निर्णीत होने वाला था, पर आकाशवाणी से प्रभावित होकर न्यायाधीश ने उसे पंचायत में भेज दिया, जहाँ शंकर के पक्ष में निर्णय हुआ।

वासुदेव द्विवेदी के नाटक

उत्तर प्रदेश में देवरिया जिले के निवासी वासुदेव द्विवेदी वेदशास्त्री, साहित्याचार्य ने अपना सारा जीवन और सर्वस्व संस्कृत के प्रचार के लिए होम कर दिया है। उनकी वाणी और आचार-व्यवहार में कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति है कि वे आबाल-वृद्ध-वनिता—सबमें संस्कृत के प्रति रुचि उत्पन्न कर देते हैं। वासुदेव का काशी में अपना स्थापित किया हुआ सार्वभौम संस्कृत प्रचारकार्यालय है, जो यथानाम बीसों वर्षों से कार्यरत है। वे भारत में प्रायः भ्रमण करते हुए व्याख्यान देकर और स्वरचित नाटकों का अभिनय करवा कर संस्कृत की सनातन गरिमा को धूमिल नहीं रहने देना चाहते। उनके द्वारा स्थापित विद्यालय में संस्कृत-विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के लिए छात्रों की पढ़ाई की व्यवस्था है।

वासुदेव ने प्रायः छोटे नाटक एकाङ्की लिखे हैं, जो संस्कृत प्रचार-पुस्तक माला में छपे हैं। ये सभी नाटक भारतीय-चरित्र-निर्माण के लिये सशक्त हैं और इनमें चरितनायकों का उच्च आदर्श झलकाया गया है। इनके कतिपय नाटक हैं—कौत्सस्य गुरुदक्षिणा, भोजराज्ये-संस्कृत-साम्राज्यम्, स्वर्गीय-संस्कृत-कविसम्मेलन, बालनाटक। भोजराज्ये संस्कृत-साम्राज्यम् के प्ररोचन में लेखक ने कहा है—'मध्यकालीन भारत का एक स्वर्णमय सांस्कृतिक दृश्य, जिसकी पुनरावृत्ति के लिए प्राणपण से प्रयत्न करना प्रत्येक स्वाभिमानी भारतीय नागरिक का परम पवित्र कर्तव्य है।' सभी नाटकों में कवि ने रोचक संविधानों का संयोजन करके उनकी कथावस्तु को हृदय-स्पर्शी बनाया है।

क्षमाशीलो युधिष्ठिरः

क्षमाशीलो युधिष्ठिरः नामक लघु नाटक के प्रणेता ठाकुर ओम् प्रकाश शास्त्री हरियाना प्रदेश में अध्यापक हैं।[1] इसके तीन दृश्यों में युधिष्ठिर के विद्यार्थी जीवन के तीन प्रसंग हैं। द्रोणाचार्य ने उन्हें शिक्षा दी—सदा क्षमामाचरेत्।

---

१. भारती पत्रिका ३.६ में प्रकाशित।

एक दिन युधिष्ठिर के पाठ न सुनाने पर आचार्य ने उन्हें पीटा। कई दिनों के बाद युधिष्ठिर ने द्रोण से कहा कि मैं पाठ का मनन कर रहा था। आपको कैसे पाठ सुना सकता था? द्रोण ने कहा—

उपदेशं प्रकुर्वाणा लभ्यन्ते बहवो नराः।
स्वयमाचार-सम्पन्ना दुर्लभा भुवि मानवाः॥

अमर्षमहिमा

अमर्षमहिमा के लेखक के० तिरवेङ्कटाचार्य मैसूरवासी हैं।[1] *इसके एक अङ्क में पाँच दृश्य हैं। इसमें रामचन्द्र नामक पदाधिकारी घर पर भोजन स्वादहीन होने पर बिना खाये ही पत्नी से लड़कर कार्यालय चला जाता है। वहाँ वह* अपने सहायक चन्द्रशेखर से अकारण ही झगड़ पड़ता है। चन्द्रशेखर भी जब घर पहुँचता है तो अपनी पत्नी से अकारण भिड़ जाता है। सरोज भी अपनी नौकरानी कालिका पर बरस पड़ती है। इसमें अकारण अमर्ष की शृंखला बढ़ती हुई अनेक व्यक्तियों को जकड़ती है।

सिंहलविजय

सिंहल-विजय के प्रणेता सुदर्शनपति उड़िया हैं।[2] पाँच अङ्कों के इस नाटक में उड़िया-गीतों की विशेषता है। अङ्कों का विभाजन दृश्यों में हुआ है। सिंहल-विजय में उड़ीसा के द्वारा सिंहल-विजय की पुरानी कथा रूपकायित है।

स्कन्द-शङ्कर खोत के नाटक

नागपुर के साहित्यालंकार स्कन्द-शङ्कर-खोत और उनकी पत्नी कमलाशंकर खोत दोनों ने संस्कृत में रूपक लिखे और उनका प्रकाशन किया है। स्कन्द शंकर *ने मालाभविष्य १९५२ ई० में, लालावैद्य १९५५ ई० में और हा हन्त शारदे १९५६* ई० में और कमला-शंकर ने १९५२ ई० में ध्रुवावतार का प्रणयन किया।[3] स्कन्द के सभी नाटक आधुनिक शैली में प्रणीत हैं। इनमें नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य नहीं हैं। अंक प्रवेशों में विभक्त हैं।

माला-भविष्य

स्कन्द-शंकर ने माला-भविष्य को लघु नाटक कहा है। सोद्देश्य रचना के तीन प्रवेशों में कथाद्वार से कवि ने सिद्ध किया है—

राशिभविष्यं वितथं कल्पितं कृत्रिमम्।

संवाद पर्याप्त चटुल है। यथा चाणकिक का कहना है—

---

१. मैसूर से अमरवाणी में १९५१ ई० में प्रकाशित।
२. १९५१ ई० में बेरहामपुर से प्रकाशित।
३. इन सबका प्रकाशन नागपुर से खोत-परिवार ने किया है।

चणकं जोपकरम् । चणक स्वादु भृष्टम् । चणकं चण्डम् तिग्मम् ।

बम्बई के जीवन का परिहासात्मक चित्रण रुचिकर है। नाटक में माला की चोरी प्रधान घटना है।

खोत ने लालावैद्य की प्रस्तावना में कहा है—

केवलं मनोविनोदार्थम्, वाचयितव्यम्, नाटयितव्यम्, प्रहसनात्मकम्, लघुनाटकम्।

इस तीन अङ्क के नाटक के पात्र हैं लाला वैद्य, जो पिता के पंजीयन-प्रमाण से अपना काम चलाते थे, ढुण्ढुमवैद्य जो गलियों में घूम-घूम कर चिल्लाकर दवायें बेचते थे, भस्मवैद्य और जलवैद्य जो भस्म (राख) और जल से चिकित्सा करते थे। स्त्रियों में मूलोपजीविनी जड़ियाँ बेचती थी। शोफिका खाँसीग्रस्त थी। लालावैद्य शोफिका की चिकित्सा के लिए प्रतिदिन उसकी परीक्षा करते थे। उनके पांच मास दवा करने पर भी शोफिका की खाँसी न गई। उसके पास मूलोपजीविनी को देखकर वे चकित हुए। ढुंढुम वैद्य भी वहाँ आ गये। वे २५ रुपये लेकर बुड्ढे को बालक बनाने का दावा करते थे। ढुंढुम की दवा ली गई।

इन तीनों को पुलिस ने पकड़ा कि पंजीयन प्रमाण दिखाओ। तीनों ने आश्चर्य प्रकट किया कि यह क्या बला है? तीनों को न्यायालय में पहुँचा दिया गया। जलवैद्य और भस्म को वहाँ पकड़ा गया। उनके ऊपर आरोप था कि बिना पंजीयन-प्रमाण के इनमें से किसी ने खाँसी के रोगी को दवा दी है। लालावैद्य ने कहा कि मेरे पिता का पंजीयन उत्तराधिकार रूप में मुझे प्राप्त है। ढुंढुम वैद्य ने लोगों के दिये प्रमाण-पत्र दिखाये। जलवैद्य और भस्मवैद्य ने कहा कि हम तो देवताओं के प्रसाद देते हैं। उसका पंजीयन प्रमाण-पत्र कैसा? लालावैद्य को २०० रुपये का दण्ड मिला।

हा हन्त शारदे को लेखक ने स्वतन्त्र सामाजिक प्रहसन कहा है। उसको इस रचना पर स्वर्ण-पुरस्कार मिला था। इसमें कीर्ति के पुतले का विवाह मूर्ति की पुतली से होता है। कीर्ति अपने पुतले को कीर्ति के द्वार पर लाकर गाती है—

स्वहस्ततालशिबिकारूढः कौशेयाम्बरभूषितदेहः। गच्छति पुत्तलः।

हरि उस विवाह का पुरोहित बन बैठा। मंगलवचन के बाद भाई की पोथी के पृष्ठों को फाड़ कर उस पर भोजन दिया गया। मूर्ति की माता शारदा अपने पति की पढ़ाई-लिखाई से उखड़ी-उखड़ी-सी रहती थी। गोविन्द रिसर्च करने में निमग्न था। उसे उसकी पत्नी निरा मौर्ख्य समझती थी। वह शिवाजी के जन्म के प्रमाण वाले कागज पर सोमरस लाती है। पी लेने के बाद गोविन्द ने देखा कि पत्नी ने महत्त्वपूर्ण प्रमाणक की दुर्दशा कर दी। पत्नी ने कहा—उसे मैंने अग्नि को अर्पित कर दिया। पति के खेद करने पर उसने कहा कि बहुत से

कागज तो है। एक कागज से क्या होता है? माई ने आकर देखा कि मूर्ति ने पुस्तक के उन पत्रों को फाड डाला है, जिनमे कल की परीक्षा की सामग्री थी। पिता ने कन्याओं और स्त्रियों के पढ़ने पर एक व्याख्यान दे डाला।

कमला-शंकर खोतने ध्रुवावतार की रचना १९५२ ई० मे की।[1] इसमे नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य भी हैं। प्रस्तावना में विदूषक और सूत्रधार परस्पर निन्दा करके दर्शक को हँसाते हैं। विद्यार्थी नामधारी है। उनमे से एक चाकचक्य है, जो अच्छे वस्त्र का प्रशंसक है। सोमदत्त चायपान का इच्छुक है। बोधक (शिक्षक) प्रह्लाद और ध्रुव की चरित-चर्चा करता है। एक आदर्श बालक सुधीर को ध्रुव का नवावतार बताया गया है।

इनके अतिरिक्त खोत ने अरघट्टघट नामक रूपक की रचना की है।

नीर्पाजे भीमभट्ट के नाटक

नीर्पाजे भीमभट्ट ने काश्मीर-सन्धान-समुद्यम नामक नाटक विद्यार्थी-जीवन में लिखा, जब वे दक्षिण कर्णाटक मे परेडाल-महाजन-संस्कृत-महापाठशाला मे साहित्य-शिरोमणि उपाधि के लिए चतुर्थ वर्ष में पढते थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा कम्मेज-संस्कृत-पाठशाला में हुई थी। इनका जन्म १९०३ ई० में हुआ था। इनके पिता शङ्कर भट्ट संस्कृत के उच्चकोटिक विद्वान् थे। लेखक की आवास भूमि दक्षिण कनारा मे कल्यान है।

कवि का दूसरा नाटक हैदराबाद-विजय है। इन दोनो रूपकों का इतिवृत्त समसामयिक होने के कारण वास्तविक है।

काश्मीर सन्धान-समुद्यम का अभिनय[2] परेडाल महाजन विद्यालय के ४२ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर हुआ था। कर्णाटक के कासरगोड-प्रदेश मे प्रजा सोशलिस्ट राजकीय सम्मेलन के अवसर पर द्वितीय बार अभिनय हुआ।

नाटक का आरम्भ श्यामाप्रसाद मुखर्जी की एकोक्ति से होता है, जिसमे वे अर्थोपक्षेपक की भाँति आगे के दृश्य की भूमिका प्रस्तुत करते है। वे कश्मीर के विभाजन के विरुद्ध है। द्वितीय दृश्य का आरम्भ लियाकत अली खाँ की अर्थोपक्षेपक-रूप एकोक्ति से होता है। विश्वराष्ट्र की ओर से ग्राहम कश्मीर की समस्या सुलझाने आते है। श्यामाप्रसाद आवश्यकता पडने पर युद्ध द्वारा काश्मीर समस्या का समाधान भारत के पक्ष मे चाहते हैं। नेहरू अहिंसा के द्वारा कार्यसिद्धि के

---

१. वस्तुतः यह भी स्कन्द-शकर की ही रचना है यद्यपि लेखक का नाम ऊपर कमला है।

२. इसका प्रकाशन अमृतवाणी १९५२-५३ के ११-१२ अङ्कों मे हुआ है।

राजेन्द्र ने पूछा कि वह साबुन की टिकियाँ कहाँ है ? वह भी उसके पास न मिली। तभी दूर पड़ी एक साबुन की टिकिया मिली तो राजेन्द्र को विश्वास पड़ा कि यह सच बोल रहा है। उसे १० रुपये दे दिये और पता बता दिया कि सुविधा से लौटा दे। वह बस पकड़ कर चला गया। एक बुड्ढा आया और पूछने लगा कि यहाँ कोई साबुन की टिकिया पड़ी थी क्या ? वह मेरी थी। तब तो राजेन्द्र के मुंह से निकला—

दैवमपि साधूनां प्रातिकूल्यमसाधूनां चानुकूल्यं विदधदिव सन्दृश्यते।

विदेशी शैली पर विरचित यह नाटक एच० ए० मनरो के व्याख्यान पर लेखक ने आधारित किया है।

रामानन्द

रामानन्द नाटक के रचयिता वी० श्रीनिवास भाट दक्षिण उडुपि के संस्कृत महाविद्यालय में पण्डित थे।[1] इसमें पाँच अङ्क हैं, जिनमें से प्रत्येक दृश्यों में विभक्त है। इसमें उत्तररामचरित की कथा रूपकायित है।

सुरेन्द्रमोहन के नाटक

कलकत्ते के सुरेन्द्रमोहन ने कतिपय लघु नाटक बालोचित लिखे हैं, जिनमें से वैद्यदुर्ग्रह, काञ्चनमाला, पञ्चकन्या, प्रजापतेः पाठशाला, अशोककानने जानकी तथा वणिक्सुता प्रसिद्ध हैं।[2]

वैद्यदुर्ग्रह में किसी अन्धी वृढ़िया के नेत्रों की चिकित्सा करते हुए उसकी सभी वस्तुयें चुरा लेने वाले वैद्य की कथा है। आँख में ज्योति पुनः आ जाने पर जब वैद्य ने पारिश्रमिक माँगा तो न्यायालय में वुढ़िया ने बताया कि जब अन्धी थी, तब तो मेरी वस्तुयें मुझे टटोलने पर मिल जाती थीं। अब वे नहीं मिलतीं। कांचनमाला में वह विदेशी कहानी ली गई है, जिसमें कोई कन्या अपने स्पर्श से स्वर्ण बनाने की शक्ति परी से पाती है, किन्तु उसके छूने पर खाने-पीने की वस्तुओं के स्वर्ण होने पर परीशानी बढ़ी। उसने पुनः परी से प्रार्थना करके अपनी शक्ति दूर कराई। पञ्चकन्या में शिक्षा, शक्ति, सेवा, प्रीति और शान्ति अपनी-अपनी उच्चता प्रतिपादन करती हैं। अन्त में उनको प्रतीत कराया जाता है कि इन सबका समान महत्त्व है। इसका आधार उपनिषद् की इन्द्रियों की परस्पर स्पर्धा वाली कथा है।

प्रजापतेः पाठशाला में देव, दानव और मानव पढ़ते हैं। एक दानव पढ़ता है— ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। तीनों को समावर्तन में प्रजापति ने उपदेश दिया—द, जिससे दानवों ने समझा कि दूसरों को दण्ड देना, दर्प करना यह आचार्य का उपदेश है। दूसरे दानव ने समझा कि दीन-हीन को दुर्गतिसागर में गिराओ—यह यह उपदेश है। ब्रह्मा ने समझाया—

---

१. १९५५ ई० में लेखक ने प्रकाशित किया था।

२. इन सबका प्रकाशन मंजूषा में हो चुका है।

दीने दया विधातव्या जीवेषु दुर्बलेषु च ।

तीनों को क्रमशः दम, दान और दया का उपदेश दिया। यह नाटक उपनिषद् की कथानुसार है।

वणिक्सुता की कथानुसार कोई समृद्ध नवयुवती विधवा हिन्दू-धर्म की पारम्परिक रीतियों का समर्थन करती है। 'अशोककानने जानकी' में सीता, विकटा, संकटा, त्रिजटा और मन्दोदरी का संवाद है। मन्दोदरी सीता के प्रति आदर व्यक्त करती है और सब से उसकी रक्षा करने के लिए निवेदन करती है।

सुरेन्द्र के अति लघु एकाङ्की रूपक भाषा और भाव की दृष्टि से बालकों के लिए अनुत्तम हैं।

अन्धैरन्धस्य यष्टिः प्रदीयते

अन्धैरन्धस्य यष्टिः प्रदीयते नामक अतिलघु एकाङ्की के प्रणेता आधुनिक बंगाल के २०वीं शताब्दी के महामनीषियों में अग्रगण्य डा० क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय मंजूषा के सम्पादक रहे हैं। इनका जन्म कलकत्ता के अन्तर्गत जोड़ा साँको में हुआ था। इनके पिता शरच्चन्द्र और माता गिरिबाला देवी थीं। इनका जन्म १८९६ ई० में और मृत्यु १९३१ ई० में हुई।

क्षितीश मैट्रिक से एम० ए० तक सभी परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण थे। फिर वे शास्त्री, विद्यावाचस्पति उपाधियों से समलङ्कृत हुए। उन्होंने १९४६ ई० में Technical Terms and Technique of Sanskrit Grammar विषय पर निबन्ध प्रस्तुत करके डी. लिट्. उपाधि अर्जित की। क्षितीश ने आशुतोष महाविद्यालय में दो-तीन वर्ष अध्यापन करके कलकत्ता-विश्वविद्यालय में तुलना-मूलक-भाषातत्त्व-विभाग में ३५ वर्ष तक अध्यापन किया। ये वेद और व्याकरण विषय के विशेषज्ञ थे। उन्होंने बंगला और अंगरेजी में अनेक उच्चकोटिक और अनुसन्धानात्मक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए उन्होंने अपने प्रयास और व्यय से सुरभारती, अंगरेजी में Calcutta Oriental Journal और संस्कृत में मंजूषा पत्रिकायें चलाईं। वे पूना से निकलने वाले Oriental Literary Digest के सम्पादक थे। उन्होंने सात वर्ष संस्कृत-साहित्य-परिषद् पत्रिका का सम्पादन किया। वे रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा भी होमियोपैथी द्वारा करते थे। वे महादेव को अपना दीक्षागुरु मानते थे।

अन्धैरन्धस्य यष्टिः प्रदीयते नामक नाटक में[1] किसी महाराज की कथा है, जो गंजे होते जा रहे थे। अमात्य ने कहा कि नगर में वाराणसी से मुकुन्दानन्द गोविन्द स्वामी आये हैं। वे आपका रोग दूर कर देंगे। महाराज ने उन्हें मोदकानन्द नाम से सम्बोधित किया। स्वामी ने अपना नाम ठीक उच्चारण करने के लिए कहा

१. मंजूषा के १९५५ ई० के जनवरी अंक में प्रकाशित।

तो महाराज ने उन्हें मोदकमुकुन्द महाशय कहा। बहुत तर्क-वितर्क के पश्चात् महाराज ने समझौता किया और उनको मदनानन्द कहा। स्वामी ने रोग का विवरण सुनकर कहा—आप पूर्व जन्म के पापों का प्रक्षालन करने के लिए होम करें, दक्षिणा दें और भोजन दें। कुछ ही दिनों में ललनाओं जैसे केश हो जायेंगे।

महाराज ने अमात्य से कहा—यह सब करो। यह सुनकर स्वामी की पगडी उनकी प्रसन्नता से उड़ गिरी। राजा ने देखा कि वह तो पक्का गंजा है। उसने उसे भगाते हुए कहा—

'न खल्वन्धेन नीयमानस्य सरणिमनुसर्तुमिच्छामि'।

वह नाटक विदेशी शैली पर विकसित है।

छायाशाकुन्तल

छायाशाकुन्तल के रचयिता जीवनलाल पारीख सूरत के महाविद्यालय में व्याख्याता रहे हैं।[1] इस एकाङ्की नाटक में उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क के समान छायाशकुन्तला की कल्पना की गई है। इसकी कथा के अनुसार दुष्यन्त के द्वारा अस्वीकृत शकुन्तला मारीच के आश्रम से पुनः कण्व के आश्रम में आ जाती है। जब वहाँ दुष्यन्त आते हैं। वहाँ उसे लेकर तापसी वेश में मेनका की सखी सानुमती आती है, जिसका स्वागत आश्रम-देवता कुसुमार्घ्य से करती है। उनकी बातचीत से ज्ञात होता है कि कण्व शकुन्तला के प्रत्याख्यान के पश्चात् हिमालय के अपर प्रदेश में चले गये थे। वहाँ केवल प्रियंवदा रहती थी।

शकुन्तला तिरस्करिणी के प्रभाव से छाया रूप में थी। उसने दुष्यन्त की वाणी सुनी और कहा—

कथं नु स्निग्धगम्भीर आर्यपुत्रस्येव वचनोद्गारोऽयम्।

आदिकवि

आदिकवि नामक रूपक के प्रणेता बुद्धदेव पाण्डेय दयानन्द कन्या विद्यालय मीठापुर, पटना में अध्यापक रहे हैं।[2] रत्नाकर डाकू थे। उन्होंने ऋषियों को एक दिन पकड़ा। "मेरे पाप का भागी कोई नहीं है" यह जानकर वाल्मीकि ने मुनियों से दीक्षा ली। फिर व्याध के द्वारा क्रौञ्च मारने की कथा है।

प्रतीकार

प्रतीकार नामक एकाङ्की नाटक के लेखक डा० कृष्ण लाल नादान कमला नगर दिल्ली के निवासी हैं।[3] सम्प्रति वे दिल्लीविश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में रीडर हैं। डा० कृष्ण लाल संस्कृत के उच्च कोटि के कवि हैं। उनकी रचना

---

१. छायाशाकुन्तल का प्रकाशन सूरत से १९५७ ई० में हुआ है।

२. इसका प्रकाशन भारती ६.१ में हो चुका है।

३. इसका प्रकाशन भारती ७.४ में हो चुका है।

शिञ्जारव में राष्ट्रजागरण के लिये प्रोत्साहक पद्य हैं। नादान ने इसे भारती-पत्रिका की १९५६ ई० की प्रतियोगिता के लिए लिखा। इस पर प्रथम पुरस्कार मिला था।

प्रतीकार की कथा के अनुसार सुजाता नामक विधवा का पुत्र श्वेतकेतु था। उसने अष्टावक्र से कह दिया था कि तुम्हारे पिता नहीं हैं। उद्दालक ने अष्टावक्र को पूरी कथा सुनाई कि १६ वर्ष पूर्व तुम्हारे पिता कहोड को जनक की सभा के विद्वान् वन्दी ने हरा दिया और समयानुसार तुम्हारे पिता को नदी में उसने डुबवा दिया। मैं तुम्हारा पितामह हूँ और श्वेतकेतु तुम्हारा मामा है।

जनक की सभा में अष्टावक्र विद्वान् बन कर पहुँचे। द्वारपाल ने उन्हें रोका। अन्त में वे जनक से मिले। दूसरे दिन विवाद हुआ। वन्दी हारा। उसने कहा कि किसी दूर द्वीप में आपके पिता को वन्दी बनाया गया है। उनको शीघ्र बुलाया गया और अष्टावक्र से उनका मिलन हुआ।

भक्तिचन्द्रोय

भक्तिचन्द्रोदय नाटक के रचयिता श्री वेङ्कटकृष्ण राव हैं।[1] तीन अङ्कों का यह नाटक भारतीय परम्परानुसार सम्पन्न है। इसके आरम्भ में नान्दी और प्रस्तावना तथा अन्त में भरतवाक्य हैं। विदेशी प्रभावानुसार नाट्य-निर्देश कुछ लम्बे हैं।

भक्तिचन्द्रोदय समान नाम वाले प्रबोधचन्द्रोदय, संकल्प-सूर्योदय आदि से इस बात में भिन्न है कि इसमें प्रतीक तत्त्व का अभाव है। इसका नायक पुरुषोत्तम भगवान् नालन्दा ग्राम में किसी जीर्ण कुटी में अकेले बैठा हुआ मानवता की दुर्बलताओं पर खेद प्रकट कर रहा है कि वे विवेक को नहीं ग्रहण कर रहे हैं। वे अपने ही नाश के लिए वस्तुयें निर्माण कर रहे हैं। नारद ने आकर बताया कि लोग ऐटम बम ही नहीं, हाइड्रोजन बम भी बना रहे हैं। आपने लोगों को विश्वात्म-वादी जो बनाया है। वे सोचते हैं कि अपने लिए ही अखिल विश्व है। नारद और विष्णु गाते-बजाते हैं। नारद ने कहा कि मैं आत्मशान्ति के लिए त्रिवेणी पर समाधिस्थ वेदव्यास से मिलने चला।

द्वितीय अङ्क में नारद वेदव्यास से मिलते हैं। व्यास ने अपना दुःखड़ा रोया कि वेदोपनिषद् बनाया और शङ्कर-रामानुजादि को मैंने धर्म, प्रचार करने के लिए नियुक्त किया। पर लोग अपने ही को सब कुछ मान बैठे हैं। वे पक्षी की भाँति आकाश में और मगर की भाँति समुद्र में विचरण करते हैं। व्यास ने पूछा कि पुरुषोत्तम का क्या हाल है? नारद ने बताया कि सर्वतः व्याकुल होकर नालन्दा के खण्डहर में कुटी बनाकर तप कर रहे हैं। उसी समय अशरीरिणी वाणी ने कहा कि सगच्छध्वम् का प्रचार हो।

१. मञ्जूषा में १९५७ ई० में प्रकाशित।

तृतीय अङ्क में मैसूर के वृन्दावन-उद्यान में शंकर-रामानुज-मध्वादि हैं। वे भक्ति की महिमा का गान करते हैं। वे अपनी-अपनी कठिनाइयाँ बताते हैं कि लोगों में ऐकमत्य नहीं है। सबने निर्णय लिया कि वेलूरुग्राम के देवालय की भित्ति पर उट्टंकित श्लोक—"यं शैवा समुपासते" आदि का सार्वत्रिक प्रेम और सौहार्द के लिए प्रचार करें। यही भक्तिचन्द्रोदय है।

हरिहर त्रिवेदी के नाटक

मध्यभारत के हरिहर त्रिवेदी ने नागराज-विजय नामक एकाङ्की नाटक की रचना की है।[1] साहित्याचार्य डा० त्रिवेदी प्रयाग विश्वविद्यालय के एम० ए०, डी० लिट् हैं। उन्होंने मध्यभारत में राजकीय सेवा में उच्च पदों पर रहकर संस्कृत और भारतीय संस्कृति की सेवा की है। वे मध्य प्रदेश के पुरातत्त्व-विभाग के उपसंचालक पद से विश्रान्त होकर अपनी जन्मभूमि इन्दौर में रहते हैं।

नागराज-विजय का अभिनय उज्जयिनी में हुआ था। नायक नागराज उज्जयिनी से शकों के पैर उखड़ने के पश्चात् कुषाणों को भारत से भगाने के लिए योजना सोच रहा है। वह कहता है—

हित्वा स्वां विदिशातिक्रमपरैः पद्मावतीमाश्रितैः
सद्यः कान्तिपुरीं तथा च मथुरामाक्रम्य मे पूर्वजैः।
या कीर्तिः समुपार्जितेन्द्रभवने जेगीयमाना भृशम्
सा स्थैर्यं कथमाप्नुयादविजिते देशद्रुहां सञ्चये॥

नागराज समर नायक पद पर नियुक्त हुआ। मथुरा में कुषाण रहते थे। उन पर चारों ओर से आक्रमण करके विजय प्राप्त की गई। विविध गणों के नायकों ने संघ बनाया था। अन्त में भरतवाक्य है—

सस्यरसैः परिपूरितभागा प्रतिपदमेतु विलासम्॥
सत्यामोघमंत्रतरुशोभितसर्वोदयफलभूषा
पूर्णा भवतु मनीषा॥
रम्यवनैर्निर्झरतरुकुसुमावलिभिः कृतबहुवेषा।
जयतुतरां भरतावनिरेषा॥

डा० त्रिवेदी का अन्यतम नाटक पाँच अङ्कों में निबद्ध गणाभ्युदय है।[2] इसका अभिनय उज्जैन में हुआ था।

भारत में गणराज्यों का अभ्युदय, उन पर आई हुई विपत्तियाँ आदि इसमें कतिपय रोचक संविधान अपनी ओर से जोड़कर इसके घटना-वैचित्र्य को लेखक ने अधिक सरस बनाया है।

---

१. संस्कृत-प्रतिभा १९६० ई० में प्रकाशित।
२. संस्कृत-रत्नाकर दिल्ली से १९६६ ई० में प्रकाशित।

नारायणशास्त्री के नाटक

'नराणा नापितो धूर्तः' के लेखक नारायण शास्त्री काङ्कर राजस्थान में जयपुर के निवासी हैं।[1] इस एकाङ्की के चार लघु दृश्यों मे रामकिशोर और कमला की कथा है। कमला आभूषणादि हेतु धन अर्जित करने के लिए अपने निठल्ले पति को दूसरे गाँव में जाने के लिए सहमत कर लेती है।

रामकिशोर दूसरे दिन चलता बना। रात हो गई। वन मे वह किसी बड़े वृक्ष पर चढ कर विश्राम का समारम्भ करने ही वाला था कि उससे एक दानव निकला। उसने रामकिशोर को देखा और कहा कि आज स्वादिष्ट मानव-मांस खाने को मिला। रामकिशोर ने धैर्य न छोडा। वह बोला कि तुम भी भले मिले। अन्य अनेक दानवों की भाँति तुम्हे भी इस थैले मे बन्द करना है। उसको दर्पण दिखाया। दानव ने उसमे अपनी छाया देखकर समझा कि सचमुच ;यह दानव को पकड़े हुए है। वह डर कर बोला कि तुम्हारा उपकार करूँगा। मुझे छोड़ दो। रामकिशोर ने १०,००० स्वर्ण मुद्रा और दो सौ रत्न हार की माँग पूरी होने पर उसे छोड़ने को कहा। दानव ने उसे यह सब दिया। उसने आज्ञानुसार कन्धे पर रामकिशोर को घर पर पहुँचा दिया और बोला कि भविष्य मे भी सहायता करने के लिए स्मरण करते ही आना होगा।

दानव ने सारी कथा अपने मामा से कही। मामा ने कहा कि वह नाई होगा। उस धूर्त ने तुम्हें मूर्ख बनाया। मुझे उसके पास ले चलो। रामकिशोर ने दानव के मामा को देखा तो ५,६ दर्पण लगाकर बोला—आजा, तुम्हें भी पकडूँ। वह भी उसके वश मे आ गया। उससे प्रतिदिन सौ-सौ मुद्रा लेने की शर्त कराई।

छोटे बालकों को ऐसे लघु रूपको मे विशेष अभिरुचि होगी। यह विदेशी शैली पर रूपित है।

एकाङ्की स्वातन्त्र्य-यज्ञाहुति में शास्त्री ने १९४२ ई० के स्वातन्त्र्य-सेनानियों के बलिदान का वर्णन किया है। अंगरेजी शासन के दमन-चक्र का विस्तारपूर्वक वर्णन इसमे किया गया है।[2]

भैमीनैषधीय

भैमीनैषधीय के लेखक सीतारामाचार्य है।[3] इसके एक अंक मे चार दृश्य हैं। इसमे नल और दमयन्ती की कथावस्तु है। लेखक ने इसका प्रणयन भारती की एकाङ्की प्रतियोगिता के लिए किया था।

ध्यानेश नारायण के नाटक

ध्यानेश नारायण रवीन्द्र-भारती विश्वविद्यालय के प्राध्यापक हैं। उन्होने

---

१. मधुरवाणी पत्रिका मे १९५७ ई० में प्रकाशित।
२. १९५६ ई० में दिल्ली की संस्कृत-रत्नाकर में प्रकाशित।
३. १९५७ ई० में जयपुर मे भारती पत्रिका मे प्रकाशित।

१९६१ ई० में रवीन्द्र के कतिपय नाटकों और गीतों का संस्कृत में उत्तम अनुवाद करके कीर्ति अर्जित की है। उन्होंने दस्युरत्नाकर की रचना विश्वेश्वर विद्याभूषण के साथ की है।[1] विश्वेश्वरविद्याभूषण वाल्मीकि-संवर्धन और चाणक्य-विजय आदि रचनाओं के लिए प्रख्यात हैं।

दस्युरत्नाकर एकाङ्की है। इसमें चार दृश्य हैं। नान्दी, प्रस्तावना और भरत-वाक्य का इसमें अभाव है। इसके नायक रत्नाकर आगे चलकर वाल्मीकि हुए। उनके चरित्र के विकास की घटनायें इस लघु रूपक में वर्णित हैं।

एक दिन ब्रह्मा और नारद उस वन में प्रवेश करते हैं, जहाँ रत्नाकर अपने साथी किरातों के साथ रहते हैं। एक किरात ने नारद को बाँधा और कहा—धन दो। दूसरे ने ब्रह्मा को बाँध कर यही कहा। उन्होंने कहा कि दया करो, हम दरिद्र हैं। उनके कहने पर रत्नाकर कुटुम्बियों से पूछने गये कि क्या मेरे पाप में भागी बनोगे?

रत्नाकर के घर का कोई सदस्य उनके पाप का भागी बनने के लिए सहमत न था। तब तो ऋषियों से मिलने पर उसने कहा—मेरा उद्धार करें। ब्रह्मा ने कहा कि इसीलिए तो हम आये हैं। उन्होंने तप करने के लिए कहा।

चतुर्थ दृश्य में तमसा-तट पर रत्नाकर रामधुन में तल्लीन हैं। बहुत दिनों के बाद ब्रह्मा और नारद फिर वहाँ आये और कहा कि तुम्हारा नाम वाल्मीकि रहेगा। आप रामचरित लिखें। नारद ने राम-विषयक दिव्य गान किया—

जय सीतापते सुन्दरतनो मानसवन-रंजन।
नवदूर्वादल-श्यामल-रूप जनगण-भयभंजन॥

सावित्रीनाटक

सावित्रीनाटक के प्रणेता श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी पूर्वी उत्तरी प्रदेश में देवरिया के निवासी हैं। उनके प्रधान गुरु रामयश त्रिपाठी थे। श्रीकृष्ण के गम्भीर और बहुक्षेत्रीय ज्ञान का परिचय उनकी अर्जित उपाधियों से मिलता है। वे व्याकरण, साहित्य, सांख्य-योग और पुराणेतिहास के आचार्य हैं, साथ ही एम० ए० और साहित्यरत्न हैं। श्रीकृष्ण ने हरिहर-संस्कृत-पाठशाला में प्रधानाध्यापक पद को समलङ्कृत किया था और संस्कृत-विश्वविद्यालय में भी अपने पौराणिक ज्ञानप्रकाश को दीपित करते हुए प्रोफेसर रहे। नाटक की रचना कवि ने १९५६ ई० में की।[2]

सावित्रीनाटक के अतिरिक्त श्रीकृष्ण की बहुविध रचनायें हैं मुख्यतः हिन्दी में। उनका अष्टादश-पुराण-परिचय उच्चकोटिक गवेषणात्मक ग्रन्थ हैं। उनकी अन्य

---

१. मंजूषा में १९५७ ई० में प्रकाशित।

२. 'रामचन्द्राभ्रयुग्माब्दे वैक्रमे पूर्णिमातिथौ' इत्यादि।

पुस्तकें-योगदर्शन-समीक्षा, सांख्यकारिका और पुराणतत्त्व-मीमांसा हैं।[1] इनके कतिपय ग्रन्थ उत्तरप्रदेश-शासन से पुरस्कृत है।

सावित्रीनाटक अभिनेय एकाङ्की है। इसकी कथा उस समय से आरम्भ होती है, जब सावित्री के पति सत्यवान् की अवस्था समाप्तप्राय है। नारद चिन्तित थे कि यह क्या हो रहा है तभी सत्यवान् का प्राण लेने के लिए उतावले यम मिल गये। उन्होंने बताया कि मेरे दूत सती सत्यवती के तेज से परावृत हो गये। अब मैं इस काम को पूरा करके रहूँगा। नारद ने कहा कि सतियों के प्रभाव के सामने तुम्हारी भी न चलेगी।

सावित्री को अपशकुन हो चुके थे। वह सत्यवान् के साथ थी। लकड़ी काटने के लिए सत्यवान् निकट के पेड़ तक ही रुक गया। सत्यवान् को सिर में वेदना हुई। वह वृक्ष से गिर पड़ा। सावित्री ने भगवान् से प्रार्थना की कि मेरे प्राणनाथ की रक्षा करें। तब तक यम पाश लेकर आ पहुँचे। यम ने देखा की सत्यवान् का सिर सती की गोद में है। तब तक प्राणहरण कैसे हो? सावित्री ने कहा कि तुम्हारे साथ मैं भी जाऊँगी। यमराज ने उसे समझाया। वह प्राण लेकर चला। वह भी पीछे लगी। अन्त में वह यम को सतीत्व से प्रभावित करके पति का प्राण पा गई।

श्रीकृष्ण-दौत्य

भास्कर केशव ढोक ने श्रीकृष्ण-दौत्य नामक लघुनाटक का प्रणयन किया है।[2] इसमे नान्दी है, किन्तु प्रस्तावना और भरतवाक्य नहीं हैं। भीम ने युधिष्ठिर से पूछा कि क्या आपने दुर्योधन का सन्देश सुना है? युधिष्ठिर ने कहा कि हाँ, वह युद्ध के बिना राज्य देना नहीं चाहता। तभी कृष्ण द्रौपदी के साथ वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिर ने कहा कि यद्यपि दुर्योधन का युद्ध-सन्देश आया है, पर एक बार और उससे सन्धि वार्ता करें। भीम और द्रौपदी इसके विरोध में थे। सन्धि के अनुसार युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत के साथ अन्य जो ग्राम वह चाहे, मिल जाय तो दुर्योधन के साथ युद्ध की आवश्यकता नहीं रह जाती। कृष्ण सन्देश लेकर चलने बने।

रत्नावली

बड़ौदा के बदरीनाथ शास्त्री ने रत्नावली नामक पुष्पगण्डिका की रचना की[3]। इसका अभिनय बड़ौदा की संस्कृत-विद्वत्सभा के पंचम वार्षिकोत्सव के अवसर पर कुमारियों के द्वारा प्रस्तुत किया गया। बदरीनाथ विद्यासुधानिधि उपाधि से विभूषित हैं। इस कृति में राधा और कृष्ण की लुकाछिपी का प्रणयात्मक

१. वाराणसी से भारतीय-साहित्य-ग्रन्थमाला में प्रकाशित।
२. भारती में ५.११ में प्रकाशित।
३. संस्कृत विद्यामन्दिर बड़ौदा से १९५७ ई० में प्रकाशित।

इतिवृत्त है। कृष्ण के प्रवास में राधा उनकी प्रतीक्षा करती है। आज कृष्ण आने वाले हैं। वह रत्नावली पहन कर उनका सत्कार करने के लिए मिलेगी। वह स्नान करने जाती है।

श्रीदामा और नारद की दार्शनिक वकझक रोचक है। उनके बीच कृष्ण आकर कहते है कि पिता गोक्रय के लिए बंगाल गये हैं। सभी काम मुझे देखना है। अच्छा, ध्यान लगाकर राधा का दर्शन करूँ। श्रीदामा उनका कान खींचते हैं कि तुम्हें ग्रह बाधा है। उसे दूर करने के लिए नवग्रह-रत्न निर्मित माला धारण करो। वह राधा के पास है। उसे उड़ा लेना है। काम बना। सभी राधा के घर गये। वहाँ शृंगार-फलक पर रत्नावली दिखी। कौन चुरा कर ले आये? किसी के तैयार न होने पर कृष्ण ने उसे चुराया। उसे कृष्ण ने पहन लिया। राधा ने देखा कि रत्नावली चोरी चली गई। दैवज्ञ कृष्ण ही मिले। चन्द्रावली ने कहा कि दक्षिणा में दैवज्ञ को राधा दी जायेगी। कृष्ण ने बताया कि कण्ठाभरण गया है, चोर है तुम्हारा प्रियतम। फिर तो सबने मिल-जुल कर कृष्ण को चोर निश्चित किया और उनसे रत्नावली बरामद हुई।

रत्नावली में संवादों के चटुल वाक्य विषयानुरूप और नाट्योचित हैं।

सत्यारोहण

सत्यारोहण नामक नाटक की रचना पाण्डिचेरी की श्रीमाता ने की है।[1] यह जीवन-दर्शन परक है, सत्य की खोज कैसे की जाय? यह बताया गया है। इसमें पात्र हैं लोकोपकारी, दुःखान्तवादी, वैज्ञानिक, शिल्पी, तीन विद्यार्थी, दो प्रणयी यति और दो साधक। नाटक में सात लघु अंक हैं। प्रायः अङ्क एक पृष्ट के हैं। अन्त में सबको सत्यारोहण में सफलता मिलती है। साधक का वक्तव्य है—

तिरोभूतः सर्वो नयन-विषयो मार्ग इह नो
पुनस्तस्माद् हेतोर्मनसि भयविक्षोभरहितो
क्षिपेव स्वात्मानं यदि परमविस्रम्भभरितो।

साधिका कहती है—

तदा नीतो स्याव प्रति समधिगन्तव्यमयनम्।

कृपकाणां नागपाशः

भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश' की रचना 'कृपकाणां नागपाशः' रेडियो रूपक है।[2] त्रिपाठी ने संस्कृत-विश्वविद्यालय वाराणसी से संस्कृत की सर्वोच्च उपाधि विद्यावाचस्पति व्याकरणात्मक शोध-निबन्ध लिखकर प्राप्त की है। वागीश का जन्म मध्यप्रदेश में खुरई रेलवे स्टेशन के समीप सागर जिले के बिलइया ग्राम में हुआ

१. अरविन्दाश्रम पाण्डिचेरी से १९५८ ई० में प्रकाशित।
२. इसका प्रकाशन चौखम्बाविद्याभवन वाराणसी से १९५८ में हुआ है।

था। संस्कृत में वे स्वयं इतने रमे हुए है कि उनका पूरा कुटुम्ब ही संस्कृत-भाषाभाषी है। वागीश संप्रति संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी मे अनुसन्धान-संचालक है और इस संस्था की सारस्वती सुषमा पत्रिका के प्रधान सम्पादक हैं। त्रिपाठी ने हिन्दी और संस्कृत मे बहुविध रचनायें की है।

नागपाश मे कृषको की दुर्दशा का आँखो-देखा चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है। उनकी दुर्दशा गान्धी जी सुनते है और भूमिपर सबका समानाधिकार हो— यह विधान स्वीकृत करते हैं। रूपक मे देहाती जीवन, देहाती बातचीत और गीतों की विशेषता है। इसके अतिलम्बे कतिपय सवाद रूपकोचित नही हैं।

नागेश

नागेश नामक एकाङ्की रूपक के लेखक वामदेव 'विद्यार्थी' उत्तरप्रदेश मे देवप्रयाग, गढवाल के निवासी है।[1] प्रयाग के समीप सुप्रसिद्ध शृंगवेरपुर से सम्बद्ध महावैयाकरण नागेश के जीवन की एक झाँकी इस रूपक मे दी गई है।

वामदेव पर आधुनिकता का रग सर्वोपरि है। उन्होने आधुनिक रंगमञ्च पर मञ्चन योग्य इस रूपक का प्रणयन किया है। इसमे पाश्चात्य नाटक शैली का अनुसरण किया गया है। कवि ने इसमे भारतीयता की पुट देकर इसे मध्यममार्गानुकारी बताया है। हिन्दी में ऐसे नाटक मिलते हैं, फिर संस्कृत मे क्यों न हो— यह लेखक का समाधान है।

नागेश विषयक किंवदन्तियो को जोड-तोड़कर लेखक ने बताया है कि काशी मे अनन्त नामक नागेश की पत्नी का भाई उससे मिलने आता है। वह बहिन की दुर्दशा से खिन्न है। वह स्नान करने जाता है और एकोक्ति द्वारा उसकी दुर्दशा का वर्णन करता है—

'जीर्णा पर्णकुटी प्रकामविवरा कालादनाप्तच्छदा' इत्यादि।

इधर शैव्या के घर मे भाई को खिलाने के लिए भोज्य सामग्री नही है। वह अपनी एकोक्ति मे अपने घर की दुर्दशा का वर्णन करती है—

'गृहे तु मूषका क्षुधा म्रियन्ते किं भोजयामि भ्रातरम्'

तब तक नागेश आ पहुँचे। शैव्या ने अपनी समस्या रखी कि आये हुए भाई के लिए घर मे भोजन नही है। नागेश कही से सूखा-सड़ा शाक लाये थे। उसे पत्नी को दे दिया कि इससे काम चलाओ। तब तक मैं पुस्तक लिखूँ। शैव्या ने उसे फेंक दिया और कहा कि भाई के लिए कही से कुछ माँग लाइये।

नागेश भिक्षावृत्ति को योग्य नही मानते थे। उन्होने कहा—

याचिते ह्यपमानं स्याज्जीवन्मृत्युरवाप्यते।

पत्नी ने अपनी आजीवन दुर्दशा का विलाप किया। यह सब देखकर वे काशिराज से याचना करने चले।

---

१. इसका प्रकाशन १९६० ई० मे काव्यसदन, देवप्रयाग, गढवाल से हुआ है।

स्नान करके अनन्त लौटा तो शैव्या ने बताया कि कुछ भी भोज्य नहीं दे सकूँगी, क्योंकि घर में कुछ है ही नहीं। वह बाजार से सामग्री क्रय करने के लिए चलता बना। इधर नागेश खाली हाथ लौटे और पत्नी को अपना व्रत सुनाया—

यथेच्छं व्याहरेल्लोको मृत्युर्वाद्य भवेत् पुनः।
पदवाक्य-प्रमाणज्ञो नागेशो नैव याचताम्॥

तभी शृंगवेरपुर का राजा रामसिंह वहाँ आया। उसने नौका से नागेश को गंगा पार करने के लिए उद्यत देखा, पर नागेश के पास भाड़ा नहीं था और केवट ने उन्हें जाने न दिया। उसने कहा कि क्या तुम नागेश हो कि तुम्हें निःशुल्क ले जाऊँ। रामसिंह ने नागेश को पहचान लिया और उनके पीछे-पीछे उनके घर आया। नागेश ने उनसे कहा—

वनानि नाम भाग्यविलसितानि विनाशीनि च।

राजा ने पर्याप्त धन नागेश-परिवार को दिया।

वामदेव की लेखिनी भावोत्कर्षिणी है। यह रूपक अपनी कोटि का निराला ही है।

प्रतिभा-विलास

प्रतिभा-विलास के प्रणेता ह० व० भुजंगाचार्य मैसूर के माधव नामधारी कवि है।[1] तीन दृश्य का यह एकाङ्की नाटक नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य से संवलित है। इसका अभिनय संस्कृत-पाठशाला के विद्यार्थियों ने किया था।

एकाङ्की का आरम्भ दरिद्र ब्राह्मण की एकोक्ति से होता है कि तीन दिनों से भूखा हूँ। उसे कविसम्राट् कालिदास दिखाई पड़े। वह उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला कि मेरी दरिद्रता दूर करने का कोई उपाय करें। कालिदास ने कहा आज तो मेरे घर पर रहें और कल राजसभा में पहुँच कर कहें—

त्रिपीडापरिहारोऽस्तु।

दूसरे दिन कालिदास राजसभा में देर से गये और राजा के पूछने पर कहा कि गुरुसेवा में लगा रहा। तब तो राजा ने कालिदास के गुरु से मिलने के लिए उत्सुक होकर कविवर के घर से उन्हें बुलवाया। वहाँ आकर मौन.दरिद्र ब्राह्मण ने 'त्रिपीडास्तु' मात्र कहा और आगे-पीछे मौन रहा। कालिदास ने देखा कि ब्राह्मण ने गुड़गोबर कर दिया और उलटे शाप दे डाला। प्रत्युत्पन्न बुद्धि कालिदास ने उसके शाप की अनुकल व्याख्या कर दी—

आसने विप्रपीडास्तु शिशुपीडास्तु भोजने।
शयने दारपीडास्तु त्रिपीडास्तु नरेन्द्र ते॥

भोज ने ब्राह्मण को बहुविध दान-सम्मान दिया।

---

१. भारती पत्रिका ७.५ में प्रकाशित।

दे० ति० ताताचार्य के नाटक

नई दिल्ली के ताताचार्य की विदेशी शैली की दो नाटक रचनायें प्रसिद्ध है— पुन: सृष्टि और सोपानशिला।[1] तीन दृश्यो के एकाङ्की पुनःसृष्टि में भास्वती नामक नायिका प्रहर्षण से अपना विवाह करना चाहती है और उसके पिता चन्द्रकीर्ति से उसका विवाह चाहते है। ऐसी स्थिति मे नायिका यमुना मे डूब मरने को उद्यत है, क्योकि असुन्दर चन्द्रकीर्ति की पत्नी बनने से मरना अच्छा है। उसकी सखी धेनुमती उसे डूबने से बचा लेती है। भगवान् कृष्ण चन्द्रकीर्ति की पुनः सृष्टि कर देते है और वह अतीव सुन्दर हो जाता है। भास्वती उससे विवाह कर लेती है। धेनुमती का विवाह प्रहर्षण से हो जाता है। कृष्ण ने स्वयं दोनों का विवाह कराया। धेनुमती ने कहा—

दैवात् पल्लविनी मे आशा।

सोपान-शिला सात दृश्यो का एकाङ्की है। कापिल और जाजी का दाम्पत्य जीवन सुखी है। ग्रामणी स्वामी उन्हें कष्ट मे डालता है। कापिल के घर मे लगी सोपान-शिला को वह अपने नये बनते हुए घर मे लगाना चाहता है। माँगने पर जब वह नही देता तो ग्रामणी उसे चुरवा कर लगा लेता है। जाजी ने पति के उद्विग्न होने पर कहा कि जाने दो। जो गया, वह गया। अहिपति नामक ग्रामवासी ने कहा कि यह ठीक नही। उसके कहने पर कापिल अभियोग चलाने के लिए उद्यत हो गया। कोई साक्षी न मिलने से निर्णय उसके विरोध मे रहा। उस पर मानहानि का अभियोग चलाने की तैयारी हो गई।

गृहप्रवेश के दिन उसके ऊपर भवन का एक सोदा गिरा। थोड़ी देर बाद समाचार मिला कि ग्रामणी का पुत्र यान-दुर्घटना में मर गया। ग्रामणी ने इसे अपने पापकर्मों का फल माना। उसने अपनी कन्या कापिल को पुत्र-वधू रूप मे देकर अपने पापो का प्रायश्चित्त किया। राष्ट्रिय चरित-निर्माण के लिए ऐसे नाटकों का महत्व विशेष हैं।

रामराज्य

वि० वि० श्री ने अपने नाटक रामराज्य मे उत्तम राजा का आदर्श प्रतिष्ठापित किया है।[2] इसमें अङ्को का विभाजन दृश्य के समकक्ष प्रेक्षणको मे हुआ है। इसकी कथा का आरम्भ सीता और राम के पट्टाभिषेक से होता है। सीता का रजक द्वारा अपवाद सुनकर सिंहासन छोड़कर राम सीता-सहित वन मे जाना चाहते है। वहाँ तपस्वी बनकर रहना है। मेरे पश्चात् किसी योग्य व्यक्ति को राजा बनना है।

इस नाटक मे वार्तालाप-तत्त्व विशेष है। सवाद नाटकीय नही है और

१. संस्कृत-प्रतिमा १९५९ और १९६० ई० मे क्रमश- प्रकाशित।

२. उद्यान पत्रिका १९५९ से लेकर १९६७ ई० मे प्रकाशित।

अनेक स्थलों पर बहुत लम्बे हैं। नाट्यनिर्देश कार्यपरक हैं। नाट्यनिर्देशों में रंगमंचीय कार्यों (action) का विवरण-सहित वर्णन है।

सरोजिनी-सौरभ

नव अङ्कों के सरोजिनी सौरभ के प्रणेता महीधर वेङ्कट राम शास्त्री वैयाकरण, साहित्य-विद्या-प्रवीण, आयुर्वेदविशारद आन्ध्र-प्रदेश में राजमहेन्द्रवरम् नगरी के निवासी हैं।[1] इनके पिता वेङ्कटराम दीक्षित थे। लेखक भारतीय संस्कृति का परमोपासक है, जैसा नान्दी में कहा गया है—

तां कल्याणीं निजहृदि भजे संस्कृतिं भारतीयाम्।

महीधर ने आजीवन संस्कृत विद्या का गम्भीर अध्ययन किया। यह कृति उनकी वृद्धावस्था की रचना है।

लेखक ने अपनी रचना के विषय में कहा है कि यद्यपि इसकी कथा-वस्तु कल्पित है, किन्तु इसमें स्वानुभूतिक सत्य है। इसका अभिनय किसी वैदेशिक के कहने से वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। नाटक में सच्चे ढंग से गाँव के अभ्युत्थान की योजनायें दी गई हैं।

सरोजिनी-सौरभ की नायिका सरोजिनी है। इस नाटक का नायक गुणचन्द्र आढ्यपति नामक धनिक का पुत्र है। एक बार इस विद्वान्, सुशील नायक ने करिकलभ से पीडित नायिका को बचाया और वहीं से उन दोनों का प्रेम उत्पन्न हुआ। आढ्यपति चाहता था कि मेरे पुत्र का विवाह किसी ऐसे कुल में हो कि प्रचुर धनराशि वहाँ से मिले। उसके द्वारा नायक-नायिका के विवाह का विरोध होने पर गुणचन्द्र अपने पिता से अलग होकर माता के वचन के अनुसार सुजन-पुर नामक गाँव में कृषि करने लगा। वहाँ सरोजिनी से उसने विवाह कर लिया।

इधर सरोजिनी के एक नये प्रेमी श्रीधर निकल आये, जो अतिशय समृद्धि शाली थे। उनके वैवाहिक प्रस्ताव को सरोजिनी ने ठुकरा दिया था। वह क्रुद्ध होकर गुणचन्द्र पर चोरी का झूठा दोष लगाकर उसे न्यायालय ले गया। सत्य छिपा न रहा। राजा गुणचन्द्र से बहुत प्रभावित हुआ और उसे सुरक्षामन्त्री, सेनापति आदि पदों पर नियुक्त किया। उसने आक्रमणकारियों को परास्त किया। अन्त में राजा ने उसे अपना उत्तराधिकारी बना कर अभिषेक कर दिया। बहुत दिनों से प्रच्छन्न रहकर गुणचन्द्र की रक्षा करती हुई सरोजिनी अन्त में उसकी रानी बनती है।

पौरव-दिग्विजय

पौरव-दिग्विजय के प्रणेता एस० के० रामचन्द्र राव बङ्गलौर के निवासी रहे हैं।[2] वे आल इण्डिया इंस्टीटयूट आव मेण्टल हेल्थ, बङ्गलौर में रीडर थे।

१. इसकी प्रति सागर विश्वविद्यालय में है। १९६० ई० में गन्तूर से प्रकाशित।
२. १९६० ई० में में संस्कत-प्रतिभा में प्रकाशित।

इसमे भारतीय नरेशो का संघ बनाकर सिकन्दर को परास्त करने की पुरु की योजना कथावस्तु है।

श्रीकृष्ण-भिक्षा

श्रीकृष्ण-भिक्षा के लेखक एच्० वी० शास्त्री बंगलौर के निवासी रहे हैं।[1] इसमे दो अंको मे तत्सम्बन्धी महाभारतीय कथानक को रूपकायित किया गया है।

देवकी मेनन के नाटक

कुचेलवृत्त नामक संगीत-प्रेक्षणक की लेखिका देवकी मेनन हैं।[2] देवकी मद्रास मे क्वीन मेरी महाविद्यालय में संस्कृत की अध्यक्षा थी। विश्रान्त होने के पश्चात् वे केरल में एर्णाकुलम् में रहती हैं। कुचेलवृत्त का अभिनय क्वीन मेरी महाविद्यालय के छात्रों ने किया था। प्रस्तावना में इसे नवीन रीति का नाटक कहा गया है।[3] इसमें छोटे-छोटे एक-दो पृष्ठ के भी सात अंक हैं। इनकी दूसरी कृति सैरन्ध्री प्रेक्षणक है।

कुचेल के घर मे दरिद्रता का राज्य था। भूखे लड़के सबेरे से ही माँ को तग करते थे। सभी खाने के लिये कुछ माँगते थे। माता ने कृष्ण से प्रार्थना की कि इन भक्त बच्चो का पालन करें। पत्नी के कहने से कुचेल कृष्ण से मिलने चले। पत्नी ने चिउडा उन्हे दे दिया।

रुक्मिणी ने कृष्ण से कहा—कोई आया है—

भृशं कृशाङ्गोऽपि महान्तरङ्गः सुचेलहीनोऽपि रुचेरहीनः।
कोऽयं द्विजातिस्त्वयि भक्तिनम्रा सत्त्वं गुणो मूर्त इवाभ्युपैति॥

कृष्ण ने उन्हे देखा और लेने के लिए दौड़ पड़े। उनसे चिउड़ा देते न बना तो—

हरिश्च तस्मात् पृथुकं जहार प्रदर्शयन् गोकुलबाललीलाम्।

कृष्ण ने चिउडा की मुट्ठी खाकर उन्हें बहुत कुछ दे दिया।

घर पहुँचने पर कुचेल की पुरानी कोई भी वस्तु न रह गई। उसके स्थान पर सब कुछ ऐश्वर्यसूचक था। कुचेल की पत्नी और पुत्र सभी भगवान् की पूजा करके गुणगान करने लगे।

---

१. Poona Orientalist में पूना से १९५९ ई० मे प्रकाशित।
२. संस्कृत प्रतिभा १९६१ ई० के अक्टूबर मे प्रकाशित।
३. प्रचुर संगीत-विशिष्ट होने के कारण इसे ओपेरा कहा गया है।

इस नाटक में आरभि, कापि, धन्यासि, मुखारि, हुसेनि, कल्याणी, कमाश, काम्बोदि, चेञ्चुरुट्टि, मणिरंगु आदि रागों में गीत समाविष्ट हैं। इसमें गद्य कम और गेय पद बहुसंख्यक हैं।

निवेदक को जो कुछ कहना चाहिए, वह नेपथ्ये शीर्षक से व्यक्त किया गया है। अन्यत्र नाट्य निर्देश द्वारा ऐसे निवेदन प्रस्तुत किये गये हैं।

सैरन्ध्री नामक प्रेक्षणक अतिलघु एकाङ्की है। इसमें मथुरा की सुप्रसिद्ध कृष्ण-भक्त कुब्जा की कथा है। उसकी सखी सुशीला थी। वह सैरन्ध्री के कृष्ण-परक गीत से आकृष्ट होकर कृष्ण का चित्र देखने के लिये आ गई। नागरिकों के घोष से सखीद्वय को ज्ञात हुआ बलराम और कृष्ण आ रहे हैं। सड़क पर जन-सम्मर्द कृष्ण के लिए उत्सुक था। उसमें वे दोनों राजोचित अङ्गानुलेपन की सामग्री लेकर चल पड़ीं।

कृष्ण भक्त गाते-बजाते राजमार्ग पर थे। भीड़ को चीरती हुई कुब्जा कृष्ण के पास जा पहुँची। उसने उन दोनों का अङ्गराग से अनुरंजन किया। कृष्ण ने अपने स्पर्श से उसके कूबड़ को मिटा कर सुन्दरी बना दिया। प्रेक्षणक के अन्त में मंगल गान है।

धर्मरक्षण

धर्मरक्षण नामक छः अङ्कोंके नाटक के प्रणेता तिरुपति के वेङ्कटेश्वर-विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग के प्राध्यापक लक्ष्मीनारायण राव हैं।[1] इस नाटक में महाभारत की सुप्रसिद्ध एकलव्य की कथावस्तु है। इसके अनुसार एकलव्य ने कर्ण की प्रार्थना पर कौरव पक्ष से युद्ध का उपक्रम किया था। तब कृष्ण ने उसे मार डाला था। इस नाटक में पद्यों का सर्वथा अभाव है। पूरा नाटक गद्य में है।

कृतार्थकौशिक

कृतार्थकौशिक के प्रणेता श्रीकृष्ण जोशी नैनीताल के निवासी हैं।[2] वहाँ उनका चीनखान-भवन सुप्रसिद्ध है। उनका जन्म १८८२ ई० और स्वर्गवास १९६५ ई० में हुआ। उनके पिता अल्मोड़ा-निवासी पण्डित बदरीनाथ थे। श्रीकृष्ण का संस्कृत-पाण्डित्य आनुवंशिक रहा है। उनकी प्रौढ़ शिक्षा प्रयाग के म्योर सेण्ट्रल कालेज में हुई। उन्होंने कुछ समय कमायूँ में अधिवक्ता रहकर बिताया। वाग्वैदग्ध्य के कारण इन्हें विद्याभूषण और कवि-सुधांशु की उपाधियाँ वस्तुतः शोभित करती थीं।

श्रीजोशी की देश-सेवात्मक प्रवृत्ति अग्रगण्य हैं। उन्होंने अंगरेजी-शासन के द्वारा प्रवर्तित बङ्गभङ्ग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया लिया। पश्चात् वे पं० मदनमोहन मालवीय के आग्रह पर हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन-कर्म में लग गये।

---

१. १९६१ ई० में में त्रिलिङ्ग-ग्रन्थमाला में तिरुपति से प्रकाशित।
२. अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद्, लखनऊ से प्रकाशित।

जोशी विद्या-व्यसनी थे। उन्होंने साहित्य, दर्शन, व्याकरण, वेद-वेदाङ्ग आदि विषयों का गहन अध्ययन किया था। इनकी संस्कृत-रचनाओं में नाटकों के अतिरिक्त *रामरसायन-महाकाव्य, स्यमन्तक-महाकाव्य, अखण्डभारत, काव्यमीमांसा-शास्त्र, सर्वदर्शनमंजूषा, अद्वैतवेदान्त-दर्शन, अन्तरंगमीमांसा* आदि अग्रगण्य हैं। *अन्तरंगमीमांसा* पर जोशी को उत्तर-प्रदेश शासन से १५०० रुपयों का पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

जोशी के तीन नाटक मिलते है—*कृतार्थ-कौशिक, सत्यसावित्र* और *परशुराम-चरित*।

कृतार्थ कौशिक मे महाराज गाधि के दस्युओ से मोर्चा लेने का वर्णन है। सशक्त होने के लिए वे अपनी कन्या सत्यवती का विवाह अपने शत्रु वन्दी राजकुमार और्व से कर देते हैं। गाधि का पुत्र विश्वामित्र पराक्रमी वीर है। दस्यु विश्वामित्र और उसके साथी ऋक्ष को वन्दी बना लेते हैं। वहाँ दस्यु-राजकुमारी उग्रा विश्वामित्र से प्रेम करने लगती है। पहले तो विश्वामित्र उसे विवाह नही करना चाहते, पर प्रेम-पथ पर उसे मरणासन्न देखकर विवाह करने के लिए सहमति दे देते हैं।

विश्वामित्र के गुरु अगस्त्य शत्रुओ से शिष्य को मुक्त करके निरापद करने के लिए आर्यसेना के साथ दस्युओ पर आक्रमण करके दस्युराज को घायल कर देते हैं। भारद्वाज की पुत्री लोपामुद्रा उसकी चिकित्सा कर देती है।

दस्यु सेनापति अपने इष्ट देव भैरव की सहायता लेने के लिए विश्वामित्र की बलि देना चाहता है। विश्वामित्र की प्रणयिनी उग्रा उनकी रक्षा करने के लिए गुप्त द्वार से आर्य सैनिको को अपने दुर्ग मे आने का अवसर देती है। इस प्रकार विश्वामित्र की प्राण-रक्षा होती है। उग्रा का विश्वामित्र से विवाह करने की अनुमति ऋषिगण तो देते हैं, पर प्रजा इसके पक्ष मे नही है। उनका गान्धर्व विवाह हो चुका था। उग्रा गर्भवती थी। विश्वामित्र उसके लिए राजपद छोडने को उद्यत हो जाते है। इस बीच भैरव उग्रा का वध कर देता है। तब तो क्रोधवश विश्वामित्र ने भैरव को मार डाला। विश्वामित्र का विवाह अगस्त्य की कन्या रोहिणी से होता है, जब वे अनेक असुरो को परास्त करने के लिए तपस्या छोड़ कर राष्ट्र रक्षा के लिए आ गये थे।

नाटक मे सभी छः अङ्क कार्य प्रचुर हैं। इसमे लगभग ६० पात्र अत्यधिक है। पद्यों की संख्या अवाछनीय रूप से अधिक है। ऐसा लगता है कि कवि गद्य मे कुछ कहना ही नही चाहता। विष्कम्भको को अङ्क का भाग दिखाना त्रुटि है।

इस कृति मे राष्ट्र की रक्षा करने के लिए राष्ट्रिय संघटन और सर्वस्व-त्याग का निदर्शन सफल है।

हर्ष-दर्शन

हर्षदर्शन के लेखक डेग्वेकर पाण्डुरङ्ग शास्त्री है।[1] वे पण्ढरपुर क्षेत्र मे संस्कृत-

१. पूना से १९६१ ई० मे शारदा में प्रकाशित।

पाठशाला में व्याकरण, न्याय, वेदान्तादि शास्त्रों का अध्यापन करते थे। इनके कुटुम्ब में व्याकरण का अध्ययन आनुवंशिक था। पाण्डुरंग ने व्याकरण के साथ ही साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था। पाण्डुरंग २४ नवम्बर १९६१ ई० में दिवंगत हुए। पाण्डुरंग पुण्य पत्तन (पूना) के निवासी रहे हैं। नाटक का अभिनय पूना में हुआ, जिसे देखने के लिए पर्याप्त संख्या में विद्वान् पधारे थे। इसकी रचना १९६० ई० में हुई।

हर्पदर्शन की रचना के पहले लेखक ने कुरुक्षेत्र नामक महाकाव्य का प्रणयन किया था।[1]

हर्ष-दर्शन में पाँच अङ्क हैं। इसमें हर्ष के द्वारा पूर्वी भारत जीतने की कथा है। नायक पहले से ही उत्तर दिशा में विजय प्राप्त कर चुका है। इसके उपलक्ष्य में एक समारोह हुआ।

पूर्व सागराञ्जल के गंजराज्य के राजा निर्दय चण्डदेव ने शान्तिवर्मा का राज्य जीत लिया था। उसकी कन्या प्रतिभा थी और उसकी सखी चन्दिका शान्तिवर्मा के सचिव की कन्या थी। प्रतिभा और उसकी सखी चन्द्रिका ने युद्ध-शिक्षा प्राप्त की थी। वे दोनों हर्ष की राजधानी में आश्रय के लिए आ गई थीं।

एक दिन हर्ष ने प्रतिभा को और उसके मित्र चकोर ने चन्द्रिका को पुष्पोद्यान में देखकर उनके प्रति आसक्ति प्रकट की।

चण्डदेव ने मगध के राला शशाङ्क से कहा कि हर्ष पूर्वी देशों को भी जीतने के लिए इधर आक्रमण कर सकता है। उन्होंने हर्ष को ध्वस्त करने के लिए गुप्त योजना बनाई। ये बातें हर्ष के शुभचिन्तक भर्गाचार्य ने अपने सतीर्थों शालंकायन और कांकायन को मगधदेश और पूर्वप्रदेश में भेजकर उनके द्वारा ज्ञात की थीं। शालंकायन शशाङ्क का और कांकायन चण्डदेव का मित्र बना था।

हर्ष के गुप्तचर शात और निशात शत्रुओं के गुप्तचर को, जो हर्ष की राजधानी में पकड़ा गया था, छुड़ाकर ले भागने वाले दो वीरों की खोज करने चले। हर्ष ने पूर्वी देशों पर नियन्त्रण रखने के लिए थानेश्वर को छोड़कर कन्नौज में राजधानी बना ली।

चतुर्थ अङ्क में कीर्तिसेन और महासेन, जिन्होंने शशाङ्क के गुप्तचर को थानेश्वर में छुड़ाया था' क्रमशः शशाङ्क और चण्डदेव के वेतनभोगी बनकर सेनाध्यक्ष पद पर अपनी धूर्तता से अधिष्ठित हुए। शशाङ्क की पत्नी कलावती को कीर्तिसेन से प्रेम हो गया। उसने कीर्तिसेन को सेनाध्यक्ष बनाने के लिए झूटे ही कह दिया कि सेनापति ने मुझसे बलात्कार करना चाहा था। पुराना सेनापति हटा दिया गया और कीर्तिसेन चण्डदेव का सेनापति बना।

हर्ष ने शशाङ्क पर आक्रमण करके विजय पाई। शशाङ्क ने उसके भाई को एकान्त में मार डाला था। प्रतिशोध पूरा हुआ। विश्वास उत्पन्न करके शालंकायन

---

१. कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

और कांकायन ने हर्ष के शत्रुओं को खोखला कर दिया था। चण्ड भी मारा गया। प्रतिभा ने पुरुष वेष मे हर्ष की सहायता युद्ध मे की थी। चकोर ने चन्द्रिका से और हर्ष ने प्रतिभा से परिणय कर लिया। भर्गाचार्य ने प्रतिभा का परिचय दिया कि मैं इसके मामा का गुरु रहा हूँ।

प्रथम अङ्क में ह्वेनसाग विषयक अरुण और वरुण का संवाद मुख्य वस्तु से असम्बद्ध होने से व्यर्थ सा है। इस नाटक का वातावरण मुद्राराक्षस के आदर्श पर प्रकल्पित है। हर्ष चन्द्रगुप्त और भर्गाचार्य चाणक्य स्थानीय हैं। गुप्तचरों का उपयोग और शत्रु के अनुचरो को प्राय अज्ञात विधि से नष्ट कर देना उपर्युक्त दोनों नाटको मे बहुत कुछ समान है। नाटक मे प्रवेशक और विष्कम्भक का अभाव है। तृतीय अङ्क में प्रमुख पात्र भी सूचनायें देते हैं। परिहास के लिए अरुण और वरुण द्वितीय अंक मे लोकसग्रह की परिभाषा-विषयक संवाद करते हैं। आवेश में आकर अन्य पात्रो के रगमच पर रहते हुए चतुर्थ अङ्क में हर्ष की एकोक्ति विरल प्रयोग है। नवीन विधि के इस नाटक में नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य हैं।

रामलिङ्गशास्त्री के नाटक

वोम्मकण्टि रामलिंगशास्त्री उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में संस्कृत के व्याख्याता और प्राध्यापक रहे हैं। सम्प्रति वे संस्कृत के विभागाध्यक्ष है। रामलिङ्ग संस्कृत के पी० एच० डी०, और भारतीय पुरातत्त्व के एम० ए० तथा शास्त्री हैं। उनका प्राच्य और पाश्चात्य अध्ययन उभयविध गम्भीर है। शास्त्री जी इस युग के संस्कृत के विद्वानो में इस दृष्टि से विरल कोटि में गिने जा सकते हैं कि उन्हें भारत की समस्याओं को आधुनिक दृष्टि से देखने और उनका सास्कृतिक समाधान संस्कृत-भाषा के द्वारा प्रस्तुत करने की विशेष क्षमता है।

रामलिंग ने संस्कृत मे बहुविध रचनायें की हैं। उनके 'सत्याग्रहोदयः, अन्यः कुतः' मे रूपकों के अतिरिक्त दशग्रीव नामक पद्यात्मक सवाद, जवाहरलाल-श्रद्धाञ्जलि नामक चार पद्यो की कविता, गेयाञ्जलि (निद्रा, वर्तमानमेव मेऽस्तु, कविता, कथमिमं तरामि सागरम्, वाचां पतये नमः, उदेति हृदये, दृष्टोऽसि हन्त परमेश) लघु गीत-सग्रह, संस्कृतीकरणम् आदि है।[1]

रामलिंग का नाट्य-साहित्य आधुनिक विदेशी-पद्धति पर विकसित है। इनमे भारतीय नाट्यशास्त्रीय-विधान की मान्यता अपवाद रूप से दिखाई देती है। इनके १५ दृश्यों के सबसे बडे नाटक सत्याग्रहोदय में नान्दी, प्रस्तावना और भरत-वाक्य एक-एक दृश्य के रूप में प्रस्तुत हैं और भारतीय विधि के अनुरूप प्रायशः नहीं हैं।

---

१. इसका प्रकाशन हैदराबाद की अमरभारती से १९६६ ई० में हुआ है।

भरतवाक्य सूत्रधार नटी और चेटी आदि सभी पात्रों का सामूहिक सम्भाषण और वैदिक मन्त्रों का गायन रूप में प्रस्तुत है।

सत्याग्रहोदय की कथावस्तु का आरम्भ जंजीवार द्वीप में गान्धी जी की प्रवृत्तियों से होता है और अन्त १९१४ ई० में १८ जुलाई को सन्ध्या के समय जोहान्सवर्ग में गान्धी, कालेन वाक, पोलक, हवीव, परमेश्वरन् आदि की बातचीत से होता है। अहिंसायुद्ध का समारम्भ होता है। सत्याग्रह का जन्म होता है। कालेन वाक का कहना है—

यावद्भूमिरियं तिष्ठेद् यावद् भानुर्विराजते।
यावत् सत्यमिदं भाति तावद् गान्धिर्महीयते॥

इस नाटक की रचना गान्धीवर्षशतक महोत्सव के अवसर पर १९६९ ई० में हुई।

शुनःशेप नामक पाँच लघु दृश्यों के रूपक में प्रस्तावना और भरतवाक्य नहीं हैं। इसकी दृश्यस्थली क्रमशः वनोद्देश, अधित्यका, अजीगर्तावसथ, पुष्करक्षेत्र और यज्ञवाट हैं। इसमें रोहिताश्व की एकोक्ति मात्र प्रथम दृश्य में है। द्वितीय में रोहित और अजीगर्त का संवाद है कि विपत्तियों का निवारण कैसे हो? अजीगर्त अकाल-पीडित है। वह मरना चाहता है। रोहित ने कहा कि मैं आपकी रक्षा करता हूँ। शुनःशेप यज्ञ में वध्य बन कर रोहित की समस्या का समाधान करता है। अजीगर्त ने कहा—

देवताभ्यः बलिं यासि निर्घृणस्य ममात्मज।
देवतानां देवतासि त्वं शुनःशेप शोभसे॥

विश्वामित्र ने शुनःशेप की प्राण रक्षा की। राजा को यज्ञ का फल पूर्ण मिला। इस रूपक में भावुकता पूर्ण प्रसंग रोचक हैं।

मेघानुशासन नामक पाँच दृश्यों के लघु रूपक में छान्दोग्य उपनिषद् के मेघ गर्जन 'द' से देव, मानव और असुर के अनुशासन दम, दत्त और दयध्वम् को ग्रहण करने की रोचक कथा चाक्रायण और उनकी पत्नी महती के अनावृष्टि में सन्तप्त होने के इतिवृत्त को लेकर विलसित है। अन्त में प्रजापति कहते हैं—

परहित-करणे विस्मरथ स्वं विश्वश्रेयो भवतां जननम्।
योगमाचरथ नियतं सततं एतदपि स्यात् तत्त्वनिदानम्॥

सुग्रीव-सख्य के छः अतिलघु दृश्यों में सुग्रीव का राम से मैत्रीभाव की प्रतिष्ठा

करने का इतिवृत्त है। हनुमान् भिक्षु बन कर राम के पास आते हैं। हनुमान् को राम ने मायावी समझा तो उन्होंने बताया—

'नाहं रक्षो न मायावी भूरिमद्रं भवेत्तु वः।

उसने सुग्रीव की पत्नी का वालि द्वारा अपहरण बताकर उन्हें सुग्रीव से सगमित करा दिया। लक्ष्मण ने पौरोहित्य किया—

गृह्यतां पाणिना पाणिरमरंसख्यमस्तु वाम्।

मातृगुप्त नामक दो अतिलघु दृश्यों के रूपक मे राजतरंगिणी मे वर्णित मातृगुप्त की कथा है। मातृगुप्त उसी स्कन्धावार में हैं, जिसमे विक्रमादित्य हैं। उज्जयिनी का बाह्योद्यान दृश्य है। वसन्त ऋतु की रात्रि का समय है। झञ्झावात से दीपक बुझ जाने पर मातृगुप्त ने दीपक जलाये। राजा ने उससे पूछा कि नींद क्या नहीं आई? मातृगुप्त ने श्लोक सुनाया—

शीतेनोत्तभितस्य मापशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्निं स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकंठस्य मे।
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरंगता
सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी॥

राजा ने परिचय पाकर उन्हें कश्मीर का राजा बना दिया।

धोम्मकण्टि ने मणिमंजरी नामक अपने रचना-संग्रह मे देवयानी और यामिनी नामक दो उपरूपकों के अतिरिक्त शोकः श्लोकत्वमागतः, गान्धिचरितम् तथा गेयावली नामक कविताओं का प्रकाशन किया है।[1]

रामलिंग का देवयानी रेडियो-रूपक है। इसमें नान्दी है—

रागरोषवेशभरितं देवयानीचरितम्।
प्रस्तूयते भवतां मुदे रसिका विलोकयतादरात्॥

प्रस्तावना और भरतवाक्य नहीं है। पाँच लघु दृश्यों में देवयानी के कूपपतन, ययाति से विवाह, शर्मिष्ठा से गान्धर्व विवाह, देवयानी का क्रोध और शुक्र के पास जाना साधारण घटनायें हैं। पचम दृश्य में शापपुरुष का आना छायातत्त्वानुसारी हैं। देवयानी शापपुरुष के साथ ययाति की राजधानी में आती है। शापपुरुष

---

१. मणिमंजरी का प्रकाशन १९६२ ई० मे अमरभारती सीरीज न० १ मे लेखक ने स्वयं किया है।

सोये हुए ययाति में प्रवेश करता है। जगने पर ययाति की एकोक्ति है—क एप दर्पणे स्थविरः। क्व मे तत् नयनाभिरामं सौन्दर्यम्। इत्यादि

यामिनी नभोनाट्य में महाकवि विल्हण और उनकी प्रेयसी यामिनी राजकन्या की संगमन-कथा है। यामिनी ने स्वप्न देखा कि किसी युवा ने मधुर-मधुर वातों से अनुनय करके वाहों में लेकर मुझे कश्मीर पहुँचा दिया। किसी धातुमण्डित सिंहासन पर मेरे साथ वैठे हुए प्रणयी को साँप ने काटा और तभी से मैं उद्विग्न हूँ।

यामिनी की चेटी शुकवाणी स्वप्नविदों से पूछ कर उसे वताती है कि सव कुछ मंगलमय होगा। तभी उसका कश्मीरी प्रणयी विल्हण उसके समक्ष आकर प्रगाढ प्रेम निवेदन करता है। उसी समय मदनाभिराम राजा वहाँ आता है। उसने अपनी कन्या से कहा कि आज ही यह द्विजाधम विल्हण मार डाला जायेगा। यामिनी ने कहा—यह मेरा प्राणेश्वर है। विल्हण को मारने के लिए जो तलवार चलाई गई, वह हार में परिणत हो गई। तव तो राजा ने कहा—भवतः कवितयैव चराचरं जगत् प्राणान् वारयति। यामिनी विल्हण की हो गई।

रामलिङ्ग ने विक्रान्त-भारत की रचना मौर्यकालीन घटना चन्द्रगुप्त मौर्य की पराक्रम-नीति की वर्णना के लिए की है।[1] इसकी रचना १९६२ ई० में हुई थी। इसके संगीत रूपान्तर का प्रसारण हैदरावाद नभोवाणी से १५ अगस्त १९६३ ई० में हुआ था। लेखक ने प्रचीन इतिहास के वीसों ग्रन्थों का पारायण करके अपने विपय की सामग्री पर अधिकार प्राप्त करके इस नाटक का प्रणयन किया है।

इस नाटक में ग्रीक सत्ता को भारत से हटाकर चाणक्य और चन्द्रगुप्त के द्वारा साम्राज्य स्थापित करने की घटना वर्णित है। कवि ने यत्र-तत्र पूर्वकवियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए नये संविधानों को पर्याप्त जोड़ा है।

गजानन वालकृष्ण पलसुले के नाटक

पलसुले पूना में संस्कृत-प्रगताभ्यास-केन्द्र के प्राचार्य रहे हैं। उनमें संस्कृत के संवर्धन के लिए अदम्य उत्साह है। धन्योऽहं धन्योऽहम् नामक अपने नाटक के प्रास्ताविकं किंचित् में उन्होंने अपने मनोभाव को व्यक्त किया है—

'संस्कृतं तथा च सावरकरः'—द्वे मे श्रद्धास्थानम्' इस एक वाक्य से पलसुले का व्यक्तित्व स्वर्णाक्षरों में टंकित प्रतीत होता है। उनका जन्म १ नवम्वर

१. लेखक के द्वारा १९६४ ई० ई० में अमरभारती सीरीज में प्रकाशित।

१६२१ ई० को हुआ। उन्होंने भारतवाणी नामक संस्कृत-पाक्षिक का सम्पादन किया था।

बालकृष्ण प्रायशः रोगाक्रान्त रहने पर भी लेखन-विरत नहीं होते। उन्होंने आत्मपरिचय दिया है—

मम वाङ्मयस्यानल्पोंऽशः रुग्णशय्यायां लब्धजन्मास्ति।

डा० पलसुले ने उच्चशिक्षा प्राप्त की है। वे एम० ए०, पीएच्० डी० हैं। उनकी रचनायें बहुविध हैं। यथा, विनायकवीरगाथा, विवेकानन्दचरित, हिन्दू-सम्राट् स्वातन्त्र्यवीरः, सान्त्वनम् वयमन्योन्यमापृच्छामहे, अग्निजा कमला। पलसुले की बहुत सी कवितायें भी देशभक्ति-परक हैं।

पलसुले के सुपरिचित नाटक हैं—समानमस्तु मे मनः, धन्येयं गायनी कला तथा धन्योऽहं धन्योऽहम्।

संस्कृतज्ञों को लज्जित कराने की एक बात लेखक ने नितान्त सत्य ही कही है कि यदि किसी ने कोई संस्कृत-पुस्तक छपा भी ली तो उसे क्रय करने वाला कोई नहीं मिलता। पुस्तक उसके घर पर सड़ ही जाती है। यह वक्तव्य अन्य भाषाओं की पुस्तकों के विषय में भी पर्याप्त सत्य है।

नम्बर १६६१ ई० में भारत शासन के वैज्ञानिक संशोधन और सांस्कृतिक कार्य-विभाग की ओर से एक नाटक-स्पर्धा अयोजित हुई। विषय था—भारतस्यैकात्मतान्वेषणम्।[1] पलसुले ने इस स्पर्धा के लिए 'समानमस्तु मे मनः' की रचना की। निर्णायकों ने इसे सर्वोत्तम संस्कृत नाटक घोषित किया। इस पर लेखक को १०००-रुपयों का पुरस्कार मिला।[2]

इस नाटक की पृष्ठभूमि है वे घटनायें, जो भाषानुसारी राज्य बनाने के समय असम और वङ्ग देश में घटी। यदि भारत की एकता है तो इस प्रकार का विसंवाद शोच्य ही है। दूसरे अङ्क में भारतीय एकता के लिए पूर्वमनीषियों के द्वारा किये प्रयत्नों और परिणामों का आकलन है। आवश्यकता है एकात्मताजीवियों की, केवल एकात्मतावादियों की नहीं।

नाटक में तीन अङ्क हैं। अङ्क दृश्यों में विभाजित हैं। प्रायः संवाद छोटे-छोटे और चटपटे हैं, किन्तु कहीं-कहीं अनावश्यक रूप से अतिदीर्घ संवाद भाषण जैसे लगते हैं। २८ पंक्ति का एक संवाद द्वितीय अङ्क में है। इतना बड़ा संवाद अभिनेय नाट्य के लिए समीचीन नहीं है। नाटक में नान्दी और भरतवाक्य तो हैं, पर भारतीय प्रस्तावना का अभाव है।

---

१. India's Quest for Unity

२. पूना से शारदा ग्रन्थमाला में प्रकाशित।

धन्येयं गायनी कला नामक एकाङ्की के नायक ठणठणपुर के चक्रमादित्य हैं। यथानाम नायक का व्यक्तित्व हास्यपूर्ण है। वह कर्तनालय का उद्घाटन करता है। उसकी सभा में अमात्यादि चापलूसी करते हुए प्रहसन सर्जन करते हैं। यथा, कैसे चक्रमादित्य ने छिपे-छिपे आक्रमण करके व्याघ्र की पूंछ काटी थी। गर्दन क्यों नहीं आपने काटी ? इसका उत्तर देते हुए चक्रमादित्य ने कहा कि वह भी काटता, पर किसी ने पहले से ही गर्दन उड़ा दी थी।

किसी गायक को राजा आदेश देते हैं कि ऐसा गाये कि नाक और नेत्र तृप्त हो जायें। राजा गायन से प्रसन्न हुआ। उसने याचना की कि राज्य में गायनीकला प्रतिष्ठा प्राप्त करे। महाराज ने अमात्य से कहा—

मस्तिष्के शोभना आयडिया आगता कि राज्य में कोई गद्य भाषा न करे। सर्वेण पदनीयम्। जो गद्य बोले उसे मार डाला जाय। बाजार में इस प्रकार के संवाद सुनाई पड़ने लगे—

पतिः—लिटरमेकं ददातु तैलं नान्यदिष्यते इदमेवालम्।

वणिजः—अर्धन्यूनं रूप्यपंचकं देयं जातमतीवाल्पकम्॥

राजा का महल ऐसी आज्ञावशात् जल गया।

पलसुले का यह प्रहसन शृङ्गार-विहीन कोटि का अतिशय रुचिकर है। निस्सन्देह उनकी गणना आधुनिक श्रेष्ठ प्रहसनकारों में योग्य ही है।

चार अङ्कों के नाटक 'धन्योऽहं धन्योऽहम्' के नायक स्वतन्त्रता-संग्राम के अग्रगण्य सेनानायक वीरसावरकर पलसुले के श्रद्धा-भाजन हैं। सावरकर पर पलसुले ने बहुविध रचनायें की थीं। उन पर नाटक का न होना उन्हें कष्टप्रद था। १९६९-७० ई० में उन्होंने अनेक ग्रन्थों का मंथन करके इसका प्रणयन किया।

नाटक का आरम्भ १५ वर्षीय सावरकर के पिता के समक्ष आरण्यक पढ़ने से होता है और इसमें उनके समग्र जीवन की उदात्त चरित गाथा है।

नाटक की सरल भाषा असामान्य रूप से नाट्योचित है, किन्तु लम्बे भाषण किसी भी प्रकार नाट्योचित नहीं कहे जा सकते। चतुर्थ अङ्क के प्रथम दृश्य में सावरकर की एकोक्ति तीन पृष्ठों की प्रायः सौ पंक्तियों में निबद्ध है।

नाटक में नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य का अभाव है। यह आधुनिक शैली का चरितात्मक नाटक है।

पलसुले की कृतियों का सर्वाधिक महत्त्व राष्ट्रिय चरित के निर्माण की दिशा में अनुत्तम है।

संयुक्ता-पृथ्वीराज

संयुक्ता पृथ्वीराज-नाटक के प्रणेता पण्डित-प्रवर योगेन्द्रमोहन का जन्म १८८९

ई० और मृत्यु १९७६ ई० में हुई। बङ्गलादेश के फरीदपुर जिले में कोटालीपाडा परगने में ऊनसिया ग्राम में उनका आविर्भाव हुआ था। उनके पिता का नाम काशीश्वर चक्रवर्ती और माता का नाम रोहिणी देवी था। उनका वंशवृक्ष अग्निहोत्री श्रीराममिश्र, माधवमिश्र, गोपालमिश्र आदि से चलता है। अपने पिता और गाँव की पाठशाला में संस्कृत पढकर उसी गाँव के हरिदास-सिद्धान्त वागीश से उन्होंने संस्कृत का उच्च अध्ययन किया। हरिदास अपनी पाठशाला जब खुलना में ले गये तो उनके साथ ही योगेन्द्र भी वहाँ गये। वे १९१५ ई० से १९६१ ई० तक मतिलालसील फ्री कालेज में प्रधान संस्कृताध्यापक रहे। उनकी प्रमुख रचनायें हैं—संस्कृत में कृतान्त पराजय-महाकाव्य। इसमें सावित्री और सत्यवान् की कथा है।[1] इनके नीचे लिखे काव्य बंगला भाषा में हैं—कर्मफल उपन्यास और भारते कलि—नाटक।

इनके अतिरिक्त इनके अनेक निबन्ध मंजूषा, संस्कृत साहित्य-परिषद्-पत्रिका और प्रणव-पारिजात में प्रकाशित हुए हैं।

संयुक्ता-पृथ्वीराज ऐतिहासिक नाटक है। बीसवीं शताब्दी में स्वतन्त्रता के संग्राम में साहित्यिक योगदान देने के लिए भारत के प्रतापी महावीरों का आदर्श और प्रेरणाप्रद कथानक राष्ट्र के समक्ष रखा गया है।

भारती-विजय

शठकोपविद्यालंकार भारती-विजय नामक एकाङ्की में हिन्दी, उत्कली, द्राविडी, आन्ध्री, वङ्गी आदि भाषाओं को पात्र बनाकर संवाद कराते हैं।[2]

प्रथम दृश्य में सरस्वती ब्रह्मलोक से भूलोक में क्रीडा करने आती हैं। साथ ही यष्टि नृत्य और गीत होता है। द्वितीय दृश्य में ब्रह्मा सामगान करते हैं और सरस्वती वीणा वादन करती है। तृतीय दृश्य में सरस्वती-पूजा के दिन हिन्दी, द्राविडी आदि पूजा मन्दिर में गोष्ठी करती हैं। आंग्ली भी आती है। वह कहती है—

Oh I see अयमेव भारतदेशो नाम। वह अपने संवादों को I am English. Please do do'nt be angry, many thanks. This is very good idea, आदि से आरम्भ करती है। वह परस्पर लड़ने वाली भारतीय भाषाओं से मिलजुल कर उनमें फूट डालती है।

पंचम अंक में आंगली कहती है कि मेरी व्यूह-रचना सफल हुई। आज से ये सभी भाषायें मेरी दासी हुईं। उसके प्रभाव से हिन्दी आदि ने भी अगरेजी वेश धारण कर लिया। वे अलग-अलग रहने लगती हैं।

---

१. यह महाकाव्य अमुद्रित है।

२. भारती १०.८,९ में प्रकाशित।

एक दिन नारद उनसे मिलते हैं। वे सभी अपनी-अपनी भाषा में नारद को अपना परिचय देती हैं। द्राविडी ने नारद से कहा कि महाराज काफी पीलें। नारद चौंके कि यह काफी क्या हैं ? उन्हें सिगरेट भी दिया गया। नारद वहाँ से भगे। छठें अङ्क के अनुसार ब्रह्मलोक में सरस्वती को चिन्ता होती है कि हमारी कन्यायें कैसी हैं ? नारद ने बताया कि वे सभी भ्रष्ट हो चुकी हैं। ब्रह्मा ने किसी महात्मा से कहा कि तुम शीघ्र जाकर उन्हें अपनी संस्कृति का अवलम्बन कराओ। अन्त में सरस्वती को आना पड़ा। सरस्वती के उपदेश से भारतीय भाषा आंगली के विषमय प्रभाव से मुक्त हुईं। महात्मा ने कहा—

न केवलं भारते एव भारती-विजयः। अपितु विदेशेष्वपि भारती-विजय उद्घोषितो मया।

चतुर्वाणी

चतुर्वाणी चार एकाङ्कियों का संग्रह है।[1] इसका अपर नाम चतुर्नाटी है, जिसमें प्रतिज्ञाकौत्स, आनूरव, ऐकलव्य और पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती चार नाटियाँ हैं। इसके लेखक कोगंटि सीतारामाचार्य साहित्यसमिति गुन्तूर के सदस्य हैं। सीताराम कोरे कवि ही नहीं हैं, अपितु वे अध्यात्मविद्या, शास्त्रों और तन्त्रादि में निष्णात हैं।

चतुर्वाणी का अभिनय श्रीशिवशंकर स्वामी के कवितासाम्राज्यपट्टाभिषेक-महोत्सव में उपस्थित विद्वानों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

प्रतिज्ञाकौत्स में रघुवंश के पञ्चम सर्ग की कथा है, जिसमें वरतन्तुशिष्य कौत्स को राजा रघु से १४ करोड़ स्वर्ण मुद्रायें गुरुदक्षिणा के लिए मिलती हैं। इसमें कवि ने पुरातन भारतीय ऋषि-आश्रम की महिमशालिनी परम्पराओं का निदर्शन किया है। इसका विभाजन अङ्कों में न होकर रङ्गों में हुआ है। रंग दृश्य के समकक्ष है। इसके आरम्भ में मंगलाचरण (नान्दी) और प्रस्तावना तथा अन्त में भरतवाक्य हैं।

आनूरव में महाभारत की कद्रू और विनता की कथा है। कद्रू मत्सर-ग्रस्त होकर विनता को संकट में डालती है। इसका आदर्श वाक्य है—

मात्सर्येण विनश्यन्ति श्रेयांसि महतामपि।
अन्तरग्नि परीतानि तूलानीव समन्ततः॥

इसका आरम्भ सूचिका से होता है।

ऐकलव्य में महाभारत-प्रसिद्ध धनुर्धर एकलव्य की मनस्वितामयी तथा पराक्रम-शालिनी गाथा है।

---

१. इसका प्रकाशन गुन्तूर से हुआ है। इसके प्रकाशन के लिए आन्ध्रप्रदेश की एकेडेमी ने धनराशि प्रदान की थी।

इसमें एकलव्य की उदात्तता बताई है।

पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती शिव शंकर स्वामी द्वारा विरचित आन्ध्रनाटिका का अनुवाद सा है।

सरस्वती-पूजन

दो अङ्कों के सरस्वती-पूजन नामक रूपक के प्रणेता हेमन्तकुमार तर्कतीर्थ बङ्गवासी अध्यापक महाकवि हैं।[1] इसका अभिनय वसन्तपंचमी के अवसर पर संस्कृत विद्यालय के छात्रों के द्वारा समागत विद्वत्परिषद् के प्रीत्यर्थ हुआ था। विद्यालय के अध्यक्ष की आज्ञा थी कि कोई संक्षिप्त नवीन रूपक खेला जाय। हेमन्त ने इस रूपक के प्रथम अङ्क में गंगा और सरस्वती के प्रणयात्मक कलह की काल्पनिक वर्णना की है। उनके बीच नारायण की प्रियतमा लक्ष्मी पड़ी। उसकी भी उपेक्षा कलहकारियों ने की। अन्त में नारायण को हस्तक्षेप करना पड़ा। उन्होंने आदेश दिया—

गंगा गच्छतु भारतं स्वकलया तिष्ठत्विहैव स्वयं
लक्ष्म्यस्तत्र च शम्भुमौलिरजया पुण्यात्मना पावनः।
स्वांशेनैव रसां सरित्तनुधरा यायात् सरस्वत्यपि
स्वार्धांशेन सरोरुहासनमसावासाद्य संसेवताम्॥

उन्होंने लक्ष्मी को तुलसी बना दिया और यह शाप ५००० कलिवर्षों के लिए सीमित कर दिया।

रूपक के संवाद पर्याप्त रसमय हैं। पात्रों के अमर्यादित और आङ्गिक कार्यकलापों की खटपट प्रेक्षकों के मनोरंजन के लिए है। कवि ने इस रूपक की कोटि निर्धारित करते हुए लिखा है—रूपकप्रायं किंचित्।

रामकिशोर मिश्र के नाटक

पाँच अङ्कों के लघु नाटक अङ्गुष्ठ दान के प्रणेता रामकिशोर बालकवि हैं।[2] इनका जन्म उत्तर प्रदेश में एटा जिले में सोरों में १९३९ ई० में हुआ। इनके पिता होतीलाल और माता कलावती थी। अंगुष्ठदान की रचना १९६१ ई० में रामकिशोर ने की।

श्रीमिश्र साहित्य और व्याकरण विषय के आचार्य है और सम्प्रति मेरठ विश्वविद्यालय के अन्तर्गत महाविद्यालय में अध्यापक है।

अंगुष्ठदान में यथानाम महाभारत के एकलव्याख्यान का नये सविधानों के साथ रोचक रूपकायन है।

---

१. प्रणवपारिजात ३.९ से ३.१२ में क्रमशः प्रकाशित।

२. कायमगंज, उत्तरप्रदेश से १९६२ ई० में प्रकाशित।

रामकिशोर का दो अङ्कों का दूसरा लघु नाटक ध्रुव है। इसकी रचना १९६२ ई० में हुई थी।[1] इसमें ध्रुव का पौराणिक आख्यान रूपकायित है।

नवोढा वधूः वरश्च

नवोढा वधूः वरश्च के लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पट्टाभिराम शास्त्री विद्यासागर हैं।[2] यह प्रहसन कोटिक रूपक है। आधुनिक युग में प्राचीन भोंड़े प्रहसन की परम्परा को सर्वथा छोड़ कर शिष्ट हास्य के लिए विशेष आग्रह पूर्वक रचनायें की गई। ऐसी रचनाओं में इस कृति का अन्यतम स्थान है। इसमें अनेक स्तरों पर हास्य-सर्जन की प्रक्रिया है। आरम्भ में नागेश को द्व्यक्षर (काफी) देर से मिली—इस प्रसंग में क्या कठिनाइयाँ हैं—यह चर्चा का विषय है। मंजुभाषिणी उनकी पत्नी कहाँ तक मंजुभाषण करके काम चलाती। उनकी कन्या कोमलाङ्गी का कहीं विवाह होना था। लड़की नपुंसक थी, इस दोष को छिपा कर विवाह करना था। उसे देखने के लिए वर की माता मनोरमा और उसके भाई आये। उनकी परीक्षण-विधि में हँसी की प्रचुर सामग्री मिलती है। विवाह हो गया। उसके पति नवयुवक कृष्ण कुमार बने।

वहू को मनोरमा असंख्य वहाने वनाकर कृष्णकुमार से मिलने नहीं देती थी। एक रात तो मनोवेग से सम्भ्रान्त कृष्णकुमार ने बूढ़े नौकर को ही पत्नी समझ कर आलिगन किया। अन्ततोगत्वा कोमलाङ्गी छिप कर एक दिन अपने पतिदेवता से मिली और उसे जीवन भर न त्यागने की शपथ लेकर वताया कि मैं पोटा हूँ।

कालिदासीयोपरूपकाणां समुच्चयः

कालिदासीयोपरूपकाणां समुच्चयः कालिदास-स्मृति'समारोह के अवसर पर कालिदासीय काव्य-कथापात्र—चरितादि के आधार पर विद्वानों के द्वारा विरचित नये रूपकों का संग्रह प्रकाशित किया गया है।[3] इसमें ११ उपरूपक संकलित हैं।

नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य से विहीन पाँच दृश्यों में विभक्त पुनः संगम के लेखक पं० आनन्द झा, न्यायाचार्य लखनऊ विश्वविद्यालय के व्याख्याता हैं। इसमें कुमारसम्भव के प्रथम, तृतीय, और पंचम अङ्कों की कथा को रूपकायित किया गया है। कवि ने कालिदास के पद्यों को आवश्यकतानुसार अपनाया है और कुछ पद्य स्वरचित भी जोड़े हैं। गद्यात्मक संवाद रुचिकर हैं।

---

१. दिव्यज्योति में १९६३ ई० में प्रकाशित।
२. कलकत्ता सं० सा० प० पत्रिका के १९६३ के अङ्कों में प्रकाशित।
३. इसका प्रकाशन महेशठक्कुर-ग्रन्थमाला में १९६३ ई० में दरभंगा—विश्वविद्यालय के कुलपति महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र के सम्पादन में हुआ है।

वीरवदान्य के लेखक प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रवाचक डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल एम० ए०, डी० लिट्० हैं। यह चार अङ्कों का पारम्परिक लघु रूपक है। इसमें नान्दी, प्रस्तावना और भरत वाक्य नहीं हैं। प्रथम अंक में रघुवंश के प्रथम सर्ग की कथा संक्षेप में विलसित है। द्वितीय अंक में रघुवंश के द्वितीय सर्ग का गोचारण निभालित है। तृतीय अंक में रघुवंश के तृतीय सर्ग की रघु और इन्द्र की लड़ाई का प्रकरण है। चतुर्थ अंक में रघुवंश के पंचम सर्ग की कथा में कौत्स प्रकरण है। भाषा, भाव और शैली कालिदासानुहारी है। डा० शुक्ल का तापस-धनञ्जय नामक नाटक प्रयाग-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग द्वारा अभिनीत हुआ था।[1]

कालिदास-पाणिकरण के लेखक पं० सभानाथ पाठक बालगोविन्द विद्यालय, आरा (बिहार) के अध्यापक हैं। इसकी नान्दी में ईश प्रार्थना के पश्चात् प्रस्तावना है। अन्त में भरतवाक्य का अभाव है। तीन दृश्यों में पटाक्षेप के द्वारा रूपक विभक्त है। इसमें पेड़ की डाल काटते हुए युवक को विद्वानों ने उतार कर राजकुमारी से मौन शास्त्रार्थ आयोजित करके विवाह करा दिया। तदनन्तर उट्र कहने पर पति को मूर्ख जानकर राजकुमारी ने उनको घर से निकाल दिया। मन्दिर में देवी ने उनका रुदन सुनकर उन्हें विद्वान् होने का वर दिया। अन्त में तृतीय दृश्य में 'अनावृतं कपाटं देहि' सुनकर पत्नी ने उन्हें पतिरूप में अपनाया।

सीता-त्याग के रचयिता अच्युत तात्याराव थोबड़े, मांजलगांवकर, संस्कृत महाविद्यालय, नान्देड (होली) दक्षिण भारत में अध्यापक हैं। इसमें रघुवंश के १४ वें सर्ग के अनुसार सीता के उत्तरराम-चरित की कथा संक्षेप में रूपकायित है।

मदन-दहन के रचयिता पं० रमेश खेर मुम्बई के निवासी हैं। इसकी आधुनिकोचित प्रस्तावना के अनुसार यह एकाङ्की प्रवेश-द्वयात्मक संगीत-प्रधान नाटिका है। इसका प्रथम अभिनय विल्सन कालेज के संस्कृत-मण्डल द्वारा सम्पन्न हुआ था। इसमें आगे हुए सभी पद्य स्वर-तालादि संगीत-विशेष का आश्रय लेकर गेय हैं। बम्बई की नभोवाणी द्वारा इसका प्रसारण हुआ था। आधे घण्टे तक यह कार्यक्रम चला। इसके अभिनय के लिए कृत्रिम पर्वत, कार्पास, वस्त्र, लता-पुष्प-विन्यास आदि आहार्य दृश्य थे। इसमें पारम्परिक नान्दी, प्रस्तावना, और भरतवाक्य का अभाव है। कालिदास के श्लोकों के साथ कवि के स्वरचित पद्य संवलित हैं। इसमें गद्यात्मक संवाद नहीं हैं।

---

१. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति कवि के पास है।

कालिदास नामक एकाङ्की के रचयिता वनेश्वर पाठक का जन्म विहार में सीवान जिले के प्रसादीपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम भुवनेश्वर पाठक था। वनेश्वर की शिक्षा काशी में साहित्याचार्य और एम० ए० तक हुई। श्रीपाठक सम्प्रति सेण्ट जेवियर कालेज, राँची में अध्यापक हैं। कालिदास-रूपक में सात अतिलघु दृश्य हैं।

इसमें मुख्यतः मूर्ख कालिदास के विवाह की कथा है। पराजित पण्डितों को डाल काटते कालिदास मिले। मूर्खता विदित होने पर उनका निर्वासन राजकुमारी ने कर दिया। कालिदास रोते हुए दिङ्नागाचार्य के पास पहुँचे। आचार्य ने उन्हें प्रतिदिन काली की पूजा करने का आदेश दिया।

शनैः शनैः उनकी रसमयी वृत्ति जाग उठी। कविगोष्ठी में उनकी कविता का सर्वोच्च सम्मान हुआ। वह कविता थी मेघदूत। उसी समय आचार्य के आश्रम में विक्रमादित्य राजकुमारी और सभासदों के साथ आये। इस अवसर पर कालिदास ने राजकुमारी को कुमारसम्भव, रघुवंश आदि उपहाररूप में दिया। वनेश्वर पाठक ने १९७५ ई० में कालिदास के मेघदूत के अनुरूप प्लवङ्गदूत नामक सन्देश-काव्य का प्रकाशन किया है।

इस मदन-दहन के रचयिता रा० श० महाराज हैं। रूपक का विभाजन तीन प्रवेशों (दृश्यों) में हुआ है। इसमें नान्दी प्रस्तावना और भरतवाक्य का अभाव है। प्रथम प्रवेश में नारद से इन्द्र, सूर्य, यम, वायु, बृहस्पति आदि बातें करके तारकासुरवधार्थ शिव का पार्वती से विवाह की योजना बनाते हैं। मदन योजना कार्यान्वित कराने के लिए प्रस्थान करते हैं। रति उससे शिव की भयङ्करता बताती है। तृतीय प्रवेश में पार्वती प्रियंवदा नामक सखी के साथ वासन्तिक पुष्पों का चयन करके शिव की पूजा के लिए उनके समीप पहुँचती है। मदन ने नीलोत्पल को अपना कार्य सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त किया। तभी शिव ने मदनाभिमुख नेत्र को उन्मीलित किया और वह भस्मावशेष हो गया।

गुरुदक्षिणा के रचयिता पं० यदुवंश मिश्र, व्याकरण अचार्य उच्चाङ्गल विद्यालय, खाजेडीह, दरभंगा में अध्यापक हैं। चार दृश्यों में इन्होंने रघुवंश के पंचम सर्ग के कौत्स प्रकरण को रूपकायित किया है।

इन्दुमती-परिणय के रचयिता श्रीनारायण मिश्र मिथिला-संस्कृत विद्यापीठ, दरभंगा के गवेषक थे। इस में रघुवंश के सप्तम सर्ग के अज के विवाह-प्रकरण की कथा है। इसका अभिनय संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा की विद्वत्परिषद् के प्रीत्यर्थ हुआ था। इसमें नान्दी, प्रस्थापना और भरत-वाक्य के अतिरिक्त तीन दृश्य हैं।

कालिदास-गौरव के रचयिता जीवनाथ झा शर्मा दरभंगा जनपद में जनकपुर, जयनगर मे संस्कृत-महाविद्यालय के आचार्य हैं। इस रूपक में चार दृश्यों में कालिदास के मूर्ख होने, काली के वरदान से विद्वान् महाकवि बनने और विक्रमादित्य के द्वारा सम्मानित होने की कथा है। कालिदास खेल-कूद और ऊधम मे सबसे आगे और पढाई-लिखाई मे सबसे पीछे थे। छात्रों ने कहा कि यदि तुम अमावस्या की रात्रि मे इस बढी हुई भीमा नदी को पार करके काली के मन्दिर तक पहुँच जाओ तो हम समझें कि तुम निर्भय वीर हो। कालिदास बीहड़ वन पार करके वहाँ काली के पास जा पहुँचे। काली प्रकट हुई और वर दिया कि आज रात जिन पुस्तको को पढोगे, वे सभी तुम्हे कण्ठस्थ हो जायेंगी। एक दिन सार्वजनिक कविगोष्ठी मे कालिदास ने अपनी सर्वोच्च विद्वत्ता प्रमाणित की। कालिदास भारत-सम्राट् विक्रमादित्य की सभा में पहुँचे और वहाँ अभिज्ञान-शाकुन्तल, रघुवंशादि के द्वारा विद्वानों को सुप्रसन्न किया। विक्रम ने कालिदास का अभिनन्दन किया—

> सत्यं सत्यं प्रसीदामि सभा गौरविता मम।
> महाकवे भवत्पादपंकजस्याद्य दर्शनात्॥

शाकुन्तल के लेखक रामावतार मिश्र अध्यापक हैं। यह एकाङ्की रूपक तीन दृश्यो में पूरा हुआ है। इसकी कथा दुष्यन्त के शकुन्तला से गान्धर्व विवाह के पश्चात् से आरम्भ होती है। कण्व ने इसे स्वीकृति दी है, पर दुष्यन्त ने प्रतिज्ञानुसार शकुन्तला को बुलाया नही। तृतीय दृश्य में शकुन्तला काश्यप के आश्रम मे है। उसे वही दुष्यन्त मिलते हैं। इस एकाङ्की में नान्दी नाममात्र की है प्रस्तावना और भरतवाक्य नहीं हैं।

शिप्रसाद भारद्वाज के नाटक

शिवप्रसाद भारद्वाज एम० ए०, एम ओ० एल, व्याकरण के विशेषज्ञ हैं। वे विश्वेश्वरानन्द-संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर में प्राध्यापक रहे हैं। वे उच्चकोटि के कवि, नाटककार और निबन्ध लेखक हैं।

साक्षात्कार शिवप्रसाद का अनुत्तम भाण है। इसकी रचना में एक नवीन पथ अपनाया गया है।[1] बहुसंख्यक भाण १७ वी से १९ वी शती तक बड़े-बड़े विद्वानो ने लिखे। इन सब भाणो में अश्लीलता की चरम सीमा है। सौभाग्य से बीसवी शती में भाण विरल ही लिखे गये। भारद्वाज का 'साक्षात्कार' ऐसे

---

१. इसका प्रकाशन विश्वसंस्कृतम् के नवम्बर १९६४ ई० के अंक मे है।

भाणों में अन्यतम है, जो अपनी सदभिरुचि की निष्पन्नता के कारण संस्कृत की साहित्यिक निधि में प्रभान्वित रहेंगे।

साक्षात्कार भाण का ऊपरी ढाँचा पारम्परिक-भारतीय है। इसके आरम्भ में नान्दी और प्रस्तावना हैं और अन्त में भरतवाक्य है।

साक्षात्कार में वामदेव अभ्यर्थी के अध्यापक-पद के लिए साक्षात्कार का वर्णन है। अभ्यर्थी या पढ़े-लिखे लोगों की दुर्दशा और लाचारी, चयन-समिति के निराले ढंग और वेतुके प्रश्न, वेतन-सम्वन्धी मोल-तोल और शोपण की प्रवृत्ति इन सब बातों का हँसने-हँसाने की विधि से प्रस्तुतीकरण में भारद्वाज को सफलता मिली है। अन्त में नीचे लिखा श्लोक कह कर वामदेव ने अपने को प्रशान्त किया—

प्रोज्वाल-ज्वलनैर्ज्वलेत् क्षितितलं चण्डांशु-चण्डांशुभि-
स्तप्तं तर्पितकोणगह्वर-जलैरालोपितं तोयदैः।
रुद्रः संतनुतामकाण्ड-विकटं स्वं भैरवं ताण्डवं
मृत्युश्चर्वतु गर्वदुर्भरधियो युष्मादृशान् शोषकान्॥

डा० हरिदत्त शास्त्री ने प्रत्याशि-परीक्षण नामक प्रहसन में प्रायः समान विषय को रूपित किया है।[2] इसमें अनेक अभ्यर्थियों का साक्षात्कार होता है।

अजेय भारत शिवप्रसाद का रेडियो या ध्वनि नाटक है।[1] इसमें भारत की चीन से लड़ने की कथा है। भारतीय सैनिकों की संख्या कम थी। उनके पास अस्त्र-शस्त्र भी कम था। तब तक यान पर शत्रु आ गये। कुछ देर में भारत के लाखों वीर आ पहुँचे। सारे देश ने अपना सर्वस्व देशरक्षा के लिए अर्पित किया और विजय प्राप्त हुई। अन्त में गीत है—

जय जय भारत हे!
कोटि-कोटि-जनकण्ठ सुभृत-रव
नित्य गीत-गौरव पुण्यस्तव। इत्यादि

केसरि-चंक्रम नामक ध्वनि-रूपक में भारद्वाज ने लालालाजपत राय के समग्र जीवन की झांकी प्रस्तुत की है।[3] इसमें कवि ने श्रोताओं के हृदय में लोक सेवा और राष्ट्र सन्मान-रक्षण का भाव भरने में सफलता पाई है।

---

१. इसका प्रकाशन विश्वसंस्कृतम् के नवम्बर १९६३ ई० के अंक में हुआ है।
२. इसका प्रकाशन विश्वसंस्कृतम् में १९६३ के नवम्वर अङ्क में हुआ है।
३. विश्वसंस्कृतम् १९६५ ई० में प्रकाशित।

विश्वनाथ केशव छत्रे के नाटक

विश्वनाथ केशव छत्रे जोगलेकर-वाडा, सिद्धेश्वर आल, कल्याण, जिला ठाणें के निवासी हैं। उन्होने संस्कृत और मराठी मे बहुविध रचनायें की हैं। वे कवि और नाटककार के साथ ही प्रवचन और कीर्तन मे निष्णात हैं। उनकी प्रमुख काव्यात्मक रचनायें *सुभाष-चरित, एकनाथ-चरित, भारतीय-स्वातन्त्र्योदय* इत्यादि हैं। विश्वनाथ के प्रसिद्ध नाटक प्रतापशाक्त, सिद्धार्थ-प्रव्रजन, जवाहर-स्वर्गारोहण, नन्दिनीवर-प्रदान, कीचक-हनन आदि हैं।

प्रतापशाक्त नाटक के अनुसार स्वातन्त्र्योपासक प्रताप का अपने अनुज शाक्तसिंह से मनमुटाव हो गया। दोनो का वैमनस्य एक सूअर को किसने मार गिराया ? इस बात को लेकर हुआ। दोनो में द्वन्द्वयुद्ध होने ही वाला था कि कुलगुरु ने बीच में पड़कर, जब देखा कि दोनों मदान्ध है तो कमर से कटार निकाल कर छाती में भोंक लिया। अच्छी बात यह हुई कि द्वन्द्व-युद्ध न हो सका। *शाक्त प्रताप के शत्रु अकबर से जा मिला।*

मानसिंह प्रताप का अतिथि स्वेच्छा से बना। शिरोवेदना के बहाने प्रताप ने उसके साथ भोजन नही किया। अपमानित होकर उसने प्रताप से प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की। उसने बडी सेना लेकर प्रताप पर आक्रमण किया। वीरता से लडकर प्रताप को रणभूमि से अकेले भागना पड़ा। मार्ग में प्रताप का अश्व चेतक मर गया। तभी प्रताप का पराक्रम देखकर शाक्त उसके चरणो पर आ गिरा। शाक्त ने प्रताप का पीछा करने वाले दो शत्रुओ को मार कर उसके प्राणों की रक्षा की थी।

इस एकाङ्की नाटक में छ॰ प्रवेश है। छठे प्रवेश के आरम्भ में चेतक के मरने पर प्रताप की एकोक्ति अतिशय भावुकतापूर्ण है।[1]

सिद्धार्थप्रव्रजन छत्रे का सर्वप्रथम नाटक है। इसका आरम्भ सूत्रधार के नान्दी-गान से होता है। छत्रे ने इसे स्वान्तःसुखाय लिखा और इसे संगीत-नाटक कहा है। इसके अभिनय के पूर्व सूत्रधार ने प्रस्तावना में कहा है कि रसिकों को इससे यदि परितोष हुआ तो कवि अन्य नये नाटक लिखेंगे। इस नाटक मे तीन अङ्क हैं और प्रत्येक अङ्क अनेक दृश्यो मे विभक्त है।

नाटक का आरम्भ सिद्धार्थ के माता के गर्भ में आने के समय से लेकर उनके प्रव्रज्या लेने तक प्रसारित है। यह चरितात्मक रचना है। कवि ने अपनी ओर से अनेक मनोरञ्जक बातें जोड रखी हैं। ऐसे तत्त्व को इतना विस्तार देना

---

१. इसका प्रकाशन बम्बई से संविद् मे १९६६ ई० में हुआ है।

समीचीन नहीं है। यथा प्रथम अङ्क में लम्बोदर और विद्याधर की वार्ता को इतना स्थान नहीं देना चाहिए था।

विश्वनाथ केशव छत्रे ने प्रवेशों में विभक्त तीन अङ्कों में शिक्षण नामक रूपक की रचना की है।[1] इसका कथासूत्र प्रणयात्मक है, किन्तु इसका उद्देश्य आज की शिक्षण-प्रणाली पर प्रमुख रूप से और सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन पर गौण रूप से सनातन-पन्थी आलोचकों का विचार-वैषम्य व्यक्त करना है। नाटक आधुनिक शैली का है, जिसमें नान्दी तो है, पर प्रस्तावना नहीं है। अन्त में नाममात्र का भरतवाक्य है।

आनन्द नामक छात्र अपने पिता की भाँति विना हाथ मुंह धोये चाय पीना चाहता है। उसकी वहिन सुधा और माता नये फैशन के पुजारी हैं। स्कूलों में भारतीय व्यायाम-प्रणाली नहीं है। असंख्य विषय पढ़ाने से भी लड़कों की आँख खराव हो जाती है। उन पर पिता का कोई सांस्कृतिक प्रभाव नहीं रह जाता, क्योंकि पिता के सोकर उठने के पहले वे स्कूल चले जाते हैं और सन्ध्या के समय उनके वाहर से आने के पहले सो जाते हैं। दूरस्थ कार्यालयों में काम करने के लिए कार्यालय खुलने के वहुत पहले निकलने के कारण लोगों को वाजार का भोजन मिलता है, जिससे उनका स्वास्थ्य खराव होता है।

विद्यालयों में छात्र अध्यापकों का इतना उपहास करते हैं कि वे तंग आकर दूसरे विद्यालय में स्थानान्तरण कराते रहते हैं। अध्यापक को सड़क पर देखते ही कोई विद्यार्थी वोल उठता है—मित्रो, यह वक आया। सावधान हो जाओ। सारी परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि विद्यार्थी उच्छृङ्खल हो जाता है—सिनेमा, रेडियो का प्रणयात्मक गान, सहशिक्षा, घर से दूर विद्यालय में स्वैर-स्वातन्त्र्य, पैसे की अधिकता इनमें एक-एक से विद्यार्थी विगड़ता है। आये दिन सुनने को मिलता है कि किसी नये शिक्षक को विद्यार्थी ने चपेटा जड़ दिया।

शिक्षकों में भी कमी है—अध्यापनीय विषय का अपूर्ण ज्ञान, दुर्व्यसनासक्ति, अध्यापक की छात्राओं पर प्रणय-दृष्टि इत्यादि। युवती छात्राओं की वेष-भूषा—

गौराङ्गमुन्नतमुरो हृदि दृक् तुदन्ती कृष्णालकाश्च रुचिरा वहुवेषभूषा।
वाक्स्नेहयुक्तमधुरा स्मितमुच्चहास्यमित्यादि नव्ययुवतेर्न विमोहयेत्कम् ॥

द्वितीय अङ्क में नायिका सुधा अपने घर में नृत्य करती है, उसकी माता नलिनी हारमोनियम वजाती है। अन्य कुटुम्बी प्रेक्षक हैं।

नृत्यगान है—

अयि मुंच मुंच मे कृष्णाञ्चलमथ रुणद्धि मा मा पन्थानम्।
विलम्वितं मे गमनं सदनं जनयेत् श्वश्रूजनकोपम् ॥

१. विश्वसंस्कृतम् १९७४ ई० फरवरी-अगस्त में प्रकाशित।

· क्लेदय मा मां भित्त्वा कुम्भं विनोदः समुचित एष नैव खलु कालो ह्यपसर रे! शीघ्रम्।

सुधा के पुराण-पन्थी मामा ने अपनी बहिन नलिनी से कहा कि यह आधुनिकता ठीक नहीं। नलिनी ने सर्वथा प्रतिवाद किया।

सुधा ने कहा—

तारका इव प्रकाशितुं मे उत्कटेच्छा।

पण्डित ने कहा कि यह वास्तविक सुख का मार्ग नहीं है। सहशिक्षण की अवधि में कन्यायें पथ-भ्रष्ट होती हैं।

इस कुटुम्ब में आनन्द का उपनयन-संस्कार होने वाला था, किन्तु वह मुण्डन और यज्ञोपवीत धारण नहीं करना चाहता था। पुरोहित भास्कर भट्ट ने कहा कि ऐसा उपनयन मैं नहीं कराऊँगा। उसके चारित्रिक प्रभाव से यजमान को उसकी बातें माननी पड़ीं।

सहशिक्षा वाले विद्यालय में छात्रों को गिरिवन-विहार में भरपूर प्रणयानन्द का अवसर मिलता है। एक ऐसी ही नायिका की चर्चा नायक के शब्दों में है—

रम्भोरूः सा कमलनयना विभ्रमैर्माह्वयन्ती
सौवर्णाभा रुचिरवसना पूर्णचन्द्रानना च।
वेणीं पृष्ठे नवसुमयुतां भागिनीभां दधाना
नेत्राह्लादप्रदतनुरहो किं नु रम्भोर्वशी वा॥

आधुनिक सभ्यता की उपज है बम्बई की नागरिकता, जहाँ बोरीबन्दर में बिजली से चलने वाली गाड़ियों में चढ़ने वाली युवतियों को देखने के लिए आये हुए मनचले युवकों की भीड़ लगती है। दस बजे चर्च गेट पर शिथिल वस्त्र वाली रमणी के वस्त्र को पैर से दबाकर किसी मनचले ने स्रस्तांशुका को 'सभ्यों के लिए दर्शनीय बना दिया। कइयों ने तो इस सफलता पर उस मनचले को साधुवाद देते हुए ताली बजाई। उनका फोटो उसी समय किसी मनचले ने लिया। किसी नाई ने अपनी दूकान में नग्न स्त्री का चित्र लगाया था। उसका कारण उसने बताया कि इससे ग्राहक खिंच कर आते हैं। अध्यापकों का छात्राओं से प्रेम चलता है।

किसी दिन गिरिविहार में रमण ने सुधा को मूर्छित होने पर प्रणयपूर्वक सहायता दी और उसका अधर पान का अवसर पा लिया था। वह नित्य ग्रन्थावलोकन के बहाने प्रणयपूर्ति करती हुई कालक्षेप करती थी। प्रणय-पयारम्भ है—

लिप्सुः शीघ्रं हृदयरमणीं पौरयानेन गच्छन्
रक्षन् मुद्राः स्ववसनपुटे नैकमूल्याः प्रभूताः
कृच्छ्रे पार्श्वस्थितसुनयना वीक्ष्य वाहस्य पण्यं
सद्यस्तस्याः पटुयुवा स्निग्धदृष्ट्यै यदाधात्॥

प्रेयसी नायिका को वसयान पर प्रणयार्थी वन कर किराया दो। उसे कृतज्ञ वनाकर अपना लो।

रमण को सुधा मिल गई। एक दिन उसने माता को चिट्ठी भेज दी कि मुझे योग्य वर मिल गया। रजिस्टर्ड विवाह हो गया। माता-पिता ने कन्या को क्षमा किया और आशीर्वाद भी दे दिया।

नाटक का पहला अङ्क १३ पृष्ठों में विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग की दुष्प्रवृत्तियों का संवाद (नाट्य नहीं) के द्वारा परिचय देने के लिए है। इसके पात्र और घटनाओं का द्वितीय और तृतीय अङ्क से सम्बध अत्यल्प है। यह नाटकीयता की दृष्टि से समीचीन नहीं है। पूरे नाटक में कार्य (action) का अभाव सा है।

जवाहर-स्वर्गारोहण नामक एकाङ्की अति लघु रूपक में कल्पना की गई है कि देवगण जवाहरलाल का स्वागत अपने वीच करने के लिए उत्सुक हैं। उनके मरने पर सारा संसार दुःखी है। कमला भी उनसे मिलने के लिए इच्छुक है। चित्रगुप्त ने देवताओं को वह मानपत्र सुनाया, जो जवाहर के कृतित्व की वर्णना से निर्भर था। स्वर्गलोक में सभी पूर्वजों के वीच प्रसन्न हैं।

विश्वनाथ ने नन्दिनीवर-प्रदान नामक नाटक की रचना १९६४ ई० में की। इस एकाङ्की में रघुवंश के प्रथम और द्वितीय सर्ग की कथा रूपकायित है। इसमें सिंह और नन्दिनी भी पात्र हैं। कवि ने कालिदास के कतिपय पद्यों को इसमें समाविष्ट किया है। इसमें चार लघु दृश्य हैं।

अमृतलता में प्रकाशित कीचकहनन महाभारत की कथा पर आधारित है।[3] इसका अभिनय कल्याण के रामवाग में हुआ था और २७ अप्रैल १९६६ ई० में नभोवाणी से इसका प्रसारण हुआ था। इसमें दृश्य के स्थान पर प्रवेश हैं, जिनकी संख्या १२ है। अंकों में इनका विभाजन नहीं हुआ है। इसमें नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य आदि नहीं हैं।

अन्वर्यंको लालवहादुरोऽभूत् नामक नाटक की रचना विश्वनाथ केशव छत्रे ने १९६६ ई० में की। इसमें पाकिस्तान को प्रशान्त करने के लिए योजना कार्यान्वित की गई है। तीनों प्रकार की सेना ने अतिशय मनोयोग से कार्य किया और उन्हें सफलता मिली।

अन्य नाटकों की भाँति इसमें भी वातें अधिक और काम कम मिलता है।

---

१. अमृतलता १९६४ के नवम्बर के श्रीनेहरू-विशेषाङ्क में प्रकाशित।
२. वही, १९६५ ई० में प्रकाशित।
३. वही, १९६७ ई० में इसका प्रकाशन हुआ है।
४. वही, १९६६ ई० के अङ्कों में प्रकाशित।

विश्वनाथ केशव छत्रे ने मेघदूत की कथा को नाट्यरूप दिया है।[1] इसका आरम्भ यक्ष की आत्मदशा तथा प्रिया-विषयक लम्बी एकोक्ति से होता है। वियोग में पागल-सा वह प्रिया के साथ अनुभूत रसमय प्रसंगो की वर्णना करता है। उसे वियोग सहा नही जाता। वह पानी मे डूबने के लिए कूदना चाहता है। रामगिरि मानव वेष मे उसे समझाता है—

मा मा कुरु त्वं सखयात्मघातं पापं न घोरं खलु तत्समानम्।
पन्था अयं भीहतमानसानां दुःखं तु मुक्त्वैव तरन्ति धीराः॥

तुम तो सन्देश प्रिया के लिए भेजो। तभी मेघ गर्जा और यक्ष से रामगिरि ने कहा कि प्रार्थना करने पर यह तुम्हारी सहायता कर सकता है। मेघ ने उसकी बात सुनकर कहा कि तुम्हारा काम करूँगा। यक्ष ने मार्ग बताया और पत्नी के लिये सन्देश दिया।

इसमे सौदामिनी भी एक पात्र है। नाटक में छायातत्त्व सविशेष है। नाट्य रुचिकर है।

अपूर्वः शान्ति-संग्रामः नाटक में विश्वनाथ केशव छत्रे ने गान्धी जी के सत्याग्रह को वर्ण्य विषय बनाया है।[2] इसमें भाऊराव वकील वकालत छोड़कर सत्याग्रही बन जाते हैं। वे सरकार से असहयोग करने चल देते हैं।

भाऊराव दाण्डी सत्याग्रह मे भाग लेने के लिए चल देते हैं। समाचार पत्रों मे निकला—अहमदाबाद मे साबरमती आश्रम से सत्याग्रहियों की पदयात्रा चली। सौ कोस की यात्रा करके लोग समुद्र के तीर पहुँचे। २४ दिन बीतने पर वे दाण्डीग्राम पहुँचे। बिना कर दिये ही प्रकृति-प्रदत्त नमक की एक मुट्ठी गान्धी जी ने ग्रहण की। आरक्षकों ने उनकी मुट्ठी से नमक छीनना चाहा। गान्धी ने आदेश दिया—चाहे डाँटे जाओ या पीटे जाओ, नमक न देना। सबके साथ गान्धी जी बन्दी बनाये गये। गान्धी के बन्दी बनाये जाने पर क्षुभित लोगो ने नमक का भण्डार लूट लिया। अंगरेज सैनिकों ने लोगों को लाठी से पीटा। चिरनेरा गाँव में सरकारी वन से लकड़ी काटने पर लोग गोली से मारे गये। लाखो सत्याग्रही जेल गये।

बहुत दिनों के पश्चात् भाऊराव जेल से छूट कर अपने गाँव आये। उनका भूरिशः स्वागत हुआ। उनके ललाट पर लाठी का प्रहार अङ्कित था। भाऊराव ने गान्धी जी के प्रति सबकी श्रद्धा जागरित करते हुए कहा—

---

१. अमृतलता १९६६ ई० फरवरी में प्रकाशित।
२. इसका प्रकाशन विश्वसंस्कृतम् में १९७२ ई० में हुआ।

अन्यायं प्रतिरोद्धुमुज्ज्वलधिया धीराग्रणीगान्धिना
सत्याधिष्ठितसंगरस्त्वभिनवो हिंसाविहीनः कृतः।
साश्चर्यं जगतेक्षितः स सफलस्तं मार्गमार्ता जना
धैर्येणानुसरन्त्वसौ विजयतां ख्यातो महात्मा चिरम्॥

यह रचना एकाङ्की है और पांच प्रवेशों में निष्पन्न हुई है। इसमें नाट्यतत्त्व का अभाव-सा है। अधिकांशतः यह संवाद-मात्र है।

भूपो भिषक्त्वं गतः

गणेश शास्त्री लोण्डे ने भूपो भिषक्त्वं गतः का प्रकाशन १९६७ ई० में किया। इसकी रचना १९६४ ई० में हुई थी। कवि के पिता पाण्डुरङ्ग थे। लोण्डे पूना में महाविद्यालय में कार्यरत थे। लोण्डे ने संस्कृत-प्रवेश, सुबोध-संस्कृत-संवाद, सुभाषित-रत्नमंजूषा और मराठी श्लोकबद्ध सुपठ व्याकरण की रचना की है।

नाटक एकाङ्की है और पांच प्रवेशों में विभक्त है। इसमें नान्दी, लघु प्रस्तावना और नाममात्र का भरतवाक्य भारतीय परम्परानुसार है। एकोक्ति के द्वारा आरम्भिक सूचनायें प्रवेश के पूर्व ग्रथित हैं। इसकी कथा के अनुसार प्रोषितभर्तृका निर्मला रोगिणी है। उस दीन-हीन परिवार में कोई चिकित्सक बिना पैसे के दवा करने नहीं आता। उसका पुत्र सुभाष मारा-मारा चिन्ताग्रस्त घूम रहा है। उसे सड़क पर अप्रकटीकृत-राजभाव सुदर्शन मिलता है। सुभाष ने उसे धनी देखकर एक स्वर्णमुद्रा माँगी। पूछने पर उसे माता की बीमारी का ज्ञान हुआ। राजा सुदर्शन ने उसे दीनार देकर चिकित्सा कराने को कहा। वह इतना परदुःख-पीडित हुआ कि घर पहुँचने के पहले ही वैद्य बन कर उसके घर पहुँच गया। सुदर्शन ने निर्मला को देख कर समझ लिया कि रोग तो कोई नहीं है। वह भोजन की कमी से कृश होने के कारण अपने को रुग्ण मानती है। सुदर्शन ने उसके लिए पत्र पर लिख दिया। इस बीच सुभाष भी बिना पैसा दिये एक वैद्य लेकर आया। निर्मला ने पहले आये हुए वैद्य का पत्र अभी-अभी आए वैद्य को दिया, जिसमें लिखा था कि १०० स्वर्ण मुद्रा शीघ्र भेज रहा हूँ। आगे भी आवश्यकता होने पर निःसंकोच माँग लें। सुभाष के विद्यासम्पन्न होने पर न्यायाध्यक्ष बनाऊँगा। राजा ने उस वैद्य को वैद्यपंचानन की उपाधि दी।

पंचम प्रवेश के पूर्व निर्मला की एकोक्ति अतीव रुचिकर है। राष्ट्रिय चारित्रिक और सांस्कृतिक निर्माण के लिए ऐसे नाटकों का अभिनय अतिशय उपयोगी है।

गोपालशास्त्री के नाटक

काशीवासी गोपालशास्त्री संस्कृत और भारतीय संस्कृति के उच्चकोटिक उन्नायकों में से हैं। शास्त्री जी व्याकरण और साहित्य विषय के आचार्य और न्यायतीर्थ हैं। पण्डितराज और दर्शनकेसरी की उपाधियों से वे समलङ्कृत हैं। शास्त्री जी ने १९२१ से १९४७ ई० तक काशी-विद्यापीठ में दर्शन विषय के आचार्य

पद को विभूषित किया है। इसी युग मे भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम मे उन्हें कई बार कारावास भोगना पड़ा। गोपालशास्त्री स्वभावतः सरल स्वभाव के हैं। उनके निर-भिमान व्यक्तित्व में आर्यतत्त्व समुदित हुआ है। वृद्धावस्था मे भी बहुत दिनों तक वे चमोली-मण्डलान्तर्गत ज्योतिर्मठस्थ-बदरीनाथ वेद-वेदाङ्ग महाविद्यालय के प्रधानाचार्य रहे। उन्हे इस प्रकार महामहाध्यापक की उपाधि सहज सिद्ध है।

गोपालशास्त्री के तीन नाटक सुप्रसिद्ध है—पाणिनीय, नारीजागरण और गोमहिमाभिनय।[1] पाणिनीय-नाटक मे अष्टाध्यायी के सूत्रों का ज्ञान सुविधापूर्वक कराया गया है। इसमे भोजराजदृश्य मे स्त्रीवैदुष्य का विवरण है। व्याकरण के माध्यम से अनेक ज्ञान-विज्ञान का परिचय कराया गया है। इसमे महर्षि पाणिनि के इतिहास के प्रसग मे व्याकरण के विकास का अनुक्रम अभिनेय बनाया गया है।

सस्कृत-साहित्य मे नारीजागरण-विषयक साहित्य स्वल्प ही है। इस अभाव की पूर्ति गोपालशास्त्री ने नारीजागरण नाटक लिख कर की है। भारतीय सस्कृतिरंजित प्रातःस्मरणीय नारियों का विशद परिचय देकर लेखक ने प्रयास किया है कि भारतीय महिलायें योरपीय सस्कृति के रग मे न रगें। गोमहिमाभिनय नाटक मे गौओ का माहात्म्य लोकाभ्युदय के लिए दरसाया गया हैं।

हर्ष-दर्शन

हर्षदर्शन के लेखक डा० बलदेव सिंह वर्मा, एम० ए०, पी-एच्० डी०, व्याकरणाचार्य हैं।[2] वे सम्प्रति हिमाचल प्रदेश मे शिमला विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष है। डा० वर्मा की संस्कृत के साथ ही भाषा-विज्ञान विषयक अन्तर्दृष्टि पर्यवेक्षिणी है।

हर्षदर्शन एकाङ्की है। इसमे हर्ष के द्वारा भ्रातृघातक वगाधिप शशाङ्क के पराजित होने के आगे का चरित ह्वेनसाग से मिलने तक रूपित है। इसमे हर्ष के औदार्य और भारत की समृद्धिशालिता तथा सास्कृतिक उच्चादर्शों का निदर्शन महामात्य, बाण और ह्वेनसाग से हर्ष के सवाद के द्वारा कराया गया है।

एकाङ्की की भाषा सरल है और भाव चरित्रोत्कर्षाधायक है।

यज्ञनारायण दीक्षित के नाटक

यज्ञनारायण दीक्षित ने दो नाटक प्रकाशित किये हैं—पद्मावती और वरूथिनी। पद्मावती के सात अङ्कों मे ब्रह्माण्डादि पुराणों मे वर्णित वेङ्कटाचलमाहात्म्य के अन्तर्गत पद्मावती का श्रीनिवास से विवाह वर्णित है। इसमे रोचक गीतों का अनेक स्थलो पर समावेश हुआ है।[3]

१. इनमे से प्रथम दो का प्रकाशन चौखम्भा-विद्याभवन से और तीसरे का विश्वविद्यालय-प्रकाशन वाराणसी से हो चुका है।

२. विश्वसंस्कृतम् मे १९६६ ई० के अगस्त अंक मे प्रकाशित।

३. १९६७ ई० में गुन्तूर, आन्ध्र प्रदेश से प्रकाशित।

तीर्थयात्रा-प्रहसन

तीर्थयात्रा-प्रहसन के लेखक रामकुबेर मालवीय ने काशीविश्वविद्यालय से साहित्याचार्य की उपाधि लेकर वहीं अध्यापन आरम्भ किया।[1] अपनी सेवा-वृत्ति के अन्तिम दिनों में वे संस्कृत-विश्वविद्यालय, काशी में साहित्य-विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष रहे। कविवर मालवीय की काव्यप्रतिभा उच्चकोटिक है, जैसा प्रज्ञा-पत्रिका में छपे उनके मालवीय-महाकाव्य से प्रतीत होता है। प्रो० मालवीय १९७३ ई० में दिवंगत हुए।

तीर्थयात्रा-प्रहसन का प्रथम अभिनय संस्कृत-विश्वविद्यालय के स्थापना-दिवस पर उपकुलपति श्रीसुरति नारायणमणि त्रिपाठी की अध्यक्षता में हुआ था। इसके पात्र वामन, हिडिम्बामल, नलिनीदलविलोचनाचार्य, बुद्धिमार्तण्ड, नैयायिक, वैयाकरण, अनंगरंग-रसतरंग, आलंकारिक आदि हैं। सभी अपने दुराग्रह और मूर्खतापूर्ण प्रवृत्तियों का परिचय देते हुए अन्त में कहते हैं—

कठमुल्ला भजन्त्वल्लां कठमल्ला तदक्षरम्।
रसगुल्लां वयं सर्वे विना हल्लामुपास्महे॥

प्रबुद्ध-भारत

प्रबुद्धभारत नामक नाटक के प्रणेता प्रतिभाशाली और उदीयमान कवि रामकैलाश पाण्डेय प्रयाग-विश्वविद्यालय से संस्कृत-विषय लेकर एम० ए० हैं।[2] श्रीपाण्डेय ने भारतशतक की रचना करके कवि के रूप में प्रतिष्ठा पाई है। संस्कृत-निबन्धकार के रूप में पाण्डेय विद्यार्थियों को सुपरिचित हैं। श्रीपाण्डेय हँडिया के निकट प्रयाग जिले के निवासी हैं। कवि मानता है कि स्वतन्त्रता के युग में कभी का सुप्त-भारत अब प्रबुद्ध है।

प्रबुद्धभारत संवाद अधिक और नाटक कम है, यद्यपि इसमें सूत्रधार नान्दीपाठ करता है और उसके पश्चात् प्रस्तावना है तथा अन्त में भरतवाक्य है। इसमें केवल दो पात्र हैं, जो देश के जागरण के लिए अपने सद्विचारव्याख्यानात्मक शैली में प्रस्तुत करते हैं। भारत माता अपना पुरातन इतिहास कहती है कि किस प्रकार विदेशी बर्बरों ने आक्रमण करके मेरी दुर्दशा हजारों वर्षों तक की है। एक समय था, जब राम ने मेरा यशःप्रसार किया। बुद्ध ने कीर्ति फैलाई। चन्द्रगुप्त मौर्य और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने क्रमशः यवनों और शकों को परास्त किया। इसके

१. सूर्योदय के १९६६ ई० हीरक जयन्ती विशेषाङ्क में प्रकाशित।
२. सूर्योदय अगस्त १९६६ ई० में प्रकाशित।

बाद का इतिहास श्लाघ्यास्पद है। राणा प्रताप और शिवाजी के प्रयासों से भारत माता का चिरकालीन कष्ट थोड़ा कम हुआ।

स्वतन्त्र होने पर भारत ने पाकिस्तानियो का कश्मीर लेने का प्रयास विफल किया। आज मेरी क्रोडस्थली पवित्र है।

विनायक वोकील के नाटक

विनायक वोकील महाराष्ट्र में १९३९ से १९४५ ई० तक शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर पद पर काम करके सेवानिवृत्त हुए। पूना में वे शिक्षा के प्रोफेसर पद पर काम कर चुके थे। इनकी शिक्षा एम० ए० तक हुई थी।

वोकील का जन्म ८ जनवरी १८९० ई० में सतारा जिले मे मध्यम परिवार में हुआ था। उनकी स्नातकीय शिक्षा फर्गुसन कालेज में हुई। उनका अध्यन का विशेष क्षेत्र था शिक्षण का इतिहास और शिक्षा-दर्शन। उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति सविशेष रही है।

ऐसा लगता है कि वोकील ने संस्कृत-काव्य रचना में विशेष अभिरुचि सेवानिवृत्त होने पर ली। उनका नाटक श्रीकृष्ण-रुक्मिणीय १९६५ ई० मे प्रणीत हुआ और तभी उसका प्रकाशन भी हुआ। इसी समय उन्होंने श्रीशिववैभव नाटक प्रकाशित किया। १९७० ई० में उन्होने राधा-माधव नाटक प्रकाशित किया। इनके अन्य संस्कृत नाटक भीम-कीचकीय और सौभद्र हैं। बालकों के लिए बाल-रामायण, बालभागवत और बालभारत की रचना उन्होने की है। अन्य भाषाओ में भी उनकी रचनायें है।

अंगरेजी मे—

(1) Foundation of Education.
(2) A New Approach to Sanskrit.

मराठी में—

(३) शिक्षणाचे तत्त्वज्ञान
(४) इतिहासाचे शिक्षण

संस्कृत नाटक—

(५) शिववैभव
(६) श्रीकृष्ण-रुक्मिणीय
(७) भीम-कीचकीय
(८) सौभद्र।

शिव-वैभव में महाराज शिवाजी की चारु चरितावली ग्रथित है। कवि ने शिवाजी को नैपोलियन, सीजर आदि से अधिक महान् माना है और उनके आत्मगुणों की विशेषता बताई है। इसमें शिवाजी के चरित की पाँच उदात्ततम घटनाओं को पाँच अङ्कों में निबद्ध किया गया है। शिव-वैभव में अङ्कों को दृश्य के स्थान पर प्रवेशों में विभक्त किया गया है और अन्य नाटकों की प्रस्तावना को विष्कम्भक नाम दिया गया है, यद्यपि इसमें पात्र सूत्रधार और नटी हैं।

इसमें प्रधान घटना हैं जावली-दुर्ग के अधिपति चन्द्रराय का वध। रामदास को गुरु बनाकर उनसे राजनीति के सिद्धान्तों का अर्थशास्त्र के अनुसार गहन-अध्ययन चरितनायक ने दिया है।

कृष्ण का रुक्मिणी से विवाह की कथा श्रीकृष्णरुक्मिणीय में है। इसमें नये संविधान हैं—सुकीर्ति नामक ब्राह्मण का बन्दी बनाया जाना, कुण्डिनपुर पर हलधर का आक्रमण, भीष्मक की द्वारका-यात्रा, शिशुपाल का द्वारका पर आक्रमण। इसमें व्यास से लेकर एकनाथ तक महर्षियों की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की चर्चा है। इसमें पाँच अङ्क हैं।

रमा-माधव ऐतिहासिक नाटक है। इसका चरित-नायक पेशवा माधवराव प्रथम १७६१ से १७७२ ई० तक राज्य का संचालन करता रहा। उसने इस लघु काल में मराठा-साम्राज्य के पुनरुत्थान के लिए अहर्निश परिश्रम करके बहुविध सफलतायें पाई और शत्रुओं को पराजित किया। उसने सांधिक शासन का प्रवर्तन किया था। केवल १६ वर्ष की अवस्था में उसने शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया था। १७६१ ई० में पानीपत में मराठे पराजित होकर विध्वस्त से हो चुके थे। उन सब में पुनः उत्साह भर कर उन्हें एक करके विजयोन्मुख बनाने का असम्भव कार्य उसने सम्भव करके मराठों की प्रतिष्ठा बढ़ा दी।

माधव राव की पत्नी रमादेवी उच्चकोटिक महिला थीं। उनका पति के अभ्युदय में बहुविध योगदान महत्त्वपूर्ण है। इन्हीं दोनों के युगल जीवन-विन्यास की रमणीय झाँकी इस नाटक में प्रस्तुत की गई है। सूत्रधार ने इनके विषय में कहा है—

नवविकसितपद्मं किं रमाख्यं गुणाढ्यं
सकलकुलवधूनां वैजयन्ती किमेषा।
रमणहृदयरक्ता माधवस्यैवकान्तिः
क्षितिपतिततिवंशे शोभते पुण्यमूर्तिः॥

नाट्य-पंचगव्य

नाट्यपंचगव्य के प्रणेता पण्डितकुल-मण्डन डा० राजेन्द्र मिश्र प्रयाग विश्वविद्यालय के उदीयमान अध्यापक और प्रतिभाशाली कवि हैं।[1] इन्होंने वामनावतरण महाकाव्य लिख कर प्रौढ काव्य सर्जन का परिचय दिया है। मिश्र की अन्य रचनायें आर्यान्योक्ति-शतक, भारत-दण्डक आदि हैं। इनके रूपकों की रचना समयपर १९६५ से १९७० ई० तक हुई। राजेन्द्र हिन्दी और जौनपुरी भाषा में भी सरस समय रचना के लिये सुपरिचित हैं।

नाट्यपंचगव्य के पाँच रूपकों में प्रथम कविसम्मेलन है। इसमें कालिदास, अश्वघोष, शूद्रक, भवभूति, बाणभट्ट, माघ, जयदेव और जगन्नाथ—आठ कवियों से सूत्रधार को सहचर बनाकर कुछ अपने विषय में, कुछ देश की आधुनिक दुर्दशा के विषय में और कुछ प्रयाग-विश्वविद्यालय की गरिमा के विषय में कहा गया है। बीच-बीच में नेपथ्य-गीत हैं।

द्वितीय रूपक राधामाधवीय है। इसमें गोकुल से कृष्ण के मथुरा के लिए प्रस्थान करते समय सन्तप्त राधा को आश्वस्त करने की कथा है।

तृतीय रूपक कण्टूसचरित-भाण है। इसमें परम्परानुसार मातुल-पुत्रिका वागुरा का प्रच्छन्न प्रणयी विटस्थानीय है। वह प्रयाग में कमफोर्डगंज से कीडगंज तक चारिका करता है। हँसने-हँसाने की मधुर सामग्री प्रकाम शिष्टतापूर्वक प्रस्तुत की गई है। भाणोचित अश्लीलता का प्राय: अभाव है।

चतुर्थ रूपक नवरस-प्रहसन है। इसमें रस प्रतीक पात्र हैं। इसमें सभी रसों के साहचर्य से रौद्रपाणि की कन्या का वीरभद्र से विवाह होता है।

पंचम रूपक कचाभिशाप में पुराणेतिहास-प्रसिद्ध देवयानी और कच के कथानक को रूपकायित किया गया है। देवयानी को कच ने शाप दिया कि तुम्हारा विवाह ब्राह्मण से नहीं होगा।

समीहित-समीक्षण

सुब्रह्मण्य शर्मा ने समीहित-समीक्षण में गुरु के शिष्य चित्रभानु, माधव, हरिदास आदि की प्रहसनपूर्ण प्रवृत्तियों का चार दृश्यों में वर्णन किया है।[2] हरिदास 'श नो विष्णू रुरुक्रमः' पाठ करता है। उसे माधव अशुद्धि समझता है। चित्रभानु हँस देता है।

गुरु ने उन्हें उपदेश दिया कि भोजन दिन, सायम् और रात में न करो।

---

१. लेखक के द्वारा १९७२ ई० में प्रकाशित।

२. अमृतलता १९६७ ई० में प्रकाशित।

भोजन करते समय कोई न देखे। इस प्रकार भोजन करके मुझे वताओ। पुरुषोत्तम ने वताया कि मैंने घर के सभी द्वारों को वन्द करके भोजन किया, क्योंकि ऐसा करने पर दिन, रात आदि काल का व्यवधान नहीं हुआ। माधव ने स्मशान चिताग्नि के प्रकाश में भोजन किया। हरिदास ने कहा कि मैं तो खा ही न सका, क्योंकि दिन, रात और सन्ध्या के वाहर कोई समय न था और परमात्मा सब स्थानों को देखता है।

नाट्ये च दक्षा वयम्

नाट्ये च दक्षा वयम् के लेखक वा० का० क्षीरसागर प्राध्यापक हैं।[1] इस प्रहसन में सूत्रधार को विक्रमोर्वशीय का अभिनय किसी प्रतियोगिता में कराना है। उस वेचारे को प्रतिपद सभी पात्र कठिनाइयों में डालते हैं, उनका पैर पकड़ना पड़ता है, और सब से बढ़ कर है पात्रों की तुनुकमिजाजी। यह सब देखकर सूत्रधार पर सहानुभूति होती है। अन्त में उसे कहना पड़ता है—

भगवति नाट्यदेवते, रक्षास्मानमीदृशेभ्यो नटवरेभ्यो नाटकेभ्यश्च।

उपनिषद्-रूपक

उपनिषद्-रूपकों के प्रणेता डा० के. वी. पाण्डुरंगी, वंगलौर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष और दुर्लभ हस्तलिखित-संस्कृत-ग्रन्थ-प्रदर्शनी-समिति के अध्यक्ष हैं।[2] अखिल भारतीय रेडियो के रसमंजरी कार्यक्रम के अन्तर्गत वंगलौर तथा धारवाड से इनका प्रसारण हुआ है। इनमें से दो छान्दोग्य और दो वृहदारण्यक से लिए गये हैं। प्रथम रूपक में सत्यकाम जावाल की कथा है। दूसरा रूपक जनकराज-सभा है। तीसरा है कं ब्रह्म, खं ब्रह्म और अन्तिम है यव एष विज्ञानमयः पुरुषः।

लेखक के अनुसार रूपकों की भाषा मनोहारिणी है। उपनिषदों की शब्दावली को अधिकांशतः अपनाया गया है।

रूपक ध्वनितरंगों में विभाजित है—अंकों और दृश्यों में नहीं। निवेदक तरंग के पहले कन्नड-भाष्य में विवरण देता चलता है। प्रत्येक तरंग एक-आध पृष्ठ का है। सत्यकाम-रूपक में सात तरंग हैं। इनके अन्त में शान्तिपाठ गौतम और सत्यकाम के द्वारा पठित है।

पाण्डुरंगी ने सीतात्याग नामक तीन दृश्यों के रूपक का प्रणयन १९५९ ई० में किया, जिस समय धारवाड के कर्नाटक-कालेज में वे संस्कृत-विभागाध्यक्ष थे।[3]

---

१. सूर्योदय ४३.४-५ में प्रकाशित।
२. १९६८ ई० में वंगलौर से प्रकाशित। इसकी प्रति संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के पुस्तकालय में है।
३. १९४९ ई० में मधुरवाणी में प्रकाशित।

पाण्डुरंगी ने तपःफल नामक एकाङ्की में कुमारसंभव में वर्णित पार्वती के तप को रूपकायित किया है।[1]

जवाहरलाल नेहरु-विजय

जवाहरलाल नेहरु-विजय-नाटक के लेखक रमाकान्त मिश्र व्याकरण-साहित्या-युर्वेदाचार्य के साथ बी० ए० उपाधिधारी हैं।[2] वे चम्पारन में नरकटियागंज के जानकी-संस्कृत-विद्यालय में प्रधानाध्यापक हैं।

जवाहरलाल नेहरु विजय-नाटक आधुनिक शैली का रूपक है, जिसमें भारतीय परम्परा की नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य का अभाव है। यथानाम इस नाटक में महामानव नेहरु का प्रधान रूप से और उनके कर्मण्य परिवार का गौण रूप से त्याग और तपस्या के द्वारा भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए मानसिक और शारीरिक प्रवृत्तियों का आँखों-देखा-सा इतिवृत्त वर्णित है। इसकी कहानी उन दिनों से आरम्भ होती है, जब अकारण या सकारण स्वातन्त्र्य-संग्राम के सेनानियों को जेल में ठूँस दिया जाता था।

नेहरु को मार्टिन सरकारी समाश्रय द्वारा विलासोन्मुख जीवन की ओर अपनी मूर्खतावश ले जाना चाहता था। नेहरु सत्याग्रह का प्रसार करने में लगे थे। इसके प्रथम अंक में जवाहरलाल, गोविन्दवल्लभ पन्त और कैलासनाथ काटजू का वैयक्तिक परिहास है। एक रात इन्दिरा कन्या और पत्नी कमला के बीमार होने पर जवाहर लाल को पकड़ कर पुलिस जेल ले गई। द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में मार्टिन नामक दण्डाधिकारी ने जवाहर को छुरा मरवाने के लिए बलवन को भेजा था। वह पकड़ा गया।

विश्वनाथ मिश्र के नाटक

कलिकौतुक-लेखक श्री विश्वनाथ मिश्र एम० ए० आचार्य पूर्वी उत्तरप्रदेश के निवासी हैं और सुदीर्घ काल से बीकानेर में शार्दूलविद्यापीठ में प्राचार्य हैं। इस विद्यापीठ के वार्षिकोत्सव में प्रायः वहीं के अध्यापकों के लिखे हुए नाटकों का अभिनय होता है। इस रूपक का अभिनय १९७७ ई० में हुआ था। नाटक के अनुसार—परीक्षित् के अभिषेक के अवसर पर महर्षि व्यास उपस्थित हैं। वे परीक्षित् को आशीर्वाद देते हुए कलियुग के आगमन की सूचना देते हैं। परीक्षित् धर्म का रक्षक बन कर कलि के निग्रह की प्रतिज्ञा करते हैं। क्षपणक परीक्षित् की प्रतिज्ञा

१. लेखक के द्वारा १९५९ ई० में प्रकाशित।
२. इसका प्रकाशन १९६८ ई० में चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी से हो चुका है।
३. श्री शार्दूल-संस्कृत-विद्यापीठ-पत्रिका के १९६६-६७ अङ्क में प्रकाशित।

की वात कलि के सम्मुख कहता है। कलि इसे विकट समस्या समझता है। क्रोध और दंभ उसे अपने कृत्यों द्वारा आश्वासन देते हैं। कलि प्रसन्न हो जाता है।

कलिकौतुक आधुनिक शैली का प्रतीकात्मक एकाङ्की है।

विश्वनाथ मिश्र के वामन-विजय नामक एकाङ्की का अभिनय उनके विद्यापीठ के छात्रों द्वारा किया गया।[1] इसमें पुराण-प्रसिद्ध वामनावतार की कथा रूपकायित है। वामन-विजय छोटे-छोटे दृश्यों में विभक्त है।

विश्वनाथ मिश्र का कविसम्मेलन वालोचित लघु प्रहसन है।[2] कविसम्मेलन कृशरभाषात्मक होता है। इसमें विविध भाषाओं की मिश्र शब्दावली में संस्कृत के प्रसिद्ध श्लोकों का अनुरणन परिहास के लिए है। यथा जेण्टिलमैन-मीमांसा है—

मिला थोड़ा ज्ञानं द्विप इव मदान्धः समभवत्।
समस्ते लोकेऽस्मिन् नहीं कोई समानो मम इति॥

चाय-माहात्म्य है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ताः चायं सुडुकन्ति तत्र तिष्ठामि होटले॥

परीक्षार्थी है—

पेपर जहाँ आउट नहीं नहीं नकलस्य साधनम्।
छायास्तत्र न तिष्ठेयुः स्थानं पिछड़ा तदेव हि॥

अन्त में कुर्सी-माहत्म्य है—

कुर्सी नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न-गुप्तं धनं।
कुर्सी भोगकरो यशः सुखकरी कुर्सी गुरूणां गुरुः॥

एकलव्य-गुरुदक्षिणा

एकलव्य-गुरुदक्षिणा नामक छः अङ्कों के नाटक के प्रणेता दुर्गाप्रसन्न देवशर्मा विद्याभूषण बंगाली हैं[3]। वे वस्तुतः भट्टाचार्य हैं। उनके गुरु कालीपद तर्काचार्य थे। दुर्गाप्रसन्न के पिता विद्वच्चन्द्रकिशोर वाचस्पति महान् विद्वान् थे। इस नाटक का अभिनय कलकत्ता-संस्कृत-साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव में हुआ था।

महाभारत के अनुसार थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ द्रोणाचार्य की कथा से आरम्भ करके एकलव्य के अंगुष्ठदान तक इसमें इतिवृत्त है। द्रोण दीन होने के कारण शिष्यों का भरण-पोषण नहीं कर पाते हैं। कुलविद्या छोड़कर वे शस्त्र-विद्या-संग्रह करने के लिए वाध्य हैं। वे धनाभाव से पीड़ित हैं और धन के लिए

१. भारती १६.११ में प्रकाशित।

२. वही, २१.१ में प्रकाशित।

३. संस्कृत-परिषद्-पत्रिका फरवरी १६७० मे प्रकाशित।

शिष्यों के साथ उदार परशुराम के पास जाते हैं। परशुराम ने कहा कि सर्वस्व दान कर चुका हूँ। सरहस्य-प्रयोग-संहार-विमुक्त-मन्त्र ये अस्त्र हैं। उन्हें ही तुम्हें देता हूँ। इस बीच अश्वत्थामा की दूध की इच्छा आटा का घोल देकर पूरी की गई। द्रोण अपने सहपाठी द्रुपद के पास गोधन के लिए पहुँचे। उसने सखा कहने पर इनको झिड़का कि दरिद्र का राजा से कैसा सख्य? फिर वे हस्तिनापुर के मार्ग में बाणविद्या से बीटा और मुद्रा कौरव बालकों के लिए निकालकर भीष्म के आश्रम में पहुँचे। वे पाण्डव और कौरवों के गुरु बने। उनसे शिक्षा लेकर परम प्रवीण अर्जुन ने भासशिरश्छेद में सफल होकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया कि तुम अद्वितीय प्रधान शिष्य हो। उन्होंने दक्षिणा माँगी कि द्रुपद को विनय का पाठ पढ़ा दो। भीम ने कहा कि यह काम मैं अकेले ही कर दूँगा। वह द्रुपद को पकड़ लाया। द्रोण से क्षमा माँगीं।

एक दिन पाण्डव-कुमार आखेट के लिए वन में गये। उनके कुत्ते के मुँह को एकलव्य ने शरवर्षा से पूर दिया। वह द्रोण से अस्वीकृत होने पर उनकी मूर्ति को गुरु मान कर शस्त्राभ्यास कर रहा था। वह अर्जुन से श्रेष्ठतर है—यह असह्य था। द्रोण ने उससे दक्षिणा माँगी दक्षिण अंगुष्ठदान। एकलव्य ने दक्षिणा दी।

इस नाटक में भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया गया है। भाषा नाट्योचित सरल है। अभिनय रमणीय है।

मेघोदय

सुब्ब राम ने मेघोदय नामक नाटक का प्रणयन किया है।[1] यह नाटक कालिदास-महोत्सव के अवसर पर अभिनीत हुआ था। सूत्रधार ने इसका नाम खण्डरूपक बताया है और इसके नवीन होने की सूचना दी है।

इस नाटक में राजा लोमपाद ने अपने राज्य में अवृष्टि होने पर विभाण्ड मुनि के पुत्र बालब्रह्मचारी ऋष्यशृङ्ग को अपने यहाँ लाने के लिए वेश्याओं को भेजना चाहा। वे विभाण्ड के भय से न गईं तो शालि-गोपिकाओं ने अपनी सेवा इस कार्य के लिये अर्पित की। वे वेश्या का रूप धारण करके ऋष्यशृङ्ग को बहका लाईं। पानी बरसा। लोमपाद ने अपनी कन्या उन्हें विवाह में दे दी।

रूपक में गीतों और नृत्यों का रुचिकर समावेश है। भाषा सरल और संवाद वास्तविकतापूर्ण हैं।

वनमाला भवालकर के नाटक

डाक्टर वनमाला भवालकर का जन्म १९१४ ई० में बम्बई प्रान्त के बेलगांव नगर में हुआ, जो अब कर्नाटक प्रदेश में है। इनकी मातृभाषा कन्नड़ है पर शिक्षा महाराष्ट्र के नगरों में मराठी माध्यम से हुई। इनके पिता श्रीलोकुर बम्बई हाइकोर्ट के सुप्रसिद्ध न्यायाधीश थे। वे अच्छे संस्कृतज्ञ और संगीत तथा नाटक आदि कलाओं

१. इसका प्रकाशन संस्कृत-प्रतिभा १९७० के द्वितीय विलास में हुआ है।

के रसिक थे। बम्बई-विश्वविद्यालय से संस्कृत में बी० ए० आनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति विषय से एम० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण हुई थीं और नागपुर-विश्वविद्यालय से संस्कृत में प्रथम श्रेणी में एम० ए० उपाधि अर्जित की। 'महाभारत मे नारी' विषय पर शोधनिवन्ध लिखकर उन्होंने सागर विश्वविद्यालय से डॉक्टर की उपाधि पाई। स्थापना के समय से ही सागर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में अध्यापन करते हुये अव वे प्रवाचक पद से विश्रान्त होकर सागर-निवासिनी हैं।

नाट्याभिनय करने और नाटकों के प्रयोग का निर्देशन करने में भवालकर की निपुणता है। वाद्य और संगीत में उन्हें नैसर्गिक रुचि है। उनका 'पाददण्ड' नामक संस्कृत नाटक उत्तरप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत हुआ। यह नाटक पूना बम्बई-दिल्ली-आकाशवाणी से प्रसारित हुआ, और रंगमंच पर भी खेला गया। इस गद्य रूपक में चीन-युद्ध की पृष्ठभूमि पर प्रणय की सात्त्विकता का चित्रण है। इसमें नवयुवक सुधीर चीन युद्ध से पंगु होकर लौटता है, फिर भी उसकी पूर्व प्रणयिनी ललिता वाग्दत्ता होने के कारण देशरक्षा से परिपूत व्यक्तित्व वाले सुधीर से आकृष्ट होकर परिणय-सूत्र में आवद्ध होकर नायक का पाददण्ड वन जाती है।

संस्कृत के लिये नई नाट्यविद्या संगीतिका (ओपेरा) का उन्होंने प्रयोग किया है। उनके 'रामवनगमन' नामक तीन अंकों की संगीतिका में अनेक छन्दों में पद्यात्मक संवाद हैं। इसमें भावानुकूल रागों में तथा विविध तालों में स्वररचना है। गान, अभिनय, वेशभूषा आदि के साथ रंगमंच पर इसके सफल प्रयोग हुये हैं। इसके ४० गीत ४० रागों में हैं। परिणय-परक पार्वती-परमेश्वरीय नामक तीन अङ्क की दूसरी संगीतिका मे ६५ गीत निवद्ध हैं। अनेक रागों में इनकी स्वरावली तालवद्ध करके रंगमंच पर इसका सुरुचिपूर्ण प्रयोग हुआ है।

आराधना

साम्मनस्य नामक त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक और बी० टी० कालेज, अहमदावाद के प्राचार्य वासुदेव पाठक एम० ए० साहित्याचार्य ने साम्मनस्य, प्रवुद्ध आदि अनेक लघु नाटकों का योरपीय नाट्य-विधान के अनुरूप प्रणयन किया है।[1] इनकी आराधना नामक नृत्यनाटिका एक अभिनव प्रयोग है। इसमें नाचती और गाती हुई पार्वती का रंगमंच पर प्रवेश होता है। गीत है—

लसितं लसितं सरसोल्लसितं हृदयं मम विश्वसतां हृदयम्।
मुदितं मुदितं ह्यधिकं मुदितं सकलं जडचेतनं रूपमयम्॥

आराधना आद्यन्त पद्यात्मक है।

१. वासुदेव पाठक के नाटकों का प्रकाशन अहमदावाद से वृहद् गुजरात संस्कृत-परिषद् की पत्रिका साम्मनस्य के अङ्कों में हुआ है।

महागणपति-प्रादुर्भाव

महागणपति-प्रादुर्भाव के लेखक साम्बदीक्षित 'हारीत' वेद-व्याकरणादि के उच्च कोटिक विद्वान् और श्रौत-स्मार्त-कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ कर्नाटक के निवासी हैं। इनके पिता दामोदर थे। उनकी सुप्रसिद्ध रचना नित्यानन्द-चरित संस्कृत-काव्य है।[1] उन्होंने अग्नि-सहस्र नामक रचना की है। महागणपति-प्रादुर्भाव कवि की तरुणावस्था की कृति है।

महागणपति प्रादुर्भाव में पाँच अङ्क हैं, जो छोटे-छोटे प्रवेशों में विभक्त हैं। इसमें नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य विलसित हैं।

इस नाटक में सिन्धूर दैत्य का जन्म ब्रह्मा के शरीर से जँभाई लेने से होता है। ब्रह्मा ने उसे शक्ति दी कि जो उसकी पकड़ में आये, जल जाय। उसे इस प्रकार अजेय होने का आशीर्वाद दिया। उसने ब्रह्मा पर ही अपने बल की प्रथम परीक्षा ली। ब्रह्मा की अटपटी बातें सुन कर सिन्धूर को कहना पड़ा—

किं नष्टा बुद्धिस्तव वा मम ?

ब्रह्मा ने कहा कि विनायक-गजमुख का अवतार तुम्हारे विध्वंस के लिये होगा। सिन्धूर ने कहा कि पहले तुमको तो जला ही दूँ। ब्रह्मा भाग खड़े हुए, पीछे चला सिन्धूर। वैकुण्ठ में उनके पिता लक्ष्मी-नारायण ने उनकी रक्षा की। नारायण ने सिन्धूर से कहा कि वेदजड़ ब्रह्मा के पीछे क्या पड़े हो? तुम्हारी परीक्षा के योग्य कैलासवासी शिव है।

सिन्धूर कैलास पहुँचा। शिव ध्यान-मग्न थे। पार्वती ने उसे भगाया तो वह अकड़ गया। वह पार्वती के प्रति सकाम हुआ। आलिंगन करने के लिए उसे उद्यत देख पार्वती ने शिव को पुकारा। शिव ने कहा—सिन्धूर भगो। उसने कहा कि पार्वती को मुझे दे दो। फिर जाता हूँ। उस समय वृद्ध ब्राह्मण आया। उसने कहा कि मैं विनायक हूँ, सिन्धूर का विध्वंसक। पार्वती ने उसे अपना पुत्र बना लिया।

द्वितीय अङ्क में इन्द्रादि देवताओं ने सिन्धूर के अत्याचारों से प्रपीडित होकर विनायक की सहायता के लिए शिव से याचना की। एक बार किसी हाथी ने शिव के आश्रम को ध्वस्त किया। शिव ने उसे मार डाला। वह गजासुर था। उसने शिव से अपने सिर के पूजित होने का वर माँगा। पार्वती को रुण्डहीन शिशु हुआ। गज का सिर उसके साथ जोड़ दिया गया। उसने सिन्धूर को मार डाला। गणेश चतुर्दशी के उपलक्ष में इसका अभिनय योग्य है।

१. इसका प्रकाशन १९७४ ई० में हुआ है।

सुखमय गंगोपाध्याय के नाटक

वङ्गवासी सुखमय गंगोपाध्याम एम० ए०, वी० एड्०, काव्य-व्याकरण-स्मृतितीर्थ हैं। इनके दो एकाङ्की पातिव्रत्य और विद्यामन्दिर प्रसिद्ध हैं। दोनों एकाङ्की अनेक दृश्यों में विभक्त हैं।

पातिव्रत्य घरेलू नाटक है। इसमें मनसा देवी की पूजा के प्रवर्तन की कथा बताई गई है। यथा,

पूजय मनसादेवीं सर्वां सिद्धिमवाप्स्यसि।
अन्यथाचरणे त्वं हि धनैः प्राणैः विनंक्ष्यसि॥

चन्द्रधर मनसा का विरोधी था। वह कानी मनसा का सिर लाठी से तोड़ देने के लिए समुद्यत था। उसके छः पुत्रों को मनसा ले गई थी। उसके सातवें पुत्र लखिन्दर का विवाह वेहुला से हुआ। नवदम्पति के लिए विश्वामित्र ने नीरन्ध्र कमरा लोहे का वनवाया। उसमें एक छेद मनसा के कहने से विश्वामित्र ने करा दिया। रात्रि में दम्पति-मिलन वेला में मनसा ने नागिन से लखिन्दर को प्राणहीन करा दिया। वेहुला को मनसा की वहिन नेता ने वताया कि देवता नृत्यप्रिय होते हैं। तुम उन्हें प्रसन्न करो। देवसभा में नृत्य से सवको जीत कर वेहुला ने महेश्वर से पतिजीवन पाया। मनसा ने शर्त कराई कि चन्द्रधर मेरी पूजा करे। चन्द्रधर को छः पुत्र भी मिल गये। उसने एक फूल से कानी मनसा की पूजा कर दी।

विद्यामन्दिर नामक एकाङ्की में विद्यामन्दिरों की अव्यवस्था का चित्रण है। प्रधानाध्यापक के कहने से छात्र कक्षाओं में पढ़ने तो चले गये, किन्तु जब एक ओर वम फूटने का धड़ाका हुआ तो वे फिर उनके पास पहुँचे। कारण पूछने पर एक छात्र ने कहा—यदि नकल करने की छूट नहीं दी जाती तो वम फूटेंगे ही। प्रधानाध्यापक के द्वारा बुलाई अभिभावकों की सभा में एक ने कहा—एक अध्यापक जिस लड़के का ट्यूटर है, उसे परीक्षा के पहले ही प्रश्न-पत्र दे देता है, एक अध्यापक कक्षा में राजनीति की ही चर्चा में देर तक निमग्न रहता है और एक अध्यापक परीक्षा-भवन में ही कुछ छात्रों को प्रश्नोत्तर बताता है।

छात्रों ने पुस्तकालय में आग लगा दी। उनकी माँग थी कि प्रश्न-पत्र देकर अध्यापक परीक्षा-गृह से बाहर चले जायँ, नहीं तो हमें बाधा होती है। नकल हो रही थी। इधर वम भी फूटा। छात्रनेता ने कहा—जब तक छात्रों को आश्वासन नहीं मिलता, तब तक बम धड़ाका होगा। तीन वर्ष बाद इन्हीं छात्रों में से एक ने आकर प्रधानाध्यापक से प्रमाण-पत्र माँगा कि मेरी अयोग्यता के कारण मुझे कोई नौकरी नहीं मिली। अच्छा सा प्रमाण-पत्र दें।

देवीप्रशस्ति-नाटक

देवीप्रशस्ति-नाटक के प्रणेता पण्डित ललित मोहन काव्य-व्याकरण-स्मृतितीर्थ-कविभूषण का निवास-स्थान बंगाल मे वर्धमान (वर्दवान) जिले में पराणपुर ग्राम है।[1] उनकी मृत्यु १९७२ ई० के लगभग हुई।

देवीप्रशस्ति नाटक का अभिनय कालीपूजा के अवसर पर अभिनयानुरागी सहृदय सज्जनों के आग्रह करने पर सूत्रधार ने किया था। इसमें राजा सुरथ की कहानी है। उनके आत्मीय जनो ने ही उन्हें राज्य-च्युत कर दिया था। राजा को वन में पहुँचते ही वैसी शान्ति और सुख की प्रतीति हुई, जो राजधानी में दुर्लभ थी। उनको दो तपस्वियो ने कुलपति के आश्रम के पास पहुँचा दिया। आश्रम के वृक्ष सुरथ को यह कहते सुनाई पड़े—

यथादेशं वयं कुर्मो भगवत्यानुपालिताः।
सतामभ्यागतानां नः सेवाधर्मो हि कल्पितः॥

कुलपति की इच्छानुसार वह वहीं रहने लगा। मायादेवी ने नेपथ्य से उसे सुनाया कि तुम्हें पुनरपि राज्य मिलेगा।

एक दिन समाधि नामक वैश्य उस आश्रम मे आया। उसने सुरथ को बताया कि वृद्धावस्था मे मैं विरक्त हूँ। मुझे आत्मीयो ने अस्वीकारा है। दोनों साथ ही आश्रम में गये। इन दोनो का अभ्युदय महामाया देवी की आराधना से हुआ। माया ने उन्हें कुमारी-रूप मे दर्शन दिया। वह पुन प्रतिमा में विलीन हो गई।

नाटक मे सात अङ्क हैं। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक कोटि के अर्थोपक्षेपकों का अभाव है।

हकीकतराय-नाटक

अनेक दृश्यो में विभक्त लघु एकाङ्की हकीकतराय-नाटक के प्रणेता हजारी लाल शर्मा विद्यालङ्कार हरियाणा मे पिण्डारा, जिन्द के लज्जाराम-संस्कृत-महाविद्यालय के प्रधानाचार्य हैं।[2] इसके अतिरिक्त हजारी लाल की अन्य प्रमुख संस्कृत रचनायें हैं—सगुणब्रह्मस्तुति, संस्कृत-महाकवि-दिव्योपाख्यान नामक पद्य-काव्य, *कादम्बरी-शतक संस्कृत-काव्य, शिवप्रताप-विरुदावली-काव्य,* चर्पटमंजरी-काव्य और महर्षि-दयानन्द-प्रशस्ति शतक-काव्य। इस नाटक मे वीर बालक हकीकत राय के आदर्श चरित को प्रेरणाप्रद निरूपित किया गया है। इसका अभिनय काव्यकला-परिषद् में हुआ था।

नाटक के अनुसार स्कूल मे पढ़ते हुए अपने मुसलमान साथियो से हकीकत राय का विवाद चल पड़ा। जब उन्होंने धिक् दुर्गादेवी कहा तो हकीकत राय ने धिक् रसूलजादी कहा। लड़कों ने काजी से कहा कि हकीकत ने रसूलजादी को धिक्कारा

१. इस नाटक का प्रकाशन प्रणवपारिजात में १४.२ से १६.१ तक हुआ है।

२. इसका प्रकाशन लेखक ने स्वयं किया है। इसकी प्रति गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तकालय मे है।

है। काजी स्यालकोट के न्यायालय में १२ वर्ष के हकीकत को दण्ड के लिए ले गया। वहाँ के न्यायाधीश ने लाहौर के प्रान्तीय न्यायाधिपति के पास उसकी वादपत्रिका भेज दी। हकीकत के इस वाद ने हिन्दुओं में कुछ जागरण उत्पन्न किया। लाहौर में काजी ने न्यायाधिपति से कहा कि यदि इस्लाम धर्म स्वीकार करले तो ठीक है, अन्यथा इसे प्राणदण्ड दिया जाय। हकीकत के माता-पिता ने भी उसे मुसलमान बनने के लिए परामर्श दिया। काजी ने कहा कि यहाँ से छूटा भी तो सम्राट् शाहजहाँ से इसे दण्डित कराऊँगा। निर्णय के अनुसार चाण्डाल हकीकत को फाँसी घर में ले गये। हकीकत की अन्तिम वाणी थी—

रे रे मन्दा अधम-कुलजा मा विलम्ब्रस्व नूनं
स्वीयं कार्यं झटिति कुरुत श्रीमतां नैव दोषः।
भृत्या यूयं न मम हृदये कापि शंका न भीतिः
वीरा वीरा यमसदनगा देवमानं लभन्ते ॥

चाण्डालों ने हकीकत राय का सिर धड़ से अलग कर दिया।

माता-पिता के अपील करने पर शाहजहाँ ने काजी और न्यायाधिपति को रावी में जल-समाधि की व्यवस्था पुरस्कार देने के बहाने नाव पर बैठा कर करवा दी। वह स्वयं हकीकत के स्थान पर उसके माता-पिता का पुत्र बन गया।

विवेकानन्द-विजय

विवेकानन्द-विजय के प्रणेता श्रीधर भास्कर वर्णेकर नागपुर-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्राचार्य और विभागाध्यक्ष हैं। नागपुर-विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि लेकर वर्णेकर ने आधुनिक संस्कृत-साहित्य का इतिहास विषय पर डी० लिट् की उपाधि ली है। डॉ० वर्णेकर नितान्त कर्मठ और उत्साही मनीषी हैं। उन्होंने संस्कृत-साहित्य का संवर्धन करने के लिए अगणित लेख संस्कृत में लिखे और लघुकाव्य, गीतकाव्य और महाकाव्यों की रचना की। उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना शिवाजी-विषयक शिवराज्योदय महाकाव्य है, जिस पर उन्हें साहित्य-अकादमी-पुरस्कार प्राप्त हुआ है। उनकी कतिपय अन्य रचनायें हैं—जवाहरतरंगिणी, स्वातन्त्र्यवीर-शतक, रामकृष्ण-परमहंसीय, वात्सल्य-रसायन आदि।

वर्णेकर का विवेकानन्द-विजय नाटक उनकी इस कोटि की सबसे विख्यात कृति है। यह चरितात्मक नाटक है, जिसमें कार्यावस्था और अर्थप्रकृति की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि ऐसे नाटकों में कोई एक प्राप्य फल नहीं रह होता, पदे-पदे फल की प्राप्ति होती है। लेखक ने इसे महानाटक कहा है, क्योंकि इसमें अंक संख्या दस है और इसका चरितनायक महापुरुष है—महापुरुषविषयत्वाच्च नाटकस्यास्य महानाटकम्।[1]

१. महानाटक का यह लक्षण अतिव्याप्ति-दोष से ग्रस्त है, क्योंकि तब तो सैकड़ों नाटक महानाटक कोटि में आ जायेंगे।

लेखक ने विवेकानन्द-मन्दिर कन्याकुमारी-क्षेत्र में देखा, जिस दिन वहाँ विवेकानन्द-जन्मदिन-महोत्सव था। वहीं से यह नाटक लिखने की प्रेरणा उन्हें मिली। केवल दस दिनों में चार अंक पूरे लिख गये। कुछ व्यवधान के अनन्तर आषाढ शुक्ल एकादशी को यह पूरा हुआ।

इस नाटक का अभिनय १५ जनवरी १९७२ को हुआ। वस्तुतः यह पाठ्य नाटक है, क्योंकि इसमें दीर्घकाय होने के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर व्याख्यान शैली के संवाद हैं। लेखक की भाषा प्राञ्जल है और नाटक भारतीय चरित्र का निर्माण करने की दिशा में नितान्त सफल है।

इन्दिरा-विजय

इन्दिरा-विजय के प्रणेता वेङ्कटरत्न एम० ए० ने तेलुगु, अंगरेजी और संस्कृत में रचनायें की हैं।[1] उनकी रचनायें उपन्यास, काव्य और रूपक कोटि की हैं। इन्दिरा-विजय एकाङ्की है। यह छोटे-छोटे अनेक दृश्यों में विभक्त है। कवि ने *भारतीय नियमानुसार इसमें नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य का समावेश किया* है। इसकी कथा मुजीब के बन्दी बनाये जाने के समय से लेकर बंगलादेश बनने तक है। वेङ्कट ने इसमें मानों आँखों-देखी घटनाओं का विवरण दिया है। इन्दिरा गाँधी का औदार्य, कर्मण्यता और मानवता का संरक्षण विशेष रूप से चित्रित है। साथ ही पाकिस्तान की असद्वृत्तियों का वर्णन है—कैसे-कैसे अत्याचार उन्होंने बंगवासियों पर ढाये।

समसामयिक कृतियों में इसका महत्त्व सविशेष है।

बंगलादेश-विजय

बंगलादेशविजय के रचयिता "पद्म" शास्त्री हैं।[2] इनके पिता का नाम श्रीबदरीदत्त था। इनका निवासस्थान उत्तरप्रदेश के पिथौरागढ जिले का सिंगाली ग्राम है। सम्प्रति ये राजकीय उच्चमाध्यमिक विद्यालय, जिला-भीलवाड़ा, (राजस्थान) में वरिष्ठ संस्कृताध्यापक हैं।

प्रस्तुत व्यायोग के अतिरिक्त 'पद्म' की पाँच कृतियाँ हैं—सिनेमाशतक, स्वराज्य, पद्यपञ्चतन्त्र, लोकतन्त्रविजय तथा लेनिनामृत। पन्द्रह सर्गों के महाकाव्य लेनिनामृत पर कवि को २५०० रुपयों का पुरस्कार उत्तरप्रदेश सरकार से प्राप्त हो चुका है और 'सोवियत-भूमि नेहरू पुरस्कार' ५००० रुपये तथा १५ दिन की निःशुल्क सोवियत संघ की यात्रा की सुविधा इन्हें उपलब्ध हुई थी। 'महावीरचरितामृत' इनकी हिन्दी की कृति है। इन्होंने 'महावीर-विशेषाङ्क' का संपादन किया है।

सेनापति प्रधानामात्य के साथ विचार-विमर्श करता है। दोनों इस निष्कर्ष

---

१. इसका प्रकाशन २६ जनवरी १९७२ ई० में हुआ।

२. संस्कृत-प्रतिभा १०.२ में प्रकाशित।

पर पहुँचते हैं कि मुक्ति-वाहिनी शत्रु से युद्ध करने में पूर्णतया समर्थ है। इसी समय विदेशसचिव आकर सूचित करता है कि वितन्त्री (वायरलेस) से संकेत प्राप्त हुए हैं कि पश्चिमी पाकिस्तान की सेनाएँ राष्ट्रभक्तों का दलन करने के लिये आ रही हैं। सेनापति तत्काल रणक्षेत्र की ओर चल देता है।

इसके पश्चात् इन्द्र, नारद आदि युद्ध देखने के लिये गगनमण्डल पर आते हैं। प्रधानामात्य पाकिस्तान की स्वेच्छाचारिता के विषय में अपने विचार बताता है और साथ ही पाकिस्तान द्वारा जनतन्त्र की अवहेलना और भारत की शरणागत-वत्सलता की चर्चा करता है।

भारत के रक्षामन्त्री ने कहा कि इस युद्ध में असफल होकर याह्या खाँ चीन और अमेरिका के सैनिकों के साथ भारत को जीतने की चेष्टा करेगा। प्रधानामात्य ने कहा कि आप लोग चिन्ता न करें। मुक्तिवाहिनी की विजय निश्चित है।

इन्द्र ने मुजीब को मनु के समान मानव के अधिकारों का निदर्शक बताया। प्रधानामात्य ने कहा कि मुजीब को कहीं पर गुप्त रूप से बन्दी बनाकर रखा गया है। नारद इस समाचार से खिन्न हुए। 'पूर्व बंगाल स्वतन्त्र होगा' यह आशीर्वाद देकर वे इन्द्र के साथ चलते बने।

वरूथिनी-प्रवर

वरूथिनी-प्रवर के लेखक वेडुल सुब्रह्मण्य शास्त्री संस्कृत और तेलुगु के एम० ए० हैं।[1] वे ए० वी० एस् आर्ट्स कालेज में विजगपट्टन में तेलुगु के व्याख्याता हैं।

वरूथिनी-प्रवर एकाङ्की है। स्वरोचिष मनुसम्भव नामक तेलुगु में विरचित पेड्डन कवि की कृति पर यह एकाङ्की आधारित है। पेड्डन विजयनागर के कृष्णदेव राय की सभा के राजकवि थे। यह रचना भारतीय नियमानुसार नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य से संवलित है।

एकाङ्की की कथानुसार प्रवर को एक लेप मिल गया, जिसे लगा लेने पर मनुष्य यथेष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। उसे लगा कर वह हिमालय पर पहुँच कर रमणीय दृश्यों के बीच मनोरंजन कर लेने के पर देखता है कि लेप नहीं रह गया। वह लौट नहीं सकता था। वह अपनी दुर्दशा पर विलाप कर रहा था। इस बीच वरूथिनी नामक अप्सरा आई और उससे बलात् प्रेम करने लगी। उसे भटकार कर वह जैसे-तैसे बचकर भागा। वरूथिनी उसके प्रेम में रोने लगी। वरूथिनी की सखियाँ वहाँ आ गईं। उन्हें सब बातें ज्ञात हुईं। उन्होंने मायाप्रवर बनाकर वरूथिनी का विवाह कर के उसका शोक मिटाया। वरूथिनी को उससे मनुस्वारोचिष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

---

१. १९७४ ई० में वाल्टेयर से प्रकाशित।

'इस नाटक के कथानक मे मायाप्रवर का आना छायातत्त्वानुसारी है। रूपक की भाषा सुबोध है। वर्णन रोचक हैं।

प्रेमपीयूष

'प्रेम-पीयूष' नाटक के लेखक डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म १५ फरवरी १९४९ मे मध्यप्रदेश के राजगढ जनपद मे हुआ। इन्होने एम० ए० तक सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी मे प्राय सर्वप्रथम रह कर उत्तीर्ण की तथा १९७२ मे सागर *विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग से 'संस्कृत कवियो के व्यक्तित्व का विकास' शीर्षक* शोध-प्रबन्ध पर पी-एच्० डी० की उपाधि प्राप्त की। १९७१ ई० मे उन्होने उदयपुर विश्वविद्यालय मे अध्यापन आरम्भ किया। वे सम्प्रति सागर-विश्वविद्यालय के *संस्कृत-विभाग मे व्याख्याता है।*

श्री त्रिपाठी संस्कृत तथा हिन्दी के तरुण साहित्यकार है। उनकी कविताएँ, कहानियाँ आदि संस्कृत-प्रतिभा, भारती, दिव्य-ज्योति तथा अन्यान्य पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती रही है। *'महाकवि कण्टक' (संस्कृत-आख्यायिका), 'संस्कृत* निबन्ध-कलिका', 'भारतीय धर्म तथा संस्कृति' इनकी अन्य प्रकाशित रचनाये हैं।[1] डा० त्रिपाठी की संगीत तथा नाट्याभिनय मे रुचि है और अपने निर्देशन मे 'संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक रूपको का सफल अभिनय करा चुके है।

'प्रेम-पीयूष' सात अको का नाटक है। इसमे लेखक ने महाकवि भवभूति का जीवन-चरित निबद्ध किया है। नाटक की कथा मे यशोवर्मा, वाक्पतिराज, ललितादित्य आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं तथा राजकुमारी प्रियंवदा, शशिप्रभा आदि काल्पनिक हैं। यशोवर्मा और ललितादित्य का विग्रह तथा यशोवर्मा की पराजय ऐतिहासिक घटना है, जिसके साथ भवभूति से सम्बद्ध अनेक रोचक काल्पनिक आख्यानो का लेखक ने समावेश किया है।

भारतमस्ति भारतम्

'भारतमस्ति भारतम्' हरदेव उपाध्याय की रचना है।[2] इसमे भिक्षुक के साथ एक बालक है। वह बंगलादेश से भारत की ओर जा रहा है। वह याह्या खाँ के सैनिकों द्वारा प्रताडित किया गया है। प्राण बचा कर निष्ठुर बना हुआ वह अपने घर और पत्नी को छोड कर भारत की सीमा तक पहुँच सका है। बालक भूखा है *वह पिता से कहता है—'पिता जी, हम लोग कहाँ जा रहे हैं? भोजन कब* मिलेगा? भिखारी उससे कहता है—'भाग्य से पूछ'। इतने मे एक पाकिस्तानी भिखारी और बच्चे को प्रताडित करने के लिए आ जाता है। उसके इस गर्हित कर्म को देख कर एक भारतीय नागरिक उनका रक्षक बनता है। वह सिपाही से इस परिवार को बचा कर भारत ले जाता है।

---

१. १९७४ ई० मे संस्कृत-परिषद् सागर-विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

२. 'संस्कृत-प्रचारकम्' मे १९७३ मे प्रकाशित।

लेखक ने इस एकांकी को 'बालानां कृते' कहा है। इस में उदात्त मानवीय तत्त्व बालकों के लिये ग्राह्य हैं।

च्यवन-भार्गवीय

च्यवन भार्गवीय के लेखक कविराज डा० दे० खं० खरवण्डीकर अहमदनगर के विद्वान् हैं। उन्होंने १९७४ ई० में इसका प्रकाशन किया। इसके पहले उन्होंने सुवचन-सन्दोह नामक अपने गीतों का प्रकाशन किया है। इस लघुनाटक में नान्दी और भरतवाक्य हैं, प्रस्तावना नहीं है। इसमें पाँच प्रवेश दृश्य-स्थानीय हैं। लेखक ने इसे नाटिका नाम दिया है। लेखक सुकन्या के चरित से प्रभावित है। कथा जैमिनीय और सतपथ ब्राह्मण पर मूलतः आधारित है।

अधीरकुमार सरकार के नाटक

मेदिनीपुर के अधीरकुमार सरकार ने कच-देवयानी नामक नाटक लिखा।[1] इसमें पाँच अङ्क हैं, जो दृश्यों में विभक्त हैं। नाटक कुछ-कुछ आधुनिकता लिये है। इसमें नान्दी और प्रस्तावना आदि नहीं है। इसमें देवासुर-संग्राम के प्रसंग में कच का शुक्राचार्य से विद्या ग्रहण करना और देवयानी का उन पर आसक्त होने पर अस्वीकृत होना आदि वर्णित है।

पाशुपत नामक एकाङ्की में अधीर कुमार ने युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदी का विवाद सत्य के सर्वोच्च माहात्म्य के विषय में उपस्थित किया है।[2] इसमें विदूषक का होना अभारतीय है। अर्जुन हिमालय पर तप करके शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करता है। इसमें किरातार्जुनीय-प्रकरण की कथा संक्षेप में रूपकायित है।

यमनचिकेतसीय

लघुरूपक यमनचिकेतसीय के प्रणेता जगदीश प्रसाद सेमवाल व्याकरणाचार्य, विद्याभूषण हैं।[3] इसमें भारतीय परम्परानुसार नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य हैं। इसमें जवनिका-पात के द्वारा दृश्यों का विभाजन किया गया है। इसका अभिनय संस्कृत-वक्ताओं की संगोष्ठी में हुआ था। इसमें कठोपनिषद् की वाक्यावली और पद्यों को भी लेकर अपनी ओर से कतिपय प्रसंग लेखक ने जोड़े हैं। नचिकेता की एकोक्ति रमणीय है। संवाद के वाक्यों को ललित पद्य के चरणों में कतिपय स्थलों पर समाविष्ट किया गया है। यथानाम यह रूपक आध्यात्मिक जीवन-दर्शन का विश्लेषण करता है।

---

१. पटना से पाटलश्री में १९७३ ई० में प्रकाशित।

२. पाटलश्री में १९७३ ई० में प्रकाशित।

३. विश्वसंस्कृतम् में ११.१-४ अङ्क में प्रकाशित।

परमसन्धिक्षणे दैवपुरुषकारौ

परमसन्धिक्षणे दैवपुरुषकारौ नामक नाटक के प्रणेता श्री चण्डीदास नन्द शर्मा, एम० ए० हैं।[1] इस नाटक में दैव और पुरुषकार की भूमिका सांसारिक जीवों के विषय में इन्हीं दोनों के विवाद के द्वारा निर्धारित की गई है। इसमें मरणासन्न रावण का राम से, पुरुषकार का दैव से, नटी का सूत्रधार से, कर्ण का शल्य से, अर्जुन का कर्ण से, तुलसीदास का अपने साले, अपने श्वशुर और पत्नी से एक बार या अनेक बार संवाद हैं। परिषद् में जिज्ञासु दैव की महिमा से प्रभावित होकर पुरुषकार की व्यर्थता विषयक प्रश्न करते हैं। कोई उत्तर देने वाला नहीं है। अन्त में नारायण के सदन में दैव और पुरुषकार पहुँचते हैं। नारायण ने उन दोनों को बाहुपाश में ले लिया। उन दोनों ने कहा—नास्ति पृथक् प्रतीतिरावयोः।

समाज पर छींटाकशी है। व्यवसायी कहता है कि भ्रष्टाचार से इतना समृद्ध हूँ। साधु आचरण से मेरी हानि होती थी।

संवाद अनूठे हैं भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से। यथा—

तुलसी (रत्ना से)—तृणाय न मन्ये समाजम्। भर्ता यत्र तत्र कलत्रम्।

रत्ना—भ्रमरकल्प ! वंचितस्त्वम्।

तुलसी—प्राणांस्त्यजामि उद्बन्धनेन।

वियोगी तुलसीदास की एकोक्ति रमणीय है। वे कहते हैं—मुहूर्तमात्रं रत्ना-विरहात् जगत् शून्यमिव प्रतिभाति। वे उन्मत्त होकर कहते हैं—त्वमेव मे ध्यानम्। त्वमेव ज्ञानम्।

यह नाटक अभिनय में बहुविध भावावेशों को प्रकट करने के कारण विशेष रोचक है।

सुधाभोजन

सुधाभोजन के प्रणेता डॉ० अशोक कुमार कालिया का जन्म उत्तर प्रदेश में १९४४ ई० में हुआ।[2] वे लखनऊ विश्वविद्यालय में संस्कृत के व्याख्याता हैं। नाटक का प्रकाशन उस धनराशि से हुआ है, जो बर्लिन की फ्री यूनिवर्सिटी में भारतीय कला और पुरातत्त्व के प्राध्यापक तथा भारतीय कला के बर्लिन संग्रहालय के निदेशक, डॉ० हर्बर्ट हार्टेल ने परिषद् को सद्ग्रन्थों के प्रकाशन में सहायतार्थ अर्पित की है। डॉ० हार्टेल ने मथुरा में सोंख नामक स्थान में पुरातत्त्वीय उत्खनन कराया है।

सुधाभोजन में देवराज शक्र की चार कन्यायें—आशा, श्रद्धा, श्री और ह्री में अपनी श्रेष्ठता विषयक विवाद होने पर नारद जब निर्णय लेने में असमर्थ हुए तो

---

१. प्रणवपारिजात के १९.८-९ में प्रकाशित।

२. १९७४ ई० में लखनऊ के अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद् से प्रकाशित।

उन्होंने शक्र को निर्णायक बनाने का सुझाव दिया। शक्र ने भी स्वयं निर्णय देने में अपने को असमर्थ पाया। उन्होंने हिमालय पर तप करने वाले कौशिक को निर्णायक बताया और कन्याओं के साथ कौशिक के लिए सुधाकलश उपायन रूप में भेजा। कौशिक कोई वस्तु अपने उपभोग में लाने के पहले उसका किंचिदंश वर्त्तमान योग्यतम सत्पात्र को देते थे। कौशिक ने चारों कन्याओं में कौन उत्तम है, यह जानने के लिए अपना-अपना गुणगान करने के लिए कहा। आशा, श्रद्धा और श्री ने अपना लम्बा-चौड़ा गुणगान किया, पर कौशिक ने उन्हें सुधांश न देकर ह्री को दिया, जब ह्री ने कहा—

देव्यस्म्यहं ह्रीर्मनुजेषु पूजिता प्राप्ता तथा त्वन्निकटं सुवेच्छया।
साहं सुधां न प्रभवामि याचितुं याञ्जा हि नो निर्वसनत्वमुच्यते॥

इस एकाङ्की में प्रतीक रूपक में नान्दी, प्रस्तावना और भरतवाक्य हैं। कालिया· की सरस-सुबोध वाक्य-रचना और गीतिप्रवणता नाट्योचित है।

कः श्रेयान्

गजेन्द्रशंकर लालशंकर पण्ड्या ने कः श्रेयान् नामक प्रहसन की रचना की है।[1] इसमें धूर्तपुर पाठशाला के आचार्य शौनक की बेतुकी बातें हैं। यथा, नव ग्रहों के अतिरिक्त नये ग्रह हैं—जामाता, वैद्यराज, न्यायशास्त्री, भ्रष्टाचार, उपायन (रिश्वत)। उसकी बातें सुनने वाला सूर्यपुर पाठशाला का छात्र प्रभाकर कहता है कि हमारा भजन है—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

शौनक इसका अर्थ बताता है कि परमानन्ददास-माधवदास करोड़पति है। वह खूब घूस देता है। इस लिए सभी उसकी वन्दना करते हैं। यदि कोई उसकी कालाबाजार की शिकायत कहीं पहुँचाना चाहता है तो घूस देकर वह उसका मुँह बन्द कर देता है।

नचिकेतश्चरित

ब्रह्मचारिणी वेला देवी एम० ए०, तर्क-वेदान्त-व्याकरणतीर्थ ने नचिकेतश्चरित नामक एकाङ्की की रचना की है।[2] भारतीय परम्परानुसार उसमें नान्दी और प्रस्तावना आदि हैं। इसका अभिनय आद्यपीठ-परिचालित-बालिकाश्रम-संस्कृत महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में विशिष्ट अतिथियों के समक्ष हुआ था।

एकाङ्की को बालोचित रूप देने में लेखिका को सफलता मिली है। आरम्भ में ऋषियों के बालकों की क्रीडा होती है। नचिकेता के पिता के विश्वजित् यज्ञ का

१. बम्बई से संविद् में १९७६ में प्रकाशित।
२. प्रणवपारिजात के १९७६ के अंकों में प्रकाशित।

दृश्य है। नचिकेता पिता से कहता है—मां यस्मै कस्मैचिद् ददातु। पिता उसे यम को देता है। यमराज के द्वारपालों की अशिष्ट डाँट-डपट उसे मिलती है। एक कहता है—अरे मूर्ख किं त्वं मर्तुमिच्छसि? इन्द्र के द्वारा प्रेरित चन्द्र, वरुण, और सूर्य अपनी अप्सराओं, तूफानों और अग्निज्वाला से समाधिस्थ नचिकेता को डरा नहीं पाते। वह यमभवन के द्वार पर अडिग रहता है।

यम ने उस ब्राह्मण पुत्र अतिथि को अर्घ्य अर्पित किया। अपने प्रलोभनों से विनिर्मुक्त नचिकेता को यम ने वेदान्तोपदेश दिया।

रेवाप्रसाद द्विवेदी के नाटक

डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी का जन्म १९३५ ई० में मध्य प्रदेश मे नर्मदा के तट पर *नादनेर नामक गाँव मे हुआ था। उनको आरम्भिक शिक्षा संस्कृतज्ञ पिता से* मिली। उन्होंने साहित्याचार्य और एम० ए० काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय से किया और जबलपुर से डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। उनकी ज्ञानगरिमा के प्रतिष्ठापक सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीमहादेव शास्त्री थे। १९७० ई० तक मध्य प्रदेश में राजकीय सेवा के पश्चात् वे सम्प्रति हिन्दूविश्वविद्यालय, काशी मे साहित्य-विभागाध्यक्ष हैं।

डा० द्विवेदी की काव्य-सर्जना का प्रथम पुष्प सीताचरित नामक संस्कृत महाकाव्य है। इसके अतिरिक्त उनके अनेक लघुकाव्य और निबन्ध प्रकाशित हैं। उनका संस्कृत आलोचक के रूप में सम्प्रति सम्मान है।

डा० द्विवेदी ने १९७७ ई० मे कांग्रेस-पराभव दस अङ्कों का समवकार *प्रणयन किया है। इसमें भूतपूर्व प्रधान मन्त्री इन्दिरा गान्धी के प्रयाग के उच्च* न्यायालय मे चुनाव के निरस्त होने से कथा आरम्भ होती है। इस निर्णय के अनुसार उन्हें पदत्याग करना चाहिए था, किन्तु उन्होंने ऐसा न कर सर्वोच्च न्यायालय से प्रयाग के निर्णय के निरस्त होने पर अपने को सशक्त बनाना आरम्भ किया। इस कूटनीति से विह्वल होकर देश के क्रान्तिदर्शी नेताओं ने सेना-सहित पूरे राष्ट्र को इन्दिरा-शासन के विरुद्ध विद्रोह करने की योजना का बीज न्यास किया, जिसका शमन इन्दिरा ने आपात-स्थिति लागू करके संख्यातीत निरपराध लोगों को भी जेल मे ठूँसकर आतङ्क का वातावरण आदर्श शासन के नाम पर उत्पन्न कर दिया। कब तक ऐसा शासन चलता? १९७७ ई० मे केन्द्रीय चुनाव हुआ और इन्दिरा का कांग्रेसदल असफल हुआ। जनतादल के मोरारजी नये प्रधान मन्त्री हुए।

द्विवेदी की यूथिका नामक नाटिका की कथा शेक्सपीयर के रोमियो जुलियट पर उपजीवित है। इसमें चार अङ्क हैं। इसकी रचना और प्रकाशन १९७६ ई० में हुए। नाटकीय प्ररूपण की दृष्टि से इसकी विशेषतायें हैं तीन प्रकार की नान्दी–मंगल, पुष्कर घोष और वस्तुनिर्देशन। कवि ने अपने नाटकों में विष्कम्भकों

को अङ्कों के पूर्व यथास्थान रखा है। इनकी भाषा और भावगरिमा नाट्योचित हैं।

प्राणाहुति

प्राणाहुति नामक देशभक्तिपरक एकाङ्की के रचयिता शिवसागर त्रिपाठी सम्प्रति जयपुर में राजस्थान-विश्वविद्यालय में संस्कृत के व्याख्याता हैं।[1] शिवसागर की बहुविध संस्कृत रचनायें सुपरिचित हैं। इनका गान्धी-गौरव महात्मा गान्धी की उच्चकोटिक संस्कृत श्रद्धाञ्जलियों में से है।

प्राणाहुति के विषय में लेखक का अभिमत है कि यह नये प्रयोग और आधुनिक टेकनीक पर लिखा गया है। इसके चरित-नायक मीरमकबूल शेरवानी की प्रशस्ति में लेखक का कहना है--

भावात्मके सुवैमल्ये यज्ञे कश्मीर-रक्षणे
प्राणाहुतिमकार्षीद्यो दायित्वं परिपालयन्।
कश्मीरदेशजो वीरो हुतात्मा जनताप्रियः
शेरवानी युवा मीरमकबूलोऽत्र राजते॥

पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया था। उस समय से कश्मीरी युवक नेता मीरमकबूल अपना प्राण देकर देश रक्षकों की कोटि में गण्यमान हुए हैं। १९४७ ई० में स्वतन्त्रता के अरुणोदय में कश्मीर को हड़पने के लिए पाकिस्तान ने आक्रमण किया। आक्रमण को विफल बनाने के लिए स्वयंसेवक-सेना बनाई गई, जिसमें मीरमकबूल प्रमुख थे। बारामूला में अपने साथियों के साथ काम करते हुए वे मोटर-साइकिल से श्रीनगर गये, जहाँ आक्रमणकारियों के विषय में उन्हें सूचना प्राप्त करनी थी। तीसरे दिन वे आये। गोलियों की बौछार करने वाली पाक-सेना बारामूला आ ही गई। शेरवानी ने योजना बनाई कि पाक सेना को मार्ग-भ्रष्ट करके श्रीनगर तीन-चार दिनों तक न पहुँचने दें। इस बीच वह आक्रमण-कारियों के हाथ पड़ गया। अहमद नामक गुप्तचर ने उन्हें पकड़वाया था। अन्त में गोली से मारे जाते हुए उन्होंने कहा—मैं देशद्रोह का पाप करने से मरना ही अच्छा समझता हूँ।

एकाङ्की में प्रायशः कार्याभाव है और सूचनात्मक विवरणों की प्रचुरता है। लेखक ने लम्बे-लम्बे व्याख्यात्मक संवाद अनेक स्थलों पर दिये हैं, जो नाट्योचित नहीं हैं। भाषा पर्याप्त सरल और सुबोध है। मानव धर्म की प्ररोचना अनूठी है।



१. इसका प्रकाशन अ-६५ जनता कालनी, जयपुर से १९७७ में हुआ है।

शब्दानुक्रमणिका

•